

हिन्दी उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास

हिन्दी-उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास

आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत
अपने विषय का प्रथम एवं सव्या मीतिक शोध-ग्रन्थ

रणवीर राय —
एम० ए० पी०एच० डी०

१९६१
भारती साहित्य मन्दिर
फरवारा — बिल्ली

भारती	साहित्य	मन्दिर
फव्वारा		दिस्ती
आसफ़ग़ली रोड	नई	दिस्ती
सास बाग		सख्तनऊ
मार्च हीरां थेट		बासन्धर

मूल्य १२)

इयामसार गुप्ता मैनेजिंग प्राप्राइटर भारती साहित्य मन्दिर फव्वारा दिस्ती द्वारा प्रकाशित
एवं निरंजन स्वरूप सक्तीना द्वारा डिप्राइटर प्रेष बाबड़ी बाजार, दिस्ती में प्रकाशित

तपस्वर्या प्रभुविद्याय और सत्यान्वेषण ही
जिनके जीवन का मूल मंत्र रहा है और
जिनके भाषीवाद से यह प्रबन्ध
सम्पन्न हुआ है
उन्हीं

पूज्यपाद पितृभक्त वैद्यराज पं० रामरत्ना मल्ल जी
को सान्द्र समर्पित

उपोद्घात

जीवन और जगत् की धार्यताएँ जितनी सफ़सता से उपन्यास में अभिव्यक्ति पा सकी हैं उसनी और किसी साहित्य विधा में नहीं। मानव-जीवन ज्यों-ज्यों अटल और बहुमुखी होता गया उसकी समस्याएँ कविता और नाटक में न समा सकी और मनुष्य की अनुभूतिपारा राष्ट्रीय सीमाओं को धोप कर अपने प्रकृत रूप में वह निकली। अनुभूति की इस प्रकृत अभिव्यक्ति को उपन्यास की सहा मिली। उपन्यास की हय कोई भी परिमाणा स्वीकार करें, इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते कि उसका मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है। मनुष्य एक पहेली है एक रहस्य है। इस पहेली को सुलझाने की इस रहस्य को सोलने की बोड़ी बहुत बेपटा प्रत्येक उपन्यास में मिलती है। इसलिये, यह कहना असंभव न होया कि चरित्रचित्रण उपन्यास का प्राणमूल शरव है। चरित्रचित्रण की मुहुङ्ग नीव पर ही उपन्यास का मध्य प्रासाव टिका है।

उपन्यास-कला के इस मर्म को दृष्टि में रखकर इस प्रबन्ध के विद्वान लेखक ने वैज्ञानिक पद्धति पर हिन्दी-उपन्यास का अनुसन्धानात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रायः विरचविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीटन अपने विषय का यह प्रथम और सच्चा मौक्तिक शोध-प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध का बिडम्बरो के कर कमलों में सौंपते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है—बिनापट्टर हम लिए कि हिन्दी-साहित्य को एक ठोस शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रबन्ध द्वारा डा० रणबीर राय एक स्वतन्त्र चिन्तक निष्पक्ष समीक्षक और एक स्वर्गी तार्क्षिक के रूप में हिन्दी-जगत् में प्रवेश कर रहे हैं। उनकी प्रतिभा ने नवागम्य की मौक्तिकता ही नहीं स्वमत को व्यक्त करने की निर्भीकता भी है। उनकी शैली में इतिवृत्त की निगुणता ही नहीं अध्ययन की गम्भीरता भी है।

यह प्रबन्ध मेरे ही निवेदन में लिखा गया है। हमके गुणों का अपिष्ट परिगणन मेरे लिए अनुप्राण न होया। फिर भी मैं यह कहने का सोच मंजरान नहीं कर सकता कि यह प्रबन्ध लेखक के अपर परिपक्व तार्क्षिक चिन्तन और अनुसन्धानात्मक

(४)

अध्यवसाय का मुक्त है । हिन्दी-साहित्य को इतनी सुन्दर और सुगठित कृति प्रस्तुत करने के लिए मैं अपने सुयोग्य और प्रिय शिष्य डा० राधा को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वह इसी प्रकार की महत्त्वपूर्ण और मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत करके हिन्दी के आभोगता साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहेंगे ।

गोविन्द त्रिमुखायत

एम० ए० पी०एच० डी०, डी० लिट्०

प्राक्कथन

साहित्य की धातुनिक बिधाओं में उपन्यास की सर्वाधिक लोकप्रियता निर्विवाद है और उसमें भी निर्विवाद है चरित्रचित्रण का महत्व। चरित्रचित्रण उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व ही नहीं उसका प्रधान साधन भी है। उपन्यास में बिचकी सहायता से पाठक पात्रों से सापुन्य स्थापित करके घात-विमोह हो जाता करता है, वह चरित्रचित्रण ही है। उपन्यास का रोप सब कुछ भूल जाने पर भी पाठकों की कल्पना में साकार और स्मृति में घमर रहने वाले पात्रों का स्वरूप भी चरित्रचित्रण द्वारा ही सम्भव हो पाता है। उपन्यास की रीकर ने गद्यमय कल्पित वास्तव्यता द्वारा जीवन की व्याख्या और इस बोधक ने मानव-जीवन की मापा में भावों का गद्यानुवाद कहा है। प्रेमचन्द जैसे मानव-जीवन का चित्रमाण मानते थे और उससे घाता करते थे कि वह मानव-चरित्र पर प्रकाश डाले। वास्तव में पात्रों के चरित्र का उद्घाटन उपन्यास की प्रमुख समस्या है। उपन्यास रचना के लिए एक बार लेखनी उठा लेने पर कोई उपन्यासकार चरित्रचित्रण की समस्या से नहीं बच सका। उसके उपन्यास में चरित्रचित्रण ने प्रमाणता ग्रहण की हो या वह गीला रहा हो प्रतिपाद्य बनकर घाता हो या घनायाव ही घा पुसा हो—चरित्रचित्रण के बिना उसका उपन्यास 'उपन्यास' नहीं कहला सकता और चाहे कुछ कहलाए, क्योंकि उपन्यास का मूलधार मानव और उसका चरित्र है और चरित्र घमिष्यविन मापता है।

घपने बिधाधी-जीवन के घातमय में ही लेखक उपन्यास के इस तत्व की घोर घाष्ट हो गया या पर व्यो-व्यो इस घोर उसकी बिताया बहरी गई हिन्दी में इस बिधय के उचित घातोपना-साहित्य का घमाव हैंग उसक हास निरासा ही लयी। बिसे तां लमुजा उपन्यास-साहित्य ही घातोपकों द्वारा उगेधित रहा है और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित घुटकर लेगी और हिन्दी-साहित्य के इतिहास-सर्गों में उपन्यास के घमर्षत परीघापयोमी बिबरणों को छोड़ घबने उपन्यास-साहित्य पर तिगे घातोपना-सर्गों की संख्या भी घभी लघ्य है पर चरित्रचित्रण का घाघार मानकर हिन्दी-उपन्यास का घनोर्ध्वानिक घम्ययन प्रलुन करने बाना एक भी लघ्य

धर्मी लेखक के लेखों में नहीं आया। हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में उपन्यास चर्चा के घटवर्तन परिग्रहित का धीरे-धीरे अन्तर्गत मिलाया है पर उसमें पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए उपन्यासकारों द्वारा सायास या असायास अपनाई गई चरित्र चित्रण की विविध प्रणालियों का उल्लेख तक नहीं मिलता। उनमें मिलता है केवल यह कि उपन्यासकारों की रचनाओं में उनके पात्रों के चरित्र का—चरित्रचित्रण का नहीं—जो स्वरूप जमरा है वह कैसा है, धर्मात् वह समाज-सम्मत है या नहीं और उस चर्चा का घटवर्तन इन ग्रन्थों में होता है कि प्रमुख पात्र समाज के लिए हितकारी है या घनिष्टकारी, वह धर्मज्ञ है या गुरु। इन आलोचनाओं में पात्रों को आलोचक की चरित्र सम्बन्धी मायमाओं और विचारों पर पुरा उत्तरों देखने की चेष्टा मिलती है और यही प्रवृत्ति आलोचकों की विरुद्ध का कारण बनती है। एक ही पात्र की कुछ आलोचक प्रशंसा करते हीसते हैं तो कुछ उस पात्र की तथा उसके स्रष्टा की निन्दा करते हुए मिलते हैं।

इन आलोचनाओं में मेरा यह देखने के लिए सामायित रखा है कि पात्रों का चरित्र चाहे कैसा हो उपन्यासकार अपने पात्रों को पाठकों की कल्पना में किस प्रकार साकार करवाता है। किस प्रकार उसके पात्र काले घसों से भरे उपन्यास के समस्त पन्नों से धीरे-धीरे उभर कर पाठकों के कल्पना चक्रों के घाते सजीव होकर नाच उठते हैं; किस प्रकार वह अपने पात्रों का बाह्यान्तर्य स्रोतकर पाठकों को वह प्रतीत कर सकने में सफल हो पाता है कि उपन्यासकार की तरह वे भी उन पात्रों के बारे में सब कुछ जानते हैं और उनके मन का कोई भी कोना उनके पाठकों से छुपा नहीं रखा। विनयाचरण जीवास्तव के 'हिन्दी-उपन्यास' और यत्र दत्त वर्मा के 'हिन्दी के उपन्यासकार' नामक ग्रन्थों में भी यह प्रभाव सटकता है। अवदीश पाण्डेय द्वारा 'धीन-निरूपण विद्यालय और विनियोग' में भी यह विषय सुझाने की प्रवेष्टा उत्तमकर ही रह गया है। इसके परिचितरित उनमें हिन्दी के केवल तीन उपन्यासों 'बोयान' 'मुनीठा' और 'बोखर एक बीवनी' की ही चर्चा की गई है। डा० देवराज उपाध्याय के प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य और मनो विज्ञान से कुछ सायास संबंधी भी पर निपयांतर हो जाने से उसमें भी चरित्रचित्रण पर अधिक प्रकाश न पड़ सका।

यह सब मिलने से मेरा यह धर्मिजाय नहीं कि उसके इस प्रबन्ध से उपयुक्त प्रभाव की पूर्ति हो जाएगी, न ही वह इस प्रकार का कोई दावा करता है। उदाहरण तो केवल यही निवेदन है कि इस प्रबन्ध को मिलने की प्रेरणा उसे इस विषय के ग्रन्थों के प्रभाव से मिली। उसे यह स्वीकार करने में ठगिक भी संकोच नहीं कि मानव-चरित्र ऐसे घटिवृद्ध विषय को समझने-समझाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। हिन्दी-उपन्यास के असाह सागर में अवसाहन करके चरित्रचित्रण की प्रवृत्तिमें को पकड़ सकना तो और भी कठिन है। अपने इस विनीत प्रयास द्वारा वह यदि

विद्वानों का ध्यान इस विषय की ओर लीन रहा तो उसके संतोष के लिए यही पर्याप्त होगा ।

प्रबन्ध की योजना

हिन्दी-उपन्यास में चरित्रचित्रण के विकास की मुख्य रूप से तीन अवस्थाएँ रही या सकती हैं । पहली अवस्था है पारम्परिक तिलस्म-प्यारी और बामुसी के उपन्यासों में हुए चरित्रचित्रण की जिसके लिए उन उपन्यासकारों ने कोई विशेष ध्यापन नहीं किया । उनके उपन्यासों में पात्रों के चरित्रचित्रण का जो भी रूप मिलता है, वह उनके ज्ञानासा ही बन गया था । मानव-चरित्र के प्रकाशन में उन उपन्यासकारों की रुचि न थी । उनका मुख्य लक्ष्य पाठकों का मनोरंजन था । विकास की दूसरी अवस्था का पारम्परिक प्रेमचन्द के पक्षपात से हुआ और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के उदय तक इसका धोर रहा । प्रेमचन्द और उनके समकालीन उपन्यासकारों ने अपने पात्रों का चरित्रचित्रण बड़े ध्यापन से किया और उसमें उन्हें एकमता भी मिली परन्तु चरित्रचित्रण उनके उपन्यासों का साध्य न था । उनमें न किसी न किसी स सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति का ध्यान बनकर ही धारा था । मानव-चरित्र एक हिमनग (घाईलवर्ग) के समान है, जिसका लक्ष्य ही जल के ऊपर दिखाई देता है और शेष अतममन रहता है । सोईश चरित्रचित्रण वाले इन उपन्यासकारों की रुचि हिमनगकी मानव-चरित्र के जल के ऊपर वाले भाग के चित्रण में ही रही है और अपने पात्रों की साहसिक वैद्यभूषा उनके ध्यानपात्र की परिस्थिति उस परिस्थिति में व्यक्त होने वाले उनके अनुभाव क्रिया-प्रतिक्रिया कपोपकपोन धादि के वर्णन में ही उन्होंने पात्रों के चरित्रचित्रण की इतिथी मान ली है । इनमें से कुछ उपन्यासकारों ने हिमनगकी मानव-चरित्र के जलमय धम्यवत भाग के अस्तित्व को स्वीकार करते उसके चित्रण की चेष्टा की भी ता वे चित्रण बहुधा मनोवैज्ञानिक सारांशों से दूर जा पड़े । अधिकांशतः वे उपन्यासकार अपने पात्रों का 'वे के रूप में बहिरंग (पॉन्ट्रिब) चित्रण ही कर पाए हैं वे क रूप में अन्तरंग (सब्रैविट) चित्रण नहीं । उनके सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह रूप पर्याप्त भी था । तीसरी अवस्था मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के उदय से सम्बन्ध हुई । उसमें उपन्यासकार हिमनगकी मानव-चरित्र के जलमय धम्यवत अवचेतन और अचेतन संघ के प्रकाशन की ओर प्रवृत्त हुए और अपने पात्रों के चरित्रचित्रण के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का ध्यापन किया ।

इसलिए विषय-प्रतिपादन की सुविधा को देखते हुए—चरित्रचित्रण की दृष्टि से नहीं—प्रबन्ध में 'धनापात्र चरित्रचित्रण' 'सोईश चरित्रचित्रण' और 'मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण' शीर्षकों के अन्तर्गत हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यासकारों की रचनाओं में पाई जाने वाली चरित्रचित्रण की प्रवृत्तियों का निरूपण किया

में प्रेमचन्द जयचंदकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, कृन्दावनभास वर्मा और यशपाल का स्थान निम्नित है। इसमिए, इनके ही उपन्यासों में पात्रों के चरित्रचित्रण के लिए अपनाई गई विविध प्रणालियों की सोचाहरण व्याख्या की गई है। इन उपन्यासकारों के प्रतिरिक्त जतुरसेन छासत्री सियारामचरण मुख राहुस सांस्कृत्यायन उपेन्द्रनाथ अरुण प्राहि के उपन्यासों में चरित्रचित्रण के स्वरूप का अध्ययन भी अधिक हो सकता था पर एक तो प्रतिनिधि उपन्यासकारों के अध्ययन में इन उपन्यासकारों की अधिकांश प्रवृत्तियों की व्याख्या हो गई है और दूसरे, इस छोटे से प्रबन्ध में सबको लेकर उनके प्रति न्याय नहीं किया जा सकता था।

चौथा अध्याय हिन्दी उपन्यास में 'मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण' पर है। इस अध्याय में हिन्दी के उन उपन्यासकारों द्वारा पात्रों के चरित्रचित्रण के लिए प्रयुक्त विविध प्रणालियों का सोचाहरण निरूपण है, जिन्होंने मनोविज्ञान को चरित्रचित्रण का मुख्य आधार बनाया है। हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास काफ़ी संख्या में होते हुए भी प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के रूप में अभी जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र बोधी और अज्ञेय ही उल्लेखनीय माने जाते हैं। इसमिए, इस प्रबन्ध में उनके ही उपन्यासों में हुए मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण का स्वरूप विवेचन किया गया है। इन उपन्यासकारों द्वारा प्रयुक्त बहिरंग और नाटकीय चरित्रचित्रण की प्रणालियों को भी छोड़ा तो नहीं गया पर पात्रों के अंतर्गत चरित्रचित्रण के निमित्त इन्होंने जिन विविध प्रणालियों को अपनाया है उनके निरूपण पर ही अधिक बल दिया गया है। मानव चरित्र के अध्ययन अथवा मन को चित्रित करना कोई सरल काम नहीं—उसे शब्दों की भाषा में जो कि चेतन मन की ही उपज है, व्यक्त करना और भी कठिन है। इसमिए, पात्रों की अचेतन प्रवृत्तियों के चित्रण में प्रयास में जैनेन्द्र के पात्रों में जो दुस्स्थिति या गई है और अज्ञेय के चरित्रचित्रण में अस्वीकृति का जो आभास मिलने लगा है उसका भी विशद विवेचन किया गया है।

छठे अध्याय में हिन्दी उपन्यास में चरित्रचित्रण के विकास की तीन अवस्थाएँ—अनायास सोच वय और मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण—में सारवर्त्म्य रित्ताया गया है। हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के उदय के साथ चरित्रचित्रण में आई दुस्स्थिति का विश्लेषण है और उसके निवारण की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

यहाँ उन पात्रों का उल्लेख कर देना भी असंभव न होगा जिनका सेवक ने प्रबन्ध लिखते समय विशेष ध्यान रखा है। विविध उपन्यासकारों की रचनाओं में चरित्रचित्रण का निरूपण करते समय सिद्ध किन्हीं पूर्ण निश्चित कसौटी की लेकर नहीं जमा न ही उसने पात्रों को चरित्र सम्बन्धी अपनी मांग्यताओं और विस्थाओं के अनुसार देखने की चेष्टा की है। इसमिए, कोई पात्र अच्छा है या बुरा इस अंगेसे में बह नहीं पड़ा। उसका ध्यान सदा इस बात पर रहा है कि किसी पात्रका बाह्य व्यवहार स्फुटि स्पष्ट हो पाया है तो कैसे और यदि अस्पष्ट रहा है तो उसकी

दुरुहता का कारण क्या है। ऐसा करते हुए उसकी जधि उतनी छिद्राश्रयण में नहीं रही जिसकी उन पाशों को समझने और उनकी व्याख्या करने में। दूसरे उपमार्गों में चरित्रचित्रण का स्वरूप निरूपण करते समय लेखक ने सामाजिककरण से बचने की चेष्टा की है। किसी उपमार्गकार के चरित्रचित्रण की जब भी किसी बिशिष्टता का उदने उद्देश्य किया है, उसके समर्थन में उस उपमार्गकार के एकाधिक उपमार्गों से उद्धरण दिये हैं। तीसरे गुरु से गुरु दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक विषय का विवेचन करते हुए भी लेखक ने भाषा का प्रसार गुण बनाये रखने का प्रयत्न किया है।

यहाँ पर लेखक उन विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता है, जिनकी सहायता और कृपा से यह प्रबन्ध सम्पन्न हो सका है। अनुसन्धान कार्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा लेखक को पुण्यनगर पण्डित धर्मोद्धारनाथ जी से मिली। उनके आशीर्वाद के बिना लेखक इस मार्ग पर एक पय भी नहीं चल सकता था। लेखक पर उनका भारी ऋण है। अश्वेय डा० सिद्धेश्वर बर्मा भूतपूर्व प्रधान संपादक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय शिक्षा मन्त्रालय का उपभूत व्यक्तित्व इस कार्य में लेखक के लिए प्रकाश स्तम्भ रहा है। समय-समय पर अनुरूप सुझाव देकर और प्रबन्ध में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली के चुनाव में पथ-प्रदर्शन करके उन्होंने लेखक पर जो अनुग्रह किया है उसके लिए वह सदा उपकार मानेगा। अश्वेय डा० मोग्ग धर्मदा हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय ने व्यस्त रहते हुए भी इस प्रबन्ध को देखने की कृपा की है। उनके सत्यश्रमों के अभाव में प्रबन्ध अपूर्ण ही रह गया होता। लेखक उनका अत्यन्त आभारी है। डा० सोहनलाल भूतपूर्व भीष्म साहकालोचित रक्षा मन्त्रालय ने इस प्रबन्ध के मनाविज्ञान-सम्बन्धी अंश का सुन कर और अनेक सुझाव देकर जो अनुग्रह किया है उसके लिए लेखक ऋणी है। डा० विजयेन्द्र स्नातक टीकर हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय अध्यक्ष जैनेन्द्र कुमार जी तथा अश्वेय जी ने इस प्रबन्ध को अत्यन्त पढ़कर जो अनुरूप सुझाव दिये हैं उनके लिए लेखक हृदय से आभारी है। डा० प्रभाकर माधव से लेखक को जो प्रोत्साहन मिलता रहा है उसके लिए वह कृतज्ञ है। इस प्रबन्ध के प्रणयन में लेखक को देश-विदेश के अनेकानेक विद्वानों के श्रमों से सहायता मिली है। लेखक उन सभी विद्वानों के प्रति आभारी है।

यह प्रबन्ध अश्वेय मुखर डा० गोविन्द विष्णुनाथ एम० ए० पी० एच० डी० डी० भिद० के निवेदन में लिखा गया है। उनके सत्यश्रमों का लेखक ने भारी-रम्भ से लेकर अन्त तक पूरा-पूरा साम उड़ाया है। उनका अनुग्रह के बिना यह अनुष्ठान पूरा होना सम्भव ही न था। उनके प्रति दार्शनिक आभार दर्शाने लेखक के हृदय-स्थान नृनजलागुण भावों को अभिव्यक्त करने में अग्रगण्य होगा।

विषय-सूची

	पृष्ठ
उपोद्घात	(क)
प्रारम्भ	(घ)
पहला अध्याय	
उपन्यास में चरित्रचित्रण : सिद्धांत पक्ष	१-८८
(क) उपन्यास और चरित्रचित्रण	७-४७
उपन्यास का महत्त्व	७
उपन्यास की विविध परिभाषाएँ	११
उपन्यास और चरित्रचित्रण	१४
चरित्रचित्रण का स्वरूप	१८
चरित्रचित्रण की दृष्टि से—	
उपन्यास और महाकाव्य	२६
उपन्यास और नाटक	३३
उपन्यास और कहानी	३७
उपन्यास और जीवनी	४१
वस्तु-जगत् के व्यक्तियों और उपन्यास-जगत् के पात्रों में अन्तर	४२
(घ) औपन्यासिक पात्रों के शास्त्रीय रूप	४६-९१
औपन्यासिक पात्र	४६
वस्तु-जगत् के व्यक्तियों और औपन्यासिक पात्रों में सम्बन्ध	४८
पात्र चयन संस्था और परिधि	५६
पात्रों के श्रेयोपशेद कथानक की दृष्टि से	५४
प्रधान पात्रों के श्रेद	५५
नायक-नायिका	५५
प्रतिनायक प्रतिनायिका	५६
पनाहनायक-वताहनायिका	५७
विद्रोपक	५७

गोण पात्रों की उपायेयता	५६
पात्रों के मेढर चरित्रचित्रण की दृष्टि से	५६
स्मिर (स्टेटिक) पात्र	५६
चित्रसनशील (किनेटिक) पात्र	६०
(ग) प्रौढप्यासिक चरित्रचित्रण की विविध प्रणालियाँ	६१-८६
बहिरंग (प्रोव्हेक्टिव) चित्रण	६३
पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण	६३
पात्रों के प्रथम परिचय में उगका चरित्र	६६
आकृति-नेत्रमूला-वर्णन	६४
स्वित्स्वकन तथा क्रिया प्रतिक्रिया-चित्रण	७०
अनुभाव (एक्सप्रेसिव फीचर) चित्रण	७१
अन्तरंग (सब्जेक्टिव) चित्रण	७३
अन्तःप्रेरणार्थों का चित्रण (मोटिवेशन)	७३
अन्तःहृत् (इन्टर्नल कॉन्फ्लिक्ट)	७५
अन्तःविबाध (इन्टीरियर कॉन्फ्लिक्ट)	७६
मनोविस्लेपण (साइको-ऐनेमिजिस्म)	७७
मुक्त आशय (फी एचोसिएशन)	७८
आत्मकता-विस्लेपण (ऐनेमिजिस्म ऑफ रेजिस्टेंस)	७८
स्वप्न-विस्लेपण (ड्रीम-ऐनेमिजिस्म)	८०
निराधार प्रत्यक्षीकरण का विस्लेपण (इन्सुसीनेशन ऐनेमिजिस्म)	८२
सम्बोध विस्लेपण (हिप्नो ऐनेमिजिस्म)	८२
प्रत्यक्षमोहन विस्लेपण (ऐनेमिजिस्म ऑफ रिकोसेक्वन्स)	८४
पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली (केस हिस्टरी मीथड)	८५
शब्द-सहस्रमूर्ति परीक्षण (वर्ड एचोसिएशन टेस्ट)	८६
मातृकीय चित्रण	८६
घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण	८६
कर्मोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण	८७
उद्धरण टीसी	८७
आपसी द्वारा चरित्रचित्रण	८८
पञ्चात्मक टीसी	८८

नारा प्रणाली

हिन्दी-उपन्यास की पृष्ठभूमि (चरित्रचित्रण की दृष्टि से) १११*

(क) राजनीतिक परिस्थिति

१३

संघर्षों के प्रति बड़ा-साह
 मयवी राज्य में धनास्था
 नैतिक पतन
 राष्ट्रीयता का उदय
 इन्डियन नैशनल काँग्रेस
 कान्ति की घोर

(ख) सामाजिक आधार

विधित मध्यम का उदय
 सुधारवादी आन्दोलन
 ब्राह्म समाज
 आर्य समाज
 प्रार्थना समाज
 रामकृष्ण मिशन
 विवेकोपनिषद् सोसायटी
 हिन्दी के साहित्यकार

(ग) साहित्यिक परम्परा

संस्कृत साहित्य
 पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य
 हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार
 मुन्शी इंच अस्ता खो
 बालकृष्ण हरिचन्द्र की प्रेरणा
 भीमबासबास
 अन्वितादत्त व्यास
 बालकृष्ण भट्ट
 हिन्दी में प्रचलित उपन्यास

तोषरा अध्याय

अनायास चरित्रचित्रण

प्रस्तावना

उपन्यास में सत्य प्रिय घोर हित
 हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में तोषरेखन की प्रवृत्ति मुख्य
 त्रिवर्ण-एण्यारी घोर जागृवी उपन्यासों में चरित्रचित्रण

पृष्ठ

६२

६७

६८

६९

१००

१०१

१०२

१०३

१०४

१०५

१०६

१०७

१०८

१०९

११०

१११

११२

११३

११४

११५

११६

११७

११८

११९

१२०

१२१

१२२

१२३

१२४

१२५

१२६

१२७

१२८

१२९

१३०

१३१

१३२

	पृष्ठ
देवकीनन्दन लक्ष्मी	१२१ १३५
परिचयात्मक विवेचन	१२६
आलोचकों द्वारा उपेक्षा	१२६
पुनर्पुंस्वम की आवश्यकता	१२८
देवकीनन्दन लक्ष्मी के पात्र	१२८
पात्रों का परिचयिषण	१२९
पात्रों के नाम	१२९
पात्रों का प्रथम परिचय	१३०
आकृति-वैचित्र्य-वर्णन	१३२
घटनाओं द्वारा परिचयिषण	१३२
कथोपकथन द्वारा परिचयिषण	१३४
मोपालराम महमरी	१३६ १४४
परिचयात्मक विवेचन	१३६
आलोचकों की उदासीनता	१३६
आदर्श आसुओं का चित्रण	१३७
पात्रों का परिचयिषण	१३८
अध्यायों के शीर्षक	१३८
पात्रों के नाम	१३९
पात्रों का प्रथम परिचय	१३९
आकृति-वैचित्र्य-चित्रण	१४०
घटनाओं द्वारा परिचयिषण	१४१
कथोपकथन द्वारा परिचयिषण	१४२
अन्य पात्रों द्वारा टीका टिप्पणी	१४३
पात्रों के पत्र	१४३
सूरमासिन्धुवम गिरिचरण	१४४
बीबा अध्याय	
सौदंश्य चरित्रचित्रण	१४५ १४२
प्रस्तावना	१४९
अध्याय में व्यक्ति और समाज	१४९
व्यक्ति का समाज को आत्मसमर्पण	१४९
व्यक्ति का समाज से संघर्ष	१५०
दुषारों की याँग	१५०
पातक्य का मन्त्रा-कोड़	१५०

समाज के बहिष्कृत वर्ग के प्रति सहानुभूति	१५१
अपीत की सुन्दर स्मृति	१५१
पुरातन मूर्त्यों में अनास्था	१५१
आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह	१५२
उपन्यास में बहिरंग (साइबेरिया) चरित्रचित्रण	१५२
व्यक्ति-चरित्र का अभाव	१५२
छोटे रूप चरित्रचित्रण	१५४

प्रेमचय	१५५ २०२
---------	---------

परिचयात्मक चित्रण	१५५
पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण	१६०
पात्रों का प्रथम परिचय	१६१
स्वित्पंकज	१६६
अनुभाव-चित्रण	१७०
प्रतिक्रिया-चित्रण	१७२
उपन्यासकार की ओर से टीका-टिप्पणी	१७३
अन्तःप्रेरणार्थों का चित्रण	१७३
आशेष (इमोशनल) आचरण का चित्रण	१७७
अन्तर्भूत का चित्रण	१८३
क्रियाशीलता का चित्रण	१८७
अन्तःक	१९०
पटुताओं द्वारा चरित्रचित्रण	१९३
कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण	१९६
अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी	२००

अप्ययंकर प्रसाह	२०३ २४७
-----------------	---------

परिचयात्मक चित्रण	२०३
पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण	२०६
पात्रों का प्रथम परिचय	२११
स्वित्पंकज	२१५
आह्वित-वैशाम्य-चित्रण	२१७
अनुभाव चित्रण	२२०
सारेणिक वर्णन	२२२
क्रिया प्रतिक्रिया चित्रण	२२३
उपन्यासकार द्वारा टीका-टिप्पणी	२२५

	पृष्ठ
अन्तःश्लेषार्थों का चित्रण	२२६
घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण	२३२
कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण	२३४
बायरी द्वारा चरित्रचित्रण	२४०
पत्रों द्वारा चरित्रचित्रण	२४२
स्वप्न और दिव्यात्मज	२४३
गीत	२४६
समसतोच्चरत्न वर्मा	२४८ ३०३
परिचयार्थक विवेचन	२४८
पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण	२५५
पात्रों का प्रथम परिचय	२५८
अनुभाव-चित्रण	२६४
स्वित्पंकज	२६६
क्रिया-प्रतिक्रिया-चित्रण	२७२
भावेष्व भावरत्न	२७४
उपस्थापकार द्वारा टीका-टिप्पणी	२७६
अन्तःश्लेषार्थों का चित्रण	२८१
अन्तर्द्वन्द्व	२८४
घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण	२९०
कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण	२९२
अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी	२९७
कविता-गीत	३००
पत्र	३०१
धुन्दाबनलास वर्मा	३०४ ३२०
परिचयार्थक विवेचन	३०४
वैद्यकाल-परिस्थिति-चित्रण	३०७
आकृति-वैयमूपा-वर्णन	३११
अन्तर्द्वन्द्व का अभाव	३१२
कथोपकथन	३१४
अनुभाव चित्रण	३१८
प्रशपात	३२१ ३३२
परिचयार्थक विवेचन	३२१
स्वित्पंकज	३२६

	पृष्ठ
साहसि-वस्तुनूपा-वर्णन	१२३
पार्श्वों का घन्टहँस	१२७
घन्टविवाद (इन्टीरियर मॉनोमॉय)	१२८
घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण	१२९
कथोपक्रम द्वारा चरित्रचित्रण	१३१
तीसरी अध्याय	
मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण	१३३ ११०
प्रस्तावना	१३७
व्यक्ति चरित्र का उदय	१३७
व्यक्ति के चरित्रचित्रण का मनोवैज्ञानिक आधार	१३७
हिन्दी-उपन्यास में मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण	१३८
वीरेश्वरकुमार, इलाचन्द्र जोशी और अन्य	१३९
वीरेश्वर कुमार	१४२ १९८
चरित्रात्मक विवेचन	१४२
पार्श्वों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण	१४४
पार्श्वों का प्रथम परिचय	१४६
साहसि-वस्तुनूपा-वर्णन	१४९
अनुभाव-चित्रण	१५१
घन्टहँस	१६०
मनोविश्लेषण	१६६
मुक्त आसंय प्रणाली	१६६
आत्म विश्लेषण	१७०
बापकृता-विश्लेषण	१७१
घन्टविवाद	१७६
रवज-विश्लेषण	१७९
निराधार प्रत्यक्षीकरण	१८२
वीरेश्वर के प्रयोगात्मक चरित्रचित्रण में दुरुहता	१८७
विषय की दुरुहता	१८७
दीर्घी प्रवर्धन (वीरेश्वर)	१९१
दीर्घ प्रवर्धता (संश्लेषितवर्धन)	१९३
प्रवर्धन शक्ति-निरा	१९३
आवर्तित मनोवैज्ञानिक व्याख्या	१९८

	पृष्ठ
इलाखत्र कीर्ती	३६६ ४३३
परिचयात्मक विवेचन	३६६
पाशों का प्रथम परिचय	४०२
आकृति-वेद्यमूपा-वर्णन	४०४
अनुमान विवरण	४०७
अन्तर्दृष्टि	४११
मनोवैज्ञानिक व्याख्या	४१३
स्वप्न-विश्लेषण	४१६
पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली	४२९
चित्र-विश्लेषण	४२४
शब्द-सहस्रवृत्ति परीक्षण	४२४
अन्तर्दृष्टि	४२९
सम्बोध-विश्लेषण	४२८
मनोविश्लेषण	४३१
मुक्त धारण प्रणाली	४३२
बाधकता विश्लेषण	४३३
प्रत्येक	४३९ ३१०
परिचयात्मक विवेचन	४३९
पाशों का प्रथम परिचय	४४२
आकृति-वेद्यमूपा वर्णन	४४३
अनुमान-विवरण	४४४
अन्तर्दृष्टि	४४२
मनोविश्लेषण	४४०
'देखर एक कीर्ती' की टेक्निक	४४०
प्रत्यक्षलोकन-प्रणाली	४४१
प्रत्यक्षलोकन-विश्लेषण	४४६
'नदी के द्वीप' की टेक्निक	४७३
प्रत्यक्षलोकन-प्रणाली	४७७
पञ्चात्मक शैली	४८०
'देखर एक कीर्ती' तथा नदी के द्वीप की समान टेक्निक	४८५
संक्षेप शैली	४८६
स्वप्न-विश्लेषण	४८०
प्रतीकात्मक प्रणाली	४८८

उपयोगजन	पृष्ठ
ग्रन्थ के औपग्याप्तिक परिवर्धन में भारतीयता का प्रभाव	५०२
का प्रभाव	५०३
उपसंहार	
हिन्दी उपाग्याप्त में परिवर्धन का विकास का	५११ ५२७
औपग्याप्तिक परिवर्धन की मुख्य समस्या	५१५
औपग्याप्तिक परिवर्धन का भविष्य	५२३
संदर्भ ग्रन्थ-सूची	५२६
पारिभाषिक शब्दावली	५३१
अनुक्रमिका	५४२
	५४५

पहला अध्याय

उपन्यास में चरित्रचित्रण : सिद्धान्त-पक्ष

उपन्यास में चरित्रचित्रण : सिद्धान्त-पक्ष

(क) उपन्यास और चरित्रचित्रण

उपन्यास का महत्त्व—उपन्यास के सराण—उपन्यास और चरित्रचित्रण—
चरित्रचित्रण का स्वरूप—चरित्रचित्रण की दृष्टि से उपन्यास और महा-
काव्य—उपन्यास और नाटक—उपन्यास और कहानी—उपन्यास और जीवनी
—वस्तुगत के व्यक्तियों और उपन्यास-व्यक्त के पात्रों में अन्तर ।

(ख) औपन्यासिक पात्रों के शास्त्रीय रूप

औपन्यासिक पात्र—वस्तुगत के व्यक्तियों और औपन्यासिक पात्रों में सम्बन्ध
—पात्र-व्यक्त सम्बन्ध और परिधि—पात्रों के भेदोपभेद कथानक की दृष्टि
से—प्रधान और सहाय—प्रधान पात्रों के भेद नायक-नायिका—प्रतिनायक
प्रतिनायिका—पताकानायक-पताकानायिका—विशुद्ध—गंभीर पात्र और उनकी
उपादेयता—पात्र के भेद चरित्रचित्रण की दृष्टि से—स्थिर पात्र (स्टैटिक)
—चिक्छनशील पात्र (किनेटिक) ।

(ग) औपन्यासिक चरित्रचित्रण की विविध प्रणालियाँ

बहिर्ग (आम्बेसिब) चित्रण—पात्र के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण—पात्रों
के प्रथम परिचय में उनका चरित्र—आइति-बेद्यमूला-बर्लन—मियरॉन
तथा क्रिया प्रतिनिधि-चित्रण—अनुभाव-चित्रण (एक्सप्रिस्स प्रीबर्स) ।

अन्तर्ग (सम्बेसिब) चित्रण—अन्तर्भेदणायों का चित्रण (मोटिवेशन)—
अन्तर्दृष्टि (इन्टर्नल काम्प्लेक्स)—अन्तर्बिचार (इन्टीरियर मॉनालॉग)—
मनोचित्रण (साइको-ऐनेलिसिस)—मूलन आसन्न (वी ऐसोमिएशन, —
आपन्न-चित्रण (ऐनेलिसिस ऑफ रेडिस्सेंस)—स्वप्न चित्रण (ड्रीम
ऐनेलिसिस)—निराधार प्रत्यक्षीकरण का चित्रण (हैम्युमीनेशन
ऐनेलिसिस)—अन्तर्-चित्रण (हिल्जो-ऐनेलिसिस)—अन्तर्भावना
चित्रण (ऐनेलिसिस ऑफ रिफ्लेक्शन)—पूवकृतात्मक प्रणाली (बम
हिस्टरी मीथ)—अन्तर्-सृष्टि परीक्षण (बम ऐमोसिगन टेस्ट) ।

नाटकीय चित्रण—पटनायों द्वारा चरित्रचित्रण—कथोपकथन द्वारा चरित्र
चित्रण—उद्धरण शैली—आवृत्ति द्वारा चरित्रचित्रण पञ्चात्मक शैली ।

(क) उपन्यास और चरित्रचित्रण

उपन्यास

उपन्यास का महत्त्व—‘उपन्यास’ शब्द की व्युत्पत्ति ।

उपन्यास के लक्षण

उपन्यासकार की विरलुब्धता—उपन्यास की विविध परिभाषाएँ—निम्न आकार वाला महाकाव्य—मध्यम कल्पित आकाशवाणी द्वारा जीवन की भाषा में पात्रों का महासुबाह—उपन्यास की संप्रदाही परिभाषा—उपन्यास की परिभाषा, इस प्रकरण के लिए ।

उपन्यास और चरित्रचित्रण

उपन्यास का मुख्य विषय मानव—चरित्रचित्रण उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व—कालांतर और चरित्र के आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण—आमर—तिलस्मी एम्पादी और बागुली उपन्यासों में भी चरित्रचित्रण ।

चरित्रचित्रण का स्वरूप

चरित्र—चरित्र एक विकृतनवीन तत्त्व—विकृतनवीन तत्त्व प्रस्तुतकरण—प्रस्तुतकरण और उसकी प्रक्रिया—प्रस्तुतकरण ही मनुष्य का मूल चरित्र—चरित्र की विविध मनोवैज्ञानिक परिभाषाएँ—आनवाचरण का मूल प्रेरक उसका प्रस्तुतकरण—चरित्रचित्रण की कठिन परिभाषाएँ—व्यक्तिचित्रण—उपन्यास में चरित्रचित्रण का समुचित स्वरूप ।

चरित्रचित्रण की दृष्टि से

उपन्यास और महाकाव्य—उपन्यास ‘एपिक इन प्रोड’ नहीं—उपन्यास की जीव जीवन की अवधारणाएँ—उपन्यास में कालांतर अनिवार्य नहीं—महाकाव्य में व्यक्ति-चरित्र का अभाव—उपन्यास और नाटक—उपन्यासकार का एकमात्र पात्रन चरित्र—नाटक की सीमा—उपन्यासकार की महानता—उपन्यास और कहानी—तार्किक चरित्र—कहानी में चरित्र के चरित्र विरास का अभाव—कहानी की सीमा—उपन्यास और जीवनी—जीवनी में पात्रों का ‘आध्यात्मिक’ चित्रण—जीवनी के पात्र एक बहनी—जीवनी में कार्य-कारण-परिणाम की पद्धति—आधुनिक के व्यक्तिचित्र और औपन्यासिक पात्रों में अंतर—औपन्यासिक पात्रों का आध्यात्मिक (एन्डमोर्ट) जीवन—पुनःपुनः जीवन—मोर्टल विरासता—निर्वाण जीवन—पात्र अनेक नहीं ।

उपन्यास और चरित्रचित्रण

उपन्यास का महत्व

साहित्य की आधुनिक विधाओं में उपन्यास का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह महत्त्व प्रयोज्य है— साहित्यिक सामूहिक और मनोवैज्ञानिक। इसे हम साहित्य का प्राण कह सकते हैं। साहित्य की हम कोई भी परिभाषा स्वीकार करें भारतीय दृष्टि से दसमें सोनहित-आवना की प्रवर्धित माननी ही होगी। लोकहित-आवना की प्रवर्धित जिनकी सुश्रुता से साहित्य की इस विधा के माध्यम से हो सकी है उतनी और किसी साहित्य में नहीं क्योंकि जीवन और जगत की प्रतिबिम्बता अपनी सम्पूर्णता में उपन्यास में ही बिबित हो पाती है। काव्य नाटक आदि अन्य विधाएँ उमर उमातर और उमलीय स्थलों का उद्घाटन करके अपने कर्तव्य की इतिहास समझ लेती हैं। जीवन की जगमगाता का उमर उमलीय विधाएँ उपन्यास में सम्भव हुआ है बीगा काव्य नाटक आदि में न तो किया जाता है और न इसके लिए उनके विधान में कोई स्थान हो जाता है। अपनी इसी विविधता के कारण उपन्यास साहित्य के अन्य सभी में छोटे बड़ा हुआ निर्धार पड़ रहा है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी उपन्यास का महत्त्व कम नहीं है। युग विशेष की सांस्कृतिक गतिविधि की उगी विधा में अपनी सम्पूर्णता में प्रतिबिम्बित हो पाती है जिसमें जीवन के सभी पक्षों का बिना किसी भेदभाव के समर्थ बिबित किया जा सकता हो। इस दृष्टि से उपन्यास हो प्रवर्धित है। उममें सांस्कृतिक के सांस्कृतिक बिबित मिलने हैं। सब तो यह है कि उपन्यास युग विशेष की सांस्कृतिक का उद्घाटन करेगा होगा है।

उपन्यास का सबम प्रतिक महत्त्व मनोवैज्ञान की दृष्टि से प्रतीत होता है। मनोवैज्ञानियों का साहित्य में दखि बही से भी अपने निष्कर्षों के निबिबितता की प्रेरणा मिल सकती है तो यह उपन्यास से ही सम्भव है। यह सब मनोवैज्ञानियों की

1. Henry James "The Art of Fiction" Portable Henry James Viking Press New York, 1911 p. 293

"The only reason for the use of novel is that it does attempt to represent life"

को स्वीकार करना पड़ा है* । ऑलपोर्ट तो ऐसे उपन्यासों की एक सूची तक दे देता है जो मानव-व्यक्तित्व के विज्ञान को अवलम्बित करने चाहिए† । मनो-वैज्ञानिकों के सामने यदि उपन्यास न होते तो सम्भव है बहुत से उन मनोवैज्ञानिक सत्य-बच्चों का उद्घाटन न हुआ होता जिनके कारण मनोविज्ञान का भाव इतना महत्व है ।

निश्चय ही उपन्यास साहित्य, समाज और मनोविज्ञान के लिए एक समुत्पन्न बरतान सिद्ध हुआ है ।

‘उपन्यास’ शब्द की व्युत्पत्ति

‘उपन्यास’ शब्द ‘उप’ और ‘नि’ पूर्वक ‘यस्’ वातु में ‘यज्’ प्रत्यय जोड़ने से व्युत्पन्न हुआ है । ‘यस्’ का धर्म होता है रचना स्थिर करना प्रक्षेपण करना आदि‡ । इस आधार पर उपन्यास शब्द का व्युत्पत्तिमूलक धर्म हुआ—बहु रचना जिसमें जीवन के अनेक पक्षों का प्रक्षेपण (संपटन) किया गया हो । साहित्य-साहित्यों के हाथ में पड़कर इस शब्द के व्युत्पत्तिमूलक धर्म का विस्तार हुआ और बहु इस कोटि की रचना के प्राणभूत तत्त्व ‘रंजन’ के आधार पर ‘प्रसादन’§ का वाचक बन गया । उस रूप में ‘प्रसादन’ या ‘रंजन’ का अर्थ अधिकतर ‘उत्तिर्बोध्म्य’ या ‘बोधोक्ति’ अथवा ‘उत्तिर्बोध्म्यपुच्छं वक्तुम्’¶ को मिलाने लगा । इस प्रकार, इस शब्द के धर्म का विविध रूपों में संकोच और विस्तार हुआ । किन्तु उसकी रंजन वाली विधेयता समान सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में समिहित मिलती है । संक्षेप में कह सकते हैं कि संस्कृत-साहित्य में ‘उपन्यास’ शब्द का प्रयोग उस रचना के लिए किया जाता था जिसमें जीवन के विविध पक्षों का बिना किसी यैरभाव के चित्रण किया गया हो और जिसमें लोक-रंजन की प्रवृत्ति का पूरा विकास दिखाई पड़ता हो ।

संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त ‘उपन्यास’ शब्द के साथ संलग्न ‘प्रसादन’ या ‘रंजन’ शब्दाली धर्म हिन्दी-साहित्य तक पहुँचते-पहुँचते बहुत बलवन्त बना था । रंजन के उन विविध स्वरूपों तक भी दृष्टि दीर्घाई जाने लगी थी जो लोक-कल्याण के विधातक

* G. G. Jung ‘Modern Man in Search of a Soul’ Routledge & Kegan Paul London 1948 p. 178.

† G. W. Allport ‘Personality: A Psychological Interpretation’ Constable London, 1951 p. 396—Footnote 41 :

“The following novels of character are samples of literary writing containing valuable psychological lessons for the student of personality.”

‡ Kala ‘Higher Sanskrit Grammar’ Appendix to Dhatus Kosha, Tih. edn., p. 7

§ विश्वनाथ, ‘उत्तरिण-वर्ण’, पृष्ठ परिच्छेद, श्रीरामनिवासनगर गंगाधर, वनकण्ड सन् १८६४, श्लोक ६६७, पृ. ४२९ : ‘उपन्यासः प्रसादनम्’ (प्रवृत्तयः सम्प्रदायम्—टीका) ।

¶ Amrutsalak, ‘Kavya Rangraha’ Calcutta, 1872, B. 27:

‘निर्दिष्ट-सन्देशोक्तिकथनप्रधानः’ यः ‘उपन्यास’ शब्द वा प्रयोग समान सभी रूप में हुआ है जिसे हिन्दी में ‘बन्य’ करते हैं ।

उपन्यास की विविध परिभाषाएँ

नियत आकार वाला गद्याख्यान—उपयुक्त कठिनाइयों के होते हुए भी उपन्यास को परिभाषा में बीघने के प्रयत्न यथा-करा होते ही रहे। फ्रांसीसी समामाचर एवेन यैवेले ने उपन्यास को एक नियत आकार वाला यद्यप्य आख्यान माना है। फास्टर ने भी इसी परिभाषा को स्वीकार कर लिया है परन्तु यह जोड़ दिया है कि उसका आकार ३०,००० शब्दों से कम नहीं होना चाहिये^{१०}। यह परिभाषा अन्य कल्पित कथाओं से उपन्यास को भ्रम दिताने में तो समर्थ है ही—साथ ही इस 'भ्रमपूर्ण' चारणा को भी इस होती है कि उपन्यास कहानी का बहुत रूप है और कहानी उपन्यास का मनु रूप अर्थात् कहानी और उपन्यास में केवल आकार का भेद है। इस परिभाषा के अनुसार एक घोर तो बाण मर्द न 'कादम्बरी' तथा लम्बी के 'बगुमारचरित' सरीखी विनासकाय रचनाओं। उपन्यास की संज्ञा देनी पड़ेगी और दूसरी घोर बौद्ध के 'परल' तथा 'त्याग'। धर्मवीर भारती के 'मूर्ख का सातवाँ बोझ' प्रभाकर माधवे के 'परलु' आदि को उनके छोटे आकार के कारण उपन्यास मानने से इनकार करना होगा। हमने प्रतिरिक्त यह परिभाषा आख्यायिका मात्र पर लागू होती है आख्यायिका और उपन्यास के भेद को प्रकट नहीं करती। यह तो माना जा सकता है कि प्रत्येक उपन्यास आख्यायिका है पर प्रत्येक आख्यायिका उपन्यास हो यह आवश्यक नहीं।

यद्यप्य कल्पित आख्यान द्वारा जीवन की व्याख्या—मॉरेट ए० बैरर द्वारा यह उपन्यास की परिभाषा—यद्यप्य कल्पित आख्यान द्वारा जीवन की व्याख्या^{११} हमें इस मार्ग पर एक कदम और आगे ले बढ़ती है। हिन्दी के यदास्वी उपन्यास प्रेमचन्द ने भी इसी प्रकार की परिभाषा की है^{१२}। इस परिभाषा के अनुसार प्रत्येक कल्पित यद्यप्य आख्यान को उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उपन्यास की संज्ञा उसी कल्पित यद्यप्य आख्यान को दी जाएगी जिसमें मानव-जीवन की व्याख्या ही गई हो। उपन्यास को कल्पना की ऊँची उड़ान लेने पर भी अपने वय जीवन की

११ 'Ibid' p. 8: "M. Abel Chevalley has, in his brilliant little manual provided a definition...he says, 'a fiction in prose of a certain extent... That is quite good enough for us and we may perhaps go so far as to add that the extent should not be less than 80,000 words.'"

१२ Richard Church, 'The Growth of the English Novel' Methuen & Co London, 1931 p. 8:

"This was a great step toward the modern novel as defined by Tarnant A. Blake the interpretation of human life by means of fiction prose in narrative."

१३ (क) प्रेमचन्द 'बुद्ध विक्टर' पृ. ३२:

ये उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र स्पष्ट समझ है। कल्पन-चित्र पर प्रकाश लम्बत

को उनके रहस्यों को खोजने की उत्सुकता का रूप लेता है।
(ख) जॉर्जेस योरेनस साग, कल्पना और कल्पितन' प्रथम भाग, पृष्ठ ३३१ कावच ३: "मने
हिन ने वास्तविक चरित्रों को अपने हाथ में लेने में सफल रहा।"

यथार्थ भूमि पर टिकाए रखने होंगे। पर यदि येकर के मतानुसार मानव-जीवन की व्याख्यामात्र को उपन्यास का एक अनिवार्य गुण मान लिया जाए तो तिसरम और एम्यारी की भूमिभूमियों में अपने पाठकों को भरमाए रखने वाली 'अन्धकार-संतति' तथा 'सूतनाथ' की-सी उपन्यासों को उपन्यास की संज्ञा देना कहाँ तक संभव होया ? यदि उन्हें उपन्यास कहना असंभव है तो क्या जीवन की सम्भीर दार्शनिक व्याख्या करने वाले सभी कल्पित गद्यमय व्याख्यानों को उपन्यास मान लिया जाएगा भले ही उनसे पाठकों का मनोरंजन न हो सके। यदि नहीं, तो कहना होगा कि जीवन की शुष्क और नीरस व्याख्या को नहीं प्रत्युत प्रभावोत्पादक तथा सरस व्याख्या को ही उपन्यास का एक अनिवार्य गुण माना जाएगा। यदि जीवन की व्याख्या करना ही संक्षिप्त हो तो वह उपन्यास की अपेक्षा नाटिक तथा दार्शनिक ग्रंथों के रूप में अधिक प्रबल हो सकती है।

सुन्दर कथानक : अन्धे पात्र—इस सम्बन्ध में एडिथ व्हाट्टन की परिभाषा, जो उन्होंने अपने निबन्ध 'परमैनेण्ट वैल्यूज इन फिक्शन' में की है, बड़ी सुबोध और मार्मिक है। उपन्यास एक ऐसा कल्पित आख्यान है जिसमें सुन्दर कथानक और भली प्रकार से चित्रित पात्र होते हैं^{११}। इस परिभाषा का उत्तर्य कदाचित् तब तक स्पष्ट नहीं होया जब तक यह पता न लगे कि 'सुन्दर कथानक' और 'भली प्रकार चित्रित पात्रों' से व्हाट्टन का क्या अभिप्राय है। अपने इसी निबन्ध में वह धीमे निश्चयी हैं कि चिन्मयेर सुईस की सफलता का कारण यह है कि वह अपने पात्रों को पहचानी जा सकने वाली मुलाक़ातियाँ देकर चित्रित कर सका था और उन पात्रों की कहानी भी प्रभावोत्पादक सरलता से सुना सका था^{१२}। इससे स्पष्ट हो जाता है कि व्हाट्टन के निकट सुन्दर कथानक वह है जो सुबोध और प्रभावोत्पादक हो और निरूपित मात्र से सुनाया गया हो और भली प्रकार से चित्रित पात्र वे हैं जो समय-प्रसंग आकृतियाँ धारण करके पाठकों की आँखों के सामने सजीव बनकर नाच उठें। इस परिभाषा की विशेषता यह है कि इसमें उपन्यास के दोनों मूल तत्त्वों—कथानक और चरित्रचित्रण—के प्रति ग्याय करने का प्रयास किया गया है और उसके अनिवार्य गुण मनोरंजकता को भी बुझाया नहीं गया। वैसे तो उपन्यास में प्रेरणा पात्रों का चरित्रचित्रण ही एक ऐसा तत्त्व है जो उपन्यास को आस्थायिका के अन्तर्गत सभी रूपों से अलग कर देता है क्योंकि जितना मूल्य और प्रबल चरित्रचित्रण उपन्यास में होता है उसके लिए अन्य आस्थायिकाओं में न तो स्थान होता है और

११ Edith Wharton, "Permanent Values in Fiction" "Writing for Love or Money" ed. Norman Cousins, Longmans Green & Co. Toronto, 1948, p. 57.

"A novel is a work of fiction containing a good story and well drawn characters."

१२ Ibid. p. 58.

"It is due far more to the fact that he could draw people with recognizable faces and told their stories with a vigorous simplicity."

न उसकी आवश्यकता ही। इस परिभाषा में भी एक कमी है। उपन्यास घोर मानव-जीवन के घनिष्ठ सम्बन्ध की ओर इसमें संकेत तक नहीं किया गया।

मानव-जीवन की भाषा में पात्रों का गद्यानुवाद—उपन्यास घोर मानव जीवन के घनिष्ठ सम्बन्ध पर द्वारा बीम्फर्ट ने बहुत बल दिया है। उपन्यास की परिभाषा करते हुए वह लिखता है कि उपन्यास सक्रिय मानव-जीवन की भाषा में पात्रों का गद्यानुवाद है। इसकी व्याख्या करते हुए उसने आगे कहा है कि वह गद्यानुवाद इतना सुष्ठु होना चाहिए कि उससे पाठकों का धारमन्त्रण बढ़े^{१८}। ग्रोन्स्ट ए० बैकर की मति द्वारा बीम्फर्ट भी उपन्यास से आटा करता है कि वह जीवन की व्याख्या करे, पर वह यह नहीं चाहता कि वह व्याख्या केवल सैद्धांतिक हो जैसी कि धार्मिक या दार्शनिक ग्रन्थों में मिलती है। उपन्यास स उसकी मीग है कि वह पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं और उनके प्रति पात्रों की प्रतिक्रियाओं तथा इन दोनों के घात-प्रतिघात के रूप में ही पात्रों और उनकी समस्याओं का चित्रण कर दे। उपन्यासकार अपनी ओर से उसमें न कुछ डालता प्रतीत हो और न निकामता। व्याख्यात्मक भाग में उपन्यास के यथावधानी और मनोवैज्ञानिक होने की ओर भी संकेत है। इस परिभाषा में भी एक कमी दिखाई देती है। यह परिभाषा व्याख्यात्मक मान पर समान रूप से लागू होती है। बहुत सी आधुनिक कहानियाँ इस कसौटी पर खरी उतरती हैं पर इसी से क्या उन्हें उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है ?

उपन्यास की सर्वप्रामुख परिभाषा—अब तक उद्यत प्रायः सभी परिभाषाएँ एकांगी हैं। किसी में उपन्यास के विषय-वस्तु पर बल दिया गया है ता किसी में उसके रूप पर। किसी एक में भी नदाचित् उपन्यास की सबसामान्य विशेषताओं को पकड़ने का प्रयत्न नहीं किया गया। बैम्फर्ट ने इस प्रकार की चट्टा की है। इसके निकट उपन्यास एक ऐसा कल्पित विभासनाय तथा यथमय आस्वान है जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथाय जीवन के निरूपण का प्रयास करने वाले पात्रों और उनके क्रिया-कलापों का विश्रस हो^{१९}। यह परिभाषा हमारे सामने उपन्यास की निम्नलिखित सब-सामान्य विशेषताओं को भारी है

१ उपन्यास एक यथमय आस्वान है

२ इसका कथानक कल्पित हुना है

१८ Eric Wolfert "What is a Novel and What is it Good for" "The Writer a Book" Harper and Brothers New York 1940, p. 8 :

"They (novels) are prose translations of ideas into the language of human life being lived — the translation must be made with such an accuracy as to increase the reader's knowledge of his own self."

१९ Webster "New International Dictionary of English Language 1942 p. 1670 :

"A fictitious prose tale of considerable length in which characters and actions (purporting to represent those of real life) are portrayed in a plot."

१. यह विद्यासकाम होता है

४. इसके पात्र और उनके किया-कसाप यथार्थ जीवन का निरूपण करते हैं तथा

५. इसके सारे पात्रों और उनके किया-कसापों का चित्रण एक ही कबानक के अन्तर्गत होता है।

उपन्यास की उपयुक्त विशेषताओं में से अंतिम धकेली ही उपन्यास को सत्य विद्यासकाम आख्यायिकाया से अलग कर देती है। परु इस परिभाषा से भी पूरा संतोष नहीं हो पाता। इसमें उस तत्त्व का नाम तक भी नहीं जिसके अभाव में उपन्यास 'उपन्यास' नहीं रहता। वह है उपन्यास की मनोरंजन-शक्ति।

उपन्यास की परिभाषा इस सम्बन्ध के लिए—प्रत्येक उपन्यासकार तथा समाजोपक के निकट उपन्यास की अपनी-अपनी और बाकी सबसे मिठाई परिभाषा देखकर ही क्वाबिडू किसी ने कहा है कि उपन्यास की सच्ची परिभाषा उसका इतिहास ही है। इस उक्ति में नहरी सत्यता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो उपन्यास व्यक्ति के अपनी परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्व करता है^१। तो भी हम हिन्दी के उपन्यास-साहित्य की परिधि निर्धारित करने के लिए किसी भी कल्पित बड़े पद्याख्यान को जिसमें एक ही मनोरंजक कबानक के अन्तर्गत प्रायः प्रकृत जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों से सम्बन्धित घटनाओं उनकी प्रतिक्रियाओं और दोनों के बात-प्रतिबात से विकसित उनके व्यक्तित्व का समीप चित्रण हो उपन्यास की संज्ञा दे देंगे।

उपन्यास और चरित्रचित्रण

उपन्यास का मुख्य विषय : मानव—अब तक हमने जितने भी विद्वानों के मतों का उल्लेख किया है उनमें उपन्यास की परिभाषा में सम्बन्ध में अने ही मतभेद हो, इस बात से किसी को इनकार नहीं—अस्टर को छोड़कर जो इस विषय में भीम है—कि उपन्यास का मुख्य विषय मानव-जीवन है। वेटर ने उपन्यास को एकमात्र कल्पित आख्यान द्वारा जीवन की व्याख्या द्वारा बौद्धिष्ट ने सक्रिय मानव जीवन की भाषा में धर्मों का यथानुवाद तथा प्रेमचन्द ने मानव-जीवन का चित्र मान कहकर मानव-जीवन के साथ उपन्यास के घनिष्ठ सम्बन्ध की सीधे-सादे शब्दों में घोषणा कर दी है। प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यासकार हेनरी जैम्स ने तो इसी बात पर जोर देते हुए यहाँ तक कह दिया है कि उपन्यास के अस्तित्व का एक मात्र कारण यह है कि वह जीवन के चित्रण का प्रयास करता है^२।

१. आल्बर्ट "आधुनिक उपन्यास और इतिहास", १९२५—पृष्ठ २६२२

२. Henry James, "The Art of Fiction" "The Portable Henry James" p. 293.

उपन्यास का वास्तविक विषय तो मानव है पर मानव जीवचारी है उसका जीवन होता है। मनुष्य का परिचय जीवन सभाम में प्रस्तुतित उसकी क्रिया प्रति क्रिया से तथा अन्य व्यक्तियों से उसके आदान प्रदान से मिलता है। मानव को उसके जीवन से घसग करके नहीं देखा जा सकता। इसलिए उपन्यास का विषय मानव-जीवन बन जाता है। मानव एक पहेली है एक रहस्य है। उस पहेली को सुझाने का उस रहस्य को जोड़ने का प्रयत्न करना उपन्यास का चरम लक्ष्य है। उपन्यास की परिभाषा देते हुए एडविन स्टार्टन इसलिए यह कहना नहीं भूलें कि उपन्यास में सुन्दर कथानक के साथ-साथ सभी प्रकार से चित्रित पात्रों का होना भी अनिवार्य है। बैस्टर ने उपन्यास में पात्रों की अनिवार्यता को तो माना ही है साथ-साथ यह भी कह दिया है कि वे चरित्र जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामाजिक प्राणी होने के कारण मानव स्वभावतः सब किसी के बारे में जिज्ञासे उसका वास्ता पड़ता हो या वास्ता पड़ने की सम्भावना हो जानना चाहता है। पर वह जानना उतना ही चाहता है जितने से उसका सम्बन्ध हो। मानवोत्तर प्राणियों यर्षा व पुनः-प्राणियों के सम्बन्ध में भी वह उतना ही जानना चाहता है जितने से उसका काम बन आए। पर मानव होने के नाते अपने भीतर के मानव से तथा बाहर के मानवों से उसका जीविस घटे प्रसिद्ध-प्रतिपल वाला पड़ता है। मानव को जाने बिना उसे समझे बिना मनुष्य की मति नहीं—न समाज में और न धार्मिकता के मार्ग में। इस रहस्यमय मानव के उद्घाटन की व्याकुलता प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रत्येक उपन्यास में मिलती है। मानव व उपन्यास की घोर आकृष्ट होने घोर उपन्यास के अपने पूर्ववर्ती साहित्य पर एकदम छा जाने का यह भी एक बड़ा कारण है।

चरित्रचित्रण : उपन्यास का अनिवार्य लक्ष्य—उपन्यास मनुष्य की चरित्र छाया से बना एक घर है^{११}। इसलिए, जब भी किसी ने इसके निर्माण के लिए मैगनी उड़ाई वह पात्रों और उनके चरित्र-चित्रण की समस्या से बच न सके। उसके उपन्यास में चरित्र-चित्रण ने प्रधानता ग्रहण कर ली हो या वह पीछे रहा हो वह अनिवार्य बन गया हो या आनुवंशिक रहा हो उपन्यास में अपने उन आनन्दमय देखा हो यथा वह उनमें धनायास या पुगा हो यात्र और उनके चरित्र-चित्रण के बिना उसका उपन्यास 'उपन्यास' नहीं कहना सस्ता और वह कुछ भी बहनाए, क्योंकि उपन्यास का मूलधार मानव और उसका चरित्र है। उपन्यास में जब कभी मनुष्योत्तर प्राणि यात्र के रूप में आते हैं तो वे भी मानव प्रकृति के रंग में रंगे हुए

११ Stephen Spender "The Nov. and Narrative Poetry" "The Penguin New Writing Penguin Books, Sep. 1941, p. 1-3:

"They (Rendhal and Italer) regarded an introduction of the poetic into novel treating the novel was a 1 novel built of it about people their life and environment der loquent incoherent passion"

किसी तरह की गैकी नहीं की किसी को अपना दोस्त नहीं बनाया और किसी पर महान का बोझ नहीं डाला।"^{१२}

ऐसे स्थलों को देखकर मानना पड़ता है कि लेखक यथार्थों के यथार्थों में भी खरिबिचित्रण के प्रति उदासीन नहीं रहा। इस प्रकार के एक-दो नहीं असंख्य उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें ऐसे उपन्यासों का लेखक स्वयं प्रकाश पात्रों के स्वगत कथनों द्वारा उनके तथा अन्य पात्रों के कथोपकथनों द्वारा उनके खरिब पर प्रकाश डालता जाता है, जिससे उपन्यास की स्वाभाविकता बनी रहती है। बासूरी उपन्यासों के लिए बहुत सी बातों को हानिकारक घोषित करके उपन्यास में उनके समावेश का निषेध करने वाले उपन्यासकार ज्ञान झाड़न को भी अपने प्रसिद्ध लेख 'द्वैन्दी कथुन और राइटिंग डिटेक्टिव स्टोरीज' में उपन्यास में स्वाभाविकता लाने के लिए एक सीमा तक पात्रों के खरिबिचित्रण की अनुमति दे देनी पड़ी। उसके विचारानुसार बासूरी उपन्यास में यद्यपि सभी वर्तमानक परिच्छेद तथा वैकीबा खरिब-विस्लेषण नहीं होने चाहिए, तो भी उसमें स्वाभाविकता लाने के लिए पर्याप्त वर्तमानकता और खरिबिचित्रण अवश्य होना चाहिए।^{१३} अपने महत्त्वपूर्ण लेख 'दि नोटी बाइसट माँथ दि नोबिल' में प्रसिद्ध बासूरी उपन्यासकार क्यू० पैट्रिक ने तो यहाँ तक कह दिया है कि बासूरी उपन्यास में सब कुछ स्पष्ट हो जाता है यदि उसके पात्र व्यक्तिगत कारण नहीं करते।^{१४}

इस प्रकार, मानना पड़ता है कि खरिबिचित्रण उपन्यास का एक अनिवार्य तत्त्व है—उपन्यास में वह धनायास ही हुआ हो या सायास उसमें वह साबन बन कर आया हो या साभ्य बन कर।

खरिबिचित्रण का स्वरूप

किसी कथा के पात्रों के खरिब का प्रकाशन खरिबिचित्रण है इतना कह देने से समस्या सुलझती तो नहीं पर अपने वास्तविक रूप में अवश्य सामने आ जाती है कि खरिबिचित्रण को समझने से पहले खरिब को समझना होगा।

१२. खरी, गुप्त २२।

१३. E. B. Van Dine, "Twenty Rules for Writing Detective Stories" "The Writers Hand Book" The Writers Inc. Boston, 1927, p. 260

"A detective novel should contain no long descriptive passages.....no subtly worked out character-analysis.....to be sure there must be a sufficient descriptiveness and character delineation to give the novel verisimilitude."

१४. Q. Patrick, "The Naughtly Child of Fiction" "Writers Hand Book" p. 216.

"A reader is pleasurably mystified only when the author manages to interest him in a clearly presented problem involving characters that have some reality for him.....If ever the pattern becomes blurred, or the characters take on no individuality masked figures can crawl around haunted houses, detectives can make cryptic decisions shots can whiz past the heroine's ears — all in vain."

कि दूसरों की बुद्धि भी उसे ठीक समझे। और तो और, एक ही व्यक्ति की बुद्धि समान परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के निष्पन्न करती हुई पाई जाती है।

विचारों की विभिन्नता होते हुए भी मनुष्यमान में विचारशीलता की समानता, उसकी भिन्नता में समानता इस बात का प्रमाण है कि मनुष्यमान का गठन एक-से तत्वों से हुआ है। परन्तु मनुष्यमान में विचारशीलता की समानता होने पर भी उनके विचारों में भिन्नता उनकी समानता में भिन्नता एक स्पष्ट संकेत है कि मनुष्य विकसनशील है, उसमें कोई ऐसा तत्व है जो विकास की विभिन्न दिशाएं ग्रहण कर, उसे जाति में व्यक्तित्व बना देता है उसे व्यक्तित्व प्रदान कर देता है।

विकसनशील तत्व अंतःकरण—मनुष्य के भीतरी विकसनशील तत्व तक पहुँचने के लिए हमें मानव के यत्न को देखना होगा। श्रीमद्भगवद्गीता के १३वें अध्याय में इस विषय का संकेत करते हुए कहा गया है 'इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'^{११} और फिर संक्षेप में मानव-शरीर का यत्न इस प्रकार दिया गया है

‘महामुत्तम्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।

इन्द्रियाणि सर्वकंच पंचचेन्द्रियमोचरा ॥१॥

‘इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना वृत्तिः।

एतत्तेजं समासेन सन्निकारमुदाहृतम् ॥२॥

(श्रीमद्भगवद्गीता-१३। १-२)

५वें श्लोक में क्षेत्र नामक मानव-शरीर के यत्न के सम्बन्ध में चर्चा की गई है और ६वें श्लोक में उसके विकारों का वर्णन है।^{१२} मनुष्य के शरीर में इन तत्वों का महत्त्व और उनका एक दूसरे पर प्रभुत्व बिलाते हुए गीताकार ने पहले ही कहा है

‘इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनस्तु परं बुद्धिर्बुद्धे परतस्तु स ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ४२)^{१३}

गीताकार ने मनुष्य शरीर का यह सारा विकास अव्यक्त प्रकृति से माना है।^{१४} उसके विचार में बुद्धि मन और इन्द्रियाँ उस अव्यक्त प्रकृति के विकसित रूप हैं उसके विकार हैं।

११ श्रीमद्भगवद्गीता-१३। १

१२ श्रीमद्भगवद्गीता १६वाँ संस्करण, पीठ प्रेस कोरगुड, सी २ ०० पृ० ४०६

१३ कठोर्विश्व (१। १०-११) में शरीर के तत्वों का पारस्परिक महत्त्व इस प्रकार कहा गया है—

‘इन्द्रियेभ्यः परं ह्यर्थाव्यवस्थं परं मनः। मनः परमप्राणमन्त्राणां परं। मनस्तु परं बुद्धिर्बुद्धेः परा महात्मनः ॥१०॥ बुद्ध्यान् परं किंकिश्राणां स वराणि ॥११॥

१४ Radhakrishnan, 'Indian Philosophy' (Vol. I), George Allen & Unwin, London 1949 p. 535.

“The whole drama of evolution belongs to the object world. Intelligence, mind, senses are looked upon as the developments of the unconscious prakriti, which is able to bring about this ascent on account of the presence of spirit.

जोय इस तत्त्वपूर्ण को धन्यकरण^{१०} कहते हैं किन्तु देवाली धन्यकरण में इन दोनों तत्त्वों के अतिरिक्त 'चित्त' नामक एक चौथा तत्व भी मानते हैं।^{११} महाभारत में इन दोनों मतों में सामंजस्य स्थापित करते हुए कहा गया है कि मन जब पहले-पहल बाह्य विषयों का ग्रहण धर्मात् चिन्तन करने लगता है तब वही चित्त हो जाता है^{१२}। इस प्रकार, चित्त मन के अन्तर्गत रहता है, पर कुछ विद्वान बुद्धि में ही उसका धनिवेश मानते हैं।^{१३}

यह धन्यकरण अनुभूतिशील और प्रतिक्रियाशील दोनों ही है।^{१४} अनुभव जब भी कोई अनुभव प्राप्त करता है उसके धन्यकरण की प्रक्रिया इस प्रकार होती है मन ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संस्कार प्राप्त करता है और फिर इन संस्कारों को निरुपम के लिए बुद्धि के सामने उपस्थित करता है और बुद्धि बताती है कि वह संस्कार कैसा है। इसी प्रकार अनुभव जब भी कोई प्रतिक्रिया करता है उसके धन्यकरण के व्यापार का क्रम यह होता है पहले मन बुद्धि से विचार करता है कि यह कार्य सच्चा है या बुरा करने योग्य है या नहीं। बुद्धि से निरुपम से लेने के पश्चात् उस निरुपम के अनुकूल ही मन में उस काम के करने की इच्छा या वासना उत्पन्न होती है। तब मन उस काम को करने के लिये प्रवृत्त होता है और कर्मेन्द्रियों को बैठा करने की आज्ञा देता है।^{१५} इस प्रकार बुद्धि के दो व्यापार रहते हैं: कार्य-विकार का धर्मेन्द्र-द्वारे

१०. (क) Hiriyanna, 'The Essentials of Indian Philosophy' p. 112:

"Of this group the most important are 'manas' equaled (abankara) and the intellect (buddhi) which are together described as the 'internal organ' (antah-karana).

(ख) Sinha, 'Indian Psychology: Perception' K. P. T. T., 1931 p. 121

"Buddhi" 'abankara' and 'manas' are one in nature, they together constitute the one internal organ "antahkarana."

११. (क) Nikhilananda, 'Vedantasastra of Sadananda Yogendra Advait Ashram

Almora, 1940 p. 48 : "Antah-karana ----- the inner organ, of which 'Chitta' 'Buddhi' 'manas' and 'abankara' are the different aspects"

(२) सदाशिव योगेश्वर, 'वेदान्तसार' १०

"अन्तरेव चित्तहोवाचोत्तरार्धः"

(३) कल्याण (विष्णु चर्क), भाग २१, अंक २ अमरा ११११ १ १५४ तथा १५० के बीच ही बुद्धि 'अन्तराकारण' पदार्थ-विषय की क्षतिगा।

१२ 'महानाराय', राक्षसि, २०४। १०.

१३ Nikhilananda, 'Vedantasastra of Sadananda Yogendra' p. 48

"This (Chitta) is included in 'Buddhi' or the intellect."

१४ Hiriyanna, 'The Essentials of Indian philosophy' p. 112 :

"...its (antah-karana) chief function is to receive impressions from outside and respond suitably to them

१५ Yachaspati Mishra, 'Sankhyasattvatanmudh' with Vidantotsai, Dombay Samrat 1980 23:

का निर्णय देना और उस निर्णय के आधार पर उग काम के करने की मन में वासना उत्पन्न करना। बुद्धि के इन दो व्यापारों के आधार पर उसके दो भेद कर दिये गये हैं। पहली को 'व्यवसायारमिका बुद्धि' और दूसरी को 'वासनात्मक' या साधारण बुद्धि कहा जाता है। मनुष्य की अनुभूति और प्रतिक्रिया का वास्तविक आधार यह 'व्यवसायारमिका बुद्धि' है, इसके कारण ही मनुष्य 'चिन्तन' कहा जाता है। मन तो उसका महीमाय है उसकी यात्राओं के अनुसार काम करवाने वाला। इसीलिये इस व्यवसायारमिका बुद्धि की स्मरता और बुद्धि के लिये गीताकार ने बहुत जोर दिया है।^{४३}

प्रकृति की उपज होने के कारण अन्तःकरण के ये व्यापार होते तो हैं प्रकृति के गुणों (सत्त्व रजस् और तमस्) के द्वारा पर अहंकार के कारण मोहबल जीवात्मा अपने को ही इन सब कर्मों का कर्ता समझने लग जाता है।^{४४} इसलिये इस मानव शरीर में कर्ता न तो जीव को माना जा सकता है और न ही वह प्रकृति को। कर्ता तो अहंकार (जीव का अहंभाव) है।^{४५} जैसा कि इस संश्लेष से स्पष्ट है अहंकार वह सूक्ष्म तत्त्व है जिसकी उत्पत्ति बुद्धि (महत्त्व) के बाद होती है और जिसकी उत्पत्ति के बाद से ही व्यक्ति की सत्ता स्थिर होती है।^{४६} "मैं" और "मेरे" का भाव इसी अहंकार की उपज है। जीव के अहं भाव के कारण ही वह अन्तःकरण, जिसे

"...Every one who deals with an object first intuits it then reflects upon it, then appropriates it to himself then resolves this is to be done by me, and then he proceeds to act. This is familiar to everyone."

४३ श्रीमद्भगवद्गीता १।४६ २३ :

(७) व्यग्रव्यवसाय बुद्धिरैव कुमनसः ।

बहुराज्यं ह्यन्यत्सु बुद्धिर्बोध्यस्त्वविशम् ॥२—४१॥

(११) बुद्धिर्निमित्तं सत्त्वं ते वाग्यस्यति निमित्तम् ।

समाद्यवस्थां बुद्धिस्तथा कोनस्यवसति ॥२—२१॥

४४ (७) Hiriyanna, *The Essentials of Indian Philosophy* P 110 :

"Prakriti adjusts itself first to the needs of Purusha by evolving the most important aids to life & experience viz. the organ of thinking and the principle of consciousness or unconsciously appropriating the thought or regarding it as one's own."

(११) श्रीमद्भगवद्गीता ३।२७ :

'बह्वैर्विषयाणां गुणैः कर्माणि कर्तवः ।

अहंकारविनाशाय कर्तव्यमिह मनसैः ॥

४५ 'छान्दोग्य' ६।२४ "अहंकारकर्मो न बुध्यते" ।

४६ 'अद्वैतब्रह्म' टीका-व्याख्यान पदवी, साचेरिशिव स्वर्ण-प्रतिष्ठिति सभा देहली सन् १९४४ ई. २ — (प्रत्येक) "मनुष्य मूल किसी व्यक्ति का सत्त्व के बाद होती है और किसी व्यक्ति के बाद ही व्यक्तित्व (Individuality) की सत्ता स्थिर होती है। मैं और मेरे, मन का वह अहं की इसी अहंकार की उपज है।

घटकरमा भी कहा जाता है प्रकृति का केवल विकारमात्र न रह कर व्यक्ति विशेष का प्रत्यकरण बन जाता है।

इस प्रकार, मनुष्य के शरीर में सार वस्तु तो घटकरण है। प्राणों का समावेश भी इसी में किया गया है।^{४०} शेष, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तो मन की आज्ञा का पालन करने वाली भूतमात्र हैं। पाँच तन्मात्राएँ ध्रुव देह के और पाँच महामूल स्वस देह के तत्त्व हैं।

यह मन्तकरण विकसनशील है। इसके व्यापारों का भी विकास होता रहता है। "जीवन में घन्तकरण को (या घटकरमा को)^{४१} जो-जो अनुभव प्राप्त होते हैं, उनके सार तत्त्व वह बटोर लेता है और उन्हीं को धार्य होने वाले अपने विकास का आधार बनाता है। मनुष्य के शरीर के मन्त हो जाने पर जीव के साथ उसका जो 'सिग' ^{४२} या 'सुख' शरीर जाता है उसमें ही मन्तकरण के ये अनुसूचिधार सुरक्षित रहते हैं और जब जीव पुनः जन्म ग्रहण करता है तो इस अनुसूचिधार के आधार पर, घटकरण के पूर्व विकास के आधार पर, नया घटकरण बनता है जो इस नये जीवन के आधार श्रयावातों से विकास पाने समता है।

मन्तकरण ही मनुष्य का मूल चरित्र

मनुष्य के शरीर में विद्यमान घटकरण ही एक तत्त्व बर्ण है जो मनुष्य की अभिव्यक्ति में निम्नता सा देने का कारण है जो स्वयं विकसनशील है और विकास की विभिन्न दिशाएँ ग्रहण कर उसे जाति में व्यक्ति बना देता है उसे व्यक्तित्व प्रदान कर देता है। यह मन्तकरण ही मनुष्य का मूल चरित्र है। कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट मानव की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ तो इसका प्रकाशनमात्र हैं। इस की अभिव्यक्ति हैं। पर जैसा कि इसके गठन से ही स्पष्ट है घटकरण एक विसंगत तत्त्वबर्ण है। इसे कर्म

४०. लिखक, 'जीवा रहस्य' (हिन्दी अनुवाद), पृ. १४३

४१. एमकर काँ, संक्षिप्त हिन्दी शब्दकोश' भारतीय-अंग्रेजी-अंग्रेजी शब्द, ज्युन संस्करण, सं० १००२,

पृ. ११; अंग्रेजी-हिन्दी शब्द (सं०), १ अंग्रेजी, २ अंग्रेजी

४२ (क) Aurobindo, 'Lights on Yoga Arya Publishing House Calcutta, 1943, p. 29.

"The soul gathers the essential element of its experiences in life and makes that its basis of growth in the evolution; when it returns in birth it takes up with its mental vital physical sheaths so much of its Karma as is useful to it in the new life for further experience."

(घ) अरविन्द, 'योगदर्शन' भी अरविन्द प्रबन्धसंग्रह, कलकत्ता १९१६, पृ. १५।

(ग) लिखक, 'जीवा रहस्य' (हिन्दी अनुवाद), पृ. १५५।

"जब कोई मनुष्य मृत होकर जाता है तो वह तत्त्व है, वह मूल के समान कठोर धातु के समान ही प्रकृति के द्वारा एक तत्त्व का (प्रति, अर्थात्, मन इस अर्थ में और पाँच तन्मात्रों) वह मृत शरीर की स्वयं देह से बाहर हो जाता है, और वह तत्त्व जो पुनः को धार्य की जाति हो नहीं पाती वह तत्त्व उस मृत शरीर के ही कारण कर्मों के नये-नये रूप से देने को है।"

कारण के बीखते में नहीं बाँधा जा सकता। उसकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के बारे में कोई निश्चित अनुमान लगाना असम्भव-सा ही है। प्रायः ऐसा कहा है कि एक ही परिस्थिति में वही एक ही माता-पिता की जोड़ी उत्पन्न करके विरोधी भावकरण की होती है। कदाचित् चरित्र की इसी विमर्शता के कारण उसकी परिभाषा हैते हुए अपने एक लेख 'प्लॉट और कैरेक्टर' के अन्त में प्रसिद्ध अमेरिकन मनोचक्र एबी ने हार मानते हुए कहा है चरित्र वह उपादान है जिसके गुणों (बर्तु) का अभी तक पता नहीं चल सका। चरित्र को परिभाषा में बाँधते हुए इसी लेख में उल्लेख माना है कि तथा-कथित 'भीतरी प्रकृति' वह धात्वा जो न जानी जा सकने वाली प्रतीत होती है ही चरित्र है—इससे न कुछ कम और न अधिक।^२

चरित्र की विभिन्न मनोवैज्ञानिक परिभाषाएँ

अन्तःकरण के उपयुक्त गठन को समझ लेने के बाद ऐसा प्रतीत होने लगता है कि चरित्र को परिभाषा में बाँध लेने के प्रयत्न में प्राधुनिक मनोविज्ञान अन्तःकरण को टटोल रहा है पर वह उसकी पकड़ में नहीं आ रहा। पारम्पर्य मनो-विज्ञान का मूल्यांकन करते हुए प्रोफेसर हॉकिंग ने प्राधुनिक मनोविज्ञान की इस असमर्थता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है।^{२१} वैक्यूयुगल ने चरित्र को प्रसारक भावार्थक एवं क्रियात्मक तत्त्वों का संयोजन माना है।^{२२} निश्चय ही चरित्र इन तत्त्वों के संयोजन मात्र से कुछ अधिक होगा। जैसा कि पी. बीनी रबा और वानी का संयोजन मात्र हमका नहीं। इन वस्तुओं के संयोजन से हमका बनाने की एक प्रक्रिया होती है और इस प्रक्रिया को जमाने वाला भी कोई होता है। वैक्यूयुगल ने चरित्र के तत्त्व को क्या बिये पर उनका संयोजन कैसे होता है, यह नहीं बताया। इनके प्रतिरिक्त क्रियात्मक तत्त्व धर्मात् कर्मिणियों की चरित्र का तत्त्व मानना भी विचारणीय हो

२. Lajos Egri, "Plot or Character" The Writers Book Harper & Bros New York, 1920 p. 100:

"What is a character? A factor whose virtues have not yet been discovered."

"the so-called inwardness' the seemingly unpredictable soul is nothing more nor less than character"

२१. W. E. Hocking, "Mind and Near Mind" Proceedings of the Sixth International Congress of Philosophy ed. E. B. Brightman; Longmans, London, 1927 p. 203 and 215:

"But the extant science or sciences of mind have presented us not the mind itself but substitutes for mind — Near-minds, we may call them The several 'Near-minds' of the scientific psychology have their worth and their actuality; but they have life only as organs of mind."

२२. अनुन चौरे काव्य, 'समय मनोविज्ञान' विविध धर्म, राजादेवकी पुस्तकालय, १९४१, पृ. ७२।

सकता है क्योंकि कमेंट्रियाँ चरित्र नहीं, चरित्र के प्रकाशन के साधन मात्र हैं। चरित्र की ऐसी ही एक समूची परिभाषा नाट्यकला की व्याख्या करते हुये बिलियम आर्चर ने भी अपनी पुस्तक 'प्लेमेकिंग ए मैयुअल गाइड टू ड्रामैटिक्स' में दी है प्रसारक, साधारणक और उत्तेजनात्मक घावों का सम्मिश्रण वा समूह।^{२३}

डा० रोबक के मतानुसार चरित्र जन्मजात मूल प्रवृत्त्यात्मक उत्तेजनाघों निम्न मात्रा एक सतत आवृत्त मनोवैज्ञानिक मुद्रा है जो एक व्यवस्थापक सिद्धांत के अनुसार बनता है।^{२४} रोबक द्वारा दी गई चरित्र की यह परिभाषा मनोविज्ञान की प्रवेष्टा नीतिशास्त्र के अधिक निकट प्रतीत होती है। जन्मजात मूल प्रवृत्त्यात्मक उत्तेजनाघों का निम्न चरित्र का स्वभाव नहीं^{२५} यह तो नीति समाज या सम्प्रदा की माँग है कि इन उत्तेजनाघों का दमन किया जाये। मन तो स्वभावतः बुद्धि के अनुशासन से मुक्त होकर इन प्रवृत्त्यात्मक उत्तेजनाघों को उनके प्रकृत रूप में बहने देना चाहता है परन्तु कार्य-सकार्य की निरुपेक्ष करने वाली व्यवसायात्मिका बुद्धि स्वयं और शान्त हो तो मन में निरर्थक बाधनाएँ उत्पन्न नहीं होती और उसकी प्रवृत्त्यात्मक उत्तेजनाएँ बही रहती हैं^{२६} और वह विफल नहीं पाता।

चरित्र की परिभाषा देते हुए अपने ग्रन्थ 'ह्यूमन नेचर इन इ मर्किंग' में डॉन ने कहा है कि क्रियाशील 'चैरैट'—यह चैरैट जो किसी न किसी सामाजिक परिस्थिति में बिकासोन्मुख रहता है—ही चरित्र है।^{२७} 'चैरैट' की व्याख्या करते हुए डॉन ने पहले ही कहा है कि चैरैट अपने आप को धनम समझने का एक क्षण मात्र है।^{२८} इस प्रकार 'चैरैट' ग्रहणकार का पर्याय हो जाता है। डॉन के अनुसार बिकासोन्मुख

२३ William Archer 'Playmaking: A Manual of Craftsmanship :

"A complex of intellectual, emotional and nervous habits.

२४ (क) Roback, "Character and Inhibition" Problems of Personality, G. M. Campbell, 1923, p. 117-118.

(ख) Roback, "The Psychology of Character" Routledge & Vogan, Paul-London, 2nd ed. 1933, p. 539.

"An enduring psychological disposition to inhibit initiative impulses in accordance with a regulative principle."

२५ श्रीमद्भगवद्गीता, ३।१३ :

सद्ग्रां वेष्टे सत्स्य बहुतेर्जनानपि ।

प्रवृत्ति कस्मिं नृपनि निग्रहः किं करिष्यति ॥

२६ 'मीमेटिफिकेशन', २।४१, ४४ तथा २। ४२

२७ Max Schoen, Human Nature in the Making The Wordsworth, Ltd., Sarvey 1947 p. 160

"Character is the self in action, in the process of cultivation in some social medium."

२८. Ibid. p. 163

"Self is a form of knowledge the knowledge of being different."

ग्रहण ही चरित्र है। पर क्या ग्रहण ही चरित्र माना जा सकता है? यह प्रश्न ही तो 'मेरे सेरे' का भाव-भाव है जिसकी उत्पत्ति मनुष्य भर्त्ता बुद्धि से होती है। जब बुद्धि न होगी और उसका व्यापार नहीं होगा तो जीव मोह-मद भ्रमना समझेगा किसे? वास्तव में विकास तो बुद्धि का होता है और जीव विमूढ़ होकर, ग्रहण में उसे अपना समझ बैठता है। इसीसे बुद्धि का समावेश आवश्यक है पर मन मज्जीर के बिना इन दोनों का व्यापार कैसे सकता है?

मानवाचरण का मूल प्रेरक, अन्तःकरण

इस प्रकार उपयुक्त परिभाषाओं में से कोई भी हमारी संतुष्टि नहीं कर पाती और हमें मानना पड़ता है कि बुद्धि ग्रहण और मन इन तीनों की सम्मिश्र प्रक्रिया अर्थात् अन्तःकरण से ही मनुष्य का विकास होता है। अन्तःकरण का विकास ही मनुष्य का विकास है। विकासोन्मुख अन्तःकरण ही मूल चरित्र है और किसी दाय विरोध की उसकी विकासवस्था है मनुष्य का व्यक्तित्व। प्रकृति के विकार होने के लिये उसके गुणों को धारण करने वाले अन्तःकरण के लक्ष्य अर्थात् बुद्धि ग्रहण और मन पूर्व कर्म के अनुसार, पूर्व परम्परागत या आनुवंशिक संस्कारों के कारण अथवा शिक्षा आदि अन्य कारणों से २६ कम या अधिक सात्विक राजस और तामस होकर उनका विकास करते हैं चरित्र का निर्माण करते हैं।

चरित्रचित्रण की कतिपय परिभाषाएँ

चरित्रचित्रण की परिभाषा देते हुए स्कॉट मेरेडिथ ने कहा है कि चरित्रचित्रण क्या के पात्रों की व्यक्तिगत तथा ग्यारी विशेषताओं अथवा उनके स्वभाव को प्रकाश में लाकर उन्हें एक दूसरे से भिन्न दिखाने की एक विधि है।^१ इस परिभाषा के मूल में ही नहीं मड़बड़ है। पात्रों को एक-दूसरे से भिन्न दिखाने से ही उनका चरित्र प्रकाश में आ जायगा यह समझना अममम है। वस्तुस्थिति तो यह है कि पात्रों का चरित्र ठीक इन से चित्रित होने से वे अपने आप ही एक-दूसरे से भिन्न होकर लगे जाते हैं। यदि पात्रों को एक-दूसरे से भिन्न दिखाना ही चरित्र-चित्रण है तो उनके लिये उनके रंग-रूप आकार-प्रकार, वेश-भूषा इत्यादि का चित्रण ही पर्याप्त होगा चाहिए। फिर उनके 'आपरे गुण और स्वभाव' को प्रकाश में लाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? हमने स्पष्ट है कि पात्रों को एक-दूसरे से ग्यारा दिखाना चरित्र-चित्रण का साम्य नहीं उसका साम्य तो उनके चरित्र या स्वभाव का प्रकाश है।

१. ए. ए. स्कॉट, 'लैंग्वेज' (मद्रास में), मद्रास यूनिवर्सिटी प्रकाशन वृत्त १९१८ पृष्ठ १४
'अन्तःकरण' अनुवाद, चरित्रचित्रण, संस्करण व चित्र-चित्रण के लिये मनुष्य के लक्षण हैं।

२. Scott Meredith, "Stuffing the Hollow-man — Characterisation Writing to Sell" Harper & Bros., New York, 1920 p. 6.

"Characterisation..... the method of distinguishing your story people from one another..... by revealing their individual and distinctive qualities or nature"

इस परिमाण में एक घीर बात भी विचारणीय है कि क्या पात्रों के केवल स्यारे मृग या स्वभाव के प्रकाश से उनका चरित्रचित्रण अप्रभुत घीर प्रभुत न रह जायेगा मनुष्यमात्र का मूक एक होने से उनमें भिन्नता होते हुए भी कुछ न कुछ समानता अवश्य रहती है बिटे न दिखाने से पात्रों के चरित्र के दृष्टान्तात्मिक हो जाने की सम्भावना रहती है। फरामित इसीलिये उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने कहा है कि 'सब पात्रानियों के चरित्र में बहुत कुछ समानताएँ होती हैं। भी कुछ विभिन्नताएँ होती हैं। यही, चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता—प्रतिप्रत्य में विप्रत्य और विप्रत्य में प्रतिप्रत्य—विज्ञाना उपन्यास का मुख्य कथम्प्य है' ^{११} जिससे बूक जाने पर उपन्यास के पात्रों पर जैविकियाँ उठने लगती हैं। अंग्रेजी उपन्यासकार चार्लस डिकन्स के उपन्यास 'म्यूच्युअल फ्रेंड्स' के पात्रों के सम्बन्ध में उपन्यासकार हैनरी जैम्स ने भी लयप्रम इसी आधार पर अपनी सिकायत प्रकट की थी। ^{१२}

इसी प्रकार चरित्र-चित्रण की व्याख्या करते हुए रॉबिन्सन ने कहा है कि संक्षेप में, 'चरित्रचित्रण' शब्द का अविग्रह है कहानी में लोगों (पात्रों) को पर्याप्त प्रतिमत्ता और स्वाभाविकता के साथ इस प्रकार चित्रित करना कि वे पाठकों के लिये सामान्य न रह कर पुस्तक के समस्त पात्रों से उभर जाएँ और कम से कम उस समय के लिये तो व्यक्तित्व धारण कर लें। ^{१३} पात्रों का इस प्रकार चित्रण कि वे व्यक्तित्व धारण कर, पाठकों की कल्पना में स्थायी होकर नाच उठें उनके विकास की विभिन्न अवस्थायों का प्रकाशन ही होगा। पर पात्रों का चरित्र विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक कम क्यों और कितने पहुँचा यह दिखाये बिना उपन्यास में चरित्र-चित्रण अप्रभुत रह जायेगा। लीट्जे के शब्दों में पात्रों के चरित्र का क्रमिक निर्माण ही उपन्यास की वास्तविक समस्या है। ^{१४}

उपन्यास में चरित्रचित्रण का समुचित स्वरूप

इसलिये, उपन्यासकार को अपने पात्र के अस्त-कस्त के सम्पूर्ण सम्यक् उसके

११ प्रेमचन्द, 'कुछ निबन्ध', सरस्वती प्रेस, बनारस, चौथे संस्करण, १९४६, पृष्ठ १८

१२ Henry James, "The Limitations of Dickens" *The Portals*, Henry James Viking Press, New York, 1931 p. 430

"The people (Dickens etc.) have nothing in common with each other except the fact that they have nothing in common with meeked at large."

१३ M. L. Robinson, *Writing for Young People*, Thomas Nelson New York, 1930, p. 11

"The characterization means briefly the setting of people in the story with a sufficient degree of visibility and plausibility so that they may for the readers emerge from the flat page as more than shadowy names, and possess, for the time at least the rudiments of personality"

१४ Haddon, *An Introduction to the Study of Literature* p. 147

"How shaping of character is the problem of novel" (Loring)

उसमें कुछ और बिरोधताएँ भी होंगी जो उसे काव्य से महाकाव्य बनाती हैं। महाकाव्य की धातिरिक्त बिरोधताओं का उल्लेख विरचनाधर ने 'साहित्यवपुः'^{११} में किया है। महाकाव्य की ये अनिवार्य बिरोधताएँ उपन्यास के लिए अनिवार्य न होते हुए भी, सम्भवता को छोड़कर, निषिद्ध नहीं हैं।

अपने प्रारम्भिक रूप में उपन्यास वर्तुनात्मक कविता का स्थानापन्न रहा होगा। गद्य-पद्य-युक्त निस्मयोत्पादक प्रारम्भिक उपन्यास इसी धोर स्पष्ट संकेत हैं। कदाचित् इसीलिए फ्रीस्टींग ने अपने उपन्यास 'जोसेफ एम्बरूज' को 'गद्य में लिखा हुआ एक सुबलित महाकाव्य' कहा था।^{१२} येष्ठ उपन्यास के सञ्चल बताते हुए प्रसिद्ध उपन्यासकार हार्बी ने भी कहा था कि एक प्रकार की काव्यमय रचना जो प्राचीन युग के प्रशस्त महाकाव्य नाटक या भाष्यायिका के निकटतम हो।^{१३} जेम्स जामस डी० एच० जॉर्ज बर्मीनिया बुल्क तथा हिन्दी में जयचंदर प्रसाद रायिका रामणप्रसाद सिंह अजय चौधरी कई उपन्यासकार गद्य में लिखते लिखते अमानक अपने आप को कविता करते हुए पाते हैं। इसका परिणाम यह नहीं कि वे सम्भवतः रचना करने समर्थ हैं बल्कि ऐसी रचना करने समर्थ हैं जो गद्य में होते हुए भी कविता के निकटतर होती है। उनके गद्य की रमणीयार्थ-प्रतिपादकता किसी प्रकार भी कविता की रमणीयता से कम नहीं होती। आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के विषय में तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि जब उपन्यासकार

११ विरचनाधर 'साहित्यवपुः' १।१७६।

उत्कण्ठो महाकाव्यं एतन्मो भावका रतः ।

सारां कविषु वाऽपि नीरोपायुत्कण्ठः ॥

एकस्मान्मनसं भूत्वा कुकृत्य महत्तपि वा ।

अथार वीर दमज्जममेरोऽपि रस इच्छते ।

इतिहासोत्तमं वृत्तकथनं वा सम्प्रदायवत् ।

कालरक्षणं कर्तुं सुतोऽप्येकं न कर्तुं शक्नुते ।

कविनिर्मितं पद्यार्थिनं सर्वत्र गुणकीर्तकम् ।

मदित्तस्य गान्धर्वीनां सर्वं प्रयत्निकम् इह ।

कवेषु चम्पक वा ज्ञाना भावकस्तेजसवन् वा ।

गामास्य सुतोऽप्येक-कथा सर्वनाम ॥

१२ Arnold Kettle, An Introduction to the English Novel, Vol. I :

"Fielding described Joseph Andrews' as a coarse epic poem in prose."

१३ Stephen Spender, "The Novel and Narrative Poetry" 'Penguin New Writing' Sept. 1942:

"Good fiction may be defined here as that kind of imaginative writing which lies nearest to the epic dramatic and narrative master-pieces of the past." (Thomas Hardy)

स्त्रुस बर्णनात्मकता से निकल कर मानस की अतिस गहराइयों में उतरने समता है और उसके पात्रों का अतनाप्रवाह (स्ट्रीम ऑव कान्सायनेस) समझ पड़ता है उपन्यास कविता के निकटतम पहुँच जाता है। पात्रों की एक साथ कई स्तरों पर अभिव्यक्ति के लिए औ धातुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है,^{७१} कविता आसम्भ उपयुक्त है^{७२} वह कविता छोड़ोबख भले ही न हो।

उपन्यास 'एपिक इन प्रोजे' नहीं—तो क्या महाकाव्य और उपन्यास के इन साम्य के आधार पर यह मानना होगा कि अभिव्यक्ति के प्रकारान्तर अथ तथा अथ के अतिरिक्त इनमें और कोई अन्तर है ही नहीं? क्या एलिजिय धादि कुछ भोगों के अनुसार यह मान लेना उपयुक्त होगा कि महाकाव्य पद्यमय उपन्यास (नाबेल इन बस)^{७३} है और उपन्यास पद्यमय महाकाव्य (एपिक इन प्रोजे) है? यदि इस कथन में कुछ भी सार है तो उपन्यास और महाकाव्य के तत्त्वों का स्वरूप एक-सा होना चाहिए पर वस्तुस्थिति इससे भिन्न है—विशेषतः चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में—और यह अकारण नहीं। बैम्स्टर ने 'एपिक' की परिभाषा करते हुए उसे और नायकों के पराक्रम का वर्णन करने वाली उच्च कोटि की कविता कहा है।^{७४} इस परिभाषा के अनुसार तथा विवचनाप द्वारा दिए गए महाकाव्य के लक्षणों में से एक 'सनाज्ज गुण कीर्तनम्'—के आधार पर महाकाव्य या 'एपिक' का उद्देश्य ठहरता है—वीरों के पराक्रम^{७५} का अतिरंजित वर्णन करके उन्हें महिमान्वित करना और साथ ही दुर्बलों की निन्दा भी करना 'चरित्रनिन्द्या बलादीनाम्'। इसलिए मानना होगा कि महाकाव्य का मूल आधार पर टिका है क्योंकि वास्तव में कोई भी मनुष्य सम्पूर्णतया आत्मिक या सम्पूर्णतया सामाजिक नहीं हो सकता। उसमें अन्तर एक और तम तीनों गुणों का मूलान्विक रूप में बने रहना अनिवार्य है। किन्तु मनुष्य में एक कुछ प्रगल्भनीय ही हो या सब कुछ निष्पत्तीय ही हो यह अस्पष्ट है।

इसके विपरीत उपन्यास की नींव अर्थार्थ जीवन है। इनरी जेम्स के शब्दों में उपन्यास के अस्तित्व का एकमात्र कारण यह है कि वह हमारे जीवन के चित्रण

७१ कान्सायनेस 'आधुनिक इंग्लिश और एपिकोज' कान्सायनेस १९२२।

७२ Stephen Spender 'The Novel and Narrative Poetry'।

"...It shows that poetry is really the medium most suited to such devices as the interior monologue and variations through the minds of several characters on a single theme"

७३ मिश्रकृतस्य अंग्रेजी 'हिंदी उपन्यास' सार्वभौम संस्करण सं० २०, पृष्ठ १।

७४ Webster American Standard Dictionary p. 111

"A poem of elevated character describing the exploits of heroes."

७५ इन्ने स चरित्रक कथा गुडरिड से गरी बटलर, बर्नर और शार्पस स भी है। इन्ने—संस्करण १९२५

का प्रयत्न करता है।^{३३} उपन्यास लोगों की मर्यादाओं से बना एक घर है। किसी पात्रको या नायक को महिमाश्रित करने या न करने का प्रयत्न उपन्यास में छूटा ही नहीं। कोई पात्र वैसा है उपन्यास उसे वैसा ही चित्रित करने का प्रयत्न करता है उपन्यास पात्रों की पराजयों को छतनी ही सम्ममता से चित्रित करता है चितनी सम्ममता है उनकी विषयों को उनके घबगुलों को उठना ही महत्त्व देता है चितना महत्त्व उनके दुखों को देता है, बल्कि कई बार यह विचार किए बिना कि यह उन की सफलता या असफलता यह उनको मनाजत चित्रित करने का प्रयत्न करने लगता है। इसलिए यह विचारणीय हो सकता है कि क्या 'पोबल' का होटी 'कंकाल' का किजय, 'सेक्टर एक जीवनी' का सेक्टर, 'अन्तिम आकांक्षा' का रामसात 'बहुत धर्म' का बैजमुय, 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस' की एमिलीज, याहि महाकाव्य के नायिक-नायिकाएँ बन सकते थे ? नहीं कदापि नहीं। उन्होंने ऐसे कौन से पराक्रम किये हैं उनमें ऐसे कौन से यात्यधिक प्रशंसनीय गुण हैं, जो उन्हें महाकाव्य के नायकत्व के अधिकारी बना देते ? पर वे अपने गुलाबपुल सहित अपनी सफलताओं-विफलताओं के साथ जो कुछ भी हैं, जैसे भी हैं उपन्यास-काल के समुच्चय हैं।

उपन्यास की नींव : जीवन की मर्यादाएँ—इसका समिप्राय यह नहीं कि उपन्यास में महाकाव्य के बीरोबात^{३४} नायक की व्यवहारता हा ही नहीं सकती। उपन्यास का नायक या कोई अन्य पात्र बीरोबात हो सकता है पर बीरोबात होना उसकी अनिवार्यता नहीं। ऐसी स्थिति में उपन्यास को मध्यम महाकाव्य (एपिक इन प्रोब) और महाकाव्य को मध्यम उपन्यास (नाबेल इन वर्थ)^{३५} कह कर उनके पारस्परिक अन्तर को मिटाने का प्रयत्न करना दोनों के प्रति धम्याम करना होगा। उपन्यास 'एपिक इन प्रोब' का-सा हो सकता और नहीं भी हो सकता। कोई उपन्यास मध्यम महाकाव्य प्रतीत होने लगे तो उसे महाकाव्य ही मान लेना उपयुक्त न होना क्योंकि स्तूल स्वरूप का साम्य हो जाने पर भी उनमें तात्त्विक अन्तर अ्यों का त्यों बना रहेगा। महाकाव्यकार की सारी उपस्था मानव-प्रकृति के अपरि वर्तनीय गुणों के उद्घाटन के लिए होती है जो मूलरूप में उसके अपने मानव में स्थित रहते हैं, पर उपन्यासकार देश-काल परिस्थिति तथा कार्य-कारण की परिधि से नहीं निकस पाता। इसीलिए महाकाव्य की प्रभावोत्पादकता देशकालासीत होती है पर उपन्यास के सम्बन्ध में यह पूर्णतया नहीं कहा जा सकता।

^{३३} Henry James "Art of Fiction", The Portable Henry James New York, 1931, p. 232.

^{३४} विद्वान, ललित दर्पण १९८८ :

बीरोबात

संविज्ञान समग्रचरित्रचित्रण महाकाव्य।

स्वैच्छिकगुणानो बीरोबातो र-मः कविः ॥

^{३५} मैक्सवेल, हिन्दी उपन्यास, पृ. ३

घण्टे तक एक वा अनेक पात्र रंगमंच पर घाफर कुछ-न-कुछ करते ही रहते हैं। क्या उनके क्रिया-कलाप में उनका चरित्र नहीं झलकता ?

रंगमंच पर आए हुए प्रत्येक पात्र का आकार प्रकार आचार-व्यवहार तथा कपोलकल्पन आदि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में उसके चरित्र का ही तो चित्रण करते हैं। यहाँ मैं ऐसा नहीं करते वहाँ नाटक में कार्य की एकता के भंग होने की सम्भावना नहीं रहती है। कार्य की एकता नाटक का प्राण है। नाटक में चरित्रचित्रण के महत्त्व को स्थापित करते हुए आर्थर जॉन्स ने तो यहाँ तक कह दिया कि किसी अभिनेय कृति में कथानक घटनाएँ और बातावरण जब तक कि वे चरित्रचित्रण से सम्बन्धित न हों अपेक्षाकृत प्रतीक्षित रहते हैं। उन्हें चरित्रचित्रण के विकास की एक कड़ी बनना चाहिए।^{१२} रंगमंच पर किया गया अभिनय यदि पात्रों के चरित्र पर प्रकाश नहीं डालता तो समझना चाहिए कि वह अपने मार्ग से भटक गया है। पात्रों से सम्बन्धित बन कर अपना मकसद पूरा करता है। नाटक में चरित्रचित्रण का स्थान निर्धारित करते हुए अपने मेक 'प्लॉट और कैरेक्टर' में एबी जे डीक ही लिखा है कि श्रेष्ठ नाटक उन पुरुषों की श्रेष्ठ है, जिनका जीवन घसीम था। कदाचित् उन्होंने अपने नाटक गस्तव सिरे से प्रारम्भ किए, पर वे पन-पन पर संचर्य करते पीछे हटते रहे जब तक कि उन्होंने अपनी रचना का आधार चरित्र को नहीं बना लिया चाहे उनके चेतन में यह बात न आई हो कि चरित्र ही एक ऐसा तत्व है जो नाटक की नींव हो सकता है।^{१३}

उपन्यासकार का एक मात्र साधन : दाय—प्राचीन आचार्यों ने दूर्योधन और धर्म नाम से साहित्य के जो दो मेक किए हैं^{१४} उनके अनुसार उपन्यास धर्मकाय के अंतर्गत है और नाटक दुष्काम्य के। उपन्यास को सुनने या पढ़ने से थोड़ा या पाठक पर वह सब-कुछ प्रकट हो जाता है जो उपन्यासकार उस तक पहुँचाना चाहता है पर नाटक को देखने या सुनने से वह सब प्रकाश में नहीं आता जो नाटककार व्यक्त करना चाहता है। यद्यपि उसके साथ-साथ अभिनय खेलने की भी आवश्यकता रहती है। नाटककार के संतुष्ट की अभिव्यक्ति नाटक के धर्मों और उसके

१२ Hudson, An Introduction to the Study of Literature p. 180 :

"Story and incidents and situation in the theatrical work are unless related to character comparatively uninteresting. They should only be another phase of development of characterization." (Henry Arthur Jones)

१३ Lejoi Egri "Plot or Character" The Writers Book p. 180 :

"The great plays came to us from men who had unlimited patience for work. Perhaps they started their plays at the wrong end but they fought themselves back inch by inch, until they made character the foundation of their work, although they may not have been objectively conscious that character is the only element that could serve as the foundation."

१४ विश्वनाथ 'सहित्य-पथ' पृष्ठ परिच्छेद, करिवा २७२ तथा २७३

"एवमप्यत्र धर्मैरेन पुनः काव्यं प्रियं यन्मूः ॥ २७२ ॥

अथ कोट्यध्यायं तन् कथायमपि द्विधा ॥ २७३ ॥

प्रतिमय दोनों में बँटी रहती है जिनके समन्वय में ही उसकी सम्पूर्णता निहित है। परन्तु उपन्यास अपने लिखित रूप में एक पूर्ण रचना है—अपने भाष में एक पूरा इति। वह सादेस सही निरपेक्ष है। उपन्यासकार अपने पाठकों तक जो कुछ पहुँचाना चाहता है उस दायों के रूप में डाल देता है। उपन्यास का कथामय तथा पात्र और उनके कथोपकथन ही नहीं उन पात्रों की बस-भूषा वस-भगिमा भाव विचार, विभिन्न वृत्त आदि तथा वे सब जो नाटक के अभिव्यक्ति-साधन हैं उपन्यास के दायों में निहित रहते हैं। इसीलिए उपन्यास का नाटक की भाँति अपने से असम किसी रंगमंच की आवश्यकता नहीं रहती उसकी रंगमंच शब्द-चित्र के रूप में उसके भीतर ही रहता है जिस पर प्रकट होने की पात्रों के साथ-साथ उपन्यासकार का भी स्वतन्त्रता रहती है। कदाचित् इसी कारण मेरियम कॉफ़र्ड ने उपन्यास को 'जैसी नाट्यमाला' (पाकेट पियेटर)^{५२} कहा है।

नाटककार की सीमा—उपन्यास और नाटक का यह तात्त्विक अन्तर उनके पात्रों के चरित्रचित्रण के स्वरूप में भी पर्याप्त अन्तर सा देना है। अपने पात्रों का स्रष्टा और कथाकार (नैरेटर) दोनों होने के कारण चरित्रचित्रण^{५३} के लिए जितनी सुविधाएँ उपन्यासकार को प्राप्त हैं वे सब नाटककार को उपलब्ध नहीं। नाटककार की स्थिति कुछ-कुछ बही है जो कथालेखिका की। वह स्रष्टा तो है पर रंगमंच पर प्रकट होकर अपनी सृष्टि की कहानी नहीं सुना सकता। इसीलिए, नाटक के पात्रों का स्वरूप उपन्यास के पात्रों से भिन्न हो जाता है। उपन्यास के पात्र साहित्य के पात्र हैं पर नाटक के पात्र वस्तु-जगत के व्यक्ति प्रतीत हों इसी में नाटक की सफलता है। परन्तु जगत् के व्यक्ति एक-दूसरे के लिए—अपने लिए भी तो—एक पहुँती हैं। जो उनका स्रष्टा है तथा उनका पूर्ण ज्ञाता है वह उनका परिचय नहीं करता और हमें एक-दूसरे के कथोपकथन आचार-व्यवहार आदि के आधार पर अनुमान लगाना पड़ता है जो सीमित तो होता ही है पर कई बार भ्रामक भी सिद्ध होता है। इसी प्रकार, नाटक में पात्रों की बस-भूषा और आचार-व्यवहार से उनका आचार-व्यवहार और कथोपकथन आदि से पात्रों के चरित्र की जितनी व्याख्या हो जाती है बही नाटक में चरित्रचित्रण की सीमा है। हमने अधिक कुछ कर सकने में नाटककार असमर्थ है। परन्तु उपन्यासकार जब इन सब साधनों के प्रयोग द्वारा भी अपने पात्रों का पूर्ण चित्रण नहीं कर पाता उनके बारे में अपनी जानकारी की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर पाता तो वह कथाकार के रूप में प्रकट होकर, प्रत्यक्ष सीमा द्वारा उन सभी को पूरा कर देता है। नाटककार जहाँ नाटकीय प्रणाली (डायरेक्ट मैथड) को ही अपना मत मानता है वहीं उपन्यासकार को प्रत्यक्ष प्रणाली (इन्फ़ॉर्मेटिव मैथड) के प्रयोग की भी स्वतन्त्रता रहती

^{५२} Radner: An Introduction to the Study of Literature p. 172.

^{५३} "The novel is, Mary Crawford once happily phrased it a 'pocket theatre'".

^{५४} Forster: Aspects of the Novel p. 51.

है। नाटककार को अपने पात्रों से असंग रह कर, उन्हें अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा स्वयं व्यक्त होने देना पड़ता है।

उपन्यासकार यह सब तो करता ही है इसके अतिरिक्त उनके हृदय में बैठ कर उनके संकल्प-विकल्प और भाव-विचार की व्याख्या और आलोचना करता हुआ अधिकारपूर्ण निर्णय भी देता चलता है। जैसे तो नाटककार भी अपने पात्रों के चरित्र की आलोचना दूसरे पात्रों के कथोपकथनों और उनकी प्रतिक्रियाओं के रूप में करता हुआ प्रकट रूप से अपना मत प्रकट कर देता है पर उसका वह मत एक पात्र के बारे में दूसरे पात्रों की आलोचनामात्र प्रतीत होने से उतना विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता जितना कि उपन्यासकार का मत। उपन्यासकार स्वानामात्र के कारण उसे ही पात्रों के बारे में अपनी जानकारी को प्रकट न करे, पर वह पाठकों को यह विस्मय दिला देता है कि वह अपने पात्रों के बारे में सब कुछ जानता है और यह भी कि यद्यपि उसके उपन्यास में उनकी पूरी व्याख्या नहीं की गयी पर वह की जा सकती है उसके पात्र पहेली नहीं व्याख्येय हैं। नाटककार वह प्रतीति बनाने में असमर्थ है क्योंकि नाटक में अभिनय के अभाव में चरित्रचित्रण असंभव रह जाता है और अभिनय की सफलता अभिनेताओं पर निर्भर करती है नाटककार पर नहीं। इसलिए नाटक में पात्रों का चरित्रचित्रण एक सीमा तक ही प्रकाश में आ सकता है और शेष के लिए दर्शकों को अनुमान से काम लेना पड़ता है। यह नाटककार की मजबूरी है नाट्यकला की सीमा है।

उपन्यासकार की महानता—यब तक जो कुछ कहा गया है उसका अभिप्राय यह नहीं कि नाटककार की अपेक्षा उपन्यासकार का काम सरल है। इसमें संदेह नहीं कि उपन्यासकार की स्वतन्त्रता नाटककार को उपलब्ध नहीं पर यह भी सत्य है कि रमरमकण्ठी जो सुविधाएँ नाटककार को सहज उपलब्ध हैं उनसे उपन्यासकार वंचित रह जाता है। नाटककार को अपनी रुचि और आकस्मिकता के अनुसार जो कुछ बना बनाया मिल जाता है वह उपन्यासकार को अपने परियम से बनाना पड़ता है। उर मत से रौंकर शिल्ल तक अपने पात्रों को गड़ना पड़ता है उनकी वेश-भूषा आकार प्रकार क्रिया-कलाप इत्यादि वह सब कुछ जो नाटककार को बना-बनाया मिल जाता है उसके लिए उपन्यासकार को अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इतना ही नहीं उसे अपने पात्रों की भीड़ा के लिए भीड़ा-स्वयं बनाना पड़ता है और उनके कथ के लिए कार्य-क्षेत्र भी। पात्रों का चर-गाँव उनका ऐत-यतिमात्र तथा गहर और उसके ठाठ-बाट से लेकर गर्त से डके हुए पर्वतों के शिखर और उनके भीचे कम-कम का नाप करती हुई जंचल मति सल्लियाँ आदि तक उसे न जाने क्या-क्या बनाना पड़ता है। पर उसकी कठिनाई यह नहीं कि उसे इतना कुछ बनाना पड़ता है। उसकी कठिनाई यह है कि उसे ये सब धस्तुएँ लफड़ी जूना मिट्टी से नहीं केवल पाषाणों द्वारा बनायी पड़ती हैं। पाषाणों द्वारा ही उसे इन सबको मूर्तरूप देना पड़ता है। ऐसा मूर्तरूप जो मूल मरतु की टफ़र का हो। अपने पात्रों के आकार-प्रकार, वेश भूषा बना देने से ही उसका काम

मरी बसता उसे उनके माय-विचार, संस्कार-विशेष आदि के विचार-विचार गीपन पड़ते हैं कि वे पात्र गरीब होकर उपन्यास के पन्नों से उमरकर पाठक के कमरा-बदलों के सामने प्रतिमान होकर नाच उठें।

उपन्यासकार को नाटककार की अपेक्षा परिधम तो अधिक अधिक करना पड़ता है पर इसके बदले में उसे जो स्वतंत्रता मिल जाती है वह अमूल्य है। उपन्यास के विचार-विचार के कारण और प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों प्रणालियों को अपनाते की उसे जो स्वतंत्रता है उसके कारण तथा समय और स्थान के प्रति उसकी उदासीनता साम्य होने के कारण उपन्यासकार में पाठक की एक अद्भुत शक्ति आ जाती है जो पात्रों के चरित्र का प्रत्यक्ष सफलता से विचार करने में उसे समर्थ बना देती है। अपने पात्रों के चरित्र के क्रमिक विकास का चित्रण वह जिसकी सफलता से कर पाता है उसमें उसकी सफलता नाटककार को कभी नहीं मिल सकती। अपने पात्रों के चरित्र के विकास की मुख्य-मुख्य अवस्थाओं को ही नाटककार भी संक्षेप पर लिख देता है पर उपन्यासकार की स्वतंत्रता के अभाव में तथा समय और स्थान की बाधों के कारण वह वह शक्ति रखने में असमर्थ रहता है कि उसके पात्र विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक कैसे पहुँचें हैं। नाटक में पात्रों का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में विकास प्रायः संक्षेप के बीजे प्रणाली में ही हुआ करता है क्योंकि पात्र जब पुनः संक्षेप पर प्रकट होते हैं तो वे विकास की अगली अवस्था तक पहुँच चुके होते हैं। उनका वह विकास अब क्यों और कैसे हुआ दोनों के लिए बहुत ही एक रहस्य रह जाता है। इनके विपरीत उपन्यासकार प्रायः पात्रों के मन का भ्रम-संशय-संशय-संशय की परिस्थिति परिस्थिति की उस पर पड़ने वाली छाप उस छाप के प्रति उसकी प्रतिक्रिया आदि का चित्रण करते हुए पात्रों या समझने-परिण के क्रमिक विकास का चित्रण करता रहता है। यद्यपि पढ़ने के उपायों में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिबोधर होती है पर पात्र के मनोवैज्ञानिक उपायों की या मुख्य-मुख्य ही पात्रों के चरित्र के क्रमिक विकास का चित्रण है।

उपन्यास और कहानी में चरित्रचित्रण

तार्किक धारणा—कहानी के पात्रों में उपन्यास-पात्रों की अपेक्षा अधिक धारणा होती है। "हमारी धारणा में उसे जीवन की धारणा और गीप-परा" कहा है और उसके चरित्र का एकाग्र-वर्णन यह माना है कि वह जीवन के चित्रण का प्रयत्न करता है। "यदि जीवन का चित्रण करने जीवन का चित्रण

८८. Richard Church "The Growth of the English Novel" p. 2.

८९. Henry James "The art of Fiction" "The art of Fiction" New York, 1911 p. 224

"A personal and direct impression of life"

९०. H. L. p. 231

ही उपन्यास के अस्तित्व का एकमात्र कारण है तो कहानी के अस्तित्व का मूल कारण यह है कि उपन्यास में किए गए जीवन के चित्रण को पढ़ने और पचाने के लिए समय चाहिए, जो पात्र के अनुष्ण के पास है नहीं। समय का अभाव पात्र के युग की समस्या है और 'कम से कम समय में अधिक से अधिक काम है पात्र के युग की मान'। साहित्य के क्षेत्र में इस माँग की पूर्ति का प्रयत्न है कहानी। कहानी की सबसे पहली और अनिवार्य विशेषता—उसके मनन के लिए पात्र बच्चे से बड़े बच्चे तक करें,^{६०} या वह एक ही बैठक में पढ़ी जा सके^{६१}—इसका सबसे प्रमाण है। अपनी विकास-यात्रा में कहानी ने कई रूप धारण किये अनेक संमिश्रों को अपनाया और छोड़ा पर उसकी यह विशेषता अक्षुण्ण रही।

कहानी और उपन्यास के इस मूल अंतर का सीधा प्रभाव उनके आकार पर पड़ा और कुछ लोगों को भ्रम हुआ कि कहानी और उपन्यास में आकार का ही तो भेद है। इस भ्रान्ति से एक और भ्रान्त धारणा फैली कि कहानी उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण है या कहानी उपन्यास का मधु रूप है और कहानी का विस्तृत रूप है उपन्यास। यह भ्रम यहीं तक नहीं रुका प्रस्तुत इस रूप में विकसित हुआ कि कहानी उपन्यास का आयात्री रूप है और यह अंततः उपन्यास का स्थान ग्रहण कर लेगी।^{६२} वस्तुतः कहानी न तो उपन्यास का आयात्री रूप है और न ही वह उपन्यास की स्थानापन्न हो सकती है क्योंकि कहानी 'कहानी' है और उपन्यास 'उपन्यास'। 'कम से कम समय में अधिक से अधिक काम' के सिद्धान्त पर चलने वाली कहानी के पास न उतना समय है और न उतना स्थान, जितना उपन्यास को सहज उपलब्ध है। कहानी के पास वह विस्तृत पट भी नहीं जो उपन्यास के पास है। इसलिए उपन्यास की भाँति समूचे जीवन का उसके विविध रंग-रूपों तथा माना प्रकार के दृष्टियों का चित्रण करने में कहानी असमर्थ है। वह समूचे जीवन का मधुर चित्र होकर उसके किसी अंग-विशेष का सरलीकरण है।^{६३} इसाबन्ध बोधी ने भी कहा है कि जीवन का एक माना परिस्थितियों के संघर्ष से उमटा-सीपा चतुर्ता रहता है। इस सुबह पक्ष की किसी विशेष परिस्थिति की स्वामाधिक गति को प्रस्तुत करने में ही कहानी की विशेषता है। कहानी और उपन्यास के इसी अंतर को

६० Hudson, *An Introduction to the Study of Literature* p. 227 :

"Short story is a narrative prose requiring from half an hour to one or two hours in its perusal. (Edgar Allan Poe)

६१ Ibid. p. 229 :

"Short story is a story that can be easily read at a single sitting.

६२ Hudson, *An Introduction to the Study of Literature* p. 226 :

"... it (short story) is the coming form of fiction and that ultimately it will replace the novel entirely."

६३ Bonnar, 'General Introduction to Stevenson's Stories' :

"The short story is not a transcript of life but a simplification of some side of life." (Stevenson)

स्पष्ट करते हुए एक बार जयजंकर प्रसार में कहा था कि धान्याधिक में तौल्य की भस्म का रस है। मान सीजिए धाप किसी तेज सवारी पर बम जा रहे हैं रास्ते में एक मोन-मटोल गिनु जैसे रहा है सुनरछा की मूर्ति उसकी भस्मक मिमने न मिमने भर में सवारी धापे निरस जाती है किन्तु उसकी ही भस्मक उसकी होनी है कि उसकी स्थानी देशा धापके धलपट पर धधित हो जाती है। यही काम कहानी भी करती है। इसी को बेरीयेन ने दूसरे पक्षों में इस प्रकार समझाया किया है उपन्यास एक मूर्ति है तो कहानी है एक उत्तमना^{१४}। उपन्यास में जीवन की समस्याओं की व्याख्या मिलती है और मिलता है समस्याओं का समाधान। कहानी में यह बात नहीं पाई जाती। कहानी एक प्रश्न को उठाती है किन्तु उसका उत्तर पूर्णरूप से नहीं देती। व्याख्या उपन्यास का प्राण है। व्यञ्जना (गर्भेष्टन) और प्रतिध्वनि (ईको) कहानी की जीवन रगतें हैं।^{१५}

कहानी में चरित्र के कमिक विकास का प्रभाव—इसलिए उपन्यास की यात्रा मानव के समस्त जीवन का चित्रण कहानीकार की सामर्थ्य से बाहर है। उपन्यासकार की सभी सुविधाएँ उसे प्राप्त होने पर भी चित्रपट की संकीर्णता उसके अत्यंत प्रयत्न पर संशोध की मोहर लगा देती है। पटना का बखन करना हो या पार्श्वों का चरित्र चित्रण बाधावरण की सृष्टि करती हो अपना किसी सिद्धान्त का निरूपण उसे बिलार और विरलेपण में न जाकर सांकेतिक रीती से ही अपना काम निष्कासना पड़ता है। इन मजबूरी के कारण कहानीकार अपने पार्श्वों के चरित्र का पूर्ण चित्रण तो कर ही नहीं सकता^{१६} पर जितने पर वह अपना ध्यान धधित करता है उसमें भी उसे बड़े संशोध से काम लेना पड़ता है। अपनी अनुविधायें होने पर भी अपनी चिन्ता उपन्यास के पार्श्वों का। इसीलिए अपने पार्श्वों की प्रभावोत्पत्ति को चुनते समय और उन्हें अनुकूल रीती में व्यक्त करते समय उसका प्रयत्न रहता है कि उनके पात्र पुस्तक के पार्श्वों से उभर कर, पाठकों के कल्पना जगुओं के सामने ऐसा मजीब व्यक्तित्व धारण करके नाक उठें कि उनका सामय-व्यक्त पर उसकी यही धाप पड़े बिना न रहे। इसीलिए अपने पार्श्वों के चरित्रचित्रण में उनका ध्यान प्रभावोत्पत्ति की ओर धधित रहता है उसकी चरित्र मजबूती गुत्थिपा के सुममने की ओर कम। कहानी के पार्श्वों के मध्य व्यक्तित्व के प्रभाव में समग्रतया 'बाह-बाह' कर उठने पर भी पाठक वह हावा नहीं कर सकता कि वह उनसे बारे से गह गुप्त

^{१४} Berry Pain "The Short Story" p. 45-46;
^{१५} "The novel is a satisfaction, the short story is a stimulant."

^{१६} राती।

^{१७} हेमक गुप्त मिश्रः

"कहानी में क्या किन्तु चित्रण की गुत्थिपा नहीं होनी। काल्पनिक और मूर्तों मनुष्य की वास्तविकता की वास्तविकता का एक मध्यम बिन्दु है।"

जानता है जबकि उपन्यास का पाठक ऐसा शायद कर भी सकता है। कहानीकार अपने पात्रों के चरित्र की कुछ एक विशेषताओं को ध्यान में रखकर, परिस्थिति विशेष में व्यक्ति उसके व्यक्तित्व को हमारे सामने सा बड़ा करता है पर वह यह नहीं बता पाता कि उसके पात्र ने वह व्यक्तित्व क्यों और कैसे धारण किया तथा व्यक्तित्व के विकास की एक समस्या से दूसरी समस्या तक वह क्यों और कैसे आया।

किसी व्यक्ति के स्वामात्रिक कथान विभिन्न परिस्थितियों की उसके मन पर पड़ने वाली छाप उन परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया तथा विभिन्न दृष्टिकोण व परिस्थितियों में उसकी मनोवृत्ति एवं भाव-व्यवहार देखे बिना उसे अच्छी तरह से जानने का शायद कैसे किया जा सकता है। अपने नित्य प्रति के जीवन में भी हम जब कभी किसी से मिलते हैं तो प्रथम भेंट में उसके बारे में सब कुछ नहीं कुछ ही समझ पाते हैं। हमारे मन पर प्रथम भेंट की छाप पड़ती प्रबल है पर उसे हम वहीं और अन्तिम नहीं मान सकते। प्रथम भेंट की छाप की अपारंप्रता और उपपन्नता को परखने के लिए हमें विभिन्न परिस्थितियों में होने वाली उस व्यक्ति की क्रिया प्रतिक्रिया की जांच करनी पड़ती है, पर जीवन को उसकी विविधता में दिखाना कहानी का विषय नहीं। वह अपने पाठकों को अपने अनुभवों की प्रतीक्षा में नहीं रख सकती। इस लिए, जहाँ उपन्यास की समस्या चरित्र का क्रमिक विकास है वहीं कहानी की समस्या है—व्यक्तित्व की झटकी दिखाकर प्रभाव उत्पन्न करना। कहानीकार अपने पात्रों के व्यक्तित्व के विविध रूप दिखाता है उनके चरित्र का क्रमिक विकास नहीं।^{१७} पर पात्रों के व्यक्तित्व के विविध रूप दिखाना उनके चारित्रिक परिवर्तन-मान को व्यक्त करना ही चरित्र-चित्रण नहीं चरित्र-चित्रण की सार्वभौमता चरित्र निर्माण के तत्त्वों और उसकी प्रक्रिया को दिखाने में है। विकासमान चरित्र के उद्घाटन में है। बीसा कि हम पहले बता चुके हैं चरित्र विकसनीय है प्रतिक्षण-प्रतिपक्ष उसका विकास होता रहता है। चरित्र के समूचे धारा प्रवाह को दिखाना ही चरित्रचित्रण है। चरित्र के विकास की किसी विशेषावस्था अर्थात् व्यक्तित्व^{१८} को उस धाराप्रवाह से जुस्तू भर जल के समान विकास कर दिखाना, उस धारा की प्रवाहशीलता के महत्त्व के प्रति भाँसे भूँद सेना है। इस लिए, चरित्र चित्रण के वास्तविक धर्म में कहानी में चरित्रचित्रण नहीं पाया जाता क्योंकि विस्तार और विस्फेपण के बिना चरित्र-चित्रण ही नहीं सकता और कहानीकार संक्षेपक है विस्फेपक नहीं। संक्षेप सीसी उसका प्राण है।

१७. Haden, An Introduction to the Study of Literature p. 236-37 :

"In short story character is revealed not developed."

१८. Max Scheler "The Human Nature in the Making" p. 159 :

"Character is the self in action the self in the process of cultivation in some social medium, the product of which process at a particular stage of achievement is personality"

कहानी की सीमा—अपने पात्रों का अष्टा धीर बसता दोनों होने का कारण कहानीकार भी उपन्यासकार की तरह उनका पूर्ण ज्ञाता होता है और उपन्यासकार की भाँति उसे भी उनका आकार प्रकार आचार-विचार आदि चित्रित करने के लिए नाटकीय और बिस्मयकारी दोनों रीतियों को जब जिसकी आवश्यकता हो अपनाने की स्वतन्त्रता रहती है। पर कहानी के चित्रपट की संकीर्णता उसे दोनों में से किसी एक का भी प्रयुक्त-प्रामाण्य नहीं उठाते देती। इसीलिए कहानी में बहुत धीर कथोपकथन होते हुए भी उसमें वास्तविक घर्ष में न तो संवाद मिलते हैं और न बिस्मयपूर्ण घटना व्याख्या ही जिनके माध्यम से उपन्यासकार वह विश्वास दिला देता है कि वह अपने पात्रों का पूर्ण ज्ञाता है और यह भी कि यद्यपि उसके पात्रों की पूरी व्याख्या नहीं की गई, पर वह की जा सकती है। कहानीकार यह प्रतीति करा करने में असमर्थ है। उसके पात्रों की दुकहता बनी रहती है क्योंकि वह उनके चरित्र का कमिक विकास और उसके कारण नहीं दिखा पाता। यह उसकी मजबूरी है कहानी-कला की सीमा है। इसलिए ऐसे पात्र जो हमारी कल्पना में साकार होकर स्मृति में प्रसर हो जाते हैं वे उपन्यास के पात्र होते हैं कहानी के नहीं।

उपन्यास और जीवनी में चरित्रचित्रण

उपन्यास के भविष्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए प्रेमचन्द ने एक बार कहा था "माजी उपन्यास जीवन चरित्र होगा चाहे किसी बड़े धारमी का हो या छोटे धारमी का। उसकी मुट्ठाई-बढ़ाई का कसना उन कठिनाइयों से किया जाएगा जिन पर उसने विषय पाई है।"^{११} इसी भाव को दूसरे शब्दों में रखते हुए विनियम बीट ने कहा है कि "छोटे उपन्यास किसी कल्पित व्यक्ति की जीवनी होता है और जब जीवनी पूरी हो चुकती है वह व्यक्ति कल्पित नहीं रहता बल्कि अपने अष्टा की भाँति यथार्थ बन जाता है।"^{१२} अपना पहला उपन्यास 'देवर' जीवनी की रीति में लिखकर और उसे 'एक जीवनी' की संज्ञा देकर प्रत्येक ने मानो उपर्युक्त दोनों बचनों को सार्वक सिद्ध कर दिया हो। कहना न हीमा कि 'देवर' एक जीवनी की बरगमा हिन्दी के श्रेष्ठतम उपन्यासों में होती है।

जीवन में पात्रों का 'प्रोफ़ेसिटव' चित्रण—अपने विकसित रूप में उपन्यास और जीवनी दोनों के एक-दूसरे के निष्ठ नहीं जाने पर भी उनका सांख्यिक सम्यक स्पष्ट बना रहता है। उनकी रीति में समानता होने पर भी उनकी आत्मा में भूरा

११ प्रेमचन्द 'दुसरे निचर' (भाग १), लगभगी प्रेस, बनारस, वर्ष १९४१ १४२१।

१२ William E. Harrel, "The Living Character" (The Writer Hand Book p. 120.

"A good piece of fiction is the biography of an imaginary person—and when the biography is complete the person is no longer imaginary he is as real as his creator."

बना रहता है। उपन्यास का आधार होता है कल्पित व्यक्ति का या, ऐतिहासिक उपन्यासों में वस्तुजगत के व्यक्ति का कल्पित जीवन पर जीवन का आधार होता है—वस्तु जगत के व्यक्ति का यथार्थ जीवन। कल्पना उपन्यास का प्राण है पर जीवनी के लिए वह पाठक है। उपन्यासकार अपने पात्रों का या उनके कल्पित जीवन का स्रष्टा और कथाकार दोनों होता है, पर जीवनीकार अपने पात्रों का कथाकार ही होता है। स्रष्टा नहीं। उसके पात्रों का स्रष्टा कोई और है जो कथाकार नहीं। अपने पात्रों का स्रष्टा होने के नाते उपन्यासकार उनका पूर्ण ज्ञाता होता है। अपने पात्रों के संक्षय-विक्षय उनके भाव-विचार, उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया आदि कुछ भी उससे छिपा नहीं रहता। जीवनीकार अपने नायक या अन्य पात्रों के सम्बन्ध में प्रयत्न करने पर भी सब कुछ नहीं जान पाता। अपने पात्रों के प्रति जीवनीकार की जानकारी की एक सीमा होती है। वह उनके क्रिया-कलापों के उनके आधार-व्यवहार के पीछे नहीं झाँक सकता उसकी पहुँच अपने पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के भीतरी कारणों तक नहीं होती। वह जो कुछ प्रकट में देखता है उसके आधार पर भीतरी कारणों का अनुमान लगाता है।

प्रत्येक मनुष्य के दो रूप होते हैं एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। उस का साकार-प्रकार, उसका साकार-विचार अर्थात् उसकी कर्मशियों की समस्त निष्पत्ति व्यक्त होती है पर किसी कार्य को करने से पहले उसके अन्तःकरण का सम्मान उसके भाव और विचार, उसकी इच्छाएँ और वासनाएँ आदि जिनको वह अवयव अथवा प्रतीकमय प्रकट नहीं होने देता या जो प्रयत्न करने पर भी प्रकट नहीं हो पाती उसके अव्यक्त रूप के अन्तर्गत हैं। क्योंकि उपन्यास किसी एक या अनेक कल्पित व्यक्तियों का जीवन या यथार्थ व्यक्तियों का कल्पित जीवन होता है वह कल्पना द्वारा अपने पात्रों में व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों का निर्माण कर सता पर कल्पना इतिहासकार और जीवनीकार, दोनों के लिए, वजित है। वे मनुष्य के अपने पात्रों के व्यक्त रूप में ही पढ़ते रह जाते हैं। व्यक्त यथावत ही उनके लिए सब कुछ है और वह जो दृष्टि की धोड़ में छिपा रहता है, जो अव्यक्त यथार्थ है जिसे प्रकाश में लाना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य होता है।^१ इतिहास और जीवनी की पहुँच से बाहर है। क्योंकि उपन्यासकार अपने पात्रों का पूर्ण ज्ञाता होने से उनके चरित्र के विकास की प्रत्येक बिधा और बधा से भरी प्रकार परिचित होता है उसे उनके विकास का कोई भी रूप अस्वाभाविक और अकारण नहीं सीखता। अपने पात्रों में प्रत्येक परिचर्जन के उनके पास ठोस कारण रहते हैं। उपन्यास में अकारण कुछ नहीं होता और वह कथाकार होने के नाते सब-कुछ अपने पाठकों पर प्रकट कर देता है।

१. Popular Aspects of the Novel p. 43 :

"The hidden life is by definition hidden. The hidden life that appears in external signs is hidden no longer. And it is the function of the novelist to reveal the hidden life at its source,

पाठकों के लिए उगाड़ नाम गारण-बंधा नहीं बने रहने के उनके चरित्रों पर घातक प्रभाव पड़ता है। पर, इनके विपरीत जीवनीकार बाह्य कारणों तक ही सीमित रहने से अपने पात्रों के चरित्रिक विकास के भीतरी कारणों की नहीं पड़ड़ पाठा घोर बहुधा उनके चरित्रिक परिवर्तनों की व्याख्या के प्रयत्न में भाग्यवाद की दृष्टि सेने के लिए विवश हो जाता है। पर उपन्यास में कुछ भी सीमाय या दुर्भाग्य स नहीं होता। कुछ भी अचानक नहीं होता बीधता। उपन्यास में जो कुछ भी होता है अनिवार्य होता बीधता है। इस सम्बन्ध में डॉ. च. घालोचक एमन को उद्धृत करना अनुचित न होय। उपन्यास घीर इतिहास के घन्तर को स्पष्ट करते हुए उनमें कहा है—इतिहास बाह्य कारणों पर बल देने के कारण भाग्य प्रधान बन जाता है जबकि उपन्यास में भाग्यवाद का नाम नहीं रहता वहाँ सब-कुछ का घाघार मानव-स्वभाव होता है घीर उसमें सब-कुछ सामिप्राय होता है घाघेय नुर्धं घुसीबत तक भी।^१

जीवनी के पात्र : एक घ्यूली—पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए उपन्यासकार घीर जीवनीकार के सामग्री संकलन घीर उसके प्रयोग में भी घन्तर रहता है। अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रारम्भ करने के लिए उपन्यासकार को वस्तु-व्यय के व्यक्तियों से केवल उतनी सामग्री लेनी होती है जितनी से वह कल्पना की उद्धान से सके। वस्तु व्यय के व्यक्तियों के सम्बन्ध में वह सब कुछ जानने का प्रयास नहीं करता। वह किसी व्यक्ति से उसका घाकार लेता है घीर किसी से उसका प्रकार किसी की क्रिया लेता है घीर किसी की प्रतिक्रिया किसी का भाव लेता है घीर किसी का विकास घीर कल्पना की घुची से उनमें संकल्प घीर विचर्य इच्छाघो घीर वासनाघों के रम भर कर एक घाकार घीर सजीव घृति बना दावता है जो सहर में ही पाठकों के हृदय-मटन पर अपनी घमिड घाप घोड जाती है। जीवनीकार का चरित्र-चित्रण का डम इससे घिम होता है। वह अपने पात्रों की जो वस्तु-व्यय के व्यक्ति होते हैं घुरी घुरी जानकारी प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करता है। उसके जीवन में घटित हुई प्रत्येक घटना को उस घटना के घूमये पर पड़ने वाले प्रभाव को घीर उसके प्रति उनकी प्रतिक्रिया की घीर न जाने किस रिम को संभोने के लिए वह प्रयत्नघीन रहता है। वह अपने पात्रों का रैगा प्रतिरैगा मयाउय चित्रण करना चाहता है जिस विधि का वासन उपन्यास में चरित्र-चित्रण की विधयता का कारण बन जाता है।^२

इस प्रकार जीवनीकार अपने पात्रों के व्यक्त रूप का जिस घंग में वह घरगा

(१) Allah Systems des Récits p. 314-315 :

"History with its emphasis on external causes is dominated by the notion of fatality whereas there is no fatality in the novel there every thing is founded on human nature, and the dominating feeling is for existence where everything is intentional, even passion and remorse even rivalry" (Trans. by Forster)

(२) Hobsbawm An Introduction to the Study of Literature, p. 116.

कर पाता है उसी में उसके चरित्र के प्रतिबिम्ब का पकड़ने की कोशिश करता है और जो प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष में है उसे अनुमान से जानना चाहता है। पर अनुमान तो अनुमान ही है। अनुमान के आधार पर की गई पात्रों के चरित्र की व्याख्या न तो सत्य सिद्ध होती है और न ही वह पाठकों को प्रतीति कर सकने में सफल होती है। इसलिए इतना कठोर परिश्रम-साध्य होने पर भी जीवनी के पात्रों का चरित्र चित्रण पाठकों के हृदय-मंदिर पर इतनी गहरी छाप नहीं बना पाता जिसकी उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण क्योंकि इतना प्रयत्न करने पर भी जीवनी के पात्रों की पूरी-पूरी व्याख्या नहीं हो पाती वे किसी न किसी सीमा तक एक पहेली बने रहते हैं। उपन्यासों के पात्रों का गुप्त से गुप्त जीवन भी व्यक्त हो जाता है या समय धाने पर प्रकट हो जाता है पर इतिहास और जीवनी के पात्रों का गुप्त जीवन व्यक्त नहीं हो पाता और वे एक पहेली बने रहते हैं।^१

जीवनी में कार्य-कारण की परम्परा सिविल—क्योंकि उपन्यास में कुछ भी प्रकाश नहीं होता और पात्रों के आर्थिक परिवर्तन उनके पीछी कारणों के परिणामस्वरूप होते दिखाई देते हैं इसलिए उनमें कार्य-कारण का सम्बन्ध रहता है। उसके पात्रों का प्रत्येक कार्य कुछ व्यक्त या अव्यक्त कारणों से संभावित होता रहता है। वे व्यक्त या अव्यक्त कारण ही उसके चरित्र के विकास तथा विकास की दिशा और दशा पर नियंत्रण रखते हैं उसका सत्य निर्धारित करते हैं और उसे धीरे-धीरे उस सत्य की ओर लिए बढ़ते हैं। पर जीवनी में ऐसा नहीं होता। वस्तु-जगत के व्यक्ति होने से उनका जीवन हमारे जीवन की भाँति ही चलता है। हमारे साथ प्रायः ऐसा कुछ घटित होता रहता है जिसका कारण हम प्रयत्न करने पर भी नहीं जान पाते। हम कहाँ क्यों और कैसे जा रहे हैं, यह हमारी समझ में आता ही नहीं। हमारे चरित्र का विकास किस दिशा में हो रहा है इसका हमें कुछ पता नहीं रहता। जिस प्रकार हमारा जीवन और चरित्र संश्लेषित रहता है, उसी प्रकार जीवनी के पात्रों का भी। जीवनी के पात्र भी संश्लेषित रूप से बढ़ते जाते हैं उनके चरित्र के विकास पर जीवनीकार का कोई कानू नहीं रहता, बल्कि वह उनका जीवनकार नहीं केवल जीवनीकार ही है। पर उपन्यास में ऐसा नहीं होता। उपन्यास के पात्रों के आर्थिक विकास की प्रत्येक दिशा और दशा पूर्व व्यक्त कारणों के अनुक्रम और स्वाभाविक होती है, सामग्रिक होती है और उपन्यास के पात्र जीवनी के पात्रों की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित प्रतीत होते हैं।

जीवनी के सभी पात्र ठोस-वस्तु-जगत के व्यक्ति होते हैं। इसलिए यहाँ

1. Forster, Aspects of the Novel p. 62.

"Fictional characters are those whose secret lives are visible or might be visible but people in history or biography are those whose secret lives are invisible."

वस्तु-जगत के व्यक्तियों और अधीन्यासिक पात्रों के अन्तर को स्पष्ट कर देना धारासंचित न होगा।

वस्तु-जगत के व्यक्तियों और उपन्यास-जगत के पात्रों में अन्तर

धारासंचित (इन्टरमिट्टेंट) जीवन—अधीन्यासिक पात्र सजीव और स्वाभाविक होते हुए भी वस्तु-जगत के व्यक्तियों से कई प्रकार से भिन्न होते हैं। वस्तु-जगत के व्यक्ति जब तक जीवित रहते हैं तब तक उन्हें लगातार इस जगत की रचना-रचना के प्रभावित मंचों में से किसी न किसी पर खेसते ही रहना पड़ता है। वे अधीन्यासिक के लिए बौद्ध-भूषण कर रहे हों या स्वाभ्यासिक हों। सैत के मंदिर में उद्यान-भूषण कर रहे हों या घाट पर सेटे सी रहे हों उनका जीवन समता नहीं। उनकी अधीन्यासिकी निरन्तर रहना नहीं जानती। बिना रके उन्हें जीवनपर्यन्त पुटे रहना पड़ता है। पर उपन्यास जगत में केवल एक ही रोमरंभ^१ २ रहता है जिस पर किसी समय विशेष में केवल बड़ी पात्र धाते हैं जिसका प्रकट होना उस समय धारमय प्रारम्भ होता है। निश्चित समय में अपना काम समाप्त करके वे पात्र मंच से उतर जाते हैं और तब तक के लिए मृत्यु रहते हैं, मरे रहते हैं जब तक कि पुन मंच पर उनकी प्रारम्भिकता न पड़े।

उपन्यास-जगत के पात्र मंच में ही मंच पर या धार्य और जीवनपर्यन्त उस पर डटे रहें यह धारमयक नहीं। उपन्यास के मंच पर वे तब तक नहीं जाते जाते जब तक कि उपन्यास-जगत में उनकी धारमयकता न पड़े धार ही उपन्यास में पड़ती बार प्रकट होने से पहले उन्हें अपने जीवन के पण्डित-जीम बर्ष किसी धारात लोक में बिजाने पड़ें। इसी प्रकार उपन्यास-जगत में अकल्प न रहने पर वे पुन मंच पर नहीं जाते उनके मरने में बाड़े धारी बीच बर्ष पड़े हों। परन्तु वस्तु जगत के व्यक्ति का जो काम से लेकर मृत्यु तक इसी जगत में रहना पड़ता है। इस जगत को उनकी प्रकृत हो या न हो उन्हें बर्ष पड़े ही रहना होता है।^३ ४ इसी अन्तर को स्पष्ट करते हुए ई० एम० फ्रांस्टर ने सुन्दर व्यंग्योक्ति की है उपन्यास में पात्र का धारमयक मनुष्यों की भाँति नहीं। धारसंचित की भाँति होता है। उपन्यास में जब बड़ी कोई बर्षा प्रकट होता है तो ऐसा लगता है मानो किसी ने उस दूर दूर धारा देखा हो। 'दिनिबरी विमान के बार एक उच्छेद पात्र जाकर उस उच्छेद लाता है और पात्रों को दिगा देता है। तबकबात् उस तब तक क तिते 'कोल्ट स्टोरेज में रण

1. 2. Hudson An Introduction to the Study of Literature p 179

3. 4. Robert Liddell, A Treatise on the Novel Jonathan Cape London 1949 p. 91.

"... life and even as a continuous existence whereas a character in a fiction does not exist except at such times when he appears on the scene."

दिया जाता है जब तक कि उपन्यास के कार्य में उसकी सहायता की पुनः आवश्यकता न पड़े।”

कुटूहलसोडीपक जीवन—हमारे अपने जीवन में दिन और रातों ही नहीं कई-कई बड़े व्यर्थ बीत जाते हैं और हम कोई ऐसा कार्य नहीं कर पाते जो उत्प्रेरणीय या कुटूहलसोडीपक हो पर किसी पात्र को उपन्यास के प्रबंध पर प्रकट होने की तब तक अनुमति नहीं दी जाती जब तक कि यह निश्चय न हो पाये कि प्रकट होकर वह कोई विशेष कार्य करेगा। अन्यथा कार्य की एकता भंग हो जाने पर पात्र उपन्यास-जगत में भटकते फिरेंगे और उसकी सारी व्यवस्था को क्षिन्न-भिन्न कर देंगे।

सोहेल्य विना-कमाप—जन्म और मरण के समय हमारी अनुमति क्या होती है इसका ज्ञान हमें अनुमान से या दूसरों से सुनी-सुनाई बातों के आधार पर होता है। हमें इस अनुमति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रहता क्योंकि इन अनुमति के समय हमारी अभिव्यक्ति सीख हो गई होती है और जब तक हममें अभिव्यक्ति करने की सामर्थ्य आ पाती है तब तक हम उन्हें जून चुके होते हैं। पर उपन्यासकार एक साब जपटा और कथाकार दोनों होने के कारण अपने पात्रों को बड़ी अनुमति दया सकता है और करता है जो परिस्थिति विशेष में आवश्यक हो। आवश्यकतानुसार, उसका पात्र मृत्यु-सैन्धा पर पड़ा अपने जीवनव्यापी कृत्यों पर रो सकता है या अपने विगत जीवन पर गर्व करता हुआ शान्ति-धुर्बक मर सकता है। इसी प्रकार पात्रों के जीवन-मरण का प्रयोग उपन्यास में कभी कथानक को बढ़ाने और कभी छेदने के लिए दिया जाता है पर वस्तु जगत के किसी व्यक्ति के जन्म-मरण से वह जगत न तो सिमटता है और न फैलता है। मानव-जीवन में उसकी सीमा जन्म-मरण के परिमित आहार निद्रा भय मैथुन भी उसकी महत्वपूर्ण मयार्थताएँ हैं। पर इन परिस्थितियों में वस्तु-जगत के व्यक्ति की अनुमति और उपमागिता से औपन्यासिक पात्रों की अनुमति और उपमागिता भिन्न होती है। उपन्यास के पात्रों का जीवन बरना बूझ मिटाने के लिए नहीं किसी और प्रयोजन से होता है। जीवन करते समय वे किसी रमणी के सम्पर्क वाद्य में उसका बाएं या उसमें मिठा हुआ बिजला पाएँ। भोजन का सम्बन्ध उनके देह से नहीं उपन्यास के कथानक से होता है। उपन्यास में निद्रा का प्रयोग भी पात्रों को विधाम दिखाने के उद्देश्य से नहीं अपितु उन्हें कोई स्वप्न दिखा कर उनके अभिव्यक्ति की धोर सज्जत करने या चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए होता है। उपन्यास में स्त्री पात्र और पुरुष पात्र का मेल संतानोत्पत्ति के लिए नहीं उनका चरित्र विकास दिखाने के लिए या किसी भनीवैज्ञानिक सिद्धान्त की व्याख्या के लिए होता है। इसीलिए, 'संका' समस्या पर औपन्यासिक पात्र जितने केन्द्रित रहते हैं वस्तु जगत के प्राणी उतने नहीं, पात्रों को मानो खाने-कमाने की न सुधि हो और न आवश्यकता।

निश्चित जीवन—उपवासिक पात्रों का जीवन हमारे जीवन की धेरा-धधिक नियमित होता है। उनका विकास प्रायः किसी ऐसी प्रक्रिया से होता है जो सर्वसंगत हो या सामाजी से सम्बन्धी हो सके। उनके माथ और बिचार एक-एक बार दूसरे किसी कम विशेष से विकसित होत-पसते हैं। वे एकदम से नहीं मर जाते और न ही अकारण अट्टहास में पड़ सकते हैं। वास्तव में उनके जीवन में कुछ भी अकारण या अचानक नहीं होता। हमारी जीवन-नीति धारा के बहाव में उठती गिरती निरन्तर बहती पसती है। वह उस धारा की रूपा पर है। उसका अपना कोई मध्य नहीं। पर उपवास के पात्रों की जीवन-नीति का एक विशेष मध्य रहता है जिसकी धोर प्रत्यक्ष व परोक्ष में उसका चालन होता रहता है।

पात्र अत्यन्त गहरी—वस्तु-जगत् का ज्ञान एक पहेली है। इस संसार में कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि वह किसी दूसरे को पूर्ण रूप से जानता है। यदि कोई ऐसा दावा करता भी है तो वह घोषा सिद्ध हो जाता है क्योंकि ऐसा दावा करने वाला हमारा सप्टा नहीं होता—सप्टा ही अपनी सृष्टि को पूर्णरूपेण जाना करता है—और जो हमारा सप्टा है वह मीन है, उसने उछ बताया नहीं तो फिर वह व्यक्ति पूर्ण ज्ञाता बना कैसे? इसी लिए हम अपने निकटतम सम्बन्धियों के लिए—यहाँ तक कि अपने लिए भी—एक पहेली बने रहते हैं। परन्तु उपवास के पात्र पहेली नहीं बने रहते। पाठकों पर उनका साध रहस्य खुल जाता है क्योंकि उपवासकार जो उन पात्रों का सप्टा है उनकी जड़-जड़ से परिचित है वही सप्टा कार (नैरेटर) बन कर उनका रहस्योद्घाटन करने लग जाता है। सप्टा और वस्तु दोनों का उपवासकार में एकीकरण हो जाने से उपवास के पात्र पाठकों के लिए अज्ञेय नहीं बने रहते। उनके जीवन का प्रत्येक मोड़ और उनके चारों ओर मध्य के मध्य हैं। स्थानाभाव के कारण उपवासकार अपने पात्रों के सम्बन्ध में सब कुछ न भी बता पाए तो भी वह पाठकों को यह विश्वास दिला देता है कि उगम पात्र और उनके विकास की प्रत्येक बिधा ज्ञेय है उनके बारे में अज्ञेय कुछ नहीं।¹

(ख) औपन्यासिक पात्रों के शास्त्रीय रूप

पात्र

औपन्यासिक पात्र—वस्तुजगत के व्यक्तियों और औपन्यासिक पात्रों में सम्बन्ध
—पात्र कथन संख्या और परिधि ।

पात्रों के भेदोपभेद

कथानक की दृष्टि से

प्रधान पात्र—गौण पात्र

प्रधान पात्रों के भेद नायक-नायिका—प्रतिनायक-प्रतिनायिका—पताका
नायक पताका-नायिका—बिह्वपक ।

गौण पात्र—गौण पात्रों की सहाय्यता—कथानक को पति देना—बाता
वरण की सृष्टि करना—बातावरण में परिवर्तन लाना—अन्य पात्रों का
चरित्र-प्रकाशन ।

चरित्र-विकास की दृष्टि से

स्थिर (स्टैटिक)

विकासशील (डिनेटिक) पात्र

औपन्यासिक पात्र

उपन्यास के पात्रों की परिभाषा करते हुए फॉर्स्टर लिखता है : मातृमार्मि व्यक्ति करता हुआ उपन्यासकार कुछ एक सख्त मूर्तिप्राय बड़ डालता है। फिर उनके साथ नाम और भिन्न आड़ता है, उन्हें धनुषबाण प्रदान करता है, उनसे उदारता-विग्रहों में बात चीत करवाता है और कदाचित् उनसे एकसार व्यवहार भी करवाता है—ये सख्त मूर्तिप्राय ही उपन्यास के पात्र हैं।¹¹¹ यहाँ फॉर्स्टर पात्रों की उपन्यास क कथामय से प्रत्यक्ष करके देखा हुआ प्रतीत होता है। उपन्यास के पात्र तभीय सख्त मूर्तिप्राय हो होते हैं पर ऐसी सख्त-मूर्तिप्राय नहीं जो स्वतन्त्र और निरपेक्ष हों। उन सब में एकसूत्रता होती है और वह एकसूत्रता है कथामय की।

कथामय उपन्यास का एक धनिकार्थ तत्त्व है जो एकसूत्र में विरोध हुई विभिन्न घटनाओं की माना है। पर वह घटना क्या जो किसी प्राणी के साथ न घटी हो। यद्यपि वस्तु-वस्तु में ऐसी अनक घटनाएँ होती रहती हैं जिनका उस वस्तु के प्राणियों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता जिनकी उन्हें जानकारी तक नहीं होती फिर भी उपन्यास जगत में ऐसी कोई घटना घटित नहीं हो सकती जिसका उस वस्तु के किसी प्राणी से किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध न हो। जिनके साथ औपन्यासिक घटनाएँ घटित होती हैं यद्यपि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्धित होती हैं वो उनमें विकास पाते हैं तथा उन्हें विकास देते हैं वे प्राणी मनुष्य हों या मनुष्येतर, उपन्यास के पात्र बन जाते हैं। वह कभी मनुष्येतर प्राणी मनुष्य की धारि उपन्यास के बाहर उसके कथामय की भाँति बढ़ाते हैं या किसी अन्य पात्र के परिचय का कोई धर्म प्रमाण में माने का साधन बनते हैं या वे छोटे या बृहत् के रूप में होते हुए भी मनुष्य के समाज संवेदनशील होते हैं मानो कोई गुना और बढ़ा मनुष्य पात्र ही।

¹¹¹ Forster, *Aspects of the Novel* p. 41

"The novelist... makes up a number of word-masses roughly describing himself, gives them names and then assigns them places in the novel and causes them to speak by the use of inverted commas and perhaps to behave consistently. These word masses are his characters."

वस्तु-जगत के व्यक्तियों और औपन्यासिक पात्रों में सम्बन्ध

वस्तु-जगत के व्यक्तियों और उपन्यास के पात्रों में भ्रमर होते हुए भी यह कहना अनुचित होमा कि औपन्यासिक पात्र कोरे कल्पित होते हैं। कोई भी पात्र पूर्णरूपेण कल्पित नहीं हो सकता, उसका आधार किसी न किसी रूप तथा संघ में वस्तु-जगत का कोई एक या अनेक व्यक्ति होते हैं। यह तो हो सकता है कि किसी पात्र का आधार कोई जीवित व्यक्ति न होकर किसी अन्य रचना का कोई पात्र हो पर अन्ततः उस प्रेरक पात्र का आधार वस्तु-जगत का कोई एक या अनेक व्यक्ति अवश्य रहे होंगे। उपन्यास मानव-जीवन का चित्र है। उसके अस्तित्व का कारण यह है कि वह मानव-जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। वस्तु-जगत के मानव के जिस जीवन की व्याख्या करने के लिए उपन्यास में पात्रों की व्यवस्था होती है उससे पात्रों का ठीक भी सम्बन्ध न हो यह कैसे हो सकता है? पर, हाँ कोई पात्र किसी जीवित व्यक्ति की हूबहु नकल करे, यह आवश्यक नहीं। शायद ही कोई पात्र किसी जीवित व्यक्ति का यथार्थ रूप होता होगा।

प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के लिए—अपने लिये भी तो—अज्ञेय बना रहता है। उपन्यासकार मनुष्य ही तो है। वह उस जीवित व्यक्ति को, जो उसके पात्र का आधार है, कभी पूर्णरूपेण जान सका होगा या असम्भव है। जब तक मूल व्यक्ति उपन्यासकार के लिए पूर्णतया ज्ञेय न हो तब तक उपन्यासकार उसकी यथार्थ प्रतिकृति बना सकने का दावा कैसे कर सकता है? यह उसकी नहीं मनुष्यमान की सीमा है। जब भी कभी किसी उपन्यासकार ने अपने पात्र के रूप में किसी जीवित व्यक्ति की यथार्थ प्रतिकृति बनाने का प्रयत्न किया, वह अपने इस प्रयास में तो असफल हुआ ही अपने उपन्यास का भी असफल बना बैठा। हमें लेखन के इस कक्ष में जरा भी धृतिमयोजित प्रतीत नहीं होती कि पात्रों के सजीव चित्रण का सबसे कम सफलतादायक उपाय यह है कि उनके रूप में किसी जीवित व्यक्ति का यथार्थ रेखा-अतिरेखा चित्रण किया जाए।^{११३} औपन्यासिक पात्र वस्तु-जगत के व्यक्तियों द्वारा प्रेरित तो होता है, पर उनकी पूरी नकल नहीं होता। उपन्यासकार एक या अनेक जीवित व्यक्तियों से उनका उनके प्रकार, गुणगुण स्वभाव आदि का बही कुछ लेता है जिसकी उसे आवश्यकता होती है। अपने लिये प्रति के जीवन में सम्पर्क में आने वाले या पूर्व-परिचित व्यक्तियों में से वह किसी का मुख से लेता है और किसी का शरीर किसी का स्वास्थ्य से लेता है और किसी का स्वभाव किसी के गुण से लेता है और किसी के व्यवहार। उन सब को जोड़कर वह एक पात्र रच डालता है जिसे कल्पना की कुँबी से बोझा हजर से और बोझा उबर से धुँकर सजीवता प्रदान

११३ Hudson An Introduction to the Study of Literature p. 148.

"As will be found that, as a rule a set and formal description, given item by item, is (as Leasing showed in Lookson) one of the least successful ways of making a character live before us."

कर देता है। उसका पात्र अभी व कुछ-न-कुछ संतोष है पर अपने को किसी क्रिमी का नहीं मानता।^{११४}

पात्र-व्ययन : संक्षेप और परिधि

कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही अपने अधिक बहुमुख तथा सामाजिक होते हैं कि एक बार कोई उनके सम्पर्क में आया कि उसके उनके सम्बन्ध बन गये। ऐसे व्यक्तियों का परिचय-क्षेत्र बहुत व्यापक होता है पर एक साव धनेक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हुए भी कुछ-गुरु के प्रति उनका विशेष सम्मान होता है। समाज के किसी सदस्य से मिलने-जुलने पर संशोधन रखते हुए भी कुछ-एक से मिलने पर उन्हें विशेष प्रशस्ति होती है और उनके साथ उठने-बैठने माने-जाने बोलने-बसने में वे अपने आपको अधिक प्रवृत्तिस्व पाते हैं। दूसरी प्रकार के व्यक्ति ऐसे होते हैं जिसका परिचय-क्षेत्र बहुत सीमित होता है, जो धनेक बार सम्पर्क में आने पर भी दूसरों से घुस मिल नहीं पाते किन्तु मिल बनने और बनाने में ढेर लगती है। उनके मित्रों की संख्या कम होती है, पर वे मिलने भी हों होने पसिन्द ही।

वही बात उपन्यासकारों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। कई उपन्यासकारों का परिचय इतना व्यापक है और अनुभूति इतनी तीव्र कि उनके पसिन्द परिचय वाले तो दूर, एक बार भी जो उनके सम्पर्क में आया वह उनके उपन्यासों की पढ़ के बाहर न जा सका। इसके विपरीत कई उपन्यासकार अपने पात्र एक सीमित क्षेत्र में ही चुनते हैं पर एक बार वे जिस क्षेत्र को अपना लेते हैं उसका कोना कोना ध्यान पारते हैं। उदाहरणार्थ प्रमचन्द को लें। उनका चुनाव-क्षेत्र इतना व्यापक है कि किसान और कमीशर, मजदूर और मिल मालिक बमक और बकसर, बाणदास और पण्डित बकीस और प्रोफेसर से लेकर बैरवा और पवित्रा विषया और शरबा माता और बिनाता तक समाज के सम्पर्क में आने वाले प्रायः सब प्रकार के लोग उनके उपन्यासों में मिल जाते हैं। दूसरी ओर बीनेग्र हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों के पात्र प्रायः बुद्धिजीवी मध्यवर्ग से ही चुने हैं।

व्यापक-क्षेत्र अपनाते वाले उपन्यासकारों की कवि सब प्रकार के पात्रों के चित्रण में एक-सी खूबी ही अपना उनका चरित्र-चित्रण के एक-सी सम्यक्ता तथा सफलता से कर पाते हैं यह बात नहीं। उन सब की अपनी-पानी सीमाएँ होती हैं। शरद्व प्रदान करने पर भी कई प्रकार के पात्रों का चित्रण के उनके महान् स्थाया चित्र रूप में नहीं कर सकते पर कुछ-एक प्रकार के पात्रों के चित्रण में वे अपने निजहस्त होते हैं कि अनायास ही वे पात्र उपन्यास के मुख्य पात्रों से उभरकर

११४ Robert Liddell "Treatise on the Novel" p. 91.
"Of course there must be beginning to every conception but as much change seems to take place in it at once that almost anything comes to serve the purpose—a face of a stranger a face in a portrait, almost a face in the fire." Max Crompton Barnett.

पात्रों के कल्पना-सौक में साकार होकर माध उठते हैं। ऐसे पात्रों को छूते ही उमड़ी-सेकनी भमरझुट हो जाती है। समाज के विविध प्रकार के व्यक्तियों के जीवन और उनकी दैनिक समस्याओं में रुचि रखने पर भी यह मामला पढ़ेका प्रेमचन्द की प्रतिभा अपने पूर्ण जीवन में अभी निखरती है जब वह निम्नमध्यम वर्ग घरवा कृषक वर्ग का चित्रण करते हैं। उनके घरवा पात्र इन्हीं दो वर्गों में से लिए गये हैं।^{११५} पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को सिखे अपने एक पात्र में उन्होंने इस बात को स्वयं स्वीकार किया है 'किसी ने अभी तक समाज के किसी विशेष वर्ग का विशेष रूप से अध्ययन नहीं किया। उह ने किया, मगर बहक पड़े। मैंने कृषक समाज को लिया मगर समाज कितने ही ऐसे समाज पड़े हैं, जिन पर रोचनी की जरूरत है।'^{११६} शिक्षित नागरिकों के चित्रण में प्रेमचन्द कभी उतने सफल न हो पाये जितने अशिक्षित ग्रामीणों के चित्रण में। मगर के पड़े सिखे पात्रों को जब कभी उन्होंने छुआ है उनके प्रति श्रद्धा नहीं कर सके। उसके विपरीत बुद्धावनसाह बर्मा के उपन्यासों के प्रधान पात्र मध्यमवर्गीय इतिहास से सम्बन्धित शिक्षित नागरिक ही हैं।^{११७} उसमें भी उनकी घरवा कृतियाँ हैं—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में चित्रित उनकी नायिकाएँ। उग्र समाज द्वारा प्रताड़ित तथा बहिष्कृत समाज के विविध वर्गों के प्रति उदासीन व्यक्तियों के चरित्रांकन में ही मस्त रहे। शैलेन्द्र की कला का समकार भी उनकी नायिकाओं के सूक्ष्म मनोविस्लेषण में मिलता है। यक्षपास की दृष्टि यदि धोपित नर-नारियों पर टिकी है तो भोजन की सजावट और गृहवादी व्यक्तियों पर।

इस प्रकार देखते हैं कि उपन्यासकार के चुनाव-क्षेत्र की व्यापकता उसके उपन्यासों में पात्रों की विविधता और उनके चित्रण में उसकी उन्नतता से प्रायः उसकी रुचि की व्यापकता उसकी अनुभूति की गहनता और उसकी चरित्र-चित्रण कला की सामर्थ्य या पता चल जाता है।

पात्रों के भेदोपभेद

कथानक की दृष्टि से

उपन्यास के कथानक से उनके सम्बन्ध की घनिष्ठता के आधार पर पात्रों के दो भेद किए जा सकते हैं। १ प्रधान पात्र तथा २ गौण पात्र। प्रधान पात्र वे होते हैं जिनके माध्य से तथा चरित्र के विकास से उपन्यास का कथानक मुख्य रूप

११५ इन्द्रनाथ मदन 'प्रेमकन्द' एक निवेदन" पृष्ठ ४।

११६ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को प्रेमचन्द का लिख हुआ १ जून १९१० का एक पत्र ('मई मास में प्रकाशित)।

११७ डा० रामचन्द्र वर्मा 'बुद्धावनसाह बर्मा की उन्नत-वृत्ता' "विचार दर्शन" पृष्ठ २९।

"प्रेमकन्द की तरह वर्मा जी भी एक चरित्र सचित्र चित्रण हैं। प्रेमचन्द ने यह चरित्र चरित्र चरित्रों के जीवन से निर्धारित किया है और वर्मा जी ने शिष्ट शिष्ट भौतिक साधनों से।"

उ बँपा रहता है जो कथानक को गति देते रहते हैं तथा उससे विकास पाते रहते हैं। जिन पात्रों से उपन्यास की कथा मुख्य रूप से सम्बन्धित नहीं होती तथा जिनका समावेश साधन के रूप में होता है, वे गीण पात्र कहलाते हैं। गीण पात्र कथानक को बढ़ावा देने प्रधान पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने उन पर टीका टिप्पणी करने इत्यादि के लिए रखे जाते हैं। इनका औपन्यासिक जीवन उनके लिए नहीं दूसरों के लिए होता है पर उनका यह आत्मोत्सर्ग अपनी हृष्टता से भी उपन्यासकार की आनन्दकला-श्रुति के लिए होता है।

प्रधान पात्रों के भेद

कथानक की दृष्टि से प्रधान पात्रों के साधारणतया चार भेद लिए जाते हैं १ नायक-नायिका २ प्रतिनायक-प्रतिनायिका ३ पक्षीक नायक-पक्षीक नायिका तथा ४ बिहूपक।

नायक—विद्वत्पात्र ने 'साहित्यदर्पण' में नायक के लक्षण इस प्रकार दिये हैं

एवापी वृत्ति कुतूहल मुभीको स्ववीर्यनोत्साही।

यसोऽनुरक्तलोकास्तेषो रसगन्धर्वीमन्त्रास्तथा ॥^{११८}

यद्यपि साह उपन्यास के नायक में उपप्लुक्त सभी गुणों का होना अनिवार्य नहीं समझा जाता तो भी उसका 'नेता' होना अनिवार्य-सा ही है। 'नायक' अर्थात् नेता शब्द संस्कृत के 'नी' धातु से बना है जिसका अर्थ है—'ले जाना'। पुरुष पात्रों में सबप्रधान पात्र को आरम्भ से लेकर अंत तक उपन्यास को—घीर उसके साथ ही पाठकों के ध्यान को—अपने लक्ष्य की ओर लिए बढ़ता है जिसका लक्ष्य ही उपन्यास का मर्म होगा है जिसको वेग्न मानकर उपन्यास—घीर उसके सभी लक्ष्य—पूराते हैं गुणात् उपन्यास में जो कर्म का उपभोग्यता होता है और दुःखान् उपन्यास में जिसके प्रति सबसे अधिक सहानुभूति उत्पन्न पड़ती है वही उपन्यास का नायक होता है।

नायक के भेद—नाटक का विवेचन करते हुए भरतृज ने साधारणों के तीन घीर दानि के आधार पर नायक के चार भेद लिए हैं—१ भीरोत्तम २ भीरोत्तम ३ भीरमन्त्र तथा ४ भीरप्रामाद^{११९} घीर फिर इनमें से प्रत्येक की चार चार भेदियाँ की हैं—(१) दानि (२) पथ (३) दण घीर (४) अमृत^{१२०}

घात्र जब नाटक के लिए भी इन प्रकार का वर्गीकरण साम्य नहीं उपन्यासों के नायकों को—विशेषतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के नायकों को—इन प्रकार वर्गी में बाँटना तो घीर भी सरासामानि प्रतीत होगा, क्योंकि उनके पात्र निरंतर विचार

११८ विद्वत्पात्र 'साहित्यदर्पण' दृष्टि रसदेव १९६१ पृष्ठ ३।

११९ विद्वत्पात्र 'साहित्यदर्पण' दृष्टि रसदेव १९६१ पृष्ठ ३।

१२० वही ३ पृष्ठ ३।

मान रहते हैं और जगका भरिय नबीन बिसाएँ ग्रहण करता रहता है जब कि इस बर्गीकरण की नींव में ही यह भाव निहित है कि मानव का विकास कुछ-एक मरी तुम्ही बिसाओं में ही हो सकता है। और फिर, यह भी तो विचारणीय हो सकता है कि क्या एक ही व्यक्ति विभिन्न देश, काल और परिस्थितियों में उपयुक्त सब बिसाएँ नहीं ग्रहण कर सकता ? किसी मनुष्य में न तो कुछ ही कुछ होते हैं और न दोष ही दोष। मनुष्य गुणानुसूतों का विकास स्वयं है, इस तथ्य के प्रति उपयुक्त बर्गीकरण उपासीन है।

नायिका—नायिका के समयमय बही लक्षण हैं जो नायक के। अन्तर केवल इतना है कि वहाँ नायक सर्वप्रधान पुरुष पात्र होता है वहाँ नायिका सर्वप्रधाना स्त्री पात्र। सामान्यतः उपन्यास के नायक की प्रेयसी व्यवसाय पत्नी ही नायिका कहलाती है पर ऐसा होना अनिवार्य नहीं। प्रत्येक उपन्यास में नायक और नायिका दोनों का होना अनिवार्य हो यह भी नहीं। किसी उपन्यास में नायक और नायिका दोनों भी हो सकते हैं और केवल नायक या केवल नायिका भी। 'रंजमुनि' में नायक ही है, नायिका नहीं। 'झंसी की रानी' 'त्याग-पत्र', 'विध्या' आदि में नायिका ही है, नायक नहीं। नायक-प्रधान उपन्यास के नायक की पत्नी का नायिका होना अनिवार्य नहीं, और न ही नायिका-प्रधान उपन्यास की नायिका के पति का नायक होना। 'गोबान' के नायक हुरी की पत्नी बनिया को नायिका नहीं कहा जा सकता और न ही 'निर्मला' 'विदसी', 'कल्याणी' आदि उपन्यासों की नायिकाओं के पतियों को नायक। हाँ यह धारण्यक है कि जिस उपन्यास में नायक तथा नायिका दोनों हों वहाँ उनमें सत्य की एकता हो।

संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों में नायिका का वर्णन बड़े विस्तार से हुआ है। उनमें नायिकाओं के अनेक भेदोपभेद मिलते हैं, पर उन्हें यहाँ देना धारण्यक नहीं क्योंकि उपन्यास में नायिकाओं का विकास किसी प्रकार की सीमाओं में बँधकर नहीं हुआ है।

प्रतिनायक-प्रतिनायिका—नायक की सहाय-साप्ति में सबसे अधिक बाधा उपस्थित करने वाले पुरुष पात्र को प्रतिनायक और नायिका के मार्ग में सबसे अधिक प्रतिरोध करने वाली स्त्री पात्र को प्रतिनायिका कहते हैं। प्रतिनायक के लक्षण हैं—
हुए विद्वान्नाथ ने 'साहित्य-दर्पण' में लिखा है कि वह बीरोद्धत पापाशय तथा व्यसनी होता है।^{१११} उन्होंने प्रतिनायक में बीरोद्धत नायक के सभी गुण—कपटता, प्रवृत्ता, लज्जता, झूठकार, धारमगौरव धारमस्माया^{११२}—सो माने ही हैं और उनके अतिरिक्त^{११३} उसका पापी और व्यसनी होना भी माना है। इस प्रकार, बीरोद्धत

^{१११} विद्वान्नाथ, 'साहित्य-दर्पण', तुलसी चरित्रचित्रण १६३वाँ श्लोक।

^{११२} वही ६६वाँ श्लोक।

^{११३} वही, १०० के पुटोर्ग में की गई १६३वें श्लोक की टीका।

(क) प्रतिनायकमह बीरोद्धत इति। बीरोद्धत —

'अकार' शब्दानीं नायक लक्षण प्रत्युक्तः।

नायक और प्रतिनायक में बड़ा गुरुत्व प्रत्यक्ष रह जाता है कि भीराठल नायक में 'तो' प्रबल होते हुए भी उसकी प्रकृति पाप की ओर नहीं होती पर प्रतिनायक प्रत्यक्ष प्रतिनायिका स्वार्थसिद्धि के लिए सत्य और प्रत्यक्ष के तथा पाप और पुण्य के भेद को भिटा देते हैं।

वही यह उत्प्रेक्षणीय है कि जिस प्रकार प्रत्येक प्रकार के नायक में भीराठल का होना अनिवार्य समझा गया है उसी प्रकार प्रतिनायक में भी पैम और दुष्टता का होना आवश्यक माना गया है। प्रतिनायक नायक की टक्कर का पात्र होता है। सकल और साधनों में वह नायक से स्थूल नहीं पड़ता बल्कि विरोधपूर्ण दुष्टता और पक्षपातकारिता में नायक को पात देने में समर्थ होता है। एक बार तो वह अपने प्रयत्नों में समय-समय हो गया होता है कि प्रथमिक उसकी पाल तुम जाती है और उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है। नायक के परित्र विकास में प्रतिनायक का विरोध हाथ होता है। नायक के मार्ग में वह जितना सबल अवरोध पैदा करता है उमे पार करने में नायक को उतना ही अधिक संघर्ष करना पड़ता है। नायक को जितना अधिक संघर्ष करना पड़ेगा उतना अधिक उसका चरित्र बिखरेगा। वही बात प्रतिनायका के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

पताकानायक पताकानायिका—पताकानायक को पीठमर्द भी कहते हैं क्योंकि वह नायक की पीठ ठोंकता रहता है और उसके अनुग्रह बातावरण बनाने में लगा रहता है। यह प्राक् प्रासंगिक कथा का नायक होता है, नायक की ही प्रकृति बाता पर गुलों में उससे कम।^{११२} इसका अपना कोई स्वतन्त्र सत्य नहीं होता। यह नायक के ही कार्य-व्यापार में योग देता रहता है और उसकी सत्य प्रकृति में उदात्त बनता है।

विरोधक—उपन्यास में साधुनिक उपन्यास में विरोधक, प्राक् कोरे विरोधक पात्र नहीं मिलते। वही वही भी इनका समावेश हुआ है अन्य साधारण पात्रों की भाँति साधन के रूप में ही हुआ है। ऐसे पात्र उपन्यास को केवल मीठा होने से ही नहीं बचाते बल्कि अपने हीराण व्यंजनों द्वारा अन्य पात्रों पर टीका-टिप्पणी करने, नायक-नायिका की उद्देश्य पूर्ति में प्रवेश रूप से योग देने समय-समय पर प्रथमिक के दूरे हुए व्यंजनों को भित्ताने आदि का काम भी करते रहते हैं। उपन्यास में इनकी स्थिति गौण पात्रों से भिन्न नहीं बही जा सकती।

गौण पात्र

साधारणिक कथा से नायक-नायिका पताका नायक-पताकानायिका प्रति नायक प्रतिनायिका की अपेक्षा कम सम्बन्ध रखने वाले पात्रों को गौण-पात्र कहा जाता है।

११४ डॉ. 'परोक्ष' परोक्ष, 'वर्णन' वर्णन।

११२ विरोधक 'गौण-पात्र' का ही वर्णन है, अन्य नहीं।

पौष पात्रों की उपादेयता

उपन्यास में गौण पात्रों का स्थान चाहे प्रधान न हो पर उपन्यास के लिए उनकी उपादेयता किसी प्रकार भी कम नहीं मानी जा सकती। अक्सर विशेष पर, जिनके लिए इनका समावेश किया जाता है इनका महत्त्व और प्रभाव नायक हस्तादि प्रमुख पात्रों से किसी प्रकार कम नहीं होता। इनमें और प्रधान पात्रों में अन्तर यह है कि उपन्यास के कथानक का इनके जीवन से सीधा सम्बन्ध नहीं होता और न ही वे उपन्यास-जगत् के स्थायी सदस्य बन पाते हैं। उपन्यास में इनका समावेश किसी कार्य-विशेष के लिए होता है जिसे समाप्त करके वे चुपके से बाहर सरक जाते हैं, पाठकों को उनके निकलने का पता नहीं चलता।

उपन्यास में गौण पात्रों का समावेश प्रायः निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर होता है—

(क) कथानक को पति देना—कई बार गौण पात्रों का समावेश किसी गवीय घटना को बटित करके या किसी पूर्ण बटित घटना की सूचना देकर कथानक को आगे बढ़ाने के लिए किया जाता है। 'निर्मला' में प्रेमचन्द ने एक अत्यन्त गौण पात्र बर माध से समूचे कथानक को बटित देने का काम बड़े सुन्दर ढंग से किया है। निर्मला के पिता उदयमानुभास उसकी माँ कल्याणी से अलग होकर बाकी रात के समय सफरते हुए गंगा की ओर चले, इस विचार से कि वहाँ जाकर नदी किनारे अपने कपड़े छोड़ दूँ और पर नहीं चौंके, जिससे यह प्रेम चंस बाप कि मैं डूब गया और कल्याणी खूब पछताए। रास्ते में उन्हें कथानक एक बरमादा मिल गया जिस उन्होंने तीन साल पहले बना दिखाई की बरमादा ने बचसा लेने का ठीक मौका जानकर साठी के एक ही प्रहार से उनकी कपाम किया कर ही और स्वयं भाग गया। उड़ने बाब उपन्यास भर में उस बरमादा के पुनः दर्शन नहीं होते पर उसके एक ही काम—उदयमानुभास की हत्या—ने निर्मला को 'निर्मला' बना दिया।

(ख) बातावरण में परिवर्तन लाना—जब कभी उपन्यास के किसी स्थान विशेष पर बातावरण इतना गम्भीर और अचञ्चलपूर्ण हो उठे कि पाठकों का दिल बँटने लगे या कोई हो या अधिक पात्र किसी दार्शनिक गुल्मी को मुलम्माने में स्वयं इतने उत्तम जायें कि पाठक ठजने लगे तब उपन्यासकार किसी ऐसे पात्र का प्ररट कर देता है जो जो बातावरण की सभी अचञ्चल या गम्भीरता को कम करके उध रोचक बना दे।

'निर्मला' में मोटेचम छात्री का प्रयोग पाठकों का मनोरंजन करके निर्मला की पहली संगीनी छूट जाने के अचञ्चल को कम करने के लिए तथा इसी प्रकार के अन्य स्थलों के लिए विद्रुपक के रूप में हुआ है। इसी प्रकार अरुण ने 'नर्म रात' में मायक अपमोहन के मन को दूसरी ओर लगाने के लिए कवि बाठक और दुस्सा का प्रयोग किया है।

(ब) वास्तविकता की सृष्टि करना—कई बार उपन्यासकार को किसी स्थान पर केवल वातावरण की सृष्टि के लिए ही बनेक पात्रों का समूह इकट्ठा करना पड़ जाता है। उस समय उन पात्रों का व्यक्तिगत रूप में कोई काम नहीं होता उन्हें सामूहिक रूप में प्रकट होकर वातावरण का निर्माण ही करना होता है। उदाहरणार्थ 'मृगयणी' में जब राजा मानसिंह अधिकार खेदने मृगयणी के बाँध पहुँचते हैं उस समय उपन्यासकार गोप भर के नर-नारियों को उपन्यास के पात्र बनाकर उनके राजा रानी की आरती उतरवाता है। इसी प्रकार उनके चिह्न के समान हँकारों हस्रादि को इकट्ठा कर लेता है।

(ग) ध्वन्य पात्रों का चरित्र प्रकाशन—यौस पात्रों का प्रयोग बहुधा प्रभाव पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने के लिए होता है। 'मृगयणी' में मजदूर परिवार का सनातन राजा मानसिंह की प्रभावसत्ता दिखाने के लिए किया गया है। वह रात में बेग बसकर देखा करता था कि उसके राज्य में कोई कुली तो नहीं। चौखर एक बीबनी में शाय सभी पात्रों का प्रयोग भावक खेद का अधिक विकास दिखाने के लिए हुआ है। केवल ध्वनि का प्रभाव माना जा सकता है क्योंकि उसके अपने विकास-तन्त्र भी उपन्यास में मात्र-तन्त्र बिखरे पड़े हैं।

पात्रों के भेद चरित्र-विकास की दृष्टि से

चरित्र के विकास की दृष्टि से उपन्यास में प्रामाणिक प्रसार के पात्र दृष्टिगोचर होते हैं। एक वे जिन पर उनके घास-पास के वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और प्रारम्भ से लेकर अंत तक उनके चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हो पाता। ऐसे पात्र स्वयं नहीं बनते प्रामाणिक के प्रारम्भ से ही अपने आप में पूर्ण ही केला बदलता है उनके सम्बन्ध में पाठकों का जाल।¹¹² इन्हें स्थिर (स्टैटिक पात्र) कहते हैं। हमारे पास ऐसे होते हैं जिन पर उनके परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है और बचाने के विनाश के साथ-साथ प्रामाणिक का भी विनाश होता रहता है। ऐसे पात्रों को विनयनीय (डिनेटिक) पात्र कहते हैं। कुछ-एक पात्र ऐसे भी होते हैं जो हमारे सामने अपने चरित्रगत रूप में पाते हैं और उनके विनयनीय बिंदु दिनों का हाव भाव के आधार पर हम उन्हें पढ़ना लेते हैं—जिस प्रकार किसी विनाशकारी घटनाओं को उमक बाटून देखकर—और उनके प्रति हमारा ध्वन्य मात्र जाम उठता है। ऐसे पात्रों को ध्वन्य चरित्र (डिनेटिक) कहते हैं। वास्तव में वे पात्र स्थिर पात्रों का ही एक रूप हैं।

स्थिर (स्टैटिक) पात्र—स्थिर पात्र का ध्वन्य नहीं प्रसार (टार्निंग) होता

¹¹² F. V. C. M. "The Structure of the Novel" Hogarth Press 5th Imp. 1949
 Lond. n. p. 46

"It [of fat characters] weakness, their vanities their follies they possess from the beginning and never lose to the end; and what actually does change in them is not so much our knowledge of them."

है—किसी न किसी बग के प्रतिनिधि। उपन्यासकार उनमें उनके बगों की कुछ उभरी हुई विशेषताएँ भर देता है पर कथानक के विकास के साथ-साथ उन पात्रों की उन विशेषताओं का विकास नहीं करता। अपने परिपार्श्व के प्रति उनका जो दृष्टिकोण उपन्यास के आरम्भ में बन जाता है वह किसी प्रकार भी विकसित नहीं होता और कथानक के अंत तक वैसा ही रहता है। प्रथम से अंतिम श्रेष्ठ तक वे पात्र स्थिर रहते हैं बदलते नहीं बहलती हैं उनके बारे में केवल पाठकों की जानकारी। उपन्यासकार ऐसे पात्रों के सब गुण-दोषों का उनके स्वभाव की सभी विशेषताओं का एकदम उद्घाटन नहीं करता क्योंकि उनके बारे में सब कुछ जान लेने के पश्चात् उनके प्रति पाठकों की उत्सुकता नहीं रह पाती। उनके प्रति पाठकों की रुचि बनाए रखने और उत्सुकता बढ़ाते चलने के लिए वह उनकी बिशिष्टताओं को एक-एक करके प्रकाश में लाता है। कथानक के विकास के साथ-साथ उपन्यास के अन्य पात्रों से—और पाठकों से भी—ज्यों-ज्यों उन पात्रों का परिचय बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों वे अधिक कुसते जाते हैं। पर उनके स्वभाव तथा चरित्र के जो-जो गुणाय गुल प्रकट होते जाते हैं वे उत्तरोत्तर स्पष्ट हो जाते हैं पर बहलते नहीं। उपन्यासकार पहले से ही उनकी स्फुरेला इतनी पक्की और स्पष्ट बना देता है उनकी रुचि और अरुचि प्रेम और नृणा प्रवृत्ति और निवृत्ति के बिपरीत को ऐसा निश्चित कर देता है कि उन पूर्व-निर्धारित सीमाओं को तोड़ने का प्रश्न उनके लिए उठता ही नहीं।

स्थिर पात्रों के रूप में प्रायः कोई-एक भाव या गुण ही मुख्य रूप से प्रतिमान होता है। उनके चरित्र के रूप में उस भाव या गुण की ही धीरे-धीरे व्याख्या तथा सम्यक् एवं मध्यम होता रहता है।^{११०} अंत में वे भाव या गुण ही उनका जीवन दर्शन बन जाते हैं—ऐसा जीवन-दर्शन जो आरम्भ से ही निरपेक्ष होता है और जो परिस्थितियों के प्रभाव से असूया रहता है। इसलिए ऐसे पात्रों की जीवन-रक्षाएँ इतनी स्पष्ट होती हैं कि एक या कुछ एक क्षणों में उनका पूर्णतया वर्णन किया जा सकता है।

एक तो स्थिर पात्रों का प्रथम परिचय करते समय उपन्यासकार उनकी आपारभूत असाधारण प्रवृत्तियों तथा स्वभाव के गुण-दोषों पर बल दे देता है और फिर जब उनकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं से भी वही भाव व्यक्त होने लगता है तो पाठकों के लिए उन पात्रों को पहचानना समझ भी कठिन नहीं रहता। उनके स्वभाव के हम्मन से परिचित होने के कारण विभिन्न परिस्थितियों में उनकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के बारे में अनुमान भी लगाया जा सकता है। अपनी बोधपथ्यता और

[११०] Forster Aspects of the Novel p. 63:

"In their (of flat characters) posed form, they are constructed round a single idea or quality: when there is more than one factor in them, we get the beginning of the curve towards the round."

स्थिरचित्तता के कारण ये पात्र पाठकों के हृदय पटल पर ऐसी प्रमिट छाप बना पाते हैं कि उनकी स्मृति सदा बनी रहती है, मने ही उनके जीवन की अन्य बातें भूल जायें।

विकसमशील (किनेटिक) पात्र—ये पात्र जो अपने परिपार्श्व से, अपने प्रास पात्र के वातावरण से प्रभावित न रहते हुए कथामक के साथ-साथ विकसित होते रहते हैं विकसमशील पात्र कहलाते हैं। स्थिर पात्रों की तरह ये पात्र प्रारम्भ से ही पूर्ण नहीं होते और न ही इनकी कोई पूर्व-निर्धारित सीमाएँ होती हैं। उनके विकास की भी कोई प्रकम्पा स्थिर और अन्तिम नहीं कही जा सकती। ये निरन्तर विकसित होते रहते हैं। स्थिर पात्रों की परिस्थितियाँ उनका परिपार्श्व तो बदलता रहता है, वे स्वयं नहीं बदलते पर विकसमशील पात्रों की परिस्थितियाँ चाहे न बदलें, एक-दूसरे की क्रिया-प्रतिक्रिया से ही उनका विकास होता रहता है।

उपन्यासकार ऐसे पात्रों को उनके जीवन की मार्मिकतम अवस्था की ओर विरुद्ध नियुक्त करता है और विभिन्न वेद्य काल और परिस्थितियों के कारण उनके चरित्र में होने वाले परिवर्तनों को प्रकाश में लाकर उनके आन्तरिक कारणों पर प्रकाश डालता जाता है। कई बार तो इस प्रकार के एक ही पात्र को लेकर उपन्यासकार उसकी विविध अनुभूतियों के प्रकाशन के बहाने मानवमात्र की अर्चक अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न करता है। ऐसा प्रायः मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हुआ करता है जहाँ उपन्यासकार पात्रों के अत्येक मानसिक परिवर्तन की संतुष्टि-प्राप्ति का पट्टन की चेष्टा करता है।

(ग) औपन्यासिक चरित्रचित्रण की विविध प्रणालियाँ

पहिरण (फैशनिबिलिटी) चित्रण

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण
 पात्रों के प्रथम परिचय में उनका चरित्र प्रथम चोट की छाप—उपन्यासकार की चेष्टा
 सादृष्टि-वैराग्य-धर्मन भवतिष्ठ-धर्मन की प्रवृत्ति—मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार द्वारा रूप-चित्रण के प्रति उदासीन
 स्थित्यन्त (सिम्बुएलन पोर्ट्रेयल) तथा विद्या प्रतिविद्या चित्रण
 अनुमात्र-चित्रण अनुमात्रों का महत्त्व—अनुमात्रों की विरससमीक्षा—मनाईया निक उपन्यासों में अनुमात्र चित्रण

धनरग (सटनबिलिटी) चित्रण

धनज्वरलुप्तों का चित्रण (मोटिवेशन)
 धनरग (इन्टनस कॉन्सलवट) धनरग का मत—वेतन और धनधन धन रंग का चित्रण
 धनविचार (इन्टीरियर मॉनोलॉग)
 मनोविश्लेषण (साइको-मैनेसिसिथ) : सुख प्राप्त (छी ऐगोगिण्डा)—
 वायकता विरसेपण (ऐनेसिसिथ धॉय रेसिस्टेण)—स्वप्नविमर्श (ड्राम
 ऐनेसिसिथ स्वप्न-धर्मन (ड्रीम मैनेसिसिथ)—उपन्यास में स्वप्न
 विरसेपण
 निराधार प्रत्यक्षीकरण विरसेपण (ऐन्सुमीनेशन ऐनेसिसिथ)
 सम्मोहन-विरसेपण (हिल्जो-ऐनेसिसिथ) सम्मोहन की प्रक्रिया—उपन्यास में
 सम्मोहन-विरसेपण
 प्रत्यक्षीकरण विरसेपण (ऐनेसिसिथ धॉय रिटिनिशन्स)
 पूरकन्यासक प्रणाली (बैथ हिस्टरी मैथड)
 गद्य-गद्यविधि परीक्षण (बैथ ऐगोगिण्डा टस्ट)

माटयोप (ड्रामेटिक) चित्रण

पटकथा द्वारा चरित्रचित्रण—चरित्रचित्रण द्वारा चरित्रचित्रण—
 उद्घरण टीवी—उपरी द्वारा चरित्रचित्रण—पटकथा टीवी

वह्निरंग (ऑब्जेक्टिव) चित्रण

पात्रों के मापकरण द्वारा अति-चित्रण

ब्रह्म-जगत के अनुकूल उपस्थाप-जगत के भी प्रत्येक व्यक्ति धर्मात् पात्र का कोई न कोई नाम होता है। नामकरण होता तो ब्रह्म-जगत और उपस्थाप-जगत दोनों में है पर उनका महत्त्व दोनों में समान प्रत्यक्ष है। मन्त्रादि विष्णु का नामकरण करने वाला पुरोहित या अन्य जो कोई भी उसका नाम प्रस्तावित करता है वह विष्णु के भावी जीवन के बारे में कुछ भी नहीं जानता होता। इसलिए ब्रह्म-जगत के व्यक्तियों के नामों से उनके प्रति उनके माता-पिता या नाम प्रस्तावित करने वाले व्यक्ति की महत्वाकांक्षा उनके जन्म पर उनकी प्रतिक्रिया तथा उनकी उत्तमान्ति मनोस्थिति का परिचय मिलता है कि वे उसे 'करोड़ीमन' बना देना चाहते हैं या 'विनम्रता' उसे 'स्नेहाता' बनाना चाहते हैं या 'प्रतिभा' सम्पन्न। परन्तु उस नाम का सम्बन्ध उस विष्णु के चरित्र से तनिक भी नहीं होता क्योंकि नामकरण के समय तब उनके चरित्र का कोई भी पक्ष प्रकाश में नहीं आया होता। ब्रह्म-जगत के व्यक्ति का चरित्र-निर्माण उसके नाम से भवेत्ता नहीं रहता। व्यक्ति के नाम तथा चरित्र में अनुकूलता अथवा अनुकूलता अनिवार्य न बानी जाकर, संपादना ही बानी या सकती है क्योंकि नामकरण तो इच्छामात्र से हो जाता है जबकि चरित्र-निर्माण तोरी इच्छा से संपादित नहीं होता।

पर उपभाग के शार्ङ्ग का नाम रखने वाला उग्रयाण्यार काय पुनर्हित ही नहीं। उग्रयाण्यार भी होता है। एक-साथ सप्ता और पुनर्हित दोनों होने में उग्रयाण्यार निर्धारित करने के पुनर्हित का नाम प्रस्तावित करने वाला किसी अन्य व्यक्ति में मिलने हो जानी है। देखते जैसे कुछ एक उग्रयाण्यारों के इन चरण का मध्यमान से कि वे शार्ङ्ग का निर्धारण करते उन्हें अपने साथ पर छोड़ दें हैं और उनके प्रति विश्वास के तर्जिक भी हमेशा ही करके १०० तो भी इन बात में इन्कार नहीं किया

For Haid, the final reduction to the study of literature is p. 214:

"I don't control my ears! as I am in there I don't know where they place

या सकता कि अधिकतर उपन्यासकार अपने पात्रों के भावी जीवन के सम्बन्ध में अनिश्चित नहीं होते। इसलिये, अपने पात्रों का नाम रखते समय उनके सामने पात्रों का समुदाय चरित्र विकास का जाता है और वे उसके चरित्र के किसी उमरे हुए गुणानुगुण के आधार पर उसका नाम रख देते हैं। यद्यपि इस प्रकार पात्रों के नामों द्वारा उनके चरित्र की विधिष्टता को व्यक्त करने की प्रवृत्ति न्यूनाधिक रूप में लगभग सभी उपन्यासकारों में विद्यमान रहती है तो भी उपन्यासकार इससे बचना बच सके तो उतना ही बेमर्याद है क्योंकि इस प्रकार के चरित्रचित्रण में अस्वाभाविकता तो आ ही जाती है, साथ ही आवश्यकता से पहले पात्रों की चारित्रिक विधिष्टताओं के प्रकट हो जाने से उनके चरित्र-विकास के प्रति पाठकों की उत्सुकता भी मन्द पड़ जाती है।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में पात्रों के नामकरण द्वारा उनके चरित्र-विकास की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल रही है। प्रेमचन्द बसन्तकर प्रसाद भगवतीचरण वर्मा तथा जैनेन्द्र ठाक के उपन्यासों में भी यही प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रेमचन्द, बसन्तकर, विजय प्रसिद्ध अवध गुप्ता आदि निम्ना यज्ञा सीता भुवनेश्वरी आदि पात्रों के नामों से ही उनकी चारित्रिक विधिष्टताएँ व्यक्त हो जाती है। पर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तक पहुँचे-पहुँचते यह प्रवृत्ति बहुत दाय हो जाती है।

पात्रों के प्रथम परिचय में उनका चरित्र

वस्तु-व्यपत्त में कितने ही लोग हमें मिलते रहते हैं पर सब के प्रति तो हम धाकड़ नहीं होते। काफी देर साथ रहने पर भी कई-सोम हमारा ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पाते और कई लोग प्रथम दर्शन में ही हमें मुग्ध कर लेते हैं। यही बात औपन्यासिक पात्रों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। कई पात्र उपन्यास में आते कटते ही अपने में पाठक को उसका सेते हैं और अपने प्रति उसकी उत्सुकता को इतना जागृत कर देते हैं कि वह उनके बारे में सब कुछ जानने के लिए प्रयत्न ही उठता है। पर कई पात्र ऐसे भी होते हैं जो उपन्यासकार द्वारा परिचय कराए जाने पर भी पाठक को अपनी ओर खींचने में असमर्थ रहते हैं। वास्तव में औपन्यासिक पात्रों के चरित्रचित्रण की एकता इति में है कि वे उपन्यास में पदार्पण करते ही पाठकों को अपने में उसका लें। इसलिये, श्रेष्ठ उपन्यासकार अपने किसी पात्र को उपन्यास के रंगमंच पर सब तक नहीं लाता जब तक कि उसके करने के लिए कोई महत्वपूर्ण काम नहीं होता। परिचयभर कराने के लिए पात्रों की उपन्यास के रंगमंच पर से आना और वाप में उन्हें सब तक के लिए 'बोर्ड टोरेज' में हास देना जब तक उनकी आवश्यकता न पड़े उनके प्रति पाठकों में उदास का भाव जगा देना है।

प्रथम भेंट की दृष्टि—प्रथम भेंट में ही मनुष्य एक-दूसरे के प्रति अपनी धारणाएँ बना लेते हैं। मानिए, 'क' अपनाफ 'ग' से मिल गया। यह उनकी प्रथम भेंट थी। दृष्टि चले के लिए दोनों साथ बैठ उठाने कुछ मौलम के सम्बन्ध में कुछ

माऊर के भाव के बारे में और कुछ अत्याधुनिक राजनीतिक विषयों पर बातचीत की और समय हो गए। इतने बीड़े समय में यद्यपि इन दोनों में से कोई भी एक दूसरे के सम्मुख में सब कुछ न जान सका तो भी दोनों के मन पर एक-दूसरे के व्यक्तिगत ही छाप धरित हो गई और एक-दूसरे के प्रति उनकी कुछ पारखार्पण बन गई। 'क' ने सोचा कि 'ख' भित्तवस्तु, योग्य और मनोरञ्जक व्यक्ति है और 'ख' ने समझा कि 'क' बहुत बुद्धिमान और व्यवहारगुणमय मनुष्य है। प्रथम भेंट की इस प्रकार की छाप काहे झिझकी ही धनियेपत और घटसायी क्या न हो मानव स्वभाव की इस विशेषता की और स्पष्ट संकेत करती है कि मनुष्य दूसरों की समझने में कितना अक्षीर रहता है और इसी धुन में कितनी जल्दी वह उनक जाने में अपनी पारखार्पण बना लिया करता है बाद में चाहे उसे वे बदलती ही पड़ जाएँ।

उपन्यासकार की शैली—उपन्यासकार मानव-मन की इस विविधता से परिचित होता है। इसलिए, उपन्यास में पात्रों का प्रवेश कराते समय वह रस धार प्रदर्शनीय रहता है कि पाठकों से प्रथम भेंट में ही उनके पास उनक मन पर बीठी छाप धरित करें बीसी वह चाहता है। अपने पात्रों का सृष्टा होने के साथ वह उनकी वस्त्र-गुण से भी परिचित होता ही है और प्रायः वह भी जानना होता है कि उनके पात्रों में चरित्र-विकास की कीमती दिशा ग्रहण करनी है। इसलिए, उसका प्रयत्न रहता है कि उनके भावी चरित्र-विकास के समुच्चय ही पाठकों के मन पर उसकी प्रथम भेंट की छाप पड़े। पाठकों के पात्रों की प्रथम भेंट का प्रत्येक प्रभाव 'जाने का प्रयत्न तो प्रत्येक उपन्यासकार करता है। पर गुणमय उपन्यासकार पात्रों के जीवन की वेद भूषा आदि के विवरण द्वारा उन्हें पात्रों के सम्पत्ता वस्तुओं के अनेक प्रकार करके उन्हें स्वयं अपनी विद्या-व्यवस्था द्वारा उन पर बीरे बीरे गुप्तने बना है। अपनी धार से उनकी चरित्रिक विशेषताओं के सम्मुख में कुछ नहीं रहना। अत्यंत-व्यंग्यता तथा अनेक-व्यंग्यता वाली प्रत्येक प्रकृति मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपने पात्रों को इसी प्रकार पाठकों पर बीरे-बीरे प्रकट होने देता है।

पर कई उपन्यासकार पात्रों की साहित्य प्रकृति वेद भूषा आदि का ही बयान करके नहीं रह जाते यद्यपि अपनी धार में उनके चरित्रिक दृष्टावृत्तों के सम्मुख में भी एक टिप्पणी जोड़ देते हैं और पाठकों को ऐसा प्रतीत होने लगता है माना उपन्यासकार उस पात्र की संशुली वस्त्र-गुण उपन्यास-वर्णन के सम्मुख पर ही धारित हो और और-व्यंग्य संक्षेप से उसका चरित्र बना रहा हो तथा पात्रों से साफ़ बन रहा हो कि वे उस द्वारा बनाई गई पात्र की चरित्रिक विशेषताओं का साथ मान में। पाठकों में 'ग' प्रकार का साफ़ करने वाले उपन्यासकारों में प्रत्येक का ही एक रूप है।

उपन्यासकार अपने पात्रों का पूर्ण ज्ञाता तो होता ही है और वह उनके भावी विकास को भी जानता होता है, पर जब कोई उपन्यासकार अपने किसी पात्र का पहली बार परिचय कराते समय ही उसके उन चरित्रिक गुणवशुओं का उल्लेख करने लगता है जो उस तक उस पात्र की क्रिया-प्रतिक्रियाओं से व्यक्त नहीं हुए होते तो उसका वह परिचय अस्वाभाविक प्रतीत होने लगता है और उसमें पक्षपात की गन्ध आने लगती है।

कुछ भी हो कुछसे उपन्यासकार यह नहीं भूलता कि पाठकों के मन पर पड़ी हुई पात्र के प्रथम परिचय की छाप प्रथम वर्णन की छाप के समान चाहे पूर्णतः सत्य न सिद्ध हो पर मन पर पड़े उसके झंझ कीरे-बीरे ही कुछ पाते हैं और जब तक वे पूर्णतः भुक्त नहीं जाते पाठक द्वारा पात्रों की वाच की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के सुस्वीकृत को प्रभावित करते रहते हैं।

भाकृति-वैद्यभूषा-वर्णन वैद्यभूषा के सम्बन्ध में पंजाबी की एक कहावत है—

साइये मन भाऊँवा भते पाइये जय भाऊँवा, अर्थात् हमारा सामान-नीना मन-बाह्य होता चाहिए, पर हमारा पहनावा कम बाह्य हो। इस कहावत में प्रतिपादित सिद्धान्त का पालन करते हुए जो लोग समय-समय पर अपनी वैद्यभूषा बैसी ही रखते हैं वैसी कि समाज उनके स्तर तथा व्यवसाय के व्यक्ति से घाटा रखता है उनकी वैद्यभूषा में उनके व्यक्तित्व की झंझी पाना उतना कठिन नहीं होता जितना उन लोगों के पहनावे में जो समाज के वैद्यभूषा सम्बन्धी नियमों के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। यद्यपि आज के युग में जबकि सभी सामाजिक मूल्य ढगमगा गए हैं केवल भाकृति या वैद्यभूषा के आधार पर किसी भी व्यक्ति के चरित्रिक गुणों के सम्बन्ध में कुछ अनुमान समाना आमक हो सकता है फिर भी किसी नये व्यक्ति से प्रथम मेट के समय हमारा ध्यान सबसे पहले उसकी भाकृति और वैद्यभूषा पर ही पड़ता है और जब तक उस व्यक्ति की कोई क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती उसकी भाकृति और वैद्यभूषा के आधार पर उसके चरित्र को आंकने के अतिरिक्त हमारे पास और कोई उपाय नहीं रहता है।

उपन्यासकार भी उपन्यास में अपने पात्रों का प्रथम बार प्रवेश कराते समय उन की भाकृति और वैद्यभूषा का विवरण दिया करता है और उसके माध्यम से उनके चरित्रिक गुणवशुओं के सम्बन्ध में अपने पाठकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने का प्रयत्न किया करता है। यही नहीं समय-समय पर उनकी भाकृति और वैद्यभूषा में होने वाले परिवर्तनों का विवरण करके उनकी मनोवस्था में होने वाले परिवर्तनों को भी व्यक्त किया करता है। बहुधा पात्रों की भाकृति और वैद्यभूषा का विवरण पाठकों की कल्पना में पात्रों को साकार रक्ता कर देने के लिए ही नहीं उनके गुणवशुओं की संज्ञित देती से व्याप्त करने के लिए भी होता है।

रंगरूप और बेगमूपा की मोटी और पक्की रेखाओं में बाँधकर उन्हें गुड़िया नहीं बना देता। वह अपने पात्रों की बाहरी सज्जा में नहीं घटकता प्रत्युत बाहर के ठोस आभरण को चीरकर उनके भीतर की तरस मानसिकता के चित्रण की घोर प्रवृत्त होता है और उसी के द्वारा वह उसे आत्म मानवों से भिन्न व्यक्ति बना देता है। यह बात वह पाठकों की दृष्टि और कल्पना पर छोड़ देता है कि वे उसे जैसी भी पोशाक चाहें पहना लें। इसलिये, 'छेकर एक बीबनी' जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में यदि नायक-नायिका का बाह्य रूप-चित्रण न मिले और यदि वहीं मिले भी तो धारण्य तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

स्वित्पंकन तथा क्रिया प्रतिक्रिया-चित्रण किसी व्यक्ति की स्थिति विशेष (सिचुएशन) को जाने बिना उसकी व्यक्त क्रिया प्रतिक्रियाओं के आधार पर उसके चरित्र के बारे में समझा गया अनुमान आमक सिद्ध ॥ सकता है क्योंकि किसी के क्रिया-कलापों का विश्वसनीय मूल्यांकन उन्हें उस स्थिति के संदर्भ में रखकर ॥ किया जा सकता है जिसमें वे व्यक्त हुए हों। स्थितियाँ अपने भीतर एक या अनेक उत्तेजकों को भिजे रहती हैं जो व्यक्ति के आचरण को प्रेरित करके उद्दीप्त करते रहते हैं। इसलिये, पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया के वर्णन से पहले उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह उस स्थिति का सूक्ष्मावलोकन चित्रण करे जिसमें वे पान पड़ गये हों क्योंकि कारण को पूरी तरह जाने बिना कार्य का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। अपने पात्रों के स्वित्पंकन के लिए, उनके परिवेश के चित्रण के लिए उपन्यासकारों को वे सुविचारें कहाँ जो नाटककार को सहज उपलब्ध होती हैं। बना-बनाया स्टब और सजे-सजाए तथा सिधे-सिबाए पान उपन्यासकार को उपलब्ध नहीं होते। सब-कुछ का उसे स्वयं ही निर्माण करना होता है। उसकी बड़ी कठिनाई यह है कि उसे सब कुछ अपने ही करना पड़ता है और साधन उनके पास केवल एक है—घम्य। उसे पात्रों की संपूर्ण स्थिति के सजीव सम्बन्ध चित्र उपस्थित करने होते हैं जिससे समस्त आलाचरण पाठकों की कल्पना में भूर्त्त हो उठे और उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगे कि वे सारी स्थिति अपनी आँखों से देख रहे हैं।

प्रथम ग्लैंट में किसी का पूरी तरह नहीं समझा जा सकता।^{१३} पूरी तरह जान पाना तो दूर, जो कुछ थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है उस पर भी पूर्ववर्ण

[१३] Allport: *Personality: A Psychological Interpretation* Constable & Company London, 1961; p. 300:

"In the brief period of first meeting, there is little chance for contradiction, to appear or for the judge to ascertain which traits are central and which are marginal in the personality. Some feature are hidden entirely especially those that are asocial; the 'person' is not easy to penetrate at first meeting."

विराम नहीं दिया जा सकता।^{१११} प्रथम परिचय के समय एक तो सभी पारिवारिक विविधताओं को व्यक्त होने का अवसर नहीं मिलता। जिन कुछ-एक विविधताओं को प्रकट होने का अवसर मिलता है वे भी धीरे-धीरे कारणों से बची पड़ी रहती है या धमुरी ही व्यक्त हो जाती है। दूसरे, कई बार प्रथम भेंट के समय व्यक्ति स्वयं भी किसी विशेष प्रयोजन से अपने स्वभावज आचरण को दबाकर उस पर इज्जत दिखाएँ का आरोप कर लेता है। इसलिए प्रथम भेंट हमारे हृदय-गटक पर जो छाप छोड़ जाती है उसकी सरलता को परखने के लिए जीवन की विविध परिस्थितियों में उसकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का गूढ़ अध्ययन आवश्यक हो जाता है।^{११२}

सामान्यतः मनुष्य की परिस्थितियों और उसकी क्रिया प्रतिक्रियाओं में कार्य कारण का सम्बन्ध रहता है। जित प्रकार, कारण की पूरी जानकारी के प्रभाव में कार्य का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता उसी प्रकार, घरेलू कारण का ज्ञान भी कार्य को समझने में सहायक नहीं हो पाता। इसलिए, कुशल उपस्थापक अपने पात्रों की विभिन्न स्थितियों के प्रकट तथा उनमें व्यस्त होने वाली क्रिया प्रतिक्रियाओं के विचलन में ऐसा सामञ्जस्य बनाता है कि पाठकों की कल्पना में वाच और उनकी परिस्थितियाँ साकार होती जाती हैं।^{११३} और उनका चरित्र-विकास स्पष्ट ने स्पष्ट होता जाता है।

अनुभाव (एक्स्प्रेसिव बीकड) विषय—मनोभावों के उदय होने में परभाव शरीर में जो विकार दृष्टिकोण होते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। वे अनुभाव दर्शकों को दूसरे के भावों का अनुभव कराते हैं।^{११४} दूसरों के भीतरी भावों को समझने के लिए उनके अनुभावों का अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। दूसरों के अनुभावों का अध्ययन हमारे भी आवश्यक हो जाता है कि किसी स्थिति में पड़ते ही व्यक्ति की प्रतिक्रिया प्रकट नहीं हो जाती और जब तक उनकी प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती तब तक स्थिति के प्रभाव से उनकी मनोन्मा में होने वाले परिवर्तन जानने के लिए उन के अनुभावों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। स्थिति में पड़ जाने के परभाव और प्रतिक्रियामय विस्फोट होने से पहले वाच के मुख तथा अन्य संव्यवस्थाओं में जो

१११ Morphy "General psychology Harper & Bros. New York, p. 41:

"Character and personality cannot be read 'at sight' but must be carefully studied

११२ Ross Stagner Psychology of Personality McGraw Hill, New York, 1919, p. 23:

"A precise statement of the behaviour of an individual in a wide variety of real life situations might well be the most valuable of all materials for the study of personality"

११३ डॉ॰ किंग्जरी 'इन्ट्रोडक्शन वे, सि-ए-ए' प्रथम अंक पृष्ठ १३२

'अनुभाव' १३१ अनुवादक।

सुरमातिरुक्म परिवर्तन होते रहते हैं, उनमें पात्रों का तत्कालीन मानसिक स्वरूप प्रतिबिम्बित होता रहता है। इसीलिए, उपन्यासकार के लिए अपने पात्रों के मुख-चित्रों (फेसबुक एक्सप्रेसन) शारीरिक मुद्राओं (जेस्चर्स) आदि का चित्रण उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का बखान।

जो उपन्यासकार स्थिरकर्म के पश्चात् सीधे पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया का चित्रण करने लग जाता है उसके चरित्रचित्रण में अस्वाभाविकता या बाढ़ी है और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों उपन्यासकार द्वारा बिजली का बटन दबाते ही पात्रों की प्रतिक्रिया व्यक्त हो गई हो। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों में यह त्रुटि विशेष रूप से पाई जाती है। प्रेमचन्द के आरम्भिक उपन्यासों में भी पात्रों के अनुभाव चित्रण की ओर ध्यान दिया गया जितना कि स्वाभाविकता माने के लिए आवश्यक होता है। उनके उपन्यासों में ऐसे स्थानों की कमी नहीं जहाँ पात्र स्थिति में पड़ते ही कठुठसी के समान उपन्यासकार के इशारों पर नाचते हुए प्रतीत होते हैं। यहाँ उनका सकेत मात्र क्रिया जाता है। उपयुक्त स्थान पर इस विषय का विचार विवेचन किया जाएगा।

कई बार दूरदर्शकों को समझने के लिए उनकी क्रिया प्रतिक्रिया की अपेक्षा उनके अनुभावों का अध्ययन अधिक आवश्यक होता है। किसी व्यक्ति की अन्तर्हीन क्रिया-प्रतिक्रियाओं में उनकी आरिक्त चिन्तितार्थ प्रतिबिम्बित होती है, जो स्वभावज्ञ हो। स्वभावज्ञ प्रतिक्रिया को दबाकर सायास प्रकट की गई अभावटी प्रतिक्रिया के आचार पर सपना या अनुमान आमक होना। पर प्रकृत अनुभावों को पूर्णतः दबा पकना बड़ा कठिन है। साहजिकतापूर्ण चिन्ताएँ करने पर भी व्यक्ति के मुख पर बरबस एक ऐसी रेखा बिच जाती है उसकी शारीरिक मुद्रा में एक ऐसा परिवर्तन प्रकट हो जाता है, जो उसके समस्त हृदय व्यक्तित्व की धोल धोल देता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अनुभाव चित्रण का महत्त्व—जो लोग अन्तर्मुख होते हैं जो अमस्त बाह्य स्वरूप को अपने भीतर समेटकर जीवन भर अन्दर ही अन्दर दुमते रहते हैं उनकी अन्तर्स्था को जानने के लिए उनके अनुभावों पर ही पूर्णतः निर्भर होना पड़ता है। इसीलिए, अन्तर्मुख पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए उपन्यासकार को उनके अनुभाव-चित्रण की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त होना पड़ता है। साहजिक ही व्यक्तित्व-गुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया में आई हलचल को उपाहने के लिए उन के मनोभावों के अनुवर्ती तथा उनके छोटे-छोटे अनुभावों का चित्रण होता है। इसीलिए, आरम्भिक उपन्यासों के बहुमुखी पात्रों के चरित्रोद्घाटन में उपन्यासकार अनुभाव चित्रण के प्रति उदासीन दिखाई देता है और साधुनिक अन्तर्मुख विषयमन्त्रीय पात्रों को उपाहने में वह उनके अनुभावों में होने वाले सूक्ष्मातिमूर्त परिवर्तनों तक की भी उपेक्षा नहीं करता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनुभाव-चित्रण की अपेक्षा और दसाचन्द्र घोषी आदि के उपन्यासों में अनुभाव-निषण में विवेक तत्परता का यही कारण है।

आंतरंग (सहजचित्त) चित्रण

चरित्रचित्रणों का चित्रण (मोटिवेशन)

द्विती मनुष्य की काम-विशेष की परिस्थिति को उस परिस्थिति के प्रति उगड़ी व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रिया को तथा उसके समूचे व्यक्त व्यवहार को जान लेने पर भी यह शक्य नहीं किया जा सकता कि हम उसे पूर्णरूपेण समझ सकें।^{११४} क्योंकि मनुष्य का जो रूप दूसरों पर प्रकट होता है वही तो उसका वास्तविक रूप नहीं होता। उसके व्यक्त रूप से अधिक महत्वपूर्ण और रहस्यमय उसका वह रूप होगा है, जो जाने या समझने अविश्वस्यमान पाने से बचा रहता है और उसके स्थान रूप को प्रेरित करता रहता है। मनुष्य के व्यक्त आचार, विचार और व्यवहार में उसके चरित्र का एक प्रकाश ही प्रतिबिम्बित हो जाता है। रोप का तो उसकी व्यक्त चिन्ताओं में आभास तक नहीं मिलता।^{११५} मानव चरित्र हिमालय (पाईसबर्ग) के समान है जिसका कबला नभमांछ ही जल के ऊपर बिगाई देता है और रोप पानी के भीतर छिपा रहता है। मनुष्य के उस प्रत्यक्ष चरित्र को जाने बिना जो उसके समूचे रूप को प्रतिबिम्बित करता है मनुष्य को पूरी तरह समझ सकना सम्भव नहीं।^{११६} इसीलिए उपन्यास स्थितिक्रम के परभाव अपने पात्रों की व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं के चित्रण में ही नहीं उसका उद्देश्य प्रस्तुत उनके आन्तरिक संघर्ष को अपने प्राग-वाच के आनावरण के प्रति निरंतर विरहित हावे रहने वाले उनके दृष्टिकोण तथा उनके प्रकट व्यवहार की प्रतीति-प्रणालियों (इन्टर्नल मोटिव्स) को प्रकाश में लाता रहता है।

अतः उपन्यास में किसी व्यक्ति के व्यक्त आचरण के पीछे छिपे भीतरी प्रकट को

११४ *Man Psychology and Life* Scott Foresman, New York third edn., p. 121.

"When all we know about a person's behavior is the external stimulus situation, our description of his behaviour cannot be complete."

११५ H. A. Murray *Explorations in Personality* Oxford University Press New York, 1938 p. 111.

"There are many complicating factors that disturb a simple intention effect relation. In the first place an intention is not usually realized in actual life due to opposition, interruption, internal conflict or the subject's inability. And even when the effect is realized it may be even farther from the intention of the subject."

११६ *Man Psychology and Life* p. 121.

"To understand why a person behaves as he does in any particular situation, you must know what external situation he is in—but you must know more than that. You must also understand his internal situation which plays an extremely important role in moving and determining his behavior."

सूक्ष्मातिशुक्ल परिवर्तन होते रहते हैं जिनमें पात्रों का तत्कालीन भावस्थिक चरित्र प्रतिबिम्बित होता रहता है। इसीलिए, उपन्यासकार के लिए अपने पात्रों के मुख-ईशियों (फेसल एक्सप्रेसन) शारीरिक मुद्राओं (जेस्चर्स) धावि का चित्रण उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का वर्णन।

जो उपन्यासकार स्थिरचित्र के पश्चात् सीधे पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया का चित्रण करने लग जाता है उसके चरित्रचित्रण में अस्वाभाविकता या बाढ़ी है और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों उपन्यासकार द्वारा बिजली का बटन दबाते ही पात्रों की प्रतिक्रिया व्यक्त हो गई हो। हिन्दी के शारीरिक उपन्यासों में यह त्रुटि विशेष रूप से पाई जाती है। प्रेमचन्द के शारीरिक उपन्यासों में भी पात्रों के अनुमान चित्रण की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना कि स्वाभाविकता खाने के लिए आवश्यक होता है। उनके उपन्यासों में ऐसे स्थानों की कमी नहीं वहाँ पात्र स्थिति में पड़ते ही कठमुठसी के समान उपन्यासकार के इशारों पर नाचते हुए प्रतीत होते हैं। यहाँ उनका सकेत मात्र किया जाता है। उपयुक्त स्थान पर इस विषय का विचार विवेचन किया जाएगा।

कई बार दूसरों को समझने के लिए उनकी क्रिया प्रतिक्रिया की अपेक्षा उनके अनुभावों का अध्ययन अधिक विवशनीय होता है। किसी व्यक्ति की उन्ही क्रिया प्रतिक्रियाओं में उनकी शारीरिक विविधताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं, जो स्वभाव हैं। स्वभाव प्रतिक्रिया को दबाकर सायास प्रकट की गई बनावटी प्रतिक्रिया के माध्यम पर लगाया गया अनुमान भ्रामक होता है। पर प्रकृत अनुभावों को पूर्णतः दबा सकना बड़ा कठिन है। साह बनाबटी चेष्टाएँ करने पर भी व्यक्ति के मुख पर बरख एक ऐसी रेखा बिच जाती है उसकी शारीरिक मुद्रा में एक ऐसा परिवर्तन प्रकट हो जाता है जो उसके समस्त कृत्रिम व्यवहार की मोम खोम देता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अनुभाव चित्रण का महत्त्व—जो मोम घन्तपुरा होते हैं जो समस्त बाह्य चरित्रों की अपने भीतर छपेकर जीवन भर घन्तर ही घन्तर चुमते रहते हैं उनकी घन्तव्यथा को खाने के लिए उनके अनुभावों पर ही पूर्णतः निर्भर होना पड़ता है। इसीलिए, अन्तर्मुख पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए उपन्यासकार को उनके अनुभाव-चित्रण की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त होना पड़ता है। साह ही व्यवहार द्वारा पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया में धाई कृत्रिमता को उपाड़ने के लिए उन के मनोभावों के अनुवर्ती तथा उनके छोटक अनुभावों का चित्रण होता है। इसीलिए, शारीरिक उपन्यासों के बहुमुख पात्रों के चरित्रोद्घाटन में उपन्यासकार अनुभाव चित्रण के प्रति उन्नीस दिगाई देता है और प्राणिक अन्तर्मुख, विपश्चिनीय पात्रों को उपाड़ने में वह उनके अनुभावों में होने वाले सूक्ष्मातिशुक्ल परिवर्तनों तक की भी अपेक्षा नहीं करता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनुभाव चित्रण की अपेक्षा और दमाचक्र पोषी धावि के उपन्यासों में अनुभाव-चित्रण में विशेष महत्ता का यही कारण है।

अंतरंग (सम्प्रतिष्ठ) चित्रण

अंतरंगचित्रणों का चित्रण (मोटिवेशन)

किसी मनुष्य की काम-विधेय की परिस्थिति को उस परिस्थिति के प्रति उगड़ी व्यक्त क्रिया प्रतिनिधियों को तथा उसके समूचे व्यक्त व्यवहार को जानने पर भी यह बाधा नहीं किया जा सकता कि हम उसे पूर्णरूपेण समझ गए।^{११४} क्योंकि मनुष्य का जो रूप दूसरों पर प्रकट होता है वही जो उसका आन्तरिक रूप नहीं होता। इससे व्यक्त रूप से अधिक महत्वपूर्ण और रहस्यमय उलझ यह रूप होता है जो जाने या समझने अविश्वस्यमान होने से बचा रहता है और उससे व्यक्त रूप का प्रति करता रहता है। मनुष्य के व्यक्त आचार, विचार और व्यवहार में उसने परित्र का एक भाग ही प्रतिबिम्बित हो पाता है। रोप का तो उसकी व्यक्त चित्रणों में सामान्य तक नहीं निरता।^{११५} मानव-परित्र हिमनग (पाईसबर्ग) के समान है जिसका केवल नवमास ही उस के ऊपर बिछाई देता है और रोप पानी के भीतर छिपा रहता है। मनुष्य के उस अव्यक्त परित्र को जाने बिना जो उसके समूचे रूप को प्रति करता है मनुष्य को पूरी तरह समझ सकना सम्भव नहीं।^{११६} इसीलिए उपम्यास स्थिररूप के पश्चात् अपने पात्रों की व्यक्त क्रिया प्रतिनिधियों के पित्रण में ही नहीं उसका रहता प्रत्युत उनके मानसिक संघर्ष को अपने आग-वास के आनाकरण के प्रति निरंतर विरहित होते रहने वाले उनके दृष्टिकोण तथा उनके प्रकट व्यवहार की अंतः प्रेरणाओं (इंटरनल मोटिव्स) को प्रकाश में लाता रहता है।

अनु-जगद् में किसी व्यक्ति के व्यक्त आचरण के पीछे छिपी भीतरी प्रेरणों को

[114] *Basic Psychology and Life* Scott Foreman, New York third edn., p. 122:

"When all we know about a person's behavior is the external stimulus situation, our description of his behaviour cannot be complete."

[115] H. A. Murray *Explorations in Personality* Oxford University Press, New York, 1934 p. 111

"There are many complicated factors that disturb a simple intention effect relation. In the first place an intention is not usually realized in actual life due to opposition, interruption, internal conflict or the subject's inability. And even when the effect is realized it may be even harder to detect than the intention of the subject."

[116] *Basic Psychology and Life* p. 122

"To understand why a person behaves as he does in any particular situation you must know what external situation he is in—but you must know more than that. You must also understand his internal situation which plays an extremely important part in determining and determining his behavior."

पहचान पाना बड़ा कठिन होता है।^{११७} प्रायः हम उसके बारे में ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा पाया करते और वह व्यक्ति हमारे लिए एक पहेली बना रहता है। पर उपन्यासकार अपने पात्रों का स्रष्टा होने से उन्हें बाह्याभ्यन्तर से भसी प्रकार जानता होता है और उनके चरित्र-विकास की प्रत्येक बिम्बा के अव्यक्त प्ररकों के परिचित्र होता है। इसलिए, वह अपने पात्रों की व्यक्त क्रिया प्रतिक्रिया उनके अनुभाव प्रादि के चित्रण के साथ-साथ उनको प्रेरित करने वाली संतुष्टेरणाओं को भी प्रकाश में लाता रहता है। ऐसा किए बिना उसके पात्रों का चरित्र चित्रण अधूरा और असंगत रह जाता है। पात्रों की संतुष्टेरणाओं के चित्रण (मोटिवेशन)^{११८} द्वारा ही तो उपन्यासकार अपने पात्रों के बहुकम्पी और परस्पर-विरोधी भावरस में एकसूत्रता लाकर उन्हें युक्ति-युक्त ठहराता है। उनमें संतति बैठाता है।^{११९}

पात्रों की चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता उतना उनके व्यक्त भावरण की समानता पर निर्भर नहीं करती बिना कि उसके पीछे काय करने वाली प्रेरणाओं की एकसूत्रता पर।^{१२०} समान परिस्थितियों में पात्र की सदा एक-ही प्रतिक्रिया ही प्रकट हो यह आवश्यक नहीं पर यदि विभिन्न प्रतिक्रियाओं को जन्म देने वाली संतुष्टेरणाएँ भी भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी होंगी तो उसका चरित्र-चित्रण द्विभ्रम और असंगत दिखाई देने लगेगा। इसलिए किसी पात्र के विभिन्न कासीम भावर-व्यवहार में असमानता होने पर भी उसे प्रेरित करने वाले कारणों में समानता लाया आवश्यक हो जाता है। चरित्र-चित्रण की सफलता पात्र के बहुकम्पी क्रिया कलापों में तर्कसंगत मेल बैठाने में है। चरित्र-चित्रण में विचित्रता प्रायः तभी घाया करती है जब पात्र या तो निरुद्देश्य इधर-उधर भटकने लगते हैं या फिर उपन्यास के कथानक की आवश्यकता-पूर्ति के लिए अपनी मूल प्रकृति के विरुद्ध भावरस करने लगते हैं और उपन्यासकार उनके परस्पर-विरोधी भावरस के युक्ति-युक्त कारण उपरिपक्ष नहीं कर पाता।

११७ Murray *Explorations in Personality* p. 243:

"...The S (subject) is often unconscious of his motives or if conscious is unwilling to reveal them.

११८ Ross, *The Enjoyment of Literature* p. 223:

"The assigning of motives and the reactions which they cause is called motivation.

११९ Ibid, p. 223:

"Motives do not necessarily have to be reasonable—they are not always so in real life—but they must be natural and they must be consistent in what we know of character

१२० Haines, *Living with Books* Columbia University Press, New York 1940 p. 226.

घम्टाई गू (इम्पर्टल कान्फ्लिक्ट)

जब कोई पात्र जीवन के किसी ऐसे मोड़ पर आ पहुँचता है जहाँ उसने सामने परस्पर विरोधी दिशा में जाने वाले दो मार्ग आ पड़े हों और वह परिस्थितियों उन दोनों में से किसी एक पर चलने के लिए बाध्य हो पर दोनों को समान रूप से उपयोगी न अनुपयोगी समझकर यह निश्चय न कर पाता हो कि किसे अपनाए और किसे छोड़े तब उसके मन में एक अक्षयनीय द्वन्द्व दिव्य जाता है जो उसे प्रतिपाद्य वैचल्य किए रखता है। ऐसी स्थिति में पात्र की अतिविचलता का कारण नहीं एक और समझी दृष्टि में दोनों मार्गों की समान उपयोगिता न अनुपयोगिता होती है वहाँ समझी द्विचित्रावृत्त का दूसरा कारण उसमें धारमिक और इच्छा-चरित्र की कमी भी हो सकती है। यस्त वह यही सोचता रह जाता है कि समुक्त मार्ग अपनाते में उसे यह क्षति उठानी पड़े और दूसरे को अपनाने में उसे यह हानि होगी और वह दोनों में से किसी प्रकार की क्षति उठाने के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाता। ऐसा पात्र भीतर ही भीतर घुमता रहता है और यदि किसी निश्चय पर पहुँचता भी है तो बड़ी देर के बाद और यह भी अन्तमें बाध से। उसकी क्रिया प्रतिक्रिया द्वारा प्रेरित परिस्थिति-विशेष में उसका निश्चय अनेक दूरियों को धर्मगत प्रतीत हो पर यदि उग्र निश्चय पर पहुँचने से पहले उसके मन में उठे और संपर्कनित्त विलेप का पड़ा पात्र आए तो उस पात्र को समझने में गलती नहीं हो सकती। इसलिए, अपने पात्रों के परस्पर विरोधी क्रिया-कलापों में संगति बैठाने के लिए भी उपन्यासकार पात्रों के घम्टाई गू का चित्रण किया करता है।

घम्टाई गू का मूल—घम्टाई गू उन्हीं पात्रों के भीतर छिड़ा करता है जिनके निश्चय जीवन और मृत्यु के मुख्य स्पष्ट नहीं होते जो यह निश्चय नहीं कर पाते कि किस को किस पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जिन पात्रों की धारणा में बल होता है और जिनकी इच्छा-चरित्र प्रबल होती है तथा जिनके निश्चय सामाजिक कृत्रिम मुद्रा होते हैं उन में घम्टाई गू नहीं उठ पाता। वे भीषण से भीषण परिस्थितियों में भी बिचलित नहीं होते और सर्व से अपने बच पर बढ़ते जाते हैं। इसीलिए हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों के पात्रों में आन्तरिक संघर्ष का नाम तक नहीं मिलता। उनके सामने सामाजिक कृत्रिम इतने स्पष्ट हैं कि उन्हें उग्र निश्चय पर पहुँचने की ही मने लगती कि क्या किया जाए और क्या न किया जाए। प्रेमचन्द तक के पात्रों में भी आन्तरिक मार्ग में अन्त संघर्ष नहीं मिलता। घम्टाई गू के कारण होने हुए भी वे अपने बच रहते हैं। पर रैड्ग्ल एसायज बोरी एवेन बादि बनेरैड्ग्लिज उपन्यासकारों की गहन चरित्र उनके पात्रों की भीतर ही उग्र हो उपादने में ही लगती जाती है।

केवल और अकेल घम्टाई गू—पात्रों के भीतर दो प्रकार का संघर्ष हो सकता है—केवल और अकेल। केवल संघर्ष वह है जो पात्रों के केवल मन में हो, जिनके प्रति पात्र आत्मक हैं और उनके चरित्रों की अपनी प्रकार से जान-गमने हो। अकेल संघर्ष वह होता है जो पात्रों के अकेल मन में हो अर्थात् दो अकेल चरित्रों के चरित्रों की

पसन्द तो वाह्य हो। वास्तव रूप में पान प्रणो भावना प्रतिपादित है तो पाता है पर उसकी शैली भी यों ही यह वह समझ नहीं पाता। पान को कुछ करना चाहता है वह उससे हो नहीं पाता और जो वह नहीं करना चाहता उसे कर बैठता है। उसके स्वभाव में एक ऐसा भीतरी विरोध भर चुका है जो किसी भी स्थिति से उसका मानसिक मेस नहीं बैठने देता।

प्रेमचन्द के उपन्यास 'प्रतिष्ठा' की नायिका प्रेमा और जैनेन्द्र के 'प्रियंका' की नायिका सुबनमोहिनी का विवाह उस से नहीं हो पाता जिससे वह प्रेम करती है पर दोनों ही बिना विरोध के उससे विवाह कर लेती हैं जिससे उनका प्रेम नहीं होता। विवाह के पश्चात् दोनों का ही यह निश्चय रहता है कि वे पति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करती रहेंगी। पर वहाँ प्रेमचन्द की नायिका प्रेमा अपने निश्चय पर घटस रहती है और मन में किसी प्रकार के संघर्ष की छलने दिए बिना अपने पतिव्रत को निभा लेती है जैनेन्द्र की सुबनमोहिनी साज बेष्टा करने पर भी पति के प्रति सखी नहीं रह पाती। प्रेमी को भी तो वह समर्पित नहीं हो पाती। जीवन भर वह पति और प्रेमी के बीच झगड़ती रहती है। पूर्णतः समर्पित दोनों में से किसी को भी नहीं हो पाती। उसके ध्येयतन में यौन प्रवृत्ति (सेक्स चार्ज) और विवेक दुष्टि (मार्शल्ल) में एक भीपण संघर्ष सक्रिय रहता है जो उसके भावना-विचार और व्यवहार को प्रभावित करके किसी भी परिस्थिति से उनका मेस नहीं बैठने देता। फलतः वह जीवन भर कटी-कटी सी रहती है। पर उसका कारण नहीं जान पाती।

चन्द्रशेखर का चित्रण

पात्रों के चरित्र में व्याप्त संघर्ष को तो उपन्यासकार उनके चन्द्रशेखरों (इन्टीरियर कॉन्फ्लिक्ट) के विचार द्वारा व्यक्त करा सकता है पर ध्येयतन समर्पण उपादान के लिए उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और उसे मनोविश्लेषण (साइको एनेलिसिस) स्वप्न-विश्लेषण निराधार प्रत्यक्षीकरण विवर्तन (हैल्यूसीशन ऐनेलिसिस) सम्बोधन-विश्लेषण (हिप्नो ऐनेलिसिस) अव्यक्तोद्भूत-विश्लेषण (ऐनेलिसिस थ्रू रिफ्लेक्शन) पूर्णतः प्रणाली (क्रिस्टली मथड) रास-महामूर्ति-रीसा (बर्न एन्सोसिडेशन टेस्ट) आदि उन सभी प्रणालियों का सामना करना पड़ता है जिन्हें एक मनोविश्लेषक अपने-प्राचीन की मनोवैज्ञानिकों को समझने के लिए अपनाता है। उपन्यासकार

प्रतिष्ठा (इन्टीरियर कॉन्फ्लिक्ट)

संश्लेषण प्राप्त समर्पण

ऐसा धुन भाषण होता है जिसमें वा

किसी सुनि-सुख प्रवृत्ति के अपने चन्द्र

जो बिना सुलझे ही बमित (रिप्रेसेड) होकर ध्येयतन में बँध गए होते हैं, व्यक्ति के भाव, विचार और आचार को प्रभावित करते रहते हैं और उनमें आशेष्य तनावों को जम बैकर स्थिति के साथ उसका मानसिक संतुलन नहीं बँधने देते।^{१४४} इन्हीं दुःख स्मृतियों तथा संघर्षों को जो उसकी अधिकांश कठिनाइयों का कारण बनते हैं पात्र के ध्येयतन से निकालकर ध्येयतन में से धागा और उनके निराकरण में उसकी सहायता करना मनोविश्लेषण का जरमोहंस्य है।^{१४५} फ्रॉइड और उसके अनुयायियों का विश्वास है कि पात्र जब तक अपनी कठिनाइयों के ध्येयतन प्रेरकों को जानेगा नहीं तब तक उनसे बच नहीं पाएगा। पात्र के ध्येयतन की परत पर परत खोलने के लिए फ्रॉइडवादी मनोविश्लेषक कई प्रणालियों का प्रयोग करता है जिनमें मुख्य हैं—मुक्त आशय (फ्री एसोसिएशन) बाधकता विश्लेषण (नेनेसिस बाध रेजिस्टेंस) संक्रमण-विश्लेषण (ट्रान्सफरेंस बाध ट्रांसफरेंस), और स्वप्न-विश्लेषण (ड्रीम ऐनेलिसिस)। मनोविश्लेषक की तरह उपन्यासकार भी इन प्रणालियों को अपनाता है पर उसका उद्देश्य भिन्न होता है।^{१४६} मनोविश्लेषक की तरह वह अपने पात्रों को स्वस्थ करने के लिए उन पर इन प्रणालियों का प्रयोग नहीं करता। वह ही वह अपने पात्रों व पाठकों को कोई सलाह देता है प्रत्युत उसका उद्देश्य होता है—पात्र के ध्येयतन में व्याप्त संघर्ष को उद्घाटित करके भिन्न भिन्न स्थितियों में उनके भाव विचार और आचार को प्रेरित करने वाले कारणों में एकत्रता लाता ताकि वे पाठकों की समझ में आ सकें।

मुक्त आशय (फ्री एसोसिएशन) प्रणाली—मुक्त आशय में पात्र धारम से बित जाता है और अपने मन को खुला छोड़ देता है कि वह कहीं जाए। तब उसके कहा जाता है कि उसके मन में जो कुछ भी आ रहा है उसे कहता बसा जाए। मानों वह देसपाड़ी की एक छिड़की में बैठा है और उसकी छिड़कों के सामने से जो कुछ भी गुजर रहा है उसे वह अपने पीछे बैठे साथी को बता रहा है कुछ भी छोड़े बिना। मनोविश्लेषकों का विश्वास है कि इस प्रकार व्यक्ति जब मुक्तमुक्त विचार के बोक से बच जाता है उसके ध्येयतन में बँसी सामग्री ध्येयतन में धाने लगती है और इसी सामग्री में उसकी मनार्थज्ञानिक कठिनाइयों से सम्बन्धित गहरा आंतरिक दर्श रहता है। यह गहरी व्यक्ति की धारोपित दर्श से मुक्त करा देती है ताकि वह गहरा दर्श जिसका सम्बन्ध उसकी अतृप्त महत्वाकांक्षाओं से होता है, उभर आए।^{१४७}

[१४४] Ruth, 'Psychology and Life' p. 327-328.

[१४५] Freud, 'New Introductory Lectures on Psycho-analysis' 1923, p. 112: "Psycho-analysis aims primarily at the reclamation of the Id by the Ego."

[१४६] Hoffman, 'Freudianism and the Literary Mind' p. 130.

[१४७] P. Schilder 'Psycho-analysis, Man and Society' W. W. Norton, New York, 1951 p. 71.

"This method liberates the individual from the constraint of a superficial meaning that a deeper meaning may come to surface meaning which is in relation to the unsatisfied needs and wishes of the individual's life."

Sigmund Freud 'Self Analysis' p. 161.

मुक्त धारण में पात्र का कर्तव्य होता है । अपने मन में जो भी उठ रहा हो—विचार, इच्छा इन्हीं और लग्नित पारिरीक संवेदना धारि—उम सचाँ और स्पष्टता के साथ पुरा-पुरा बताते बसना । अपने अचेतन में काम कर रही प्रेरणाओं के प्रति अचरक होना और । धीरे-धीरे उन अचेतन प्रतिग्याओं (ऐटिबूट्स) के बरनने के लिए जो उसे प्रायः अमृतुमित कर देते हैं अपने में योग्यता पैदा करना । मनाविरुध्द का काम होता है । १ बैरना-मुनना (घॉइबेउम) २ ममभना (मॉस्टेडिंग) ३ व्याख्या करना (इन्टरप्रेटेशन) ४ बाधकता के समय सहामता देना (हैन्य इन रेजिस्तर) और अनुपपत्ता के नाते पात्र को अल्प अक्षरानु सहायता देना ।^{१५} उपन्यास के पात्रों से यह माया ली गयी जा सकती है कि वे पूरी सचाई और स्पष्टता के साथ, अपने मन में जो हो रहा है उस बताते बसें और अचेतन में काम कर रही प्रेरणाओं के प्रति सजग रहकर उनका भी उत्प्रेषण करने जाएँ, पर उनसे यह माँग नहीं की जा सकती कि वे अपने अचेतन प्रतिग्याओं का बरनने की चेष्टा करें । इसी प्रकार, उपन्यासों में मनोविरुध्द कृत्या काम करने वाला पात्र दूसरे पात्र द्वारा दिए गए ध्योरे को ध्यान से सुनता रहेगा ममभना रहेगा उसके मन में पर सीखवपुष प्रशनों द्वारा उसे बार-बार मुखरित करता रहेगा तथा उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए उसे अल्प साधारण सहायता भी देता रहेगा पर वह व्याख्या द्वारा पात्र को समझाने नहीं बैठेगा । व्याख्या बह करेगा पर मुक्त धारण की समाप्ति के बाद उस पात्र की अनुपस्थिति में क्योंकि उसकी व्याख्या पात्र के लिए नहीं पाठक के लिए होगी ।

जैनेन्द्र के उपन्यास 'अथर्वचर्य' में मुक्त धारण प्रयुक्तियों का मायावीय प्रयोग हुआ है ।

बाधकता विरोधक (ऐनलितिक घॉइ रेजिस्टेंस)

यद्यपि पात्र के मुक्त धारण के आरम्भ होने से पहले ही मनाविरुध्द उम समझा है कि मुक्त धारण के समय उसके मन में जो कुछ आए, उसे पुर का पुरा किसी चीज को छोड़े या बरने बिना बहने जाने के उसका अन्त ही हिन निहित है तो भी पात्र प्रायः उन स्मृतियों या अनुभूतियों को जिनसे वर्तन में उम अस्था होती हो या मग्ना जाती हो या तो बिभक्तुन छोड़ जाता है या उसके वर्तन में ईद्विधवाता है और या उनका उत्प्रेषण करने से एवम इनकार कर देता है । अपने मुक्त धारण का बरन करता-करता पात्र जित स्थान और विषय पर अचानक रुक जाता है और अपने अनुसर बजाने में अनादानी बरने मग्ना है उन्हें मनोविरुध्द बना मग्ना दता है क्योंकि कोई व अनुसार इन बिन्दुओं का उन पात्रों की मनोविरुध्द व त्याग के अचेतन कारणों में अहित सम्भव होता है । ऐसी स्थिति में मनाविरुध्द का मुक्त धारण हो जाता है कि पात्र की बाधकता को तोड़कर उन मुक्त स्मृतियों का अन्त

^{१५} In my *Harmon Self Analysis* I show there can be the 1st a physical process p. 123 and also, p. 101.

धीर मनुष्यों को उसके चेतन मन में लाए, क्योंकि जब तक उसका चेतन मन उस समस्याओं के वास्तविक स्वरूप और उनके कारण को समझेगा नहीं उन्हें हल करने में उस सफलता नहीं प्राप्त हो सकती।

स्वप्न-विश्लेषण (ड्रीम ऐंसेलिसिस)

वस्तु-जगत् के व्यक्तियों की भाँति उपन्यास जगत् के पात्र भी सो निमा करते हैं पर उनका सोना बिन भर की बकान बूर करने के लिए नहीं औपन्यासिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। इसीलिए, जब वे सोते हैं तो निर्वच निद्रा का आनन्द नहीं ले पाते। उस भर के अनेक प्रकार के स्वप्न देखते रहते हैं जिनके विश्लेषण द्वारा उपन्यासकार उनके चरित्र-विकास की दृढ़ी कड़ियाँ जोड़कर उसे पाठकों के लिए सुबोध बना देता है।

स्वप्न-संघटन (ड्रीम मैकेनिज्म) — फ्रायडबादी मनोविश्लेषकों का विश्वास है कि प्रत्येक स्वप्न का एक अर्थ होता है^{१४६} इसलिये, विश्लेषण द्वारा वे छिर-बीर के विभिन्न से विभिन्न स्वप्नों की भी युक्ति-युक्त व्याख्या की सकती है।^{१४७} स्वप्न का अर्थ ही उसका कारण होता है।^{१४८} इसलिये, स्वप्न का अर्थ जान लेने पर स्वप्न के कारणों का जो पात्र के चचेतन में उदब-पुदब मपाकर उसे बैबन किए रखते हैं, पता चल जाता है। इसी कारण फ्रायडबादी व्यक्ति के चचेतन को समझने में स्वप्न विश्लेषण की उपायेयता पर बहुत धोर देते हैं।^{१४९} उनका विश्वास है कि हमारे चचेतन संघर्ष के कारण जो वायुतावस्था में चेतन मन में नहीं व्यक्त हो पाते मूढ़ता हमारे स्वप्नों में अभिव्यक्ति पा जाता करते हैं। और यदि वे बारु इसने दुःख या असामाजिक हों कि सुपुण्यावस्था में भी वे अपने मूल रूप में हमारी विवेक बुद्धि की स्वीकार्य न हों तो वे स्वप्न में रूप बदलकर आया करते हैं। उन रूप बदलने की क्रिया को स्वप्न-संघटन (ड्रीम मैकेनिज्म) कहते हैं।

फ्रायड ने मुख्य रूप से पाँच प्रकार के स्वप्न-संघटन माने हैं—१ संघनन (कन्डिन्सेशन), २ विस्मापन (डिस्सेसमेंट) ३ लाटकीकरण (डिपेन्डेंसेशन) ४ प्रतीकीकरण (सिम्बोलाइजेशन) तथा ५ सैकण्डरी एसेसोरेशन। जिस स्वप्न-संघटन में अनेक विचारों और व्यक्तियों से सम्बन्धित इतित भावनाएँ स्वप्न में इस प्रकार प्रकट हों कि वे सब मिसकर एक स ही सम्बन्धित प्रतीत हों उसे 'कन्डिन्सेशन' कहते हैं।^{१५०} जिस स्वप्न-संघटन में किसी व्यक्ति के प्रति वायुतावस्था की अनुभूतियाँ तथा संवेदनाएँ

१४६ Freud, *Interpretation of Dreams* p. 13 and 1-0.

१४७ Dalbels, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. 31

१४८ Frick, 'Morbid Fears and Compulsions' p. 19-22.

१४९ Freud *Interpretation of Dreams* p. 239

१५० Freud, 'Interpretation of Dreams' *The Basic Writings of Sigmund Freud* trans. by Dr. A. A. Brill Modern Liby., New York, 1938, p. 230

उस व्यक्ति से हटकर किसी अन्य व्यक्ति से सम्बन्ध हो जाए, उसे डिस्ससर्वेंट^{१२४} कहते हैं। स्वप्न से एन्डम पहले की आयुतावस्था के भावों या विचारों का स्वप्न में छाया-चित्रों के रूप में प्रकट होना, माटकीकरण कहलाता है। जहाँ व्यक्तियों या घटनाओं से सम्बन्धित दुःख या असामाजिक अनुभूतियाँ या संवेदनाएँ अपने मूल रूप में प्रकट न होकर प्रतीकों के सहारे रूप बदलकर प्रकट होती हैं उस स्वप्न सपटम को 'प्रतीकीकरण' कहते हैं।^{१२५} माटकीकरण और प्रतीकीकरण स्वप्न-सपटम में अन्तर यह है कि माटकीकरण में प्रतीक और प्रतीकीकृत भाष का सम्बन्ध अतिशय होना है जबकि प्रतीकीकरण में उनका सम्बन्ध व्यापक (ममण्डित) होता है।^{१२६} जिस बिचा के फलस्वरूप व्यक्ति स्वप्न से आयुतावस्था की ओर बढ़ने के साथ-साथ स्वप्न में देखी बातों में एक इजिप्त प्रम साता जाता है उसे 'सेक्युरी एम्बारेस' कहते हैं।^{१२७}

उपन्यास में स्वप्न-विश्लेषण—इन स्वप्न-सपटनों के माध्यम से उपन्यासकार अपने पात्रों की अचेतन प्रेरणाओं को जो उनके ध्यान में ही उनके विचार और व्यवहार को प्रभावित करके किसी भी स्थिति से उनका मानसिक संतुलन नहीं बैठने देती प्रकाश में लाता है। उदाहरणार्थ अज्ञेय के 'घेर' एर जीवनी' पहला भाग के पृष्ठ १४२-१४३ पर का रोटर का स्वप्न में। उस स्वप्न में 'कन्टेम्प्लेशन' मैकेनिज्म से उसके गत जीवन के अनेक भाग विचार और संवेदनाएँ तथा कई दृश्य मिलकर एकाकार हो गए हैं। प्रतीकीकरण द्वारा रोटर के जीवन की कटु और भीरु या पंथा मरुस्थल के रूप में प्रकट हुई है और माटकीकरण द्वारा उनको घड़ (एगो) मैर्ज का रूप धारण किया जिस पर चढ़ कर वह उन मरुस्थल को धीरता हुआ माना जा रहा है। 'रोटर एक जीवनी के पहले भाग के पृष्ठ १२५ पर रोटर का जो स्वप्न मिलता है उसमें पहलू बिन की छान्ति के प्रति रोटर की समस्त संवेदनाएँ विस्थापित होकर धारदा से गंत जाती हैं और इस प्रकार उपन्यासकार यह दिगा कर कि धारदा को मुलाकर छान्ति के प्रति रोटर का आकर्षण होना रोटर की विवेक-बुद्धि को स्वीकार्य न वा रोटर के अचेतन में सक्रिय उसकी योग (संज्ञा) प्रपूति तथा विवेक-बुद्धि (बाल्गेस) के संघर्ष को स्पष्ट करा देता है। समाधान जोती के उपन्यास 'जहाज का पंछी' में पृष्ठ ४३०-४३१ पर नायक का भीमा सम्बन्धी स्वप्न जिस रूप में उल्लेख है यह बरी नहीं जो वास्तव में उसने देखा था। जागने पर तो वह स्वप्न उमारी एन्डम भूल गया था और "अनेक न्याय-मानिक प्रमाणों (सेक्युरी एम्बारेस) के बाद ही वह उस स्वप्न के सामाग को सचेत मन पर लाने में सफल हुआ था।"

^{१२४} Ibid., p. 338.

^{१२५} Ibid., p. 370.

^{१२६} Dhillon 'The Psycho-analytical Method and the Diction of Freud' p. 115.

^{१२७} Ibid. p. 170-171.

निराधार प्रत्यक्षीकरण का विस्लेषण (हैम्यूसीनेशन ऐनेलिसिस)

स्वप्न-विश्लेषण के प्रतिरिक्त उपमासकार कई बार पाशों के निराधार प्रत्यक्षीकरण के विस्लेषण द्वारा भी अचेतन में व्याप्त संघर्ष का आभास करा दिया करता है। 'हैम्यूसीनेशन' में व्यक्ति उद्दीपन (स्टिमुलस) की अनुपस्थिति में भी उसे प्रत्यक्ष देख लेता है। मानसिक रोषग्रस्त व्यक्तिओं को साधारण परिस्थितियों में भी 'हैम्यूसीनेशन' हो जाता है।^{११०} स्वप्न की भांति 'हैम्यूसीनेशन' भी निरी मनोरचना होती है।^{१११} 'हैम्यूसीनेशन' और स्वप्न में अन्तर यह है कि स्वप्न में निराधार प्रत्यक्षीकरण सुपुष्पावस्था में होता है और 'हैम्यूसीनेशन' में वह जागृतवस्था में ही हो जाता है।^१ 'हैम्यूसीनेशन' में अधिकतर दुष्टि तथा अग्नि एन्धमी प्रत्यक्षीकरण ही पाया जाता है।^{११२} 'हैम्यूसीनेशन' का रोगी रीक की प्रारम्भिक अवस्था में तो उसे घम कहाकर टास देता है, पर रीक के बहु भाग पर वह दिखाई देने वाली शक्तों या सुनाई देने वाली आवाजों उस पर काबू पा लेती हैं तो वह उन्हें सत्य मान लेता है।^{११३}

जैनेन्द्र ने अपने उपमास 'कल्याणी' में नायिका के 'हैम्यूसीनेशन' द्वारा त्रियमें वह प्रतिदिन नुसलभाति में रीने और भ्रमरों की आवाजें सुनती हैं और एक आदमी को वहाँ से निकलकर जाते देखती है।^{११४} उसके अचेतन में यह रही उपल-नुसल का परिचय करवा है।

सम्मोह-विश्लेषण (हिप्नो-ऐनेलिसिस)

मानसिक रोगों के इलाज में सम्मोह-प्रक्रिया का वास्तविक महत्त्व है यद्यपि है वह सीमित ही। सम्मोहन द्वारा सम्पादक पात्र की सम्मोह-विज्ञा की अवस्था में से पाता है और फिर धीरे धीरे उसके प्रश्न करता हुआ उसके मठ जीवन की घटनाओं और अज्ञानित अनुभूतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है जो उसकी मनो-वैज्ञानिक समस्याओं का मूल कारण रही हों। आरम्भ में तो कौनसे भी इस बात से सहमत रहा कि सम्मोहन द्वारा व्यक्ति के अचेतन में इसी पड़ी अनुभूतियों की प्रकाश में लाया जा सकता है, पर बाद में इस विज्ञा से उसे भूला हो गई क्योंकि इस विज्ञा द्वारा प्राप्त फल असह्यनी होता है।^{११५} उसके पहले बड़े आरम्भ का कारण यह था कि सम्मोहन विज्ञा से उठने पर पात्र को उसके बारे में उन भावों का कुछ भी पता

११० राशिचन्द्र सिन्हा 'प्रयोगिक मनोविज्ञान' पुनर्मुद्रण, पन्ना, १९३३ पृष्ठ ११०।

१११ Hinkle, 'Indian Psychology' Perception p. 314

११२ Frank Padmore Apparitions and Thought Transference p. 186.

११३ राशिचन्द्र सिन्हा 'प्रयोगिक मनोविज्ञान' पृष्ठ १२०।

११४ McDougall, An Outline of Psychology p. 373.

११५ डी.के. 'न-जरी' हिन्दी-अनल साप्ताहिक कागज़ १९३३ पृष्ठ ७१-७२।

११६ Deltos, Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud p. १०५

नहीं रहता जो उसने सम्मोह-निद्रा में व्यक्त भी हों। इस प्रकार, सम्मोह-निद्रा में व्यक्त अनुभूतियाँ व्यक्त के चेतन में नहीं आ पातीं। भाषक का बड़ बिरास या कि जब वह व्यक्त अपने अचेतन में बसित प्रणियों और उनके कारणों को चेतन मन में स्वीकार न कर ले उसकी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ सुलभ नहीं सकती।¹¹²

सम्मोहन की प्रक्रिया—सम्मोहन-क्रिया कोई आधुनिक नहीं। यह तो एक उच्च सुमन्यपूर्ण अवस्था होती है जिसमें जानकार सम्मोहक राजामन्त्र पात्र को ल गाता है। सम्मोहन की कई प्रणालियाँ हैं सिद्धान्त सब का एक ही है। सबसे पहले पात्र को बुद्धि प्रयोग स्वामन्त्र अपने धापको सम्मोहक की दृष्टि पर छोड़ देना होता है फिर सम्मोहक उसे धीरे धीरे आदेश देने लगता है जैसे 'काउच पर बैठ जाओ। फिर वह पात्र को कुछ ऐसी बात बताता है जो पूर्णतया सत्य होती है। जैसे बमरा घास है बतियाँ भीची हैं। इस प्रकार पात्र का बिरास प्राप्त कर लेने पर वह उसे कुछ ऐसी बात बताता है जो भाषिक रूप में ही सत्य होती है और फिर वह उसे ऐसे काम करने का आदेश देता है जो अधिक असंभव नहीं होते। इस प्रकार सम्मोहन की ऊँची अवस्था में पात्र को एकदम असत्य बात का भी विश्वास कराया जा सकता है और उससे वे काम करवाए जा सकते हैं जिनके बारे में साधारणतः वह सोच भी नहीं सकता और जिनको वह एकदम असंभव समझता है। इस सारे समय में सम्मोहक एक ऐसी आवाज में दोसता रहता है जो पात्र को मोहित करके उसे पूर्णतः चिपिला करवा में ले जाती है।

उपन्यास में सम्मोह-विरूपण—सम्मोहन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस प्रक्रिया द्वारा प्रभावर्तन (रिप्लेस) को भी सम्भव बनाया जा सकता है। सम्मोहित व्यक्ति को बिरास दिया दिया जाता है कि वह छोटी उमर का है और उसे यह बताने के लिए कहा जाता है कि वह क्या कर रहा है उससे अनुभव क्या है और उसको महाराजाधारा क्या है? सम्मोह-निद्रा में व्यक्त उन सब अनुभूतियों को स्पष्ट तथा वाद कर लेता है जो वपों से उससे अचेतन में बची पड़ी हैं।¹¹³ सम्मोहन के बारे में दो बातें उल्लेखनीय हैं। एक यह कि किसी भी व्यक्ति को उसकी दृष्टि के बिना सम्मोह-निद्रा में नहीं लाया जा सकता और दूसरे सम्मोहित कर लेने पर भी उससे उगरी किसी मूल नीतिक धारणा के बिना कार्य नहीं कराया जा सकता।¹¹⁴

नई उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में सम्मोह विरूपण का प्रयोग किया है। अपने पात्रों की सम्मोह निद्रा में वे उनके अचेतन में पड़ी प्रणियों का उत्पादन कराकर उनके चरित्र विकास की दूरी बढ़ियों का जोड़ने हैं। इसका

¹¹² Rich, *Psychology and Life* p. 329

Karen Horney *Self Analysis* p. 131

¹¹³ Rich, *Psychology and Life* p. 19

¹¹⁴ Dr. Tracy *How to Use Hypnosis* Arco, London p. 62

निराधार प्रत्यक्षीकरण का विस्लेषण (हैल्मुसीनेसन ऐनेलिसिस)

स्वप्न-विस्लेषण के अतिरिक्त उपन्यासकार कई बार पात्रों के निराधार प्रत्यक्षीकरण के विस्लेषण द्वारा भी अचेतन में व्याप्त संघर्ष का आभास कर दिया करता है। 'हैल्मुसीनेसन' में व्यक्ति चरीपन (स्टिमुलस) की अनुपस्थिति में भी उसे प्रत्यक्ष देख लेता है। मानसिक रोमञ्चित व्यक्तियों को साधारण परिस्थितियों में भी 'हैल्मुसीनेसन' हो जाता है।^{११०} स्वप्न की भांति 'हैल्मुसीनेसन' भी निंदी मनोरचना होती है।^{१११} 'हैल्मुसीनेसन' और स्वप्न में अन्तर यह है कि स्वप्न में निराधार प्रत्यक्षीकरण सुपुष्ठावस्था में होता है और 'हैल्मुसीनेसन' में वह जागृतवस्था में ही हो जाता है।^{११२} 'हैल्मुसीनेसन' में अधिकतर दृष्टि तथा श्रुति सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण ही पाया जाता है।^{११३} 'हैल्मुसीनेसन' का रोबी रोय की प्रारम्भिक अवस्था में तो उसे भ्रम कहकर टाल देता है, पर रोय के बड़ बाने पर जब दिखाई देने वाली धक्के या मुगई देने वाली आवाजें उस पर काबू पा लेती हैं तो वह उन्हें सत्य मान लेता है।^{११४}

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास 'कन्याणी' में नायिका के 'हैल्मुसीनेसन' द्वारा जिसमें वह प्रतिदिन मुसलमानों में रोने और झुकने की आवाजें सुनती है और एक घादमी को वहाँ से निकलकर बाहे देखती है।^{११५} उसके अचेतन में मच रही सचन-मुसल का परिचय कराया है।

सम्मोह-विस्लेषण (हिम्नो-ऐनेलिसिस)

मानसिक रोगों के इलाज में सम्मोह प्रक्रिया का वास्तविक महत्व है यद्यपि है वह सीमित ही। सम्मोहन द्वारा सम्मोहक पात्र को सम्मोह-निद्रा की अवस्था में ले जाता है और फिर धीरे धीरे उससे प्रश्न करता हुआ उसके मन की पटनाओं और तन्मयित अनुभूतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है जो उसकी मनो-वैज्ञानिक समस्याओं का मूल कारण रही हों। आरम्भ में तो फीसड भी इस बात से सहमत रहा कि सम्मोहन द्वारा व्यक्ति के अचेतन में दबी पड़ी अनुभूतियों को प्रकाश में लाया जा सकता है पर बाद में इस क्रिया से उसे घृणा हो गई, क्योंकि इस क्रिया द्वारा प्राप्त फल अस्थायी होता है।^{११६} उसके सबसे बड़े आश्चर्य का कारण यह था कि सम्मोहन निद्रा से उठने पर पात्र को उसके बारे में उन प्रश्नों का कुछ भी पता

११० सवित्र प्रिय 'प्रयोगात्मक मनोविज्ञान' पुनः प्रकाश, पृष्ठा ११२५ वृ ११०।

१११ Elnha, 'Indian Psychology: Perception' p 314

११२ Frank Padmore Apparitions and Thought Transference p 186.

११३ सवित्र प्रिय 'प्रयोगात्मक मनोविज्ञान' वृ ११०।

११४ M Doopall, An Outline of Psychology p. 372.

११५ जैनेन्द्र 'कन्याणी' हिन्दी-संस्कृत साहित्य परिषद् १९३५ वृ ०१-०२।

११६ Dallet, Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud p 403

नहीं रहता जो उसने सम्मोह-निद्रा में व्यक्त की हों। इस प्रकार सम्मोह-निद्रा में व्यक्त अनुभूतियाँ व्यक्ति के चेतन में नहीं आ पाती। कायक का कुछ बिस्वास या कि जब तक व्यक्ति अपने व्यवहृतन में वसित प्रतियोगों और उनके कारणों को चेतन मन में स्वीकार न कर ले उसकी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ सुलभ नहीं बनती।^{११२}

सम्मोहन की प्रक्रिया—सम्मोहन-क्रिया कोई आधुनिक नहीं। यह तो एक उच्च सुन्यावपूर्ण अवस्था होती है जिसमें जानकार सम्मोहक रजामन्त्र पात्र को न घाता है। सम्मोहन की कई प्रणालियाँ हैं सिद्धान्त सब का एक ही है। सबसे पहले पात्र को बुद्धि प्रयोग स्थापक करने कापकी सम्मोहक की इच्छा पर छोड़ देना होता है फिर सम्मोहक उसे धीरे-धीरे आदेश देने लगता है जैसे 'कादम्बर पर बैठ जाया। फिर वह पात्र का कुछ ऐसी बात बताता है जो पूर्णतया सत्य होती है। जैसे कमल गान्ध है बलिमाँ भीची हैं। इस प्रकार पात्र का बिस्वास प्राप्त कर लेने पर वह उन कुछ ऐसी बात बताता है जो घातक रूप में ही सत्य होती है और फिर वह उस ऐसे काम करने का आदेश देता है जो घातक अनाधारण नहीं होते। इस प्रकार सम्मोहन की जैसी अवस्था में पात्र को एकदम असत्य बात का भी विश्वास कराया जा सकता है और उससे वे काम करवाए जा सकते हैं जिनके बारे में साधारणतः बहुत शोक भी नहीं सकता और जिनको वह एकदम असम्भव समझता है। इस सारे समय में सम्मोहक एक ऐसी आवाज में बोलता रहता है जो पात्र को मोहित करके उसे पूर्णतः विचित्रता में ले जाती है।

उपन्यास में सम्मोह-बिरुपेयन—सम्मोहन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस प्रक्रिया द्वारा प्रयासकर्म (रिप्लय) को भी सम्भव बनाया जा सकता है। सम्मोहित व्यक्ति को बिस्वास दिला दिया जाता है कि वह छोटी उमर का है और उसे यह बताने के लिए कहा जाता है कि वह क्या कर रहा है उसका अनुभव क्या है और उसकी महत्वाकांक्षाएँ क्या हैं? सम्मोह-निद्रा में व्यक्ति उन सब अनुभूतियों को स्पष्ट तथा याद कर लेता है जो वर्षों में उसके चेतन में दबी पड़ी हों।^{११३} सम्मोहन के बारे में दो बातें उल्लेखनीय हैं। एक यह कि किसी भी व्यक्ति का उमरी इच्छा के बिना सम्मोह-निद्रा में नहीं लाया जा सकता और दूसरे, सम्मोहन कर लेने पर भी उससे उसकी किसी मुक्त वैयक्तिक कारणों के बिना कार्य नहीं कराया जा सकता।^{११४}

कई उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में सम्मोह बिरोधक का प्रयोग किया है। अपने पात्रों की सम्मोह निद्रा में वे उनके चेतन में पड़ी प्रतियोगों का उद्घाटन करके उनके चरित्र विकास की दृष्टि बढ़ियों का योग्य करते हैं। इसाबग

^{१११} R. H. Psychology and Life p. 220

Karen Horney Self Analysis p. 127

^{११२} R. H. Psychology and Life p. 219

^{११३} Dr. T. H. How to Use Hypnosis, Allen, London, p. 27

बोधी के उपन्यास 'जिप्पी' का नायक नृपेन्द्र इस कथा में रस है और वह समय-समय पर इसका प्रयोग नायिका पर करके उसकी अचेतन प्रेरणाओं को प्रकाश में लाता रहता है।

प्रत्यबलोरुन-विरूपेण (ऐनैलिसिस ऑफ रिफ्लेक्शन्स)

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में वास्तविकता का प्रथम पाँच वर्षों से सम्बन्ध जीवन से अधिक महत्व के ठहरते हैं। कायक की धारणा है कि मनुष्य के बार के जीवन की घसगसियों और विह्वलियों का मूल उसके वास्तव-काल की उन दुःखद अनुभूतियों में होता है जो उस समय मुलके बिना अचेतन में दमिष्ठ (प्रेस्ड) हो जाती हैं।^{११८} व्यक्ति मनोविज्ञान के प्रवर्तक एडलर का तो यहाँ तक विश्वास है कि चार-पाँच वर्ष की अवस्था में बच्चे का जीवन के प्रति एक बार जो दृष्टिकोण बन जाता है जीवन भर बही बना रहता है और उस दृष्टिकोण द्वारा उत्पन्न घसगसियों में ही व्यक्ति के वर्तमान और भविष्य की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों के कारण निहित रहते हैं।^{११९} इसीलिए, व्यक्ति की वास्तव-काल की बटनाओं और उनके प्रति उसके दृष्टिकोण को जानने के लिए उसकी वास्तव-काल की स्मृतियों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।^{१२०} यद्यपि कायक वास्तव-काल की स्मृतियों के महत्व पर ही बस देता है, एडलर वास्तव-काल की पुरानी स्मृतियों तथा बार की अपेक्षाकृत नई स्मृतियों में कोई अन्तर नहीं समझता।^{१२१} उसका विश्वास है कि स्मृतियाँ नई हों या पुरानी जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को ही व्यक्त करती हैं।^{१२२}

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों के अचेतन को उपाड़ने के लिए प्रत्यबलोरुन विश्लेषण का खूब प्रयोग होता है। पात्रों की वर्तमान मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अचेतन कारणों के पकड़ने के लिए उपन्यासकार उनकी स्मृतियों का बहाना करने लगता है और फिर विश्लेषण द्वारा उनकी घसगसियों की प्रकृति पुनः अनुभूतियों को व्यक्त करता है। इसाबात्र बोधी के उपन्यास 'प्रथम और द्वाया' के आरम्भ में ही उसके नायक पारसनाथ को रात भर नींद नहीं आती और उसका गत जीवन की दुःखद घटनाएँ—उसके पिता को उसे आरज संतान प्रोषित करना और उसकी माँ का संग करना एक पहाड़ी लड़की से उसका प्रेम हो जाना और बार में उसे छोड़ भागना आदि—उसके स्मृति-शत पर उभरने लगती हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास 'अतीत का नायक प्रथम अर्ध' में

[११८] Freud, 'New Introductory Lectures on Psycho-analysis', W. W. Norton, New York, 1933 p. 701.

[११९] Adler 'The Science of Living' Greenberg New York 1930 p. 118.

[१२०] Freud, 'Psychopathology of Everyday Life : Childhood and Concealing Memories' 'The Basic Writings of Sigmund Freud : Brill, p. 12.

[१२१] Aachacher 'The Individual Psychology of Alfred Adler' p. 101—commentary.

[१२२] Adler 'Science of Living' p. 118.

जन्म-दिन से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने जीवन का बिन्दुपण करने-करने एक पुस्तक लिख जाता है। प्रत्येक के 'गेदर' एक बीबी का मायक जीवन के घटित पड़ाव पर पहुँचकर प्रत्येक को करने बैठ जाता है। चरित्र के समान एक एक करके घटीत की घटनाएँ अपने स्मृति-पट पर नाचने लगती हैं और वह अपने जीवन की सिद्धि की ओर में उनका बिन्दुपण करता जाता है।

इस प्रकार, मायक के प्रत्येक को करने के बिन्दुपण द्वारा उनके चरित्र के नमिक विकास को चित्रित करना कई मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की मुख्य टैक्नीक बन गई है।

पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली (केस हिस्टरी मैथड)

व्यक्तित्व-व्यवस्था के लिए पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली अन्य सभी प्रणालियों से अधिक उपयोगी समझी जाती है क्योंकि अन्य प्रणालियाँ प्रायः बिन्दुपण-प्रणाली होती हैं जबकि यह संश्लेषणात्मक है। यदि इस प्रणाली का उचित प्रयोग किया जाए तो यह मनोविज्ञान और साहित्य दोनों की कसीटी पर पूरी तरह चरती है।^{१०२} इस प्रणाली में मनोवैज्ञानिक अपने पात्र की वर्तमान सामाजिक अवस्था और उनके कारणों को समझने के लिए उनके पूर्ववृत्त और उनकी विषय अनुभूतियों को एकत्रित करता है। इनके प्रतिरिक्त, वह पात्र पर किए गए अपने विभिन्न प्रयोगों का विवरण मनोबिन्दुपण द्वारा निकले निष्कर्ष तथा विविध प्रकार के साक्ष्यों को भी उसमें सम्मिलित करता है। सफल पूर्ववृत्त में इन विषयों पर प्रमाणिक सामग्री का होना अपेक्षित है—१. पात्र की वर्तमान अवस्था २. पात्र पर पड़े पहले के प्रभावों और उनकी विकास क्रम तथा ३. उनकी सभी प्रवृत्तियों का अनुमान। किसी भी व्यक्ति को पूरी तरह समझने के लिए इन तीनों प्रकार की जानकारी का होना जरूरी है।

इस प्रणाली में कुछ-एक चुटियाँ भी हैं जिनके कारण इस पर पुनर्तया निर्भर नहीं किया जा सकता। इनमें पहली कमी यह है कि पूर्ववृत्त इतने अधिक साँचे दिव्य होते हैं कि वे मनोवैज्ञानिक पात्र के व्यक्तित्व की गहराइयों तक नहीं पहुँचा पाते।^{१०३} दूसरे, यदि मान लें कि किसी एक में पात्र का गहरा व्यवस्था प्रस्तुत किया गया है तो भी जिन मापनों से नामची एकत्रित की जाती है वे ही पूर्णतया विश्वसनीय नहीं बने जा सकते। उदाहरणार्थ कितना या चरित्रचित्रण पात्रों के पूर्ववृत्त को जानने के लिए उनके मातापिता दोस्तों-विशेषों तथा अन्य सम्बन्धियों द्वारा किए गए व्योरो पर ही बिद्वान् करना पड़ता है जबकि हम जानते हैं कि इस प्रकार के विवरणों की सत्यता बिजली सत्य होती है। वे गोप्य बाहे बिजली ग्यार्ड ग व्योरो हैं उनके अपने पूर्ववृत्त उनमें प्रतिबिम्बित हुए बिना न रहेंगे।

उपसमाहार इस प्रणाली का मुख्य उपयोग उपा सकता है। अपने पात्रों का सत्य या पूर्ववृत्त होने में वह उन चुटियों में बच सकता है या मनोवैज्ञानिक

[१०] Allport, *Personality: A Psychological Interpretation*, p. 274-275.

[१०२] Singer, *Psychology of Personality*, p. 65.

द्वारा संकलित सामग्री को संविद्य बना देती हैं। इसाचन्द्र बोधी ने अपने उपन्यास 'बहाल का पंथी' में इस प्रणाली का पुनः प्रयोग किया है। इस उपन्यास का उक्त 'राष्ट्र' पात्रों के पूर्ववृत्तों से भरा पड़ा है।

सम्यक् सहस्रमूर्ति परीक्षण (सर्व एतोसिष्णम टेस्त्)

सम्यक्-सहस्रमूर्ति-परीक्षणों में मनोवैज्ञानिक पात्र को एक सम्यक्-गुरु सरावा गुनावा या पढ़ाता है और उससे पूछता जाता है कि प्रत्येक सम्यक् पढ़ने या सुनने के बाद उसके मन में प्रतिक्रियात्मक में कौनसा सम्यक् सबसे पहले उभरता है। पात्र द्वारा बताए गए सम्यक् के विस्लेषण से वह उसकी मानसिक कठिनाइयों को पकड़ने का प्रयत्न करता है। अनेक बार प्रपराधियों की जाँच करने के लिए भी इस परीक्षण का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।^{१०९}

उपन्यासकार इस प्रणाली का प्रयोग कर सकता है पर उपन्यास में वह धीरे-धीरे न्यायिक सुविधा के अनुकूल बचान्तरित होकर ही जाती है। इसाचन्द्र बोधी के उपन्यासों में पात्रों के मन पर होने वाली विरोध दृष्टियों की प्रतिक्रिया के विस्लेषण द्वारा उनके चरित्र में व्याप्त संकट को उजाड़ा गया है। 'मेरा धीरे-धीरे छाया' का पारसनाथ 'बिबाह' सम्यक् से जाँच करता है। 'जिप्सी' के नायक नृपेन्द्र पर 'नील' सम्यक् जादू का प्रयोग करता है।

माटकीय (ड्रामेटिक) चित्रण

घटनाओं द्वारा चरित्र चित्रण

कथानक और चरित्र-चित्रण के आधार पर किए गए उपन्यासों के वर्गीकरण की व्यर्थता दिखाते हुए हेनरी जैम्स अपने लेख 'द हार्ट ऑफ फिक्शन' में लिखता है चरित्र यदि घटनाओं का परिणाम नहीं तो धीरे-धीरे नया है तथा घटना चरित्र की व्याख्या के अविरल धीरे-धीरे नया है ?

वास्तव में पात्र की परिस्थितियों और उसके चरित्र में व्योम्यापसी सम्बन्ध होता है। कभी उसका चरित्र अनेक घटनाओं को उभारता है और कभी उसके जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ उसके चरित्र को निरधारित हैं। घटनाएँ मानव चरित्र को प्रभावित ही नहीं करतीं उस उजाड़ने में ही सहायक सिद्ध होती हैं। वास्तविकता में पात्र अपने जिस मेघ को प्रकट होने से बचा लेता है, घटना की लपेट में धाकर वह अपने आप प्रकट हो जाता है। इसलिए, उपन्यासकार अपने उपन्यास में घटनाओं का उद्देश्य केवल कथानक को गति देने के लिए नहीं पात्रों के चरित्र

१०९ Stagner 'Psychology of Personality' p. 39 and
Ruch, 'Psychology and Life' p. 833-837

१०९ H. Croeland, 'The Psychological Methods of Word Association and Reaction Time as Test of Description' University of Oregon Publications
Psychol. series, 1939 1: 201

विज्ञात तथा उतकी विविध व्यवस्थाओं के उत्पादन के लिए भी करता है और कई बार छाटी-छाटी घटनाओं के माध्यम से पात्रों की मनोस्थिति को हल्की स्पष्टता से अभिव्यक्त करा देता है कि कई पृष्ठों तक जैसे मनोविश्लेषण और सम्मी-सम्मी क्या क्या भी हल्की स्पष्टता से नहीं बता पातीं।

प्रेमचन्द के 'निर्मला' उपन्यास के आरम्भ में निर्मला के पिता की मृत्यु की एक ही घटना उसके समस्त जीवन क्रम को बदल देती है। इस घटना के समामेय से उपन्यासकार निर्मला के चरित्र-विकास की विधा ही मोड़ देता है। उनके उपन्यास 'सुबन' में जेम्सी सुबन बागी घटना भायक के जीवन में हल्की उपलब्धता बना देती है कि यह अपना मानसिक संतुलन खोकर घर से भाग निकलता है। प्रेमचन्द के उपन्यास इस प्रकार की अदृश्य घटनाओं से भरे पड़े हैं जिनके द्वारा उपन्यासकार ने पात्रों के चरित्र के विकास की विभिन्न व्यवस्थाओं का उत्पादन किया है। जयचंदर प्रसाद के 'कंकाल' में विजय द्वारा महंत के बना घोंटने वाली बटना द्वारा विजय की तरकारीन आशेष मनोस्थिति का सुन्दर परिचय मिलता है।

कपोपकपल द्वारा चरित्र-चित्रण—घटनाओं का सम्मेलन तो उपन्यास के कथा नक तथा पात्र दोनों से होता है पर उपन्यास में कपोपकपल का समावेश प्रायः पात्रों के चरित्रोत्पादन के लिए ही होते हैं। पात्रों के संवादों में यदि वे कृत्रिम न हों उनकी आतिथिक विशेषताएँ मुखरित हो उठती हैं। पूर्वोक्त लम्बे-लम्बे भाषणों में तो उसे ही बतला अपनी बक्तुता की छोट में अपनी आतिथिक कर्मियों को छिपा जाए, पर एहन स्पष्टता से हो रही बात-चीत में वे प्रनायास ही भ्रमक पड़ती है।

कपोपकपल का उपन्यास में चाहे उतना अधिक महत्व न हो जितना नाटक में फिर भी उपन्यास में उचित मात्रा में संवाद न होने से यह बौद्धिक सगने लगता है। भाषण ही ऐसा कोई उपन्यासकार मिलेगा जिसने अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए उनके कपोपकपलों को माध्यम न बनाया हो।

उद्धरण टीसी

मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि हमारा किसी चीज की अनूठी ज्ञान देना किसी नक या पद्य के संग को गुनाने या गाने समाना यही तक कि कुछ से सीटी बजाना या कुछ मुक्कलाका भी प्रकरण नहीं होगा। हमारी इस प्रकार की क्रियाओं का भी एक धर्म होता है जिस समय से से उनके कारणों तक पहुँचा जा सकता है^{१००} जो हमारे बैठन मन में चाहे न जाए हों। उपन्यासकार भी अपने पात्रों द्वारा उद्धृत दूसरों के पद्य या पद्य के माध्यम से उनके प्रेरक भीतरी कारणों को स्पष्ट करता कराया करता है।

उद्धरण टीसी की एक विशेष उपयोगिता है। उद्धरणों के रूप में कुछ निरनने वाले भाष पात्रों की उस समय की निजी भाषनाओं के नमूनाय होए हुए भी उनके

अपने प्रतीत नहीं होते। इसलिए, जब कोई पात्र अपनी किन्हीं भावनाओं को किसी दूसरे पात्र पर प्रकट करना चाहता हो पर उनके अत्यन्त निजी तथा असाधारण होने के कारण उन्हें उस पात्र पर व्यक्त करने से डरता हो कि न जाने वह उन्हें किस रूप में ग्रहण करे, तो वह इन भावनाओं से मिसले-बुसले दूसरों के कपनों को उद्यत करके पहले बेस सहता है कि उनके प्रति उस पात्र की प्रतिक्रिया कैसी होगी है। प्रेमी या प्रेमिका जब पहली बार एक-दूसरे के प्रति अपना प्रेम आपन करते हैं तो वे दूसरे के प्रति अपनी कोमल भावनाओं को सीमाविहीन व्यक्त करने की इच्छा रखते हुए भी ऐसा नहीं करते क्योंकि प्रेम निवेदन करने से पहले वह यथासम्भव यह जान लेना चाहते हैं कि उनका यह निवेदन किस रूप में ग्रहण किया जाएगा। इस लिए जब तक उन्हें अपने प्रति दूसरों की भावनाओं का निश्चय न हो वे दूसरों के उद्धारों की भाड़ में बेचढ़के आत्मनिम्न कर सकते हैं।

अप्रेम के उपन्यासों में हिन्दी संस्कृत संवेगी रचना पञ्चांगी आदि भाषाओं के गद्य-पद्यांश प्रचुर मात्रा में उद्यत मिलते हैं। इन उद्धारों का अधिकतर प्रयोग ऐसी परिस्थितियों में हुआ है जहाँ पात्रों की स्पष्टोक्तियों में अस्वीकृति या असाधारणता की संभवा सकती थी। बेकार और यदि एक-दूसरे के प्रति अपनी कोमल भावनाएँ उद्धारों के रूप में ही अभिव्यक्त करते हैं। बहन-भाई होने से दूसरों की भाड़ मिये बिना, उनका काम चल नहीं सकता था। रेखा और भुवन को भी उद्धारों के रूप में आत्म-आपन अधिक सुनिवारणक प्रतीत होता है।

आपसी द्वारा चरित्रचित्रण

कई मनुष्यों की आवृत्त नियमित रूप से आपसी लिखने की होती है और कई कभी-कभी जब कौन से हों आपसी लिखा करते हैं। इन आपसी के अर्थ व्यक्तिगत नोटबुकों से लेकर स्वयं-आपक आत्मकथा तक कई रूप मिलते हैं। आपसी चाहे कैसी हो इससे व्यक्ति को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। मनोविश्लेषक के लिए आपसी बड़ी मुख्यवान सामग्री होती है। उपन्यासकार भी अपने पात्र के चरित्र-विकास की दृष्टि कठिनाई जोड़ने के लिए उग्रही आपसी पाठकों के सामने रोज देता है। आपसी के माध्यम से उपन्यासकार पात्रों की ऐसी मानसिक समस्याओं का आभास करा देता है जो पात्रों को निरंतर बेचैन किए रखती हैं पर जिन्हें वह किन्हीं कारणों से दूसरों पर प्रकट नहीं कर पाता। ऐसे पात्र प्रायः अंतर्मुख होते हैं जो देखते पर भी दूसरों से घुल-मिल नहीं पाया करते।

अपराधक प्रसाद के उपन्यास 'जिज्ञासी' के नायक इन्द्रनेल की समस्त मनोव्यथा उसकी आपसी में उमड़ जाती है। इस आपसी के अभाव में न तो कभी रीता ही उनकी मानसिक उमड़-मुपम को समझ पाती और न पाठक ही उनके चरित्र-विकास की दृष्टि कठिनाई को जोड़ पाता। इसाचन्द्र जोशी के 'निर्जगिन' के भीराव की आत्महत्या के कारणों का भी आपसी से ही पता चलता है जिनके अभाव में उनकी आत्महत्या

एक पहेली बनी रहती। अन्त्य के 'नदी के द्वीप' की रेखा की जायरी के माध्यम से ही मुश्किल महि जान सका था कि उन दोनों के मीन सम्बन्ध से उत्पन्न 'सर्जन बायसिनिस्ट' को रेखा न बमों कच्चा मिरा दिया था। हिन्दी के उपन्यासों में इस प्रकार के अनेक स्वतन्त्र मिश्रण वहाँ उपन्यासकार ने जायरी के माध्यम से पात्रों के सन अंतर्द्वारों को व्यक्त करवा है, जो सामान्यतः कभी प्रकाश में न आ पाते और अन्तर्द्वारों के अन्तर्द्वारों में संवर्त बैठाना कठिन हो जाता।

पञ्चात्मक-धैर्य

कई बार उपन्यासकार को अपने पात्रों के चरित्र के किसी विशेष पक्ष को उद्घाटित करने के लिए पञ्चात्मक धैर्य का सहारा लेना पड़ता है। पात्रों के स्वभाव का वह पक्ष जो अभी तक समाज की आँखों से छिपे रहता हो किसी अविच्छिन्न मित्र या सम्बन्धी को लिखे पत्र में सहसा अभिव्यक्ति पा जाता है, और उसमें पात्रों द्वारा स्वीकारोक्ति के रूप में उनकी अनेक परस्पर विरोधी क्रिया प्रतिक्रियाओं का वर्णन करके उपन्यासकार उनके चरित्र-विकास की अनेक कसमों को सुनभराता हुआ उन्हें पाठकों के लिए सुबोध बना देता है। अक्सर प्रसार के उपन्यास 'कंकाल' के अंतिम चरण में किचोरी को मिला बेतन का पत्र बेतन के चरित्र विकास की अनेक दूटी कड़ियों को जोड़ देता है। उस पत्र के अभाव में वह पात्र पाठकों के लिए पहेली बना रहता।

जब पात्र एक-दूसरे के पास हैं और उनका आपस में मिलना-जुलना होता रहता हो तब तो उनका अन्तरंग उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया में उनकी पारस्परिक बातचीत अनुभावों आदि में प्रतिबिम्बित होता रहता है पर एक-दूसरे से दूर असम आ जाने पर तो उनके पारस्परिक सम्बन्धों में होने वाला विकास क्रम उनके पत्रों द्वारा ही व्यक्त होता है कि वे एक-दूसरे की ओर खिंचते जाते हैं या दूर होते जाते हैं। इस प्रकार, पात्रों की परस्पर अंतर्गत के बीच जो एक अंतराल पड़ जाता है उसमें उन पात्रों के एक-दूसरे के प्रति बदलते रहने वाले दृष्टिकोण के लिए भी उपन्यासकार पञ्चात्मक धैर्य का प्रयोग किया करता है। 'नदी के द्वीप' में अन्त्य में इस धैर्य का भरपूर प्रयोग किया है। 'नदी के द्वीप' के पात्र मिल्न, मिल्न, कपूरों में अन्तर्गत-अन्तर्गत रहते हैं। बार-बार महीने में कभी कभी एक-आध बार उनकी आपस में भेंट हो पाती है। पर इसी बीच एक-दूसरे के प्रति उनकी संवेकनाएँ उनके पत्रों में समझ पड़ती हैं और पत्रों द्वारा ही वे दूरियों को प्रभावित करते रहते हैं और उनसे प्रभावित होते रहते हैं।

इस प्रकार, उपन्यासों में पञ्चात्मक धैर्य का प्रयोग पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए ही नहीं चरित्र विकास के लिए भी होता है।

अपने प्रतीत नहीं होते। इसलिए, जब कोई पात्र अपनी किन्हीं भावनाओं को किसी दूसरे पात्र पर प्रकट करना चाहता हो पर उनके अत्यन्त निजी तथा असामाजिक होने के कारण उन्हें उस पात्र पर व्यक्त करने से डरता हो कि न जाने वह उन्हें किस रूप में ग्रहण करे, तो वह इन भावनाओं से मिलते-जुलते दूसरों के कथनों को उद्धृत करके पहले देख सकता है कि उनके प्रति उस पात्र की प्रतिक्रिया कैसी होती है। प्रेमी या प्रेमिका जब पहली बार एक-दूसरे के प्रति अपना प्रेम-आपन करते हैं तो वे दूसरे के प्रति अपनी कोमल भावनाओं को शीघ्रातिशीघ्र व्यक्त करने की इच्छा रखते हुए भी ऐसा नहीं करते क्योंकि प्रेम निवेदन करने से पहले वह यथासम्भव यह ज्ञान लेना चाहता है कि उनका यह निवेदन किस रूप में ग्रहण किया जाएगा। इस लिए जब तक उन्हें अपने प्रति दूसरों की भावनाओं का निश्चय न हो वे दूसरों के उद्धरणों की प्राप्ति में बेसहज धारमाभिम्यक्ति कर सकते हैं।

प्रश्न के उपन्यासों में हिन्दी संस्कृत संश्लेषी संयोजक पंचांगी प्रादि भाषाओं के पद्य-महाकाव्य प्रचुर मात्रा में उद्धृत मिलते हैं। इन उद्धरणों का अविकाश प्रयोग ऐसी परिस्थितियों में हुआ है जहाँ पात्रों की स्वप्रेरितियों में अस्वीकृति या असामाजिकता की संशय भा सकती थी। सेखर और एलि एक-दूसरे के प्रति अपनी कोमल भावनाएँ उद्धरणों के रूप में ही अभिव्यक्त करते हैं। बहन-भाई होने से दूसरों की प्राप्ति बिना उनका काम चल नहीं सकता था। रेखा और भुवन को भी उद्धरणों के रूप में आत्म आपन अधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है।

आयरी द्वारा चरित्रचित्रण

कई मनुष्यों की भावना नियमित रूप से आयरी लिखने की होती है और कई कभी-कभी जब भ्रोक में हों आयरी लिखा करते हैं। इन आयरियों के धर्म व्यक्तिगत मोट्टोकों से लेकर स्वयं आपक आत्मकथा तक कई रूप मिलते हैं। आयरी चाहे कैसी हो इससे व्यक्ति को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। मनोविरलेयक के लिए आयरी बड़ी मूल्यवान सामग्री होती है। उपन्यासकार भी अपने पात्र के चरित्र-विकास की दृष्टि कड़ियाँ जोड़ने के लिए उसकी आयरी पाठकों के सामने खोल देता है। आयरी के आध्यम से उपन्यासकार पात्रों की ऐसी मानसिक समस्याओं का आभास कर देता है जो पात्रों को निरंतर बेचैन किए रखती हैं पर जिन्हें वह किन्हीं कारणों से दूसरों पर प्रकट नहीं कर पाता। ऐसे पात्र प्रायः संतुष्ट होते हैं, जो चेष्टा करने पर भी दूसरों से धुल-मिल नहीं पाया करते।

अनसुंदर प्रसाद के उपन्यास 'तितली' के नायक इन्द्रदेव की समस्त मनोव्यथा उसकी आयरी में समझ आती है। इस आयरी के आधार में न तो कभी संशय ही उसकी मानसिक उन्नत-पुष्टि को समझ पाती और न पाठक ही उसके चरित्र-विकास की इस दृष्टि कड़ी को जोड़ पाता। इत्यादि जोशी के 'निर्वासित' के भीरु की आत्महत्या के कारणों का भी आयरी से ही पता चलता है जिसके आधार में उसकी आत्महत्या

एक पहेली बनी रहती। धन्य के 'नदी के द्वीप' की रेखा की जायरी के माध्यम से ही भुवन यह जान सका था कि उन दोनों ने यौन सम्बन्ध से उत्पन्न 'संजय धारमिनिस्ट' का रेखा न क्यों कच्चा गिरा दिया था। हिन्दी के उपन्यासों में इस प्रकार के अनेक स्पष्ट मिलते-जुलते उपन्यासकार ने जायरी के माध्यम से पात्रों के उन संतुष्टियों को व्यक्त कराया है जो सामान्यतः कभी प्रकाश में न आ पाते और जिन्हें जाने बिना पात्रों के चरित्र-विकास में संयति बैठाना कठिन हो जाता।

पञ्चात्मक-रीसी

कई बार उपन्यासकार को अपने पात्रों के चरित्र के किसी विशेष पक्ष को उद्घाटित करने के लिए पञ्चात्मक रीसी का सहारा लेना पड़ता है। पात्रों के स्वभाव का वह पक्ष जो सभी तक समाज की आँखों से ओझल रहा हो किसी अनिष्ट मित्र या सम्बन्धी को मिले पत्र में सहसा प्रकटित हो जाता है और उसमें पात्रों द्वारा स्वीकारोक्ति के रूप में उनकी अनेक परस्पर विरोधी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का अलग-अलग उपन्यासकार उनके चरित्र-विकास की अनेक संभावनाओं को सुलभता हुआ उन्हें पाठकों के लिए सुकोप बना देता है। अचानक प्रसार के उपन्यास 'बकाल' के अंतिम चरण में किछोरी को लिगा चेतन का पत्र चेतन के चरित्र-विकास की अनेक टूटी कड़ियों को जोड़ देता है। उस पत्र के अभाव में वह पात्र पाठकों के लिए पहेली बना रहता।

जब पात्र एक-दूसरे के पास हों और उनका धारण में मिलना-जुलना होता रहता हो तब तो उनका अन्तर्गत उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया में उनकी पारस्परिक बातचीत अनुमात्रों धारि में प्रतिबिम्बित होता रहता है पर एक-दूसरे से दूर समय या पड़ने पर तो उनके पारस्परिक सम्बन्धों में होने वाला विकास-क्रम उनके पत्रों द्वारा ही व्यक्त होता है कि वे एक-दूसरे की ओर आते जाते हैं या दूर होने जाते हैं। इस प्रकार, पात्रों की परस्पर जैदों के बीच जो एक संतुलन पड़ जाता है उसमें उन पात्रों के एक-दूसरे के प्रति व्यवहार करने वाले दृष्टिकोण के लिए भी उपन्यासकार पञ्चात्मक रीसी का प्रयोग किया करता है। 'नदी के द्वीप' में धन्य ने इस रीसी का अत्यन्त प्रयोग किया है। 'नदी के द्वीप' के पात्र भिन्न भिन्न नगरों में अलग-अलग रहते हैं। बार-बार वहींने में कभी कभी एक साथ बार उनकी धारण में भेंट हो पाती है। पर इसी बीच एक-दूसरे के प्रति उनकी संवेदनाएँ उनके पत्रों में उमड़ पड़ती हैं और पत्रों द्वारा ही वे दूसरों को प्रभावित करते रहते हैं और अपने प्रभावित होते रहते हैं।

इस प्रकार, उपन्यासों में पञ्चात्मक रीसी का प्रयोग पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए ही नहीं चरित्र-विकास के लिए भी होता है।

दूसरा अध्याय

हिन्दी सपन्यास की पृष्ठभूमि
(चरित्रचित्रण की दृष्टि से)

हिन्दी-उपन्यास की पृष्ठभूमि (चित्रचित्रण की दृष्टि से)

(क) राजनीतिक परिस्थिति

संवेदों के प्रति धृष्ट-भाव
संवेदी राज्य में समास्था
नैतिक पतन
राष्ट्रीयता का उदय
इण्डियन नेशनल काँग्रेस
जान्ति की ओर

(ख) सामाजिक आधार

विदित मध्यम का उदय
सुधारवादी आन्दोलन
ब्राह्म समाज
आर्य समाज
प्रार्थना समाज
रामकृष्ण मिशन
पियोसोफिकल सोसायटी
हिन्दी के साहित्यकार

(ग) साहित्यिक परम्परा

संस्कृत साहित्य
पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य
हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार
मुन्शी इलाहाबादी
भास्कर हरिश्चन्द्र की प्रेरणा
धीनकालीन
अम्बिकादत्त व्यास
रामकृष्ण मिशन
हिन्दी में अनुचित उपन्यास



हिन्दी-उपन्यास की पृष्ठभूमि

हिन्दी-कथा-साहित्य का जन्म राणीपोली के गद्य के विकास के साथ ही हुआ। यों भी कह सकते हैं कि कथा-साहित्य के विकास के साथ ही गद्य का स्वाभाविक रूप प्रकाश में आने लगा। वास्तव में प्राबुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक युग में कथा-साहित्य और गद्य का अभ्योग्यात्मक सम्बन्ध रहा। उपन्यास का सर्वाधिक प्रारम्भ उसके पानों और उनके चरित्र के विकास में होता है जिसकी अभिव्यक्ति उनकी क्रिया प्रतिक्रिया कथोपकथन आदि के माध्यम से होती है और उनके लिए पद्य की अपेक्षा पद्य ही अधिक उपयुक्त रहता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों हिन्दी उपन्यास राणीपोली के गद्य के विकास की प्रतीक्षा में था। गद्य का विकास होते ही उपन्यास की धारा अपने सम्पूर्ण प्राण के साथ उमड़ पड़ी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्राबुनिक हिन्दी-साहित्य के ही जन्मदाता नहीं थे हिन्दी गद्य के युग-निर्माता भी थे। यद्यपि हिन्दी-उपन्यास की लोकप्रियता देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में ही बढ़ी प्रारम्भ हुई थी उसकी बड़ पृष्ठभूमि भारतेन्दु युग (सन् १८२०-१८५०) के प्रथम चरण से ही तैयार होने लग गई थी। इस पृष्ठभूमि का तैयार करने में भारतेन्दु युग के हिन्दी-साहित्य का ही योग नहीं था प्रारम्भ उस युग की अनिवार्य राजनीतिक परिस्थितियों तथा उनके 'उत्तरार्द्ध' में जैसे समाज-सुधार के बिबिध आन्दोलनों का भी उसमें विशेष हाथ रहा। इसलिए, पहले उस युग की राजनीतिक परिस्थिति और उसके सामाजिक आधार का परिचय करा देना आवश्यक होगा।

राजनैतिक परिस्थिति

अंग्रेजों के प्रति धड़क भान

सन् १८५७ के विद्रोह से पहले का अंग्रेजी राज्य सामुन्य और व्यवस्था के राज्य की धोखा और उद्वेग-धोखा का तथा प्रशासन और नीति का राज्य धर्म का १५ देश के जाने-माने में अंग्रेजी और सिन्धी रहनी थी और प्राण दिन उनका

1 Henry Dodwell, A Sketch of the History of India (1811) Longman, Green & Co. London, 1871 p. 210.

"I will the history the English Government in India has also been accompanied by a great show of force"

वमन-वक्त्र बनता रहता था। पर अंग्रेजों की इस वमन-नीति के विरुद्ध बेधम्यापी विद्रोह के रूप में जो भयंकर प्रतिक्रिया हुई, उसने अंग्रेजों की भाँसें खोल दीं और वे महसूस करने लगे कि भारत पर अपने राज्य को बिर-स्वाधी बनाने के लिए उन्हें भारतीयों के शरीर को ही नहीं हड्डी को भी पीटना होगा। विभव के बाद सन् १८५८ में नई सरकार की स्थापना हुई।^१ राज्य की नाम-जोर 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के हाथ से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथ में चली गई। सत्ता संभालते ही महारानी ने घोषणा की हम अपनी भारतीय प्रजा के प्रति भी अपने को उसी प्रकार कर्तव्यवत् समझते हैं जिस प्रकार अपनी अन्य प्रजाओं के प्रति, क्योंकि प्रजा की सुख-सुविधा में ही हमारी शक्ति है।^२ इससे बेश भर में शासन की एक सहर होइ गई। सत्ताधियों से चली आ रही राजनीतिक उन्नत-पुनर्न और अनिश्चितता से उस घाई भारतीय जनता को बँन की राँस मिली। वैसे तो सन् १८१३ के 'चार्टर एक्ट' में भी अंग्रेजों ने भारतीयों को भारतीयता दिया था कि भारतीयों की सुख-सुविधा को बढ़ाना हमारा कर्तव्य है।^३ पर विक्टोरिया के राज में कनेडा को मिली स्वतन्त्रता और अन्य देशों की अंग्रेजी प्रजाओं को मिले अधिकारों को देखते हुए भारतीयों की दृष्टि में विक्टोरिया की इस घोषणा का एक विशेष महत्व हो गया था। इन बातों ने भिन्न अंग्रेजों के प्रति उनके शासन के प्रति तथा उनकी महारानी के प्रति लोगों में बड़ा और स्वामिमक्ति का भाव बसा दिया और अंग्रेजी राज्य में सड़क, रेल, तार, डाक, पुलिस न्यायालय आदि की व्यवस्था से प्राप्त सुविधा और सुरक्षा के कारण अंग्रेजों की युक्त कंठ से प्रशंसा होने लगी। साधारण

१ Thompson & Garret, *Rise and Fulfilment of the British Rule in India* Macmillan London. p. 466.

२ B. C. Majumder *An Advanced History of India* Macmillan, London, p. 838.

"We hold ourselves bound to the natives of our Indian territories by the same obligations of duty which bind us to all our other subjects" (Queen's Proclamation of 1858).

P. Griffiths, *The British Impact on India* : Macdonald, London, 1932, p. 274 :

"... their (Indian Subjects) prosperity will be our strength, and their contentment our security and in their gratitude our reward." (Queen's Proclamation of 1858).

३ Majumder *An Advanced History of India* p. 838 :

"It is the duty of this country to promote the interest and happiness of the native inhabitants of the British dominions in India. (Charter Act of 1813)

जनपद जनता ने ही नहीं सिधिया^१ गोपालकृष्ण गोयल^२ बान्नामाई नौराजी^३ जैसे देश के पाठी के नेताओं तक ने भी घरेबों कीर उनके राज्य की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। बिक्टोरिया की घोषणा से लेकर सन् १८७१ में 'ग्रिफ धॉब बेल्स' की राष्ट्रीय यात्रा तक का युग यह था जब चारों ओर घरेबों की बिरदाबसिमाई गाई जा रही थी। इसलिए, उस युग के हिन्दी-साहित्य में भी यदि घरेबों की प्रशंसा मिलती तो आश्चर्य की बात नहीं।

संघेबी राज्य में अनास्था

यह स्थिति अधिक देर तक न बनी रह सकी। भोमी भारतीय जनता यह यात्रा समाप्त हो चुकी थी कि सदियों की अराजकता को मिटाने वाला संघेबी शासन उसके लिए गुप्त-मुचिबा के सभी उपकरण जुटाएगा पर उसकी यह यात्रा पूरी न हुई। घरेबों द्वारा दिए गए आराधन पाये सिद्ध हुए। भारतीय जनता के प्रति उम्हंति को लम्बे चौड़े बाग़े किए थे वे घरे के घरे रह गए^४। उम्हंति आधिक रूप से जनता को अतिरिक्त बाँझ सहना पड़ा। बिद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजों का जो चर्चा हुआ था उससे भारत सरकार का दिवाला निकल गया। अराजकता के चार वर्षों में सरकार को ३ करोड़ ६० लाख रुपये का घाटा पड़ा जो उस समय की उसकी एक वर्ष की आय के बराबर था।^५ इस घाटे से मन्त्रिम सरकार तो दूनी चबरा नहीं थी कि उसने कन्ध को सिगा कि यह स्थिति तो स्वयं बिद्रोह की स्थिति से भी अधिक

१ Dodwell, A Sketch History of India p. 17-19:

"Your prestige fills men's minds to an extent which, to men who know how things were carried on scarce fifty years ago, seems beyond belief. I never put myself on a mail cart, unattended and perhaps unknown without appreciating the strength of your rule." (Scindia).

२ P. Griffiths, 'The British Impact on India' p. 232

"The blessings of peace the establishment of law and order the introduction of Western education and the freedom of speech and appreciation of liberal institutions which have followed in its wake—all these are things which stand to the credit of your rule." (O. K. Gokhale).

३ Ibid, p. 232-33:

"Law and order are its (of the British rule) first blessings. Security of life and property is a recognised right of the people. The native now learn and enjoys what justice between man and man mean and that law instead of despot's will, is above all. (Dadabhai Naoroji in his paper read at the East India Association in 1867).

४ Majumdar An Advanced History of India p. 83

All means were taken of breaking to the heart the word of promise they had uttered to the ear. (Lord Lytton to the Governor-General in his confidential despatch).

५ Thompson & H. rat, 'The and Fulfillment of British Rule in India' Macmillan London, p. 42,

मार्मिक है।^१ इस घाटे को पूरा करने के लिए सरकार ने कई प्रकार की योजनाएँ बनाईं पर उन सब का फायदा नहीं था कि सरकार जनता पर कर्ष कम करे और उसके सामने माँग अधिक की रखे। फलतः जनता पर अनेक प्रकार के टैक्स सगे पर सबसे में उन्हें जो आराम मिला वह न के बराबर था। समय के बढ़ने से बेटी की व्यवस्था बिगड़ गई।^{११} अंग्रेजी उद्योगों की होज में भारत के ग्रामीण उद्योग समाप्त होने लगे या बसपूर्वक समाप्त किए जाने लगे। देश में चारों ओर निराशा का वातावरण छा गया।

नैतिक पतन—सबसे बड़ी बात यह थी कि भ्रातृ चेष्टा करने पर भी भारत बाँची उन्^{१२} के विप्लव को भुल नहीं पाए थे। वास्तव में अंग्रेजों ने स्मृति-पट पर उस विद्रोह का चित्र ज्यों-ज्यों बुनवा पड़ा गया त्यों-त्यों उसके सम्बन्ध में भारतीयों की स्मृति स्पष्ट से स्पष्टतर होती गई और उनके हृदय का घाव हरा होता गया। वो बातें जो लोगों को सबसे अधिक साजसी थी उनमें पड़ती यह थी कि इस सपना के भीर सेनानी अपनी आरम्भिक विजयों को चिर-स्थायी न बना सके थे और दूसरी यह कि अंग्रेजों ने इस विद्रोह को अत्यन्त निर्ममता से बनाया था। इसी बीच क्साइब और ईटिम्ब की झूट-बसुट और जोर-बबरबस्ती की लहानियाँ प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विद्रोह की रोमांचकारी घटनाओं का बिबरण भी गाँव-गाँव में पहुँच गया था। उनमें शहीद होने वाले अमर वीरों की घर-घर पुजा होने लग गई थी।^{१३} अंग्रेजों पर ^{१४} लोगों का विश्वास उठ गया था। वे अंग्रेजों से तंग थे पर भीतर ही भीतर कुड़कर रह जाते थे। गौकरशाही के भागे किली की एक नहीं बसती थी।^{१५} पिछली घटनाओं को सोचकर कुत्समकुत्सा विद्रोह करने की हिम्मत किसी में होती नहीं थी। यह भारत के नैतिक पतन का काम था। चारों ओर भयंकर उदासी और आवक का राज्य था। ऐसी स्थिति में साधारण जनता का जीवन और जगत की समस्याओं

१ Ibid., p. 472.

"...According to our belief this is a more serious crisis than the Mahrby itself."

११ Griffiths, 'The British Impact on India' p. 231 :

"Toll, toll, toll; hunger hunger hunger; sickness, suffering, sorrow, these alas! alas! are the keynotes of their short and sad existence," (A. O. Hume in his letter to Sir Auckland Colvin, Governor of the United Provinces).

१२ Thompson & Garret 'Rise and Fulfilment of British Rule in India' p. 461

१३ Griffiths, 'The British Impact on India' p

"The European local officers scattered over the country at great distances from one another and having large districts to attend to far beyond their powers of supervision depend to a great degree on their subordinates. The necessary result of this system is that Government is that of first impressions." (From a petition of the British Indian Association to the British Parliament)

से पसायन के प्रयत्न में साहस्य से तिसरम धीर जामुनी के लोकरंजक उपन्यास की माँग करना अस्वाभाविक नहीं था।

राष्ट्रीयता का उदय

इस प्रकार बिप्लव धीरे उसे बचाने में धंधेजों द्वारा किया गया अत्याचार भारतीयों धीरे धरेजा के दिनों में जो बितगाव उत्पन्न कर गया था वह महाराणी बिप्लोरिया का राज हो जाने पर भी न हट सका। हटना तो दूर वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। हनुमन्त का नाम भर बदनमें से चला गया होता ?^{१४} कम्पनी का राज्य हो या पिप्लोरिया का या तो धंधेजों का राज्य ही। इसमें सन्देह नहीं कि धंधेजी सरकार ने—बिप्लोरिया सरकार ने—अराजकता का घण्टा जिया अपनी भारतीय प्रजा को इतनी सुरक्षा प्रदान की जो उसे सधिया से किसी स्वदेशी राजा से प्राप्त न हुई थी धीरे उसकी कामुनी व्यवस्था ने उसे आंतरिक दमन से भी इतना बचाए रखा कि किसी देशी रियासत में भी वह सम्भव नहीं था। भारतीयों को यह तो सब मिला पर इसका उन्हें पर्याप्तिक मूल्य चुकाना पड़ा। उन्हें अपनी स्वतंत्रता का अपने राष्ट्रीय चरित्र का धीरे उन सब-कुछ का जो किसी जाति को सम्मानित बनाता है त्याग करना पड़ा।^{१५} रैग में जब तक अज्ञानाध्यक्षता छाया रहा धीरे लोग एक-दूसरे से कटे-कटे रहे तब तब तो वे धंधेजों के अत्याचार सहकर भी उनकी प्रशंसा करते रहे पर ज्यों-ज्यों रैग टाक तार धारि की व्यवस्था से दूर-दूर के लोग एक-दूसरे के निकट घाने लगे रैग के कोने-कोने में धंधेजों के बिरह आम गुप्तमने लगी। धंधेजी पिशा के प्रभाव से लोगों में अपनी बुद्धि के प्रति आश्चर्य बढ़ी धीरे अपनी व्यवस्था के गुमार की सासना लगी। लाल मरनि की पिशा-नीति के परिणामस्वरूप रैग भर में एक से भावां धीरे बिचारों का प्रचार हुआ तथा विभिन्न प्रान्तों जातियों धीरे धनों के लोगों में दृष्टा आम धीरे बिपा की समानता दिखाई देने लगी। धंधेजी सब विधियों की सामान्य भाषा बन गई

[१४] Rumeel, 'My Diary in India II, p. 239:

"The mutinies have produced too much hatred and ill-feeling between the two races to render any mere change of name of the rulers as a remedy for the evils which affect India many years must elapse ere the evil passions excited by these disturbances expire 'perhaps confidence will never be restored' "

[१५] Griffiths, 'The British Impact on India' p. 231-232:

"The strength of the British Government enables it to put down every rebellion, to repel every foreign invasion, and to give its subject a degree of protection which those of no other Power enjoy. Its law and just institutions also afford them security from domestic oppression known in other States but these advantages are dearly bought. They are purchased by the sacrifice of independence of national character and of what is regarded as a people respectable (honour)."

और देखोदार बना सब का मारा। इस प्रकार, अंग्रेजों की अपनी नीति से ही भारत में राष्ट्रीयता का उदय हुआ।

इसी बीच भारतीय प्रेस भी काफी शक्ति पकड़ चुका था। सॉर्टिंग रिपन द्वारा प्रेस पर पाबन्दियाँ हटा लेने से भारतीय प्रेस को कुछ प्रोत्साहन मिला और वह सुनकर अंग्रेजों के विरुद्ध धाग उतारने लगा।^{११} अंग्रेजों की प्रेस सम्बन्धी नीति उनके अपने मिये ही विघातक सिद्ध^{१२} हुई। प्रेस में तो राष्ट्रीयता की सहर रौड़ ही रही थी उधर विजायत से जोटे हाथमाई नारोबी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रायः नेताओं के जनता के सामने योरोपीय देशों के निवासियों को सहज प्राप्त स्वतन्त्रता और अधिकारों का बिना सींचकर उनकी महत्वाकांक्षाओं को बढ़ाया और साथ ही उनके बढ़ते हुए बोस को काम में लाने के लिये सचलन-काय धारम्भ किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के तुफानी बीरों ने सोये देश को जगा दिया।

इण्डियन नेशनल काँग्रेस

इसी बीच सन् १८८३ में इण्डियन सिविल सर्विस के रिटायर्ड एजेंट ए० ए० ह्यूम ने देश के हितार्थ समिटि होने के लिए कलकत्ता के स्नातकों के नाम एक मर्ममेवी अपील^{१३} जारी की। ऐसी अपील व्यर्थ कैसे जा सकती थी? देश के अनेक प्रांतों से जोटी के नेता ह्यूम के साथ इस पुनीत काम में जुट गए। सन् १८८४ में 'इण्डियन नेशनल यूनियन' की स्थापना हुई जिसने सन् १८८५ में 'इण्डियन नेशनल काँग्रेस' का रूप धारण कर लिया। ह्यूम का मूल उद्देश्य काँग्रेस को सामाजिक संस्था का रूप देने का था पर सार्ज डफरिन ने इस बात पर जोर दिया कि

११. Sir George Campbell, 'Memoirs of my Indian Career' II p. 314.

१२. Dodwell, A Sketch of the History of India p. 263.

"A free press and the dominion of strangers are things which are quite incompatible and cannot long exist together for what is the duty of a free press? It is to deliver the country from a foreign yoke." (Mizro)

१३. Griffiths, 'The British Impact on India' p. 279.

"Whether in the individual or the nation, all vital progress must spring from within, and it is to you, her most cultured and enlightened minds, her most favoured sons, that your country must look for the initiative. In vain may anyone, like myself, love India and her children -- but they lack the essential nationality, and the real work must ever be done by the people of the country themselves -- As I said before, you are the salt of the land. And if amongst even you the elite fifty men cannot be found with sufficient power of self-sacrifice sufficient love for and pride in their country sufficient genuine and unselfish heartfelt patriotism to take the initiative, and, if needs be devote the rest of their lives to the cause--then there is no hope for India."

एक सराया की राजनीतिक विद्वधों पर भी विचार करना चाहिए।^{११} पांगरा के प्रारम्भिक अधिवेशनों का स्वर सपनों के प्रतिभणित घोर शब्दों का ही था। यह बात उसके अधिवेशनों के सभापतियों के भाषणों^{१२} से स्पष्ट हो जाती है। सरकार की घोर से भी इसे पूरा-पूरा प्रोत्साहन मिसता रहा।

परन्तु ज्यों ज्यों काँग्रेस में सरकार और उग्रभी नीति की धालोचना बढ़ती गई, उसके प्रति सरकार का दस भी बदमता गया। उस समय काँग्रेस के विचार प्रस्तावों के रूप में प्रकट होते थे जो सरकार को विचारार्थ भेज दिए जाते थे। अपने इन प्रस्तावों द्वारा काँग्रेस ने सरकार का ध्यान देश की बढ़ती हुई गरीबी की घोर शिमाया या घोर उससे जाँच की माँग की थी। उधने 'मायूस एक्ट' धाबकारी कर और नमक कर घाति की भी कड़ी धालोचना की थी। मुषारों के सम्मुख में वह प्रतिनिधि काँग्रेसों द्वारा स्वायत्त शासन के विकास इण्डिया काँग्रेस की नमाप्ति सामान्य और प्राविधिक शिक्षा का प्रचार, सैनिक सर्ज की कमी भारतीयों के लिए घाई सी एस के समान उच्च सरकारी पदों घाति की माँगें सरकार से सामने रखती रही थी। इस प्रकार, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक काँग्रेस का मुख्य काम रहा सरकारी नीति की धालोचना और मुषारों की माँग। यद्यपि बीरे-भीरे उसमें सोऊ-मान्य विमर्श की विचार-यात्र के लोगों का खोर बढ़ रहा था फिर भी उसके सदस्य अपनी माँगों को प्रविकर्षणान्तिपूर्वक बोद्धर कर ही मनुष्ट हो जाते थे। चंद्रनी ग्याम में उनका बिश्वास घमी तक बाढ़ी था।

कान्ति की घोर

काँग्रेस के प्रति सरकार का रवैया उन्नीसवींता था था। काँग्रेस द्वारा बार-बार प्रस्ताव पाठ करके भेजने पर भी उसके कान पर बू तक न रेंगती थी। सरकार का कहना था कि काँग्रेस बोड़े से पड़े-मिसे लोगों की ही संस्था है। इसमिसे उसे समझ भारतीयों की घोर से कोई दावा करने या माँग पेश करने का अधिकार नहीं। उनका उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होने काँग्रेस के कई सदस्यों का चंदनों की ग्यामरता पर से तिरबाग उठने एका घोर बीरे-भीरे एक ऐसे दल का उदय होने तथा तिमरा वृद्ध विद्याम था कि बीरे मापणों के बल पर सवेजों से मुद्ध नहीं मिस सकिया उनके विच्छट्ट टोड नारैबाई करनी होगी। इस दल के मेत्रा लोऊमाग्य बासर्गयापर विमर्श

११ Majumdar An Advanced History of India p. 877 :

".....it would be a futile benefit if there existed some responsible organisation through which the Government might be kept informed regarding the best Indian public opinion

१२ Girdle : 'The British Impact on India' p. 292, 91 :

"The Great Britain, had given them order, she had given the railways and above all, she had given them the inestimable blessings of Western education. But a great deal still remains to be done." (From the President's address at the inaugural meeting on 28th December 1885)

ये । उनके साजसजी व्यक्तिगत और उच्च विचार धारा से वेष्टव्यापी प्राप्तिकारी धाम्नी सनों का प्रथम दिसा । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में कर्बन द्वारा बंग विस्फोट किये जाने पर जो वेष्टव्यापी क्रांति मभी भी उद्युक्ता नैतृत्व भी इन्होंने किया था । धर्मियों को चेतावनी देते हुए अपने पत्र 'चेष्टरी' में इन्होंने बार-बार लिखा कि जब सरकार की बमन-नीति बसहा हो उठती है तभी बम फटने समते हैं ।

सलेप में भारतेन्दु युग (सन् १८३०-१८७०) तक की राजनीतिक परिस्थिति यही थी जिससे सत्तासीन हिन्दी-साहित्य बहूता न रह सका था क्योंकि उस युग के हिन्दी-लेखक साहित्यकार ही नहीं राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे ।

सामाजिक आचार

सन् १८३७ के विप्लव से पहले भारतीय समाज में मुख्य रूप से दो ही वर्ग थे—उच्च वर्ग और निम्न वर्ग । मध्य वर्ग यदि था तो नाम मात्र को । उच्च वर्ग का राजा-महाराजाधों तथाकों और उनके बड़े-बड़े जागीरदारों का जिनका न कोई धर्म था न ईमान । उनका कोई धर्म और ईमान कहा जा सकता है तो वह था जीवन और जगत के प्रति अत्यधिक उदासीनता और आनन्द प्रमोद में धात्म-विस्मृति । सुख सुविधा के सब साधनों से सम्पन्न होने के कारण यह वर्ग इतना धात्म निर्भर हो गया था कि वह समाज-व्यवस्था और उसके विधि-नियमों की पूर्ण उपेक्षा करके भी जीता रह सकता था क्योंकि सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने पर उन्हें दण्ड देने की शक्ति समाज में नहीं थी । समाज के दण्ड विधान की पहुँच से वह वर्ग बाहर था । इसके एकदम विपरीत दशा भी खोपण की बकरी में शताब्दियों से पिछे बसे या रहे निम्न वर्ग की जिसके लिए आनन्द-प्रमोद बजित थे सुख-सुविधाएँ निषिद्ध थीं । उसके लिये तो अपना अस्तित्व बनाये रखना भी एक कठिन कार्य था । दिन रात भूत-मसीना एक करके भी उन लोगों को जो भूत रोटी को तरसना पड़ता था । निर्बलता ही उनकी समस्या नहीं थी । यह भोली भाभी बनता और अज्ञानाभ्यकार में मार्य हो चुकी थी । सब धर्म-मर्यादाओं को पालना लोक-साध निम्न समाज-व्यवस्था को बनाये रखना आदि सब कुछ का बोझ उन्हीं के शिर पर था । देवी देवताओं का कोप नौकरगद्दी का अत्याचार समाज का दण्ड-विधान सब-कुछ इनके लिये ही था । इन सब के भय ही उनका बम निकसा रहता था । अज्ञान और धन्य परम्पराओं से संवेष्टित यह वर्ग कुरीतियों और कुप्रथाओं के बन्धनों से बँकड़ा हुआ था और उन पर घोर कड़िबाबी कूपमण्डूक लोगों का घातक छया हुआ था ।

२१ Tilak, 'Kessur' of 1st May and 9th June, 1906 ('The Cambridge History of India' vol. VI 1932, p. 558):

"Bomb explodes when the repressive action of Government becomes unbearable."

ष्टताओं पर इनकी विशेष दृष्टि रहती थी। देशभ्यापी सुभारवादी आन्दोलनों को प्रेरित करने का श्रेय इन्हीं लोगों को है। उन लोगों ने महसूस किया कि सामिक तथा सामाजिक कुटीरियों और अंध-परम्पराओं ने भारतीय संस्कृति और सम्यता के मार्ग रूप को इतना प्रच्छन्न कर दिया है कि उसकी विस्तृतियों को ही भारतीयता समझ लेने के लक्ष्य-विहित मोम उससे विमुख होकर पश्चिमी सम्यता की ओर बिभे बने जाते हैं। इसलिये, उन लोगों का ध्यान प्राचीन भारतीय संस्कृति की पुनर्स्थापना दोनों उपनिषदों और दर्शन-शास्त्रों के अध्ययन और प्रचार तथा भारत के धर्ममय धर्तरी की नूतनी बातों के प्रकाशन की ओर गया। राजा राममोहन राय स्वामी हयानन्द सरस्वती रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रवर्तक बने। इन्होंने धार्मिक विस्तृतियों तथा सामाजिक कुटीरियों पर निर्मम प्रहार किये बर्मे के नाम पर प्रचलित पाश्चात्य का लक्ष्य और समाज के बाँधे धर्म का विस्फोट किया भारतीय संस्कृति और समाज के यथार्थ रूप का उद्घाटन किया और उसके विस्तृत रूप को सुधारने की भाँव बढ़े ओर से व्यक्त की। देश भर में सुभारवादी संस्थाओं का जन्म बिबू गया। इन संस्थाओं ने समाज-सुधार का काम तो किया ही साथ ही ऐसे स्थायी निःस्वार्थी और सगम वाले कार्यकर्ता तैयार किये जो बाद के राष्ट्रीय आन्दोलनों की बापडोर संभाल सके।

उस समय की संस्थाओं में से जिन्होंने समाज-सुधार का कार्य मुख्य रूप से अपनाया ब्राह्मसमाज आर्यसमाज आर्यना समाज विवेकोपेक्षित सोसायटी तथा रामकृष्ण मिशन के नाम उल्लेखनीय हैं। यद्यपि उत्तर भारत में विशेषतः हिन्दी भाषा-भाषी जनता में मुख्य रूप से ब्राह्म समाज तथा आर्य समाज का प्रचार ही व्यापक रहा और बाद में अनेक स्थानों पर आर्यसमाज ने ब्राह्म समाज को भी आत्मसात् कर लिया बा तो भी विहित वर्ग पर पड़ी अन्य सुभारवादी गैताओं के व्यक्तित्व की छाप की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिये, समाज-सुधार के कार्य में इन संस्थाओं के योगदान का संक्षिप्त परिचय करना अवगत न होना।

ब्राह्मसमाज

सन् १८२८ में राजा राममोहन राय ने ऐसे लोगों को संबलित करने की दृष्टि से जो विविध बेबी-देवताओं को न पूज कर एक ही ईश्वर की धाराधना में विश्वास रखते हों और जो मूर्ति-पूजा के विरोधी हों ब्राह्म समाज की स्थापना की। बाद में यह समाज ब्राह्मसमाज के रूप में विकसित हुई। राजा राममोहन राय की विदेश यात्रा और वहाँ उनकी मृत्यु के पश्चात् इस संस्था को बचका मगा और इसकी प्रगति रुकी रही जब तक कि रबीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता वैदेन्द्रनाथ ठाकुर ने इसमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठा न की। वैदेन्द्रनाथ के प्रयत्नों से इस संस्था को मलयकुमार दत्त तथा केदारबख्श सेन जैसे स्थायी और उत्साही युवकों का सहयोग मिला और सामिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक क्षेत्र में भी इस संस्था ने सुधार की नूतन मथा थी। सन् १८९१ के मध्य

समय में गुप्त भाई कुरीतियों और धर्म परम्पराओं तथा सब प्रकार की पिकृतियों पर निर्भर होकर निम्न प्रहार किए और देशवासियों के सामने धार्मिक भारतीय संस्कृति का वह कुछ और निर्मल रूप रखा जिस पर वे गर्व कर सकते थे।^{१२} 'सत्यार्थ-प्रकाश' 'श्रद्धादाहिमाभ्युत्थिका' और अन्य कई ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों और भावनाओं का प्रकाशन किया।

अपने युग के धर्म सुधारकों से स्वामीजी की यह विशेषता रही कि उन्होंने अपने उपदेश गिने घुने पड़े-सिंढे लोगों तक सीमित नहीं रखे। देश के कोने-कोने में घूम कर, छोटे बड़े सुपड़-मनपड़ राजा-रंक सब प्रकार के जनसमुदाय में अपने भाषणों द्वारा उन्होंने सीधा सम्पर्क स्थापित किया और जगह-जगह धर्मसमाजों की स्थापना की। जीवन भर वह बलियोहार, स्त्री-शिक्षा प्रचार और बाल-विवाह निषेध विवाह विवाह, धर्म और समाज के नाम पर प्रचलित पाखण्डों के भग्ना-शोड़ मूर्ति पूजा के क्षयन वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था की स्थापना में लगे रहे। जिस बात को उन्होंने सत्य समझा उसका निर्मल होकर प्रकाशन किया और जो बात उन्हें असत्य प्रतीत हुई, उसकी उन्होंने खोजबीन उठा दी। पर राज-द्वेष की भावना से वे किसी के भयन व भयन में प्रवृत्त नहीं हुए। मोहनदास पट्टा के प्रकाश के उत्तर में उन्होंने एक बार कहा भी था 'एक धर्म एक मापा और एक लक्ष्य की प्राप्ति ही भारत की पूर्णोन्नति के साधक हैं। कबुल उपदेशों से जाति को बचा कर, कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट करना ही मेरे लक्ष्य का अर्थ है। मैं जाति के हित के लिए अनेक कष्ट गतिशील विषय-मान धारि तक सह लेता^{१३} हूँ।' उनके जीवन-वृत्त^{१४} से पता चलता है कि उस युग के सभी महान् सुधारक ब्राह्मणसमाज के देवभक्तान् ठाकुर, मार्चना-समाज के महादेव गोविन्द रानाडे विद्योपेक्षिक सोसायटी के कर्नल प्रोल्काट और मंडल बसावातकी धारि से उसका सम्पर्क रहता था और वे सब इनके धार्मिक व्यक्तित्व से प्रभावित थे।^{१५} अपने युग पर ही नहीं आने वाले युग पर भी स्वामीजी का और उनके द्वारा स्थापित धर्मसमाज का प्रभाव व्यापक रहा। महात्मा गांधी के शब्दों में 'महर्षि बबानन्द हिन्दुत्वान के आधुनिक अधिपति'। सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुत्वान पर

१२ Sir F. G. Mitchell: *The British Impact on India* p. 239-40

"He fought for social justice, and he presented his countrymen with a form of Hinduism of which they could be proud."

१३ हरिकृष्ण मिश्रवरकर, 'महर्षि बबानन्द सार्वभौम' पृष्ठ १२०.

१४ वही, पृष्ठ १२१, १२७, १२८ (विशेषतः अष्टपुर, केरलकर सेन), पृष्ठ १२९ (कर्नल प्रोल्काट), पृष्ठ १३१ (अमृत रानाडे)

१५ Majumdar: *An Advanced History of India* p. 823:

"Dayananda undoubtedly proved a dynamic force in Hindu society. His appeal to the masses, which was attended to with splendid success, was an eye-opener to all reformers; social, religious and political."

बहुत प्रसिद्ध पड़ा।^{११६} स्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् सायनगाय का काम उनके सुपात्र गिप्पा द्वारा निरर्थक सा० हसराम व० गुरुत्त सा० सायनगाय स्वामी सन्धानालय विशेष उन्नेयनीय हैं जारी रहा और उनके अनन्तक पश्चिम से समाज का समस्त देग में—विशेषतः पंजाब और उत्तर प्रदेश में गूढ़ प्रचार हुआ।

धार्मिक सामाजिक और तिसा सम्बन्धी क्षेत्रों में धर्मसमाज की सवाएँ बिस्मरणीय रहेंगी। हिन्दी-साहित्य पर भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से धर्मसमाज का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। “मुबारकाली सनातनधर्मिया के हाथ में बागडोर होते हुए भी हिन्दी-साहित्य धर्मसमाज से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उन्होंने साहित्यिकों की तरह-तरह के विषय मुद्राएँ।”^{११७}

प्राधना समाज

ब्राह्म समाज की विचारधारा धीरे-धीरे बंगाल के बाहर भी फैल गई पर इसका प्रितुता धार्मिक प्रचार महासङ्घ में हुआ उतना अन्य किसी प्रान्त में नहीं। यहाँ प्राधना-समाज की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य ‘ब्राह्म समाज’ की तरह धर्म और समाज में घुल घाई विभूतियों का निराकरण था। पर बाद में इस संस्था की समस्त धार्मिक समाज-मुधार में ही लगी रही। विविध जातियों और धर्मों के लोगों का परस्पर सान-सान और विवाह-सारी विषय-विवाह स्थितियों की सामाजिक स्थिति का मुधार और सङ्गोष्ठार धार्मिक विषयों की ओर इस संस्था का विशेष ध्यान रहा। इस संस्था की अस्तित्व महारैव गोविन्द रानाडे जैसे वैष्णवी पुरोहों का सहयोग प्राप्त हुआ जिनके प्रयत्नों में इसे काफी सफलता हुई। समाज-मुधारक विषय में रानाडे का धनु धन बढ़ा विज्ञान का और विचार बहुत गुनभे हुए थे। उनकी धारणा थी कि मुधारक को समूचे व्यक्ति को लेना होगा न कि उसके किसी एक पक्ष को लेकर मुधारकों को मान्य करनी होगी।^{११८} इसलिए, सच्चे मुधारक का काम समाज पर सत्ताधियों से पड़े संस्कारों की भी टांगने का प्रयत्न नहीं—ऐसा कर सकना सम्भव है—उनके परिमार्जन की ओर प्रवृत्त होना होगा।^{११९} रानाडे के निरट धर्म और समाज-मुधार दो पृथक काम नहीं एक-दूसरे के पुरक थे।

रामहरण मिश्र

उन्नीसवीं शताब्दी की ‘रामहरण मिश्र’ के रूप में पूर्ण और पश्चिम का सङ्गर्ष

^{११६} इतिहास ‘मार्ग सङ्ग्रह’ में है। इतिहास १४४

^{११७} या सङ्ग्रह सङ्ग्रह ‘मार्ग-सङ्ग्रह’ में है। ‘सङ्ग्रह’—१४०८

^{११८} M. J. Jindal, An Advanced History of India, p. 111

“The reformer must attempt to deal with the whole man and not to carry out reform on one side only” (Ranade)

^{११९} Ibid., p. 111

“The true reformer has not to write on a clean slate. His work is more of an to complete the half-written sentence” (J. N. J.)

रामकृष्ण बेसने को मिला। स्वामी रामकृष्ण परमहंस जिनके नाम पर मिशन की स्थापना हुई, कमफुला के निकट एक मन्दिर के साधारण पुजारी थे। वह सब धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे। ईश्वर भक्ति में वह इतने सीन रहते थे कि उनका जीवन एकाग्र का जीवन रहा। पास-पास के कुछ एक धर्मों और नगरों के धर्मों उन की स्मृति नहीं फैली थी।

कमफुला विश्वविद्यालय के नवयुवक स्नातक नरेन्द्रनाथ दत्त जो बाद में स्वामी विवेकानन्द (सन् १८६१-१९०२) के नाम से विख्यात हुए के रूप में परमहंस को एक योग्य सिष्य मिला और भारत को मिला एक सच्चा सपूत। स्वामी विवेकानन्द के पास अनाम नाम का धर्म्यात्म-सक्ति थी और वा अज्ञेय की व्यक्तित्व। सन् १८८१ में उन्होंने सिकागो में हुई 'वर्ल्ड्स फॉर रिमिनिश' में भाग लिया और वहाँ अपने विद्वत्पूर्ण भाषणों द्वारा पश्चिम बाघों के हृदय पर भारतीय धर्म और संस्कृति की छाप बैठा दी। इससे उनकी प्रतिष्ठि विश्व भर में फैल गई। अमेरिका में राम कृष्ण मिशन के कई केन्द्र कुले। स्वदेश जाकर उन्होंने भारतमें ही स्थान-स्थान पर मिशन की शाखाएँ खोलीं। पड़ी-भिखी जनता में मिशन का कूब प्रचार हुआ। सरस उपासना-मठों के प्रतिरिक्त मिशन के बन्दी फैल जाने का कारण एक यह भी था कि इसने उत्कासीन धर्म संस्थाओं की भाँति सम्पन्न-सम्पन्न की नीति को नहीं अपनाया, भाषणों और साहित्य प्रकाशन द्वारा केवल अपनी ही विचारधारा का प्रचार किया। इसके प्रतिरिक्त मानव-सेवा के कार्य को भी मिशन ने निस्संकोच भाव से अपनाया तथा स्कूल और अस्पताल खोले।

मिशन की सबसे बड़ी शक्ति है भारतीय समाज-व्यवस्था और संस्कृति के प्रति बेधवासियों में सम्मान की भावना का प्रचार। विदेशों में स्वामी विवेकानन्द के भाषणों की धूम मचने से भारत के प्राचीन धर्म और संस्कृति की भी प्रशंसा होने लगी थी उसने भारत के युवकों में अग्रुव आत्म-विश्वास फैल दिया। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द पहले हिन्दू थे जिन्होंने विदेशों में भारत की प्राचीन संस्कृति की विजय-मत्ताका फहराई।^{२२}

विमोक्षोपक्रम सोसायटी

इस सोसायटी के प्रवर्तक मैडम आवात्स की थीर कर्नल प्रॉस्काट थे। सबसे पहले उन्होंने अमेरिका में इस सोसायटी की स्थापना की। सन् १८८६ में उन्होंने भारत जाकर महाश में उसकी एक शाखा खोली। भारत में इस सोसायटी का प्रचार इतना इस संस्था के सिद्धान्तों के कारण नहीं हुआ जिनका उसकी प्रमुख कार्यकर्त्री

२२ Ibid, p. 290 :

"He (Swamivivekananda) was the first Hindu whose personality won demonstrative recognition abroad for India's ancient civilisation and for her new-born claim to nationhood." (Sir Valentine Chirol)

एनी बेसन के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण हुआ। इस सोसायटी का विचार ध्यान हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान की ओर ही रहा। उसका विश्वास था कि प्राचीन सभ्यता के पुनरुद्धार से ही देशवासियों में अपने गौरवमय अतीत के प्रति गर्व और अपने भविष्य की उज्ज्वलता में आस्था उत्पन्न होगी।^{२४}

हिन्दी के साहित्यकार

संकोचित मध्य वर्ग की भिन्न प्रवृत्तियों का उल्लेख हम पहले कर आए हैं। उन में हिन्दी के उत्कृष्टतम साहित्यकारों का सम्बन्ध न पादचार्य सम्प्रदाय के ग्रंथ-भक्तों से था और न ही भारतीय कविवादियों के पुजारियों से। उनका सम्बन्ध उस मध्यवर्ती सुधारवादियों से था जो ग्रंथ और समाज के नाम पर बस रही पाश्चात्त्य कुरीतियों और ग्रंथ परम्पराओं पर निमग्न आघात कर रहे थे और प्राचीन भारतीय सभ्यता के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। वहीं उपनिषदों और दर्शनों में विश्वास सामाजिक कुरीतियों और विद्वत्तियों की ओर निम्न पक्षधरी सम्प्रदाय की अच्छी बातों की प्रशंसा और कुरी बातों की निन्दा आसकों के अत्याचार के प्रति रोष और सही-बुरी की पूजा आदि अनेक प्रवृत्तियाँ भारतीय धर्म के हिन्दी-साहित्यकारों में स्तुनादिक मात्रा में विद्यमान थीं। यह स्वामाजिक भी था क्योंकि भारतीय हरिश्चन्द्र और उनके युग के अधिकांश साहित्य महारथी—रामाष्ट्रपुण्ड्राक्ष भीतिबासदास धर्मिकान्त व्यास बानटपण भट्ट बनीनारायण चौधरी प्रमथन आदि—कोई साहित्यिक ही नहीं राज नीतिक कार्य-कर्ता समाज-सुधारक और धर्मोपदेष्टा भी थे।

साहित्यिक परम्परा

हिन्दी-उपन्यास के पारिष्टिक पठन को उनके रूप-विधान को हम चाहे पश्चिमी साहित्य की दैन मात में पर हम उच्च से इनकार नहीं किया जा सकता कि इनके भीतर बिराजने वाली आत्मा भारतीय ही है। इससे, यह कहना कि प्राचीन भारतीय साहित्य-परम्परा से हिन्दी-उपन्यास का नाम-मात्र का भी सम्बन्ध नहीं है उन विगत परम्परा के प्रति हृदय सेनमा होगा। हिन्दी के अधिकांश प्रारम्भिक उपन्यासों का युग में समाप्त हुआ उनके बर्णनक का जीवन के किसी क्षण का आधार मानकर अपना उनके नायक-नायिका का सद्बुद्धि बाने होना और उन पात्रों के पीछे चलना उन-मन-मन निग-निग करने जगाने देना उपायम भर में

२४ Ibid, p. 86.

"The Indian world is first of all, the world of strengthening and uplifting of the ancient religions. This has brought with it a new self respect a pride in the past, a belief in the future....." (Mrs Annie Besant)

२५ मैक्स मूलर द्वारा 'द हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर', १८९१, १८९२।

सत् और असत् पार्श्वों में संघर्ष बसना, पर धन्त में असत् पार्श्वों का दम्नस्फोट होना और सत् पार्श्वों का विजय पाना—आदि प्रवृत्तियाँ हिन्दी-उपन्यास में कहीं समुद्र-पार से नहीं आई थीं अपने देश की प्राचीन परम्परा से ही उठे ये निजी बी।

संस्कृत-साहित्य

संस्कृत में आख्यायिका-साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। जन्मेद तक में भी आख्यायिका के सभी तत्व विद्यमान हैं। उसमें कथानस्तु है पात्र हैं और हैं उनके सबीब बन्धोपकथन जिनमें उनका चरित्र प्रस्फुटित हो पड़ा है। वन-यमी सबाब पुरुरवा-उर्वशी संवाद आदि इसके प्रमाण हैं। बाह्यण धन्वों में—विशेषतः ऐतरेय और वातपय बाह्यण में—और उपनिषदों में भी कथाएँ मिलती हैं जैसे सत्यवादी हरिवंश की कथा तथा याज्ञवल्क्य मंत्रेयी और नलिकेता आदि की कथाएँ। रामायण और महाभारत तो कथा-साहित्य का बृहत् रूप लेकर प्रचलित हुए थे। उन और-गाथाओं में भारतीय संस्कृति का जो रूप व्यक्त हुआ वह सत्ताधियों एक साहित्यकारों और उनके साहित्य को प्रेरित और प्रभावित करता रहा और आज भी मुग्ध कर रहा है। मानव-मन के मन की भावना में विभिन्न पौराणिक कथाओं को जन्म दिया। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के व्यवस्थित होने पर बृहत्कथा कथासरित् सागर, हितोपदेश पंचतन्त्र वीरचरित्रचरित आदि अनेक नीति-कथाओं का आविर्भाव हुआ। बुद्ध-मत और जैन-मत के धर्म्युदय के साथ इन मतों के प्रचार की दृष्टि से जातक कथाएँ और जैन गाथाएँ रची गईं। निश्चय ही हिन्दी-उपन्यास इस सभी आख्यायिका परम्परा के प्रभाव से वंचित न रह सका होगा जबकि यह एक निर्विबाध सत्य है कि हिन्दी के सगमय सभी प्रारम्भिक उपन्यासकार संस्कृत के प्रच्छेद जाता थे।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों पर संस्कृत की विपुल साहित्यिक आख्यायिकाओं—बंदी का दशकुमार चरित सुकन्तु की 'वासवदत्ता' बासुभट्ट की 'कादम्बरी' आदि—का प्रभाव भी कम नहीं पड़ा होगा। कादम्बरी के कथासंयोजन धारमविस्मृकारी बाठावरण प्रभावोत्पादक संवादों और भावार्थोन्मुख यथार्थ की हिन्दी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं पर भी बड़ी गहरी छाप पड़ी। इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मराठी में उपन्यास के अनेक 'कादम्बरी' शब्द ही प्रचलित हो गया है।

पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य

इस सम्बन्ध में संस्कृत-साहित्य के प्रतिरिक्त हिन्दी में उपन्यास में उदय होने से पहले के कथा-साहित्य की भी जाहे बह यथ में ही हो उपेक्षा नहीं की जा सकती। इतिहास और कल्पना के अद्भुत योग से निर्मित बीरमाधा-कासीन रामो प्रंचा को—पृथ्वीराज राखो बीमलदेव राखो आस्था-ऊम आदि की—तथा पृथ्वी

साहित्य की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए इनकी और इनके रचयिताओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मुन्शी ईसा अस्माबाँ—

जब प्रियेबू हिन्दी का प्रचार कराने में लगे हुए थे ईसा अस्माबाँ ने भी पाश्चात्य प्रवर्धन की भुल में 'रानी केतकी की कहानी' की रचना का एक प्रयोग कर डाला। इस को लिखते समय उनका प्रयत्न यह रहा कि "हिन्दी छुट और किसी बोली की पुट न मिले और हिन्दीबीषम भी न निकले और मात्तावन भी न हो।"^{११} यद्यपि स्वयं लेखक ने इसे कहानी घोषित किया है। आकार की दृष्टि से यह भाव के सधु उपन्यास के बराबर ठहरती है।

इसके कथानक के गठन में तथा पात्रों के चरित्रचित्रण पर भी सूक्ष्म प्रेमार्क्यानकों का प्रभावविशेष स्पष्ट है लक्षित होता है। वही 'पद्मावत' वाली प्रेम की खगम हृदय की तड़प प्रेमी को पाने की उत्कट धमिलापा इसमें भी बिद्यमान है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह भारतीय साहित्य से अधिक दूर नहीं। सत् पात्रों और असत् पात्रों में संघर्ष सत् पात्रों का जीवन भर कष्ट सहते रहना, अन्त में असत् पात्रों की पराजय और सत् पात्रों को फल की प्राप्ति—पात्रों के चरित्र का यही परम्परागत स्वरूप इस रचना में भी मिलता है।

इस रचना का लक्ष्य चरित्र चित्रण न होते हुए भी लेखक का इसे 'सदैमान चरित' नाम देना यह बताता है कि वह नायक के चरित्र-चित्रण के प्रति उदासीन नहीं प्रत्युत् उसके चरित्र के किसी विशेष रूप को उभारना चाहता है। सदैमान और रानी केतकी में परस्पर प्रेम हो जाता है। दोनों एक दूसरे को जी-जाग से चाहने लगते हैं। नायिका के माता पिता बीच में बाधा बनकर भाते हैं। तभी नायक अपने एक पत्र में नायिका को समझा देता है कि किसी और रेश धाम चमें। इसके उत्तर में नायिका को लिख भैया है। उसमें उसका अपना चरित्र प्रतिबिम्बित मिलता है।

"पर बात यह भाव बनने की मज्दगी नहीं। इसमें एक बाप-दादे को चिट लग जाती है और जब तक माँ-बाप बीसा कुछ होता बना भाता है, उसी डोल से बैठे-बैठी को किसी पर पटक न मारें और छिर से किसी के चेपक न दें। तब तक एक बीब तो गया, बी करोड़ बी भाते रहें तो कोई बात हर्दे बचती नहीं।"^{१२}

११ ईसा अस्माबाँ "रानी केतकी की कहानी" प्रथम प्रकाशक प्रसिद्धन दिल्ली, १९१२, पृष्ठ २।

१२ ईसा अस्माबाँ "रानी केतकी की कहानी" पृष्ठ २८।

पर उसी नायिका को जब यह सूचना मिलती है कि उसके पिता ने उससे प्रेमी को हिरन बना दिया है और जब वह बनों की शोक छान रहा है तो वह समस्त सोक-साज भूष, माता-पिता की इच्छा-अनिच्छा की चिन्ता छोड़ प्रेमी की समाप्त में झकेसी घर से निकल पड़ती है। इस प्रकार, हिन्दी के इस प्रारम्भिक 'कहानी नामक उपन्यास' में भी एक विकसनशील नायिका के दान हो पाते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रवृत्ति—

हिन्दी-उपन्यास ने अंग्रेजी ढाँचा तो पहले-गहन भारतेन्दु-युग में ही अपनाया था। उस समय के अधिकांश उपन्यासों का ढाँचा हिन्दी में सीधे अंग्रेजी से नहीं आया था प्रत्युत बंगला के उपन्यासों की देना-देखी ही हिन्दी-उपन्यास ने अपना रूप बदल लिया था। 'भारतेन्दु के अनुरोध से पहले 'काव्यम्बरी' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का और बाद में 'रघु' 'रानी', 'स्वर्णलता' 'ब्रह्मभमा' 'पुरुष प्रकाश' का हिन्दी में अनुबाद हुआ। भारतेन्दु ने स्वयं भी एक उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था। एक कहानी कुछ माप बीती कुछ जब बीती' शीर्षक से उसके कुछ अंश 'कवि-चमन गुप्त' में निकले भी थे। बाद में, उपन्यास के उत्थान की ओर वह विशेष रूप से प्रवृत्त हुए थे पर उनकी यह धाराया बीच में ही रह गई। इस समय में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के एक अंक में इसी यह चित्रण उपलब्ध है

भाटकीयन्यास वालिड पुस्तिका—

"हिन्दी भाषा में भाटक और उपन्यास का पूर्व रूप से अन्तर्गत है। विशेष करके अंग्रेजी और बंग भाषा के अनुसार उत्तम भाटक आज तक बहुत ही कम प्रकाशित हुए हैं। और उपन्यास के तो अभी तादृश स्वर से भी हमारे देश वाग्दण्डन वीचत है। इस हेतु ऐसा विचार किया है कि एक मासिक पुस्तिका २० पृष्ठ की हिन्दी भाषा की पूर्वोक्त नाम की प्रचलित हो और उसमें अनेक उपन्यास और भाटक रहे। ३८

यहाँ भारतेन्दु के समकालीन पंडित अज्ञातम चिन्मयी का नाम भी उल्लेख भीय है। चिन्मयीजी अपने समय के सबसे हिन्दी-हितैषी और लोक-प्रिय लेखक थे। 'भारत-विहिता' 'तटदीप' 'अर्थमिथ्या' 'उदय-संदर्भ' 'राजोदय' आदि हिन्दी में अनेक नायिक अथवा नायिका के प्रतिनिधि जहाँने सं० १९१४ में 'मायवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा था। कहते हैं उस समय उन उपन्यास की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

भारतेन्दु-युग के अन्य साहित्यिक जो उपन्यास की ओर प्रवृत्त हुए, उनमें माता योनिनाम नाम पंडित अम्बिकादास श्याम और पंडित बाग्यपुत्र भट्ट के नाम

साहित्य की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए उनकी और उनके रचनाकारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मुन्शी ईशा अस्ताखी—

जब एडिज हिन्दी का प्रचार करने में लगे हुए थे ईशा अस्ताखी ने भी पाश्चात्य प्रदर्शन की जुग में 'रानी केतकी की कहानी' की रचना का एक प्रयत्न कर डाला। इस की निश्चित समय समका प्रयत्न यह रहा कि "हिन्दी छुट और किसी बोली की छुट न मिले और हिन्दीपन भी न निकले और भाषापन भी न हो।" २१ मसपि स्वयं लेखक ने इसे कहानी बोधित किया है। भाषा की दृष्टि से यह भाषा के सभी उपन्यास के बराबर ठहरती है।

इसके कथानक के बढन में तथा पात्रों के चरित्रचित्रण पर भी सूक्ष्म प्रेमास्मानकों का प्रभावविशेष रूप से लक्षित होता है। यही 'पद्मावत' वाली प्रेम की लयन, हृदय की लड़प प्रेमी को पाने की उत्कट अभिलाषा इसमें भी विद्यमान है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह भारतीय साहित्य से अधिक दूर नहीं। सत् पात्रों और असत् पात्रों में संघर्ष सत् पात्रों का जीवन भर कष्ट सहते रहना अन्त में असत् पात्रों की पराजय और सत् पात्रों को फल की प्राप्ति—पात्रों के चरित्र का यही परम्परागत स्वरूप इस रचना में भी मिलता है।

इस रचना का मुख्य चरित्र चित्रण न होतों हुए भी लेखक का इसे उद्देशान 'चरित' नाम देना यह बताता है कि यह नायक के चरित्र चित्रण के प्रति सदासीन नहीं प्रत्युत् उसके चरित्र के किसी विशेष रूप को छानना चाहता है। छत्रेमान और रानी केतकी में परस्पर प्रेम हो जाता है। दोनों एक दूसरे को जी-जाग से चाहने लगते हैं। नायिका के माता पिता बीच में बाधा बनकर घाते हैं। सभी नायक अपने एक पक्ष में नायिका को समझा देता है कि किसी और देस भाग नहीं। इसके उत्तर में नायिका को निराश भेजती है, इसमें उसका अपना चरित्र प्रतिबिम्बित मिलता है।

"पर बात यह भाग बनने की पच्छी नहीं। इसमें एक बाप-बाबे को बिट लग जाही है और जब तक माँ-बाप जीवा कुछ होला बता धावा है उही डौल से बेटे-बेटी को किसी पर पटक न मार्गे और छिर से किसी के चेपक न रें तब तक एक बीच तो गया जो करोड़ भी पाठे रहें तो कोई बाध हवे बचती नहीं।" २२

२१ ईश अस्ताखी, 'रानी केतकी की कहानी' परिमल प्रकाशन प्रसिद्धान दिल्ली, १९२९, पृष्ठ २।

२२ ईश अस्ताखी 'रानी केतकी की कहानी' पृष्ठ २८।

पर उसी मायिका का जब यह मूषना मिलता है कि उसका पिता मे उसका प्रमी को हिल बना दिया है और जब यह बर्गों को बाक छन रहा है ता यह समस्त साह-साह मूस माता-पिता की हम्दा-धनिष्ठा की निम्ता छोड़ प्रमी की ठमाय में घकती बर से निकल पड़ती है। इस प्रकार, हिन्दी क इस प्रारम्भिक 'कहानी नामक उपन्यास' में भी एक विकसनशील मायिका के दर्शन हा जाते हैं।

भास्तेनु हॉरिखन्त्र की प्रेरणा—

हिन्दी-उपन्यास ने सबसेही बाँधा तो पहल-यहम भास्तेनु-पुग मे ही अपनाया था। उस समय के अधिकांश उपन्यासों का बाँधा हिन्दी में भीमे सबसेही स नहीं आया था प्रत्युत बंगला के उपन्यासों की देखा-देखी ही हिन्दी-उपन्यास ने अपना रूप बना लिया था। 'भास्तेनु' के अनुपरा स पहले 'कावम्बरी' और 'सुर्षनन्दिनी' का और बाद में 'उषा उनी' 'स्वर्णमता' 'बन्धुप्रभा' 'दूर प्रकाश' का हिन्दी में अनुवाद हुआ। भास्तेनु मे स्वयं भी एक उपन्यास लिखना धारम्भ किया था। 'एक कहानी कुछ घान बीती कुछ बय बीती' धीरेक स उसके कुछ अंश 'अहि-बचन-मुषा' में निकल भी थे। बाद में, उपन्यास के उन्मान को धोर यह विषय रूप से प्रवृत्त हुए थे पन बनकी यह आकांक्षा बोध में ही रह गई। इस सम्बन्ध में 'हॉरिखन्त्र चन्द्रिका' क एक अंक में छरी यह विवक्षित उत्तखनीय है

नाटकोपन्यास पालिक पुस्तिका—

"हिन्दी भाषा में नाटक और उपन्यास का पूर्व रूप स अनाम है। विवेक करके सबसेही और नय भाषा के अनुसार उत्तम नाटक आज तक बहुत ही कम प्रकाशित हुए हैं। और उपन्यासों क तो अभी तावुत स्वाद स भी हनारे बन बन्धनमय बंधित हैं। इस हेतु ऐसा विचार किया है कि एक मासिक पुस्तिका २० पृष्ठ की हिन्दी-भाषा की पूर्वोक्त नाम की प्रचलित हा और उसमें केवल उपन्यास और नाटक रहें।" ३५

यहाँ भास्तेनु क सनकासीन पंडित धन्नायन किष्कीरी का नाम भी उल्लेखनीय है। किष्कीरीजी अपने समय के सके हिन्दी-हिन्दी और सोक-जिद मलक थे। 'आत्म-चरित्रा' 'उत्पत्ति' 'बन्धुप्रभा' 'उदय-संध' 'अनोदय' आदि हिन्दी में अनेक धार्मिक अन्य लिखने के प्रतिष्ठित उन्होंने स० १९१४ में 'अप्यवर्ती' नाम का एक सान्नायिक उपन्यास भी लिखा था। कहते हैं उस समय उस उपन्यास की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

भास्तेनु रुप के अन्य साहित्यिक भी उपन्यास की धोर प्रवृत्त हुए, उनमें माला धीनिवास बास पंडित धम्बिकादत्त व्यास और पंडित बामहृष्ट मट्ट के नाम

विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसलिए, यहाँ इन उपन्यासकारों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

जीनिवासदास—

अंग्रेजी ढंग पर प्रथम मौखिक हिन्दी-उपन्यास लिखने का श्रेय सामाजी निवासदास ही को है। इस उपन्यास का अंग्रेजी शीर्षक हिन्दी में बगला के माध्यम से नहीं सीधा अंग्रेजी में आया था। सामाजी अंग्रेजी के प्रमुख जानकार थे। अंग्रेजी उपन्यासों तक उनकी सीधी पहुँच थी। तब तक का हिन्दी-कथा साहित्य प्रेमी प्रेमिका की एक-दूसरे के प्रति लयन उनके हृदयों की बढ़कम प्रिया से मिलने की व्याकुलता आदि की सकीर्ण परिधि में बसना हुआ था। उसे जीवन की यथार्थताओं की ओर प्रवृत्त करने का श्रेय उनके उपन्यास 'परीक्षा-गुरु' को है। यह स्वयं भी अपने उपन्यास की इस विचित्रता के प्रति सचेत थे—'अपनी भाषा में जब तक जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें धक्कर नामक-नामिका बगीच का हाम डेठ से सिससिलेवार (यथाक्रम) सिखा गया है— जैसे कोई राजा बाबसाह सेठ साहूकार का लड़का था। उसके मन में इस बात से यह बचि हुई और उसका यह परिणाम निकला— ऐसा सिससिला इसमें कुछ नहीं मामूम होता' अपनी भाषा में यह नहीं जान की पुस्तक होगी।" ३१ अपने इन शब्दों में उपन्यासकार मानों चरित्र-चित्रण की प्राचीन सेसी के प्रति भी असंतोष प्रकट कर रहा हो और साथ ही गई प्रणाली पमाने का दावा कर रहा हो। उसका यह दावा एक सीमा तक ठीक ही रहा क्योंकि इसके बाद सिखे जाने वाले उपन्यासों में परीक्षा-गुरु के द्वारा निर्दिष्ट पत्र का ही अनुकरण किया गया।

इस उपन्यास का नायक सेठ मधनमोहन है जो अपने चापसूस मित्रों के बनकर में पँसकर दिखाने का जीवन व्यतीत करने लगता है और गले तक अछू में डूब जाता है। उसका एक सम्जन मित्र बुजुर्गिधोर इसका उद्धार करता है और विपत्ति काल की उसकी परीक्षा ही उसका वास्तविक गुरु बनती है। व्यापारी क्षेत्र में पर्वति अनुभव होने के कारण उपन्यासकार बातावरण की सफ़र सृष्टि कर सका है और पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी स्वाभाविकता ला सका है। सेखर द्वारा बीच बीच में पाठकों के सामने सीधे प्रकट होकर उपदेष्टात्मक भाषण झाड़ना प्रचलन दृष्ट करने लगता है पर यह तो उस युग की प्रवृत्ति थी जिससे यह कैसे बच सकता था। इस प्रकार की त्रुटियाँ होने पर भी प्रथम मौखिक हिन्दी-उपन्यास के नाते यह रचना चिर स्मरणीय रहेगी।

अम्बिकावत व्यास

इस युग में जबकि उपन्यास-लेखन के अनेक प्रयोग हो रहे थे पंडित अम्बिकावत व्यास ने भी आश्चर्य 'वृत्तान्त' की रचना कर ली। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह निरी मनचढ़ाव रचना है जिसमें जीवन की यथार्थताओं की अपेक्षा अध्वुत और असीक्तिक की ओर अधिक झुकाव है। जिस प्रकार 'परीक्षा-मुख' 'निस्सहाम हिन्दू' आदि रचनाओं में बाब के सामाजिक उपन्यासों के तत्त्व बीच रूप में मिलते हैं उसी प्रकार इस उपन्यास में बेवकीलमन लाली के तिसरस ऐयारी और बाब के साहसिक उपन्यासों का पूर्व रूप देखने को मिल जाता है। उदाहरण के लिए इसके निम्नलिखित अंश देखिए—

(क) 'इसको धौंठूठी में बबाकर उम्बा फटकारने से एक गोली निकल पड़ी है और उस गोली में ऐसी-ऐसी औपधियाँ पड़ी हैं और सिपी हैं कि कोई जन्तु क्यों न हो उसके रोम से सम्बन्ध होते ही बिबली उत्पन्न होती है और बड़ाके से वह गोली छूट जाती है।'^{४२}

(ख) 'हम के फाटक की ओर हम लोगों ने देखा तो साहब का धनुष लीक पाया। फाटक के समीप एक भारी टोप कस पर बड़ी भरी रखी थी और उसमें ऐसे गन्ध लगे थे कि फाटक कुत्ते ही वह घाप ही छूट पड़े और सामने के सहस्रों मनुष्यों की राख की डेरी लगा वे।'^{४३}

मुख्य रूप से कुदुहसोद्दीपक हाते हुए भी यह रचना चरित्र चित्रण के प्रति उदासीन नहीं कही जा सकती। चाहे परिस्थिति के प्रारंभ से पाठक को मुक्त करने के उद्देश्य से हास्य की पुट देने के लिए ही इसमें बंयासी महाभय का समावेश किया गया हो पर उसका व्यंग्यचित्र बड़ा सुन्दर बन पाया है। अपेक्षी साहब का चरित्र भी उसके कथोपकथन और क्रिया प्रतिक्रिया में प्रतिबिम्बित हो उठा है चाहे ऐसा अनामास ही हुआ हो। उसकी आकृति और बेश भूषा का वर्णन भी बड़ा प्रभावोत्पादक हुआ है

"हम लोगों ने साहब को देखा कि उनकी सम्बी जबली बाड़ी फरफटा रही है जबला झुल्ला और पायबामा पहरे है। मेरी समझ में साहब लगभग पैसठ बरस के होंगे पर ओंवा क्षीर, बूढ़ अंग और अंग की स्फूर्ति ऐसी थी कि बाब छोड़ सदाय में जीवन अलकता था।'^{४४}

पात्रों के आकृति बेशभूषा-वर्णन की यही धीसी धपने परिष्कृत रूप में हिन्दी के परवर्ती उपन्यासों में मिलती है।

४ (क) अम्बिकावत व्यास 'अम्बिकावत वृत्तान्त', व्यास पुस्तकालय, काशी, १९४६, पृष्ठ २१।

४ (ख) वही, पृष्ठ २७।

४१ अम्बिकावत व्यास, 'अम्बिकावत वृत्तान्त' पृष्ठ २६।

पंडित बालकृष्ण मट्ट

पंडित बालकृष्ण मट्ट अपने समय के उच्च कोटि के विद्वान् थे। इनका रहन-सहन धार्मिक-रहीन था। समाज के पक्के अनुयायी होते हुए भी वे कभी धर्म-परम्परा के पक्षपाती नहीं रहे। इन्होंने 'सौ भवान् एक सुभान्' तथा 'मृतन बड़ा भारी' नाम से दो उपन्यास लिखे। ये दोनों छोटे-छोटे उपन्यास हैं जिनकी रचना कुछ-एक नैतिक सिद्धान्तों को पाठकों की समझ में बँटाने के उद्देश्य से हुई।

'सौ भवान् एक सुभान्' की ही मैं। इसमें हीराचम्ब नामक एक सेठ के दो पुत्रों की कहानी है जो कुछ-एक आपसूय और भवान् मित्रों की कुसंगति में पड़कर अपना सब कुछ मबा बेते हैं और बेस तक भोगते हैं। अन्त में चम्बू नामक एक सुभान् मित्र द्वारा उनका उद्धार होता है। इस उपन्यास का उद्देश्य है अपने पाठकों को यह शिक्षा देना कि धर्मानुक्रम आचरण करने वाले सुख-समृद्धि को प्राप्त होते हैं और धर्म बिच्छ आचरण करने वाले अंत में दुखी होते हैं। उपन्यास के अन्त में मट्ट भी स्वयं भी लिखते हैं।

'अन्त को हम अपने पढ़ने वालों को सूचित करते हैं कि आप सोमों में यदि कोई धर्मोत्तम और भवान् हों तो हमारे इस उपन्यास को पढ़ आशा करते हैं, सुभान् बनें। इस किस्से के भवान् को सुभान् करने का चम्बू बा और आप को हमारा यह उपन्यास होगा।' ४२

उपन्यास के विषय-वस्तु और धाकार की दृष्टि से इसके पात्रों की संख्या अधिक लगती है। सेठ हीराचम्ब, चिरोमणि मित्र, जगद्वेश्वर (चम्बू), अदिनाथ निजिनाथ बंसठा, रमादेवी, गम्बरास (गम्बू), रघुनन्दन हकीम साहब, हुमा बेबम बुद्धदास राइकों का मुन्दा बाबा, मिट्टू मस कोठवाल, दारोगा फज्जुबा (कोठवाल का लौकर), लकी भग्नी (कांस्टेबल), पंचानन बब्रू, कुस मिता कर २ के लगनव पात्र हैं और उपन्यास का धाकार है १२१ पृष्ठ। परिणामस्वरूप पात्रों के चरित्र का सम्यक् चित्रण नहीं हो पाया। दोनों बाबू चम्बू-गम्बू पंचानन रमादेवी के सिवा धर्म पात्र महत्वहीन हैं उनके चरित्र-चित्रण में उलझकर लेखक मुख्य पात्रों के चरित्र को भी ठीक ढंग से चित्रित नहीं कर पाया है।

लेखक के पात्रों का चरित्र चित्रण भी सीधे में ही चित्रित किया है। उनके धर्म या बुरे काम करने की रिपोर्ट भी हमें लेखक के शब्दों में ही मिलती है। कथोपक्रम बहुत कम करवाये गए हैं यहाँ तक कि उपन्यास के पात्रों (दोनों बाबू) में से केवल अदिनाथ ही बोलता है और वह भी सारे उपन्यास से केवल एक बार जो तीन-चार वाक्यों तक ही सीमित है। ४३

४२ अन्तर्गत यह 'सौ भवान् एक सुभान्', मध्य प्रकाशक, लखनऊ, १९५० संस्करण पृ. २, ६

पृ. १२१।

४३ पृ. ६३, पृ. ६३।

इसमें दो प्रकार के पात्र हैं—एकले घोर बुरे। एकले पात्र धर्मानुक्रम धारण करते हे घोर बुरे धर्म-विपक्ष धरते हे। दोनों में संघर्ष होता है। पहले बुरों की जीत होती है पर अंत में बुरों को उनकी करनी का फल बेस मिलती है घोर धर्मियों को सुख घोर धार्मिक। भेसक की सहानुभूति तथा धर्मियों के साथ रही है घोर बुरों के प्रति उसकी पूर्ण व्यक्त होती रहती है। भेसक पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर टीका लिपिली भी साथ-साथ करता जाता है।

नये पात्रों का परिचय भेसक बड़े स्वाभाविक ढंग से करता है पर बहु परिचय इतना पूर्ण होता है कि एक बार उनके बारे में सब कुछ जान लेने के बाद फिर उनके चरित्र के विकास में पाठक की विशेष उत्सुकता नहीं रहती। पात्रों का परिचय कराते समय उनके पुष्टावपुष्टों के वर्णन के साथ-साथ भेसक उनका 'स्प-रग' तथा समाज में उनका स्थान भी बता देता है।

धनुरित उपन्यास

उपयुक्त मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त हिन्दी-उपन्यास को धार्मिक रूप देने घोर उसे उत्तरोत्तर विकसित करते रहने में धर्म धाराधर्मों के हिन्दी में धनुरित उपन्यासों का भी विशेष हाथ रहा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयत्नों से उस समय के साहित्यिकों का ध्यान धर्म धाराधर्मों के धर्म-धर्म उपन्यासों को हिन्दी में रूपान्तरित करने की ओर जा चुका था। बंगला के कई धर्म उपन्यासों के हिन्दी-रूपान्तर तो उनके जीवन-काल में ही प्रकाश में आ चुके थे। बाबू यदाचरसिंह ने 'धर्म-विवेक' घोर 'धुर्धननिर्दिनी' का बाबू रामकृष्णदास ने 'स्वर्णसत्ता' 'मरता क्या न करता' धार्मिक का पंडित प्रतापनाथदास मिश्र ने 'धर्मसिंह' 'इतिहास' 'धर्म धर्म' 'धुर्धननिर्दिनी' का घोर पंडित रामाचरस धोस्वामी ने 'विष्णु' 'आविर्भा' 'मृगय' का हिन्दी अनुवाद करके विकास दिया था।^{४४}

इसके बाद तो हिन्दी में धनुरितों की एक बाढ़-सी आ गई। यद्यपि इनमें धर्मिक धनुरितों का धर्म धाराधर्म पर बीसा धर्मिकार न था बीसा धनुरित के लिए धार्मिक होता है, तो भी जिस उद्देश्य को लेकर ये धनुरित किए गए थे उस की पूर्ति धर्म ही कर हो गई थी। इनसे हिन्दी के भेसकों का धर्म धाराधर्मों के नए ढंग के ऐतिहासिक घोर सामाजिक उपन्यासों से परिचय हो गया घोर उन्हें स्वतंत्र उपन्यास लिखने की प्रेरणा मिली घोर इसके लिए योग्यता भी प्राप्त हुई। इस युग में हुए धर्म कुछ धनुरितों घोर धनुरितों के नाम इस प्रकार हैं।^{४५} —

बाबू रामकृष्णदास 'धर्मधर्म-धर्म' (सं० १९४६)

'धुर्धननिर्दिनी-धर्म' (सं० १९४७)

^{४४} धर्मधर्म उपन्यास हिन्दी-साहित्य का ऐतिहासिक धर्म नाम की धर्मधर्म धर्म, सं० १ १, पृष्ठ ४२२।

^{४५} धर्म, पृष्ठ ४२०।

‘भकवर (सं० १९४६) ‘भमसावृतान्त-मासा’
(सं० १९३१)

‘बिठौर पातकी’ (सं० १९३२)

बाबू कार्तिकप्रसाद झाबी ‘इसा’ (सं० १९३२) ‘प्रमीसा’ (सं० १९३१)

बाबू गोपालराम महमरी ‘बतुर बंभना (सं० १९३०) ‘मानमती’
(सं० १९३१)

‘नए बाबू (सं० १९३१), ‘बड़ा साई’
(सं० १९३७)

‘बेहरानी-बैठानी’ (सं० १९३८)

‘सो बहिन’ (सं० १९३९) ‘तीन पत्तोड़’
(सं० १९३९) आदि।

मुन्शी अब्दुल्लाह नारायण : ‘बीप-निर्वासि’

इस प्रकार, उस युग में बंकिमचन्द्र रमेशचन्द्र बस हारणचन्द्र रसित, बंजी बरल सेन सरस्वचन्द्र बट्टोपाध्याय चाबचन्द्र आदि बंगला के उच्च कोटि के उपन्यासकारों के लगभग सभी अच्छे-अच्छे उपन्यास हिन्दी में बहान्वित हो चुके थे। बंगला के अतिरिक्त बुजराही और मराठी के भी कुछ उपन्यासों का हिन्दी में अनुबाद हुआ। हिन्दी-उपन्यास की परम्परा प्रतिष्ठित करने के लिए यह आवश्यक ही था कि अन्य भाषाओं के उच्च कोटि के उपन्यास हिन्दी में उपसब्ध हों। इन अनुबादों ने इस आवश्यकता को पूरा किया।

उस युग के मौलिक उपन्यासों की औपन्यासिकता और अनूदित उपन्यासों की भाषा और सीसी भाव चाहे कितनी ही गम्य प्रतीत हो पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उस युग के मौलिक और अनूदित उपन्यासों ने मिलकर प्राबु निक हिन्दी-उपन्यास को एक बड़ा पृष्ठभूमि प्रदान की जिसके बस पर वह बड़े उत्साह और धारमविश्वास के साथ अपने विकास की अपनी अवस्थाएँ पार कर सका।

તોસરા અધ્યાય

અનાયાસ ચરિત્રચિત્રણ

अनायास चरित्रचित्रण

प्रस्तावना

उपन्यास में सरल प्रिय और हित
प्रारम्भिक उपन्यासों में लोकरंजन की प्रवृत्ति ही मुख्य
विलक्षण-दैन्यारी और जासूसी उपन्यासों में परिचयिषण

देवकीनन्दन खत्री

परिचयारम्भक विवेचन

प्रामोक्षकों द्वारा उपेक्षा
पुनर्भूत की प्रावण्यकटा
देवकीनन्दन खत्री के पास

पात्रों का चरित्रचित्रण

पात्रों के नाम
पात्रों का प्रथम परिचय
आकृति-वेषभूषा-वर्णन
घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण
कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण
अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी

सोपासराम बहुमरी

परिचयारम्भक विवेचन

प्रामोक्षकों की उदासीनता
प्रारंभ जासूसों का चित्रण

पात्रों का चरित्रचित्रण

प्रध्यायों के शीर्षक
पात्रों के नाम
पात्रों का प्रथम परिचय
आकृति-वेषभूषा-चित्रण
घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण
कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण
अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी
पात्रों के घर
मूर्खताविमूर्ख निरीक्षण

प्रस्तावना

उपन्यास में सत्य, प्रिय और हित—यैसा कि उसके प्रवेशी नाम 'नावेल' से भी प्रकट होता है। साहित्य में उपन्यास एक नए साहित्य प्रकार के रूप में आया। इसका जन्म कविता और नाटक के परभाव हुआ। मानव-जीवन के उत्तरोत्तर जटिल होते जाने से उसकी समस्याएँ कविता और नाटक में न समा सकीं और मनुष्य की अनुभूतिपात्र सब प्रकार के बाध छोड़कर, कविता और नाटक की शास्त्रीय सीमाओं का उल्लंघन करके अपने प्रकृति रूप में बह निकली। अनुभूति की इस प्रकृत अभिव्यक्ति को उपन्यास की संज्ञा मिली। उपन्यास ने कल्पना की ऊँची उड़ान न भर कर मानव-जीवन की यथार्थताओं को अपना विषय बनाया और अपनी विद्यासता में धीरे-धीरे मानव-विकास के तीनों क्षेत्रों—भाषात्मक बौद्धिक और वैज्ञानिक—को समा लिया। वर्ण और विज्ञान को उनकी सीमाओं में विकसित कर साहित्य के अनुरूप बनाने में उपन्यास ने जो कार्य किया वह अप्रत्यूष्य था। सबसे मानव को साक्षात् बत गई कि वह उपन्यास में अपनी अनुभूति को सम्पूर्णता में अभिव्यक्त होते देख सकता है।

भीमस्मामकवीरा में 'बाह्यम' तप के अन्तर्गत की गई परिभाषा के अनुसार साहित्य के तीन प्रधान तत्त्व ठहरते हैं—सत्य प्रिय और हित^१। सत्य धर्म और सुन्दर कमरा सत्य हित और प्रिय के ही दूसरे नाम हैं। साहित्य के सभी मुख इन तीनों तत्त्वों के अन्तर्गत हैं। साहित्य में स्वाभाविकता माने जाया तब सत्य है। लोकशास्त्र की प्रवृत्ति उसका हित (धर्म) तत्त्व है। विन विरोधताओं के कारण साहित्य अपने पाठकों का मनोरंजन करके उन्हें अपने में लक्ष्मण रखता है वे उसके प्रिय (सुन्दर) तत्त्व के अन्तर्गत हैं। साहित्य की प्रत्येक कृति में ये तीनों तत्त्व विद्यमान रहते हैं पर वे सदा साम्यावस्था में नहीं रहते। किसी में 'सुन्दर' प्रधानता ग्रहण कर लेता है किसी में 'धर्म' मुख्य हो जाता है और किसी में 'सत्य' मुख्य रूप

१ श्रीमद्भागवत, १.७.१२

"अमुनेकं सत्यं सर्वं प्रियं हितं च।

साम्यावस्थायां येन साधनमन्यते ॥"

ऐसे व्यक्तित्व हो जाता है। पर सफल साहित्य-कृति यही हो पाती है जिसमें इन तीनों तत्वों का समन्वय हुआ हो।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में लोकरोचन की प्रवृत्ति मुख्य—हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में सुखरं ठाकुर का प्राधान्य रहा। उस समय साहित्य से विशेषतः उपन्यास से समाज की पहली माँग लोकरोचन की थी। उस युग के पाठकों को यही उपन्यास प्रिय लगते थे जो उनके मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करके उन्हें ध्यात विस्मृत कर दें। मनुष्य का मन और इन्द्रियाँ उन वस्तुओं से सज्जि हैं जिनके प्रति उसे विस्मय हो और जो उसके भीतर वैचित्र्य का भाव जागृत करें। इसीलिए, हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में अनोखी बटमायों तथा विचित्र पात्रों की भरमार रही। उस युग के उपन्यासों में माना प्रकार की विस्मयोत्पादक बटमायों का समतुल्यपूर्ण वर्णन करके पाठकों के हृदय में गुनगुन जागृत करते हुए उन्हें मुग्ध करने की चेष्टा की जाती थी। बटमायों के बटाटोप के पीछे जो एक रहस्यमयता छिपी रहती थी उसका धीरे-धीरे उद्घाटन करके पाठक के अंतर्मुख को निरन्तर बढ़ाते रहने वाला उस युग के उपन्यास धारण्य रोचक और लोक प्रिय बन गए थे।

उस युग में हिन्दी-उपन्यासों से और कोई धापा नहीं की जाती थी। परिणामस्वरूप लोकरोचन उपन्यास का एकमात्र मन्त्र बन गया था। उस समय का पाठक उपन्यास से यह धापा नहीं करता था कि वह उसे एक जीवन-वर्णन देकर उसका पच प्रदर्शन करे, क्योंकि वह जानता था कि जीवन-वर्णन के लिए उसे उपन्यास की ओर नहीं धर्म-ग्रन्थों की ओर प्रवृत्त होना होगा। उपन्यास को तो वह केवल इसलिए पढ़ता था कि कुछ समय के लिए यथार्थ जीवन की कटुताओं को भूल सके और अपने आपको मुक्त पंखों के समान विचरता हुआ पाए। पाठकों की इस माँग की पूर्ति में लिखे गए उपन्यासों में से देवकीनन्दन खत्री के विस्मय और ऐश्वर्य के उपन्यास तथा गोपालराम महुमरी के जासूसी उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपन्यासों का डेर बना देने वाले उस युग के तीसरे प्रसिद्ध उपन्यासकार पंडित किशोरीलाल गोस्वामी के अधिकांश उपन्यास धारणाओं के बच-रंग लिए होने पर भी इन दोनों उपन्यासकारों की रचनाओं के समकक्ष नहीं माने जा सकते। उनके उपन्यास नितांत समाज निरपेक्ष नहीं थे। उनमें समाज के कुछ-एक सजीव बिज और पात्रों का बोझा-बहुत चरित्र-चित्रण भी मिल जाता है। यही तो धार्मिक रामचन्द्र भुक्त प्रवृत्ति धातोरक देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम महुमरी के उपन्यासों को ता साहित्य की कोटि में ही नहीं रखते पर इन्हें साहित्य की दृष्टि से पहला उपन्यासकार मानते हैं।^१ इसीलिए, गोस्वामीजी के उपन्यासों में हुआ चरित्र-चित्रण धनायास नहीं सोईस्य चरित्र-चित्रण की कोटि में आया।

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' अगली मासरी प्रकाशित संस्करण पृष्ठ २१६-२१७।

सिद्धि-प्रेमारी धीर आसूरी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण—देवकीनन्दन खत्री ने अपने उपन्यास चरित्र-चित्रण के उद्देश्य से तो नहीं लिखे थे पर एक बार उपन्यास लिखना प्रारम्भ करके मना कोई उपन्यासकार चरित्र-चित्रण की समस्या से बच पाया है। खत्री जी के पात्रों का चरित्र-चित्रण भी उनकी क्रिया प्रतिक्रिया उनके कर्मोप कर्मों आदि में उपन्यासकार के जाने या धजाने फूट पड़ता है। उत्कासीन समाज के चरित्र सम्बन्धी मूल्य उनके उपन्यास में अपने अविच्छिन्न रूप में मिलते हैं। धर्म और ध्याय पर बसने वाले 'बन्धुबान्ता' धीर 'बन्धुकान्तासतति' के राजा भीरेन्द्र सिंह धीर उनके पुत्र इन्द्रवीर सिंह तथा आनन्द सिंह बीदन भर अपने नीच धीर स्वार्थी सन्तुषों की झूटनीति में उलझे रहते हैं धीर बाना प्रकार के कष्ट भोगते रहते हैं। पर घट में उनके घघर्मी सन्तुषों की पोस कुल जाती है धीर उन्हें उनके कुकर्मों का फल मिलता है। उपन्यास में स्वाम-स्वाम पर खत्री जी का इस प्रकार लिखते रहना कि प्रार्थनमय बीदन बासा ध्याय धीर धर्म की रक्षा करने वाला सदा घट में बिजयी हो कर सुख पाता है धीर घट में उसके घघर्ष पात्रों का बिजयी होना इस धीर स्पष्ट संकेत है कि उपन्यासकार सच्चे धीर घघर्ष पात्रों के भेद को भूल नहीं पाया है धीर उनका चरित्र अनायास ही उनके कृत्यों में अभिव्यक्त हो सका है। इसी प्रकार मोपामराम नहुमरी के आसूरी उपन्यासों का आसूय घघर्षों को पकड़ने के लिए दिन-रात एक कर बैठा है। इसी घुल में वह अपना सब सुख भुल जाता है। उसकी यह स्वाम-भाषना उसकी चतुराई धीर सम्मिश्रिता की ही परिचायिका है। इन उपन्यासों के घट में घघर्षों का पकड़े जाना धीर खत्री पाकर अपनी करनी का फल मोचना भी उन पात्रों के भयंकर चरित्र को पाठकों के सामने ला खड़ा करता है उपन्यासकार ने मने ही इसके लिए कोई बेतन आयास न किया हो।

देवकीनन्दन खत्री परिचयात्मक विवेचन

देवकीनन्दन खत्री हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं जिनके पाठकों ने चाहे वे किसी बर्ग के हों उनके उपन्यासों की भुक्त कष्ट से प्रसंसा की है। उनके उपन्यासों को मिले धाब समय सत्तर वर्ष होने को हैं और इस बीच हिन्दी-उपन्यास अपने विकास की धनेक अवस्थाएँ पार करके प्रात्माधुनिक मनोवैज्ञानिक रूप धारण कर चुका है फिर भी खत्रीजी के उपन्यासों के पाठकों और प्रसंसकों की संख्या में कोई कमी नहीं आई। उनके उपन्यासों ने केवल पाठक ही नहीं उपन्यासकार भी पैदा किए हैं। हिन्दी के अनेक उपन्यासकारों पर इस रूप में उनका भारी प्रत्यक्ष है इस प्रत्यक्ष को स्वीकार करने में भले ही धाब कई उपन्यासकार सकोच करते रहे हों। गुरुदास ने खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' से मिली प्रेरणा को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है 'मैंने सबप्रथम 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखित पढ़ा था। उस समय मैं स्कूल की पाँचवीं श्रेणी में पढ़ता था। 'चन्द्रकान्ता' मुझ को बहुत ही रसमय लगी थी। वास्तव में निराश बनने की इच्छा मेरे मन में तब से उठी थी।'^१ हिन्दी के बभोबुद्ध साहित्यकार परमनाम पुन्नामास बख्शी भी 'चन्द्रकान्ता' और 'चक्रकान्ता संतति' से प्राप्त रस को भूब नहीं पाते'। उनका कहना है कि प्राधुनिक उपन्यासों को तो मैंने केवल पढ़ने के लिए पढ़ा है।

प्राप्तोचकों द्वारा उपेक्षा—यह प्राधर्ष्य और लैव का विषय है कि खत्रीजी को विद्वता अधिक माल उनके पाठकों ने दिया उनके प्रति छतना ही अधिक उपेक्षा का भाव हिन्दी के प्राप्तोचकों ने बिताया। हिन्दी-उपन्यास के इस बिसाल भवन को बुद्ध नीब प्रदान करने वाले इस साहित्य-महारथी और उसकी रचनाएँ अब तक प्राप्तोचकों से उचित मान नहीं पा सकी हैं। प्राप्तोचक सदा इनके साथ ऐसा व्यवहार करते रहे हैं जो समाज से बहिष्कृत लोगों के प्रति होता रहा। साहित्य के इतिहास में तिसरवीं और ऐय्यारी के उपन्यासों का उत्सेध हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों का उनके

१ गुरुदास। "ठकुरादु कोसे मित्रे गय" 'साहित्य संदेश : प्राधुनिक उपन्यास-भंड' सुपार-भगल, १९९९, पृष्ठ ८०।

४ बख्शी। 'हिन्दी-बुद्ध-साहित्य की प्राधुनिक प्राधित्या', 'प्रथम समाज', मार्च, १९९९।

प्रणयक रूप तथा उपरिपक्वता का परिचय कराने के लिए किया जाता है, माना हिन्दी-उपन्यास के विकास में इससे अधिक उनका कोई महत्त्व न हो। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए भी कि जितने पाठक खीजी ने उत्पन्न किए उतने किसी और प्रणयकार ने नहीं और यह भी कि 'बन्धुकान्ता' पढ़ने के लिए ही न बाने जितने उर्ध्व खीजी लोगों ने हिन्दी सीखी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उनके प्रति अत्यन्त प्रशंसित करने की बजाय उनकी रचनाओं को साहित्य मानन तक से इनकार कर देते हैं "ये (उपन्यास) वास्तव में घटना-प्रधान कथानक या किस्से हैं जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं। इससे ये साहित्य-कोटि में नहीं आते"।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन उपन्यासों की रचना में निहित लेखक के दृष्टि कोश को समझने का प्रयत्न किए बिना अपने पूर्वग्रहों के आधार पर ही आलोचक उनकी रचनाओं का मुल्यांकन करते रहे हैं। इन उपन्यासों की रचना घन प्रचार या समाज-सुधार की भावना से नहीं हुई थी। उस समय के पाठकों की हिन्दी-उपन्यास से यह भाग भी नहीं। वे तो मनोरंजन के लिए, कुछ समय के लिए यथार्थ-जीवन की कठुताओं को भुलाने के लिए, उपन्यास पढ़ना चाहते थे। उनकी भाँप की पूर्ति में ही इन उपन्यासों की रचना हुई थी। खीजी ने स्वयं भी इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है "बिना प्रकार पंचतन्त्र हितोपदेश आदि ग्रन्थ बालकों की शिक्षा के लिए लिखे गए, उसी प्रकार यह पाठकों के मनोविनोद के लिए"।^१ उपन्यास और लोक-रसण की भावनाओं को परस्पर बिरोधी तो खीजी भी नहीं मानते थे पर उनका आग्रह यह था कि उनका युग 'बन्धुकान्ता' और 'बन्धुकान्ता संवत्ति' के-से हस्के-पुस्के लोकप्रिय उपन्यासों का ही था न कि गम्भीर विषय की घटी-भरकम रचनाओं का। अपने आलोचकों के प्रति खेदों से लिखा भी है "एक समय था कि लोग सिद्धान्त-बत्तीसी ब्रैतान-पन्नीसी आदि कहानियों को बिनाम-कास में रुचि से पढ़ते थे फिर बहुरहस्य और अविश्वसनीय किस्सों का समय आया अब इस ढंग के उपन्यासों का समय है। अब भी वह समय दूर है जब लोग बिना किसी प्रकार की ग्लानि-विश्रुति के ऐतिहासिक पुस्तकों की रुचि से पढ़ेंगे"।^२ अपने पाठकों के मनोरंजन की बुन में यह उपन्यासकार भले ही वार्मिक गैता या समाज-सुधारक के रूप में अपने पाठकों के सामने न आया हो पर इतने से ही यह समझ लेना कि ये उपन्यास समाज के लिए अनुपयोगी हैं इनके प्रति व्यथित करना होगा। इनके लेखक के अपने धर्मों में इनका "सबसे ज्यादा प्रयत्न तो यह है कि ऐसी किताबों को पढ़ने वाला जल्दी किसी के बोझ में नहीं पड़ेगा"।^३ इन उपन्यासों में बखित घटनाओं की समाख्यता

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी-ग्रन्थिण क इतिहास, राष्ट्रीय-प्रकाशनी प्रकाशित, लखनऊ, सं. २, पृष्ठ ४६६।

२. देवकीनन्दन खत्री : 'बन्धुकान्ता संवत्ति' और 'बन्धुकान्ता संवत्ति' के विषय में लखनऊ, १९२० ई. पृष्ठ २२।

३. देवकीनन्दन खत्री : 'बन्धुकान्ता संवत्ति' पृष्ठ २६।

४. देवकीनन्दन खत्री, 'बन्धुकान्ता'—प्रथम भाग, लखनऊ, १९२२ ई. पृष्ठ १।

के सम्बन्ध में जाहे मतभेद हो पर इस बारे में जो मत नहीं हो सकते कि इन उपन्यासों में शायद ही कोई ऐसा स्वस मिलेगा, जहाँ खनीजी ने समाज-व्यवस्था और उसके विभिन्न-विधियों के विरुद्ध सेजनी उठाई हो।

पुनर्प्राप्त की आवश्यकता—क्योंकि खनीजी ने अपने उपन्यासों में सम्ये सम्ये उपदेशात्मक भाषण नहीं दिए, इसी से यह समझ लेना कि उनके उपन्यासों में जीवन के लिए उपयोगी तथ्यों का अभाव है तथ्य के प्रति खाने में भ्रम लेना होगा। इनके उपन्यासों की जीवन और व्यवस्था के लिए अनुपयोगी कहकर उन्हें साहित्य तक की कोटि से निकाल देने वालों से पूछा जा सकता है कि क्या 'बन्धकान्ता' के ऐम्पार सेनसिंह और जीतसिंह के-से निस्वार्थी स्वामी-भक्तों के मादस चरित्र से जो अपने स्वामी के हित-साधन में चिर-यक की बाजी लगा देते हैं, पाठकों को कोई प्रेरणा नहीं मिलती क्या कूरसिंह जैसे समाज के अनिष्टकारी अपराधियों को पकड़ कर दण्डित करने में उनकी तत्परता शरीर और बुद्धि की शक्ति की दृष्टि से कृतनीतिज्ञता पाठकों को प्रेरित नहीं करती कि वे भी उनकी तरह समाज के विनाशक तत्व को ठिकाने लगाने के लिए कर्म कर लें ? क्या ऐम्पारी द्वारा प्राप्त विजय प्राहितात्मक विजय से किसी भी प्रकार कम महत्व की कही जा सकती है ? हाँ यदि उनकी कृत नीतिज्ञता तथा देहकालाकी से सिनामत है तो सोचना होगा कि विशालवत्त के नाटक 'मुद्रा रास' में इस प्रकार की भावों की कमी है। उसे तो साहित्य की कोटि से निकालने की किसी आलोचक को नहीं श्रुति। इसी प्रकार के कई-एक प्रश्न हैं जिनसे कोई भी आलोचक हिन्दी-उपन्यास में वैयक्तिकत्व खनी का स्थान निर्धारित करते समय बच नहीं सकता। यही नहीं इन प्रश्नों का सही-सही उत्तर जाने बिना वह यह समझ नहीं सकता कि आलोचकों की निपट जेदा ही नहीं जोर विरोध के होते हुए भी वैयक्तिकत्व खनी के पाठकों ने उनके आलोचकों की सम्मति क्यों नहीं मानी और क्यों उनके उपन्यास अपना रास्ता स्वयं बनाते रहे और बनाते रहने।

वैयक्तिकत्व खनी के पात्र—हिन्दी-उपन्यास में वर्ग प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण की आवश्यकता महसूस करते हुए प्रेमचन्द ने एक बार अपने एक वच में लिखा था 'किसी ने धर्मो तक समाज के किसी विशेष वर्ग का विशेष रूप से अध्ययन नहीं किया। उस ने किया मगर बहुत थोड़ा। मैंने कृपक वर्ग को लिया मगर धर्मो कितने ही ऐसे समाज पड़े हैं, जिन पर रोचनी की जरूरत है।^१ कहना न होगा कि प्रेमचन्द के इस पत्र से ४०-४५ वर्ष पहले ही वैयक्तिकत्व खनी ने वर्ग प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण की आवश्यकता महसूस कर ली थी। उनके 'बन्धकान्ता' और 'पन्धकान्ता संवधि' नामक उपन्यासों में मध्ययुगीन राजवरवारों में काम करने वाले ऐम्पार लोगों का जितना विशाल चित्रण हुआ है उतना किसी अन्य वर्ग का—प्रेमचन्द के उपन्यासों में कृपक वर्ग के चित्रण का छोड़कर—हिन्दी उपन्यास में शायद ही

मिले। सं० १९४४ में 'बन्धकान्ता' के प्रथम संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है 'आज हिन्दी के बहुत से उपन्यास हुए हैं जिनमें कई तरह की बातें तो राज नीति भी लिखी गई हैं, राजद्वार के तरीके भी सामान भी बाहिर किए गए हैं मगर राजद्वारवालों में ऐय्यार (बामक) भी गौकर हुआ करते थे जो कि हर्फनमीमा माने मुख्य बरसना बहुत सी दबावों का जानना जाना-बजाना बीड़ना सस्त्र पसना बासुओं का काम देना वगैरह बहुत सी बातें जाना करते थे—इन ऐय्यारों का बयान हिन्दी किताबों में अभी तक नहीं जुड़ा। मगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस मजे को बेस से तो कई बातों का फायदा हो'। जब राजा-महाराजवालों में घनबल हो जाती थी तो ये लोग अपनी जामाकी के बल पर ही रक्त की एक भी बुंद गिराए बिना एक भी सैनिक की जान गँबाए बिना झमड़ा समाप्त करा देते थे। उस युग में इन लोगों का बड़ा मान होता था। इन्हीं ऐय्यारों का घादसे-बीचन कभीकभी के उपन्यासों में चित्रित हुआ है।

पात्रों का चरित्र चित्रण

देवकीनन्दन खत्री ने अपने उपन्यासों की रचना मुख्यतः पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से बाहे न की हो पर उनके उपन्यासों को पढ़ने पर उनके पात्रों का जो स्वरूप पाठकों की आँखों के सामने खिंच जाता है उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि चरित्र-चित्रण के प्रति वे उदासीन थे। वास्तव में उनके उपन्यासों के कई ऐय्यार उनके पाठकों के मन पर अपनी घमिष्ट छाप छोड़ जाते हैं। अब हम यह देखेंगे किस प्रकार ये पात्र बीरे-बीरे पाठकों की कल्पना में साकार होते जाते हैं—लेखक ने इस धोर कोई विशेष प्रयास किया हो या न किया हो।

पात्रों के नाम

खत्री जी के पात्रों के नामों से ही उनकी चरित्रचित्रण विधिपट्टाचार्यों का पता चल जाता है मानों पात्रों के नामों द्वारा उपन्यासकार उनके स्वभाव के गुणगुणों को व्यक्त कर रहा हो। उनके उपन्यास 'बन्धकान्ता' के राजकुमार बीरेन्द्रसिंह को 'अपनी ठाकुर का भरोसा'^{११} है, यह बात उसके नाम से ही व्यक्त हो जाती है। नायिका 'बन्धकान्ता' भी सौन्दर्य में बन्धकान्ति से कम नहीं। उसकी ऐय्यार सबी बपसा अपने नाम के प्रमुख ही 'जामाकी के फन में बड़ी तेज'^{१२} और 'बचल मानभाओं वाली' है। राजसिंह और उसके पिता जीतसिंह के नामों से भी उनके हृत्पथ ध्वनित हो जाते हैं। राजसिंह बड़ा पामाफ और पुरीषा है। वास्तव में बीरेन्द्रसिंह की विजय सिद्ध बाबा के बेस में जीतसिंह के कारण ही सम्भव हो सकी थी।^{१३}

१ देवकीनन्दन खत्री। 'बन्धकान्ता'—भूमिका पृ. १।

२१ खत्री 'बन्धकान्ता' पहला हिस्सा पहला कथान पृ. ३।

२२ खत्री 'बन्धकान्ता' पहला हिस्सा पृ. २।

२३ खत्री 'बन्धकान्ता' चौथा हिस्सा २२वाँ कथान, पृ. ६।

के सम्बन्ध में चाहे मतभेद हो पर इस बारे में दो मत नहीं हो सकते कि इन उपन्यासों में साबद ही कोई ऐसा स्वतन्त्र मिलेगा जहाँ खजीजी ने समाज-व्यवस्था और उसके विभिन्न-विधियों के विरुद्ध लड़ाई उठाई हो।

धनसूक्ष्म की आवश्यकता—क्योंकि खजीजी ने अपने उपन्यासों में अपने समस्त उपदेशात्मक भाषण नहीं किए, इसी से यह समझ लेना कि उनके उपन्यासों में जीवन के लिए उपयोगी ठाँवों का घमास है सत्य के प्रति धार्मिक मूढ़ लेना होगा। इनके उपन्यासों को जीवन और जगत के लिए अनुपयोगी कहकर उन्हें साहित्य तक की कोटि से निकाल लेने वालों से पूछा जा सकता है कि क्या 'अन्नदान्त' के ऐय्यार तेजसिंह और जीतसिंह के-से निस्वार्थी स्वामी भक्तों के धार्मिक चरित्र से जो अपने स्वामी के हित-साधन में सिर-बड़ की बाजी लगा बैठे हैं, पाठकों को कोई प्रेरणा नहीं मिलती क्या कूरुसिंह जैसे समाज के अनिष्टकारी अपराधियों को पकड़ कर दण्डित करने में उनकी उत्प्रेरणा सहीर और बुद्धि की सहायक दीड़ कूटनीतिज्ञता पाठकों को प्रेरित नहीं करती कि वे भी उनकी तरह समाज के विधातक तत्त्व को ठिकाने लगाने के लिए कमर कस लें ? क्या ऐय्यारी द्वारा प्राप्त विजय धार्मिक विजय से किसी भी प्रकार कम महत्व की कही जा सकती है ? हाँ यदि उनकी कूट नीतिज्ञता तथा वैद्व्य भासाफी से शिकायत है तो सोचना होगा कि विद्यालय के नाटक 'मुद्रा रासस' में इस प्रकार की भासों की कौनसी कमी है। उसे तो साहित्य की कोटि से निकालने की किसी धासोचक को नहीं सूझी। इसी प्रकार के कई-एक प्रसंग हैं जिनसे कोई भी धासोचक हिन्दी-उपन्यास में देवकीनन्दन खत्री का स्वान निर्धारित करते समय बच नहीं सकता। यही नहीं इन प्रसंगों का सही-सही उत्तर खोजे बिना वह यह समझ नहीं सकता कि धासोचकों की निपट उपेक्षा ही नहीं धीरे-धीरे विरोध के होते हुए भी देवकीनन्दन खत्री के पाठकों ने उनके धासोचकों की सम्मति क्यों नहीं मानी और क्यों उनके उपन्यास अपना रास्ता स्वयं बनाते रहे और बनाते रहेंगे।

देवकीनन्दन खत्री के पात्र—हिन्दी-उपन्यास में बर्ग प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण की आवश्यकता महसूस करते हुए प्रेमचन्द ने एक बार अपने एक पत्र में लिखा था 'किसी ने अभी तक समाज के किसी विशेष वर्ग का विशेष रूप से अध्ययन नहीं किया। उम्र ने किया अगर बहुत थोड़ा। मैंने कृपक वर्ग को लिया अगर अभी कितने ही ऐसे समाज पक्ष हैं जिन पर रोशनी की जरूरत है।' कहना न होगा कि प्रेमचन्द के इस पत्र से ४०-४२ वर्ष पहले ही देवकीनन्दन खत्री ने बर्ग प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण की आवश्यकता महसूस कर ली थी। उनके 'अन्नदान्त' और 'अन्नदान्त संतति' नामक उपन्यासों में मध्यमवर्गीय राजदरबारों में काम करने वाले ऐय्यार लोगों का जितना विस्तृत चित्रण हुआ है उतना किसी अन्य बर्ग या—प्रेमचन्द के उपन्यासों में कृपक वर्ग के चित्रण को छोड़कर—हिन्दी उपन्यास में अध्ययन लायक ही

मिले। स० ११४४ में 'चन्द्रकान्ता' के प्रथम संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है 'आज हिन्दी के बहुत से उपन्यास हुए हैं जिनमें कई तरह की बातें या राज नीति भी मिली गई हैं, राजदरबार के तरीके से सामान भी बाहर किए गए हैं मगर राजदरबारों में ऐय्यार (बालक) भी मौजूद हुआ करते थे जो कि हरफनमौला याने मुरत बरसना बहुत सी दबावों का जानना गाना-बजाना बीड़ना घस्त्र बताना जासूसों का काम देना बर्बरक बहुत सी बातें जाना करते थे—इन ऐय्यारों का बयान हिन्दी किताबों में अभी तक नहीं गुजरा। मगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस यज्ञ को देख में तो कई बातों का फायदा हो'। जब राजा-महाराजाधों में धनबल हो जाती थी तो वे लोग अपनी बालाकी के बल पर ही रक्त की एक भी बुँद दिए बिना एक भी सैनिक की जान गवाए बिना झगड़ा समाप्त करा देते थे। उस युग में इन लोगों का बड़ा मान होता था। इन्हीं ऐय्यारों का धारक-जीवन लखीजी के उपन्यासों में चित्रित हुआ है।

पात्रों का चरित्र चित्रण

देवकीनन्दन लखी ने अपने उपन्यासों की रचना मुख्यतः पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से बाँटे न की हो पर उनके उपन्यासों की पढ़न पर उनके पात्रों का जो स्वल्प पाठकों की भाँखों के सामने खिच जाता है उसे बखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि चरित्र-चित्रण के प्रति वे उदासीन थे। वास्तव में उनके उपन्यासों के कई ऐय्यार उनके पाठकों के मन पर अपनी घमिल छाप छोड़ जाते हैं। अब हम यह देखेंगे किस प्रकार ये पात्र धीरे-धीरे पाठकों की कल्पना में साकार होते जाते हैं—सेबक ने इस ओर कोई विशेष प्रयास किया हो या न किया हो।

पात्रों के नाम

लखी जी के पात्रों के नामों से ही उनकी आर्थिक चिन्ताओं का पता चल जाता है मानों पात्रों के नामों द्वारा उपन्यासकार उनके स्वभाव के गुणों को व्यक्त कर रहा हो। उनके उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' के राजकुमार बीरेन्द्रसिंह की 'अपनी ताकत का मरोसा'^{११} है यह बात उसके नाम से ही व्यक्त हो जाती है। नायिका 'चन्द्रकान्ता' भी सौन्दर्य में चन्द्रकान्ति से कम नहीं। उसकी ऐय्यार सखी बप्परा अपने नाम के अनुकूल ही 'बालाकी के पग में बड़ी तेज'^{१२} और 'बल भावभावों वाली' है। तर्जसिंह और उसके पिता जीतसिंह के नामों से भी उनके रूप अंगित हो जाते हैं। सेबकसिंह बड़ा बालाफ और पूर्वीभा है। वास्तव में बीरेन्द्रसिंह की विजय सिद्ध बाबा के बेटे में जीतसिंह के कारण ही सम्भव हो सकी थी।^{१३}

१ देवकीनन्दन लखी 'चन्द्रकान्ता'—भूमिका पृ १।

११ लखी, 'चन्द्रकान्ता' परमा हिम्मत एवमा बयान पृ ३।

१२ लखी, टीसरा बयान पृ ३।

१३ लखी, 'चन्द्रकान्ता' चौथा हिस्सा २२वाँ अध्याय, पृ ३।

कूरसिंह के नाम से ही पता चल जाता है कि यह बल नायक होया। उसके पिता मन्त्री कुपवासिंह के नाम से भी उल्लेख मिल जाता है कि वह अपने राजा को सदा यशस्व रास्ते पर ही बाधता होगा।^{१४} कूरसिंह इतना क्रूर है कि अपने पिता के मन्त्री पद को सम्मानने की इच्छा से उसे बिप विभाकर मरवा बाधता है।^{१५} इसी प्रकार 'धन्नाकान्तासंघति' के बलनायक भूतनाथ और मायारानी की दुश्चरित्रता भी उनके नामों से ध्वनित हो जाती है।

पात्रों के नामों द्वारा उनके चरित्रोद्घाटन की प्रणाली बड़ी पुरानी है। इस प्रणाली की सार्थकता या उपमागिता के बारे में चाहे दो मत हों इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रणाली का प्रयोग करने वाला उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण के प्रति उदासीन नहीं हो सकता।

पात्रों का प्रथम परिचय

जन्म की के उपन्यासों का आरम्भ बड़े नाटकीय ढंग से होता है। उपन्यास का पर्वा उठते ही उसका आरम्भ होते ही—पाठक पात्रों को उपन्यास के रम्य मंच पर कार्य-व्यस्त पाता है। अपने समकालीन उपन्यासकारों की भांति परिचय कराने भर के लिए पात्रों को रंगमंच पर ले आने की प्रवृत्ति उनमें दृष्टिपोषण नहीं होती। पात्रों का परिचय देते समय भी वह उनकी पाकृति, वैचम्य, वाक्प्रेरणा, नख-चिह्न, वर्णन में नहीं उलझते बल्कि एक-दो वाक्यों में ही उनका संक्षिप्त परिचय देकर उन्हें अपने क्रिया-कलापों द्वारा पाठकों पर धीरे-धीरे कुलने देते हैं।

'धन्नाकान्ता' उपन्यास शुरू होते ही पाठक दो व्यक्तियों बीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह को पत्थर की चट्टान पर बैठे परस्पर बातचीत में मिल पाता है। बीरेन्द्रसिंह का परिचय कराते हुए उपन्यासकार इतना ही लिखता है 'बीरेन्द्रसिंह की उम्र इसकीस या बाईस वर्ष ही होगी। यह नौपक के राजा सुरेन्द्रसिंह का इकलौता लड़का है।'^{१६} तेजसिंह का परिचय बोझ विस्तार से मिलता है। शायद इसलिए कि वह उपन्यास का मुख्य पात्र है—तेजसिंह राजा सुरेन्द्रसिंह के शीवान जीतसिंह का प्यारा लड़का और कुंधर बीरेन्द्रसिंह का बिली धेस्त बड़ा पालाक पुत्रिता कमर में छिपे संवर, बायें बगल में बटुआ लटकाए, हाथ में एक कमर लिए, बड़ी तेजी के साथ आरों तरफ दौड़ता और इनसे बातें करता जाता है।^{१७} उपन्यास के दस पात्र कूरसिंह का उपन्यास में प्रवेश करा देने पर भी उपन्यासकार अपनी धीरे से उसका परिचय नहीं देता। अपने साक्षियों से उसका

१४ वही, पृष्ठ ११५, अध्याय १० पृ १।

१५ वही, अध्याय १० पृ १५।

१६ वही, 'धन्नाकान्ता' पृष्ठ ११५, अध्याय १० पृ १।

१७ वही, पृष्ठ ११५ पृ १।

सनी के उपन्यासों में बटनाओं का समावेश कथानक को गति देने के लिए ही नहीं पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए भी हुआ है। वास्तव में इन उपन्यासों को पढ़ने के बाद पात्रों के चरित्र का जो स्वल्प पाठकों के कल्पना चक्रों के सामने नाच उठता है, उसे व्यक्त करने का अधिकतम श्रेय उनमें वर्णित बटनाओं को ही है। उपन्यासकार अपने पात्रों को विशेषकर ऐय्यार पात्रों को एक के बाद एक अधिकधिक बिकट परिस्थितियों में डालता रहता है उनके जीवन में अधिकधिक भयंकर घटनाएँ घटित करवा जाता है जो उनके मार्ग को कष्टकाकीर्ण करती रहती हैं। उनके भार्य्य ऐय्यारों का बिकट से बिकट परिस्थिति में भी समिक न बचराना और अत्यन्त धैर्य और बीरता के साथ उसका सामना करके अपना रास्ता आप बनाना उसके चरित्र की पुष्टता को व्यक्त करता है। इसके विपरीत उनके कम पात्रों का अपने अनुकूल परिस्थिति पाकर व्यर्थ में अफड़ने लगना और किसी भयंकर स्थिति में पड़ जाने पर हिम्मत हारकर भाग्य को या अपने साथियों को गालियाँ देने लगना और अपने अनुभूतों से नाक रगड़कर तथा धिक्मिड़कर समा-याचना करना उनके चरित्र की हीनता को उद्घाटित करता है।

सजीव सम्म-चित्र—कोई भार्य्य पात्र कितनी भयंकर बटना में अपना धैर्य और साहस बनाए रहता है और कम पात्र कितनी जल्दी प्रसोमन में आ जाता है और कितनी जल्दी मय से घर घर काँपने लगता है, यह दिखाने के लिए उपन्यासकार को बटना का इतना सजीव वर्णन करना होता है कि पाठकों को ऐसा प्रतीत होने लगे कि वे सारी बटना अपनी भाँखों से देख रहे हैं न कि उपन्यास में से पढ़ रहे हैं। इस कसा में देखनीमन्त्र सभी सिद्धहस्त हैं। उनके सम्म-चित्र इतने सजीव होते हैं उनके स्वरूपकन में इतनी सुविमला होती है कि पाठकों को पता ही नहीं रहता कि वे उपन्यास पढ़ रहे हैं। उस समय तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि वे पात्र के साथ एक संयकर तहखाने में फँसे हुए हैं और अपनी भाँखों से घटित उस रोमांचकारी बटना को देख रहे हैं और बिनके साथ वे घटनाएँ घटित होती हैं, उनकी प्रतिभिया के भी साथी हैं। कबीली के उपन्यासों की सफ़लता में उनकी वर्णन-शक्ति का बड़ा योग है। भार्य्य होता है कि हिन्दी-उपन्यास के सौजन्यकास के इस उपन्यासकार की रचना-शक्ति पर। इसके पास न कोई ईंट है न पत्थर, न कुत्ता है न गारा न हप्पीड़ा है, न काबड़ा। केवल शब्दों के सहारे वह नयनबुम्बी रंजमहल और पाताल तक भेँसी गारें, हीरे-जवाहरातों से जगमगाते कबाने और मीनों सम्बी धुप-शैलेरी गुफाएँ रच आता है।

पाठकों को इस प्रकार बटना सम्बन्धी सूत्रातिमूढन जानकारी है। बुद्धि के साथ उपन्यासकार जब उनकी प्रतिभियाओं का वर्णन करता है तो पाठकों पर उनका चरित्र अपने-आप व्यक्त हो उठता है।

कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण

पात्रों की परस्पर बातचीत में यदि वह कथिम न हो और सहज स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुई हो पात्रों का चरित्र प्रतिबिम्बित हो उठता है। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में पात्रों के संवाचों की उनके कथोपकथनों की कमी नहीं पर वे सब कथोपकथन पात्रों के चरित्र को चित्रित नहीं करते उनमें अधिकतर कथोपकथन तो ऐसे हैं जिनका समावेश कथानक को मति देने के लिए है और छेप में से बहुत ऐसे हैं जो पात्रों की सहज-स्वाभाविक बातचीत से बहुत दूर जा पड़ते हैं तथा जिनका समावेश पात्रों के चरित्र के प्रकाशन के लिए नहीं अपितु उनके वास्तविक और स्वाभाविक रूप को छिपाने के लिए, दूसरों को धोखा देने के लिए, किया गया है। उदाहरणार्थ ये कथोपकथन देखिये :

‘बपसा ने बम्पा से पूछा ‘सखी मैंने जो कुछ स कहा था सो तैने किया ?’ बम्पा बोली ‘नहीं मैं तो भुस गई। तब बपसा ने कहा ‘मसा वह बात तो याद है या वह भी भुस गई ?’

बम्पा बोली ‘वह बात तो याद है।’

तब फिर बपसा ने कहा ‘मसा बोहरा के मुँह से कह तो सही तब मैं जानू कि तुम्हे याद है।’^{१३४}

इसी प्रकार का एक और कथोपकथन देखिए

‘तेजसिंह को देख बपसा बोली ‘बयों केतकी जिस काम के लिए मैंने तुम्ह को भेजा था क्या वह काम तू कर आई जो चुप-चाप धाकर बैठ रही है।’

नकली केतकी—‘हाँ काम करने तो गई ही थी मगर रास्ते में एक तमाशा देख तुमसे कुछ कहने को मीट आई।

बपसा—‘ऐसा। अच्छा तैने क्या देखा कह ?’

नकली केतकी—‘सखी को हटा दो तो तुम्हारे और राजकुमारी के सामने यह बात कह सुनाऊँ।’^{१३५}

इस प्रकार के व्यर्थ के कथोपकथनों को निकाल देने पर भी खत्रीजी के उपन्यासों में अनेक ऐसे कथोपकथन रह जाते हैं जो पात्रों का चरित्र प्रकाश में लाने में सहायक सिद्ध होते हैं। जगन्नाथ उपन्यास के धारम्भ में ही तेजसिंह और बीरेन्द्रसिंह की परस्पर बातचीत देखिए, इसमें दोनों के चरित्र की भौरी मिलावायी है

‘तेजसिंह—‘जब मैं अपने बुढमनों की आमाकी और कारवाई देखकर मीटूँ तब आपके बसने के बारे में राय दू। कही ऐसा न हो कि बिना हमसे-बूझे काम करके हम सोय वहाँ ही गिरफ्तार हो जाएँ।’

घोरेन्द्र— 'जो गुनासिध समझो करो मुझको तो तिफें अपनी ताकत का मरोटा है लेकिन तुम को अपनी ताकत और ऐय्यारी सेना का ।

तेजसिंह— "मुझे यह भी पता चला है कि हास ही में कूरसिंह के दोनों ऐय्यार यहाँ आकर पुनः हमारे महाराज का दर्शन कर गए हैं । न मामूम किस आत्माकी से आए थे ? अफसोस उस वक्त ॥ यहाँ न था ।

घोरेन्द्र— 'मुझको तो यह है कि तुम कूरसिंह के दोनों ऐय्यारों को फंसाया चाहते हो और वे सोय तुम्हारी गिरफ्तारी की फिक्र में हैं परमेश्वर ही कृपा करे । और अब तुम आओ और जिस तरह बने अन्नकान्ता से मेरी मुलाकात का बन्दोबस्त करो ।' २४

अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी

अब पात्रों की परस्पर बातचीत के दौरान में किसी ऐसे पात्र की चर्चा छिड़ जाती है जो उस समय वहाँ उपस्थित नहीं होता तो उसकी निम्ना में कहे गए वाक्य बाई बिस्वसनीय न प्रतीत हों पर उसकी प्रशंसा में कहे गए वाक्यों की सचाई में कोई सन्देह नहीं रहता । आभीजी के उपन्यासों में ऐसे कथोपकथनों की कमी नहीं जहाँ किसी पात्र की अनुपस्थिति में अन्य पात्र उसकी प्रशंसा करते हैं । 'अन्नकान्ता' के महाराजा जयसिंह मरे दरबार में तेजसिंह की चर्चा छिड़ जाने पर कहते हैं 'तेज सिंह की बात बस बातचीत इन्म और आत्माकी पर अब खयाल करता हूँ तबीयत उमड़ जाती है । बड़ा ही सामक लड़का है उसके चेहरे पर कमी उदासी तो देखी नहीं ।' २५ इसी प्रकार 'अन्नकान्ता संतति' में मायारानी से बातचीत के दौरान में राजा गोपालसिंह की प्रशंसा करते हुए बाबा कहते हैं 'बिचक ये हमारे मासिक राजा गोपालसिंह हैं जिनकी भूमियों ने लोगों को अपना ठाढ़ेबार बना लिया था जिनकी बुद्धिमानी और मिलनसारि प्रसिद्ध थी ।' २६

अब किसी पात्र की उपस्थिति में उसके मुँह पर ही कोई अन्य पात्र उसकी निन्दा करने लगता है और उस पात्र से जबाब नहीं बन पाता तब उस निन्दा को निपट मूठ नहीं कहा जा सकता । आभी के उस पात्रों के मुँह पर अब कोई पात्र उनके मुँहों की निन्दा करने लग जाता है तब उसकी अतिबहिर्गता में कोई सन्देह नहीं रहता । 'अन्नकान्ता संतति' की मायारानी के मुँह पर उसकी निन्दा करते हुए बाबा कहते हैं 'बाबा भोह ये तो राजा गोपालसिंह हैं जिन्हें मरे कई वर्ष हो गए । नहीं नहीं मरा हुआ आबनी लौटकर नहीं आता' भोह इनके बारे में हमें बोला दिया । २

२४ पृष्ठी 'अन्नकान्ता' पहला हिस्सा पृ० १ ।

२५ पृष्ठी ५ ६९ ।

२६ 'अन्नकान्ता संतति' इसी हिस्सा पृ० ७६-७७ ।

२७ पृष्ठी, 'अन्नकान्ता संतति' इसी हिस्सा तहरी मुद्राभित्ति वाली, १९वाँ संस्करण १९५१

कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण

पात्रों की परस्पर बातचीत में यदि वह कुत्रिम न हो और सहज स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुई हो पात्रों का चरित्र प्रतिबिम्बित हो उठता है। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में पात्रों के संवादों की उनक कथोपकथनों की कमी नहीं पर ये सब कथोपकथन पात्रों के चरित्र को बिभ्रित नहीं करते उनमें अधिकांश कथोपकथन तो ऐसे हैं, जिनका समावेश कथानक को बति देने के लिए है और शेष में से बहुत ऐसे हैं जो पात्रों की सहज-स्वाभाविक बातचीत से बहुत दूर जा पड़ते हैं तथा जिनका समावेश पात्रों के चरित्र के प्रकाशन के लिए नहीं, अपितु उनके वास्तविक और स्वाभाविक रूप को छिपाने के लिए, दूसरों को धोखा देने के लिए, किया गया है। उदाहरणार्थ ये कथोपकथन देखिये

अपसा ने अम्मा से पूछा 'सही मीने जो तुम्ह से कहा जा सो तैने किया ? अम्मा बोली "नहीं मैं तो भुल गई। तब अपसा ने कहा 'असा बह बात तो याद है या बह भी भुल गई ?'

अम्मा बोली "बह बात तो याद है।"

तब फिर अपसा ने कहा 'असा दोहराई की मुझ से कह तो सही तब मैं जानू कि तुम्हें याद है।'^{१३}

इसी प्रकार का एक और कथोपकथन देखिए

"तेजसिंह को देख अपसा बोली 'क्यों केतकी जिस काम के लिए मीने तुम्ह को सेवा जा क्या वह काम पू कर आई जो चुप चाप पाकर बैठ रही है।"

लक्ष्मी केतकी—"हाँ काम करने तो गई हूँ भी मगर रास्ते में एक तमाचा देख तुमसे मुझ कहने को लौट आई।"

अपसा—"ऐसा। अम्मा संने क्या देखा कह ?"

लक्ष्मी केतकी—"सभी को हटा दो तो तुम्हारे और राजकुमारी के सामने बह बात कह सुनाऊँ।"^{१४}

इस प्रकार के व्यर्थ के कथोपकथनों को निकाल देने पर भी लक्ष्मीजी के उपन्यासों में अनेक ऐसे कथोपकथन रह जाते हैं जो पात्रों का चरित्र प्रकाश माने में सहायक सिद्ध होते हैं। 'अमरकान्ता' उपन्यास के प्रारम्भ में ही तेजसिंह और बीरेन्द्रसिंह की परस्पर बातचीत देखिए, इसमें दोनों के चरित्र की मझी मिस जाती है

"तेजसिंह—"जब मैं अपने कुश्मनों की चात्ताकी और कार्टवाई बख्कर लौटूँ तब आपके चलने के बारे में राय दूँ। कहीं ऐसा न हो कि बिना समझे बूझे काम करके हम लोग वहाँ ही गिरपवार हो जाएँ।"

१३ उनी, 'कथोपकथन', पृष्ठ १००।

१४ वही पृष्ठ १०१।

धीरेन्द्र— 'जो गुनासिव समझो करो मुझको तो तिरफे अपनी ताकत का मरोसा है लेकिन तुम को अपनी ताकत धीर ऐय्यारी दोनों का ।

तेजसिंह— 'मुझे यह भी पता चला है कि हाल ही में कूर्तसिंह के दोनों ऐय्यार यहाँ आकर पुन हमारे महाराज का दर्शन कर गए हैं । व मासूम किस आभाकी से आए थे ? अफसोस उस वक़्त में यहाँ न था ।

धीरेन्द्र— 'मुश्किल तो यह है कि तुम कूर्तसिंह के दोनों ऐय्यारों को फंसाया चाहते हो धीर ने लोग तुम्हारी गिरफ्तारी की फ़िक्र में हैं परमेश्वर ही कुछन करे । और जब तुम जाओ धीर जिस तरह बने चन्द्रकान्ता से मेरी मुसाफ़ात का बम्बोबस्त करो ।' ११"

अन्य पार्श्वों द्वारा टीका-टिप्पणी

जब पार्श्वों की परस्पर बातचीत के दौरान में किसी ऐसे पात्र की चर्चा छिड़ जाती है जो उस समय वहाँ उपस्थित नहीं होता तो उसकी निम्ना में कहे गए वाक्य आते बिच्छवनीय न प्रतीत हों पर उसकी प्रशंसा में कहे गए वाक्यों की सचाई में कोई संन्देह नहीं रहता । सभी की के उपन्यासों में ऐसे कथोपकथनों की कमी नहीं वहाँ किसी पात्र की अनुपस्थिति में अन्य पात्र उसकी प्रशंसा करते हैं । 'चन्द्रकान्ता' के महाराजा जयसिंह भरे बरबार में तेजसिंह की चर्चा छिड़ जाने पर कहते हैं 'तेज सिंह की बात बलन बातचीत इस धीर आभाकी पर जब खयाल करता हूँ तभीयत समझ आती है । बड़ा ही नायक लड़का है उसके चेहरे पर कभी उदासी तो देखी नहीं ।' ११ इसी प्रकार 'चन्द्रकान्ता सतवि' में मायाराणी से बातचीत के दौरान में राजा गोपालसिंह की प्रशंसा करते हुए बाबा कहते हैं 'बैसक ये हमारे भासिक राजा गोपालसिंह हैं जिनकी नेकियों ने लोगों को अपना ठाकेश्वर बना लिया था जिनकी बुद्धिमानी धीर मिलनसारों प्रसिद्ध थी ।' १२"

जब किसी पात्र की उपस्थिति में उसके मुँह पर ही कोई अन्य पात्र उसकी निन्दा करने समर्थ है और उस पात्र से अबाध नहीं बन पाता तब उस निन्दा को निपट भूठ नहीं कहा जा सकता । सभी के सब पार्श्वों के मुँह पर जब कोई पात्र उनके दुश्मनों की निन्दा करने लग जाता है तब उनकी चरित्रहीनता में कोई संन्देह नहीं रहता । 'चन्द्रकान्ता सतवि' की मायाराणी के मुँह पर उसकी निन्दा करते हुए बाबा कहते हैं 'बाबा ओह-ये तो राजा गोपालसिंह हैं जिन्हें मरे कई बप हो गए । नहीं नहीं मरा हुआ आदमी सीटकर नहीं आता' ओह इनके बारे में हमें सोचना पड़ेगा । १३

११ खड़ी, 'चन्द्रकान्ता' पहला हिस्सा पृ. ३ ।

१२ खड़ी, पृ. ११ ।

१३ खड़ी, 'चन्द्रकान्ता सतवि' २वाँ हिस्सा पृ. ७१-७२ ।

१४ खड़ी, 'चन्द्रकान्ता सतवि' २वाँ हिस्सा खड़ी बुकविण्डे, अग्रे, १९वाँ संस्करण, १९५१

गोपालराम गहमरी परिचयात्मक विवेचन

देवकीनन्दन खत्री के द्वारा हिन्दी-उपन्यासों को बड़े नीबू प्रकाश करने वाले उस युग के दूसरे महारथी थे जामुसी उपन्यासों के लेखक गोपालराम गहमरी। हिन्दी में जामुसी कहानियाँ और उपन्यासों का धारक गहमरी जी ने किया और उनके अपने जीवन के साथ हिन्दी का जामुसी-साहित्य समृद्ध भी हो गया। उन्होंने कुन धिमाकर दो सौ के लगभग जामुसी कहानियाँ और उपन्यास लिखे।^{१*} हिन्दी-जनता में उन उपन्यासों की बड़ी माँग रही। जामुसी-उपन्यासों की रचना करते समय उन्होंने धड़ेजी के जामुसी उपन्यासों के ढाँचे को भी बहर अपनाया पर कोरे रूप बिधान को देखकर यह समझ लेना कि उनके उपन्यास पूर्णरूप से धड़ेजी साहित्य की देन हैं और धड़ेजी के जामुसी उपन्यासों के भारतीय संस्करण हैं,^२ गहमरीजी के प्रति प्रभाव करना होगा। जो सौय धड़ेजी के जामुसी उपन्यासकार कालन डायस की 'घरनांक होम्स सीरीज' से परिचित हैं, उन्हें गहमरीजी के उपन्यासों की मौलिकता को पहचानने में देर न लगेगी। इसके अतिरिक्त 'जामुस' नाम की एक पत्रिका भी यह जानीस वर्ष तक बड़ी सफल से निकालते रहे। यह पत्रिका बड़ी लोकप्रिय रही। प्रेमचन्द के उपन्यास-लेख में परापूर्व करने तक हिन्दी-उपन्यास के प्रति पाठकों का आकर्षण बनाए रखने वाले उपन्यासकारों में गहमरीजी का स्थान अग्रगण्य रहेगा।

आलोचकों की उदासीनता—परदेह है देवकीनन्दन खत्री की तरह गहमरीजी भी आलोचकों की कृपा दृष्टि से वंचित रहे। हिन्दी में जामुसी-उपन्यासों का बेर समा देने वाले अस्सी वर्ष की अवस्था तक हिन्दी की जनक सेवा करने वाले साहित्यकार का भी आलोचकगण उचित धावर नहीं कर सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इनके अनुचित उपन्यासों का ही उल्लेख करके यह पाते हैं 'उम कुम के मीनिक

१. कुन्दरकन्द और 'सर्गिक गोपालराम गहमरी', 'साप्ताहिक संसार', ० जुलाई, १९४९।

२. महाराज शर्मा, 'हिन्दी के उपन्यासकार' आरती (आजीवन) हिन्दी १९४१, पृ. ९।

मित्रानुपकृत मीनिक, 'सिन्धु-कल्प' पृ. ४४।

उपन्यासकारों में इनकी यिनगी तक नहीं करती ।^{११} धन आसोषक उगका उल्लेख करते हुए केवल इतना ही लिख पाते हैं कि उनके उपन्यासों और 'आसूख' नामक पत्र से 'उपन्यास पठन-पाठन को प्रोत्साहन मिला' ^{१२} 'अनता को उपन्यास पढ़ने का और भी अस्का भय गया' ^{१३} इससे धार्मिक मानों उनके उपन्यासों की कोई उपयोगिता ही न हो । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तो इनके उपन्यासों की समीक्षा भी महत्व नहीं दिया गया । यह तो माना कि देवकीनन्दन खत्री की तरह उपन्यास-रचना में गहमरीबी का मुख्य उद्देश्य लोकश्रवण का था पर यह कहना कि 'चरित्र चित्रण की ओर इनके उपन्यासों में भी ध्यान नहीं दिया गया' ^{१४} वास्तविकता के प्रति धार्मिक दृष्टि से सही होना ।

आदर्श आसूखों का चित्रण—गहमरीबी के उपन्यासों के पाठक इस बात को सही प्रकार से जानते हैं कि उनके उपन्यासों में आसूखों की खूब प्रशंसा हुई है । उनके आसूख अपराधियों को उनके कुकृत्यों के लिए उचित दण्ड दिलाने के उद्देश्य के निस्वार्थभाव से उनकी खोज में लगते हैं । उनकी समस्त-सोचों के पीछे जो भावना काम करती है उसका उल्लेख उनके 'ठन-ठन घोपाल' नामक उपन्यास में बड़े स्पष्ट रूप में मिलता है 'तुम लोग अपने ही घर को घर समझते हो इस कारण अपने घर में पकड़े और अपराधी को मार पीटने में कुछ होते हो । और हम लोग सब प्रजा को अपना घर समझते हैं और सर्वसाधारण के अपराधी पर हम लोगों को भी वैसा ही गुस्सा होता है ।'^{१५} ये आसूख लोग अपराधी को पकड़ना अपना परम कर्तव्य समझते हैं और अपने बुद्धिमान और इच्छाशक्ति के आधार पर ही बड़े से बड़ा जोखिम लेने के लिए तैयार रहते हैं । लोकहित भावना में रत ऐसे ही आसूखों का आदर्श चरित्र गहमरीबी के उपन्यासों में चित्रित हुआ है । गहमरीबी की दृष्टि में 'उपन्यास लिखना और आसूखी में काम करना दोनों ही लोकोपकार के लिए हैं ।'^{१६} ये आसूख ही उनके उपन्यासों के नायक हैं और उनके नाम पर गहमरीबी के बहुत से उपन्यासों के नाम पड़े हैं । उनके उपन्यास 'ठन-ठन घोपाल' को ही लें । ठनठन घोपाल इस उपन्यास के नायक का नाम है । वह एक आदर्श आसूख है जिसमें बुद्धि और साहस का समुचित मेल है । अपराधी को पकड़ने के लिए वह अपनी जान पर खेल जाता है और अंततः अपने प्रयत्नों में सफल भी हो जाता है । तिरसम और ऐम्पारी वाले उपन्यासों की अपेक्षा आसूखी के उपन्यासों के नायकों की क्रिया प्रतिक्रिया में उनकी आर्थिक विधिदृष्टाओं की प्रतिबिम्बित की अधिक प्रभावशाली रहती है क्योंकि आसूखी उपन्यासों

११ अनायास उपन्यासकार 'हिन्दी-सहित का इतिहास' पृ ४६७-२ १ ।

१२ अनायास 'हिन्दी के उपन्यासकार' पृ २ ।

१३ अनायास 'हिन्दी-उपन्यास' पृ ७२ ।

१४ अनायास 'हिन्दी के उपन्यासकार' पृ २ ।

१५ अनायास उपन्यास 'ठनठन घोपाल' अनायास उपन्यासकार, १९४६ ई पृ ३७-४८ ।

१६ अनायास पृ ७२ ।

के मायकों के पास जानू की माँगुरी या धसादीन का चिराय तो होता नहीं कि उसकी सहायता से वे जो चाहें कर सें। उन्हें तो मनुष्य की सीमित शक्ति से ही अपना काम करना होता है और निकट से निकट परिस्थिति में भी अपनी बुद्धि वन और धर्म का परिचय देना होता है। इस दृष्टि से गृहमरीची के पात्र देवकीनन्दन खत्रीजी के पात्रों की अपेक्षा हमारे जीवन के अधिक निकट ठहरते हैं और उनका चरित्रचित्रण भी खत्री जी के चरित्र चित्रण से एक कदम आगे है।

पात्रों का चरित्रचित्रण

अथपि पात्रों का चरित्रचित्रण गृहमरीची के उपन्यासों में भी मुख्य रूप से न होकर भ्रान्तपणिक रूप से ही हुआ है। तो भी देवकीनन्दन खत्री की अपेक्षा इनकी प्रवृत्ति इस ओर अधिक रही। अपने पात्रों के रूप में उन्होंने जिस वर्ग को चुना या उसके प्रति न्याय करने के लिए भी इन्होंने उनके अपेक्षाकृत स्वामाजिक चरित्रचित्रण की आवश्यकता की। इन्होंने अपने उपन्यासों के चोर-उत्तमके आकुओं को तो बालाक और साहसिक बनाया ही था पर आसूओं को उनसे भी अधिक चतुर और साहसी बनाने की आवश्यकता की और साथ ही बरुरत की उन्हें अपराधियों से पीड़ितों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए अधिक मानव बनाने की ताकि वे जन-दुःखों आदि के प्रसोमन के घतिरिक्त सच्ची लोकहित-भावना से भी कर्तव्यरत रहें। अपने कर्तव्य को धम्पी तरह निमाने के लिए इन आसूओं को केवल अपनी शक्ति और सामर्थ्य को नहीं दौसना होता था अपितु अपने प्रतिद्वन्द्वी अपराधी के बल-विक्रम खान-सम्पत्ता और आर्थिक मुलावमुलों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करनी होती थी। इसलिये आसूओं की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा उनके चरित्र का ही उत्पादन नहीं होता उनके प्रतिद्वन्द्वी अपराधियों की कसई भी जुलूसी जाती है। अथपि पाठकों की उत्सुकता को अन्त तक बनाए रखने के लिए यह सब उत्पादन होता है और धीरे-धीरे है, तो भी उपन्यास समाप्त कर चुकने के बाद पाठक के हृदय-मन्दिर पर प्रत्येक मुख्य पात्र का चरित्र एक स्पष्ट छाप छोड़ जाता है।

आगे हम देखेंगे कि गृहमरीची के औपन्यासिक पात्रों का चरित्र किस प्रकार पाठकों पर धीरे-धीरे व्यक्त होता रहता है।

अपन्यासों के धीर्यक

गृहमरीची के उपन्यासों के प्रतिक्रिया अपन्यासों के धीर्यकों से ही पता चल जाता है कि उस अपन्यास में कौनसा पात्र मुख्य रूप से भाग लेता और उसके चरित्र की कौनसी विशेषता प्रकाश में आती। यदि कोई व्यक्ति उनका उपन्यास पूरा न पढ़कर अपन्यासों के धीर्यकों को ही पढ़ से तो भी उसे उपन्यास के प्रमुख पात्रों के भाग और उनके एक-दो मुख्य मुलावमुलों का परिचय मिल जाएगा। 'उत्तम' (नामक का नाम) की बुद्धि, 'बबरपौल रोटी वाला' 'माता की ममता' 'देवकी का पता'

‘रेसमी की गुप्त बातें’ ‘भर घूमन (नाम) बीता खयालिन सती की बहादुरी’ ‘बुद्धि’ (नाम) ‘धीर सती’ ‘रामनाम’ आदि शीर्षक गहमरीबी के उपन्यासों के परिच्छेदों के हैं जिनके आधार पर पाठक पात्रों की चरित्रिक बिसिष्टताओं तथा उनके जीवन में घाने वाले व्यक्तियों और मोकों के सम्बन्ध में अनुमान समा सकता है।

पात्रों के नाम

गहमरीबी के अधिकांश औपन्यासिक पात्रों के नाम स्वाभाविक जाहे न प्रतीत हों उन पात्रों की किसी मुख्य घटना या एक विधिष्टता को अवश्य व्यक्त कर देते हैं, जैसे ठनठनपोपास भरघूमन बुद्धि नदुरी सती आदि। आसूस ‘ठनठन पोपास’ अपनी जान की बाजी लगाता है सखपति धीर करोड़पतियों के अपराधियों को पकड़ने के लिए, पर स्वयं बेचारा ठनठन गोपास ही है। भरघूमन को गुप्तघर के नाले भर-भर भूमता पड़ता है। बुद्धि अपनी चाल से बाप-दादे की कमाई खोकर अपना ही बुद्धि नहीं साता अपितु अपने मित्र तेमुराम का भी बुद्धि से घाता है। नदुरी दासी का कर छोटा है। सती अपनी जान बचाकर आश्रय देने वाले तेमुराम के प्रति भी समर्पित नहीं होती और उसके माह्न बेचटा करने पर भी अपना सतीत्व बचाए रखती है।

पात्रों का प्रथम परिचय

हिन्दी के अन्य प्राच्यिक उपन्यासकारों की मानि गहमरीबी अपने पात्रों का हाथ पकड़कर उन्हें पाठकों के सामने नहीं लाते और न ही अपनी ओर स पाठकों को उनका परिचय देने लगते हैं। उनके उपन्यासों में पात्रों का प्रथम परिचय नाटकीय ढंग से मिलता है। उपन्यास आरम्भ होते ही पाठक को पात्र का कार्यभार मिलते हैं और अपने क्रिया-कलापों से ही वे उन पर जुमते हैं।

उनके अनुपस्थित या गायब हुए-हुए पात्रों का प्रथम परिचय भी हमें उपन्यासकार के सम्मों में नहीं मिलता। अन्य पात्रों के कथोपकथनों से ही हम उनके बारे में कुछ जान पाते हैं। जीव-मक़ताम के बीछन में जब आसूस या कोई धीर पुलिस अफसर अन्य पात्रों से अनुपस्थित या अगोचर पात्र के बारे में पूछ-ताछ करता है तब पाठक भी कुछ-कुछ जान पाता है। पर बहुधा होता यह है कि आसूस केवल एक ही पात्र से पूछकर संतुष्ट नहीं होता। एक ही पात्र के चरित्र के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए वह तीन चार व्यक्तियों से पूछ-ताछ करता है और उन व्यक्तियों के बयानों में कई बार इतना अन्तर होता है कि पाठक बेचारा उन पात्रों के बारे में प्राप्त प्रथम परिचय से उनके सम्बन्ध में अपना कोई निश्चित मत नहीं बना पाता। आसूसी उपन्यासकार का अपना प्रयत्न भी यही होता है कि जब तक पूरी सामग्री प्रकाश में न आ जाए तब तक पाठक उसके किसी पात्र के चरित्र के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से न कह सके। पूरी सामग्री प्रकाश में तब आती है जब उपन्यास स

पर पहुँच जाता है। उपन्यास का नायक आसुस जिससे पाठक सायुज्य स्थापित करता है, भी ता घपने किसी घपराधी के बारे में निश्चित धीरे निश्चित रूप से नहीं कह पाता। निश्चित हो जाने पर तो उसकी जोख सभाप्य हो जाती है। इस अनिश्चित संदेहावस्था को निश्चित जानकारी में बदलने के लिए ही उसकी सारी योजनाएँ और जोख होती है।

‘उनउनसोपास’ की रेशमी के चरित्र के सम्बन्ध में आसुस को प्रारम्भिक जाँच करता है उसमें दीवान सुन्दरमान बताता है कि वह ‘चास बसन की बड़ी’^{१०} पाक है, पर नटुड़ी दासी का कहना है कि ‘भोकी एकाध दिन बाहर रण के देखे रही’^{११}। इसी प्रकार हुरदेवी के सम्बन्ध में इन्द्र दासी का यह कहना है कि ‘हमारी हुरदेवी तो ठीक जैसे यंगराज पवित्र होता है टटका जैसा धनमुँचा पूस को महादेव की पिंजी पर बढ़ता है’।^{१२} पर उसके कमरे का मुख्तियारमूर्ख निरीक्षण करने के बाद आसुस महसूस करने लगता है कि उसका सुप्त होना साफ उसकी घपनी इच्छा से श्रम के बन्दर में हुया हो, यद्यपि निश्चित रूप से वह यह बात नहीं मानता। इसलिये, हुरदेवी के चरित्र के बारे में पात्र को भी निश्चित रूप से कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

इस प्रकार आसुसी उपन्यासों में यद्यपि पात्रों के प्रथम परिचय की सामग्री प्रचुर मात्रा में बिसरी रहती है, पाठक उपन्यास के नायक आसुस के घमिरिस्त किसी घम्य पात्र के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कह पाता। आसुस के सम्बन्ध में अवश्य उसकी चारखा बनने लगती है कि वह चतुर और समझदार व्यक्ति है। उपन्यासकार भी यही चाहता है कि आसुस के प्रति पाठक के मन में इस प्रकार के भाव बँटें। तभी तो पाठक उसकी घमनी कार्यवाई की उत्तुङ्गता से प्रतीक्षा करेगा।
आसुसी बेशमूपा-विषय

आसुसी उपन्यासों के जिन पात्रों के चार्ित्रिक पुलावपुर्णों के जानने के लिए पाठक उत्तुङ्ग होता है, वे वही पात्र होते हैं जो मुख्य घटना को घटित करके स्वयं सुप्त हो पड़े होते हैं। जब कभी ये पात्र प्रकट में आते भी हैं तो घपना रूप बदल कर। ऐसी स्थिति में उनकी बेस-भूषा के आकार पर उनके चरित्र के सम्बन्ध में अनुमान समाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

थेप रहा आसुस और उसके साथी। उनके भी स्वाभाविक आकार-प्रकार तथा बेस-भूषा के चित्रण की ओर उपन्यासकार ध्यान नहीं देता क्योंकि घाए दिन इन लीनों को बेस बलकर घपराकियों का पीछा करना पड़ता है। कभी ये मोम साधारण पवित्र के रूप में मिलते हैं और कभी साधु के वेश में। उनके उग नवने हुए वेश में उनके स्वभाव को छूँने का अवसर व्यर्थ ही होगा।

१० जम्मरी, ‘उनउनसोपास’ पृ. २२।

११ वही, पृ. २२।

१२ वही, पृ. २०।

इसलिए, जामूसी उपन्यासों में आहुति और वेद्य-भूषा के बखुनों की प्रचुरता होते हुए भी चरित्रचित्रण की दृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नहीं रहता ।

घटनाओं द्वारा चरित्र चित्रण

अस्य जामूसी उपन्यासों की भाँति गहमरीजी के उपन्यास भी घटनाओं से घरे पड़े हैं । इसमें सन्देह नहीं कि उनके अधिकांश उपन्यासों में अधिक कम कथानक पर है और उनकी घटनाएँ कथानक को गति देने के लिए हैं । फिर भी उपन्यासकार के जाने या समाने उन घटनाओं के माध्यम से पात्रों के चरित्र का भी किसी ढंग में उद्घाटन हो जाता है । इन उपन्यासों के प्रतिरिक्त कुछ एक उपन्यास ऐसे भी मिल जायेंगे जिनमें पात्रों के चरित्र चित्रण की व्यवस्था नहीं हुई, जिनमें घटनाएँ केवल कथानक को ही गति नहीं देती पात्रों का चरित्रोद्घाटन भी करती हैं ।

उनके उपन्यास 'ठनठन बोपाल' को ही लें । हुरदेवी के अपानक मायब हो जाने की मुख्य घटना उपन्यास के नायक जामूस को प्रकाश में लाती है और हुरदेवी को खोज निकालना बन जाता है उसके इस औपन्यासिक जीवन का सत्य । अपने सत्य की पूर्ति में वह सिर-खड़ की बाड़ी समा जाता है । उसके मार्ग में जितनी अधिक बिन्दु बाधाएँ आती हैं और भयंकर घटनाएँ घटित होती हैं उनमें उतनी ही अधिक उसके चरित्रकी बुद्धि और साहस का परिचय मिलता है । भूत वाली घटना से उसके साहस का पता चलता है । हुरदेवी की खोज में अचानक रामसाल का पीछा करता हुआ जामूस और उसका साथी रात काटने के लिए एक दुकान के दरवाजे में छे गए । बाकी रात के समय एक आहुति ने उस जमा लिया । उठा तो भीतर भीतन में एक आबदुस-सा कासा धावनी निकल आया । कोई पत्र सवा गज लम्बा होया लेकिन कपाल बड़ा भारी है । नाम बड़े सम्ये हैं । नाक भी बड़ी ऊँची और लम्बी है आँखें भी बड़ी जैसे मीस की होती हैं । " इस भूत को देखकर वह भबड़ामा नहीं बल्कि उसे चुपचाप एकटक देखता रहा । बहराए हुए साथी को देखकर वह कहता है "भूत है तो बड़ा मजा होया । इसी से हुरदेवी का पता लगा लेवे । " उसके इस साहस को देखकर उसका साथी ठीक ही कहता है "लेकिन बन्ध है आपका कमेजा । डूबरा होता तो आप धारा करके भाग गया होता ।

इसी प्रकार जामूस के असीम धैर्य का पता उस रात वाली घटना से चलता है जब वह और उसका साथी अँधेरे में मायते-मायत धारो धोर से शत्रुओं से घिर जाते हैं । तब उसके हाथ का पिस्तौल धाय छोड़ने लगता है । थोड़ी ही देर में वो धावनी बगहकर गिर पड़ते हैं और उनके साथी उन्हें उठाकर भाग लेते हैं । गहमरीजी के उपन्यासों में इस प्रकार की अनेक घटनाएँ मिलेंगी जिनमें व्यक्त होने

बासी पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया में उनकी चरित्रिक विशेषताएँ प्रकट हो जाती हैं।
कथोपकथन द्वारा चरित्र-चित्रण—

महमरीजी के उपन्यासों में कथोपकथनों की कमी नहीं, पर ऐसे कथोपकथनों की अपेक्षाकृत कमी घबराहट है जो उनमें प्रायः होने वाले पात्रों को व्यक्त करते हैं। उनके उपन्यासों में अधिकतर कथोपकथन ऐसे हैं, जिनका समावेश कथानक को पढ़ने के लिए ठीका है। ऐसे कुछ ऐसे हैं जिनमें व्यक्त पात्रों के चरित्र की विश्वसनीयता सदिग्ध रहती है क्योंकि उनके सम्मुख में यह निश्चित नहीं हो पाता कि उनमें कृत्रिमता कितनी है और स्वाभाविकता कितनी।

इस प्रकार के व्यर्थ भरती वाले कथोपकथनों की छोड़ दें तो भी महमरीजी के उपन्यासों में काफी कथोपकथन ऐसे मिल जायेंगे जिनमें किसी एक पात्र के चरित्र का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिम्बित हो जाता है। उदाहरणार्थ उनके उपन्यास 'उनउन पौपास' का यह कथोपकथन देखें जिसमें बासी रैद्यमी की धीबस्वित्ता चरित्र की बड़ता और स्वामी शक्ति प्रस्तुति हो उठती है। सब उसे उसकी मासिक के पर से उड़ा लाया है और सब मासिक के बिच्छू गवाही देने के लिए उसे बाध्य कर रहा है। रैद्यमी के उत्तर में उसकी निर्भीकता देखिए

रामलाल—तुमको भवान्त में कहना होया कि यही प्रसन्न हरेबी है।”

धकड़कर रैद्यमी बोली—“अही यह तो हमसे नहीं होया।”

सब तो रामलाल धर्म होकर कहने लगे—“सच्चा नहीं होना तो न चही।

लेकिन तेरे मिया को मिरफतार कर देंगे।”

सब तो रैद्यमी झूमकर बोली—“भाप को बही उचित भी है—भाप उठकी

मिरफतार नहीं कर देंगे तो भापके पाप की भाष कैसे लवैयी ?”

रामलाल—“देख रैद्यमी नहीं मानेयी तो और विपत्ति में पड़ेयी।”

रैद्यमी—“बह तो जानी हुई बात है।”

रामलाल ने उठकर सीटी बजाई। इसी समय दो सड़ते घा पहुँचे। उन्हें रैद्यमी का हाथ पकड़ा।

रामलाल ने फिर कहा—“सब भी नहीं मिया है रैद्यमी। तुम गरीब की सड़की हो। मेरी बात को मानकर जिनकी गर को सुधी हो सक्ती हो।”

रैद्यमी के ओठों पर लाल की हसी बिताई थी

“ममबान् ने बही वया करके मुझे गरीब की बेटी बनाया है क्या रहने पर भापकी ही तरह न सब पर फौरन करना होता।”

रामलाल के इसारे से उन लोगों ने रैद्यमी का कुछ बन्द करके बांध दिया जिससे कुछ बोल न सके^{२४}।”

अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी—

अनेक बार जब वो पात्रों की बातचीत में किसी अन्य पात्र की चर्चा सिद्ध जाती है तो कई बार उस तीसरे अनुपस्थित पात्र ने चरित्र के सम्बन्ध में निष्पक्ष सम्मति मिल जाया करती है। यह्यरीजी के उपन्यासों में ऐसे बहुत से कसोपकपन मिल जायेंगे जहाँ किसी एक पात्र का चरित्र अन्य पात्रों की टीका-टिप्पणी द्वारा प्रकाश में आया हो। उनके उपन्यास 'ऊनठमगोपाल' में भी ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ पात्र आमुस नायक के बुद्धि-बल की उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति में प्रशंसा करते हैं। प्रथम मेट पर ही बीबान कुँवरि कहती हैं—“नाम तो सुना है बैदा। बड़े-बूढ़े सबसे सुनती हूँ। तुम पाठान फोड़कर अण्णबी का निदासते हो”^{१३}। अपनी पत्नी को आपसीठी भुलाता हुआ नायक अपने साथी के बारे में यों कहता है “हम तो समझते थे कि हम ही उल्टार करते हैं। लेकिन हमारे काम की मर्यादा उतनी नहीं बितनी परब्रूमन के ढँचे बिल घोर उलार बिहार की भी वो हमारे लिए अपनी जान देने को तैयार था” “अगल में ऐसे मित्र दुर्लभ ही नहीं इस जमाने में अप्राप्य हैं।”^{१४}

पात्रों के पत्र

यह्यरीजी के उपन्यासों में पत्रों के पात्र भी भारी संख्या में मिल जायेंगे पर उन सब पत्रों के लेखक पात्रों के चरित्र का कोई संश प्रकाश में आया हो यह बात नहीं। उनमें कई पत्र तो बाकी मिलेंगे आमुस को—धीर पाठकों को भी—बोला देकर बन्दर में डालने के लिए। अनेक पत्र ऐसे भी मिलेंगे जो केवल कथानक का गति देने के लिए या कथा की टूटी कड़ियों को मिलाते के लिए होते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ऐसे पत्रों का कोई मूल्य नहीं ठहरता।

फिर भी कभी-कभी कोई एक पत्र ऐसा आकर मिल जाता है जो कृत्रिम न हा सीर जिससे एक या अनेक पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़े। उदाहरणार्थ 'ऊनठम गोपाल' के तेमू राम का पत्र देखिए जो उसने बिय आकर प्राप्तहत्या करने से पहले लिखा था। वही उसके कुछ संश ही उद्धृत किए जाते हैं—

“इस दुनिया में आकर मैंने देखा लिया कि कोई किसी का नहीं है।

मह सदी सदी नहीं पिताबनी है। मही तो मुझे इतना कष्ट क्यों देती। तुम कह सकते हो कि यह सदी है, इस पर मेरा पाप की मजूर है मैं महापापी हूँ लेकिन जब मैं ब्याह करने पर राजी था तब मैं पापी कैसे हो सकता हूँ।”

तेमूराम के इस पत्र में मृत्यु से पहले की उसकी मनोस्थिति की ही झलक नहीं मिलती सदी के प्रति उसकी भावना का भी परिचय मिलता है।

^{१३} वही, पृ. २१।

^{१४} तद्वती, 'ऊनठमगोपाल' पृ. १९८।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण

कहते हैं कि किसी की निजी वस्तुओं को देखकर उसकी शक्ति-प्रतिभा के सम्बन्ध में काफी कुछ जाना जा सकता है। जासूसों की सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि जिनके बारे में उन्हें जानकारी प्राप्त करनी होती है वे उनकी पहुँच से परे होते हैं और उनकी वस्तुओं—विशेषकर उनके निजी कमरे में सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर ही उन्हें अनुमान लगाया पड़ता है। पात्र के कमरे में पड़ी वस्तुओं और रखने के ढंग आदि के आधार पर वह उनके चरित्र के बारे में अनुमान लगाता है और वहाँ डाका पड़ा हो क्लस या थोड़ी हुई हो उस स्थान को ध्यान से देखकर ही वे लोग स्थिति का बहुत-कुछ अनुमान प्रकट की बीड़ से ही लगा लिया करते हैं। इस तरह की स्थितियाँ गहमरीजी के उपन्यासों में प्रचुरता से मिलती हैं। जासूस ठगठगोपास हुरवेवी और उसकी माँ के कमरों को देखकर ही स्थिति का काफी-कुछ अनुमान लगा लेता है।

चौथा अध्याय
सोद्देश्य चरित्रचित्रण

सोद्देश्य चरित्रचित्रण

प्रस्तावना

उपन्यास में व्यक्ति और समाज

व्यक्ति का समाज से संघर्ष

सुधारों की माँग

पाखण्ड का मच्छा-पौड़

समाज के सहिष्णु वर्ग के प्रति सहानुभूति

भरीत की मुख्य स्मृति

पुरुषन मूल्यों में आस्था

आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोह

बहिरंग (प्रोब्लैमेटिक) चरित्रचित्रण

व्यक्ति-चरित्र का समाज

सोद्देश्य चरित्रचित्रण

प्रेमबन्ध, जयसंकर प्रसाद, भयवतीहरण वर्मा, बुयाबनलाल वर्मा और

पद्मनाभ के औपन्यासिक चरित्रचित्रण की प्रवृत्तियों का अध्ययन

परिचयात्मक विवेचन

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

पात्रों का प्रथम परिचय

स्वित्पंकन

आकृति-वैद्यभूषा-बर्णन

अनुभाव-चित्रण

सांकेतिक वर्णन

क्रिया प्रतिक्रिया-चित्रण

आक्षेप (इमोजनल) आक्षेप का चित्रण

उपन्यासकार द्वारा टीका-टिप्पणी

संतोष-सुखों का चित्रण

संतोष का चित्रण

संतोषों द्वारा चरित्रचित्रण

कपोपकपन द्वारा चरित्रचित्रण

अन्य पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी

आपसी द्वारा चरित्रचित्रण

पञ्चात्मक शैली

कविता-गीत

प्रस्तावना

अपनी सोकरजन चरित के कारण उपन्यास साहित्य के सभी धर्मों पर छा गया। उसके पाठकों की संख्या में आठवीं शताब्दी हो गई। पाठकों की संख्या बढ़ी के साथ-साथ उसका उत्तरदायित्व भी बढ़ता गया। यह माँग उत्तरोत्तर और पकड़ती गई कि उपन्यास वैविध्यपूर्ण अस्वाभाविक घटनाओं का मोह त्यागकर मानव-जीवन और उसकी समस्याओं को उनके प्रकृत रूप में पाठकों के सामने रखे। उपन्यास से यह माया की जाने लगी कि वह कोरे सोकरजन में न उसका चरित्र सोकरजन की ओर भी प्रवृत्त हो और केवल 'सुन्दर' ही नहीं 'चिन्त' भी बने केवल 'प्रिय' ही नहीं 'हितकर' भी बने। समाज की दृष्टि में उपन्यास हितकर तभी हो सकता था यदि वह समाज-समस्या को सुचारु रूप से समझने में सहायक बनता। इसके लिए आवश्यक था कि समाज-समस्या में उसके द्वारा स्वीकृत आधार व्यवहार में तथा उसके विधि-नियमों में उपन्यास की पूर्ण व्याख्या होती और वह उन का प्रचार करता। इस माँग की पूर्ति में जिन उपन्यासों की रचना हुई, उनमें कोरी कौतूहलोद्दीपक घटनाओं का स्थान जीवन और जन्म की मानव समस्याओं में ले लिया। उपन्यास की प्रतिक्रिया अब मानव-जीवन की समस्याओं के उद्घाटन में बढ़ने लगी और कोरे भीरे वह अपने परिवेश के प्रति मानव की दृष्टिकोण के उत्तरोत्तर विकास का चित्रण करने लगा।

उपन्यास में व्यक्ति और समाज

व्यक्ति का समाज की आत्म-समर्पण

परिस्थितियों के प्रति उस युग के मानव का दृष्टिकोण सहज स्वीकारिता का था। प्रबल धार्मिक अस्कारों ने उसे आत्मबारी बना दिया था। उसका वह विश्वास था कि भगवान् या भूरा, सुख या दुःख जो कुछ भी उसे मिले रहा है, वह उसके अपने कर्मों का फल है। इसके अतिरिक्त उस समय समाज के बन्धन होने लगे थे कि वह कभी स्वयं में भी उनसे मुक्त होने की कल्पना नहीं कर सकता था।

इसीलिए, उस युग के उपन्यासों में जिस नायक-नायिकाओं की सृष्टि हुई, उनका संस्मावाद में पूर्ण विश्वास था। वे समाज को पुनः आत्मसमर्पण कर बैठे हैं। मानो समाज अपना कोई व्यक्तिगत हो ही नहीं। धर्मग्रन्थों और नीतिशास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट धार्मिक जीवन व्यतीत करना मागे उनका एकमात्र सपना हो। उन उपन्यासों में दो प्रकार के पात्र मिलते हैं एक सख्त पात्र और दूसरे घसख पात्र। घसख पात्र वे जो समाज के कष्ट उठाकर भी समाज के विधि-नियमों का पालन करते हैं। घसख पात्र वे जो स्वार्थ के लिए समाज की रीति-नीति का उल्लंघन करते हैं। इन दोनों में कुछ संघर्ष होता है और अन्त में घसख पात्रों को उनके दुकर्मों का दंड मिला है, कभी समाज की ओर से और कभी किसी दलील युक्त से, और घसख पात्रों को उस दंड की प्राप्ति होती है, जिसके लिए वे जीवन भर कष्ट उठाते रहते हैं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि उपन्यासकार की अपनी सहानुभूति तथा सख्त पात्रों के प्रति ही रही है। नीतिशास्त्रवाद का 'परीक्षापुत्र' बामदेव्य बट्ट का 'ती मजान और एक सुजान' और प्रेमचन्द के आदर्शिक उपन्यास इसी कोटि के हैं।

व्यक्ति का समाज के संघर्ष

सुधारों की माँग—विज्ञान के प्रसार ने जब प्रत्येक वस्तु के साथ 'क्यों' समा-
कर मनुष्य को उसके निदान की ओर प्रवृत्त किया तो वह समाज की प्रत्येक प्रथा
तथा उसके प्रत्येक विधि-नियम के वैज्ञानिक कारणों को जानने के लिए दौड़ने
ही लगा। उसने एक-एक करके सब रीति-रिवाजों की बुद्धि की कसौटी पर कसा
महापि उसकी उस कसौटी में पूर्वग्रह की मात्रा ही अधिक थी। उसने महसूस
किया कि महापि समाज की प्रतिक्रिया प्रभाएँ मानव और समाज के हित के लिए
बनाई गई थीं तो भी परिस्थितियों के कारण जाने-कई प्रथाओं में सुधार
की आवश्यकता है। इसलिए, उस युग के उपन्यासों में वहाँ एक ओर समाज-
सम्मत धारण करने वालों के धार्मिक जीवन का चित्रण मिलता है वहाँ दूसरी
ओर विद्वत् संस्कारों और कुप्रथाओं के कारण होने वाले जनकों का वर्णन करके
सुधारों की माँग भी वही ओर से व्यक्त की गई है। उत्काशीन उपन्यासों के
नायक-नायिकाएँ भी सम्पूर्ण स्वातंत्र्य तथा कष्ट-सहिष्णु थे। कई उपन्यासों
में ऐसे नायक-नायिकाओं के जीवनव्यापी कष्टों का चित्रण भी हुआ जो
समाज के विद्वत् संस्कार और कुप्रथाओं का शिकार हुए थे। प्रेमचन्द के प्रतिभा
सेवासदन, रंघूमणि, निर्मला जहाँ में सुधारों की माँग वही ओर से व्यक्त की
गई है।

प्राक्कथ का अन्त-बोध—समाज ने व्यक्ति के साथ जो धार्मिक जीवन रखा
था उसके पालन में जितने भी, संभव और त्याग की आवश्यकता थी, उतना हाथ
ही जुका था। अतः वह उस धार्मिक जीवन का पालन करने में अतर्क्य था, पर

बहु धरणी प्रसमर्पता को स्वीकार करके हार की भाग सेता। इसलिये, अब यह दिखाने का जीवन व्यतीत करने लगा। उसके यथार्थ रूप और सामाजिक रूप में उत्तरोत्तर अन्तर पड़ता गया। उस युग के उपन्यासों में पाखण्डी पात्रों की सृष्टि होने लगी जो धर्म या समाज के नाम पर निरीह लोगों पर अत्याचार करते थे। उपन्यास घर में बैठकर उनके पाखण्ड को उजाड़ता रहता है और अन्त में उन्हें उनकी कासी करतूतों के लिए दण्ड दिखाता है। अक्सर प्रसाद का 'कफास' और प्रेमचन्द का 'मोहान' समाज के पाखण्डपूर्ण जीवन पर करारी चोट करते हैं।

समाज के बहिष्कृत वर्ग के प्रति सहानुभूति—कुछ उपन्यास ऐसे भी मिले हैं जिनमें समाज के बहिष्कृत वर्गों—बोर डाकू बेवसा इत्यादि—के पतन की कहानी मिलती है और उनके पतन का एकमात्र कारण समाज को ठहराया गया है। स्वतन्त्रता पर ऐसे पात्रों के प्रति पाठक की सहानुभूति को उजाड़ने का प्रयत्न किया गया और समाज पर भी खोसकर कीचड़ उछाला गया। पंडित बैचन शर्मा 'उग्र' और बतुरसेन शास्त्री के आरम्भिक उपन्यास इसी प्रकार के हैं। इन उपन्यासों में उपन्यासकार का ध्यान परिवर्तन की ओर इतना नहीं रहा है जितना मातावरण सृष्टि की ओर।

अतीत की सुन्दर स्मृति—इस युग में एक और प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई। वह भी समाज की विपमताओं से युग की समस्या है। समस्याओं से पलायन की। लोगों को वर्तमान के झंझटों से दूर सुन्दर अतीत में ले जाने के लिए ऐतिहासिक रोमांच मिले गये। इन उपन्यासों से कोई नवीन ऐतिहासिक खोज प्रकाश में आई हो यह बात नहीं। इनका मुख्य तो प्राचीन युग के प्रति अतीतसुख का भाव उत्पन्न करके उन्हें उसमें विलीन रहना था। जैसे कहीं-कहीं आनुपमिक रूप में इन रोमांचों में उपन्यासकार के अपने युग की समस्याओं का चित्रण भी मिल जाता है। बुन्दारनसाल बर्मा के बड़े कुबार, बिछटा की पपिनी, अरुंधती की रानी सोना मृगनयनी आदि ऐतिहासिक उपन्यास इसी प्रकार के हैं। इनमें उपन्यासकार ऐतिहासिक पात्रों के वैयक्तिक और परिस्थिति-चित्रण के प्रतिरिक्त इनके व्यक्तित्व-चित्रण की ओर भी विशेष रूप से प्रवृत्त रहा है।

पुरातन मूल्यों में अनास्था—समाज-व्यवस्था से अनुप्य प्रवृत्ति तो पहले ही या पर विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ समाज की विपमताओं के प्रति उसकी वैयक्तिक तथा औद्योगिक नीति के प्रति मानव की आसक्ति बढ़ने लगी। कई बार उसके मन में आया भी कि वह उस समाज के प्रति विद्रोह का प्रस्ताव रख कर है, पर अंतर्मुखों से पड़े सरकार उसकी हिम्मत न बढ़ने दें। बाबिन मार्क्स और प्रोपंड की खोजों ने उसे चौंका दिया। समाज के प्रति उसकी आस्थाओं में क्रांति उत्पन्न होने लगी जिसका समाज के साथ उसके सम्बन्धों पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। यह जानकर उसे बड़ा पक्का लगा कि समाज द्वारा किए गए प्रयत्नों और बुरे एवं पाप और पुण्य के वर्गीकरण में सच्चाई की कमी है।

धीरे पूर्वग्रह की भाषा अधिक है। उसने देखा, जो एक के लिए बख्शा है वह दूसरे के लिए बुरा छिड़ हो रहा है, जिसे एक पाप कहता है दूसरा उसे पुण्य की संज्ञा देता है। इसीलिए उसे बन्धन-बुरे तथा पाप-पुण्य के घेर को छिर से परसने की आवश्यकता प्रतीत हुई। कमलकण्य पुरुषान् मूर्खों के प्रति धम्भीकारिता का भाव जोर पकड़ने लगा और साच ही नए प्रतिभागों की सौज के लिए व्याकुलता बड़ी। हिन्दी उपन्यासों में भयवतीपरखु बर्मा का उपन्यास 'बिचसेला' इस प्रकार के उपन्यासों का प्रमदूत बना।

धार्मिक शोषण के प्रति बिहोड़—रुकों-रुकों समाज में बिपटन के सुन पैसने लगे लो-लो उसने अपने अपने धार्मिक जीवन की स्वाधिकता के घरोपान पर धार्मिक बल देना प्रारम्भ कर दिया। उसकी प्रतिक्रिया भी उसने ही बीच से प्रारम्भ हुई। उपन्यास-साहित्य में सर्वत्र दुर्बला समाज के सोपित बर्बों का रोमांचकारी चित्रण होने लगा और साच ही शोषण बर्ब के हृदयों का भ्रष्टाचार भी बड़ी निर्यमता से हुआ। इस प्रकार के उपन्यासों में बधपास के पार्टी कामरेड देखाओही मनुष्य के रूप धारि उपन्यास विशेष उत्तेजनीय हैं।

उपन्यास में चरित्र (आलोचनिक) चरित्रचित्रण

इस प्रकार, एक लम्बे युग तक उपन्यास का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा और वह अपने परिपात्रों के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण के उत्तरोत्तर विकास को चित्रित करता रहा। समाज-व्यवस्था में मनुष्य की भावना किसी ईवी धर्म के बल से रही हो अथवा वह कुछ समाज-कल्याण की भावना से प्रेरित हुई हो समाज के रीति रिवाजों तथा विधि-नियमों को उसने यथावत् स्वीकार कर लिया हो या समयानुसार उनके परिवर्तन की माँग उठाई हो, समाज से उसका संबंध किसी सिद्धान्त पर हुआ हो अथवा स्वार्थ-साधन की दृष्टि से अपने को समाज से विरपेक्ष समझने की प्रवृत्ति उस युग के मानव में दृष्टिगोचर नहीं होती। शोषपूर्ण समाज-व्यवस्था को बदलने की, कुछ विचारवादाओं आन्धविश्वासपूर्ण रीति-रिवाजों व्यवस्था के विधि-नियमों और पुरातन मूर्खों में समयानुसार परिवर्तन से भागे की उस युग के मानव ने आवश्यकता को महसूस की और उनके लिए वह स्वयं हतवि प्रयत्नकर उत्साहिक प्रवृत्तियों से टकरा भी जाता रहा पर वह अपने को समाज का एक अभिन्न अंग समझता रहा या और वह कभी सोच भी न पाया था कि समाज से अलग उसका कोई निजी अस्तित्व है। वास्तव में, अपने समाज अथवा बर्ब से अलग उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास ही न हो पाया था और वह अपने समाज या बर्ब के प्रति को अपना ही चरित्र समझता था।

व्यक्ति-चरित्र का समाज

वस्तुतः के उन व्यक्तियों को लेकर हिन्दी-उपन्यास में जिन नामों की

दृष्टि हुई वे उनके अनुकूल ही अपने समाज या वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में माने। उनके समाज या वर्ग के गुणावगुण ही उनके चरित्रिक गुणावगुण बने। उस युग के उपन्यासों में उन पात्रों का बही रूप चित्रित हुआ जो उनके समाज के सामने व्यक्त या उनके चरित्र का बही रूप व्यक्त हुआ जो उस समय के समाज को सहकोषलक्ष्य था। मनुष्य के सामाजिक रूप के प्रतिरिक्त उसके किसी अन्य व्यक्ति वत रूप को सामाजिक भाव्यता न देने की तत्कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल उस युग के उपन्यासों में पात्रों का सामाजिक रूप ही अभिव्यक्ति पा सका और उसी रूप के बचाव बिना ही जोर तत्कालीन उपन्यासकारों की समस्त कल्पना लगी रही। मनुष्य के व्यक्ति रूप को ही सब कुछ समझ लेने की प्रवृत्ति उस युग के उपन्यासों में बुरी तरह से बरकरार आई थी।

हम पहले ही कह आए हैं कि मानव-चरित्र एक हिमनग (आईस बग) के समान है। हिमनग का केवल नबमांस पानी के ऊपर दिखाई देता है और शेष ८/९ भाग अदृश्य रहता है। इसी प्रकार मनुष्य की व्यक्त भ्रिया-प्रतिभियाओं में विविध मूल्य या अल्पमूल्य केन्द्रांशों में, उसके चरित्र का अन्तर्भाव ही अभिव्यक्ति पा सका करता है और शेष कई गुना बड़ा अंश उसके अन्तःकरण में अव्यक्त रहकर उसके व्यक्त आचरण को प्रेरित किया करता है। युग की प्रवृत्ति के अनुकूल उस समय के उपन्यासकारों की कल्पना हिमनग रूपी मानव-चरित्र के जल के ऊपर वाले व्यक्त अंश में ही रही। बहुत से उपन्यासकारों ने तो मनुष्य के उस अदृश्य चरित्र को ही समूचा चरित्र समझकर उसके अव्यक्तांश के प्रति उदासीनता का साध अपना लिया था और वे अपने औपन्यासिक पात्रों की साकृति बेश-भूया उनके आस-पास की परिस्थिति उस परिस्थिति में व्यक्त होने वाले उनके अनुभाव तथा भ्रिया-प्रतिभिया आदि के बिना ही ही उन पात्रों के चरित्र-चित्रण की इतिमी समझ लेते थे।

कुछ एक उपन्यासकारों ने हिमनग-रूपी मानव-चरित्र के अदृश्य अव्यक्त अंश के अस्तित्व को स्वीकार तो किया था पर उसके स्वरूप की कल्पना मनमाने रूप में कर ली थी। इसलिए, अपने पात्रों की परस्पर विरोधी भ्रिया-प्रतिभियाओं में संगति बैठाने के लिए वह भी वे अव्यक्तांश की ओर प्रवृत्त हुए और उसका जो रूप उन्होंने चित्रित किया वह बहुधा मनोवैज्ञानिक अन्तर्भावों से दूर था पड़ा। वे भी अपने पात्रों के उसी रूप को चित्रित कर सके थे जिस रूप में दूसरे उन्हें मानते हैं। पात्रों के बाह्यम्यान्तरिक यथार्थ रूप को चित्रित कर सकना तो दूर रहा उस युग के उपन्यास यह भी न बतला सके कि पात्रों की अपनी दृष्टि में उनका कौन सा रूप यथार्थ था। उस युग का उपन्यासकार अपने पात्रों को 'वे' के रूप में चित्रित करता रहा था। उनके 'मे' रूप से वह अत्यन्त अनभिज्ञ ही रहा।

शोहेब चरित्रचित्रण

इसलिए उस युग के उपन्यासों में उनके पात्रों का समूचा चरित्र न चित्रित हो सका और वे उसके सहजोपलब्ध व्यक्त बंध को लेकर ही समुत्पन्न हो गए। वास्तव में अपने पात्रों का सच्चे अर्थों में चरित्रचित्रण करना उस युग के उपन्यासकारों का लक्ष्य भी नहीं था। चरित्रचित्रण उनके उपन्यासों का साध्य नहीं था। कोरे चरित्रचित्रण की दृष्टि से वे उपन्यास निम्ने भी नहीं गए थे। चरित्रचित्रण तो उनके उपन्यासों में साधन ही रहा—सत्ताहीन समाज और उसकी परिस्थितियों, दोषपूर्ण समाज-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न विभिन्न विषयवस्तुओं और अन्य विविध समस्याओं को उनके यथार्थ रूप में चित्रित करके अपने अनुभव के आधार पर समाधान उपस्थित करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए। क्योंकि समाज का चित्रण उसके मानव सदस्यों और उनके जीवन को लिए बिना ही नहीं सकता, इसलिए, इन उपन्यासकारों को प्रसंगवश सामक-चरित्र का उद्घाटन करना पड़ा। वास्तव में उनका लक्ष्य तो अपनी परिस्थितियों के प्रति, समाज के प्रति जीवन और मरम्मत के प्रति मनुष्य के दृष्टिकोण के उत्तरोत्तर विकास का चित्रण करना था। इसलिए, उस युग के उपन्यासकारों से यह आशा रखना कि वे 'चरित्रचित्रण' के सच्चे अर्थों में अपने पात्रों का चरित्रचित्रण करते उनके प्रति अपेक्षा करना होगा।

अब हम शोहेब चरित्रचित्रण करने वाले प्रतिनिधि उपन्यासकारों—श्रीमन्मद, बरहंकर 'प्रसाद' मधनवीचरल बर्मा, कुम्हारनाना बर्मा और मधुपति—के उपन्यासों में हुए चरित्रचित्रण के स्वरूप का निरूपण करेंगे।

प्रेमचन्द

परिचयात्मक विवेचन

प्रेमचन्द साहित्य को 'जीवन की आलोचना' मानते थे। साहित्य से उनकी माँग थी कि वह 'जीवन की आलोचना और व्याख्या करे'। उपन्यास के प्रति भी उनका यही दृष्टिकोण रहा। उपन्यास की सफलता वह उसकी मनोरंजकता भर में नहीं समझते थे प्रत्युत् उससे आशा करते थे कि वह 'मानव चरित्र पर प्रकाश डाले और उसके रहस्यों को खोलता हुआ मानव-जीवन को संयममय बनाने में योग दे'। उसे समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सम्भाव्य लाभ उठें।^१ प्रेमचन्द मानव-जीवन को मानव-समाज से पृथक् करके नहीं देखते थे अपितु मानव-समाज की घटघट गतिशील ज्वलन धारा में से ही मानव-जीवन को पकड़ने का प्रयत्न करते थे। इसलिए, उन्होंने अपने उपन्यासों का उपयोग सामाजिक उद्देश्य और सामाजिक आलोचना के लिए किया था^२।

समाज से मानव का सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रेमचन्द ने एक कुशल चरित्र के समान पहले मानव और उसके मूल की प्रवृत्तियों की खीर-काढ़ करके स्वस्थ और अस्वस्थ प्रवृत्तियों को असंग-अलग किया^३ और फिर अपनी समस्त सक्रिय अस्वस्थ प्रवृत्तियों के, जो उस मूल और समाज के लिए समस्या बनी हुई थीं

१. प्रेमचन्द, 'पुष्प निवार' पृष्ठ ९।

२. वही पृष्ठ १८।

४. वही पृष्ठ २६।

५. डा. हनुमान गन्ना प्रेमचन्द : एक विवेचना' पृष्ठ २२।

६. 'हंस' दिनांक १६.६.३३ में प्रेमचन्द की एक प्रियखी —

"मानव इतना अस्थिर है ही 'सु' और 'कु' का ऐग लला रहा है और साहित्य की सुधि ही इसलिये हुई कि हमारे में जो 'सु' या 'सुन्दर' है और इसलिये अस्वस्थ है, इसके प्रति मनुष्य में प्रेम उत्पन्न हो और 'कु' या 'असुन्दर', इसलिये अस्वस्थ अनुभूति से मुक्त। साहित्य और कला का यही मुख्य उद्देश्य है।"

हिन्दी-उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास

वास्तविक स्वरूप को समझने और अपने उपन्यासों के माध्यम से दूसरों को समझाने में सहायी"। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने उपन्यासों के कथानक रहे और उनके लिए पात्र चुने"। अपने उपन्यासों में उन्होंने अनेक प्रकार की समस्याओं को उठाया, जिसके चित्रण के लिए उन्हें आवश्यकता पड़ी—१ स्वार्थ-समन में दूसरों के लिए समस्याएँ सृष्टि करके उन्हें उत्तरोत्तर गम्भीर बनाते रहने वाले शोषक पात्रों की २ उन समस्याओं की चरम सीमा पर निरन्तर पिछते रहने वाले शोषित पात्रों की और ३ पिछने वालों के प्रति सहानुभूति रखने वाले अपना समझी समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते रहने वाले सुचारक पात्रों की।

शोषित नारी का चित्रण

प्रेमचन्द सुकमवर्धी थे। वह गृहस्थ और समाज की समस्याओं को पहचानते थे। सामाजिक समस्याओं का उनका निदान सदा ठीक रहा चिकित्सा में बाहे वह सफल न हुए हों। उन्होंने देखा कि माटी जो समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई अर्थात् परिवार की नींव है, जिस पर गृहस्थ और समाज के समस्त सदाचार टिके हुए हैं, उसे कहीं भी उसका उचित स्थान नहीं दिया जा रहा। उस पर दुनिया भर के कर्तव्यों का बोझ लाद दिया जाता है, पर अधिकार उसे एक भी नहीं दिसता। वह सबका पोषण करती है—अपना सर्वस्व स्वीछाकर करके भी—पर अपने शोषित होकर भी सब उसका शोषण करने पर पुते रहते हैं। व्यक्तिगत रूप में स्वयं शोषित रहने के कारण प्रेमचन्द को शोषित की सभी पहचान हो

क. प्रेमचन्द का २९ दिसम्बर, १९२४ का एक जन दा० सूर्यदास मदान के नाम 'प्रेमचन्द : एक निवेदन' में प्रकाशित

"(८) हमारा सर्वेक्षण अनन्त तैयार किया है, इसलिये मैं सामाजिक विचार में निरन्तर रक्त हूँ। (१) मैंने अपने निवेदन के अन्तिम भाग में स्पष्ट करने के लिए सम्पादन को ही पर ध्यान दिया है।"

क. दा० सूर्यदास मदान प्रेमचन्द : एक निवेदन" पृ० ३२ :—

"प्रेमचन्द का सम्पूर्ण निवेदन से सामाजिक समस्या से लदा है। उनका वह एक एक शब्द जिस समाज के अन्तः-हृदय पात्रों का अन्तः रहस्य करता है।"

प्रेमचन्द का ७ सितम्बर, १९३१ का एक पत्र, डा० सूर्यदास मदान के नाम, प्रेमचन्द : एक निवेदन" में प्रकाशित।

"(१) जीवन मेरे लिए अनन्तर चल रहा है। मैं अपने करने में आनन्द पाता हूँ। कभी कभी निराशा के दिने एक घंटे हैं जहाँ मैं धर्मिक कष्ट का अनुभव होता हूँ -- 'आर्षि' दृष्टि से मैं अनुपम रहा व्यस्य करता नहीं जानता।"

बई थी। सोपितों के प्रति उनका दृष्टि पसीम चला था^१। इसीलिए अपने उपन्यासों में वह बार-बार चिर-सोपित नारी के विविध कर्णों का चित्रण करके उनके साथ हो रहे धन्याय के प्रति पाठकों को आकर्षक बनाने और उन्हें यह चेतावनी देने का प्रयत्न करते हैं कि परिवार और समाज में नारी को उसका उचित स्थान देने में ही मानव जीवन का सफल निहित है^२।

इसलिए प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री-पात्रों के लगभग सभी रूप सोपित वर्ग के हैं। और तो और कथा-रूप में भी यह सोपित होने से नहीं बच पाई। माता पिता स्वार्थवश या समाज-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न विषयताओं में उसके प्रभेद बिना ही उसका मार्ग कंटकाकीर्ण बना देते हैं। मनोरमा के विवाह के लिये उसका पिता प्रभोमनवश उसकी इच्छा की विन्या क्रिये बिना राजा विद्यासिंह से बचनबद्ध हो गया। इसी वनसोनुपता के कारण विरजन का विवाह कमलाचरण से हुआ था और सुमन निर्मला सोता कथा का प्रभेद बिना ही उनके माता-पिता में देखे देने की सामर्थ्य न होने के कारण हुआ। सोपित पत्नी के रूप में विरजन प्रेमा सुमित्रा सुमन, सुधा इन्दु, सुमामी कात्या मनोरमा सुखवा महत्या धनिया आदि का चित्रण हुआ। प्रेमिका के रूप में भी नारी कम नहीं पड़ी। विरजन भावभी प्रेमा गायत्री सोनिया मनोरमा जीहरा मिस मासरी आदि की मूक या व्यक्त विरह-वैराग्य से यह स्पष्ट हो जाता है। विरजा को तो समाज अनुप्य समझता ही नहीं। अनुप्य के असह्य सह्य अधिकारों तक से उसे बचपुर्वक बंचित कर दिया जाता है। उसके उत्पीडन पर कामी खोम पीलों के समाज टूट पड़ते हैं। विरजन पूर्ण गायत्री विद्यासी शक्तिणी मुधा, एत सब किसी न किसी रूप में जोर धातनाएँ सहती हैं। वेसा के रूप में मोती सुमन और जीहरा पीड़ित हैं तो रसीम के रूप में लोमी मुनिरा सिनिरा पिसी का रही हैं। विमाता के रूप में निर्मला असह्य मानसिक कष्ट सहती हुई बुन बुनकर नर जाती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विमाता का प्रायः शोषक रूप ही देखने को मिलता है, पर प्रेमचन्द को विमाता का भी सोपित रूप ही चित्रित करना पड़ता था।

उत्पन्नात् सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न नारी की असहाय निष्पाम अवस्था का अनुचित लाभ उठाकर स्वार्थ साधने वाले शोषक पात्रों का समावेश हुआ। कोई पति बनकर उसका शोषण करता है कोई प्रेमी बनकर। पति बनकर उसे

१० सन् १९१६ में प्रथम अखिल भारतीय प्रगतिशील महिला सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से प्रेमचन्द का चयन किया गया था।

^{११} जो दमित है, पीड़ित है, बंचित है—जैसे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी दिव्यता और महत्त्व करना उसका (आध्यात्मिक) कर्तव्य है। उसकी आध्यात्मिक समझ है। इसी आध्यात्मिक के सामने वह अपना इच्छाबल प्रकट करता है।^{१२}

११ या 'साम्प्रदायिकता, प्रेमचन्द और समाज' पृ. ३ तथा ११।

पीसने वालों में कमलाचरण, कमलाप्रसाद, बाननाच, बजाचर, जानघंकर मुछी ठोठा-राम तथा महेश्वरप्रताप औरों तथा विद्यासिंह, मि० खन्ना इत्यादि प्रमुख हैं। प्रेमी बनकर घुसने वालों में प्रताप, भगवतराय, सबन, विमल, बकवर, रामानन्द, चमरकांत, सलीम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जानघंकर जैसे कामुक व्यक्ति अपनी बड़ी सली गायत्री की रूपसुधा का पाल करने के लिये सब नाच नाचने धीर नचाने के लिये तैयार रहते हैं। उन्हें इस बात पर भी दया नहीं आती कि वह बेचारी विधवा है। स्वार्थवश अपना किसी विधवा में उसका धनमेव विवाह करने वाले साठा-पिठा की भी कमी नहीं जैसे बिरजन की माँ, कृष्णचन्द्र निर्मला की माँ हरिदेवक सिंह होटी इत्यादि। उसे रत्नल बनाकर अपनी कृष्टि करने वाले पंडित दादाजीन हरिदेवक आदि भी प्रेमचन्द की कृष्टि से नहीं बच पाये। नारी का किसी भी रूप में शोषण करने वाले सभी व्यक्तियों का उनके उपन्यासों में समावेश हुआ। समाज में चौंते-पुत्र प्रायः शोषित के रूप में पाये जाते हैं पर यहाँ वे भी शोषक के रूप में ही मिले पाये हैं। इतना ही नहीं अपने स्वार्थ के धिये नारी का शोषण करने वाली नारियाँ भी प्रेमचन्द की कृष्टि से नहीं बच पाई। सुमन की मामी और सबन की माँ बकिस्सी तथा रानी बाहूबी का व्यवहार कमसे सुमन, सान्ता, निर्मला तथा सोनिया के प्रति कम कठोर नहीं रहा।

शोषित नारी के प्रति सहानुभूति रखने वाले अपना उसकी समस्याओं सुमझने का प्रयत्न करने वालों के रूप में भगवतराय, विदुसबास, स्वामी, बजानन्द, पद्मसिंह आदि आते हैं। प्रेमचन्द के पात्रों का यह बर्ण कोई ठोस काम नहीं कर पाता। या तो इस बर्ण के पात्रों की शोषित नारियों के प्रति सहानुभूति बाणी तक ही सीमित रहती है और यदि वे सक्रिय रूप में प्रयत्नशील होते भी हैं तो उनके प्रयास व्यक्तिगत ही रह जाते हैं।

शोषित किसान का चित्रण

पर गृहस्थ तथा समाज की प्रमुख समस्याओं को न केवल के बाद प्रेमचन्द देशव्यापी समस्याओं की ओर मुके। उन्होंने देखा कि भारत जैसे कृषि-महान देश की सुख-समृद्धि की नींव उसके गाँव हैं, भारत की नारी की भाँति भारत के गाँव भी उसकी संस्कृति को उसके अविच्छिन्न रूप में सुरक्षित रखे हुए हैं। उनके गाँव पसीने की कमाई पर समस्त देश पसठा है, पर उनकी दसा दिनों-दिन बिगड़ रही है। गाँवों की दयनीय व शोचनीय अवस्था के प्रति प्रेमचन्द का हृदय अविचल ही रहा—विरोधवादी रूपक बर्ण की दशा के प्रति जो बाहर और भीतर दोनों तरफ से पिघ रहा था। इस शोषित वर्ग की भूक बंदना का विमल करके उसके प्रति देशव्यापी सहानुभूति जमाने के लिये प्रेमचन्द ने उपन्यास को अपना माध्यम बनाया। इस सम्बन्ध में उनका एक उपन्यास प्रेमाभ्रम 'रघूमि तथा गोदान' उल्लेखनीय हैं। मनोहर बसन्तज बिनासी

सूरदास मैरों बकरंगी होरी धनिया, गोवर धादि की बगठारछा इसी चिर-छोपित तथा बिरोधेछित बर्य के चित्रण के लिये ॥६॥। इन पात्रों को केन्द्र बनाकर उन्होंने पाँच की सभी समस्याओं को पकड़ा और उनका वास्तविक स्वरूप और निदान उपस्थित किया है।

अपने बिलासी जीवन को सुखमय बनाने के लिये मोले भासे ग्रामीणों के सामने प्रसङ्ग धार्मिक और सामाजिक उत्तमों का करके उनकी विवशता से अनुचित लाभ उठाने वाले एवं उन पर अक्षणीय अत्याचार करने वाले क्रूर छोपकों के रूप में जानसँकर, राम कमलानन्द रानी यायबी जॉन सेबक राजा महेश्वरप्रताप पयसाहब अमरपाल सिंह, मि० खन्ना और उन अत्याचारों के पोषक साधियों-सहायकों गौस और ठाहिर जैसे कारिणों गिरधर जैसे अपराधियों वसार्क तथा ब्यासंकर जैसे सरकारी अधिकारियों, डा० इफॉन तथा डा० प्रियनाथ जैसे बकीलों-डाक्टरों—की बकल पड़ी। पाँच वालों की अपनी अज्ञानता बर्म-भीस्ता पारस्परिक ईर्ष्या तथा स्वार्थ भावना द्वारा उत्पन्न समस्याओं के चित्रण के लिये सुक्कु चौधरी बुलराम नमत मैरों सुभागी, मिठुसा हीरा बमड़ी बंधोह मोसा लीहटा मुनिया सिलिया इत्यादि को स्थान मिला। इसके अतिरिक्त इन समस्याओं के प्रति अपने विचार प्रकट करने तथा उन पर टीका-टिप्पणी करने के लिए इन छोपियों के प्रति सहानुभूति रखने वाले पात्रों की आवश्यकता पड़ी। कादिर जॉ प्रेमसंकर ज्वालामोहि, राजा भरतसिंह डा० मेहता मारि का समावेश इसी उद्देश्य से हुआ।

व्यापक जीवन-परिधि

अपने युग की प्रवृत्तियों और पारिवारिक सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं के चित्रण के लिए प्रेमचन्द ने सब जैसी आवश्यकता पड़ी जैसे पात्रों का चयन किया। उनका ध्यान मूलतः छोपित वर्ग पर केन्द्रित होने पर भी उनके पात्र-चयन का पैरा इतना व्यापक रहा कि जुपुन और जुपुन रखल और प्रेमिका बेव्या और पतिव्रता विधवा और सखवा माता और बिमाता से लेकर किसान और जमींदार, मजदूर और मिस मासिक कर्मक और अपसर, बाध्यास और पण्डित बकीस डाक्टर-ओपेसर तक नित्य प्रति के सम्पर्क में आने वाले सब प्रकार के लोग उनके उपन्यासों में मिल जाते हैं। पर उन सबको लेकर ही सहानुभूति मिमी हो या उन सबका चरित्रचित्रण उसने एक-ही लग्नमता से किया हो यह बात नहीं। अपने पैरे में तो वह सबको ले पाए, पर हृदय से वह केवल निम्न मध्य वर्ग तथा कृषक वर्ग के साथ ही रह सके क्योंकि यही दो वर्ग सबसे अधिक छोपित होने के कारण उनकी सहानुभूति को जीव सके थे। विभिन्न प्रकार के पात्रों पर सेकनी उठाने पर भी उनकी प्रतिभा पूरे निष्कार

में तभी जाती है, जब वह निम्न मध्य वर्ग तथा कुपक वर्ग का चित्रण करते हैं।^{११}

जानपा मनोरमा बितासी, सोछिया, सलोनी, मुन्नी मौनी, धनिया तथा पुष्प पात्र मनोहर, बसराज सूरदास जकबर, रामाबाब, देवीदीन, धमरकास्त होरी इत्यादि जो हमारे हृष्य-मटम पर अपनी धमिट छाप छोड़ जाते हैं, वे निम्न-मध्य-वर्ग तथा कुपक वर्ग के ही प्रतिनिधि हैं।

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

वस्तु-अपत् में बहुधा व्यक्ति के नाम पीर उसके चरित्र में कोई साम्य नहीं मिलता, पर उपन्यास अपत् में ऐसे अनेक पात्र मिल जायेंगे जिनके नाम उनके चरित्रानुसृत हैं। अपने पात्रों का लपटा होने से उपन्यासकार उनकी मस-मस से परिचित होता है और उनके भावी चरित्र-विकास के सम्बन्ध में सब कुछ जाना करता है।^{१२} इसलिये, अपने पात्रों का नाम रखते समय उसके सामने उनका चरित्र आ जाता है और उसे उनके नाम में चरित्रार्थ करने का उपन्यासकार का मोह हो जाता है। उपन्यासकार इस प्रकार के मोह से बचना बच सके उतना ही बेयस्कर है, क्योंकि उसके पात्रों के नामों में अस्वाभाविकता आ सकती है। प्रेमचन्द भी अनेक बार अपने पात्रों के नामों को सार्थक बनाने का तथा उनके नामों द्वारा ही उनके किसी विशेष गुणावगुण को व्यक्त करने का मोह नहीं छोड़ सके हैं।^{१३} परिणाम स्वरूप, उनके कई पात्रों के नाम सङ्ख्य-स्वाभाविक न बनकर प्रतीकारमक अथवा व्यंग्यारमक हो डटे हैं।

पात्र के पुमानुवच नाम

ऐसे वे नाम हैं जो पात्र के चरित्र के किसी विशेष गुणावगुण को व्यक्त करते हैं, जैसे सुबामा प्रेमचंदकर ज्ञानचंदकर, बसराज निर्मला मनोरमा राजा बिरालसिंह,

११ टा० स्त्रबाल मयान प्रेमचन्द : एक विशेषज्ञ पृष्ठ ४।

“प्रेमचन्द का व्यक्तित्व उन अपने अधिक निकटिल होश है, जब वे निम्न मध्यवर्ग और कुपक वर्ग का चित्रण करते हैं।

१२ Forster 'Aspects of the Novel' p. 83.

“.....And—most important—we can know more about him (character) than we can know about any of our fellow creatures, because his creator and narrator are one.”

१३ कौमोद कोठारी, प्रेमचन्द के चरित्र प्रेरण प्रकाशन जोधपुर १९३४ पृष्ठ २१० में इस विशेषता को कुछ स्पष्ट गया है :

“अनेक हिन्दी-साहित्य में तो वे देकर वे ही एक पात्र के पुरोहित हैं जिनके चरित्रों का नामकरण में कुछ उच्च सार्वजन्य और संगति का प्रयास मिलता है। ‘व्यक्तित्व और नाम की सम्बन्ध ही पात्र के व्यक्तित्व को साहित्यिक और सार्थक बनाती है।’ पर उन्तु का कारणों से इस चरित्रों से हमारा अभिप्रेत है।

मगहूसाहू इत्यादि । इ।

ऐसा सुयोगवत् हुआ हो, यह नहीं । इनके सप्ट ने जान-बूझकर इनके चरित्र की किसी एक उमरी हुई विशेषता के आधार पर इनका नामकरण किया है, यह बात इन पात्रों के जीवन-वर्णन से स्पष्ट हो जाती है । 'प्रेमात्म्य' के प्रेमचक्र की यह बृहद् धारणा है कि 'हमें सब संगठन की परस्पर प्रेम व्यवहार की और सामाजिक धर्म्याय के मिटाने की आवश्यकता है' ।^{१४} ज्ञानचक्र स्वयं जानता है कि वह 'मार्गों का आधारक नहीं विचार का उपासक' है ।^{१५} उनके पात्र वसन्त का 'शरीर कुद पठीला हृष्ट-मुष्ट था छाती चौड़ी और मरी हुई थी । छातियों से ठेज मसकता था ।'^{१६} 'बरबान' के नायक प्रताप की माँ सुबामा ने 'बही किया जो ऐसे सन्तोषपूर्ण और उबार हृदय मनुष्य की स्त्री को करना सचित था' ।^{१७} अपने सीतेने पुत्र मत्ता राम के प्रति निर्मला के सम्बन्धों की निर्मलता दिखाते हुए नेहरू उससे कहलवाता है—'मेरे मन में पाप का सेंध भी न था । अगर एक क्षण के लिए भी मैंने उसकी ओर किसी और भाव से देखा हो तो मेरी भाँखें फूट जाँईं ।'^{१८} इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द ने पात्रों के नामों द्वारा उनके चरित्रोद्घाटन का प्रयत्न किया है जिससे पात्रों के नामों में कुछ प्रत्याभाषिका या गई है । वस्तुतः के अंगों के नाम और चरित्र में साम्य बहुत कम होता है और होता भी है तो केवल संयोगवत्—इस विषय में कोई भी सांसारिक प्रयत्न फसीमूत नहीं हो पाता । इसके अतिरिक्त पात्र के जीवन की एक-दो घटनाओं से उसके नाम और चरित्र में साम्य देखकर उसके माथी विकास के प्रति पाठक की उत्सुकता मंद पड़ जाती है क्योंकि पात्र के नाम से उसके चरित्र का सम्यक् आकलन कता से पहले ही प्रकट हो जाता है ।

व्यव्यात्मक पात्र

प्रेमचन्द के पात्रों के व्यव्यात्मक नाम दो प्रकार के मिलते हैं । एक तो ऐसे हैं जो पात्रों के चरित्र की किसी विशेषता के एकांगी विकास पर ध्यान करने के लिये रचे गए नाम जैसे—अच्छा निष्ठा आदि । प्रेमचक्र की पत्नी अच्छा की धर्म में इतनी र्धमयता है कि 'वह अपने पुत्रों से अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ धो सकती थी किन्तु अपने धर्म की अक्षता करना अपना लोकनिष्ठा का सहूल करना उसके लिए

^{१४} प्रेमचन्द, 'प्रेमात्म्य' पृष्ठ १२१ ।

^{१५} वही, पृष्ठ ४६ ।

^{१६} वही, पृष्ठ ११ ।

^{१७} प्रेमचन्द, 'बरबान' पृष्ठ ११ ।

^{१८} प्रेमचन्द, 'निर्मला' पृष्ठ १२५ ।

असम्भव था ।^{१९} ' इसी प्रकार, ज्ञानसंकर की पत्नी बिद्या बिद्यावती तो भी पर उस में वह चतुराई नहीं थी, जिससे ज्ञानसंकर को काबू में रख सकती । 'उसे पति की संकीर्णता पर खेद तो होता था लेकिन कुछ और कहते जरूरी थी कि उनकी दुष्कामना कहीं और भी दुष्ट न हो जाए ।^{२०}

दूसरी प्रकार के व्यंग्यमय नाम हैं—पात्र के किसी विशेष अवसुण पर व्यंग्य करने के लिए—जैसे बिम्बुस उसट पुत्र के बोबक नाम—जैसे जॉन सेबक डा० प्रियनाथ इयाणाथ इत्यादि । रंगभूमि का ज्योतिषपति पात्र जॉन सेबक सिगरेट का कारखाना तो खोलता है बन कमाने के लिए, पर प्रकट ऐसा करता है कि मानो इस प्रकार वह दाँव वालों की सच्ची सेवा कर रहा है । 'इस सिगरेट के कारखाने से कम से कम एक हजार धारमियों के जीवन की समस्या हल हो जाएगी और उनके घर से खैरी का बाष्प टल जाएगा । जितनी जमीन एक धारमी पच्चीस टक्के जोड़ सकता है उसमें घर घर का मजा खाना व्यर्थ है । मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को रोटी कमाने का अवसर देगा ।'^{२१} दशानाथ नाम है 'धन' के नामक रामनाथ के पिता का जो पुत्र के नाम जाने पर पुत्रवधू जानपा से सहायुभूति की बजाय निर्दयता-पूर्ण व्यवहार करता है ।^{२२} इसी प्रकार प्रियनाथ है 'प्रेमाश्रम' के वह डा० महोदय जिन्हें मार डालने के लिये जनता ने घेर लिया था और जो प्रेमसंकर की सामयिक सहायता से ही बच सके थे । अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कितने प्रिय रहे होंगे ।

एक नाम के एकाधिक पात्र

संसार में भी कई बार एक नाम के एकाधिक व्यक्ति मिल जाते हैं, पर नाम साम्य होने से ही उनमें चरित्रसाम्य नहीं हो जाता । यदि किन्हीं दो व्यक्तियों के नाम और चरित्र में कभी साम्य मिल भी जाए तो उसे संयोग ही माना जा सकता है । प्रेमचन्द के उपन्यास-जगत में भी कई बार एक नाम के एकाधिक पात्र मिल जाते हैं । बाह्यबी नाम के दो स्त्री पात्र—'रंगभूमि' के विनय की माँ तथा 'सेवासदन' की मायिका सुमन की माँ । इसी प्रकार, निर्मला नाम के दो स्त्री पात्र हैं—'निर्मला' उपन्यास की मायिका तथा 'कायाकल्प' के अक्षर की माँ । इन पात्रों में नाम-साम्य तो है पर चरित्र-साम्य नहीं । कमला नाम के भी दो पुरुष पात्र मिलते हैं—'बरदान' की मायिका बिरजन का पति तथा 'प्रतिज्ञा' में सुमित्रा का पति, और चरित्र भी आपस में मिलता-जुलता है । इनका नाम साम्य कुछ छटकता है विशेषतया जबकि इन उपन्यासों के लेखन-काल में कोई अधिक धक्का नहीं ।

१९ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १२४ ।

२० वही पृष्ठ २० ।

२१ प्रेमचन्द 'रंगभूमि', पृष्ठ २१ ।

२२ प्रेमचन्द, 'गल्प' पृष्ठ १५ ।

स्वामाधिक नामकरण

प्रेमचन्द ने वहाँ नामों को शार्क बनाने का मोह छोड़कर पात्र के प्रवेश, काल जाति तथा वर्ग की ध्यान में रखकर उसका नामकरण किया है। वहाँ उनके नाम अत्यन्त स्वामाधिक बन पाये हैं। प्रेमचन्द के अधिकतर पात्रों के नाम उनके प्रदेश का नाम जाति और वर्ग के अनुसार ही हैं और वे हमारी स्मृति में बने रहते हैं। इनमें ग्रामीण पात्रों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नीरों जमघर, दुबारन मगत बिसेसर साहू, घुबड़ मोलेराम घसगु, बैचन हल्दू जीसू, मोना गोबर, होरी हीरा अुनिया सिमिया बनिया मोहरी कपा सोना मुन्नी सलोनी इत्यादि नाम अत्यन्त स्वामाधिक बन पाये हैं, क्याचित् इसलिये भी कि इनके नामकरण के पीछे भेदका का कोरा शब्द-ज्ञान नहीं, मत्सुत् ग्रामीण-जीवन से उसकी एकात्मियता है।

पात्रों का प्रथम परिचय

प्रेमचन्द का विचार था कि "किसी चरित्र की कपरेखा करते समय हुसिया नबीसी की जरूरत नहीं। दो-चार वाक्यों में मुख्य-मुख्य बातें कह देना चाहिये।" २४ अपने पात्रों से पाठकों की प्रथम भेंट के समय उनका परिचय कराते हुए उन्होंने प्रायः इसी रीती को निभाया है—पात्र की शक्ति तथा बेच-भूपा के संक्षिप्त वर्णन के बाद दो-चार वाक्यों में उसके चरित्र की कुछ-एक उमरी हुई विशेषतायें बता देना यह तो परिचय का एक ढंग हुआ जिसमें दो व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति की सहायता से एक-दूसरे से परिचित होते हैं। पर परिचय का यही एक प्रकार तो नहीं। कोई तीसरा व्यक्ति परिचय कराये यह न सदा आवश्यक होता है और न सम्भव ही। मौन अपने प्रयत्न से अथवा अचानक भी एक दूसरे से परिचय प्राप्त कर लेते हैं। पात्रों के प्रथम परिचय को स्वामाधिक और कृत्रिमोद्दीपक बनाने के लिए उपग्याप्तों में परिचय के अनेक प्रकारों का प्रयोग किया जाता है। प्रेमचन्द ने भी 'प्रतिष्ठा' २५ में पूर्ण से, 'गहन' में बेबीहीन २६ इत्यादि से प्रथम परिचय कराते समय औत्सुक्यबद्धक रीतियों का प्रयोग किया है। पर अन्य रीतियों को उन्होंने छुपा धर है। पात्रों का प्रथम परिचय कराने की उनकी प्रमुख रीती औपचारिक ही रही है जिसका प्रयोग प्रायः किसी समा के मंच पर से किसी को अज्ञातमि अर्पित करते हुए या किसी भाषण से पूर्व उसका परिचय कराते समय या किन्हीं दो अपरिचित व्यक्तियों का आपस में परिचय कराते समय

२४ प्रेमचन्द 'कुछ दिवस' पृष्ठ ४८।

२५. प्रेमचन्द, 'प्रतिष्ठा', पृष्ठ १५।

२६ प्रेमचन्द, 'गहन' पृष्ठ १२६।

या एक व्यक्ति से अनेक का अथवा अनेक व्यक्तियों से एक का परिचय कराते समय किया जाता है ।

औपचारिक परिचय

प्रेमचन्द अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में पात्रों का परिचय कराते समय मापण घंटी से काम लेते हुए प्रतीत होते हैं। मानो लेखक अपने पात्र के प्रति अज्ञातबलि अर्पित करता हुआ मंच पर से बोल रहा हो। 'बरदान' के मायक प्रताप के पिता मुन्नी खानिग्राम का परिचय इसी प्रकार का है 'यद्यपि प्रकट में वे सामान्य संसारी मनुष्यों की भाँति संसार के क्लेशों से क्लेशित और दुखों से हरित वृष्टिगोचर होते थे तथापि उनका मन सर्वदा उस महान् और आनन्दपूर्ण धान्ति का सुख भोग करता था जिस पर दुःख के झोंकों और दुःख की अपक्रियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है'^{१०}। प्रसिद्धा के मायक अमृतदास का प्रथम बार आधिकारिक परिचय कराते हुए प्रेमचन्द कहते हैं 'अमृतदास छिदान्तवादी आदमी थे—घड़े ही संयमशील, कोई काम नियम बिखड़ न कट्ये। जीवन का सम्भव कैते हो इसका उन्हें सबैध ध्यान रहता था। पुन के पक्के आदमी थे। एक बार कोई निश्चय करके उसे पूरा किये बिना न छोड़ते'^{११}।

कई बार प्रेमचन्द एक ही वैयाकरण में तथा अपनी औपचारिक घंटी में एक साथ बार-बार पात्रों का परिचय करा देते हैं। मानो वे पात्र पंक्ति बाँधे खड़े हों और लेखक एक-एक करके पाठक से उनका परिचय करा रहा हो ठीक वही प्रकार जैसे किसी 'टीम' के खिलाड़ी पंक्तिबद्ध खड़े हों और कैप्टन एक-एक करके उनका परिचय किसी नेता से करा रहा हो। 'रंगभूमि' में लेखक समूचे सेवक परिवार का परिचय एक ही वैयाकरण में करा देता है 'जौन सेवक सुहरे बदन के पोरे चिट्टे आदमी थे आकृति से ठाकर और आत्म-निश्वास फलकता था'। 'मिसेब सेवक के चेहरे पर झुरियाँ पड़ गई थी और उससे हृदय की संकीर्णता टपकती थी' प्रभु सेवक की गर्तें भीय रही थी। धरेरा बीस दकहण बदन केहरे पर गम्भीरता और बिचार का गहरा रंग तजर जाता था'। 'जिस सोयिया बड़ी बड़ी रसीली आँखों वाली मज्जाशील स्त्री थी'। 'रूप धति धौम्य भागो मज्जा और बिनय मूर्तिमान हो गए हैं'^{१२}। 'कायाकल्प' में राजा विद्यालक्षि की रानियों का परिचय भी इसी प्रकार कराया गया है^{१३}।

१०. प्रेमचन्द, 'बरदान' पृष्ठ ९।

११. प्रेमचन्द, 'प्रसिद्धा' पृष्ठ ९।

१२. प्रेमचन्द, 'रंगभूमि', पृष्ठ ३।

१३. प्रेमचन्द, 'कायाकल्प', पृष्ठ २६।

ऐसे स्पर्शों पर प्रतीत होता है कि एक साध कई पात्रों का परिचय कराकर लेखक मानो देमार टाग रहा हो। पर एक साध इतने पात्रों को संभासना पाठक के लिए कठिन हो जाता है। कथानक तथा चरित्र के मापी विकास की इसी प्रकार से समझने के लिए उसे पात्र से प्रथम भेंट या परिचय तक को भी भ्रूषना नहीं होता और इस प्रकार के स्वयं उसके मस्तिष्क पर बोझ डालते हैं। इसके प्रतिरिक्त पात्रों को उनका परिचय कराने के लिए उपन्यास के रंगमंच पर से घाना और फिर काफी समय तक जब तक कि उपन्यास में उनकी जरूरत न पड़े उन्हें निश्चेष्ट पड़े रहने देना कहीं तक उचित होगा यह भी तो विचारणीय हो सकता है। उपन्यास में पात्रों का परिचय तब तक नहीं कराना चाहिए जब तक कि उनके करने के लिए कोई आवश्यक काम न हो। आवश्यकता से पहले उनके वर्णन कराना भी उपन्यास में वैयक्तिक का कारण बन सकता है।

पलपातपूर्ण प्रथम परिचय

पात्रों के सम्बन्ध में प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी धारणाएँ बनी होती हैं। किसी पात्र से उसे अनुपम होता है और किसी से विराय। कोई उसकी सहानुभूति पा लेता है और कोई उसकी बूणा का पात्र बन जाता है, पर प्रथम परिचय में ही उसके प्रति अपनी सहानुभूति या बूणा को व्यक्त करके पाठकों पर अपने पूर्वाग्रह को साबना और उसे अपने अनुभव की सत्यता पर विश्वास करने के लिए बाध्य करना कहीं तक उचित होगा? अपनी ओर से तमक मिर्च समाय बिना पात्र को उसकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं द्वारा धीरे-धीरे पाठकों पर प्रकट होने देना क्या अधिक उचित न होगा? ११

प्रेमचन्द की यह विशेषता रही है कि उनके पात्रों के प्रथम परिचय में ही उनके प्रति लेखक के पूर्वाग्रह व्यक्त हो उठते हैं। प्रेमचन्द में गिरधर अपराधी का परिचय कराते समय यह स्पष्ट रूप से उसके प्रति अपनी बूणा व्यक्त कर देते हैं "गिरधर महाराज धाते हुए दिखाई दिए। लम्बा डील का घरा हुआ बदन लगी हुई छाती" यह महाशय जमींदार के अपराधी थे। यहाँ तक तो ठीक है पर उनकी किसी क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण किए बिना यह उसकी चरित्रिक विशेषता का वर्णन करने लग जाते हैं "जबान से सबके दोस्त बिल से सबके दुश्मन थे। १२ जमींदार के सामने जमींदार की-सी कहते थे और धरमियों के सामने धरमियों की

११ Walter Allen, 'Writers on Writing' Phoenix House London p. 198 :

"A character is interesting as it comes out, and by the process and duration of that emergence just as a procession is effective by the way it unrolls, turning to a mere mob if all of its passes at once.

(Henry James in 'The Spoils of Poynton')

१२-प्रेमचन्द 'प्रेमचन्द', पृष्ठ १।

या एक व्यक्ति से अनेक का अपना अनेक व्यक्तियों से एक का परिचय कराते समय किया जाता है ।

औपचारिक परिचय

प्रेमचन्द अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में पात्रों का परिचय कराते समय मायख खैली से काम लेते हुए प्रतीत होते हैं। मानो लेखक अपने पात्र के प्रति अज्ञानलि धाँपित कण्ठा हुआ मन पर से बोल रहा हो। 'बरदान' के नायक प्रताप के पिता मुन्नी खालिदास का परिचय इसी प्रकार का है 'यद्यपि प्रकट में वे सामान्य ससारी मनुष्यों की भाँति संसार के क्लेशों से क्लेशित और सुखों से हर्षित दृष्टिगोचर होते थे तथापि उनका मन सर्वदा उस महान् और आनन्दपूर्ण धान्ति का सुख भोग करता था जिस पर दुःख के झोंकों और सुख की अपक्षियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है'^{१०}। प्रताप के नायक अमृतराय का प्रथम बार औपचारिक परिचय कराते हुए प्रेमचन्द कहते हैं 'अमृतराय सिद्धान्तवादी आदमी थे—बड़े ही संयमशील, कोई काम नियम बिखर न करते। जीवन का उद्देश्य कैसा हो इसका उन्हें सर्वत्र ध्यान रहता था। पुन के पक्के आदमी थे। एक बार कोई निश्चय करके उसे पुरा किये बिना न छोड़ते'^{११}।

कई बार प्रेमचन्द एक ही पैराग्राफ में तथा अपनी औपचारिक शैली में एक साथ चार-पाँच पात्रों का परिचय करा देते हैं, मानो वे पात्र वस्तु बाँधे बड़े हों और लेखक एक-एक करके पाठक से उनका परिचय करा रहा हो ठीक उसी प्रकार जैसे किसी 'टीन' के खिलाड़ी वॉलबल खड़े हों और कंस्टेन एक-एक करके उनका परिचय किसी मैदा से करा रहा हो। 'रंगभूमि' में लेखक समूचे सेवक परिवार का परिचय एक ही पैराग्राफ में करा देता है 'जॉन सेवक बुढ़े बदन के बोरे बिट्टे आदमी थे आहुति से चकर और आत्म-विश्वास भ्रमणता था'। 'मिसेज सेवक के चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, और उससे हृदय की संकीर्णता टपकती थी' 'अमु सेवक की गर्तें जीव रही थीं। छुरेरा बीस इक्कड़ा बदन चेहरे पर मन्मीरता और विचार का गहरा रंग तबल जाता था'। 'मिस सोफिया बड़ी बड़ी रसीली आँखों वाली सज्जासीम स्त्री थी। रूप यति धीम्य मानो सज्जा और विनय मूर्तिमान् ही गए हों'^{१२}। 'आयाकल्प' में राजा विद्यानसिंह की रानियों का परिचय भी इसी प्रकार कराया गया है^{१३}।

१०. प्रेमचन्द, 'बरदान', पृष्ठ १।

११. प्रेमचन्द, 'प्रताप', पृष्ठ १।

१२. प्रेमचन्द, 'रंगभूमि', पृष्ठ १।

१३. प्रेमचन्द, 'आयाकल्प', पृष्ठ १६।

ऐसे स्वर्णों पर प्रतीत होता है कि एक राग कई पात्रों का परिचय कराकर भंडक मानो बैगार टास रहा हो। पर एक साज इतने पात्रों को संभासना पाठक के लिए कठिन हो जाता है। कथामय तथा चरित्र के भावी विकास को भली प्रकार से समझने के लिए उसे पात्र से प्रथम मेंट या परिचय तक को भी भूलना नहीं होता और इस प्रकार के स्वयं उसके मस्तिष्क पर बोझ डालते हैं। इसके पतिरिक्त पात्रों को उनका परिचय कराने के लिए उपन्यास के रंजमंच पर घाना और फिर काफी समय तक जब तक कि उपन्यास में उनकी जरूरत न पड़े उन्हें निरव्यक्त पड़े रहने देना कहीं तक उचित होगा यह भी तो विचारणीय हो सकता है। उपन्यास में पात्रों का परिचय तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि उनके करने के लिए कोई प्रासंगिक काम न हो। प्रासंगिकता से पहले उनके वर्णन करना भी उपन्यास में शैथिल्य का कारखाना बन सकता है।

पक्षपातपूर्ण प्रथम परिचय

पात्रों के सम्बन्ध में प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी पारणार्थ्य बनी होती है। किसी पात्र से उसे अनुपम होता है और किसी से विराग। कोई उसकी सहानुभूति पा लेता है और कोई उसकी बुराई का पात्र बन जाता है, पर प्रथम परिचय में ही उसके प्रति अपनी सहानुभूति या बुराई को व्यक्त करके पाठकों पर अपने पूर्वाग्रह को सावना और उसे अपने अनुभव की सत्यता पर विश्वास करने के लिए बाध्य करना कहीं तक उचित होगा? अपनी ओर से नमक मिर्च मगाए बिना पात्र को उसकी क्रियाओं प्रति क्रियाओं द्वारा धीरे-धीरे पाठकों पर प्रकट होने देना क्या अधिक उचित न होगा? ^{२१}

प्रेमचन्द की यह विवेचना रही है कि उनके पात्रों के प्रथम परिचय में ही उनके प्रति लेखक के पूर्वाग्रह व्यक्त हो उठते हैं। प्रेमचन्द में विरहचर अपराधी का परिचय करते समय वह स्पष्ट रूप से उसके प्रति अपनी बुराई व्यक्त कर देते हैं 'विरहचर महापाप घाते हुए दिखाई दिए। सत्ता बीस का मछ हुआ बदन तनी हुई छाती' यह महापाप जमींदार के अपराधी थे।' यहाँ तक तो ठीक है, पर उनकी किसी क्रिया-प्रतिक्रिया का विवरण किए बिना यह उसकी आतिथिक विवेचना का वर्णन करने सम बाते हैं 'जबान से सबके दोस्त दिल से सबके दुश्मन थे।' ^{२२} जमींदार के सामने जमींदार की-सी कहते थे और असाधियों के सामने असाधियों की

२१ Walter Allen, 'Writers on Writing' Phoenix House, London p 199 :

"A character is interesting as it comes out and by the process and duration of that emergence just as a procession is effective by the way it unravels, turning to a mere mob if it passes at once."

(Henry James in 'The Spoils of Poynton')

२२ प्रेमचन्द 'प्रेमचन्द' पृष्ठ १।

सी।^{११} इसी प्रकार, प्रतिष्ठा के मायक धर्मूतराय के प्रथम चरित्रिक परिवर्ण में ही उनके प्रति लेखक की अन्धा व्यापक हो जाती है। 'धर्मूतराय सिद्धान्तवादी पादरी से बड़े ही संयमशील ?' बुन के पक्के दावामी थे।^{१२} धर्मूतराय बुन का पक्का था या कच्चा यह तो उपन्यास पढ़ चुकने पर ही पता चलता पर लेखक पहले से ही आग्रह करने लग जाते हैं कि उसे बुन का पक्का मान लिया जाए।

परस्पर विरोधी वर्णन

पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित और अंतिम रूप में कह देने से उनके भावी विकास के प्रति पाठकों की उत्सुकता तो मंद पड़ ही जाती है। इसके प्रतिरुद्ध यह भी हो सकता है कि यदि पात्र का विकास उपन्यास की भविष्य-वाणी के अनुसार न हुआ तो लेखक को अपनी भूल बरतनी पड़ जाए और पात्र के विकास में पूर्वापर सम्बन्ध बिचल हो जाए। "रत्नसुमि" में राजा महेन्द्र कुमार का परिचय करते समय प्रेमचन्द ने उसके प्रति अपनी यह चारणा बड़े जोर-शोर शब्दों में प्रकट की थी कि "रत्नों की विद्या-सोनुपता और सम्मान-प्रेम का उनके स्वभाव में लेख भी न था।"^{१३} पर यह पात्र मुहजोर निकला और उसका विकास लेखक की इस चारणा के अनुसार न हो पाया। बाद में लेखक को विनम्र होकर मानना पड़ा कि "उनमें यदि कोई कमजोरी थी तो यह कि वह सम्मान-सोनुप मनुष्य से और ऐसे अन्य मनुष्यों की जीति बड़-बहुता सीधित्व की दृष्टि से नहीं व्याप्ति-नाम की दृष्टि से अपने आचरण का निरचय करते थे।"^{१४}

प्रथम परिचय बर्णन में व्यक्ति-रूप में नहीं

प्रेमचन्द की सहायुक्ति अथवा ब्रूछा समूची बात अथवा वर्ण के प्रति रही है। वे किसी व्यक्ति की उसके जातीय व वर्गीय गुणानुसृष्टों का अपवाद नहीं मानते थे। समाज या वर्ण से अलग व्यक्ति की सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे। 'रत्नसुमि' के सुरदास का वर्णन में परिचय उनकी इस प्रवृत्ति की पराकाष्ठा है। "उन्हीं में एक मरीब और अन्धा बमार पड़ता है, जिसे लोग सुरदास कहते हैं। भारत में अन्धे आश्रमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है न काम की। सुरदास उनका बना बनाया नाम ॥ और भीक माँगना बना-बनाया काम। उनके गुस्से और स्वभाव अपरु प्रसिद्ध हैं—पाने बजाने में विशेष रुचि हृदय में बिसेप अनुग्रह, अध्यात्म और भक्ति

११ प्रेमचन्द, 'रत्नसुमि' पृष्ठ १७-१८ पर राजा समरपाल का प्रथम परिचय भी इसी प्रकार का है।

१२ प्रेमचन्द, 'प्रतिष्ठा' पृष्ठ ६।

१३ प्रेमचन्द, 'रत्नसुमि', पृष्ठ ७३।

१४ वही, पृष्ठ १७८।

में विषेय प्रेम उनके स्वाभाविक सस्रण हैं। बाह्य दृष्टि बन घोर अन्तर्दृष्टि सुखी हुई।^{१०} सूरदास को बलपूर्वक अपने मित्रमार्गों के जग में धसीटकर प्रेमचन्द ने उसके प्रति धन्याय किया है। कहना न होया कि सूरदास साधारण मित्रमार्गों से बहुत ऊँचे एक मिहारी संत के रूप में विकसित होता है। वह मिहारी होते हुए भी अपने वर्ग का अपवाप ठहरता है।

प्रभावोत्पादक प्रथम परिचय

वहाँ-वहाँ प्रेमचन्द ने अपनी घोर से नयक-मित्र लगाये बिना टटस्थ रहकर सहज स्वाभाविक ढंग से पात्रों का प्रवेश कराके उन्हें अपने धाप पाठकों पर कुलने दिया है वहाँ प्रथम परिचय प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। उनके चपस्याओं में ऐसे स्वर्णों की कमी नहीं। प्रतिष्ठा में पूर्ण का प्रथम परिचय बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। इतने में एक युवती ने जीवन में कदम रखा मगर कमलाप्रसाद को देखते ही द्योढ़ी में ठिठक गई। बैचकी ने कमला से कहा—‘तुम जरा कमरे में जले जाओ पूर्ण द्योढ़ी में लड़ी है।’^{११} इस प्रकार कमलाप्रसाद को घोर पाठक को भी पूर्ण के प्रथम दर्शन होते हैं। यहाँ लेखक ने बिच कुशलता से उसका नाम बताया है और उसकी सज्जासीसता की घोर संकेत किया है, बड़ा स्वाभाविक और रोचक रहा है। इसके पश्चात् लेखक उसके आकार-प्रकार का संक्षिप्त वर्णन करता है और चरित्र की एक-आध विशेषता बताता है जो उसकी प्रथम प्रतिक्रिया में ही व्यक्त हो गई होती है। ‘पूर्ण को देखते ही प्रेमा लीककर उसके बसे लिपट गई। पक्षीस में एक पंखित वसन्त कुमार रहते थे। किसी बफ्तर में फसक के। पूर्ण उन्हीं की स्त्री भी बहुत ही सुन्दर, बहुत ही सुधीम।’^{१२}

प्रेमाभ्रम में मनोहर के पुत्र बसराम का प्रथम परिचय भी बड़ा सजीव रहा है। लेखक के कुछ कहे बिना ही पाठक उसके चरित्र के बारे में बहुत कुछ प्रथम मेट में ही समझ जाया है। ‘इतने में मनोहर का पुत्र बसराम कोठरी में जाकर लड़ा हो गया। उसका घरीर बड़ा पठीला हृष्ट-मुष्ट था मनोहर और गिरधर महाराज में हुई बातों की खबर उसे लग गई थी। बोला किसी का दिया जाते हैं या किसी के घर मौजने जाते हैं? अपना तो एक पैसा नहीं छोड़ते तो हम क्यों भीँस सहे? न हुआ मैं नहीं तो दिया देता गिरधर महाराज को। तुमने अच्छा जबाब दिया बाबा। सारा मौज भी दे न दे हम तो भी न बँधे।’^{१३} यहाँ लेखक ने अपनी घोर से पात्र की केवल आकृति और वैचमूपा का चित्रण किया है और

१०. प्रेमचन्द, ‘रामूँमि’ पृष्ठ ५।

११. प्रेमचन्द, ‘प्रतिष्ठा’, पृष्ठ १५।

१२. वही, पृष्ठ १५।

१३. प्रेमचन्द, ‘मेमनम’ पृष्ठ ११।

उसकी आतिथिक विशेषताओं के बारे में स्वयं कुछ न कहकर भी वासी घटना के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन कर दिया है जिसमें पात्र का स्वभाव प्रतिबिम्बित हो उठता है। हमारे सामने यह निर्भीक तथा सोपण के प्रति आश्चर्य, मधुपर्क किशन के रूप में साकार हो जाता है।

'गहन' में बेबीरीन का प्रथम परिचय श्रीर भी सजीव रहा है। घर से सामान्य रेसगाड़ी में बिना टिकट के यात्रा करने पर समाज पर पड़ा गया श्रीर सोचने लगा 'यात्री से कुछ पड़ूँ' तो सहसा एक बूढ़े आदमी ने जो उसके पास ही बैठा था, पूछा—'कलकत्ते में कहाँ बाधोये बाबूजी? रमा ने समझा यह पैसेदार मुझे बना रहा है भूँससाकर बोला—'तुमसे मतलब मैं कहीं बाऊँया। बूढ़े ने इस जेपेसा पर उनिक भी ध्यान न दिया बोला—'ये भी वहीं जसु या। हुमाय-गुम्हाय साथ हो जायेगा। फिर पीरे से बोला—'किराए के रूप मुझसे ले लो, यहाँ से देना। जब रमा ने उसकी ओर ध्यान से देखा 'कोई १०-७०' साथ का बुढ़ा मुसा हुमा आदमी था। माँस तो क्या हड्डियाँ तक गस गयी थीं। सिर के बाल मुड़े हुए थे।^{४१} यहाँ एक विशेष परिस्थिति में बेबीरीन से प्रथम भेंट होती है। उसकी प्राकृति श्रीर वैद्यभूषा के अतिरिक्त दोष सब कुछ धमी रहस्य ही है पर उसके व्यवहार में उसकी प्रकृति स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठी है। सेबक अपनी ओर से कहकर केवल बटना का वचन करता प्रतीत होता है इसी में पात्र बेबीरीन को उठा गता का परिचय मिल जाता है और उसके बारे में श्रीर जानकारी प्राप्त करने की पाठक के मन में उत्सुकता जागृत हो जाती है।

समतात्मक संसर्ग

प्रथम भेंट में ही किसी व्यक्ति के बारे में सब कुछ नहीं जाना जा सकता।^{४२} सब कुछ जान पाना तो दूर, जो कुछ बोझी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है, उस पर भी पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता।^{४३} प्रथम परिचय में समय एक तो अतिरिक्त सम्बन्धी सभी विशेषताओं को प्रकट होने का अवसर ही नहीं मिलता और जिन कुछ एक को प्रकट होने का अवसर मिलता है वे भी अनेक कारणों से दबी पड़ी रहती हैं या अधूरी ही व्यक्त हो पाती है। दूसरे, कई बार प्रथम भेंट के समय व्यक्ति स्वयं भी किसी विशेष प्रयोजन से अपने नैसर्गिक आचरण को छिपाकर

^{४१} प्रेसबर् 'गहन', पृष्ठ १३३।

^{४२} Allport, 'Personality: A Psychological Interpretation' p. 300।

"In the brief period of first meeting, there is little chance for the judge to ascertain which traits are central and which are incidental in the personality. Some features are hidden entirely especially those that are social."

^{४३} Murphy, 'General Psychology' Harper New York, p. 474.

हृदय सिष्टाचार में सदा रहता है। इसलिए प्रथम में हमारे हृदय पर जो छाप छोड़ पाती है उसकी सत्यता को परखने की आवश्यकता बनी रहती है और उसके लिए जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति की सार्वरिक बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययन करना होता है।^{४४}

प्रेमचन्द अपने पात्रों का प्रथम परिचय देकर निश्चित नहीं हो पाते प्रत्युत उन्हें अनेक स्थितियों में डालकर उनकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं, भाव प्रीति-मोक्ष माद काग मुह, सिर हाथ पाँव इत्यादि की विभिन्न मुद्राओं तथा उनके चलने-फिरने उठने-बैठने, हँसने-रोसने जाने-आने की निजी विविधताओं के इतने सजीव सत्य-चित्र उपस्थित करते हैं कि पात्र पाठकों की कल्पनाओं में साकार होकर नाच उठता है।^{४५}

स्थित्यक्रम

स्थितिचित्रण में प्रेमचन्द बड़े सिद्धहस्त हैं। पात्र दिखाई भी नहीं देता कि वह उस स्थिति का चित्रण करने लगे जाते हैं जिसमें उसे आसना होता है। बाटा बरण का निर्माण करते हुए वह पात्र के परिवेश का चित्रण इतनी सूक्ष्मता से करते हैं कि छोटी से छोटी बात पर भी उनका ध्यान गये बिना नहीं रहता। "प्रेमाश्रम" में वह प्रेमचंदर की पत्नी अम्मा की ऐसी स्थिति में आस देते हैं कि वह पति तथा बर्मपण्यणवा दोनों में से एक को अपना लेने के लिए बाध्य हो जाती है और पति की अपेक्षा बर्म को प्राथमिकता देती है, बर्म के प्रति अपने संघर्षबाध के कारण।^{४६} विरह से सौटकर प्रेमचंदर की अम्मा से प्रथम सेंट पृष्ठ १२६ पर होती है, पर उससे चार पृष्ठ पहले से प्रेमचन्द इस परिस्थिति के लिए मुमिका बाँधने सम जाते हैं 'अम्मा वहाँ स्वागत करने के लिए न थी। प्रेमचंदर को उसकी इस प्रेम शून्यता पर बड़ा दुःख हुआ। अम्मा से प्रेम उनके सौटने का मुख्य कारण था। उसकी माद उन्हें ठगपाया करती थी।^{४७} प्रेमचंदर मूल ध्ये से कि समुद्र में जाते ही हिन्दू बर्म पुन बाटा हैं'^{४८} अगले पन्ने पर स्थिति को स्पष्ट और बन्धीर बताते हुए वह लिखते हैं वह (अम्मा) अपने प्राणों से अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ जो सफटी

४४ Ross Stagner 'Psychology of Personality' McGraw Hill, New York, 1948, p. 23.

४५ Hudson, 'An Introduction to the Study of Literature' p. 144.

"Whatever is individual and characteristic in their physical aspect in general, whatever is of importance in their expression or demeanour at any critical moment, must be so indicated as to stand out clearly in the reader's mind."

४६ प्रेमचन्द, 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १२६।

४७ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १२७।

४८ वही, पृष्ठ १२८।

या एक व्यक्ति से अनेक का अथवा अनेक व्यक्तियों से एक का परिचय कराते समय किया जाता है ।

औपचारिक परिचय

प्रेमचन्द अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में पात्रों का परिचय कराते समय मापण सीसी से काम लेते हुए प्रतीत होते हैं, मानो वे सब अपने पात्र के प्रति अज्ञातचित्त भ्रमित करता हुआ मन पर से बोस रहा हो । 'बरदान' के नायक प्रताप के पिता मुन्नी दामिनीराम का परिचय इसी प्रकार का है 'अद्यपि प्रकट में वे सामान्य संसारी मनुष्यों की पीठि संसार के जसेकों से जसेचित्त और सुखों से हर्षित बुद्धिगोचर होते थे तथापि उनका मन सर्वदा उस महान् और धामन्धपूर्ण दान्ति का सुख भोग करता था जिस पर बुद्ध के भीकों और सुख की अपक्रियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है'^{१०} । प्रतिका के नायक अमृतदास का प्रथम बार चरित्रिक परिचय कराते हुए प्रेमचन्द कहते हैं 'अमृतदास सिद्धान्तवादी धारमी थे—बड़े ही समयशील, कोई काम निग्रय बिस्व न करते । जीवन का सद्ब्यय कैसे हो इसका उन्हें सबीन ध्यान रहता था । बुत के पक्के धारमी थे । एक बार कोई निश्चय करके उसे पूरा किये बिना न छोड़ते'^{११} ।

कई बार प्रेमचन्द एक ही पैराग्राफ में तथा अपनी औपचारिक सीसी में एक साथ बार-बार पात्रों का परिचय करा देते हैं मानो वे पात्र वंक्ति बांधे लड़े हों और लेखक एक-एक करके पाठक से उनका परिचय करा रहा हो ठीक उसी प्रकार जैसे किसी 'टीम' के खिलाड़ी पंक्तिबद्ध लड़े हों और कैप्टन एक-एक करके उनका परिचय किसी नेता से करा रहा हो । 'रंगभूमि' में सेवक समूचे सेवक परिवार का परिचय एक ही पैराग्राफ में करा होता है 'जौन सेवक बुहरे बदन के पोरे चिट्टे धारमी थे प्राहुति से शरर और धारम-विश्वास मस्तकता था' । 'निसेज सेवक के बेहरे पर झुरिया पड़ गई थी और उससे हृदय की संकीर्णता टपकती थी' प्रभु सेवक की मर्ते भीग रही थी । छूरेय बीन, हकहूय बदन, बेहरे पर मग्गीरता और विचार का गहूरा रंग मजर धाता था' । 'मिण सीफिया बड़ी बड़ी रसीसी भाँसों वाली मज्जाशील स्त्री थी । रूप घति सीम्य मानो राज्या और विनय मूर्तिमान हो गए हों'^{१२} । 'कामाकल्प' में राजा विश्वामहिह की रात्रियों का परिचय भी इसी प्रकार बताया गया है^{१३} ।

१०. प्रेमचन्द 'बरदान' पृष्ठ १ ।

११. प्रेमचन्द 'प्रतिका' पृष्ठ १ ।

१२. प्रेमचन्द 'रंगभूमि', पृष्ठ १ ।

१३. प्रेमचन्द 'कामाकल्प' पृष्ठ १६ ।

ऐसे स्मरणों पर प्रतीत होता है कि एक राग कई पात्रों का परिचय कराकर लेखक मानो बेगार टास रहा हो। पर एक राग इतने पात्रों को संभालना पाठकों के लिए कठिन हो जाता है। कथानक तथा चरित्र के आधी विकास को यही प्रकार से समझने के लिए इसे पात्र से प्रथम मेट या परिचय तक को भी भुलना नहीं होता और इस प्रकार के स्थान उसके मस्तिष्क पर धोर डालते हैं। इसके अतिरिक्त पात्रों को उनका परिचय कराने के लिए उपन्यास के रचना पर से घाना और फिर काफ़ी समय तक जब तक कि उपन्यास में उनकी बरकरार न पड़े उन्हें निश्चेष्ट पड़े रहने देना कहीं तक उचित होगा यह भी तो विचारणीय हो सकता है। उपन्यास में पात्रों का परिचय जब तक नहीं कराया चाहिए जब तक कि उनके करने के लिए कोई प्राबल्य काम न हो। आवश्यकता से पहले उनके वर्णन करना भी उपन्यास में वैधर्म्य का कारण बन सकता है।

पलपातपूर्व प्रथम परिचय

पात्रों के सम्बन्ध में प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी धारणाएँ बनी होती हैं। किसी पात्र से उसे अनुराग होता है और किसी से विरह। कोई उसकी सहानुभूति पा सकता है और कोई उसकी बुराई का पात्र बन जाता है, पर प्रथम परिचय में ही उसके प्रति अपनी सहानुभूति या बुराई को व्यक्त करके पाठकों पर अपने पूर्वाग्रह को लागूना और उसे अपने अनुभव की सत्यता पर विश्वास करने के लिए बाध्य करना कहीं तक उचित होगा? अपनी धोर से नमक मिर्च चमाए बिना पात्र को उसकी क्रियाओं प्रति क्रियाओं द्वारा धीरे-धीरे पाठकों पर प्रकट होने देना क्या अधिक उचित न होगा? २१

प्रेमचन्द की यह विशेषता रही है कि उनके पात्रों के प्रथम परिचय में ही उनके प्रति लेखक के पूर्वाग्रह व्यक्त हो उठते हैं। प्रेमचन्द में गिरधर अपराधी का परिचय कराते समय यह स्पष्ट रूप से उसके प्रति अपनी घृणा व्यक्त कर देते हैं "गिरधर महापात्र आते हुए दिखाई दिए। सम्राट् जीस का भय हुआ बदन लनी ॥ घाटी यह महाशय जमींदार के अपराधी थे।" यहाँ तक तो ठीक है, पर उनकी किसी क्रिया प्रतिक्रिया का चित्रण किए बिना यह उसकी आतिथिक विशेषता का वर्णन करने भग्न जाते हैं "जबान से उसके दोस्त विस से उसके दुश्मन थे।" २२ जमींदार के सामने जमींदार की-सी कहते थे और असाधियों के सामने असाधियों की

२१ Walter Allen, "Writers on Writing" Phoenix House London p 109:

"A character is interesting as it comes out, and by the process and duration of that emergence just as a procession is effective by the way it unrolls, turning to a mere mob if all of it passes at once."

(Henry James in "The Spoils of Poynton")

सी।^{२३} इसी प्रकार, प्रतिज्ञा के मायक धर्मुराय के प्रथम बारिभिक परिचय में ही उनके प्रति सेलक की भड्डा ब्यक्त हो जाती है 'धर्मुराय छिडान्तवादी भावमी ने बड़े ही संयमधीन ? पुन के पक्के छावमी है।'^{२४} धर्मुराय पुन का पक्का या या कच्चा यह तो उपन्यास पढ़ चुकने पर ही पता चसता, पर सेलक पहले से ही भापड़ करने लग जाता है कि उसे पुन का पक्का मान लिया जाए।

परस्पर विरोधी वर्णन

पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित और धर्मित रूप में कह देने से उनके भावी विकास के प्रति पाठकों की उत्सुकता तो मंद पड़ ही जाती है इसके प्रतिरिक्त यह भी हो सकता है कि यदि पात्र का विकास उपन्यास की भविष्य-वाणी के अनुसार न हुआ तो सेलक को अपनी मूल बारणा बदलनी पड़ जाए और पात्र के विकास में पूर्वापर सम्बन्ध सिधिम हो जाए। 'रंगमूमि' में राजा महेन्द्र कुमार का परिचय कराते समय प्रेमचन्द ने उसके प्रति अपनी यह बारणा बड़े जोर बार सव्यों में प्रकट की थी कि "रईसों की विलास-सोनुपता और सम्मान-प्रेम का उनके स्वभाव में सिध भी न था।"^{२५} पर यह पात्र मुहबोर निकला और उसका विकास सेलक की इस बारणा के अनुसार न ही पाया। बार में सेलक को बिच होकर मानना पड़ा कि 'उनमें यदि कोई कमजोरी थी तो यह कि वह सम्मान-सोनुप मनुष्य थे और ऐसे शय्य मनुष्यों की भांति वह बहुधा धीचिय की दृष्टि से नहीं स्वाति-साम की दृष्टि से अपने आचरण का निश्चय करते हैं।'^{२६}

प्रथम परिचय वर्णकप में व्यक्तित्व-रूप में नहीं

प्रेमचन्द की सहायुभूति अपनी वृणा समूची आति अपनी बर्ष के प्रति रही है। वे किसी व्यक्ति को उसके आतीय व बर्षीय गुणावयुषों का अपवाद नहीं मानते वे समाज या बर्ष से अलग व्यक्ति की तता को स्वीकार नहीं करते थे। 'रंगमूमि' के सूरदास का बर्षकप में परिचय उनकी इस प्रवृत्ति की परकाष्ठा है "उन्हीं में एक मरीब और धन्धा बमार रहता है जिसे लोग सूरदास कहते हैं। भारत में अन्ने आर्षादियों के लिए न नाम की बकरत होती है न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीछ मयिना बना-बनाया काम। उनके गुण और स्वभाव अक्ष प्रसिद्ध हैं—गाने बजाने में विशेष रुचि हृदय में विरोध अनुराप, धम्माराय और भक्ति

२३ प्रेमचन्द 'रंगमूमि' इउ १४-१५ पर राजा समरनाथ का प्रथम परिचय की इसी प्रकट का है।

२४ प्रेमचन्द, 'प्रतिज्ञा' इउ ६।

२५ प्रेमचन्द, 'रंगमूमि' इउ ७१।

२६ वही, इउ १०५।

में विरोध प्रेम उनके स्वाभाविक सहाय है। बाह्य दृष्टि बन्द और अन्तर्दृष्टि खुली हुई।^{१०} सूरदास को बसपूर्वक अपने भक्तमर्मों के बग में बसीटकर प्रेमबन्ध में उसके प्रति आश्रय किया है। कहना न होवा कि सूरदास साधारण भक्तमर्मों से बहुत ऊँचे एक भिखारी संत के रूप में विकसित होता है। वह भिखारी होते हुए भी अपने वर्ग का प्रभाव डहरता है।

प्रभावोत्पादक प्रथम परिचय

यहाँ-वहाँ प्रेमबन्ध में अपनी ओर से नमक-मिर्च लगाये बिना तटस्थ रहकर सहज स्वाभाविक ढंग से पात्रों का प्रवेश कराके उन्हें अपने पाप पाठकों पर कुलने दिया है यहाँ प्रथम परिचय प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। उनके उपमाओं में ऐसे स्वर्णों की कमी नहीं। प्रतिज्ञा में पूर्ण का प्रथम परिचय बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। इतने में एक युवती ने जीवन में कबल रखा अगर कमलाप्रसाद को देखते ही इयोदी में ठिठक गई, बैचकी ने कमला से कहा—'तुम बुरा कमरे में बसे जाओ, पूर्ण इयोदी में लड़ी है।'^{११} इस प्रकार, कमलाप्रसाद को भीर पाठक को भी पूर्ण के प्रथम वर्णन होते हैं। यहाँ सेवक ने जिस कुसुमता से उसका नाम बताया है भीर उसकी लज्जाशीलता की ओर संकेत किया है, बड़ा स्वाभाविक और रोचक रहा है। इसके पदवाच सेवक उसके आकार प्रकार का संक्षिप्त वर्णन करता है और चरित्र की एक-आध विशेषता बताता है जो उसकी प्रथम प्रतिक्रिया में ही व्यक्त हो गई होती है। 'पूर्ण को देखते ही प्रेमा लीड़कर उसके पसे लिपट गई। पड़ीस में एक पण्डित बसन्त कुमार रहते थे। किसी कपटार में बसकें थे। पूर्ण पत्नी की स्त्री भी बहुत ही सुन्दर, बहुत ही सुशील।'^{१२}

प्रेमाश्रम में मनोहर के पुत्र बलराज का प्रथम परिचय भी बड़ा समीप रहा है। सेवक के कुछ कहे बिना ही पाठक उसके चरित्र के बारे में बहुत कुछ प्रथम भेंट में ही समझ जाता है। 'इतने में मनोहर का पुत्र बलराज कोठरी में जाकर खड़ा हो गया। उसका शरीर बड़ा गठीला हूँट-मुँट का मनोहर और गिरधर महाराज में हुई बातों की जबर ससे लम गई थी। बोला 'किसी का दिया चाते हैं या किसी के घर भाँयने चाते हैं ? अपना तो एक पैसा नहीं छोड़ते तो हम नवों भाँस सहे ? न हुआ मैं नहीं तो बिखा बैठा गिरधर महाराज को। तुमने धन्यदा बचाव दिया बाबा। सारा गाँव भी दे, न दे हम तो भी न देंगे।' यहाँ सेवक ने अपनी ओर से पात्र की केवल आकृति और वेशभूषा का चित्रण किया है और

१०. प्रेमबन्ध, 'रंगभूमि' पृष्ठ ४।

११. प्रेमबन्ध 'प्रतिज्ञा' पृष्ठ ११।

१२. वही, पृष्ठ ११।

१३. प्रेमबन्ध, 'प्रेमकर्म' पृष्ठ ११।

सी।^{१३} इसी प्रकार प्रतिज्ञा के नायक धर्मतराय के प्रथम चारित्रिक परिवर्तन में ही उनके प्रति भेलक की थड्डा ब्यक्त हो जाती है। धर्मतराय सिद्धांतवादी धादमी के बड़े ही संयमशील ? दुन के पक्के धादमी के।^{१४} धर्मतराय दुन का पक्का या या कच्चा यह तो उपन्यास पढ़ चुकने पर ही पता चलता, पर भेलक पहले से ही आग्रह करने लग जाता है कि उसे दुन का पक्का मान लिया जाए।

परस्पर विरोधी धर्म

पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित और अंतिम रूप में कह देने से उनके भावी विकास के प्रति पाठकों की उत्सुकता तो मर पड़ जाती है। इससे अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि यदि पात्र का विकास उपन्यास की भविष्य-वाणी के अनुसार न हुआ तो भेलक को अपनी मूल धारणा बदलनी पड़ जाए और पात्र के विकास में पूर्वापर सम्बन्ध विधिल हो जाए। "रंमधूमि" में राजा महेश्वर कुमार का परिचय कराते समय प्रेमचन्द ने उसके प्रति अपनी यह धारणा बड़े खोल धार धर्मों में प्रकट की थी कि "रईसों की विज्ञान-सोभुषता और सम्मान-प्रेम का उनके स्वभाव में लेह भी न था।"^{१५} पर यह पात्र मुहंजोर निकला और उसका विकास भेलक की इस धारणा के अनुसार न हो पाया। बाद में भेलक को विदय होकर मानना पड़ा कि "उनमें यदि कोई कमजोरी थी तो यह कि वह सम्मान-सोभुष मनुष्य के और ऐसे धर्म मनुष्यों की भांति वह बहुधा औचित्य की दृष्टि से नहीं स्वादि-मान की दृष्टि से अपने आचरण का निश्चय करते थे।"^{१६}

प्रथम परिचय वर्गक में व्यक्ति-रूप में नहीं

प्रेमचन्द की सहानुभूति धर्मवा पुण्य समुची भांति धर्मवा वर्ग के प्रति रही है। वे किसी व्यक्ति को उसके जातीय न वर्गीय गुणधर्मों का अपवाद नहीं मानते वे समाज या वर्ग से अलग व्यक्ति की लक्षा को स्वीकार नहीं करते थे। "रंमधूमि" के सूरदास का वर्णन में परिचय उनकी इस प्रवृत्ति की परकाष्ठा है। "उन्हीं में एक मरीच और धर्मवा जमार रहता है, जिसे लोग सूरदास कहते हैं। धारण में धर्म धादमियों के लिए न नाम की बरकरार होती है न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीस मँगना बना-बनाया काम। उनके गुण और स्वभाव जगत् प्रसिद्ध हैं—गाने बजाने में विशेष रुचि हृदय में विशेष अनुराग धर्म्यात्म और भक्ति

१३ प्रेमचन्द, कर्मधूमि, बृत्त १४-१५ पर लाल्य समरकान्त का प्रथम चरित्र भी इसी प्रकार था है।

१४ प्रेमचन्द, "प्रतिज्ञा" बृत्त ६।

१५ प्रेमचन्द, रंमधूमि, बृत्त ७३।

१६ वही, बृत्त १७८।

कृत्रिम धिष्टाचार में लगा रहता है। इसलिये प्रथम श्रेष्ठ हमारे हृदय पर जो छाप छोड़ जाती है उसकी सत्यता को परखने की आवश्यकता बनी रहती है और उसके लिए जीवन की विविध परिस्थितियों में व्यक्ति की पारस्परिक बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययन करना होता है।^{४४}

प्रेमचन्द अपने पात्रों का प्रथम परिचय देकर निश्चिन्त नहीं हो जाते प्रत्युत उन्हें अनेक स्थितियों में डालकर उनकी क्षमाओं प्रतिक्रियाओं, माद-अभिरुचि-प्राद-भाद काग मुंह सिर, हाथ पाँव इत्यादि की विविध मुद्राओं तथा उनके बमले-फिरने उठने-बैठने हँसने-खसने खाने-पहने की निजी विविधताओं के इतने सजीव शब्द-चित्र उपस्थित करते हैं कि पात्र पाठकों की कल्पनाओं में साकार होकर नाच उठता है।^{४५}

स्थिरात्मक

स्थितिचित्रण में प्रेमचन्द बड़े सिद्धहस्त हैं। पात्र दिखाई भी नहीं देता कि वह उस स्थिति का चित्रण करने लग जाते हैं जिसमें उसे डालना होता है। बाता बरण का निर्माण करते हुए वह पात्र के परिवेश का चित्रण इतनी सूक्ष्मता से करते हैं कि छोटी से छोटी बात पर भी उनका ध्यान गये बिना नहीं रहता। "प्रेमाश्रम" में वह प्रेमचंदर की पत्नी अम्मा को ऐसी स्थिति में डाल देते हैं कि वह पति तथा बर्मपरायणता दोनों में से एक को अपना देने के लिए बाध्य हो जाती है और पति की अपेक्षा बर्म को प्राथमिकता देती है। बर्म के प्रति अपने अंधविश्वास के कारण।^{४६} विवेक से लौटकर प्रेमचंदर की अम्मा से प्रथम श्रेष्ठ पृष्ठ १२६ पर होती है, पर सबसे चार पृष्ठ पहले से प्रेमचन्द इस परिस्थिति के लिए भूमिका बाँधने लग जाते हैं 'अम्मा वहाँ स्वागत करने के लिए न थी। प्रेमचंदर को उसकी इस प्रेम मूल्यता पर बड़ा दुःख हुआ। अम्मा से प्रेम उनके लौटने का मुख्य कारण था। उसकी माद उन्हें वढ़पाया करती थी।^{४७} प्रेमचंदर भूल गये थे कि सपुत्र में जाते ही हिन्दू बर्म धुल जाता है'^{४८} अपने पत्ने पर स्थिति को स्पष्ट और बम्लीर बनाते हुए वह चिखते हैं वह (अम्मा) अपने प्राणों से अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ जो सफटी

^{४४} Ross Stagner "Psychology of Personality" McGraw Hill, New York, 1948, p. 32.

^{४५} Hudson, An Introduction to the Study of Literature p. 145:

"Whatever is individual and characteristic in their physical aspect in general, whatever is of importance in their expression or demeanour at any critical moment, must be so indicated as to stand out clearly in the reader's mind."

^{४६} प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १२६।

^{४७} प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम', पृष्ठ १२६।

^{४८} वही, पृष्ठ १२६।

उसकी चारित्रिक विशेषताओं के बारे में स्वयं कुछ न कहकर भी वासी बटमा के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन कर दिया है जिसमें पात्र का स्वभाव प्रतिबिम्बित हो उठता है। हमारे सामने वह निर्भीक तथा शोषण के प्रति जागरूक तबबुलक किसान के रूप में साकार हो जाता है।

‘गहन में देवीदीन का प्रथम परिचय धीरे भी खोज रहा है। घर से सामकर रममाड़ी में बिना टिकट के यात्रा करने पर रमामास जब पकड़ा गया धीरे सोचने लगा ‘माड़ी से कुछ पड़े’ तो सहसा एक बूढ़े मावधी ने जो उसके पास ही बैठा था पूछा—‘कसकस में कहीं बाघोमे बाबूजी ?’ रमा ने समझा, यह पैंवार मुझे बना रहा है, झुंझसाकर बोला—‘तुमसे मतलब ?’ कहीं बाऊंया। बूढ़े ने इस घपेला पर तनिक भी ध्यान न दिया बोला—‘यै भी वहीं चले’। हमार-तुम्हार साथ हो जायेगा। फिर धीरे से बोला—‘फिरए के रूप मुझसे ले लो, वहाँ है देना।’ जब रमा ने उसकी धीरे ध्यान से देखा ‘कोई ६०-७० साल का बूढ़ा पुसा हुमा घादनी था। मांस तो बसा हड्डियाँ तक पस गयी थी। सिर के बाल बूढ़े हुए थे।’^{४१} यहाँ एक विशेष परिस्थिति में देवीदीन से प्रथम भेंट होती है। उसकी प्राकृति धीरे बेशर्मा के प्रतिरिक्त रूप सब कुछ धसी रहस्य ही है पर उसके व्यवहार में उसकी प्रकृति स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठी है। नेसक अपनी धीरे से कहकर केबल बटमा का बर्चन करता प्रतीत होता है इसी में पात्र देवीदीन को सहा रता का परिचय मिल जाता है धीरे उसके बारे में धीरे जानकारी प्राप्त करने की पाठक के मन में उत्तुङ्गता जागृत हो जाती है।

व्यक्तारमक शैली

प्रथम भेंट में ही किसी व्यक्ति के बारे में सब कुछ नहीं जाना जा सकता।^{४२} सब कुछ जान पाना तो दूर, जो कुछ बोझी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है उस पर भी पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता।^{४३} प्रथम परिचय के समय एक तो चरित्र सम्बन्धी सभी विशेषताओं को प्रकट होने का अवसर ही नहीं मिलता धीरे जिन कुछ एक को प्रकट होने का अवसर मिलता है वे भी धनेक कारणों से बची पड़ी रहती हैं या छपूरी ही व्यक्त हो पाती है। दूसरे कई बार प्रथम भेंट के समय व्यक्ति स्वयं भी किसी विशेष प्रयोजन से अपने नैसर्गिक आचरण को छिपाकर

^{४१} मेमकन ‘मन’ पृष्ठ १६६।

^{४२} Allport, *Personality: A Psychological Interpretation* p. 200:

‘In the brief period of first meeting there is little chance for the judge to ascertain which traits are central and which are incidental in the personality. Some features are hidden entirely especially those that are social.’

^{४३} Murphy, *General Psychology* Harper New York, p. 474.

कृत्रिम विपदापार में सगा रहता है। इसलिए प्रथम भेंट हमारे हृदय पर जो छाप छोड़ जाती है, उसकी सत्यता को परखने की आवश्यकता बनी जाती है और उसके लिए जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति की छापीरक बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययन करना होता है।^{४४}

प्रेमचन्द अपने पात्रों का प्रथम परिचय देकर निश्चिन्त नहीं हो जाते, प्रत्युत उन्हें अनेक स्थितियों में डालकर उनकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं, भाव प्रयोगों-पात्र नाक कान मुह, चिर, हाथ पाँव इत्यादि की विभिन्न मुद्राओं तथा उनके चमकने-फिरने उठने-बैठने, हँसने-सोसने जाने-सहनने की निजी विचित्रताओं के इतने उबीच सख्त-निश्च उपस्थित करते हैं कि पात्र पाठकों की कल्पनाओं में साकार होकर भाव उठता है।^{४५}

स्थित्यंकन

स्थितिचित्रण में प्रेमचन्द बड़े सिद्धास्त हैं। पात्र दिखाई भी नहीं देता कि वह उस स्थिति का चित्रण करने लग जाते हैं जिसमें उसे डालना होता है। बाटा बरण का निर्माण करते हुए वह पात्र के परिवेश का चित्रण अपनी सूक्ष्मता से करते हैं कि छोटी से छोटी बात पर भी उनका ध्यान पड़े बिना नहीं जाता। 'प्रेमात्मन' में वह प्रेमचंदर की पत्नी मन्ना को ऐसी स्थिति में डाल देते हैं कि वह पति तथा बर्मपदमण्डला दोनों में से एक को अपना देने के लिए बाध्य हो जाती है और पति की अपेक्षा बर्म को प्राथमिकता देती है, बर्म के प्रति अपने अक्षयिदमास के कारण।^{४६} विवेक से सीटकर प्रेमचंदर की मन्ना से प्रथम भेंट पृष्ठ १२६ पर होती है, पर उससे चार पृष्ठ पहले से प्रेमचन्द इस परिस्थिति के लिए भूमिका बाँधने लग जाते हैं 'मन्ना बड़ी स्वागत करने के लिए न थी। प्रेमचंदर को उसकी इस प्रेम भूम्यता पर बड़ा दुःख हुआ। मन्ना से प्रेम उनके सीटने का मुख्य कारण था। उसकी माँ उन्हें ठकपावा करती थी।^{४७} प्रेमचंदर मूल तथे से कि समुद्र में जाते ही हिन्दू बर्म धुल जाता है'^{४८} अपने पत्ने पर स्थिति को स्पष्ट और धम्मीर बनाते हुए वह मिलाते हैं वह (मन्ना) अपने प्राणों से, अपने प्राणप्रिय स्वामी से हाथ धो सकती

^{४४} Ross Stagner 'Psychology of Personality' McGraw Hill New York, 1948, p. 23.

^{४५} Hudson, 'An Introduction to the Study of Literature' p. 148.

"Whatever is individual and characteristic in their physical aspect in general, whatever is of importance in their expression or demeanour at any critical moment, must be so indicated as to stand out clearly in the reader's mind."

^{४६} प्रेमचन्द, 'प्रेमात्मन' पृष्ठ १२६।

^{४७} प्रेमचन्द 'प्रेमात्मन' पृष्ठ १२२।

^{४८} वही, पृष्ठ १२३।

उसकी चारित्रिक विशेषताओं के बारे में स्वयं कुछ न कहकर भी वाली घटना के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन कर दिया है जिसमें पात्र का स्वभाव प्रतिबिम्बित हो छूटा है। हमारे सामने वह निर्भीक तथा खोपखु के प्रति जागरूक, नवयुवक किसान के रूप में साकार हो जाता है।

‘प्रथम’ में बेबीरीन का प्रथम परिचय धीरे भी सधीव रहा है। घर से भागकर रेलगाड़ी में बिना टिकट के यात्रा करने पर रमाया जब पकड़ा गया और सोचने लगा ‘पाड़ी से कुछ पढ़ूँ तो सहसा एक बूढ़े घाबरी ने जो उसके पास ही बैठा था पूछा—‘कसकसे मैं कहीं जाओगे बाबूजी ? रमा ने समझा, वह गँवार मुझे बना रहा है दुःखमाकर बोला—‘तुमसे मतलब मैं कहीं जाऊँगा। बूढ़े ने इस जेसा पर तनिक भी ध्यान न दिया बोला—‘मैं भी वहीं बसूँगा। हमारा-दुम्हार साप हो जायेगा। फिर धीरे से बोला—‘किराए के रुपए मुझसे ले लो, वहाँ दे देना। जब रमा ने उसकी धीरे ध्यान से देखा ‘कोई १०-१० साप का बूढ़ा दुसा हुपा घादनी था। मांस तो बसा हड्डियाँ तक बस गयी थीं। सिर के बास मुझे हुए थे।’^{४१} यहाँ एक विशेष परिस्थिति में बेबीरीन से प्रथम भेंट होती है। उसकी शक्ति और बेधमूपा के प्रतिरिक्त रोप सब कुछ समी रहस्य ही है पर उसके व्यवहार में उसकी प्रकृति स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठी है। सेपक अपनी धीरे से कहकर केवल बटना का वर्णन करता प्रतीत होता है इसी में पात्र बेबीरीन को उठा रठा का परिचय मिल जाता है और उसके बारे में और जानकारी प्राप्त करने की पाठक के मन में उत्सुकता जागृत हो जाती है।

व्यवहारमय क्षेपी

प्रथम भेंट में ही किसी व्यक्ति के बारे में सब कुछ नहीं जाना जा सकता।^{४२} सब कुछ जान पाना तो दूर, जो कुछ चौड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है उस पर भी पूर्णतया विश्वास नहीं किया जा सकता।^{४३} प्रथम परिचय के समय एक तो चरित्र सम्बन्धी सभी विशेषताओं को प्रकट होने का अवसर ही नहीं मिलता और शिन कुछ एक को प्रकट होने का अवसर मिलता है वे भी अनेक कारणों से दबी पड़ी रहती हैं या झपुकी ही व्यक्त हो पाती हैं। दूसरे कई बार प्रथम भेंट के समय व्यक्ति स्वयं भी किसी विशेष प्रयोजन से अपने नैसर्गिक आचरण को छिपाकर

^{४१} प्रेमचन्द ‘मन’, दृष्ट १९६।

^{४२} Allport, ‘Personality: A Psychological Interpretation’ p. 200:

“In the brief period of first meeting, there is little chance for the judge to ascertain which traits are central and which are incidental in the personality. Some features are hidden entirely especially those that are social.”

^{४३} Murphy ‘General Psychology’ Harper New York, p. 474.

कृत्रिम सिंघाधार में लगा रहता है। इसलिए प्रथम भेंट हमारे हृदय पर जो द्योत छोड़ जाती है उसकी सत्यता को परखने की आवश्यकता बनी रहती है और उसके लिए जीवन की विविध परिस्थितियों में व्यक्ति की पारस्परिक बौद्धिक और मानसिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म अध्ययन करना होता है।^{४४}

प्रेमबन्ध अपने पार्ष्वों का प्रथम परिचय देकर निश्चित नहीं हो जाते प्रत्युत उन्हें अनेक स्थितियों में डालकर उनकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं, भाव-भूमियों-पाँख नाक कान मुँह सिर, हाथ पाँव इत्यादि की विभिन्न मुद्राओं तथा उनके चलने-फिरने उठने-बैठने, हँसने-खेसने खाने-पहनने की निजी विविधताओं के इतने सजीव चमत्कर उपस्थित करते हैं कि पात्र पाठकों की कल्पनाओं में साकार होकर नाच उठता है।^{४५}

स्थितिकरण

स्थितिचित्रण में प्रेमबन्ध बड़े सिद्धहस्त हैं। पात्र दिखाई भी नहीं देता कि वह उस स्थिति का चित्रण करने लग जाते हैं जिसमें उसे डालना होता है। बाता बरण का निर्माण करते हुए वह पात्र के परिवेश का चित्रण इतनी सूक्ष्मता से करते हैं कि छोटी से छोटी बात पर भी उनका ध्यान पड़े बिना नहीं रहता। "प्रेमायम" में वह प्रेमचकर की पत्नी अम्मा को ऐसी स्थिति में डाल देते हैं कि वह पति तथा बर्भकपणलता दोनों में से एक को अपना के लिए बाध्य हो जाती है और पति की अपेक्षा बर्भ को प्राथमिकता देती है। बर्भ के प्रति अपने संघर्षरस के कारण।^{४६} विदेश से लौटकर प्रेमचकर की अम्मा से प्रथम भेंट पृष्ठ १२६ पर होती है, पर उससे चार पृष्ठ पहले से प्रेमबन्ध इस परिस्थिति के लिए भूमिका बँधने लग जाते हैं "अम्मा बहुत स्वागत करने के लिए लगी थी। प्रेमचकर को उसकी इस प्रेम भूमिका पर बड़ा कुछ हुआ। अम्मा से प्रेम उनके लौटने का मुख्य कारण था। उसकी पार उन्हें ठड़पाया करती थी।"^{४७} प्रेमचकर मूस मये थे कि समुद्र में जाते ही हिन्दू धर्म बुरा बाता है"^{४८} अपने पत्नी पर स्थिति को स्पष्ट और दृढ़ीर बनाते हुए वह लिखते हैं "वह (अम्मा) अपने प्राणों से अपने प्राणमित्र स्वामी से हाथ जो सजती

४४ How Stagner "Psychology of Personality" McGraw Hill, New York, 1949 p. 22.

४५ Hudson, An Introduction to the Study of Literature p. 148:

"Whatever is individual and characteristic in their physical aspect in general, whatever is of importance in their expression or demeanour at any critical moment, must be so indicated as to stand out clearly in the reader's mind."

४६ प्रेमचकर "प्रेमायम" पृष्ठ १२६।

४७ प्रेमचकर "प्रेमायम" पृष्ठ १२९।

४८ पृष्ठ १२३।

भी किन्तु अपने भर्म की धमजा करना धमना सोकनित्वा का सहन करना उसके लिए असम्भव था।^{२१} बार पृष्ठों तक स्थिति चित्रण को फैला चुकने के बाद वह प्रेमचंदकर और यक्षा को एक-दूसरे के सामने-सामने भाते हैं।

इसी प्रकार 'प्रतिभा' में बिजया होने के पश्चात् जब पुर्खा अपना घर छोड़ कर प्रेमा के पिता के घर धांधिता के रूप में जाती है और उसे बिस स्थिति का सामना करना पड़ता है उसके चित्रण में इतनी सुविमता है कि पाठकों को प्रतीत होने लगता है कि वे अपनी भाँखों से सब कुछ देख रहे हों। प्रेमा से बसे मिलकर भी उसका चित्त प्रसन्न न हुआ। तब वह सबी भाव से जाती थी आज वह धांधिता बनकर आई थी। तब उसका ज्ञान साधारण बात थी उसका विशेष धावर-सम्मान न होता था लोग उसका स्वागत करने को न बौझते थे। आज उसके घाते ही देवकी मण्डारे का द्वार खुला छोड़कर निकल आई। सुविधा अपने बाल गुबबा रही थी। धनदु की मोटी पर धांधल डालकर भागी महूरियाँ अपने-अपने काम छोड़कर निकल आईं। कमलाप्रसाद तो पहले ही धांधल में लड़े थे। सामा बदरीप्रसाद संभ्या करने ला रहे थे उसे स्वयित करके धांधल में ला पहुँचे।^{२२}

अनुभाव चित्रण

किसी स्थिति (सिचुएशन) में पड़ते ही पात्र की प्रतिक्रिया प्रकट नहीं हो जाया करती। उसकी प्रतिक्रिया स्थिति विशेष पर इतना निर्भर नहीं करती जितना इस बात पर कि पात्र उसे किस रूप में ग्रहण करता है।^{२३} ज्यों-ज्यों स्थिति गम्भीर होती जाती है त्यों-त्यों पात्र की मनोस्थिति में भी अंतर आता जाता है और जब तक उसके मनोबोध प्रतिक्रिया के रूप में नहीं समझ पड़ते, उसकी मनोदशा में होने वाला हाण प्रतिसण का परिवर्तन उनकी विभिन्न मुद्राओं और भाव भाँवियों द्वारा प्रकट होता रहता है।^{२४} स्थिति में पड़ जाने के पश्चात् और प्रतिक्रियारमक विस्फोट होने से पहले पात्र के अंग प्रत्ययों में जो सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं, उनमें

२१ वही, पृष्ठ १२४।

२ प्रेमचन्द, 'प्रतिभा' पृष्ठ ११।

२२ Hux 'Psychology and Life' p. 160:

"If two people find themselves in the same external situation, one may react one way and the other a different way because of their past experience with the situation."

२३ Stagner 'Psychology of Personality' p. 215:

"The organism is a psycho physiological unit, and happenings at the level of gesture and expressive movements may be expected to reflect inner patterns of perceptions and feelings. This hypothesis is confirmed by studies of handwriting, drawing, voice, motor coordination and nervous movements."

पार्श्वों का तत्कालीन मानसिक संघर्ष प्रतिबिम्बित होता रहता है। इसलिए इस बीच की स्थिति का वर्णन भी उतना ही ध्यानस्यक्त होता है बिचूना स्थिति और उसके प्रति पात्र की प्रतिक्रिया का चित्रण।^{२३}

योदान में धनुसाक्ष चित्रण

पार्श्वों की पारस्परिक बातचीत के समय तो प्रेमचन्द उनकी भाव-मगी का सूक्ष्म और स्वाभाविक चित्रण करते जाते हैं और उनकी विभिन्न मुद्राओं का वर्णन करते जाते हैं जिसका बड़ा सुन्दर उदाहरण योदान के दारुम्य में ही रामसाहब को मिलने के लिए घर से चलते समय होरी की बगिया से व्यम्पपूर्ण बातचीत है। पति को जाते देख बगिया जब रस पाणी कर सेने को कहती है तो होरी 'घपने झुर्रियों से भरे हुए माँसे को तिकोड़ कर'^{२४} उत्तर देता है। और जब वह चारों ओरों से उसके सामने झा पटकती है तो सासियों-ससहनों के बारे में व्यंग्य करते समय उसके 'गहरे साँसे पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ती है।'^{२५} इसी प्रकार क्पा का घपनी बड़ी बहन सोना को 'जैंगली मटकाकर चिड़ाना'^{२६} बूढ़े पंडित बातापीन का 'बनी सफेद माँहों के नीचे छिपी हुई दाँतों में बजानी की उर्मम मर पोपसे मुँह से माँ को प्रशंसना'^{२७} मीनूरी सिंह का कभी 'सहानुभूति का रंग मुँह पर पोत कर'^{२८} और 'कभी फूले हुए गालों में बँसी हुई दाँतें निकालकर'^{२९} बातचीत करना। राम साहब का सन्ना से 'मुँहों में मुस्कराहट लपेटकर' बातें करना।^{३०} इत्यादि अनेक स्वतः उद्धृत किये जा सकते हैं जहाँ प्रेमचन्द ने बातचीत के समय पार्श्वों की मुख-मुद्राओं का सुन्दर चित्रण किया है।

भारत्मीय उपन्यासों में धनुसाक्ष-चित्रण की कमी

प्रेमचन्द के कई भारत्मीय उपन्यासों में भाविक स्थितियों में जहाँ पाठक प्रेमचन्द से छाया रह सकता है कि वह पार्श्वों की प्रतिक्रिया प्रकट होने से पहले की

२३ Allport, 'Personality: A Psychological Interpretation', p. 486 :

"The influence of passing emotion or mood, however does require special mention, for under certain circumstances depression, fatigue or elation may be so marked that it dominates the motor region and completely obscures the normal course of movement."

२४. प्रेमचन्द, 'योदान' पृ० १।

२५. वही, पृष्ठ २।

२६. प्रेमचन्द, 'योदान' पृष्ठ २४।

२७. वही, पृष्ठ २६।

२८. वही, पृष्ठ २१।

२९. प्रेमचन्द, 'योदान' पृष्ठ २१।

३०. वही, पृष्ठ २१।

उनकी भ्रू-संमिमा के चित्रण द्वारा उनके तात्कालिक मानसिक संघर्ष का दिग्दर्शन करण वहाँ उसे निरास होना पड़ता है। क्योंकि सेखर घनमने भाव से बीच की स्थिति का वर्णन एक दो बातों में करके प्रतिक्रिया के चित्रण की ओर लपक पड़ता है। जैसे 'प्रेमाम्भ' में प्रेमसंकर तथा मन्ना की पूर्व उद्धृत मेट वाली स्थिति में प्रेम चन्द मन्ना का तो बोझा-बहुत चित्रण कर भी देते हैं पर प्रेमसंकर के बारे में इतना ही लिखकर कि 'बहु सभाते में भा गए। कदाचित् धाकाय सामने ही मुप्त हो जाता तो भी उन्हें इतना विस्मय न होता' ^{११} उन्हें जीने से उतार देते हैं। यह विचारणीय हो सकता है कि क्या मन्ना के इस व्यवहार के प्रति प्रेमसंकर को केवल विस्मय ही हुआ होगा, मानसिक कष्ट नहीं? अपनी चिरसंचित धायाओं को मिट्टी में मिलते देख उसे जो अपरिमित दुःख हुआ होगा उसे व्यक्त करने के लिये प्रेमचन्द के ये शब्द अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार 'प्रतिभा' में बहरीप्रसाद के घर धायय के लिए आईं पुर्खों की तब की मनोस्थिति का वर्णन करने के बाद प्रेमचन्द यह बताकर ही रह जाते हैं कि यह समारोह बेचकर पुर्खों का हृदय विहीन हुआ जाता था। ^{१२} जितनी दृष्टि से यह उसके परिवेश का चित्रण करते हैं और उसके लिए जितना स्थान देते हैं उससे एक चौपाई स्थान भी उस पात्र के मानसिक संघर्ष की उसकी भ्रू-संमिमा द्वारा व्यक्त करने में नहीं देरत, जिसके चित्रण के लिए उन्होंने उस स्थिति का निर्माण किया था।

प्रतिक्रिया-चित्रण

पात्रों की स्थिति का विस्तारसहित सूक्ष्म वर्णन करने के पश्चात् प्रेमचन्द उनकी प्रतिक्रिया के चित्रण की ओर लपक पड़ते हैं। कई बार तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि परिस्थिति के घंजन के पश्चात् सेखर ने बटन दबा दिया हो और लड़ित बेस से पात्रों की प्रतिक्रिया प्रकट हो गई हो। 'कायाकल्प' में किसानों के धान्योत्सव में पुनिष से हुई मुठभेड़ में अक्षर की प्रतिक्रिया इसी प्रकार प्रकट हुई प्रतीत होती है : इतना सुनना था कि अक्षर बाज की तरह दारोगा जी पर भड़के। कंदियों पर मुन्नी की मार गुरू हो गई थी। एकाएक अक्षर ठिठक गए। ध्यान आ गया—स्थिति और भयंकर हो जायगी। ^{१३} प्रतिक्रिया तक पहुँचने से पहले प्रेमचन्द धावश्यकता से अधिक विस्तार स वर्णन करते हैं पर उनका प्रतिक्रिया-चित्रण धावश्यकता से बहुत संक्षिप्त होता है। पात्रों की प्रतिक्रिया के घंजन में वह अधिक देर नहीं उससे रहते क्योंकि उसके पश्चात् उन्हें अपनी दृष्टि का काम करना होता है और यह है—टीका टिप्पणी द्वारा निष्कर्ष निकालकर पाठकों के सामने रखना।

११ प्रेमचन्द 'प्रेमाम्भ', पृष्ठ १२६।

१२ प्रेमचन्द 'प्रतिभा' पृष्ठ २६।

१३ प्रेमचन्द 'कायाकल्प' पृष्ठ ११०।

उपन्यासकार की ओर से टीका-टिप्पणी

उपन्यास रचना में प्रेमचन्द का मुसोह रूप चरित्रचित्रण न था ।^{१४} उनका सम्म अपने युग और समाज की समस्याओं का उनके वास्तविक स्वरूप में उद्घाटन करना और अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर उनका सामान्य उपस्थित करना था ।^{१५} इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने उपन्यासों को माध्यम बनाया उन समस्याओं के चित्रण के लिए परिस्थितियों का निर्माण किया, उनके लिए पात्रों की सृष्टि की ।^{१६} प्राक्कथानुसार उनकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को व्यक्त किया और यह सब कुछ कर चुकने के बाद निष्कर्ष निकालते हुए अपने उन विचारों को प्रकट किया जिनके प्रचार के लिए उन्होंने उपन्यासों की रचना की थी । इसलिये, वह यदि टीका-टिप्पणी द्वारा निष्कर्ष निकालने के लिए बचीर रहें तो आश्चर्य की बात नहीं ।

'रंगभूमि' में रानी बाबूजी की कठोरता से संतुष्ट और विनय की उदासीनता से शिल्लि सोफिया की सबस्वा का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द अपनी इतना ही कह पाए थे कि 'सोफिया बारपाई पर बैठ गई । मानो बक गई'^{१७} कि उसकी स्थिति पर अपनी ओर से टीका-टिप्पणी करने समय गए 'सफ़ाता में अत्यन्त सजीवता होती है मसफ़मता में मसहू मसबित'^{१८} इत्यादि । इस प्रकार एक वाक्य में उसकी हानत बसाकर अपनी ॥ पंक्तियों में उस पर टीका-टिप्पणी करते हैं । इस निपटाराबन्धा में अब उसकी माँ उसे बमारक से बिबाह कराने के लिए लेने जाती है तो सोफिया को यह खोचकर कि परमारमा ने उसकी माँ के हृदय में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया है बड़ी सात्वता मिसली है । उस समय भी माँ और बेटी के मिसल का केवम एक वाक्य में—'वह दीककर माठा के पसे से मिसट गई'^{१९} —वर्णन करके मूला की पोर की महिमा-मान करते-करते अपनी १२ पंक्तियाँ भर देते हैं । ऐसे अनेक स्थल मिसंगे जहाँ पाठक हृदय बामकर पात्र की छल्पटाहट देखने और उसका बिलाप सुनने

१४ मन्नुसारे बमरेसी 'प्रेमचन्द' पृष्ठ १२

"प्रेमचन्द जी पात्रों का निर्माण करने में कितने कुशल हैं, इतने उनका चित्रण करने में नहीं । कई बाक्यों को बीच हा में बमाल मूख का शिकर बनना पण्ड है ।"

१५ Indranath Madan, Prem Chand : An Interpretation p. 121 22 :

"Prem Chand portrays characters, not character He has created several characters, but hardly a character His fundamental aim is not characterization, but essentially reformation. His intention is centered in a moral or social problem, not in the subtleties and contradictions of psychology

१६ डा इन्द्रनाथ मदान 'प्रेमचन्द एक चित्रेचन' पृ० १२ ।

"प्रेमचन्द का सम्मम विशेष रूप से सामाजिक सम्मम से रण्ड है । उनका बरे रूप एक सामाजिक सम्मम के ब्यस-बस पात्रों का बमाल रण्ड करना है ।"

१७-१८-प्रेमचन्द, रंगभूमि पृष्ठ १११ ।

१९ वही ५ १७२ ।

के लिए तैयार हो जाता है। पर सेसक उसकी बिम्बा किये बिना उपदेश देने में समर्थ जाता है। जब सोफिया अपनी माँ के साथ फिटन पर बैठकर घर के लिए जमी उसकी उस समय की अवस्था के बारे में इतना कहकर कि फिटन सड़क पर लेडी से बीड़ी जमी जाती थी और सोफिया बीड़ी रो रही थी^{७०} प्रेमचन्द उसके साथ अपनी एक टिप्पणी जोड़ देते हैं। उसकी बधा उस बामक की-सी थी, जो रोटी खाता हुआ मिठाई वाले की घाबाब चुनकर उसके पीछे बीड़े ठोकर घाकर गिर पड़े पैसा हाथ से निकल जाए और वह रोता हुआ घर भीट जाए।^{७१}

वास्तव में प्रेमचन्द के वर्णनों में समस्या-चित्रण और टीका-टिप्पणी के रूप में उनके अपने विचारों के प्रकटीकरण को ही अधिक स्थान मिला है।

बिहसेपणात्मक प्रणाली

किसी मनुष्य की काव्य विशेष की परिस्थिति को उस परिस्थिति के प्रति उस की व्यक्ति क्रिया प्रतिक्रिया की उसके समूचे व्यक्ति व्यवहार का ज्ञान लेने पर भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि हम उसे पूर्णरूपेण समझ गए,^{७२} क्योंकि मनुष्य का जो रूप दूसरों पर प्रकट होता है वही तो उसका वास्तविक रूप नहीं होता। उससे अधिक महत्वपूर्ण और रहस्यमय उसका वह रूप होता है, जो जाने या मनजाने अनिश्चित होने से बच रहा हो। मनुष्य के व्यक्ति प्रकार प्रकार-विचार प्रादि में उसके चरित्र का प्रस ही प्रतिबिम्बित हो जाता है। शेष का तो उसकी व्यक्ति चेष्टाओं में आभास तक नहीं मिलता।^{७३} मानव चरित्र हिमनय (माइसबर्ग) के समुदा है जो केवल १/२ ही व्यक्ति रहता है और शेष पानी के भीतर छिपा रहता है। मनुष्य के उस अदृश्य चरित्र को जाने बिना जो उसके समूचे व्यक्ति रूप का प्रेरक होता है, मनुष्य को पूरी तरह समझ सकना सम्भव नहीं।^{७४} इसीलिए प्रेमचन्द अपने पात्रों की परिस्थिति विशेष का विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुकने पर उनकी व्यक्ति क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं उनके हाव-भाव आदि के चित्रण में ही समझे नहीं रहते प्रत्युत उनके भाग्यिक तथ्यों को अपने परिवेश के प्रति निरंतर विकसित होते रहने वाले उनके दृष्टिकोण तथा उनके प्रकट व्यवहार की अन्तःप्रेरणायों (इंटरन मोटिव्स) को प्रकाश में लाते रहते हैं।

७० वही, पृ० १००।

७१ वही, पृ० १००।

७२ Rich, 'Psychology and Life' Scott, Foreman New York, Third edn., p. 122.

७३ H. A. Murray 'Explorations in Personality' Oxford University Press, New York, 1938, p. 244.

७४ Rich, 'Psychology and Life' p. 122.

अन्तःप्रेरणायों का चित्रण (मोटिवेशन)

कोई क्या कहता है या करता है। यह इतना महत्व नहीं रखता जितना यह कि क्या कहने या करने से उसका अभिप्राय क्या है।^{७५} किसी के व्यवहार को देखते ही हमारा पहला प्रश्न यह होता है कि उसका वह व्यवहार स्वाभाविक है या किसी विशेष अभिप्राय से प्रेरित। हमारी यह जिज्ञासा और भी प्रसर हो जाती है जब हम किसी को उसके पूर्व-निश्चित स्वभाव के प्रतिबुद्ध आचरण करते देखते हैं।^{७६} हमें पता होता है कि उसकी व्यक्ति-प्रतिक्रिया के आधार पर उसके उस आचरण का मूल्यांकन भ्रामक होगा। इसलिए हमें उसकी मूल प्रेरणा तक पहुँचना होता है। उस के उस व्यवहार के बारे में अपनी निश्चित धारणा बनाने से पहले उसके पीछे काम करने वाली^{७७} अन्तःप्रेरण (मोटिव)^{७८} को जानना होता है कि वे अच्छी थी या बुरी, प्रसिद्द उसकी नीयत अच्छी थी या बुरी।

परस्पर विरोधी क्रिया-प्रतिक्रियाओं में एक-सुझता

प्रसन्न इस तथ्य को मनी प्रकार समझते हैं। इसलिए अपने पात्रों का चित्रांकन करते समय वह उनके बाह्य आकार-अकार, आचार-व्यवहार तक ही सीमित न रहते हुए उनके मन में पैठकर उसमें होने वाली हलचलों परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में वम रहे हों।^{७९} उनके व्यक्ति-व्यवहार को स्वरूप देने वाली प्रेरणायों और उसकी अव्यक्त केष्टायों का भी चित्रण करते बसते हैं। जीवन के विविध मोड़ों में उनके पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं में भले ही अनेकवचता और असन्तुष्टता बिछाई दे पर विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होने वाले उनके विविध प्रकार के

७५ Ibid. p. 122 :

"When we do not know why some one behaves as he does today we are not able to predict what he will do tomorrow and so we will not have any successful way of dealing with him when tomorrow comes."

७६ R. H. Maslow 'Society' Macmillan & Co. London, 19५४, p. 23

"We are always seeking to discover the overt behaviour of our fellows. Particularly when some one we know acts in an unexpected manner we hunt for the explanatory motive."

७७ Ibid. p. 25 :

"Motives then are the effective incitements to action that lies behind our acts, behind the show of things."

७८ Bosw, 'Enjoyment of Literature' p. 223 :

"Motives are the reasons which impel characters to act as they do."

के लिए तैयार हो जाता है। पर सेबक उसकी चिन्ता किये बिना उपरोक्त देने में उसका जाता है। जब सोफिया अपनी माँ के साथ फिटन घर बैठकर घर के लिए जाती, उसकी उस समय की अवस्था के बारे में इतना कहकर कि फिटन सड़क पर तेजी से बढ़ी अभी जाती थी और सोफिया बीटी रो रही थी^{७०} प्रेमचन्द उसके साथ अपनी एक टिप्पणी जोड़ते हैं उसकी बसा उस बालक की-सी थी जो रोटी खाता हुआ मिठाई वाले की आवाज सुनकर उसके पीछे दौड़े छोड़कर साकर फिर पड़े पैसा हाथ से निकल जाए और वह रोता हुआ घर लौट जाए।^{७१}

वास्तव में प्रेमचन्द के चर्चनों में समस्या-विशेष और टीका-टिप्पणी के रूप में उनके अपने विचारों के प्रकटीकरण को ही अधिक स्थान मिला है।

विहसेपणात्मक प्रणाली

किसी मनुष्य की काम विशेष की परिस्थिति को, उस परिस्थिति के प्रति उस की व्यक्ति क्रिया-प्रतिक्रिया को उसके समूचे व्यक्ति व्यवहार का ज्ञान लेने पर भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि हम उसे पूर्णतः समझ गए^{७२} क्योंकि मनुष्य का जो रूप दूसरों पर प्रकट होता है, वही तो उसका वास्तविक रूप नहीं होता। उससे अधिक महत्वपूर्ण और रहस्यमय उसका वह रूप होता है, जो जाने या मनमाने अनिश्चित होने से बच रहा हो। मनुष्य के व्यक्ति आकार प्रकार, आचार-विचार आदि में उसके चरित्र का अंत ही प्रतिबिम्बित हो जाता है। सेप का तो उसकी व्यक्ति चेष्टाओं में आनाउ तक नहीं मिलता।^{७३} मानव चरित्र हिमनव (माइसबरी) के समान है जो केवल १/६ ही व्यक्त रहता है और सेप पानी के भीतर छिपा रहता है। मनुष्य के उस अदृश्य चरित्र को जाने बिना, जो उसके समूचे व्यक्ति रूप का प्रेरक होता है मनुष्य को पूरी तरह समझ सकना सम्भव नहीं।^{७४} इसीलिए प्रेमचन्द अपने पात्रों की परिस्थिति विशेष का विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुकने पर उनकी व्यक्ति क्रियाओं प्रतिक्रियाओं उनके हाव-भाव आदि के विवरण में ही उनमें नहीं रहते प्रत्युत उनके मानसिक संघर्ष को अपने परिवेश के प्रति निरंतर विकसित होते रहने वाले उनके दृष्टिकोण तथा उनके प्रकट व्यवहार की अन्तःप्रेरणाओं (इन्टनल मोटिव्स) की प्रकाश में लाते रहते हैं।

७० यही पृ० १७०।

७१ यही, पृ० १७०।

७२ Ruch, 'Psychology and Life' Scott, Foreman, New York, Third edn., p. 122.

७३ H. A. Murray 'Expositions in Personality' Oxford University Press, New York, 1938, p. 244.

७४ Ruch, 'Psychology and Life' p. 122.

अन्तःप्रेरणायों का विषय (मोटिवेशन)

कोई क्या कहता है या करता है यह इतना महत्व नहीं रखता जितना यह कि ऐसा कहने या करने से उसका अभिप्राय क्या है।^{१२} किसी के व्यवहार को देखते ही हमारा पहला प्रश्न यह होता है कि उसका वह व्यवहार स्वाभाविक है या किसी विशेष अभिप्राय से प्रेरित। हमारी यह जिज्ञासा और भी प्रबल हो जाती है जब हम किसी को उसके पूर्व-निश्चित स्वभाव के प्रतिकूल आचरण करते देखते हैं।^{१३} हमें पता होता है कि उसकी व्यक्त प्रतिक्रिया के आधार पर उसके उस आचरण का मुस्माकृत भावक होया इसलिए हमें उसकी मूल प्रेरणा तक पहुँचना होता है। उस के उस व्यवहार के बारे में अपनी निश्चित धारणा बनाने से पहले उसके पीछे काम करने वाली^{१४} अन्तःप्रेरणा (मोटिव)^{१५} को जानना होता है कि वे अपनी ही या बुरी धर्मात् उसकी नीयत अपनी ही या बुरी।

परस्पर विरोधी क्रिया-प्रतिक्रियाओं में एक-सुझता

प्रेमचन्द इस तथ्य को मसी प्रकार समझते थे। इसलिए अपने पात्रों का चित्रांकन करते समय वह उनके बाह्य आकार-रङ्ग, आचार-व्यवहार तक ही सीमित न रहते हुए उनके मन में बैठकर उसमें होने वाली हलचलों परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में चल रहे हों उनके व्यक्त व्यवहार को स्वक्य देने वाली प्रेरणाओं और उसकी अव्यक्त चेष्टाओं का भी चित्रण करते चलते थे। जीवन के विविध मोड़ों में उनके पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं में भरे ही अनेकसुझता और असम्बद्धता दिखाई दे पर विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होने वाले उनके विविध प्रकार के

१२ Ibid. p. 122;

"When we do not know why some one behaves as he does today we are not able to predict what he will do tomorrow and so we will not have any successful way of dealing with him when tomorrow comes."

१३ R. M. Kervin 'Society' Macmillan & Co. London, 1930 p. 217

"We are always seeking to discover the overt behaviour of our fellows. Particularly when some one we know acts in an unexpected manner we hunt for the explanatory motive."

१४ Ibid. p. 33:

"Motives then are the effective incentives to action that lies behind our acts, behind the show of things."

१५ Ross, 'Enjoyment of Literature' p. 223:

"Motives are the reasons which impel characters to act as they do."

प्रेरक कारणों में व्यवस्था एकसूत्रता मिलेगी।^{५०} वहने ही स्त्री की सम्पत्ति होते हैं। पति को और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता। उसी का उसे बग और मोरब होता है।^{५१} जब पति बूढ़ा हो और पुत्र छीलेसे तथा धांधारा हों तब तो उसके लिए यहाँ का मुख्य और भी बड़ कामा चाहिए। पर माँगी पत के समान जब निर्मला का छीलेसा पुत्र बियायाम उसके बीरन भर की सँचित पूँजी यहाँ का बक्स खुलकर मे बाठा है और वह उसे सेटे-सेटे देखती रही है, न तो उठकर उसे रोकती है और न छोर ही मचाती है।^{५२} तो पाठक को उसके इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य होता है। वह यह नहीं समझ पाता कि अपने प्रति इस अत्याचार को निर्मला चुपचाप क्यों सह लेती है। निर्मला की इस प्रतिक्रिया के प्रेरक भाव को प्रकाश में लाकर प्रेमचन्द उसके इस व्यवहार में संघर्ष ला देते हैं। निर्मला चुप इसलिये नहीं रही कि उसे बियायाम की हितचिन्ता थी या यहाँ से उसे प्यार नहीं था प्रत्युत उसने अपनी निरा के डर से छोर नहीं मचाया कि सोच कहीं कि बिमाता होने के कारण वह अपने छीलेसे पुत्रों को बरनाम करके घर से निकलवाना चाहती है। शायद निर्मला के प्रति उसका यह कथन भी उसके इसी भाव की पुष्टि करता है। 'मुझ में सारी बुद्धियाँ ही बुद्धियाँ हैं तुम्हारा कसूर नहीं बिमाता का नाम ही बुद्ध होता है, अपनी माँ बिप भी लिखाये तो वह समूठ है, मैं समूठ भी बिमाताँ तो बिप हो जायगा।'^{५३} अपनी छीलेसी संतान के प्रति निर्मला की यह बारम्बार ही उसके व्यवहार को स्वल्प प्रदान कर रही थी।

प्रमुख प्रेरणाओं का चित्रण

प्रेमचन्द के उपन्यास इस प्रकार के लघाहरखों से भरे पड़े हैं, जहाँ उन्होंने अन्तःप्रेरणाओं के चित्रण द्वारा अपने पात्रों के चरित्र के उस अंश को भी व्यक्त कर दिया है, जिसका उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं में आभास तक नहीं मिलता और जिसे जाने बिना उनके चरित्र का उचित मूल्यांकन सम्भव नहीं हो पाता। 'रंगभूमि' के नाटक सूरदास पर जब धीरे से मुकदमा चलाया तो जयचर बड़ी मेहनत और

५० H. P. Haines, 'Living with Books' Columbia University Press, New York, 1930, p. 320.

"It is not consistency of action that makes a novel true to human nature and human experience, but consistency of motive and character. Human beings are consistently inconsistent in thought, word and deed but these inconsistencies arise from temperamental qualities, from circumstantial or psychological causes and are logically related to motives and events."

५१ प्रेमचन्द, 'निर्मला' पृ० १९१।

५२ प्रेमचन्द 'निर्मला', पृ० १७१।

५३ प्रेमचन्द, 'रंगभूमि', पृ० १९१।

जबन से भैरों के गवाह तोड़ने में कुट मया यद्यपि इससे पहले सूरदास के प्रति जगधर का प्रेम कभी व्यक्त नहीं हुआ था। जगधर का यह व्यवहार पाठक को विचित्र लगने लगता है और उसकी स्वाभाविकता पर उसका विश्वास नहीं बसता जब तक कि उपन्यासकार उसे यह नहीं बताता कि जगधर की सूरदास में इतनी भक्ति न थी बितनी भैरों से ईर्ष्या। भैरों यदि किसी उत्कर्ष में भी उसकी महामता मांगता तो भी वह इतनी ही उत्तरता से उसकी उपेक्षा करता।^{५२} प्रेमाश्रम का सहायक ज्ञानार्थकर एक बार अपनी समुदाय केवल इसीलिए अधिक दिन ठहर गया कि उसकी पत्नी बिद्या ने उसके साथ छीन्न कौटुम्बिक से इनकार कर दिया था। पाठक को उसके इस व्यवहार पर आश्चर्य होता है क्योंकि उसका-सा स्वार्थी भीव इस प्रकार पत्नी पर जान देना क्या जाने। पर उसके वही ठहरने का वास्तविक कारण जिसे धन्यकराय में भी व्यक्त करने का उसे साहस न होता था जान लेने पर उसका व्यवहारसंगत प्रतीत होने लगता है—गामभी के कोमल भाव और मुकुल रस मयी बातों का उसके चित्त पर आक्रमण होने लगा था।^{५३}

इस प्रकार, प्रेमचन्द पात्रों की व्यक्तित्व प्रेरणाओं के विवरण द्वारा अपने पात्रों के परस्पर विरोधी व्यवहार में भी संगति बैठा देते हैं।

आवेगज (इमोशनल) आचरण का चित्रण

आवेगज मनोस्थिति में कोई व्यक्ति क्या कर सकेगा यह अनुमान लगाना मुश्किल होता है।^{५४} आवेग में मनुष्य अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और स्वाभाविक तथा सहाचारण प्रतिधियाएँ करने लग जाता है।^{५५} उस समय उसे न तो वस्तुस्थिति का ज्ञान रहता है और न ही उस स्थिति विशेष के प्रति व्यक्त हो रहे अपने व्यवहार से उत्पन्न हानि-नाश की चिन्ता रहती है। किसी अन्य समय में साधारण प्रतीत होने वाला साधारण उस समय उस पर सहाचारण बोट करने लगता है और उसकी समस्त मानसिक प्रक्रिया में एक विचित्र खलबली-सी मच जाती है और अपने पर संयम न रख सकने के कारण उसमें अपूर्व उत्साह और बल-विक्रम का संसार हो जाता है। जो काम पहले हों या बुरे सामान्यावस्था में उसकी सामर्थ्य से बाहर प्रतीत होते हैं, आवेग की मनोस्थिति में वह उन्हें सहज

^{५२} वही, पृ० १७५।

^{५३} प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० ७७।

^{५४} Hoch, 'Psychology and Life' p. 160.

"More knowledge of the external situation confronting an individual does not always permit accurate prediction of what emotional response he will make."

^{५५} Ibid, p. 166.

"Under the impetus of emotion men and animals are able to perform feats that would be impossible for them under normal conditions."

में ही कर जासता है।^{१००} इस प्रकार आनेसपूर्ण स्थिति में मनुष्य की उन्नति और पतनति दोनों के बीच स्थित रहते हैं।^{१०१}

आवेग्य आचरण की उपदेयता : उपन्यास में

वस्तु जगत के व्यक्तियों की याँति औपन्यासिक पात्र भी आवेस में आकर बहुत कुछ कर बैठते हैं। धनुर केवम इतना ही है कि यहाँ पात्रों का ऐसा करना उपयोग होता है। कुछत्र उपन्यासकार कुछ भी निरुद्धस्य नहीं करता और फिर प्रेमचन्द जैसा उपन्यासकार जो उपन्यासों की रचना में सामाजिक उद्देश्य^{१०२} से करता हो ऐसा क्यों करेगा ? अपने पात्रों की उत्तेजना का प्रेमचन्द भरपूर साम उठाते हैं—कपानक को बलि देने में पात्रों के चरित्र को विकास की ओर ले जाने उनके प्रत्यक्ष गुणावयुक्तों के प्रकाशन साथ पात्रों का सम्म-स्फोट करने और पात्रों की आत्महरमा कराकर कबानक को समेटने में।

(क) चरित्र विकास के लिए

अपने पात्रों की आवेग्य मनोस्थिति में प्रेमचन्द उनसे ऐसी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ कराते हैं जो उन्हें जीवन के नए मोड़ पर ला खड़ा करती हैं। और उनके मार्ग को कंटकाकीर्ण बनाकर उन्हें पग-पग पर जीवन की यथार्थताओं से संघर्ष करने के लिए विवश कर देती हैं। उस संघर्ष में वे जितना धैर्य दिखाते हैं उतना ही उनके चरित्र में विकास आता जाता है। प्रतिज्ञा का मादक धमूँतराय रामनाथ के मापण से उत्तेजित होकर उसकी चुनीली को स्वीकार कर लेता है और 'युवक मंडल के राज की रसा करता हुआ' 'वैद्यय के भँवर में पड़ी हुई आबसाधों के साथ अपने कर्तव्य के पास' का व्रत ले लेता है। उसकी यह प्रतिज्ञा उसके तथा प्रेमा के मीठे स्वप्नों पर पानी फेर देती है और उन्हें जीवन की कठोर वास्तविकता से ला टकराती है। आवेस में आकर यथावर मे सुमन को घर से निकाल दिया और वह मामिनी भी घर से निकल पड़ी^{१०३}। साहव सिंहनी की तरह गरजती हुई—'यसो तुम्हीं मेरे प्रान्न खाता हो ? जहाँ मजदूरी कलभी नहीं पेट पान सूखी। यदि सुमन घर से न

^{१००} Ibid. p. 186 :

Even when very intense, emotions can either help or hinder us in various ways.

^{१०१} Murray "Explorations in Personality" p. 89 :

"The objective manifestation (of emotion) is a compound of autonomic disturbances ('autonomes'), affective action and the intensification or disorganization of affective behaviour (motor and verbal)."

^{१०२} महान प्रेमचन्द : एक विवेक पृ. २२।

^{१०३} प्रेमचन्द, प्रतिज्ञा पृ. ४

^{१०४} प्रेमचन्द, 'सिंहनाथ', पृ. ४८।

निकासी जाती प्रवृत्ति न निकलती तो हमें उसका बहु रूप कहाचित् ही मिसता जो 'सेवा सुख' में उपलब्ध है। यथाचर और सुमन प्रसंग-प्रसंग हुए कि दोनों के जीवन में नई दिशामें पड़नी और उनके चरित्र का विकास हुआ।

इसी प्रकार निर्मला के पिता की मृत्यु ने निर्मला के जीवन की स्मरणा ही बदल जाती और उसे ऐसी परिस्थितियों में डाल दिया जिनमें वह पुनः-पुनः मर गई। यह सब निर्मला की माता कल्याणी के आशेषपूर्व^{६१} व्यवहार के कारण ही हुआ था। सेखर ने आगे बसकर यह बात और भी स्पष्ट कर दी है—“आप चाहें तो कल्याणी की उस धीरे मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं जो उसे इस विचार से हो रही थी कि मैं ही अपने प्राणाचार की वासिका हूँ।^{६२} रंजुमि की नामिका सोफिया आशेष में भरकर धाम की सपटों में से एक मुक्क को बचा जाती है। वह मुक्क बिनय का जिसके सम्पर्क में आते ही उसके जीवन का भवसा बदल जाता है और उन दोनों का प्रेमी-प्रेमिका के रूप में विकास होने लगता है।^{६३} भद्रुतों के मन्दिर-प्रवेश धान्दोलन में योभिया बसती बैठकर कर्मभूमि की नामिका सुखदा का ‘भूत खीस ठठा’^{६४} और वह आशेषपूर्ण मनोस्थिति में बाहर झूब पड़ी। इस एक घटना ने सुखदा को कुछ से कुछ बना दिया उसे स्वार्थ-साधन की संकीर्णता से निकलकर परहित चिन्तन की व्यापक भूमि पर ला खड़ा किना। उसके इस गुण विकास का भेद उसकी किसी चारित्रिक विशेषता को नहीं। वह स्वयं प्रो० सान्ति कुमार के आगे स्वीकार करती है “जैसे किसी को भेद था जाता है, उसी तरह मुझे वह आशेष था था। वह भी क्रोध के सिवा और कुछ न था।”^{६५}

प्रेमचन्द के उपन्यासों से इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जहाँ वह पात्रों की आशेषपूर्ण मनोस्थिति का प्रयोग उनके चरित्र को विशिष्ट करने के लिए करते हैं।

(घ) अभ्यस्त गुणवर्णनों के प्रकाशन के लिए

मनुष्य के कई स्वाभाविक गुणवर्णन उपपन्न व अनुसृत बातावरण के प्रभाव में या राजनीतिक, सामिक तथा सामाजिक भय प्रवृत्ति प्रलोभन के कारण अभ्यस्त ही रह जाते हैं।^{६६} परन्तु आशेष की मनोस्थिति में जब वह अपना संतुलन खो बैठता है और उसका चेतन मन उसके अचेतन मन को बहाए रखने में असमर्थ

६१ प्रेमचन्द, 'निमन्त्र', पृ. ६—१।

६२ प्रेमचन्द, 'निमन्त्र' पृ. १२।

६३ प्रेमचन्द, 'रंजुमि' पृ. १४४।

६४ प्रेमचन्द, कर्मभूमि पृ. ११०।

६५ प्रेमचन्द, कर्मभूमि पृ. १११।

६६. Allport Personality : A Psychological Interpretation p. 500

ही जाता है तो प्रेमचंद मन में बसे हुए भाव वस्तुस्थिति की चिंता छोड़ सब प्रकार के भय प्रसोमन की उपेक्षा कर अपने वास्तविक रूप में फूट पड़ते हैं।^{१८८}

प्रेमचन्द ने पात्रों की इस प्रकार की मनोस्थिति का छद्मप्रयोग किया है और उनके हृदय की परतों को खोसने का प्रयास किया है। सिपाहियों द्वारा पकड़े गये अपने पुत्र बलराज को देखकर प्रेमायम' का मनोहर दोनों क्रांतिवर्तियों को धक्का देकर बोला—'छोड़ दो नहीं तो घबछा न होना'।^{१८९} यहाँ हिताहित की पूर्णावहेलना करके मनोहर का पुत्र स्नेह उसके चेतन हृदय के धक्का को उठाकर समझ पड़ा। सामान्य मनोस्थिति में सिपाहियों का घातक उसकी भिन्नी बाँधे रहता। इसी प्रकार अपनी छोटी बहन बिद्या के पति को हथियाने के अपराध पर गायत्री की अन्तःश्रुति उसे निरन्तर कोसती रहती थी पर बिद्या के प्रति उसकी सहानुभूति कभी प्रकट नहीं हुई। परन्तु बिद्या को मृत्यु-संख्या पर पड़ी देखकर एक दिन गायत्री का ममिनी स्नेह उसके चेतन मन के सभी बाँधों को तोड़कर वह निकला और वह फिर झुका कर बीस-बीसकर रोने लगी।^{१९०} गायत्री की-सी नारी का भगिनी-स्नेह आशेष में ही प्रकट हो सकता था। इसलिए, लेखक को इसे इस प्रकार की मनोस्थिति में माना पड़ा।

'कामाकल्प' का नायक चक्रवर्त द्वारा रचे गेता था जिसने सिद्धान्तप्रियता की भौंक में कष्टकारीय मार्ग को स्वेच्छा से अपनाया था फिर भी आशेषपूर्ण मनोस्थिति में चलने चला के भाई को अकारण इतनी मार लगाई कि वह उसके बाद मर पमा पर स्वस्थ न हो सका। बाद में चक्रवर्त को स्वयं अपने कुहल्य पर श्रानि^{१९१} और आश्चर्य हुआ था। आशेषपूर्ण अवस्था में उसके अत्यन्त शबदगुण को प्रकट करके प्रेमचन्द ने यह सिद्ध कर दिया कि पद पाकर सबको मर हो जाता है।^{१९२}

प्रेमचन्द के उपन्यास इस प्रकार के असंख्य स्वभावों से भरे पड़े हैं जहाँ उन्होंने पात्रों की आशेषपूर्ण स्थिति में उनके अग्रत्यक्त गुणावगुणों का चित्रण करके उन्हें सु और 'कु' के मिश्रित गुणों से युक्तोपयुक्त मानव के रूप में उपस्थित किया।

^{१८८} Ruck, 'Psychology and Life' p. 163.

"... Many painful emotions experienced during childhood are very early repressed from consciousness but continue to influence behaviour and adjustment all through life."

^{१८९} प्रेमचन्द, 'प्रेमायम' पृ० १६।

^{१९०} प्रेमचन्द, 'प्रेमायम' पृ० १६६।

^{१९१} प्रेमचन्द, 'कामाकल्प' १२६।

'मात्र करने अनुभव हुआ कि रक्तमन की वृत्तिने गुण और अन्तःचित्त रूप से उनमें समाप्त होती है। किन्तु गुण और अन्तःचित्त रूप से उनकी अनुपपन्न, चरित्र और सिद्धान्त का अन्त हो रहा है।

(ग) प्रथम पात्रों के सम्बन्धों के लिए

वस्तुबीजन में हम प्रायः प्रायः में एक-दूसरे के ऐसे रहस्यों को जानते होते हैं, जिनके कुछ भाग से घर्षण हो जाए। उन घर्षणों को प्रकट करने का विचार करते हैं। हम अपने हानि-नाश की बात सोचकर ऐसा करने से रूक जाते हैं। पर जब कभी हम उत्तेजित होकर अपना संतुलन खो चुकते हैं तो हमें अपने हितार्थ की चिन्ता नहीं रहती और हम परिणाम की चिन्ता छोड़ उन रहस्यों का उत्पादन कर देते हैं। प्रेमचन्द की सभी प्रकार से जानते हैं कि घोषणा की चक्की में घिसते जाते जाते लोग घोषकों से घनभिन्न नहीं। उनमें घोषकों का मज्जा छीड़ने की शक्ति भी है। पर ऐसा करने में अपनी मज्जा कम और हानि अधिक देखकर वे रक्त के बूट पीकर रूक जाते हैं।^१ २ वे जानते हैं कि “जब दूसरे के पाँवों से अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों के सहजाने में ही कुशल है।”^३ ४ पर वह कैसे हो सकता था कि प्रेमचन्द घोषकों की कलाई खोलने से रूक जाते। इसलिए उन्होंने यथाकदा घोषित पात्रों को घ्राण की मनोस्थिति में लाकर, उन्हें कुछ समय के लिये एकदम निडर बनाकर उनसे घोषकों का सम्बन्ध करवाया है।

‘गोदान’ में जब होरी की यात्रा को विपरीत की पड़ताल करने पुलिस पाँव में धाई और होरी यात्रा के मुखियों की सभा से अलग होकर दारोगा की पूजा करने जाता तो धनिया ने घ्राण में एक झटके के साथ अशोका उससे छीन लिया। गौड़ कच्ची होने के कारण कुछ गई और सारे रुपये ठगाने वाली पर फिर पड़े और धनिया नामिन की भाँति फुँकार कर उठी : “ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है, बेटा”

पर के प्राचीन रातदिन मरें और जाने-जाने की तरफें सत्ता भी पहनने की मजबूर न हो और अंजुरी भर रुपये लेकर जाता है सम्भव बचाने। ऐसी बड़ी है ऐसी इज्जत।” धनिया की ऐसी घ्राणमयी फुँकार को सुनकर दारोगा का मुँह खर-सा निकल आया पर वह इतनी बस्ती हार मानने वाला न था। खिचियाकर बोला “तुम्हें ऐसा मामूल होता है कि इस घाँसान की लाला ने हीरा को फँसाने के लिये तुम नाम को बहुर दे दिया।” धनिया ने हाथ मटकाकर उसे निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया “तुम्हारी तहकीकात में यदि यही निकलता हो तो यही लिये। पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ी।” देख लिया तुम्हारा ध्याय और तुम्हारी धनकर्म की बीड़। मरीचों का पला काटना बुरी बात है; दूध का दूध और पानी का पानी करना बुरी बात है।^५ ६ वह केवल दारोगा पर ही चोट करके न रह गयी उसने नेताओं की भी कपारी ठोकर मलाई, जब वे रुपये उठा रहे थे “हम बाकी चुकाने के मज्बूर रुपये

१ १ प्रेमचन्द प्रेमचन्द पु. १६ : “दयालु सिर अभीराते के पैरों लगे रहता है, छोटे रक्त को रूखा रखने में ही सम्मती भर्त्स है।”

१ ४ प्रेमचन्द ‘गोदान’ पु. १।

१ ५ बी. ५ १८५।

मांगते थे किसी ने न दिए। आप धनुरी भर रुपये ठमाठन निकाल दिए। सब जानती हूँ। बाँट-बखरा होने वाला था सभी के मुँह भीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुलिया हूँ गरीबों का धून बूसने वाले।”^१ १ यनिया एक बार उत्तमित हो हो गई कि उसने मगसी पिछड़ी सारी कसर निकाल ली। धाबेस में उसने बहू कर दिया था जिसका सामान्य स्थिति में विचार करके भी वह काँप उठती।

‘प्रतिमा’ की मामिबा प्रेमा सदा अपने पति की दबीम रही थी पर जोश में आकर वह पति के जोश की चिंता छोड़ भरी समा में बुरकर मंज पर से सबको घट कर देती हुई तुल्लुइबाबी पर काबू पा लेती है और पति की ओर संकित करके मरब उठती है ‘यदि किसी ने इस समा में बिम्ब डालने का प्रयत्न किया तो उसके इस काम को हेय समझती हूँ।’^२ २ सामान्य स्थिति में वह यह सोच भी नहीं सकती थी कि उसमें इतना साहस है। एकधर का पिता बख्शर भी रिमासत के रेजिस्ट्रार मि० बिम के प्रति अपना आभोस धाबेस में ही प्रकट कर सका था “मि० बिम, मैं तुम्हें आबमी समझता था परन्तु तुम पत्थर निकले। मैंने जिसनी तुम्हारी धुसामर की यदि ईश्वर की करता तो मोक्ष पायाता।”^३ ३ अपने होस में वह मि० बिम को कमी ऐसी बाँट नहीं धुना सकता था।

(घ) पात्रों से आत्महत्या कराकर कथानक को सफेद करने के लिए

प्रेमचन्द के उपन्यास आत्महत्याओं से भरे पड़े हैं। धारचर्च होता है कि अपनी समस्त रचनाओं में अहिंसा के सिद्धान्त का समर्पन करने वाला लेखक बिना किसी प्रकार के संकोच के अपने उपन्यास के कथानक को सफेद करने भर के लिए निरपराधी पात्रों का सदा बाँट देता है।

प्रेमचन्द के किसी पात्र का जब विकास रुक जाता है और वह कथानक के मा किसी अन्य पात्र के विकास में बाधक होने लगता है और लेखक की समझ में नहीं आता है कि उसका क्या किया जाए तो उससे पीछा छुड़ाने के लिए वह उससे आत्महत्या करा देता है। ऐसा करवाने के लिए लेखक उसे बीरे-बीरे ऐसी मनो स्थिति में ले आता है कि वह अपनी जीवन-व्यापी पराजयों तथा असफलताओं के लिए किसी धन्य को बोधी न ठहराकर अपने को ही उत्तरदायी मानने लगे। इस प्रकार अपने प्रति स्वामि का भाव उसमें इतना भर जाता है कि वह अपने आपकी संसार पर व्यर्थ का बोझ समझने लगता है और किसी समय धाबेस की तरफ में निराशा के गहनतम क्षण में, अपने जीवन का अन्त कर देता है।

१ १ प्रेमचन्द, ‘प्रतिमा’ पृ० १८२।

२ २ प्रेमचन्द, ‘प्रतिमा’ पृ० ८२।

३ ३ प्रेमचन्द, ‘आत्महत्या’ पृ० १९१।

सेवासुदन में सुमन का पिता कृष्णचन्द्र जब तक अपनी बदमासी का भूख कारखाना सुमन को ही समझता रहा तब तक वह धारमहत्या की नहीं बल्कि सुमन को मार डालने की बात सोचता रहा पर ज्यों ही उसका बुद्धिकोण बदला और वह अपने को ही सब कुछ के लिए दोषी ठहराने लगा वह उत्तरोत्तर धारम-भक्ति से भरता गया और धारमहत्या के रूप में प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार होया गया ।^१ गंगाधर के प्रति उसके अन्तिम शब्द विचारणीय हैं— मैं अब बहुत दिन न जीऊँगा । और कभी पद्माक्षिणी सुमन से तुम्हारी जेंट हो जाए तो कह देना कि मैंने उसे खमा किया । उसने जो कुछ किया उसका दोष मुझ पर है पाब से दो दिन पहले तक मैं उसकी हत्या करने पर तुला हुआ था पर ईश्वर ने मुझे इस पाप से बचा लिया ।^{११} गंगा में डूब मरने से पहले ज्ञानचंकर की मनोस्थिति भी इसी प्रकार की हो जाती है । वह कहता है 'भायाचंकर का कसूर नहीं प्रेमचंकर का दोष नहीं यह सब मेरे धारम की कूट सीमा है । मैं समझता था मैं स्वयं अपना विचार हूँ पर अब मासूम हुआ, मैं इसके हाथों का शिकार था ।'^{१२}

आत्मरक्षण का चित्रण

वस्तु-प्राप्त के व्यक्तियों की भाँति उपन्यास के पात्रों के मन में भी अनेक ऐसी प्रणियाँ पकी होती हैं जिन्हें खोले बिना उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचाना जा सकता । उनमें से कुछ प्रणियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें वे समझते या पहचानते तो होते हैं, पर उनके अनैतिक असामाजिक या किसी अन्य रूप में सन्वास्थ होने के कारण उनका उल्लेख नहीं कर पाते और उन्हें हृदय में छिपाए सदा मानसिक यातना मोपते रहते हैं । इनके अतिरिक्त उनकी अनेक मानसिक समस्याएँ ऐसी भी होती हैं, जिनके अस्तित्व को तो वे महसूस करते हैं पर उनके वास्तविक स्वरूप को जान सकना उनकी सामर्थ्य से बाहर होता है । मनोवैज्ञानिक की तरह उपन्यासकार भी अपने पात्रों की आन्तरिक बुद्धियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करता है ।

१ & Murray 'Explorations in Personality' p. 526-527 :

"When an individual experiences frustration, in so far as he does not allocate responsibility for the unhappy occurrence in an objective way — he may react with emotions of guilt and remorse and tend to condemn himself as the blameworthy object."

Ruch 'Psychology and Life' p. 422-431 :

"At times, the process of displacement has the extreme result of causing aggression to be turned against the self, instead of against substitutes in the environment. This is particularly evident in suicide."

११ प्रेमचन्द 'उपहार', पृ. २२० ।

१११ प्रेमचन्द 'प्रेमचन्द' पृ. १९० ।

अपने पार्यों के परिचित्रित का विषय

अपने पार्यों के परिचित्रित के लिए प्रेमचन्द भी विभिन्न मनोस्थितियों में अपने पार्यों में उठ रही विचारों की तरफों उनकी परस्पर विरोधी प्रकृतियों द्वारा उत्पन्न संत-संतर्पण, उनकी शुद्ध इच्छाओं तथा भवत्वाकांक्षाओं उनके भाव-व्याप्त के सुख-स्वप्नों याचिका का विचार करते हुए या पार्यों से करवाते हुए उनके हृदय में पैठें पाते हैं और मदा-कषा उनके वास्तविकता की ऐसी घटनाओं का उत्सर्जन भी कर देते हैं, किन्तु उनके हृदय-मण्डल पर एक स्थायी छाप लगा दी हो—ऐसी छाप जो उनके चरित्र विकास में विशेष रूप से योग्य होती रही हो। पार्यों का मनचित्रण करते समय प्रेमचन्द कभी तो सर्वज्ञ बनकर उनके मन में हो रहे उत्तार-चढ़ाव का परिचय करने लग जाते हैं। मानो वह उनके हृदय-क्षेत्र में घासना लगाकर वहाँ का घासों देखा हुआ अपने पाठकों के लिए रिसे' कर रहे हों और कभी स्वयं पाठकों और पार्यों के बीच में से हटकर उन्हें अपने आप अपनी मनोव्यथा कहने देते हैं—स्वयं कवनों के रूप में। असह्य मनोवेदना के कारण कोई पात्र तो नहीं पाता और घाभी रात के समय काट पर झटके-झटके अपने मन की जगमग सीसी छोड़ देता है जिससे जीवन की उसकी याचिका हो उठती है और वह अपने आप से बातें करता हुआ किसी उबेड़-बुन में लग जाता है जिसमें उसकी तात्कालिक उत्तेजनाओं के कारणों की चर्चा रहती है। पर इस सीसी में प्रेमचन्द अधिक नहीं रमते। बहुधा वह इन दोनों स्थितियों को मिला देते हैं। इसमें भी पार्यों से कम कहना और और स्वयं घटिका कहना उन्हें विशेष रुचिकर है। पार्यों की मनोव्यथा पर टीका-टिप्पणी किए बिना एक कदम भी आगे बढ़ सकना उनके लिए कठिन है। पार्यों की मनोव्यथा का मनमाना चर्चा लगाने की छूट वह पाठकों को नहीं देते।

वास्तव्य जीवन की असफलता का निरीक्षण

अपने घातक के 'मनोवैज्ञानिक' कहे जाने वाले उपन्यासों की तरह प्रेमचन्द के उपन्यासों का मुख्य मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या करना नहीं था तो भी वह अपने पार्यों की अनेक असफल प्रतीत होने वाली व्यवस्था प्रतिक्रियाओं की तरह में मोटा लगाकर उनके अव्यवस्थित प्रेरकों (मोटिव) को बूझने का प्रयत्न करते हैं। अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द जब धोपित गरी की समस्याओं को उठाते हैं तो उनके वास्तव्य जीवन की असफलता का मूल कारण मनमैन विवाह को उद्घाटित हैं। सुमन निर्मला, मनोरमा जालपा याचिका उनकी सभी प्रमुख नायिकाओं की समस्याओं का आधार उनके मनमैन विवाह से ही होता है। वह उन्हें भारतीय धार्मिक महिमाओं के मार्ग पर चलाते हुए उनमें पातिव्रत्य धर्म के प्रति निष्ठा झूट-झूटकर भर देते हैं और जब कभी भी उनकी प्रेम भावना और कर्तव्य भावना में टकराव होता है पति के प्रति उनकी कर्तव्य-भावना की ही विजय होती है।

अपनी परिस्थितियों में समझौता करने के लिये इतना सचेष्ट होने पर भी यदि वे साम्प्रत्य जीवन में सफल नहीं हो पातीं तो क्यों ?

निर्मला—निर्मला को ही में । माना कि बहुत्र प्रभा के कारण उसका विवाह पण्डित समर के एक विभुर पुत्री सोठाराम से हो गया, पर जब वह परिस्थिति की पर्यायता को बिना किसी प्रकार की धानाकानी के स्वीकार कर लेती है—सुमम की भाँति बिद्रोह नहीं करती—धीर पति के प्रति अपने कर्तव्य को समझते हुए उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करती है और सोठाराम भी चाहता है कि वह उस पर प्रेम, तो कोई व्यक्ति कारण नहीं दिखाई देता कि वह गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने में असफल रहे । पर होता ठीक इसके उलट है । मरसक चेष्टा करने पर भी वह अपने पति से प्रेम नहीं कर पाती और अपनी सीत के पुनः सम्भारण से बचने की साध कोषिष्ट करने पर भी उसकी ओर सिंधी नहीं जाती है । भला ऐसा क्यों ? उसका उत्तर दूढ़ने के लिए प्रेमचन्द को उसके मनबेचन मन की परछाईं खोजनी पड़ी । उन्होंने बताया कि अपने मनबचने में ही निमग्न रह कर बैठती है जिसकी उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी । पति की अनुपस्थिति में वह प्रतिदिन निद्रावस करती कि वह उससे प्रेम करेगी पर उसको देखते ही वह संकोच से बच जाती है । क्योंकि जब तक ऐसा ही एक भारती उसका पिता या उसके सामने वह सिर झुकाकर बैध चुपकर निकलती थी । जब उसकी समस्या का एक व्यक्ति उसका पति था । वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु^{१११} समझती है । उसको देखते ही उसकी प्रभुत्वता परमात्म कर जाती थी । पर उसकी अनुपस्थिति में "निर्मला जब वस्त्राभूषणों" से अलंकृत होकर भाइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौंदर्य की सुपमापूर्ण धामा देखती तो उसका हृदय एक उत्पन्न कामना में तड़प उठता था । उस वस्तु उसके हृदय में एक ज्वाला-सी उठती । मन में भाता उठ कर में ज्वाला जला डू । अपनी माता पर शोक भाता सोठाराम पर कोष भाता^{११२} ।

यहाँ निर्मला के रूप में प्रेमचन्द ने ऐसी मनोवृत्ता का चित्र खींच दिया जिन्हें मानसिक गैरु सक्त (साइकिक इम्पेडेंट) कहते हैं । ऐसी मनोस्थिति में व्यक्ति अपने पति परमा पत्नी को पिता ममता माता के रूप में देखने लगता है और पूर्वसंस्कारवश उससे यौन-सम्बन्ध निषिद्ध भावते हुए उनसे दूर भागता है । ऐसे लोगों का साम्प्रत्य जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता । इस प्रकार के पुण्य व हनी जिनकी सेक्स भावना पर पर वृत्त नहीं होती वैश्वा या पर-पुण्य से यौन सम्बन्ध गाँठने की ओर प्रवृत्त

होत हैं क्योंकि उन्हें के माता पिता की काटि से बाहर मानते हैं।^{११४} निर्मला के मन्धाराय की ओर सहसा खिच जाने का कारण भी कदाचित् यही था। पूर्व-संस्कारों के कारण वह सोतायम से तो भागती रही पर उसकी प्रवृत्त खेद भावना ने अपनी सृष्टि के लिए मन्धाराय को जो उसकी अपनी उमर का था पर उसका अपना नहीं सौत का बड़का था बूढ़ा निकाला। मन्धाराय के प्रति अपने मन को दूषित भावना से दूर रखने की परतक कोशिश करने पर भी उसे अपने पास देखकर उसका हृदय पूसा नहीं समाता था।^{११५}

सुमन—रामपत्य जीवन में सुमन की असफलता का कारण भी प्रेमचन्द ने उसके प्रभवेतन मन में संचित वास्तविक के संस्कारों में ढूँढा है। सुमन लाड़-प्यार में पली थी। उसके उबार पिता ने उसकी सुख-सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा था। इसलिये, पिता के प्रति उसका लगाव भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया था। पितृ-स्नेह से वंचित होने पर वह स्वाभाविक ही था कि वह अपने पति से उसी प्रकार के स्नेह और उबारण की मांग करती। उसका विवाह हुआ यथावर से, बिसे पत्नी की अपेक्षा रुपये से अधिक प्यार का और वा स्वभाव से ही कृपण था। सुमन का प्रभवेतन मन अपनी सृष्टि के लिए यथावर में बही मुख डूबने तथा जिनके कारण उसका पिता उसे अपनी ओर आकृष्ट किए हुए था^{११६} पर वहाँ उसे एक भी ऐसा मुख न मिला। इसलिये, उसके चरित्र विकास में वहनी प्रगति तो वहीं से पड़ गई। यथावर की कृपणता से उसे विरोध बिड़ हो गई थी^{११७}। फिर भी सुमन उससे समझौता करने की कोशिश करती रही। पर जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उसकी इस प्रतिनिधता का उसके पति के निकट कोई मूल्य नहीं बल्कि वह बस समझ कर उसकी ओर खाने में अपनी बड़ाई समझता है, तो उसकी बिरोह भावना पाग

११४ Fielding, 'Self-Mastery through Psycho-analysis' p. 100:

"This parent image is the cause of many cases of impotence—called psychic impotence—because in the wife the husband's Unconscious sees a member of the mother-sister class, with whom on account of the incest barrier it is impossible to experience the satisfaction of the sex act. For the same reason, it is the cause of frigid wives. And impotence, and frigidity in themselves are recognized as futile breeding grounds for marital disharmony."

११५ प्रेमचन्द, 'निर्मला', पृ. १२८।

११६ Fielding 'Self-Mastery through Psycho-analysis' p. 25-26:

"In every human male, from the moments of its earliest impressions, there begins to form a mental image of one woman—usually the mother or her substitute—who is closely concerned with the task of nourishing and catering to the wants of the infant. The female child is similarly influenced by the father images—which may include brother, grand father or other male relatives."

११७ प्रेमचन्द 'निर्मला' पृ. १२।

थी। बेस्मा गोली से प्रपणी घबस्था की तुलना करने पर तो मानी उसकी घाँबें
 उस पर। उसने देखा उसके पति और उसके समाज की दृष्टि में पतिव्रता स्त्री
 के प्रेक्षा बेस्मा का मुख्य धर्मिक है। पर यह क्यों? स्वतन्त्र मनन द्वारा इस
 सन का उत्तर यह इस प्रकार पायी है "यह (बेस्मा) स्वाधीन है भरे पैरों में
 हिमा है। उसकी बुद्धि कुसली है, इसलिये चाहकों की भीड़ है। येरी दुकान
 नद है, इसलिये कोई सड़ा नहीं होता। वह कृत्तों के मोकने की परवाह नहीं करती
 में लोकनिम्ना से करती हूँ।"^{११०} मनुष्य सदा उसी प्रकार का व्यवहार करने की ओर
 प्रवृत्त होता है जो स्पष्ट रूप में उसे धर्मिक से अधिक पुरस्कृत कर दे। पर जिस
 समाज में सबावार तो किसी जिनगी में न साया जाये और दुष्टचार पुरस्कृत
 किया जाए, वहाँ दुष्टचारियों को ही बढ़ावा मिलेगा।^{१११} सुमन ने जब यह देखा
 कि पतिव्रता पापी के त्याग और तपस्या की महत्ता का गान करने वाला समाज
 उसकी पूर्ण प्रवेष्टना करता है और उन्हे कुसदाओं को सम्मान देता है, तो उसका
 दिम बहटा हो गया। यहीं से उस में उन्मुखता का बीजारोपण हुआ।

इस प्रकार प्रेमचन्द यह स्पष्ट कर देते हैं कि निर्मला सुमन प्रादि नायि
 कामों के दाम्पत्य जीवन की असफलता के कारण उनकी विवाहित जीवन की
 परिस्थितियों में ही नहीं बास्त्यावस्था में उनके मन पर पड़े संस्कारों में भी निहित थे।
 संस्कार ग्रहण करने की दृष्टि से बास्त्यावस्था के प्रथम पाँच वर्ष सबसे अधिक
 महत्वपूर्ण होते हैं।^{११२} इस अवसर पर बासक के मन पर जो संस्कार एक बार
 पड़ जाते हैं वे बड़े होकर चेतन मन द्वारा मने ही भुला दिये जायें पर अवचेतन
 मन पर उनके इतने गहरे छाप बने रहते हैं कि उनके सगजाने में ही वे उसके करिब
 को बिना-विरोध की ओर विकसित करते रहते हैं।^{११३}

किशोरावस्था का चित्रण

संघन का अन्तिम चरण और योगन का प्रथम चरण—किशोरावस्था—किसी

११० प्रेमचन्द 'सेवक' पृ. ४९।

१११ Rich, 'Psychology and Life' p. 593.

"People behave in ways that give them the greatest apparent rewards
 If the conditions surrounding the growing child reward delinquent be-
 haviour and frustrate legally accepted behaviour delinquency will
 result."

११२ Fielding, 'Self Mastery through Psycho-analysis' p. 20

"The first five years of our lives, for instance, are the most fertile in
 receiving impressions and gaining new experience. It is by far the most
 impressionable period of life."

११३ Ibid. p. 20

....psycho-analysis has shown that the very impressions which we
 have forgotten, leave behind the deepest traces in our mental life and
 become determining for our whole later development."

भी युवक या युवती के जीवन में एक मार्मिक काम होता है क्योंकि इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वे भोग पूर्णकषेण पुरुष या स्त्री बन चुके होते हैं और दूसरे सेक्स के प्रति उनकी सेक्स भावना बनामास ही जाग उठी होती है। एक ओर दूसरे सेक्स के प्रति आकर्षण की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है और दूसरी ओर उन पर समाज व्यवस्था तथा नैतिक भावना का संकुच रहता है। इन दोनों पक्षों में झूझ घर्ष होता है। एक उन्हें पाश्चात्तिक तुष्णार्थों की पूर्ति की ओर ले जाना चाहती है तो दूसरी उनके विरोध पर बल देती है। परिणामतः उनके हृदय में एक तुफान-सा मचा रहता है। सज्जावश या लोकनिन्द्या के भय से उनकी भावनाएँ उनके हृदय के किसी कोने में छिपी पसती रहती हैं, पर क्योंकि उन्हें अपने प्रेम का उपयुक्त पात्र मिल जाता है और उन्हें विश्वास हो जाता है कि उनका प्रेम विरस्कृत नहीं होगा उनके प्रेम की निर-संशय ओतस्विनी लोकमर्यादा के समस्त बाँधों को तोड़कर समझ पड़ती है।^{११८}

यद्यपि प्रेमचन्द का लक्ष्य कमानी जीवन का चित्रण नहीं था तो भी वह क्रियोरावस्था प्राप्त नायक-नायिकाओं की मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हैं। विनय और सोनिया जैसे संयमी युवक-युवती को ही लें। दोनों के हृदय में समान रूप से भाव समी हुई है पर कुछ तो संकोचबध कुछ लोकनिन्द्या के भय से और कुछ इस डर से कि कहीं जटावनी में वे एक-दूसरे की वृष्टि में गिर न जायें उनके साथ उनके होठों तक धाकर रुक जाते हैं। जब विनय और सोनिया दोनों ही को विदित होने लगा कि प्रेम की जब वह स्त्री और पुरुष में हो, बाधना से निमित्त रहना उतना आसान नहीं बिठना कि उन्होंने समझा था दोनों एक-दूसरे की ओर दबी धाँस से देखते थे पर संकोचबध कोई बाधनीय करने में व्यवसरन होता था। दोनों ही सज्जाधीन थे पर दोनों ही मीन माया का आघात समझते थे।^{११९}

कई बार युवक-युवतियाँ एक-दूसरे को समझने में झूल भी कर जाते हैं—विश्र पात्र की ओर उनका प्रेम बनामास ही समझ पड़ता है, वह था तो पहले है ही किसी दूसरे की ओर प्रवृत्त होता है या इस पात्र की ओर प्रवृत्त नहीं हो पाता। कायाकल्प की नायिका मनोरमा चक्रवर को अपना स्वस्व वर्णन कर देने पर भी जब वह पाती है कि उसके प्रेम को मनोवित्त बाहर नहीं मिला और उसका प्रेम-पात्र किसी दूसरी ओर उलझ चुका है, तब उसे बहुत दुःख होता है पर वह करे क्या प्रेम की दिशा मोड़ सकना

११८ Landis, Adolescence and Youth McGraw Hill, New York, 1932, p. 231 :

"As one has experience in love-making, he learns to release his emotions fully only in situations where he is sure they will be returned. With increasing age and experience, complete release of emotions is another is always accompanied by caution lest one be hurt by the lack of reciprocation of the emotional experience."

उसकी सामर्थ्य से बाहर है। वह मन में कहती है "मैंने अपने मन के भाग उठाए अधिक प्रकट कर दिए, जिसका मेरे लिए उचित था। मैंने वैधर्मी तर्क की पर तुमने मुझे न समझा या समझने की कोशिश ही न की। अब तो भाग्य मुझे उगी धीरे भिगवा रहा है जिससे मेरी जिंदा बनी हुई है।" ११० इन पंक्तियों में मनोरमा की गंभीर व्यथा का अनुमान लगाया जा सकता है। यक़्पूर से प्रेम के प्रतिपाद का कोई लक्षण उल्लिखित न जाने पर अस्वाभाविक निराशावस्था में ही उगने वाला विसर्गार्णव गे विवाह करने की स्वीकृति दे बी बी।

मुक़्क़ धीरे मुक़्तियाँ एक दूसरे पर किन्हीं घणाघ प्रणयार्थी के कारण ही मृग्य हो जाते हैं। बाध नहीं। वे एक दूसरे पर लट्टू इग्निय भी हाथ हैं कि न एक दूसरे की प्रपाम मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ण करते हैं या कम न कम गीगा करते प्रतीत होते हैं। ११२ विनय धीरे मोहिया का ही मैं। विनय पर उगकी माँ का कठोर नियंत्रण रहा। उस वह माँ की नाराजगी के डर से भय ही महसूस रहा हो ११३ वास्तव में वह उससे दूर भागने के प्रयत्न में रहा। ११४ इग्निय उस पत्नी मक़्की की आवश्यकता की जो उसकी माता की-नी बग़ार न होकर विनीत हानी, जिन देखकर उसे अपनी माँ की याद न जाती। ११५ मोहिया में उग से गुरु नियम पर धीरे मोहिया पर उत्तरोत्तर मृग्य होना गया। ११६ मोहिया भी अपनी माँ के कठोर

१११ प्रकट, कमर्निस १० २१८।

११२ Hays 'Psychology Applied to Life and Work' Prentice Hall New York 1920 p 41।

"One of the first discoveries about marriage on the part of the psychological investigation is the fact that a boy and girl do not fall in love as a result of deep emotional love. They fall in love with each other because each answers, or answers to, another state of the dominant psychological needs of the other."

११३ मैकलर 'मैकलर' पृष्ठ ३१७।

"मिलन मुक्त है। अपने मेरे विन की उत्पत्ति ही नहीं है। वह उन कारणों का उत्तर है जो इन में हैं। इन कारणों का उत्तर है। वह उन प्रयत्नों का उत्तर है जो इनके लिए अपनी प्रतीति का उत्तर है। इनके उत्पत्ति का उत्तर है। इनके उत्पत्ति का उत्तर है।"

११४. ११५. पृष्ठ २१६ 'मैकलर का उत्तर' में भी उल्लेख मिल सकता है।

११६ Hays 'Psychology Applied to Life and Work' p. 321।

"Some persons react to an early emotional liaison by a degradation towards it—This is particularly evident in the case of a mother's domination of her son. One son may react against his mother's over-attentiveness—and what a male who reacts like very little of his own mother."

११७ मैकलर 'मैकलर' पृष्ठ ३१६।

"मैकलर उत्तर है। अपने मेरे विन की उत्पत्ति ही नहीं है। वह उन कारणों का उत्तर है जो इन में हैं। इन कारणों का उत्तर है। वह उन प्रयत्नों का उत्तर है जो इनके लिए अपनी प्रतीति का उत्तर है। इनके उत्पत्ति का उत्तर है। इनके उत्पत्ति का उत्तर है।"

अपहार से व्यक्ति थी वह अब तक स्नेह से चिन्तित थीर उपेक्षिता ही रही थी पर विनय का ध्यान अपनी ओर खिंचता देख उसकी इस भावना की पूर्ति होती पड़ी और उल्टे-उल्टे उस पर मुग्ध होती गयी^{११} और इसके निकट पहुँचती गई। दूर से तो वह विनय की नेत्रों पर छायाओं को ही देख पाई थी पर अ्यों-अ्यों वह उसके निकट पहुँचती गई, विनय पर से उसका विश्वास उठता गया^{१२} यहाँ तक कि बाद में उसे विश्वास हो गया कि विनय से उसका सामान्य जीवन सुखी न बन सकेगा^{१३} और इच्छा होने पर भी वह उसके साथ विवाह के जीवन में बँधने से कतराती रही।

ये मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रेमचन्द ने जान-बूझकर रखे हैं या उनके व्यापक गहरे अनुभव के आधार पर उनका समावेष्ट अनुयायन ही हो गया हो पर कहना न होना कि इनके समावेष्ट से पात्रों के प्रेम-विकास की स्वाभाविकता बढ़ गई है। इसी प्रकार मनोरमा द्वारा अपना सबसे अधिक दिया जाने पर भी कायाकल्प का चक्रवर्त अपनी माता के साथ एकाकीकरण (आइन्स्टीनिकेशन) के कारण उसे पूर्ववर्ण स्वीकार न कर सका और जीवन भर वह अहिंसा जिसमें उसे अपनी माता के बहुत से गुण पर-गृहस्थी में सीतला आदि मिल गए थे तथा मनोरमा के बीच ही मदकता रहा इनमें से बहुत तो किसी को पूरी तरह छोड़ सका और न ही किसी को पूरी तरह अपना सका।

अन्तर्दृष्टि

प्रेमचन्द के औपन्यासिक पात्रों के जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं या किसी भी मनुष्य के मन में जोर संघर्ष को जन्म दे सकती हैं पर उनमें उठना हीन अन्तर्दृष्टि नहीं खिड़ता चित्तों की उस परिस्थिति में आघात की जा सकती थी।^{१४} उनके पात्रों को बहुधा स्वाभिमन्यता और पराधीनता उबारता और संकीर्णता कर्तव्य-नियमता और काममातृत्व आदि परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में से एक को अपनाया पड़ता है पर एक ही जगह आत्मविश्वास की भावना और निरुपेक्ष करने की क्षमता इतनी प्रबल है और दूसरे पाप-मुक्त कर्तव्य-नियमता आदि का

११ गरी, पृष्ठ ४९०।

“जब विनय अपनी माता के कदों पर से अपना हाथ हटा देता है, तो सौदा के सम्बन्ध में कुछ कहती है। मैं उनसे (शरीर आदि) से) तुम्हारी माता-मित्रा मांगूँगी फिर तुम्हें मना दूँगी।”

१२ Happer 'Psychology Applied to Life and Work' p. 70

१३ प्रेमचन्द, 'साम्प्रति' पृष्ठ ४१३।

१४ रामरत्न भट्टाचार्य, कथार प्रेमचन्द, नवीननयन प्रेस बनारस पृष्ठ ३९० :

“उमें (उमें) नहीं कि दुर्लभ चरित्रों को अन्तर्दृष्टि से नहीं समझना है। प्रेमचन्द अपने चरित्रों को जो शिरोधार्य से आगे बढ़ा देता है और उन्हें अन्तर्दृष्टि से नहीं समझना है।”

सम्बन्ध में उनकी मायताएँ इतनी सुसज्जी हुई हैं कि उन्हें किसी भी परिस्थिति में वह कितनी ही गम्भीर क्यों न हो अपना पक्ष निश्चित करने में देर नहीं लगती। वह पक्ष-समाप्ति हो या निष्पत्ति यह बूझती बात है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति समाज जीवन और उनके तत्त्वों का मुख्य इतने सुस्पष्ट है कि उनके चेतन मन में न तो सम्येह और शंका के लिए कोई स्थान रहता है और न ही सम्बन्धित धर्म के लिए। इसलिए उनके चेतन मन में द्वन्द्व नहीं उठता। उठता भी है तो अधिक देर नहीं रहता और वे अपने लिए मार्ग निश्चित कर लेते हैं। जैसे ही उनके व्यवचेतन मनके किसी काम में पहले बैठे हुए संस्कार उन्हें निर्णीत पक्ष से विस्तृत विरोधी विचारों से बाधे। प्रेमचन्द का प्रयत्न सदा यह रहता है कि उनके चरित्र पोजिटिव हों।^{११४}

अन्तर्द्वन्द्व का समाधान

मानसिक व्यग्रता का पर्याप्त कारण विद्यमान होने पर भी पात्रों के मन में द्वन्द्व न उठना और उठना भी तो सामान्य कई बार उन्हें अस्वामाविश-सा बना देता है। 'प्रतिज्ञा' की नायिका प्रेमा जब अपने प्रेमी अपूर्वराय के जिस पर वह भी जान से मर चुकी है विवाह से विवाह करने का निश्चय कर लेने पर उसके मित्र प्रो० दानराज से विवाह करने के लिए बाध्य हो जाती है तो जीवन की ऐसी विकट समस्या भी उसे व्यग्र नहीं कर सकी। उसके मन में द्वन्द्व नहीं छिड़ता कि वह क्या करे, अतिसुख अपना मार्ग निश्चित कर लेती है कि वह प्रो० दानराज से जिसे वह प्रेम नहीं करती विवाह कर लेगी क्योंकि उसका प्रेम उसके कर्तव्य के अधीन है।^{११५} विवाह के पश्चात् भी अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आई कि कोई और स्त्री होती तो घुम मुसकर भर जाती पर प्रेमा विचलित तक नहीं जाती। एक बार जब उसके प्रेमी तथा पति की प्रतिद्वन्द्विता अपनी चरम-सीमा का छु जाती है तब वह थोड़ी देर के लिए विचलित व्यवहार होती है पर छीन्न ही वह इस निश्चय पर पहुँच जाती है कि 'प्रम पति के लिए है, पर अति सदा अपूर्वराय (प्रेमी) के साथ रहेगी।'^{११६}

'सेवासदन' की नायिका सुमन के जीवन में मिलने उदयान-वदन आए उठने कदाचित्त ही प्रेमचन्द की किसी अन्य नायिका के जीवन में पाये होंगे पर वह गम्भीर से गम्भीर परिस्थिति में भी नहीं पड़ती। यहाँ तक कि पति द्वारा घर से निकाली जाने पर भी उनके मन में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं छिड़ता बल्कि वह अपने पति को अफ़सूस उठार देती है "हाँ यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते। मेरे लिए पाप क्यों लगाते हो ? क्या मुझीं मेरे मनवाता हो जहाँ मजबूरी करनी नहीं पेट

११४ प्रेमचन्द 'हृत्त सिन्धु' पृष्ठ ४१।

११५ प्रेमचन्द 'प्रतिज्ञा' पृष्ठ २८।

११६ वही, ९-२१।

पात भू गी ।^{१३०} घर से चलते चलते भी वह इसी प्रकार सोचती है "वह घर में य मुँह भी नहीं बैसना चाहते, तो फिर उन्हें क्यों मुँह दिखाऊँ ? क्या ससुर में सब स्त्रियों के पति होते हैं ?" ^{१३१} बाद में वह बेस्वा बनी घोर हठी पर न तो बेस्वा भूति स्वीकार करते समय उसमें कोई घमण्डना उठा घोर न ही उसे छोड़ते समय । वह प्रजीव भाटु की बनी हुई नारी थी । जीवन के विभिन्न घोर सम्भावित मोड़ प्रहार करते समय उसके मन में संघर्ष उठाकर घोर हो परस्पर विरोधी भावों में से एक को चुनने में उसकी बबरपुट तथा आत्म-यौरेख घोर लोक-भाव की उसकी भावनाओं में दम्भ दिखाकर बैकक उसे अधिक भानवी बना सकता था पर ऐसा हुआ नहीं ^{१३२} बिना किसी हिचकिचाहट के उसका निर्णय आत्मयौरेख के पक्ष में ही होता रहा ।

इसी प्रकार 'प्रेमाश्रम' में प्रेमसंकर की पत्नी अम्मा केवल वर्ममीयता के कारण विदेश से लौटे अपने पति का मुँह नहीं बैसना चाहती । एक क्षण के लिए भी उसकी पति-भक्ति तथा धर्म याचना में संघर्ष नहीं उठा क्योंकि उसका विश्वास तो पहले से ही किया-कराया रहा था कि "वह अपने प्राणों से अपने प्रासुखिब स्वामी से हाथ भी सकती थी किन्तु अपने धर्म की प्रवृत्ति करना प्रवृत्ति लोक-निम्ना का सहन करना उसके लिए असम्भव था ।"^{१४}

प्रेमचन्द की समस्त खोपित नायिकाओं में निर्मला का स्थान सर्वोच्च है पर वह भी जीवन की प्रत्येक परिस्थिति से समझीठा कर लेने का ऐसा सिद्धांत बना लेती है कि उसमें मानसिक संघर्ष उठने का कोई अवसर ही नहीं आता "ओ होना का हो चुका । अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ी । पुन-जन्म में न जाने कौन से ऐसे कर्म क्रिये के बिसका यह प्रायश्चित्त करना पड़ा ।"^{१५} यद्यपि उसका प्रवृत्ति मन उसे जनमानों में ही मम्माराय की घोर से आता रहा, लेकिन मन में उसने सदा पति के प्रति अपने कर्तव्य को ही प्राथमिकता दी थी ।

मदन के नायक रमानाय को लें । आलपा के सम्मुख अपनी प्रमीरी की खीयें मारते तथा बहानेसानी करते समय अपने का मदन करते समय घर से भागते समय कभी तो उसके मन में हृदय छिड़ना चाहिए था पर नहीं प्रत्येक परिस्थिति में प्रवृत्ति मार्ग पहले से ही निश्चित हुआ पड़ा था । वह बिना किसी मानसिक संघर्ष

१३०. प्रेमचन्द 'सिद्धार्थ' पृष्ठ ४५ ।

१३१. वही, पृष्ठ ४६ ।

१३२. डॉ. हनुमान मदान, 'प्रेमचन्द : एक विवेचना' पृष्ठ ४५ ।

"(निर्दोष की प्रत्येक स्थिति में) प्रेमचन्द के कल्पे (कल्प में) हृदय के हृदय और उनके मस्तिष्क की हृदयता का विश्वास यही किया है । वेला शक्ति भी हुआ है कि वे चरित्रचित्रण से अधिक सामाजिक समस्यकों में अधिक रुचते हैं ।"

१४. प्रेमचन्द, 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १९४ ।

१५. प्रेमचन्द, 'निर्मला' पृष्ठ ९४ ।

के घाने बढ़ता गया। पहली बार उसमें अन्तःश्व तब छिड़ा जब कि वह पीरीस पर छूटकर सँवर करने के लिए गया था और रास्ते में उसने आसपास का फटी-पुचनी तथा भसी-कुर्बानी बोली पड़ने सिर पर मटका उठाए देखा था। उसमें भी उसकी चिन्ता ही अधिक व्यक्त हुई है और अन्तःश्व कम।^{१४२}

इस प्रकार प्रेमचन्द के पात्र कुछ सिद्धान्तों को अपना लेते हैं और जीवन भर उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते रहते हैं। यह उनके विकसिततम उपन्यासों व भावकौतुक के बारे में भी कहा जा सकता है। मोदान का नायक होरी उपन्यास के प्रारम्भ में ही सिद्धान्त यह मान लेता है कि जब दूसरों के पाँवों तले अपनी पर्यन बनी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।^{१४३} और जीवन भर उसके अनुसार ही चलता रहता है। ऐसी स्थिति में उसमें अन्तःश्व छिड़ने का प्रसन्न ही नहीं उठता।

चरित्रचित्रण की माटकीय प्रणाली

अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए प्रेमचन्द प्रत्यक्ष प्रणाली को तो अपना लेते ही हैं, साथ ही साथ माटकीय प्रणाली द्वारा भी उनके चरित्र के अनेक रूपों को प्रकाश में लाते जाते हैं। ऐसा करते हुए वह अपनी ओर से वर्णन बिस्लेषण या टीका-टिप्पणी आदि कुछ न करके स्वयं जीवन में से निकल जाते हैं और पात्रों के चरित्रिक गुणवर्णनों को उनके जीवन की विविध घटनाओं, उनके कथोपकथनों अन्य पात्रों पर पड़े उनके प्रभावों और उसके आधार पर की गयी उनकी टीका-टिप्पणी के रूप में उनके चरित्रिक गुणवर्णनों को व्यक्त होने देते हैं। डा० इन्द्रनाथ मदान को लिखे अपने एक पत्र में उन्होंने यह बात स्पष्ट भी की है—“मेरे कथानक का संयोजन इस प्रकार करता हूँ कि उसके द्वारा मानवीय चरित्र के सुन्दर और स्वल्प संश्लेष की अभिव्यक्ति हो सके। यह प्रक्रिया बड़ी उत्तम होती है। उसमें मुझे कभी किसी व्यक्ति से प्रेरणा मिलती है कभी किसी घटना से कभी किसी स्वप्न से”।^{१४४}

घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण

उपन्यास-रचना में प्रेमचन्द का यूसोहोम्य चरित्रचित्रण तो था नहीं पर फिर भी अपने अल्प अर्थात् समाज का अर्थार्थ चित्रण की पूर्ति के लिए उन्हें अनेक पात्रों की आवश्यकता पड़ी। उन सबसे पात्रों के सतृप्त जीवन को केन्द्र बनाकर उन्होंने अनेक ऐसी घटनाओं का निर्माण किया जिससे उनका चरित्रोद्घाटन भी होना जाए

^{१४२} प्रेमचन्द ‘प्रेम’ पृष्ठ ११।

^{१४३} प्रेमचन्द ‘मोदान’ पृष्ठ २।

^{१४४} डा० मदान प्रेमचन्द : ७७ विवेचना।

धीरे-धीरे समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण भी होता चले । उनके उपन्यास में एक ऐसी घटनाओं से भरे पड़े हैं जिनका समावेश उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र प्रकाशन के लिए किया है । इनके घटनाएँ तो पात्रों के चरित्रिक गुणों को इस स्वाभाविकता से व्यक्त करती हैं कि घायब बड़े से बड़े वर्णन, मनोविश्लेषणात्मक चित्रण तथा कथोपकथन भी उनकी उसी स्वाभाविक धमिल्यक्ति न कर पाते । उन्होंने घटनाओं का प्रयोग पात्रों के चरित्र को विकास की ओर से जाने के लिए, उनके विभिन्न चरित्रिक गुणों के प्रकाशन के लिए तथा उनकी तात्कालिक मनोस्थिति की ओर संकेत करने के लिए किया है ।

राष्ट्रीय प्रणाली को अपनी पर भी प्रेमजन्य ने अपनी विशेषता बनाए रखी है । पात्रों को उन घटनाओं का मनमाना वर्णन करने की स्वतंत्रता यह नहीं देते । इसलिए चरित्र उद्घाटन करने वाली प्रत्येक घटना का वर्णन करने के बाद निम्न प्रकार का स्पष्ट कर देते हैं कि घटना-विशेष का उद्देश्य उन्होंने किस उद्देश्य से किया है ।

(क) चरित्र विकास के लिए

उपन्यास के चरित्र में ही प्रेमजन्य अपने प्रमुख पात्र—नायक-नायिका के जीवन में कुछ-एक घटनाएँ घटित करके उन्हें इस मोड़ पर ले जाते हैं जहाँ से उनके चरित्र का विकास उस दिशा में किया जा सके जो लेखक की अभीष्ट हो । एक-दो घटनाएँ ही पात्र का उस भ्रम समस्या से साक्षात्कार करा देती हैं जो उत्तरोत्तर घटित होती हुई ऐसी परिस्थितियों को जन्म देती जाती है जिनमें वे जीवन भर लगे रहते हैं । 'प्रतिष्ठा' के चरित्र में ही पूर्ण के पति वसन्तकुमार की मृत्यु कराकर, उन्हें उस समाधि के, उसे विधवा बना देते हैं । विधवा होने पर वह कमलाचरण की पिता की धांधला होकर उनके घर में आ जाती है और सभी से वह उनके परिवार के लिए और अपने लिए भी एक समस्या बन जाती है—ऐसी समस्या जो उपन्यास के अन्त तक नहीं सुलझ पाती । 'सिंहासन' की नायिका सुमन का चरित्र विकास जिस दिशा में निर्यता है वह केवल एक घटना के कारण सम्भव हुआ था—उसके पिता का फँस होना । उसका पिता दुरोगा कुल्लुखण्ड घुसखोरी के अधिभोग में न पकड़ा गया होता तो न उसका गवाहरी जैसे व्यक्ति से अनजान विवाह होता और न ही उस साम्प्रदायिक जीवन का परिस्थान करके वैधवा-वृत्ति को स्वीकार करने के लिए बाध्य होता पड़ता । इस एक घटना से लेखक ने उसके चरित्र-विकास को अभीष्ट दिशा दे दी है ।

इसी प्रकार यदि निर्मला का पिता न मरता तो श्रेष्ठ न हो सकने के कारण उसका विवाह विपुल मुनी लोत्ताराम से न होता और न ही वह विवाह के रूप में हमारे सामने आती । निर्मला के पिता की मृत्यु की घटना द्वारा ही लेखक उसे ऐसी परिस्थितियों में डाल देता है जो उसके चरित्र को एक अलग पक्षी और विवाह के

रूप में विकसित करती रहती हैं। 'रंभूमि' में भी देखिए ! सोनिया माँ से मड़कर घर से बाहर निकल आती थी। कौन जानता था कि वह कहीं जाएगी। पर प्रचानक प्राय की दुर्घटना में विनय नामक एक युवक को बचाने के बाव यह उस परिवार के सम्पर्क में आ गई और वहीं से विनय और सोनिया का विकास प्री-प्रेमिका के रूप में होने लगा। 'कर्मभूमि' की नायिका सुन्या के चरित्र का विकास भी मंदिर वाली घटना के काण्ड हुआ था। धावेस में आकर एक बार जो वह मधुर सत्याग्रहियों पर साठियाँ पड़ती देखकर उस आन्दोलन में नूर पड़ी कि समाज-सभा उसके जीवन का मुख्य धर्म बन गया जिसके लिए पहले वह अपने पति को छोटा करती थी।

(घ) चरित्र के विविध कर्णों के प्रकाशन के लिए

कई बार प्रेमचन्द छोटी-छोटी घटनाओं के समावेश से ही पात्रों के विभिन्न चरित्रिक गुणों का चित्रण बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से कर रहे हैं। वह पात्रों को किसी परिस्थिति विशेष में डाल देते हैं और उस समस्त परिस्थिति का और उसके प्रति पात्र की प्रतिक्रिया का इस ढंग से वर्णन करते हैं कि घटना के साव-साव पात्र के चरित्र का एक नवीन रूप भी उद्घाटित हो जाता है।

'निर्मला' उपन्यास में साँप वाली छोटी सी घटना बड़ी सुन्दरता से तोताराम की पेम जोल देती है। निर्मला को प्रभावित करके अपनी ओर खींचने के लिए तोताराम उसे अपनी बहादुरी की अनेक कर्णें सुनाता रहता था। पर एक दिन प्रभा मक उनके घर में कहीं से साँप निकल आया। साँप का नाम सुनते ही तोताराम के होठ उड़ गए। वह पन्डित-भारो का और तो मचाता रहा पर स्वयं बाहर निकलकर नहीं आया। प्रभा तो तब जब मन्साराम साँप को एक ही बार से समाप्त करके उसे हाकी पर सटकाए जमा था रहा था। इस एक ही घटना से तोताराम की कायदा और मन्साराम की बीरता व्यक्त हो जाती है और साथ ही उन दोनों के चरित्र की सुसजा भी हो जाती है।

'सेवासदन' में सुमन द्वारा परसिंह को स्वर्ण कंयन लौटाने की घटना का वर्णन करते सेखर पाठकों पर उसके चरित्र की पवित्रता की जाक बैठता है कि बेरदा कृति स्वीकार कर लेते पर भी उसने बेरमाओं के हृदयकों को नहीं अपनाया था। 'कायाकल्प' में जबपर द्वारा जल्लासिंह के भाई की पिटाई वाली घटना के समावेश से सेखर उसके चरित्र विकास में आए एक नए मोड़ की ओर पाठकों का ध्यान दिसा देता है। इस घटना ने जबरन तक को यह मानने के लिए बाध्य कर दिया कि वह और पर के बमबद ने उसकी भी मति भ्रष्ट कर दी थी।

गोदान में भी बमकी बंसीह की और हीरा के घर की ठसारी वाली घटनाओं द्वारा सेखर हीरा के स्वभाव के दो विभिन्न कर्णों का चित्रण करा देता है। बही हीरा जो बसों के छीरे में कुछ-एक पैसों के लिए अपने भाई हीरा से बोला करना आदण था उसके पर छोड़कर जमे जाने पर बिना किसी हृदय से उसकी छोटी वा

सारा काम ही नहीं करता प्रत्युत् जब पुलिस उसकी तलाशी लेने जाती है तो धाक बचाने के लिए दपए ज़खार रोककर बालेबार को बूँस तक देने के लिए तैयार हो जाता है।

(ग) तात्कालिक मनोस्थिति के चित्रण के लिए

प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में यत्र-तत्र घटनाओं का समावेश अपने पात्रों की तारकालिक मनोस्थिति के चित्रण के लिए भी करते रहते हैं। बेस्याबुति छोड़ते समय सुमन ने अपने हाइकों में से एक की बाड़ी जसा बी एक के मुँह पर रोमन नैट कर दिया। इस घटना के उत्प्रेष द्वारा प्रेमचन्द ने उसकी उस समय की मनोस्थिति का बड़ा सजीव चित्रण किया है। उससे बेस्यामय के बाठावरण तथा वहाँ के व्यक्तियों — हाइकों के प्रति सुमन का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। प्रेमचन्द में अपने पुत्र बलराज को पकड़े हुए बेसकर मनोहर द्वारा सिपाहियों को बल्का दे देने की घटना से मनोहर की तत्कालीन भावेषपूर्ण मनोदशा का उद्घाटन हो जाता है। 'गवन' में रामनाथ के भाग जाने वाली बटना में उसकी कायरता तथा पत्नीमन-वृत्ति मुखरित हो उठी है। 'बरबाण' में कमलावरण द्वारा अपने सारे परतग फाड़ देने तथा फूँटों को उड़ा देने वाली बटना में विरजन की दृष्टि में अपने को ऊँचा उठाने की उसकी प्रवृत्ति अपने वयार्थ रूप में प्रतिबिम्बित हो उठी है।

कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण

पात्रों के कथोपकथन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का यह सिद्धान्त रहा है कि 'वार्तालाप केवल रस्सी नहीं होगा चाहिए। प्रत्येक वाक्य की किसी चरित्र के मुँह से निकले उसे पात्र के मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए। इसलिये पात्रों की प्रत्येक वार्तालाप द्वारा उन्होंने यदि उनके चरित्र के किसी न किसी धर्म या रूप के चित्रण की चेष्टा की हो और इस प्रयत्न में उनके पात्रों के कथोपकथन कभी स्वामाधिकता से अधिक लम्बे हो गए हों और उनमें से भाषण या उपदेश की रीति भी आने लगी हो या भावार्थ की बात नहीं। उनके उपन्यासों में कई संवाद या ऐसे हैं कि उनमें भाग लेने वाले प्रत्येक पात्र के चरित्र के किसी न किसी धर्म का उद्घाटन तो हो ही जाता है साथ ही उन सब के चरित्रों का तुलनात्मक परिचय भी मिल जाता है। प्रेमचन्द बहुधा किसी पात्र के किसी विशेष गुणगुण के प्रकाशन के लिए ही संवाद की रचना करते हैं भावी अन्य पात्र उसे बातों में सम्मिलित या उकसाकर किसी समस्या के बारे में उसका दृष्टिकोण या किसी विशेष परिस्थिति में उसकी प्रतिक्रिया को जानने के प्रयत्न में हों।

उदाहरण के लिये प्रेमचन्द ने एक और कार्य भी किया है जो उनकी अपनी विवेचना है। सभानों द्वारा वह कबल एक पात्र या उसमें भाग लेने वाले सभी पात्रों की ही तत्कालीन मनोस्थिति का उद्घाटन नहीं करते प्रत्युत् उसमें समूह वर्ग आति

या समाज की तत्कालीन वृत्ति उसमें व्याप्त जागरण की सहर या उसने चरित्र की प्रभोपति स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो उठती है। वही लेखक का ध्यान सबाह द्वारा किसी एक या अनेक पात्र के चरित्र उद्घाटन की धोर न होकर समूचे समाज के किसी चार्ित्रिक गुण की अभिव्यक्ति की धोर होता है।

चरित्र का तुलनात्मक परिचय

सबाहों द्वारा प्रेमचन्द परिस्थिति विशेष में पात्रों के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण तो कर ही देते हैं, साथ ही उनके उस दृष्टिकोण के प्रेरक चार्ित्रिक गुणावधुओं का तुलनात्मक परिचय भी कर देते हैं। प्रेमचन्द ने इस रूप में सबाहों का ब्रू प्रयोग किया है। 'निर्मला' उपन्यास के चारम्भ में ही नायिका के माता-पिता का गरमान्वरमी में हुआ संवाद एक ऐसी घटना को तो जन्म देता ही है जिससे उपन्यास के कथामक को गति मिली और नायिका के चरित्र को विकास के लिए मार्ग भी साथ ही उससे दोनों—कन्याली तथा चरयमानु की—नर्म प्रकृति का भी प्रच्छ परिचय मिल जाता है। इसी प्रकार का उप्पररक्त वाला दम्पति सेवासदन में मिलता है—सुमन और सबाधर। जर छोड़ते समय अपने पति के प्रति सुमन के धर्मों में—'क्या तुम ही मेरे अल्लाहा हो ? कहीं मजहुरी कहीं वहीं पेट पास सूँधी क्या संसार में सब स्त्रियों के पति होते हैं ?'^{१४२} में उसका उग्र स्वभाव निखर पड़ता है। स्वभाव की वैसी ही उग्रता निर्मला की माता कन्याली के इन धर्मों में भी स्पष्ट हो सकती है 'तुम्हारा जर तुम्हें मुबारक रहे मेरे लिए पेट की पेटियों की कमी नहीं ईश्वर की दृष्टि में अक्षय प्राणियों के लिए जगह है क्या मेरे लिए नहीं।'^{१४३} सुमन और कन्याली तो तत्काल स्वभाव वाली थीं ही पर जब उन्हें पति भी उभी प्रकार नर्म प्रकृति के मिल गए तो उनकी मृहृदी धन से न चल सकती थी और न जली। ये दोनों संवाद उपन्यास के कथामकों को तो गति देते ही हैं साथ ही संवाद में भाव लेने वाले दम्पति के स्वभाव की प्रगटा को भी स्पष्ट कर देते हैं।

इसी प्रकार निर्मला उपन्यास में जब मोटेराम दास्नी बाबू भासचन्द के पास उनके पुत्र तथा निर्मला के विवाह की बात आगे बढ़ाने के लिए जाता है तो उस समय भासचन्द और रणीनी के संवाद में^{१४४} लेखक बड़ी सुन्दरता से पति-पत्नी के चरित्र की तुलना उपस्थित कर देता है। स्पष्टवाचिनी रणीनी यह कह चुकने के बाद कि 'चाक बात करने से संकोच क्या ? हमारी इच्छा है, नहीं करते। किसी का कुछ मिया तो नहीं है जब निर्मला की माँ का कष्टापूर्ण पत्र पढ़ी है तो पसीब उठती है। उसका पसीब उठना लेखक ने उसके इन धर्मों में कितनी मार्मिकता से व्यक्त

१४२ मेमकर 'सेवासदन' पृ ४८-४९।

१४३ मेमकर, 'निर्मला' पृ ११०।

१४४ वही, पृ २३-२४।

किया है ‘मभी ब्राह्मण पीठा है न ?’। मासचन्द को जो रंगीनी के कन्धे पर रखकर बन्दूक बमनावा जाता था, हृदय में समझी कइया को भीप अपना पैतरा में बरभना पड़ा ‘तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी। अब तुम फिर रंग बरबली हो। यह तो मेरी छाती पर मूँच बसना है। बाखिर तुम्हें मेरे कुछ तो मान-अपमान का विचार करना चाहिए।’ इस संवाद में वहाँ रंगीनी की स्पष्टताविराद दयाविराद तथा बाकपटुता का पता चलता है, वहाँ उसके पति मासचन्द की नीच प्रकृति—जनसामुपता का भी विशेष परिचय मिल जाता है।

इसी प्रकार ‘मदन’ में बाल्मीकि से विवाह पर दिए हुए धानपण कैसे बापिस लेने चाहिए, जब इस समस्या पर रमानाय तथा दयानाय में बार्तालाप होता है तो उसमें पिता-पुत्र के परस्पर विरोधी स्वभावों का अच्छा विन्दन हो जाता है। एक ओर बैठा है जो अपनी पत्नी से पहले बापिस माँने की धेला रात की बोरी से उठा माना अपने लिए सहज समझता है और दूसरी ओर उसका पिता है जो धार्मिक कठिनाइयों के होते हुए भी कुछ लेना प्रारम्भ करने के विचार तक को प्रथम नहीं लेना चाहता। पिता और पुत्र के चरित्र में कितना महान् अंतर है। कर्मभूमि में अमरकान्त और सकीना के संवाद में^{१४८} उन दोनों के चरित्र की तुलना कितने सुन्दर ढंग से हुई है। वहाँ अमरकान्त के इस कथन में ‘क्यों न इसी वस्तु हम ओर तुम नहीं लेते बाएँ ? उसकी बातना गज होकर भाव जठरी है, वहाँ सकीना के इस उत्तर में उसके प्रेम की पवित्रता झलकती है ‘नहीं वह बाहिरा गृह्यत है। प्रसती गृह्यत वह है जिसकी बुवाई में भी पितार है, वहाँ बुवाई है ही नहीं जो अपने प्यारे से एक हजार कोस दूर होकर भी अपने को उसके गले से मिला हुआ हैबती है। सकीना का यह उत्तर स्पष्ट प्रमाण है कि उसका प्रेम ‘दूब के उछान की तरह नहीं कि घाया और उबल पड़ा प्रत्युत् उसमें खानर की-सी गहराई है।

इस प्रकार पात्रों के चरित्र विकास की विभिन्न अवस्थाओं का तुलनात्मक रीती में चित्रण करने के लिए प्रेमचन्द ने कल्पोपकरणों से बृहत् काम लिया है। कौरा बिस्फेपखारमक बरौन पाठकों को उभा देता पर संवादों से रोचकता निरंतर बनी रही है।

अपति पात्र का चरित्रचित्रण

प्रेमचन्द कई बार किसी एक पात्र के गुणवर्णनों की प्रकाश में माने के लिए या उसके चरित्र के विविध रूपों के चित्रण के लिए संवादों की रचना कर देते हैं। ऐसे संवादों में भाग तो दो या दो से अधिक पात्र लेते हैं पर चरित्र-प्रकाशन उनमें से केवल एक का ही होता है। कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य पात्रों ने बार्तालाप का प्रारम्भ ही उस पात्र के उस गुणवर्णन को उपादने के लिए

किया हो। 'रंगभूमि' में अरों द्वारा मुरदास के घर को घायल तथा देने पर मिटुषा और मुरदास में जो वार्तालाप होता है, वह इस सम्बन्ध में उत्प्रेक्षणीय है —

"मिटुषा ने पूछा — 'दादा' अब हम रहेंगे कहाँ ?

मुरदास—'दूसरा घर बनाएँगे।

मिटुषा—'और फिर कोई साथ लगा दे ?

मुरदास—'तो फिर बनाएँगे।

मिटुषा—'और कोई सी साख बार लगा दे ?

मुरदास ने उसी बातोचित उत्तर देकर दिया—'तो हम भी सी साख बार बनाएँगे।'^{१४६}

इस संवाद की रचना केवल यह दिखाने के लिए हुई कि मुरा बड़े बीबट का भावनी है। उसमें घट्टट हिम्मत है। 'रंगभूमि' के प्रारम्भ में ही यश माडीवान-मुरदास संवाद में भी मुरदास के चरित्र के कई रूप प्रकाश में आ जाते हैं। इसमें उसका मनमौजी स्वभाव तो स्पष्ट होता ही है। उसके इन शब्दों ॥ कि 'कोई ऐसी जगह बताओ जहाँ बन मिले और मित्रमयी से पीछा छूटे' तथा 'घर बाकी की कमाई लाकर किसी को मुँह दिखाने साधक भी न रहेंगे' में उसका प्रारम्भ-वीर्य भाव पूर्णरूपेण प्रतिबिम्बित हो उठा है।

इसी प्रकार 'निर्मला' के ३० चिन्हा का प्रथम परिचय हमें निर्मला से विवाह करने के प्रश्न पर उसके और उसकी माँ के बीच हुए वार्तालाप^{१४७} से स्पष्ट हो जाता है। उसके ये शब्द उसके चरित्र का दर्पण बन जाते हैं और उसमें उसका भावनी स्वभाव नमक पड़ता है। "कहीं ऐसी जगह छापी करवाइये कि जूब रुपये मिलें और न सही एक लाख का तो भाग हो। वहाँ अब क्या रखा है। बकरील चाहते रहे ही नहीं। बुढ़िया के पास अब क्या होमा— 'मैं आपदा नहीं चाहता बस एक लाख सकर हो। या फिर कोई ऐसी आपदा वाली जगह मिले जिसकी एक ही लड़की हो।" माँ के यह कहने पर कि औरत जाहे कैंसी हो वह उत्तर देती है "बन सारे ऐबों को छिपा देना। मुझे वह गालियाँ भी सुनाए तो न न कर। बुढ़ाक गाय की लाठ फिसे बुढ़ी मालूम होती है।" 'कर्मभूमि' में जब सुखदा बेस छोड़ने से पहले अमरकान्त से मिलने के लिए तैयार होती है उस समय का सुखदा सखीना-संवाद^{१४८} बड़ा ही सुन्दर बन पाया है —

सखीना—'मैं क्या सदिशा कहूँगी ? बहुती घायल इतना ही कह दीजिए—मैंना देखी जाती बहूँ पर अब तक सखीना जिन्दा है, घायल उसे मैंना ही समझते रहिए।

१४६ मेमकन्ट, 'रंगभूमि' पृ. १४५।

१४७ मेमकन्ट, 'निर्मला' पृ. १६।

१४८ मेमकन्ट, 'कर्मभूमि' पृ. ४२।

मुन्ना ने गिरेय मुन्ना से कहा—‘उनका तो तुम से दूसरा रिश्ता हो चुका है।’

सकीना ने जैसे इस बार को काटा—‘तब उन्हें बीरत की बहरत भी पाज बहन की बहरत है।’

मुन्ना ने सकीना को इस प्रकार की बातों में इसीलिए समझाया था कि उसे तत्कालीन उसके मन की बात जान सके। सकीना के उत्तर ने उसकी तसल्ली कर दी। सकीना के एक-एक शब्द में उसकी सहृदयता मजबूती और शक्तिपटुता छूट पड़ रही है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस प्रकार के संवाद भरे पड़े हैं जिनका निमित्त पात्रों के चरित्र के किसी विशेष रूप के उद्घाटन के लिए ही हुआ है।

जाति या वर्ग की मनोवृत्ति का चित्रण

उपन्यासों में प्रेमचन्द का ध्यान व्यक्ति विशेष के चित्रण की ओर न रह कर तत्कालीन समाज के विभिन्न रूपों तथा उसकी प्रवृत्तियों की ओर रहा है। वहाँ वह किसी पात्र विशेष का चरित्रचित्रण करते हैं वहाँ वह पात्र भी प्रायः वर्ग प्रतिनिधि के रूप में ही हमारे सामने पेशता है। कई बार वह वर्ग प्रतिनिधि के रूप में किसी एक पात्र को न लेकर एक से अधिक छोटे-छोटे पात्रों को लेकर समाचारमय शैली में उस समाज या वर्ग की तत्कालीन मनोवृत्ति का विवरण कर देते हैं। यहाँ ‘प्रेमचन्द’ के उस संसार का उल्लेख किया जा सकता है जो कारिग्यों द्वारा गाँव के सामाजिक का पानी चोक देने की बटना की बर्बाद करते हुए सुनसु चौपट और कारिगर मियाँ में हुआ।^{१२०} इस संसार में हम लोगों द्वारा व्यक्त नाबना केवल उनकी ही नहीं समस्त मान्य की है। सुनसु का यह कहना कि साठी है किस दिन के लिए? और कारिगर का उपक्रम है कि किस के बूते पर साठी बसेयी गाँव में रह कौन क्या घन्टाह ने पट्टों को बुन लिया और सुनसु के प्रत्युत्तर ‘पढ़ते नहीं हैं न सही बूढ़े तो हैं। हम लोगों की जिरगानी किस काम आएगी मैं मान की पीड़ित तथा शोषित जनता में एक ओर तो बहने की क्षम सुनसु की दिखाई देती है और दूसरी ओर उस पर पड़ी उनकी असहाय अवस्था की छाप भी नजर आती है।

ग्राम पात्रों द्वारा टीका टिप्पणी

पात्रों की अपनी बिया-प्रतिक्रियाओं द्वारा उनके विशेष चरित्रिक गुणधर्मों के प्रकाशन के साथ-साथ प्रेमचन्द दूसरे पात्रों पर पड़े उनकी क्रिया प्रतिक्रियाओं के प्रभाव को भी चित्रित करते जाते हैं। किसी पात्र के सम्बन्ध में ग्राम पात्रों के बिचार प्रकट करने के लिए तथा उन पर पड़े उसकी बिया-प्रतिक्रियाओं के

सम-सामूहिक प्रभाव की व्यवस्था करने के लिए, वह उसे अन्य पानों के बीच बर्बाद का विषय बनाकर उनसे उस पर या उसके चरित्र के किसी विशेष संग पर टीका टिप्पणी कराते रहते हैं। उस पान के वहाँ उपस्थित न होने के कारण प्रथम पान उसके चरित्र के बारे में या चरित्र के किसी विशेष गुणधर्म के बारे में अपना स्वतंत्र मत प्रकट कर सकते हैं।

प्रसंसा

उन पानों की टीका-टिप्पणी कहीं भिन्न-प्रसंसा प्रस्ताव शम्भु-निम्ना का रूप न ग्रहण कर ले इसके लिए उनका प्रायः यह प्रयत्न रहा है कि टीका टिप्पणी करने वाला या बाले उदत्त हों पर वहुधा वह कोई उदत्त पात्र नहीं भिन्न पाता और उन्हें पान के किसी विशेष गुणधर्म की भाव बैठानी होती है तो वह प्रसंसारमक टिप्पणी उस पात्र की अनुपस्थिति में उसके किसी शत्रु से करवाते हैं और निम्नात्मक मत उसके किसी शत्रु-सम्बन्धी या भिन्न भावि का प्रकट करते हैं जिससे उनके मत विपरीत माने जायें। जिस व्यक्ति की प्रसंसा उसकी अनुपस्थिति में उसके शत्रु तक भी करे, उसके चरित्र में प्रत्यक्ष कोई प्रसाधारण गुण होगा। जो अपने सम्बन्धी और मित्रों तक की दृष्टि में भी विरा हुआ हो उसके चरित्र में अकर कहीं कोई प्रसंगति होगी।

निष्पक्ष आलोचना

निष्पक्ष आलोचनी बहुत कम भिन्नते हैं फिर भी 'निर्मला' के मोटेराम साहू की इस रूप में निष्पक्ष कहा जा सकता है कि निर्मला की होने वाली सास रंगीली से न तो उसकी कोई शत्रुता थी और न ही कोई भाई बारा। निर्मला के विवाह की बात टूट जाने पर भी वह बापिस भीटकर रंगीली की प्रसंसा मुक्त कण्ठ से करता है 'सड़के की नाँ समकता बेबी की।' 'उने पुत्र और पति दोनों ही की समझना पर उसकी कुछ न बनी।' १२३ 'प्रेमाश्रम का कादिर भियाँ अपने भाँव का निष्पक्ष नेता था। मनोहर की आत्मसम्मान की भावना ने उसे मोह लिया था। पीछे जाँ की हत्या के अपराध में मनोहर के पकड़े जाने पर वह भाँव भाँवों से कहता है 'हम सब के सब कायर हैं, वही एक मर्द है।'

छत्रु द्वारा प्रसंसा

इसी प्रकार, प्रेमचन्द के नायक-नायिकाओं के साहस और त्याग धैर्य और मनोबल सहृदयता और निरुधार्य-भाव आदि की प्रसंसा जब उनके शत्रुओं तक की करते पाते हैं, तो उनके गुणों की प्रसाधारणता पर हमारा बिस्वास प्रमत्त जाता है। 'रंगभूमि' में भूरवाच के धैर्य और त्याग का बयान उसका शत्रु तक करते हैं। आनन्दक का भी यह स्वीकार करना पड़ा कि 'वह (भूरवाच) बड़े जीवट का आदमी

है आशानी से फावू में घाने वाला नहीं।^{१२४} उसके चरित्र के जगनायकत्व की महत्ता की मि० ब्रतार्क एक गानवा है। राजा भूतेशप्रताप से उसकी मातृपीठ के बीच यह बात प्रकट हो जाती है 'हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं भय ऐसे ही (मूरे जैसे) मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर सासन करते हैं।^{१२५} सोफिया से छुट्टे रहने पर भी राजा जालूबी विनय के प्रति उसकी सहृदयता को पहचानने में नहीं झुकती मैं अपनी संजीवता के कारण सोफिया की कितनी ही उपेक्षा कर पर वह सही है इसमें शंका मात्र भी संदेह नहीं।^{१२६} 'यवन' की नायिका आसपा के चरित्र की महानता को उसके प्रति रमा की बेरवा चौहरा एक मान गई। बापिस मौनकर वह रमा से कहती है "मेने बड़े-बड़े कारवाँ और छूटे हुए छाहवों और मुनिव धफसरों को अपगम्य बनाया है पर उनके (आसपा के) सामने जैसे मैं भीगी बिस्वी बनी हुई थी।"^{१२७} इन पात्रों की प्रशंसा उनके धनुषों तक को करते देख उनकी सञ्चरितता पर पाठकों का विश्वास जम जाता है।

मित्र द्वारा निम्ना

प्रेमचन्द को जब अपने किसी पात्र के चरित्रिक दोषों को सिद्ध करके उसके प्रति पाठकों का घृणा भाव जामूठ करना होता है तो उसके बारे में वह उनके धनुषों का मत प्रकट करता उतना आवश्यक नहीं समझते बितना कि उनके सम्बन्धियों या मित्रों का। उनके बारे में वह यह बताना अत्यावश्यक समझते हैं कि वे पात्र अपने तक की दृष्टि में गिरे हुए हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मैसूर को अपने पात्रों के दोषों के बारे में उनके हितु-सम्बन्धियों की राय का स्वयं अपने धनुषों में ही वर्णन करना होता है, क्योंकि ऐसी सम्मतिया उनके हितु-धर्मियों के अपने मन में ही सुरक्षित रहती हैं, किसी अन्य पर टीका टिप्पणी के रूप में प्रकट नहीं हो पाती। कारण ऐसी बातें करना निम्ना करने के बराबर समझा जाता है, और निम्ना मित्रों की की नहीं जाती। 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानसंकर के बारे में उसका बचपन का मित्र ब्रह्मासिंह छोड़ता है 'इस मनुष्य में कुछ बल और पुर्जता का केसा विमलक्षण समावेश हो गया है।^{१२८} उसकी अपनी पत्नी बिद्या की 'प्रति की संकीर्णता पर रोद होता का मैत्रिण कुछ और कहते डरती थी कि कहीं उनकी बुद्धिमत्ता और भी बढ़ न हो पाय।^{१२९} 'रंगभूमि' के विनय की प्रेमिका सोफिया का भी जो उसके लिए निरन्तर मातृमार्ग सृष्टी रही थी उस पर विश्वास नहीं जमता था। 'उसे भय था कि कदाचित् विवाह के पश्चात् उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय न हो।^{१३०} वह विनय के दुःसुख स्वभाव से परिचित हो गयी थी।

इस प्रकार पात्रों के चरित्र के बारे में उनके मित्रों-सम्बन्धियों आदि की मूल्य मारणा जान लेने पर उनके चरित्र की हीनता में हमें संदेह नहीं रहता।

१२४ प्रेमचन्द, 'रंगभूमि' पृ० २१८।

१२५ प्रेमचन्द, 'प्रेमाश्रम' पृ० २४।

१२६ वही, पृ० ८२३।

१२६ वही, पृ० १।

१२६ वही, पृ० २८१।

१२७ प्रेमचन्द, 'रंगभूमि' पृ० २१६।

१२८ प्रेमचन्द, 'जान' पृ० ३१२।

कंकाल में व्यक्तित्व

जीवन की ठिकठ घनुपुष्टियों ने समाज के प्रति प्रसाद के बिस्वास को झँझोड़ कर उन्हें जौन^१ भिम की भाँति व्यक्तित्वादी बना दिया था। समाज की प्रचलित मान्यताओं उसके निर्धारित मूर्खों तथा विधि-नियमों के प्रति उन्हें घोर घनास्था हो गई थी।^२ उन्हें विश्वास हो गया था कि अपनी कड़िबड़ बाराणा के बसीभूत समाज जिस बर्ग को उच्च मान्य और आदर्श समझकर प्रतिष्ठित किए हुए है वह सभी मनुष्यता से कौनों दूर है और अपने पूर्व-ग्रह के कारण वह जिसे बना-बड़ा और निहृष्ट समझकर बहिष्कृत किये हुए है, उसमें अपनी मनुष्यता छिपी है। अपने इसी बिस्वास को व्यक्त करके छिनाबार संघर्ष-पीड़ित मानव प्राणियों में स्वस्थ चेतना जगाने के लिए 'कंकाल' की रचना हुई। इसीलिए 'कंकाल' का मुख्य विषय में मानव कंकाल बने। प्रेमचन्द की कोरी उपवेष्टारमकता को न अपनाकर प्रसाद ने व्यापारमक सीढ़ी से काम लिया और कथानक को ऐसा रूप दिया जिससे कड़िबड़ भारतीय प्रतिष्ठा की पोख झुने और साथ ही इस निष्काशित बर्ग के सतत संघर्षमय जीवन की कठोर यथार्थताओं के चित्रण द्वारा यह दिखाया जा सके कि उन्हें उनकी इस दशा तक पहुँचाने वाले उस तपस्करमय उच्च वर्ग के स्वार्थपूर्ण कुहल्य ही हैं।

दुःखमुक्त पात्र

इस प्रकार क कथानक को निभाने के लिए प्रसाद को एक ठो ऐसे पात्रों की आवश्यकता पड़ी जिनका अस्तित्व ही समाज-व्यवस्था के लिए भारी खतरा समझा जा रहा हो। विजय राय तथा मोहन जैसी कारण खतानें यदुना की-सी प्रविबाहित मातायें गुनहार जैसी माय बेस्वार्थ ललिका के समान बमखूत स्त्रियाँ यँटी की-सी अज्ञात कुल-धीम छोट्टरियाँ हरगवि समाज की दृष्टि में धुलित समझे जाने वाले ऐसे ही मानव प्राणी हैं जो जीवन की कठोर यथार्थताओं से दफ़तरकर मिट्टे-पट्टे अवस्था नारकीय वातनायें भोगते रहते हैं और जिनकी आहों ऊपहों के प्रति उदासीनता का भाव बनाये रहना समाज अपने लिए पीरप की बात समझता है। प्रसाद ने इन सीढ़ों का इनके गुण-दोषों सहित चित्रण किया है, प्रेमचन्द की भाँति इनमें

१ कन्दुपारे यदुनी 'अपराध खत' पृ० ४२।

२ अथर्व 'कंकाल' १, ३।

किन्हीं पात्रस्वरूप नहीं कोई निराश्रित भार से जोख अथर्व पात्र किन्हीं पैर न खतरा है जिनकी भूल में अश्रम बना दिया है वे मनुष्य दुष्टों के साथ जड़ी पतलों के लिए लगे श्री के गुनारे बर्ग का उदाहरण है।

३ अथर्व 'कंकाल' पृ० २१०।

निरोही जैसे लोग कह देता कि जिने जिने छोड़ो यथा अश्वत्थी समझ का बड़ी लव से अविश्व प्रतिष्ठ है।"

कोरी धारसंबाधिता फूटने का प्रयत्न नहीं किया। इस वर्ग की विषयताओं के प्रति प्रसार की पूर्ण सहानुभूति होते हुए भी इसमें से कोई पुष्प-पात्र भीरोदात्त नायक के रूप में विकसित न हो सका और न ही कोई स्त्री पात्र सती-साध्वी नायिका के रूप में। लेखक ने उनके विकास में दृष्टिमत्ता न साकर उन्हें उनके स्वभाव और परिस्थितियों के अनुसार ही दुर्बल और हलमुल रहने दिया है। इसलिए वे प्रेमचन्द के कृत्रिम धारसंबाधी नायक-नायिकाओं की अपेक्षा अधिक सजीव और जीवन के अधिक निकट हो सके हैं।^१

शोपन वर्ग

दूसरी प्रकार के पात्र प्रसार ने उस वर्ग में से जुने को समाज में सदा से उपेक्षासून रहण किये हुए हैं—अपनी योग्यता या गुणों के आधार पर नहीं बल्कि प्रचलित समाज-व्यवस्था की दृष्टियों से अनुचित काम उठाकर—और दीन-हीन प्रसह्य प्राणियों का बौक के समान रखवोपण करके उन्हें कंकाल बनाये जा रहा है। 'गुस्सम' की पात्र में व्यभिचार फैलाने वाले वर्ग के ठेकेदार मठाधीश महन्त निरंजन यन्त्र-उन्म-विद्या की पात्र बीठाकर लड़की से लड़का बना सकने की कुहाई देने वाले ठग रामदेव 'परोपदेवपात्रित्यम्' के सिद्धान्त वाले समाज-सुधारक-वादि सेवक मन्त कूटे प्रेम नाम फैलाकर धनसाधों के धन और सतीत्व दोनों पर हाथ साध करने वाले जन-भोनुप श्रीचन्द अपनी कन्या की विषयतापूर्व स्थिति समझे बिना उसके सतीत्व पर उन्मैह करके उसके लिए समाज के द्वार बन्द कर देने वाले ठाण के पिता इत्यादि का निर्माण इसी रूप में हुआ। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान और क्या ईसाई सब के सब बासना की बेमबती धारा में गड़े चले जा रहे हैं यह दिखाने के लिए लेखक की लतिका के पीछे पागल हुए छिरेले वाले धार्मिक बिदप साहब कत्तामूर्तियों के नाम पर कौमलावल्या मानव-मूर्तियों की टोह में रहने वाले बामन साहब सोने चाँदी के कुछ सिक्कों की बमक दिखाकर धनता नारियों का उनके कुलपीन की बिम्बा किये बिना सतीत्व गष्ट करने वाले मिरजा जैसे कई पात्रों की अवतारणा हुई।

धार्मिक शोपन नहीं

अथपि प्रेमचन्द के पात्रों की तरह 'कंकाल' के पात्रों के भी 'शोपन' और 'शोपित' नाम से दो भेद किए जा सकते हैं तो भी यहाँ यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि प्रेमचन्द के शोपन्याधिक पात्रों की भाँति इस उपन्यास में केवल धार्मिक शोपण को ही शोपण नहीं समझा गया। इस उपन्यास के कई शोपित पात्र धार्मिक

१ रत्नाकर मोरी, 'अज्ञात भी का कथ-साहित्य और कंकाल' अमरा, १९५१।

दृष्टि से तो काफी समृद्ध हैं। निर्दोष द्वारा जो धोपण हुआ वह धार्मिक धोपण न था प्रभुत् वह नैतिक धोपण था। इसी प्रकार किछोरी तारा और नटिका का क्रमशः निर्दोष प्रेमलयेप और बापम द्वारा जो धोपण हुआ वह धार्मिक धोपण नहीं कहा जा सकता। उपन्यास के नायक विजय की समस्या भी धार्मिक न थी बल्कि यदि वह समाज सम्मत स्वीकृत साधरण अपना लेता तो वह बनी मानी सेठ बनकर ऐश करवा होता पर क्योंकि वह समाज के कृत्रिम सत्य का विरुद्धाकार करके व्यापक सत्य की खोज में निकल पड़ा, समाज ने बिड़कर उसके मार्ग में ऐसे कठिने विघ्न दिए कि उसका स्वाभाविक विकास न हो पाया। वास्तव में कंकाल को मूल समस्या ही यह है कि समाज सभी को अपने कठघरे में बन्द करके व्यक्तिवहीन होने बनाए क्या जा रहा है। यह बात कंकाल के पात्रों को इसलिए भी चटखती है कि वे अनपढ़ प्रामीण नहीं प्रभुत् प्राधुनिक युग के आगच्छ नागरिक हैं।

‘तितली’ में व्यक्ति की महानता

प्राचीन भारतीय साधनों से विमुख होकर जमकीली पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने वालों को भारतीय व्यक्तिगत साधना^{११} की जीवनोपयोगिता दिखाने के लिए ‘तितली’ की रचना हुई। ‘तितली’ का सच कंकाल के लक्ष्य से भिन्न नहीं। संस्थावाद की अनिवार्य दुराहवा से व्यक्ति की रक्षा के महान् लक्ष्य की पूर्ति की ओर कंकाल यदि पहला कदम है तो तितली^{१२} दूसरा। कंकाल द्वारा समाज के स्वीकृत भारतीय-धर्म तथा कृत्रिम विधि-नियमों पर बहुरा व्यर्थ कहे हुए उसके प्रति आमकृता फैलाने के प्रयास व्यक्ति की सक्ति की अपरिमितता में कुछ विश्वास पैदा करने के लिए कठोर व्यक्तिगत साधना नितांत आवश्यक थी। इसके लिए उन्हें एक ऐसे पात्र की जरूरत पड़ी जो संस्थावाद के शीपी-मुफानों के घाये पर्वत के समान बड़ बाध—मर्ब के साथ अपना लसाट उगल किये, अपनी साधना में मस्त। सदा से ही उस कसौटी पर खरी उतरती जाने वाली भारतीय नारी के रूप में तितली की प्रवृत्तियाँ हुई, जिसमें नारी और सतीत्व का प्राचीन भारतीय आदर्श मूर्त हो उठा।^{१३} तुलना द्वारा इसका महत्त्व^{१४} दिखाने के लिए पश्चिमी सभ्यता में पत्नी संघर्ष महिला धर्म की रचना हुई, जो भारतीय सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेने

११ मधुबारे काबोरी, ‘कर्मोत्तर प्रश्न’ पृ० १०४।

१२ प्रश्न निर्मा पृ० ११२।

भारतीय आत्मदर्श के मूल में व्यक्तिवाद है किन्तु उसका रहस्य है सम्यक्दर्श को कर्मों से व्यक्ति की सम्पन्नता की रक्षा करना।

१३ बरी पृ० २२०।

“बदल देता। संसार में उनको (मनुष्य को) जोर, दया और दाढ़ बढ़ा किन्तु मैं जानती हूँ कि वह भी नहीं हो सके। इसीसे मैं कभी ऊँचे उठा नहीं कर सकूँ।”

१४ शिन्धुपथ समग्र-सहित का मूल खर्च (जम (प्रश्न एवं उत्तर) कर्मवीर, १९२१।

पर भी उस कड़ी साधना में न टिक सकी।^{१२} इन दोनों के साथ ही सृष्टि हुई समाज की रुढ़िवादिता से व्याफ़ान्त उस वर्ग की जिसमें धनपड़-मनकाड़-ग्रामीण मधुवन से लेकर बैरिस्टर-जमींदार इग्रेडेब तक सभी संस्थाबाध की पक्की में पिघे पले आ रहे हैं।

‘तितली’ में भी छोटियों की एक लम्बी लिस्ट है। मधुवन तितली इग्रेडेब और शैला के प्रतिरिक्त बारा-बिधवा राजकुमारी बेटे-बेटी की चिन्ता में फँसी बिधवा माठा स्वामिगुलारी ब्यसनी पती द्वारा बिरोपसिता बीबी माधुरी कानून और धर्म के ठेकेदारों के भ्रष्टाचारों से सताये हुए देवनन्दन माधो रामजस बाबि असह्य किसान बूखों की गह-कसह का कुफ़्त भोगने वाला निरपराधी गौकर रामदीन बाबि कितने ही असहाय-निदपाय लोग जिसकाते दिखाई देते हैं। तितली में बूख भय बना उन पात्रों का जो धीरों की कमजोरियों से लाभ उठाकर उन्हें एक-दूसरे के बिरोध छकाते-सकाते मिठाते हुए अपना उस्मू सीमा कटते रहते हैं। कानून को हाथ में लेकर मनमानी करने वाला सहूलदार गूह-कसह कराकर अपना काम निकालने वाला बूढ़े डाइएण्ड सुखदेव जीके धर्म का ठेकेदार पाखण्डी महेश्वर सेडी डा० के बेश में बूखों के पतियों को धुमियाने वाली धगबरी दुर्गादी के टुकड़ों पर जान देने वाली बेस्मा मैना बाबि संस्थाबाध के गम्भीर जल से उत्पन्न ऐसी बोंकें हैं जो मानव का समुदाय एकत घुसकर उसे ठठरी बना देती हैं।

इराबती

समाज के बच्चों से व्यक्ति की बाला को मुक्त करने की धोर ‘इराबती’ तीसरा कथम है। मँझबार में फँसी समाज की नीका को फिटारे सपाने के लिए साधना के बप्पू की प्राबल्यकता ‘तितली’ में स्वीकार कर लेने के बाद प्रसाद उस साधना का प्रादर्श संगठित करने की चेष्टा में इतिहास के अनुशीलन की धोर प्रवृत्त हुए। उन्हें बिश्वास था कि ‘हमें बिरी बसा से छानने के लिए हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी मतीत सम्मता है, उससे बढ़कर और कोई भी प्रादर्श हमारे अनुकूल नहीं हो सकता’।^{१३} प्रसाद ने इराबती में बीड़ धर्म के पतन कास के बिजल द्वारा बिलाने के लिए लेखनी उठाई कि “किस प्रकार समाज को सुन्दर बनाने के लोभ में (मुबार द्वारा) धगबान् लबागठ द्वारा निर्दिष्ट खेष्ट पथ को रुढ़ियों में बाँध देने से बगवा-बगवा चिन बिपड़ गया। हमारी अहिंसा हमारी हिंसा करने लगी, हमारा

१२. प्रसाद ‘तितली’ पृ. २३६, छिन्नी सेला से:

बस हम मूल तो नहीं कर रही हो। तुम बन के बाहरी व्यवस्था से अपने को ढँककर हिन्दू लो बन गई हो सही, किन्तु अपनी संस्कृति की मूल शिखा को मूल रही हो। हिन्दू लो का महापूज्य एनर्ग्य अभी रामजस का प्रपाथ है।

१३. प्रसाद ‘बिप्राथ’ की भूमिका प्रथम संस्करण सन् १९९१।

प्रेम हमीं से होय करने लगा और बम पाप बनता गया ।^{११०} इस उपन्यास के लिए एक और तो ज़ुनाब हुसैन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कठिनों के संघर्षकर्तों का । जीवन में धार्मिकवाद को सर्वोच्च स्थान देते हुए उसकी सामना में सब कुछ मैत्र समझते वाला महाकास के मन्दिर का ब्रह्मचारी तथा उसके शिष्य, मानव जीवन में से धार्मिक की भावना को उखाड़कर उसके स्थान में कादम्बर की स्थापना करने के प्रयत्न में मनुष्य को मग्नवासित चटखुतकी बना डालने वाले मिथुली बिहार के धर्मस्य अधिकारी, वराजर्जरित राज्य-व्यवस्था का संघर्षकर्त पुष्पमित्र इत्यादि इसी वर्ग के पात्र हैं । दूसरी ओर सुष्टि हैं अग्निमित्र और इरावती के-ले पात्रों की जो इन संघर्षकर्तों के विरुद्ध धर्म और राजनीति का निरंतर टिकार करते प्राये हैं । संस्थावाद द्वारा उत्पन्न लोगों की विरोधताओं से लाभ उठाकर स्वार्थ साधने वालों का तीसरा वर्ग है जिसमें मयबराज बृहस्पतिमित्र प्रमुख हैं । इनके प्रतिरिक्त एक स्वस्तिक वर्ग है किरोहियों का जो बेचूनी पधुनों की भाँति चुपचाप अत्याचार नहीं सहता और राज्य-व्यवस्था को उभटने के लिए निरन्तर पदमग्न रहता रहता है । इरावती में ऐतिहासिक और कल्पित दोनों प्रकार के पात्र हैं । पुष्पमित्र अग्निमित्र बृहस्पतिमित्र और चारखेस ऐतिहासिक पात्र हैं और कासिन्ही इरावती जनरल मखिमामा आदि कल्पित ।

समय परिवर्ति

इस प्रकार, प्रसाद ने बिनासी राजाघों स्वामिमक्त मन्त्रियों तथा सेना-नायकों धर्म के छेकेदार मण्डलों ब्रह्मचारियों बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों पादरियों समाज के गन्ध-माग्य मन्त्रियों, रईसों सेठों समाज सुधारकों प्रचारकों आदि से लेकर समाज के घृणित उच्छृंखल लोगों वैश्याघों बार्ज संतानों बचारी माठाघों बचारे पिताघों, और-उबकने-गुराघों डाकुघों आदि तक सभी वर्ग अपने उपन्यासों के पात्रों के रूप में चुना । यद्यपि इनका चुनाव-क्षेत्र उतना व्यापक न था जितना कि प्रेमचन्द का तो भी इसमें प्रतिपादित नहीं कि जिन भी पात्रों को उन्होंने चुना उनके बारे में उन्हें पूरी जानकारी थी । उन्होंने अपने पात्र प्रचानतया उच्च और निम्न वर्ग में से चुने और वे भी नगर-निवासियों या नगरों से दूरे हुए ग्रामों के निवासियों में से मध्यवर्ग के प्रति उनकी विशेष रुचि न थी । इन दोनों वर्गों की कठिनाइयों और उनकी समस्याओं के वास्तविक स्वरूप से उनका परिचय अनिष्ट या विरोधवादी चरित्रवर्ण की छावनी आदर्शवादिता तथा उसके आदीय वर्ग से । इसीलिए वह उनपर तीव्र व्यंग्य कट उनके तथा उनकी पीस खोम रहे ।

प्रसाद उच्च वर्ग का चित्रण कर रहे हों या निम्न वर्ग का उनकी विशेष एहानुभूति तथा विरोधवादिता-विरोधवादिता जारी आति से ही रही है क्योंकि वह

^{११०} प्रसाद इत्यादि के आदर्श में प्रकाशित 'प्रसाद का संदीपन' पत्र ।

जानते थे कि संस्थावाद के परिवर्तन अत्याचारों का विकार सबसे अधिक भारी ही होती रही है। बेकारी द्वारा बन्दी तितली मलिया राजकुमारी इरावती आदि की तो हस्ती ही क्या किछोरी तथा दयामकुमारी मावुरी इत्यादि आर्थिक रूप से सम्पन्न भारिया भी शोषण से न बच पाई। पुरुष निर्मित समाज में भारी भला बधी भी कैसे रह सकती है।^{१५} पर भारतीय नारी तो धमर है। शोषपूर्ण समाज-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों के बांधी-तूफानों में भी पर्वत के समान झड़ी-झड़ी रहने वाली नारी की मूक बेवना का चित्रण करते-करते प्रसाद की लेखनी बम पकड़ती जाती है और उनकी कसा में उत्तरोत्तर निघार भाता जाता है। पुरुष द्वारा शोषित रहने पर भी उसकी सम्पूर्ण सहायिका सिद्ध होने वाली नारी के चित्रण में प्रसाद 'प्रसाद' ही हैं कवि नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार आदि किसी भी रूप में। तितली और यमुना (धारा) उनके उपन्यासों की धमर नायिकाएँ हैं। इरावती भी धमर बन गई होती यदि उसके सिर पर से उसके झण्डा प्रसाद का छाया जल्दी न उठ जाता।

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

अपसंकर 'प्रसाद' अपने पात्रों के नामों द्वारा उनके चरित्र-चित्रण की प्रणाली का इतना अधिक प्रयोग तो नहीं करते जितना प्रेमचन्द ने किया है फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि अपने औपन्यासिक पात्रों का नामकरण करते समय उनके सामने भी उन पात्रों के चरित्र के आधी विकास की अपेक्षा प्रबल रही होगी। 'प्रसाद' के अनेक पात्रों के नामों से भी उनके स्वभाव का थोड़ा-बहुत परिचय मिल जाता है। उनके जिन पात्रों के नामों से उनके चरित्र का परिचय मिलता है उनमें से अधिकतर नाम सांकेतिक हैं जो पात्रों के किसी पुष्टावगुण विशेष को ध्वनित करते हैं। कुछ नाम ऐसे भी हैं जिन्हें व्यंग्यात्मक कहा जा सकता है। उनके माध्यम से प्रसाद पाखण्डी पात्रों के सामाजिक रूप की निस्सी उड़ाते हैं।

सांकेतिक नाम

सांकेतिक नाम वे हैं जिनके माध्यम से उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र की किसी ज़रूरी हुई विशेषता की ओर या उनके जीवन-दर्शन की ओर संकेत करता है। ऐसे पात्रों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उनके नामों की साधकता स्पष्ट होती जाती है। उनके 'कुंकाश' की किछोरी अवस्था में प्रौढ़ा होने पर भी भल से सदा किछोरी ही रही। मलिका अपने आरम्भिक जीवन में लता के समान बढ़ती गई और बाद में वायस नामक एक अग्रिम व्यापारी से

^{१५} प्रसाद, 'बेवना' पृ. २७२।

'कोई समाज और कभी किसी का नहीं रहन। सब पुरुषों के हैं। सब हरण को कुपवने जाने कर हैं।

प्रेम हूँ तो हों प करने लगा और बर्न पाप बनता गया।" इस उपन्यास के लिए एक और तो जुनाब हुषा सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कड़ियों के संघर्षकर्तों का। जीवन में आनन्दवाद को सर्वोच्च स्थान देते हुए उसकी साधना में सब कुछ बर्न समझने वाला महाकास के मन्दिर का श्रद्धाचारी तथा उसके धिप्य मानव जीवन में से आनन्द की भावना को उखाड़कर उसके स्थान में काश्यप की स्थापना करने के प्रयत्न में मनुष्य को यमचासित कठ्युतसी बना डालने वाले मिदुखी बिहार के प्रसङ्ग अधिकारी पराजयैरित राज्य-व्यवस्था का घंघ मरत पुष्पभिन्न इत्यादि इसी बर्न के पात्र हैं। दूसरी ओर सृष्टि हुई अग्निभिन्न और इरावती के-ते पात्रों की जो इन संघर्षकर्तों के विकृत बर्न और राजनीति का निरंतर चिकार करते आये हैं। संस्थावाद द्वारा उत्पन्न लोगों की बिरोपताओं से लाम उठाकर स्वार्थ साधने वालों का तीखरा बर्न है जिसमें मयधराज बहुस्पतिभिन्न प्रवर्ण्य हैं। इनके अतिरिक्त एक स्मस्तिक बल है बिदोहियों का जो बेकुड़ी पमुषों की भाँति पुपचाप अत्याचार नहीं सहता और राज्य-व्यवस्था को उमटने के लिए नित्य नये पद्म्यन्न रचता रहता है। इरावती में ऐतिहासिक और कल्पित दोनों प्रकार के पात्र हैं। पुष्पभिन्न अग्निभिन्न बहुस्पतिभिन्न और खारबेल ऐतिहासिक पात्र हैं और कासिन्धी इरावती घनवत्त, भणिमाभा आदि कल्पित।

जवन परिधि

इस प्रकार, प्रसाद ने बिभावी राजाओं स्वामिधरत मन्त्रियों तथा सेना-नायकों धर्म के ठेकेदार महुँतों ब्रह्मचारियों बीड निरु-भिसुखियों पारियों समाज के गध्य-मान्य नवाबों रईसों सठों समाज-सुधारकों प्रचारकों आदि से लेकर समाज क बुणित उच्छ्वंसत मोर्षों बेस्याओं आर्ज संतानों, क्वारी माताओं क्वारे पिताओं और-उचस्के-गुणों बाहुओं आदि तक सभी की अपने उपन्यासों के पात्रों के रूप में जुना। यद्यपि उनका जुनाब-शेन उतना व्यापक न था बिचना कि प्रेमचन्द का तो भी इसमें अतिप्रयोजित नहीं कि बिन भी पात्रों को उन्हीं जुना उनके बारे में उन्हें पूरी जानकारी थी। उन्हींने अपने पात्र प्रधानतया उच्च और निम्न वर्ग में से जुने और वे भी नगर-निवासियों या नगरों से सटे हुए ग्रामों के निवासियों में से मध्यवर्ग के प्रति उनकी बिरोप रुचि न थी। इन दोनों वर्गों की कठिनाइयों और उनकी समस्याओं के वास्तविज स्वरूप से उनका परिचय अनिष्ठ या बिरोपता उच्छ्वर्न की छोगनी आदर्शवादिता तथा उसके जातीय वर्ण से। इसीलिये वह उनपर तीखे व्यंग कस सके तथा उनकी पील छोन सके।

प्रसाद उच्छ्व वय का चित्रण कर रहे हों या निम्न वर्ग का उनकी बिरोप छद्मजुसूति सदा बिरोपेसित्त-बिरतोपिता नारी-जाति से ही रही है, क्योंकि वह

जानते थे कि सत्साधार के अभिवार्थ सत्याचारों का शिकार सबसे अधिक गारी ही होती रही है। वैद्यारी तारा बन्दी तितली भसिया राजकुमारी इरावती धादि की तो हस्ती ही क्या किछोरी यथा स्वामकुमारी भावुरी इत्यादि धार्मिक रूप से सम्पन्न गारियाँ भी शोषण से न बच पाईं। पुष्प निर्मित समाज में गारी भला बन्धी भी कैसे रह सकती है।^{१८} पर भारतीय गारी तो श्रमर है। शोषपूर्ण समाज-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों के धीधी-तुफ़ानों में भी पर्वत के समान धमी-झड़ी रहने वाली गारी की झुक बेचना का चित्रण करते-करते प्रसाद की सेसनी वन पकड़ती जाती है और उनकी कला में उत्तरोत्तर निहार जाता जाता है। पुष्प द्वारा शोषित रहने पर भी उसकी सच्ची सहायिका सिद्ध होने वाली गारी के चित्रण में प्रसाद 'प्रसाद' ही हैं कवि नाटककार, उपन्यासकार कहानीकार धादि किसी भी रूप में। तितली और यमुना (तारा) उनके उपन्यासों की श्रमर नायिकाएँ हैं। इरावती भी श्रमर वन गई होती यदि उसके सिर पर से उसके झप्टा प्रसाद का साया जल्दी न उठ जाता।

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

श्रमरकर 'प्रसाद' अपने पात्रों के नामों द्वारा उनके चरित्र-चित्रण की प्रशंसी का इतना अधिक प्रयोग तो नहीं करते जितना प्रेमचन्द ने किया है, फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि अपने औपन्यासिक पात्रों का नामकरण करते समय उनके सामने भी उन पात्रों के चरित्र के आधी विकास की शपरेक्षा अवश्य रही होगी। 'प्रसाद' के अनेक पात्रों के नामों से भी उनके स्वभाव का बोझा-बहुत परिचय मिल जाता है। उनके जिन पात्रों के नामों से उनके चरित्र का परिचय मिलता है, उनमें से अधिकतर नाम सांकेतिक हैं जो पात्रों के किसी भुलाबगुण विशेष को ध्वनित करते हैं। कुछ नाम ऐसे भी हैं जिन्हें व्यंग्यात्मक कहा जा सकता है। उनके माध्यम से प्रसाद पाठ्यपी पात्रों के सामाजिक रूप की खिस्ती उड़ाते हैं।

सांकेतिक नाम

सांकेतिक नाम वे हैं जिनके माध्यम से उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र की किसी ज़रूरी हुई विशेषता की ओर या उनके जीवन-वर्णन की ओर संकेत करता है। ऐसे पात्रों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उनके नामों की साक्षरता स्पष्ट होती जाती है। उनके 'कंकास' की किछोरी अवस्था में प्रौढ़ा होने पर भी मन से सदा किछोरी ही रही। लतिका अपने आरम्भिक जीवन में सदा के समान बढ़ती गई और बाद में बापम नामक एक संवेद व्यापारी से

^{१८} प्रसाद, 'कंकाल' पृ. २७२।

जैसे सम्पन्न और नये रिशों का नही बदन। उस पुत्रों के है। उस इरन को कुपने मने कर है।"

मिट गई।^{१६} गजबामा धन्वी की बोली धन्वी के समान सुदीप्ती की।^{१७} बहन मुजर 'बैह' का इतना बलिष्ठ^{१८} था कि बुढ़ा होने पर भी डाका डालने परेमा जाता था। 'ठितली' उपन्यास का इन्तरेव इन्तरेव के समान ही प्राथमिक रूप से सम्पन्न था और श्यामलाक्ष अपनी कासी करतूतों की संख्या बढ़ाता जाता था। उनके 'हरावती' उपन्यास की नायिका हरावती हर हाल में यस्त गजबामिनी ही रही। मोस्वामी कृष्णचरण तथा रामनाथ के नाम भी ऐसे हैं जो उनके जीवन-दर्शन को समझने में सहायता देते हैं। कृष्णचरण ने कृष्ण-भक्तों का निवृत्ति-मार्ग^{१९} अपनाया था तो रामनाथ ने राम भक्तों का प्रवृत्ति-मार्ग।^{२०}

व्यव्यक्त नाम

प्रसाद का 'कंकाल' दोषपूर्ण समाज-व्यवस्था पर एक तीखा व्यंग्य है। यह व्यंग्य उसके कमालक तथा पात्रों के चरित्र-विकास से ही नहीं उनके नामों तक से भी ध्वनित होता है। समाज के लोचने पात्रों की बुढ़ाई देने वाले पात्रों के नाम उनके उस रूप के जोरक हैं जो समाज के सामने व्यक्त है और जो उनके यथार्थ रूप से निरान्त मिला है। 'कंकाल' के निर्दशन को समाज भाषा-भोह से मुक्त महारमा के रूप में जानता है पर निर्दशन इस बात को यही प्रकार से समझता है कि उसने 'मगवान की धोर से भुँह भोड़कर मिट्टी के खिलौनों में मन लगा लिया है।'^{२१} मंगल देव समाज का मंगल करने के बहाने कह्यों का वर्णन कर बैठता है—'विधेय' तारा का^{२२}। 'ठितली' का मुखवेव बीने ऊपर से तो अपने को लोनों के दुःख-मुक का साथी बताता^{२३} है पर वास्तव में वह बूढ़ों के सुख का ही साथी बनता है दुःख का नहीं। बीबी माधुरी भाँखें छेरे बिना किसी की धोर देखती नहीं^{२४} मधुवन की बहन राजकुमारी जीवन भर समाज से पीड़ित रहती है।^{२५}

ऐसे नामों द्वारा 'प्रसाद' अपने पात्रों के चरित्र की किसी कमजोरी की खिलती उठाते हैं।

१६ प्रसाद 'कंकाल' पृ. १२०।

१७ वही, पृ. २३२।

१८ वही, पृ. १२२।

१९ प्रसाद 'ठितली', पृ. २८२।

२० वही, पृ. १०१।

२१ प्रसाद 'कंकाल' पृ. २२०।

२२ वही, पृ. १२३।

२३ प्रसाद 'ठितली' पृ. २४।

२४ वही, पृ. २०।

२५ वही, पृ. २२।

स्वेच्छापूर्वक नाम-परिवर्तन में चरित्र-विकास

प्रसाद के कई पात्रों का जीवनपथ एक नाम नहीं रहा बल्कि उनके जीवन में प्राये प्रत्येक सन्तान-पथन के साथ समय-समय पर बदलाव रहा है। 'कैलाश' के प्रारम्भ की छारा का बेस्मा-जीवन का नाम गुलेनार पड़ा और बेस्माबय से निकलते ही वह फिर छारा बन गई और जब तक छारा ही रही जब तक कि उसने संयम द्वारा विरक्त होमे पर नहीं में कुबकर वास्तव्यता का प्रयत्न नहीं किया। फिरोदी के घर में लौकरी कर लेने के बाद वह यमुना बन गई और धन तक उसका नाम बही रहा। इसी प्रकार विजय भी तगि वाले उस मुखे की इत्या करके भावने के बाद 'नए' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'तितमी' उपन्यास के प्रारम्भ की बंजों बाद में तितमी बन जाती है और मनुका का नाम मनुवन हो जाता है।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों या परिस्थितियों में पात्रों के नामों का बदलते रहना इतना महत्वपूर्ण नहीं जितना यह है कि उन पात्रों ने अपनी इच्छा से पुराना नाम बदलकर नया नाम ग्रहण किया। पात्रों द्वारा इस प्रकार इच्छानुसार नाम परिवर्तन जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण के परिवर्तन का भी शोचक हो सकता है। फिरोदी के घर में संयम द्वारा पहचान ली जाने पर यमुना नामवादी छारा कहती है—'छारा मर गई, मैं उसकी प्रेतात्मा हूँ। और फिर उसे खबरदार करती हुई कहती है "हमारा इसी में कस्याण है कि एक दूसरे को न पहचानें और न एक-दूसरे की चाह में मरें"।^{१२६}

बदन गुजर के यहाँ सरण लेने पर अपना नाम 'नए' रखते ही मारों विजय के नए जीवन का सूत्रपात हुआ। कहा जा सकता है कि विजय ने अपने आप को छिपाने के लिए परिस्थितिकण नाम बदला पर 'नए' नाम क्यों रखा। 'तितमी' का मनुवन भी तो विजय की स्थिति में ही आया था। उसने अपना नाम क्यों न बदल दिया मन्दाकिन इसलिए कि सब कुछ भेसने पर भी जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण नहीं बदलता था। 'तितमी' के मनुका और बंजों ने एक राय होकर ही अपना नाम बदलकर मनुवन और तितमी रखा था और इस नाम परिवर्तन के साथ ही उन दोनों का एक-दूसरे के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने पात्रों के जीवन में हुए प्रभाव परिवर्तनों का महत्व स्थापित करने के लिए पात्रों द्वारा नाम परिवर्तन की प्रणाली को अपनाया जो हिन्दी-साहित्य में उस समय सर्वथा मौलिक थी।

पात्रों का प्रथम परिचय

सबसे तो अवसरकर 'प्रसाद' भी प्रेमचन्द के समान सभी प्रमुख पात्रों का प्रवेश उपन्यास के प्रारम्भ में ही करा देते हैं। पर पात्रों का प्रथम परिचय कथने का उनका

होगा कुछ ऐसा है कि कभी यह नहीं प्रतीत होता कि सेलक उनका परिचय कराने भर के लिए उन्हें उपन्यास के रंगमंच पर लाया हो। उनके पात्र उपन्यास में सभी प्रकट होते हैं जब उनके करने के लिए कोई आवश्यक काम होता है। सेलक उपन्यास के प्रारम्भ में ही कोई ऐसी घटना पटित करा देता है, जिसमें उन सब की उपस्थिति आवश्यक और स्वाभाविक हो जाती है। 'तितली' में शिफार दोसने और सुसदेन जीरे का घुटना टूटने की घटना द्वारा यह रामनाथ, तितली मधुबन, इन्द्रदेव रीमा सुसदेन जीरे आदि प्रमुख पात्रों को बड़े स्वाभाविक ढंग से पाठकों के सामने से घाटा है। इरावती के भी प्रारम्भ में ही महाकाल के मन्दिर वाले जलसभ में इरावती, भक्तिमित्र बृहस्पतिमित्र ब्रह्मचारी आदि प्रमुख पात्रों को एक स्थान पर इकट्ठा करके उनका परिचय करा देता है। 'कंदर्प' में भी यह उपन्यास के प्रथम दो परिच्छेदों में ही श्रीचन्द्र किछोरी निरंजन भंयल लारा विजय आदि मुख्य पात्रों का परिचय करा देता है। यद्यपि बन्दी बाबन सतिका बदन गूबर, मासा आदि का प्रवेश विजय के जीवन-विकास के विभिन्न मोड़ों पर होता है।

संक्षिप्त एवं कसतामक परिचय

अपने उपन्यासों के बीछ पात्रों का ही प्रथम परिचय प्रसाद भी बर्णनात्मक ढंग से ही कराते हैं और उन्हें उपन्यास के रंगमंच पर लाते समय उनकी आकृति बेधभूपा तथा कभी-कभी पूर्ण इतिहास का भी परिचय करा देते हैं। पर बहुधा यह संक्षिप्त और कसतामक होता है।

बन्दी को प्रसाद इस वाक्य के साथ उपन्यास में लाते हैं "इतने में एक सुन्दर रमणी बालिका अपना हँसता हुआ मुख लिये भीतर आते ही बोली"।^१ "बदन गूबर" मासा का सत्तर बरस का बूढ़ा पिता है"^२ "मासा की बयस यद्यपि बीस के ऊपर है, फिर भी क्रोमाव के प्रभाव से वह किछोरी ही जान पड़ती है"।^३ पात्रों की आकृति और बेध-भूपा के बारे में भी वह विस्तार से न बताकर कसा की सूची से पूरा भर देते हैं। बनारसी साड़ी का आचल कंधे पर से पीठ की ओर सटकाए, हाथ में छोटा सा बीम लिये एक सुन्दरी के^४ कम में धनवरी के प्रथम वर्णन होते हैं। सतिका भी उपन्यास में सप्तप्रथम एक खेदक रैमनी जाती पढ़ने आती है।

पात्रों के रंगरूप का वर्णन करते हुए प्रसाद उनके मध्यावस्था के मध्यावस्था वर्णन की धार में प्रवृत्त होकर कवि-कल्पना और प्रार्थनात्मक भाषा का सहारा लेते

१ प्रसाद, 'कंदर्प' पृ. १०१।

२१ बन्दी, पृ. १६१।

२२ बन्दी, पृ. १६१।

२३ बन्दी, पृ. १६।

हुए उन्हें पाठन की कल्पना में साकार कर देता है। तारा के प्रथम प्रवेश पर उसके रंगरूप का वर्णन 'तारा सुन्दरी' भी। होमहार सौन्दर्य उसके प्रत्येक अंग में छिपा था। वह युवती हो बसी भी। परन्तु यथाशक्त कुसुम के रूप की संश्रुतियाँ निकसी थीं।^{१४} पंखों के कपोलों में हँसते समय गड़े पड़ जाते 'वह एक शय के लिए भी स्थिर न रहती' कभी घोंघड़ाई सेती और कभी जंगमियाँ चटकाती।^{१५} 'कंकाल'^{१६} में बाधन ललिका यासा बदन गुजर का 'तितली'^{१७} में हयामहुसाटी धनवती महंत का 'हरावती'^{१८} में अग्निमित्र बादि का प्रथम परिचय इसी प्रकार का है।

पर 'प्रसाद' अपने पात्रों तथा पाठकों के बीच अधिक देर तक नहीं भड़े रहते यहाँ तक कि पात्रों का परिचय कराते समय भी वह अपनी धोर हैं यथासम्भव कम ही रहते हैं। बहूना वह बसंतगरमक सीसी को स्थापकर नाटकीय सीसी को अपना देते हैं। और बिना किसी भूमिका के अपने पात्रों को उपन्यास के रंगमंच पर ला खड़ा करते हैं। उपन्यास का प्रथम भा दूसरा परिच्छेद सुमते ही उनके पास किसी परि स्थिति विशेष में उनसे हुए दिखाई देते हैं। खेसक उनके बारे में कुछ भी नहीं कहता प्रत्युत उन्हें स्वयं अपनी किया प्रतिक्रिया के द्वारा पाठकों पर बीरे-बीरे सुलने देता है।

पात्रों का औत्पत्ययवर्णन प्रवेश

'प्रसाद' अपने उपन्यासों के पात्रों का प्रवेश एकदम नहीं करा देते प्रत्युत उन्हें उपन्यास के पन्नों पर बीरे-बीरे इस प्रकार उभारते जैसे जाते हैं कि उनके प्रति पाठकों की उत्सुकता उत्तरोत्तर आवृत्त होती जाती है और साथ ही उनकी प्रथम चोट भी प्रत्युत स्वाभाविक और सजीव बन जाती है। उनके पात्रों की कभी तो पहले आवाज सुनाई देती है फिर उनकी छाया मूर्ति दिखाई देती है और क्यों-क्यों यह पाठ छाती जाती है क्यों-क्यों कमस कमस उनकी आकृति बेधमुपा रंगरूप नल-सिख आदि स्पष्ट होते जाते हैं। तितली में सुखदेव बीरे धोर धँसा का प्रथम प्रवेश इसी प्रकार से कराया गया है। पहले रात के घंटे में बीरे की कराहट काम में पड़ती है "हाम राम इन कांटों में कहाँ आ फँसा। और फिर धँसा का बड़ा मधुर शब्द "बोहेजी छाप कहाँ है ? फिर आकृतियों के रोंदे जाने का शब्द होता है और वो व्यक्तियों का बातें करते हुए बोझी दूर तक बसना फिर धोर से बभाका और

१४ प्रसाद, 'कंकाल' पृ. २१।

१५ पंख, पृ. १५।

१६ प्रसाद, 'कंकाल' १५१ १६१ १६२।

१७ प्रसाद, 'तितली' पृ. ३१ २८ १६०।

१८ प्रसाद, 'हरावती' पृ. ६।

रमणी की बिस्महट। इसके आकार प्रकार, रस-रूप का सब तक जरा भी पता नहीं चलता जब तक कि वे रामनाथ की कुटिया के बिये के प्रकाश में नहीं आ जाते।^{१३} इसलिये उनके पात्रों की प्रथम भेंट एक ही स्थान पर कई पन्नों में बिजरी चूटी है। किमोटी का परिचय ७ पृष्ठों तक में फैला हुआ है।

अपने पात्रों का नाम भी प्रसार प्रायः स्वयं नहीं बताते बल्कि पात्रों की पारस्परिक बातचीत में यह स्वयं प्रकट हो जाता है। चौबे के नाम का पता सीता के इस वाक्य से चलता है 'चौबेजी भाप कहाँ हैं ? सीता के नाम का परिचय हमें इन्ड्रेन की 'सीता ! सीता' !! की पुकार से मिलता है। बहुधा यह चेता गया है कि प्रसार पात्रों का नाम बहुत देर बाद बताते हैं। रामनाथ का प्रवेश उपन्यास के साठवें पृष्ठ पर हो जाता है पर उसका नाम पहली बार ३२वें पृष्ठ पर मिलता है।

पात्रों के प्रारम्भिक आलाप और उनकी क्रिया प्रतिक्रिया द्वारा प्रसार अपने पात्रों के चरित्रिक गुणधर्मों को लो प्रकाश में लाते ही हैं साथ ही प्रथम भेंट के समय उन पात्रों के हृदयों पर पड़े प्रभाव का चित्रण करके यह उसके व्यक्तित्व की एक 'प्रोफ़ेसिटव' आँकी दे देते हैं। बहुस्वामिनि का परिचय करते हुए—'रबी का डीम-डीम साबारख था पर उसका प्रभाव ससाबारख। उसके समीप से लोम हट जाते। नागरिकों का एक झुंड भी बसाया चला था। किन्तु जाने क्यों उस रबी पर दृष्टि जाते ही जैसे सब सधक हो जाते हैं, पथ छोड़ देते।'^{१४} इसी प्रकार सीता के रूप सौन्दर्य का चित्रण स्वयं करने की अपेक्षा यह यह बता देते हैं कि प्रथम भेंट में रामनाथ तितली धनवरी आदि अन्य पात्रों को यह कैसे लगी।

व्यक्तात्मक सीली

अपसंकर प्रसार की औपन्यासिक सीली प्रधानतया नाटकीय रही है। पर कोई भी उपन्यासकार कोई नाटकीय सीली से काम नहीं करता उसे वर्त्तनात्मक सीली का म्युनाबिक सहाय लेना ही पड़ता है। प्रसार ने भी जब-जब वर्त्तनात्मकता से काम लिया है पर उनके वर्त्तनात्मक स्वर्त्ती की देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस सीली में उनकी विशेष रुचि नहीं। प्रायः उपन्यासकार पात्रों का प्रथम परिचय करते समय उनके नाम-नाम-काम का उनके स्वभाव की कुछ-एक उभरी हुई विशेषताओं का तथा व्यवस्था उनके पूर्व-जीवन का चरित्रय करते समय वर्त्तनात्मक सीली को अपनाया करता है पर प्रसार बहुधा इसके चित्रण के लिए भी अपनी धार से कुछ न कहकर पात्र के अपने मुख से या अन्य पात्रों से उनके व्योपकचन के बीच व्यक्त करते हैं। फिर भी स्थिति का चित्रण करने के लिए, उस स्थिति में पड़े पात्रों की चेष्टा, लसविष्ट तथा अनुभाव आदि के वर्त्तन के लिए और

१३ प्रसार, 'तितली' पृ. १९।

१४ प्रसार, 'रमणी' पृ. १।

उनकी क्रिया प्रतिक्रिया के धंक्कन के लिए प्रसाद को वर्णनात्मक शैली से काम लेना पड़ा।

स्थिरधंक्कन

संक्षिप्त वर्णन

प्रसाद स्थिति का चित्रण उसने विस्तार से नहीं करते बितने विस्तार से प्रेमबन्ध किया करते हैं। वह परिस्थिति-चित्रण में अधिक न उसमन्कर उसमें हो रही पात्रों की व्यक्ताव्यक्त क्रिया प्रतिक्रिया के धंक्कन की धोर रेखी से बढ़ते हैं। 'अंकम' के आरम्भ में ही कुम्भ के भेले में माता-पिता से बिछुड़ी सारा का बचड़ा कर इधर-उधर देखना और उसकी छलछलाती धाँसें और छलछले हुए जीवन को देखकर एक कुटनी का उसके पास पहुँचकर उसकी संरक्षिका बन जाना आदि समस्त घटना का बचन पृष्ठ भर में करके लेखक उस स्थिति में व्यक्त मंगल की प्रतिक्रिया के धंक्कन की धोर बढ़ाते हैं। "स्वयं सेवक मंगल चुप रहा युवक बालक एक युवती वासिका के लिए हठ म कर सका। वह चुपरी धोर बसा पया।" उससे पहले किसोरी के पर्मवती होकर भीचम के साथ बसे जाने की बटना का वर्णन सार रूप में केवल छ-सात पंक्तियों में ही करते हुए वह बता देते हैं कि "देव निरजन को समझ-बुझकर फिर जाने की प्रतिज्ञा करके किसोरी पति के साथ बनी गई।"^{४१}

किसी-किसी बटना की उनकी भूमिका इतनी संक्षिप्त होती है कि मानों वह किसी नाटकीय दृश्य का पूर्व संकेत हो। कुम्भकुटाराय के भिल्लुणी बिहार में इरावती की कठोर मानसिक यातनाओं का दृश्य से प्रेम की भावना के अनुमोदन के लिए उसे बाध्य किये जाने का चित्रण भी के नाटकीय ढंग से इरावती और दो गई पिछना छात्रों के बीच संवाद करकर करते हैं और उस संवाद से पहले नाटकीय संकेत के रूप में दो तीन वाक्य जोड़ देते हैं। "कुम्भकुटाराय के भिल्लुणी-बिहार के प्राचीर से छटे हुए एक लम्बे चक्रम पर, द्वार के भीतर से तीन भिल्लुणियाँ या रही हैं। सूर्यास्त हो जाता है। हल्का धंक्कार फैलता ही चाहता है। उनमें छाये है इरावती उसके साथ सम्भवतः दो गई पिछमाणा है।"^{४२} इन वाक्यों में वर्तमानकालिक क्रियाओं का बीधा ही प्रयोग हुआ है। बीधा नाटकीय संकेतों में हुआ करता है। यमने वाक्य में ही प्रसाद संवाद आरम्भ करते हुए क्रिया-रूप बदसकर भूतकामिक कर देते हैं; 'इरावती ने पुछा'।

^{४१} प्रसाद 'अंकम' पृ. २१।

^{४२} वही, पृ. २०।

^{४३} प्रसाद, 'इरावती' ललीत संस्करण पृ. ३०।

व्यक्तिगत चित्रण

प्रेमचन्द पहले स्थिति का कमबख्त पूर्ण परिचय करा देते हैं और फिर उसमें पात्रों को डालते हैं। पर प्रसाद बहुधा ऐसा नहीं करते। वह स्थिति का समूचा चित्रण एक साथ न करके उस धीरे-धीरे उसी क्रम से जोसते जाते हैं जैसे-जैसे वह स्वयं पात्रों पर चुसती जाती है। इस प्रकार, पात्रों को उपन्यास के रंगमंच पर लाये बिना उसके चित्रपट के कोरे चित्रण में नीरसता की जो सम्भावना रहती है, वह प्रसाद के उपन्यासों में नहीं मिलती। प्रेमचन्द की तरह वह बासी औपन्यासिक रंगमंच पर स्वयं घबरेले सुन्दर का अभिनय नहीं करते रहते। शायद पाठकों की प्रतीक्षा में रहे बिना मंच पर पात्रों का प्रवेश करा देते हैं और उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के साथ साथ स्थिति की यन्त्रीयता की ओर भी संकेत करते चले जाते हैं। इसी कारण उनका चित्रण कई पन्नों तक बिखरा रहता है। 'ठिठसी' के धारम्भ में बीबे का बुढ़ा टूटने वाली बटना में वह स्थिति का चित्रण कई पन्नों तक बीच-बीच में सूत्र-सूत्री द्वारा व्यञ्जित कराते चले जाते हैं। 'सम्प्राप्त' की सीमा में बीबे-बीबे घाने लयी बजो दीप जलाने लगी उस दृष्टि कुटीर के^{४४} पाँच चौक में (का शय्य)। पंजाब के बड़ाई से मुसलमान हो गया^{४५} वहाँ एक पिरा हुआ बैरान बा^{४६} भद्रियों के चौर जाने का लख हुआ संस्कार के साथ-साथ सबी बड़े लगी।^{४७} प्रसाद के 'इरावती' उपन्यास का ती धारम्भ भी बिना किसी भूमिका के हुआ है। उपन्यास के कुलते ही पाठक चरित्रचित्रण को (जिसके नाम का बहुत बाद में पता चलता है) रंगमंच पर पाता है। बाद में पात्रों की बातचीत में से संकेत मिलता है कि वह महाकाव्य के संस्कार में जा रहा है।^{४८} फिर केवल बाप पृष्ठ^{४९} में स्थिति का प्राथमिक परिचय देकर उसमें पात्रों को डाल देते हैं और स्वयं मौन रहन कर लेते हैं। उत्तरवात् स्थिति के विकास का ज्ञान लेखक के वर्चन से नहीं पात्रों के अनुभाव भ्रू-भविष्य तथा क्रिया प्रतिक्रिया से ही हो पाता है।

प्रसाद ने जहाँ कहीं कमबख्त वर्चन किया है वहाँ भी वे वर्चन लम्बे न होकर पात्रों की प्रतिक्रिया के संस्कार की ओर सीधेपति से बढ़ते हैं क्योंकि प्रसाद बटनाओं का निर्माण परिस्थितियों के चित्रण के लिए कम और विभिन्न परिस्थितियों में पात्रों की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति द्वारा उनकी व्यवसायवस्था दिखाने के लिए अधिक करते हैं।

^{४४} प्रसाद, 'ठिठसी' पृ. २।

^{४५} वही, पृ. १०-१२।

^{४६} प्रसाद, 'इरावती' पृ. २।

^{४७} वही, पृ. १।

प्राकृति-वेधभूपा चित्रण

उपन्यास में पात्रों का प्राकृति वेधभूपा वर्णन ऐतिहासिक कवियों के नक्षत्र-वर्णन की भाँति कविकवियों के भाषा पर तो नहीं होता पर इस उद्देश्य से कि पाठकों की कल्पना में औपम्याधिक पात्र साकार होकर भाव उठें उपन्यासकार के लिए उनकी प्राकृति वेधभूपा नक्षत्र-वर्णन का वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। कमलकर प्रसाद भी समय-समय पर अपने पात्रों की प्राकृति वेधभूपा, चान-बास आदि का वर्णन करते रहते हैं पर वह पात्रों के नक्षत्र-वर्णन के ध्योरेवार वर्णन में न समझकर उनके धर्म-वर्णनों के उनके व्यक्तित्व के समसामुहिक प्रमाण के अंकन की ओर ध्यान प्रवृत्त होते हैं। अंकन के वैचित्र्य के प्रथम वर्णन से ही पाठक उसके व्यक्तित्व की महानता स्वीकार कर लेता है। एक विचित्र पात्र पर एक बीघा वर्ष का मुक हल्के रंग का कापयवस्त्र धारण पर बसे बैठा था। बड़ाबूट नहीं था कन्धे तक बाल बिखरे थे। धीरे-धीरे के बह से सरी थी। मुट्ट भुजाएँ और तेजोमय मुखमंडल से प्राकृति बड़ी प्रभावशालिनी थी।^१ चित्तली में तहसीलदार का नक्षत्र-वर्णन यदि अपेक्षाकृत विस्तार से मिलता है तो ऐसा उसकी कुटिलता को मुखरित करने के लिए ही हुआ है।^२

रूप सौन्दर्य का काव्यात्मक चित्रण

मारी पात्रों के रूप सौन्दर्य का चित्रण करते समय प्रसाद का कवि स्वभाव हो उठता है और वह उन पात्रों के धर्म-वर्णनों की सुषुप्ति का ध्योरेवार वर्णन न करके कुशल चित्रकार के समान कल्पना की कृषी से दो बार बार छूकर ही अनुपम मुख रेखाएँ उभार देते हैं। इतना ही नहीं कई बार तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मार्गों से एक-एक अपनी छत्र रचना की रूप माधुरी पर स्वयं मुख होकर एकाएक उस व्यक्ति को तिहारने के लिए एक गया है, और वहीं मस्ती में प्रकृति से उपमाएँ बटोरने लगा है। मनुष्य की बहन राजकुमारी की आँखों में चित्तली की मोहिनी

१० प्रसाद 'द्वय' १ ३३।

'सुन्दर बड़े सुन्दर लाल ने मुझसे हुए वर्णन पर बैठकर दोन्नों हाथ फिर से लगाते हुए कहा—सम्भव !

मौल मे देखा—कविता में नक्षत्र-वर्णन जैसे प्रमाण की शक्ति पर बैठे हैं।

११ प्रसाद, 'बागवती, किन्तु तू मैं व्यासमन मनु का चित्रण :

'वन्दन की रङ्ग सौन्दर्य-वर्णन

उत्पन्न या वीर्य-वर्णन

रक्षित दिग्गज सत्य रत्न का

होत्र का अन्तिम संस्कार ।

१२ प्रसाद, 'द्वय' १०२ ।

१३ प्रसाद, 'चित्तली' १ १२६ ।

मूर्ति पड़ गई उसकी कासी रजनी सी उगीसी धाँसे, लम्बा छच्छरा सरीर, गोरी पतली जँघनियाँ सहज उन्नत भलाट कुछ बिभी हुई भीरें धीर छोटा-सा पतले धपटों वाला मुँह कानों के ऊपर से ही बुँधट का, जिससे लटें निकली पड़ती थीं। उस की चौड़े किनारे की पोती का बम्पाई रस उसके सरीर में भुसा जा रहा था। वह सन्या के गिराव जगम में विकसित होने वाली अपने ही भङ्गुर आत्मक से संतुष्ट एक छोटी सी तारिका थी।^{१२२}

कई बार^{१२३} तो प्रसाद पात्र के अनाकर्षक परिधान की व्यवहेतता करके सीधे उसके खिलते हुए जीवन को धाँसों में भर लेना चाहते हैं गाथा की माँ की आत्मकथा के निर्वा के रूप में “शबलम बरख सँवारने लगी—घामूपरुणों में हो-बार काँच की बूझियाँ धीर जाक में नम। निर्वा ने देखा बालिका की बेधभूपा में कोई बिरोधता नहीं परन्तु परिष्कार था। उसके पास कुछ नहीं था बसत अलंकार या भावों की भरी नबी-सा जीवन। कुछ नहीं थी केवल सो-सीन कसामयी मुँह-रेखाएँ जो आगामी सीपयों की बाह्य रेखाएँ थीं।^{१२४} अग्निमित्र को फँसने में प्रयत्नशील हरावटी की कामुक कानिची की यह मुद्रा भी इस दृष्टि से उत्सेहनीय है “कित्त धीर सँकित्त अग्निमित्र ने भीतर जाकर देखा सुन्दर धम्मा पर आधी मेटी हुई सुन्दरी जिसके रत्नालंकारों की प्रभा से धाँसे अलमसाने लगी” शिष्टाचारवश धाँसे अमाकर वह उस सुन्दर मुख को देखता भी न था।^{१२५}

विविध बेधभूपा में चरित्र-विकास के मोड़

किसी व्यक्ति की आकृति, बेधभूपा धीर उसकी प्रभावोत्पादकता सदा एक ही नहीं बनी रहती। जीवन की विभिन्न स्थितियों में मनुष्य भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है। प्रेमचन्द के छे कई उपन्यासकार अपने पात्रों की ‘हुनिया-नबीती’ प्रायः एक बार ही कर देते हैं धीर वह भी उपन्यास में उनके प्रथम प्रवेश के समय उससे उपन्यास के अन्त तक पाठकों की कल्पना में पात्रों का वही एक रूप बना रहता है। पर प्रसाद एक ही बार किसी पात्र की आकृति धीर बेधभूपा का परिचय देकर बस नहीं कर देते प्रत्युन् जीवन के विभिन्न मोड़ों पर उनके पहनावे धीर रंगरूप के वर्णन में उनकी मानसिक अवस्था को व्यंजित करते रहते हैं। ‘कंकान’^{१२६}

१२२ प्रसाद ‘कामाक्षी’ नाम सगी
‘मावरी निरा की बचपन’
‘बचपन में लुकी छिपी थी।’

१२३ प्रसाद, ‘कंकान’ ४ २०१ ३।

१२४ वही, २०१।

१२५ प्रसाद, हरावटी ४ ३१।

१२६ प्रसाद ‘कंकान’ ४० २१।

की मायिका तारा (यमुना) का उपस्थास में प्रवेश एक तरुणी के रूप में होता है :
 "तारा सुन्दरी थी । होमहार सौम्यमे उसके प्रत्येक अंग में छिपा था । वह मुबरी हो
 बनी थी परन्तु घनाघ्रात कुमुम के रूप की पंखुरियाँ विकसी न थीं । बेध्यास में
 कुटनी के कु बल में जैसे हुए उसे मंगल ने जिसरूप में देखा वह इससे भिन्न ही था 'एक
 पोबणी मुबरी सबे हुए कमरे में बैठी थी । पहाड़ी स्त्रियाँ सौम्यमे उसके गेहूँ रंग में
 मोव-मोव है बीच में मिसी हुई भीहों के नीचे न जाने किटना संघकार लेन
 रहा था । सहज मुकौसी भाक "नीचे सिर किए हुए उसने सब इन लोगों को देखा"
 उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के कोमे धीरे धीरे खिंचे हुए जान पड़े । घने काले बालों के
 मुन्हे दोनों कानों के पास के कर्णों पर लटक रहे थे । बाँए कपोल पर तिम ।"^{१०}

वही तारा जब नदी में नुबकर आत्महत्या करने के लिए बनी जा रही थी तब
 'फटी बोटी' उसके संघ पर लटक रही थी । बास बिछरे थे । बलन बिछट भय का
 नाम नहीं । जैसे कोई संन्यासित राव बस रहा है ।"^{१०} अस्पृश की चारपाई पर
 पड़ी प्रसन्न-वेदना से पीड़ित तारा की अवस्था शोचनीय थी "उसका पीसा मुब
 बँसी हुई आँखें कस्सा की चिमपटी बन रही थी । ^{११} किछोरी के साथ पहाड़ी मामा
 कर रही यमुना स्त्री तारा विजय को बहुत सुन्दर लगी "किछोरी ने उसे हठ
 करके गुलेनार की मोड़नी ही थी । पछीने से लपकर उस रंग में यमुना के मुख
 पर अपने चिन्ह बना दिए थे । वह बड़ी सुन्दर रंगराबी थी इस समय जिसलण
 प्राकर्षण उसके मुख पर था ।"^{१२} जीवन की कठोर यातनाओं ने उसे कई रंग
 दिखाए और जीवन के प्रति उसे एकदम निरास कर दिया "आसोक प्राप्तिनी यमुना
 (तारा) अपनी कुटीर में बीपक बुझकर बैठी रही । जैसे आशा थी कि बातावन
 और द्वारों से राशि राशि प्रमात का बबल आनन्द उसके प्रकोष्ठ में भर आएगा ।
 पर जब समय आया फिरनें फूटी तो उसने अपने बातावनों झरोखों और द्वारों को
 बंद कर दिया । वह चुपचाप पड़ी थी । उसके जीवन की सनस रहनी उसके
 आरों मोर घिरी थी ।"^{१३} विजय के सब के पास बैठी तारा का अन्तिम रूप किटना
 करणापूर्ण है 'संनय ने देखा' एक स्त्री पास ही मलिन बसन में बैठी है । उस
 का पूंभट आँसुओं से भीग गया है ।"^{१४}

प्रसाद ने यमुना (तारा) की ही विभिन्न आँकियाँ नहीं दिखाई, प्रत्युत
 सिवनी, इरावती किछोरी बंटी संन्यासेव निरंजनदेव यमुनन इन्द्रदेव

१० मन्त्र 'कर्मल' पृ २४ ।

१० नदी, पृ १८ ।

११ नदी, पृ १६ ।

१२ नदी, पृ २६ ।

१३ मन्त्र 'कर्मल' पृ २४ ।

१४ नदी, पृ २६ ।

अग्निमित्र आदि सभी पात्रों की राक्षस-सुरत के चित्रों द्वारा उनकी भिन्न-भिन्न स्थितियों को व्यक्त किया है।^{१३}

- अनुभाव चित्रण

किसी स्थिति का चित्रण करते हुए अप्रत्यक्ष प्रभाव इस बारे में तनिक भी संकेत नहीं करते कि उसमें पड़कर उनके पात्र या पात्रों की कैसी प्रतिक्रिया होगी। वह स्थिति का व्योरेवार वर्णन नहीं करते, उसकी सख्खि-सी भूमिका ब्यौकर उसमें पात्रों को ला बाँधते हैं और धीरे-धीरे उन पर उनकी परिस्थिति की खोसते जाते हैं और उनकी मुद्राकृति तथा धर्म प्रत्यक्षों में होने वाले प्रत्येक सूक्ष्माति सूक्ष्म परिवर्तन के चित्रण द्वारा यह व्यक्त करते जाते हैं कि पात्र ने उस स्थिति को किस रूप में ग्रहण किया है, अर्थात् उस स्थिति का पात्र पर कैसा प्रभाव पड़ा है। पात्र के किसी स्थिति में पड़ जाने के पश्चात् और उसके प्रतिक्रियामय विस्फोट होने से पहले उसकी मनोस्थिति, उसमें हो रही हलचल को वह उनकी भूमिका मुद्राकृतियों तथा उनकी अन्य कायिक गेष्टाओं के चित्रण द्वारा अभिव्यक्त करते रहते हैं।

कायिक मुद्राएं

'तितली' की खींच लसगा शीला से प्रथम बेट की प्रतीक्षा में माधुरी और अनन्दी स्वामिदुलारी के पास बठी थी। बाहर वीरों का खम्ब सुनाई पड़ते ही उनको जो पबचाहट हुई, उसके बर्णन के लिए प्रसाद अपनी धोर से कुछ नहीं कहते। उन तीनों की मुद्राओं में जो भी थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ उसके चित्रण द्वारा ही वह उनकी पबचाहट की सफल अभिव्यक्ति कर देते हैं। "तीनों स्त्रियाँ खज हो गई। माधुरी अपनी साड़ी का किनाचा खींचने लगी। अनन्दी एक चमकीले से कान के पास के बालों को ऊपर उठाने लगी, और स्वामिदुलारी थोड़ा खींचने लगी।"^{१४} यहाँ प्रसाद पबचाहट का नाम भिन्न बिना उसे व्यक्त कर देते हैं।

प्रसाद के बर्णन संछिप्त भले ही हों उनमें एक सफ़ा कवि की सूक्ष्मता की कमी नहीं। वह अपने पात्रों की उपन्यास के शुष्क पन्नों से उभारकर पाठकों के सामने साकार रक्का कर देते हैं। एक प्रसंग में शीला और भीष्म के साथ भीतर घाये दुःख के अभिव्यक्ति के उत्तर में आलीशान बैठे हुए स्वामिदुलारी ने देखा कि वह पोरी मेम भी दोनों हाथों की पतली उभरियों में बनारसी साड़ी का गुनगुना

१३ परावरणार्थ—

पृष्ठ—'कंधा' पृ० १०२ २३३।

पृष्ठ—'मिलनी' पृ० ७६ १२० २१६।

१४ परावरणार्थ— पृ० ४४।

शौनस ब्रह्मा नमस्कार कर रही है।^{१२} शौसा की विनीत मुद्रा से स्यामसुमारी पिपस गई।

जब शौसा मधुवन के बाप-शशों की डीह धरकोट को बचाने के लिए इन्द्रदेव से सिफारिश कर रही थी तो पास बैठी भगवती ने शौसा के प्रति इन्द्रदेव के मन में सन्देह के बीज बोने के लिए जब शौसा से यह कहकर—‘मधुवन ! हाँ नहीं न जो उसने रात को आपके सामने था’ ‘उस पर तो आपका क्या करनी ही चाहिए’—^{१३} इन्द्रदेव की ओर मेघ भरी वृष्टि से बेका इन्द्रदेव को कितना जबरबस्त धक्का लगा होगा इसका विवरण प्रसाद अपनी ओर से कुछ कहे बिना केवल एक वाक्य में कर देते हैं। इन्द्रदेव कुर्सी छोड़ उठ गये हुए।^{१४} इन्द्रदेव को लगी इस चोट को शौसा ने भी भाँप लिया जिसे प्रसाद ने शौसा की निराश वृष्टि की ओर संकेत करके व्यक्त^{१५} कर दिया।

अनुभावों द्वारा प्रतिक्रिया की पूर्ण सूचना

पात्रों के परिसम्भाव में प्रसाद उनके कथोपकथन की ओर ही ध्यान नहीं देते उनकी मुख-मुद्राओं के प्रत्येक परिवर्तन उनके अंग प्रत्यंगों के प्रत्येक संवातन तथा उनकी प्रत्येक मलज तथा अवलज चैष्टा का अंकन भी करते जाते हैं क्योंकि इनके अभाव में कथोपकथनों का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सकना प्रायः असम्भव होता है। पात्रों के अनुभावों से उनकी भावी प्रतिक्रिया के बारे में बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। मधुमा को बेच-बूढ़ से बाहर निकाल देने की बात को लेकर विजय और निरंजन में जो बटपट हुई, उसमें निरंजन के विजय को सहसा भास्तिक ! हट जा’ कहते ही विजय की कमपटी साल हो गई बरौनियाँ तन गई।^{१६} पूर्व इसके कि उसकी उस प्रतिक्रिया प्रकट होती नयन स्थिति को भाँप कर विजय का वहाँ से खींचकर ले गया। इसी प्रकार मंगल के साथ गाड़ी में यात्रा करती हुई तारा को पहचानकर उसके पिता के मुँह का रंग गुलाबी और कोमल से बदल गया ‘मात्री का (उसका) रंग उसके पहरों में स्फुरित हो रहा था।’ ‘हरावती’ में महाकाम के मन्दिर में बृहस्पतिमित्र के हस्तक्षेप के विरुद्ध ब्रह्मचारी अपनी पूर्ण मनुष्यता में तनकर खड़ा हो गया।^{१७} और बृहस्पतिमित्र उसकी ओर देखने का

१२ अज्ञात, शिशो' १३ संस्करण १ ४४।

१३ वरी, ५ ५२।

१४ वरी, ५ ५२।

१५ वरी, ५ ५८।

१६ अज्ञात, 'कैफ़ल' ५ ४५।

१७ वरी, ५ २९।

१८ अज्ञात, हरजनी ५ २२।

साहस छोड़^{१२} ऐंठा हुआ छठत माव से दूसरी ओर देख रहा था ।^{१३} चार्लस के हृद के मुक सं स्वर्ण की जिन मुठि की माँव सुनकर सम्राट बृहस्पति की 'जबें' तनी, गबुने फड़के और वह ठमिक संमस कर बैठ गये ।^{१४}

सांकेतिक वर्णन

वर्णन में व्यंग्यता

प्रसाद ने कवि, कम से कम सख्यों द्वारा युवाविभूत धर्म को व्यंगित करने में सिद्धहस्त । उनकी यह प्रवृत्ति उनके उपन्यासों में भी समित होटी है । उनके उपन्यासों में ऐसे स्वर्णों की कमी नहीं जहाँ वे सख्यों की धमिया धमि से काम न लेकर उनकी व्यंग्यता समित से काम लेते हैं । ऐसे स्वर्णों पर व्यंग्यव्यक्ति में रमलीयता तो था ही पाठी है साव में बर्णनों में धावीमता भी धा जाती है और वे धावीमता के धोप से बच जाते हैं । 'तितली' में राजकुमारी के प्रथम परिचय के समय उनका वर्णन करते हुए यह कहते हैं "उस स्त्री के धंग पर कोई धाभूयख न था और न तो कोई सभवा का बिहू । था केवस उज्ज्वलता का पवित्र तेज जो उसकी मोटी सी मोटी के बाहर भी प्रकट था ।"^{१५} यहाँ 'उज्ज्वलता का पवित्र तेज' हाप लेखक उसके चरित्र की उज्ज्वलता को व्यंगित कर देता है । निरंजन को किछोरी के हापीर समर्पण का वर्णन भी यह सांकेतिक ढंग से कर देता है 'कुर्बत हूय किछोरी को पककर धाने भगा । उसने बहूबारी के बीड़े बस पर धपमा सिर टेक दिया ।"^{१६} किछोरी का मनोरम धूर्त हुआ^{१७} कह कर यह उसकी धर्मावस्था की ओर संकेत कर देते हैं । तारा और मंगल के धापीरिक मिलन का वर्णन लेखक इस प्रकार करता है 'सहसा मंगल ने उसी प्रकार अपने में धरति हुए कहा—मेरी तारा प्यापी तारा धाधो । उसके धोनों हाप छठ रहे वे कि धाँध बस कर तारा ने अपने को मंगल के धंक में धाल दिया' प्रभाव हुआ जयसे से पड़नी नास किछों तारा के कपीन पर पड़ रही थी । मंगल ने उसे धूम मिया । तारा प्याप पड़ी यह तजापी हुई मुस्कयाने लगी । धोनों का मन हलका था ।"^{१८} 'धोनों का मन हलका था' हाप व्यंगित धर्म इन सख्यों के धमिधार्म से बहुत परे है । मंगल के उठे धकैनी छोड़ धाग धाने पर तारा स्वगत कहती है—मंगल । जयधाम धागते होमे कि तुम्हारी धम्या

१२ प्रसाद, 'रूपनी' पृ. १२

१३ वही पृ. १२ ।

१४ वही, पृ. २१ ।

१५ प्रसाद 'तितली' २४१ उपधरण पृ. ५२ ।

१६ प्रसाद, 'कईगत' ज्वाँ संस्करण पृ. २० ।

१७ वही, पृ. २ ।

१८ प्रसाद, 'कईगत' ज्वाँ संस्करण पृ. ४१ ।

पत्रित है।^{१०२} यहाँ 'अर्या की पवित्रता' की बात कहकर वह अपने गर्भ को मरण का ही भोपित करती है।

क्रिया-प्रतिक्रिया चित्रण

प्राथमिक आचरण

सामान्य स्थिति में व्यक्त होने वाली पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण भी प्रसाद सीधी बर्तुनारमक शैली में न करके उन्हें नाटकीय शैली में व्यक्त करते हैं। बर्तुनारमक शैली का प्रयोग वह तभी करते हैं जबकि पात्र कुछ मोल न पाते हों और उन स्वभावों पर उनसे चार्वाचाप करा देना प्रस्वामाधिक हो। जैसे पात्रों का ऐसा प्राथमिक आचरण जिसमें उनकी कायिक श्रेष्ठता ही व्यक्त हुई हो।

'कंकाल' में विजय के बोड़े के दिखने वाली बटना जिसमें उसकी मंथन से प्रथम भेंट हुई थी का प्रारम्भ तो प्रसाद नाटकीय शैली में कर देते हैं—“विजय ही तो है—‘एक न कहा—‘बोड़ा उनके बस में नहीं है अभी बिरता ही चाहता है’—दूसरे विचारों ने कहा।” पर ज्यों ही स्थिति सम्भीर हो गई और किसी को मोलने के लिए कोई स्थान न रहा बर्तुनारमक शैली को अपनाते के सिवाय उनके पास कोई चारा नहीं रहता ‘मन से विजय के बात बिसर रहे थे, उसका मुँह मय से बिभर्ष था। उसे अपने गिर जाने की निश्चित धारणा थी। सहसा एक मुक्क ढीङ्गा हुआ धागे बढ़ा—बड़ी उत्पत्ता से बोड़े की शवाम पकड़कर उसके नयुने पर उसने सबल बूसा मारा और दूसरे क्षण वह उम्झलस प्रस्व सीमा होकर लड़ा हो गया’ यह एक सिनेमा का दृश्य था। वहाँ मंथन की प्राथमिक प्रतिक्रिया प्रकट होने से पहले का बहुत नाटकीय शैली में करने का मोह प्रसाद संवरण नहीं कर सके हैं और दो विचारियों को सामने लाकर उनमें कथोपकथन करा देते हैं, यद्यपि वह चार्वाचाप दो बातों से अधिक नहीं बढ़ सकी है।

नाटकीय प्रचाली के प्रति मोह

पात्रों की ऐसी क्रिया-प्रतिक्रिया का चित्रण जो प्राथमिक न होकर उनकी सुम्-बुम् का परिणाम हों प्रसाद यथासम्भव नाटकीय शैली में ही करते हैं। पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन द्वारा उनके स्वभाव-आपण के रूप में या बातचीत के बीच पात्रों के अपने मुख से कहलबाकर। ‘तिसरी में अपने पति वपामनाल को मनबरी के साथ एकान्त में सुरापान करते देख मापुरी की जो संयत प्रतिक्रिया व्यक्त हुई, उसका बर्तुन मेरक स्वयं न करके मापुरी के मुख से कराता है। “मैं तो उसका (मनबरी की बात का) उत्तर न देना चाहती थी परन्तु उसकी ठिठाई अपनी प्रीमा

१०२ प्रसाद 'कंकाल' पृ० १८।

८० बरी, पृ० ६४।

मार कर चुकी थी। मैंने कहा बड़ी धन्यगी बात है मिस भनवरी ! धाप कम आएंगी ? मैं अधिक कुछ न कह सकी। घासी रखकर सीट धाई।”^{५१} कंकाल में जब यमुना घुरी द्वारा मुक्त कर दी गई और मंगल और निरञ्जन उसके समीप घायल और बहु रोने लगी प्रसाद तब भी अपनी धोर से न कहकर यमुना की प्रतिक्रिया उसके मुँह से ही प्रकट कराते हैं। उसने मंगल से कहा—“मैं नहीं चल सकती”^{५२} यद्यपि उसके पहले बर्लुन के साथ भेद्यक अपनी धोर से एक वाक्य यह भी मिला सकता था कि उसने मंगल के साथ चलने से इनकार कर दिया। इस प्रकार के अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं जो स्पष्ट सकत हैं कि प्रसाद नाटकीय सीनी में ही अधिक रमते थे।

संक्षिप्त चरित्र

पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया का विशाल प्रसार सैलक के रूप में उत्तम पुरुष में करें या नाटकीय सीनी में इससे उनके चित्रण के धाकार में कोई विरोध अन्तर नहीं पड़ता। दोनों ही अवस्थाओं में उनके चित्रणों पर संश्लेष की मोहर लगी रहती है। यहाँ यह बताना बेना आवश्यक न होया कि संक्षिप्त होने पर भी उनके बर्णनों से यह बात प्रकट नहीं होती कि भेद्यक उन चरित्रों में उदासीनता का भाव बनाये हुए है यद्यपि नाटकीय सीनी में किए गए उनके चित्रणों की तुलना में वे धीरे पड़ते हैं। ‘ठिठसी’ में महंश के पास से रुपये उधार लेने गई हुई अपनी बहन राजकुमारी की पीछा सुनकर मधुवन की जो भावेगम प्रतिक्रिया प्रकट हुई उसका वर्णन संक्षिप्तता और स्पष्टता की दृष्टि से उत्कृष्टतम है ‘बहु पापस की तरह चित्ताई। दीवार के बाहर ही इससी की छाया में मधुवन सड़ा था। पाँच हाथ की दीवार लीपते उसे कितना बिलंब लमटा वह गह्वर की छोपड़ी पर यमवृत्त-सा घा पहुँचा। उसके शरीर का असुरो का-सा पून बम अग्नित हो उठा। दोनों हाथों से महंश का मला पकड़कर दबाने लगा। वह छटपटाकर भी कुछ बोल नहीं सकता था और भी बल से बचाया। धीरे धीरे महंश का बिनास बर्बर शरीर निरक्षेप्ट होकर बीना पड़ गया।”^{५३} इसी प्रकार कंकाल में बरमाग नवाब की हत्या करते समय विजय की भावेगम प्रतिक्रिया तथा दोनों के मृत्युमयुक्ता होने का वर्णन हुआ है और यदि यह धाकार में थोड़ा बड़ा है^{५४} तो भी केवल इसीलिए कि यही विजय को अपने प्रति इन्दी मयाय का मुकाबला करना पड़ा जबकि यहाँ मधुवन का प्रतिइन्दी या कायर कामुद महंश जिसने कोई प्रतिकार नहीं किया था।

५१ प्रसार ‘ठिठसी’ पृ० १३६।

५२ प्रसार, ‘कंकाल’ पृ० २६३।

५३ प्रसार ‘ठिठसी’ पृ० १६०-१६१।

५४ प्रसार, ‘कंकाल’ पृ० १७८।

उपन्यासकार द्वारा टीका-टिप्पणी

उपन्यासकार प्रवचनकर्ता नहीं

प्रेमचन्द की भाँति प्रसाद भी साहित्य से बाधा रखते थे कि वह समाज की वास्तविक स्थिति दिखाते हुए उसमें अपारसंबाध का सामंजस्य स्थिर करे । ^२ कुछ रूप बगल की कठोर यथार्थताओं तथा धान्यपूर्ण ^३ स्वयं के मधुर स्वप्नों से अपने पाठकों को परिचित कराने के लिए भी कराधित वह प्रेमचन्द से कम प्रवीर नहीं थे पर वह सब होने पर भी उन्होंने कभी भी प्रवचनकर्ता के रूप में प्रकट होकर पाठकों पर अपनी मान्यताएँ साधने का प्रयत्न नहीं किया । वह जानते थे कि सिद्धांत से ही अपारसंबाधी धार्मिक प्रवचनकर्ता बन जाता है और यथार्थवादी सिद्धांत में ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं उठरता किन्तु साहित्यकार न तो इतिहासकर्ता है और न सम्यक्त्व प्रणेता साहित्य इन दोनों की कमी को पूरा करने का काम करता है । ^४ इसीलिए उनके उपन्यासों में प्रेमचन्द की सी सम्मी-सम्मी टीका-टिप्पणियाँ नहीं मिलती । एक कुशल नाटककार के समान — कुशल नाटककार तो प्रसाद थे ही — वह अपने को प्रेम रखते हुए अपनी बारखाओं और मान्यताओं को किसी एक या अनेक पात्रों के जीवन-वर्णन में ही बुसा-मिसा बैठे थे और बीरे-बीरे उनकी क्रिया प्रतिक्रियाओं प्रकटा कथोपकथनों आदि के माध्यम से व्यक्त कराते रहते थे ।

कंकाल में वह कमरा ठारा बिजय और मोस्वामी कुम्हारराज के मुख से अपने जीवन-वर्णन की अभिव्यक्ति कराते रहे । ^५ तिलसी में पहुँचे तो वे रामनाथ की बाड़ी में बोलते रहे और उसकी मृत्यु के बाद उन्होंने तिलसी को अपना माध्यम बनाया । ^६ इरावती में ब्रह्मचारी इरावती और अभिमित्र के मुख से बोलते

२-५-प्रसाद 'वर्णनकार और आत्मकार' 'वर्णन वक्ता और प्रवचनकर्ता' सं० १००१ पृ ५५-५६ ।

३-प्रसाद, 'कंकाल' मनुष्य (प्र०) पृ १६ (पाप कर्माँ । कुछ कितना नाम—दुख कर रही हैं करने दो ।)

मित्र (पृ ७५-८०) मोस्वामी कुम्हारराज (पृ २८१-२८२)

४ (क) प्रसाद 'तिलसी' पृ १००-१०१ (उपन्यास) ।

(ख) वही पृ २१२ (तिलसी) ।

'टीका की भाँति बैठे क्यूँ नहीं । अपने तिलसी का हाथ बलक कर क्या—बहल । तुम वर्णन में क्या की की बेटी हो तुम्हारा काम प्रवचनीय है ।

(प) वही, पृ २१२ ।

'भरे तुम तो मेरी कान को लकर तुमने अपना मानसिक स्वरूप को दिखा है क्या ?—क्यूँ का क्यूँ का स्वरूप नहीं ? प्रवचन में सब कुछ प्रकट करने का माध्यम तुमने नहीं किया ।'

रहे।^१ इस प्रकार नाट्य सीमा को अपनाते से एक तो उनके उपन्यासों के कथानक गतिशील रहे, दूसरे उनके पात्रों का चरित्र-विकास कभी रुकता हुआ नहीं दिखाई दिया और न ही उनके उपन्यासों में ठन्डा होने वाली उपरोपात्मकता कुछ रही।

पात्रों के भावी विकास का संकेत

प्रसार के उपन्यासों में ऐसे बहुत कम स्वयं हैं जहाँ वह सीधे पाठकों के सामने आए हों। 'कंकाम' में गोस्वामी कृष्णचरण के धामन में परस्पर विरोधी शिक्षा में जाने जाने अपने कई पात्रों को रूकड़ा करके वह पशुसी बार निराकरण होकर पाठकों के सामने आते हैं। "पाठक धारण्य करेंगे कि घटनासूत्र तथा सम्बन्ध में इतने समीप में मनुष्य एकत्र होकर चुपचाप कैसे रहे?"^२ और सगमय एक पृष्ठ तक उनके प्रेरक कारणों पर प्रकाश डालते रहते हैं जो अत्यंत आश्चर्यक ही हो गया था यद्यपि इस उद्धृष्ट पक्ष के बिना भी वह काम चला सकते थे। 'तितली' में प्रथम वह दो बार बार अपनी कुछ एक स्थापनाएँ दे देते हैं जो उनके पात्रों के भावी चरित्र विकास का आधार बनती हैं। अतुल्य पक्ष के आरम्भ में वह लिखते हैं "संसार में अपराध करते प्रायः मनुष्य अपराधों को छिपाने की मिरव बेष्टा करते हैं। जब अपराध नहीं छिपते तब उन्हें ही छिपाना पड़ता है। और अपराधी संसार उनकी इस बला से संतुष्ट होकर अपने नियमों की कड़ाई की प्रशंसा करता है। वह बहुत दिनों से सचेष्ट है कि संसार से अपराध उन्मूलित हो जाएँ। परन्तु अपनी बेष्टाओं से वह नए-नए अपराधों की सृष्टि करता जा रहा है।"^३ यह मनुष्य के कसकता भावकर कौमला होने के काम पर लय जाने और बार में वहाँ से भी लड़कर चम्पत होकर बीच बाजू की गुच्छा मजदूरी में मिल जाने का प्रसंग है। इसी प्रकार जीवन की कठोर यथार्थताओं से टकराकर बीबी माधुरी के प्रतिमान के बकनाभूर होने पर उनके बीता के प्रति स्नेहाई होने के संदर्भ में प्रसाद अपनी एक और स्थापना रख देते हैं "मानव हृदय की मौखिक भावना है स्नेह। कभी-कभी स्वार्थ की ठोकर से पशुत्व की विरोध की प्रकानता हो जाती है पर प्रेम मित्रता की घुसी मान बसा। बराबर बार्बार अपने को टपाकर भी वह उसी के लिए भ्रमड़ा करती है। मगड़पी है, इसलिए प्रेम करती है।"^४ इसी प्रकार कुछ-एक स्वयं और हैं जहाँ

१० प्रसार, 'दिल्ली' पृ० २० २।

(क). प्रसार, पृ० २०-२१।

'मुझे अपनी प्रियता से देखना होगा कि आर्जल में कहीं और न बच गया है।'

(ग) पृ० २२-२३ अमरप्रसाद का समय।

११ प्रसार, 'कंकाम' पृ० २१६।

१२ प्रसार 'तितली' पृ० २३४।

१३ चरित्र पृ० २०२।

प्रसाद पाठकों के सामने सीधे पाठे हैं पर ऐसे स्वयं केवल हृदय की भाषा निकालने के बजाय पाने के प्रयत्न न होकर उनके पात्रों के भावी विकास के रेखा-चित्र बना पाठे हैं।

विस्मेषणात्मक शैली

किसी व्यक्ति की ठीक-ठीक समझने के लिए उसके परिपार्ष्व को तथा परिपार्ष्व के प्रति उसके व्यक्त—यत्न या प्रयत्न—आचरण को जान लेने भर से काम नहीं चलता क्योंकि मनुष्य का व्यक्त आचरण ही उसका समूचा चरित्र नहीं।^{६४} मानव-चरित्र एक हिमनय (धाईसर्ग) है जिसका केवल जोड़-सा भवभाव ही उसकी व्यक्त चेष्टाओं में प्रतिबिम्बित हो पाता है और शेष अव्यक्त रहकर उसके व्यक्त आचरण को प्रेरित करता रहता है। इसलिए उस प्रेरक पर अव्यक्त चरित्र को जाने बिना मनुष्य के व्यक्त आचरण का मूल्यांकन भ्रामक हो सकता है।^{६५} मानव-जीवन का यही एक रहस्य है जिसके कारण प्रत्येक मनुष्य दूसरों के लिए, अनेक बार अपने लिए भी पहेली बना रहता है। पर वस्तुजगत् की यह पहेली उपन्यासजगत् में सुलभ जाती है। अपने पात्रों का जल्दा होने के नाते उपन्यासकार उनका अन्तर्द्वार ही है उनका व्यक्ताव्यक्त आचरण चित्रित करने के लिए उसे बर्णनात्मक तथा नाटकीय दोनों प्रकार की प्रणालियों के प्रयोग की स्वतन्त्रता भी रहती है। नाटकीय प्रणाली द्वारा वह अपने पात्रों के व्यक्त आचरण में प्रतिबिम्बित होने वाले उनके चरित्र को अभिव्यक्त करता है और विस्मेषणात्मक प्रणाली द्वारा उनके अव्यक्त चरित्र का चित्रण करता है जो उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं से न तो व्यक्त हो पाता है और न ध्वनित ही।

मनोविश्लेषण की कमी

इस प्रकार वस्तु-जगत् में मानव-चरित्र का जो शेष अव्यक्त रहता है, उपन्यास में वह विस्मेषणात्मक प्रणाली द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। अतएव सद्यस्त वर्तन प्रणाली के प्रतिरिक्त उपन्यासकार की विस्मेषणात्मक प्रणाली की ओर जितनी अधिक प्रवृत्ति होती उतना स्पष्ट और सुसंगत होगा उसके पात्रों का चरित्रचित्रण। अदराकर प्रसाद के वर्णनों में मूर्तिमत्ता की अपूर्व योजना होने से उनके पात्रों का रंग रूप हमारे मानसपटल पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। पर जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, पात्रों के मनोविश्लेषण की ओर न प्रवृत्त होने से फलस्वरूप उनके कई पात्र पहेली बनकर रह जाते हैं और उनकी कई क्रिया प्रतिक्रियाओं में संगति बैठाना कठिन हो जाता है। पात्रों के चरित्र-विकास की ऐसी अवस्थाओं में जहाँ कि उनसे आशा की जा सकती थी कि वह उनकी तात्कालिक मन-स्थिति का विस्मेषण करते

हु। उनके मन में उठ रही परस्पर-विरोधी तरंगों द्वारा उत्पन्न संघर्ष का निराकरण करते, वह इसमें न उत्सुक कर नाटकीय या काव्यात्मक प्रणाली द्वारा उस संघर्ष की ओर संकेत मर करके भागे बढ़ जाते हैं।^{११} प्रेमचन्द के समान प्रसाद भी ऐसे स्वर्णों के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सके हैं। प्रेमचन्द निजी टीका-टिप्पणी द्वारा अपने विचारों को प्रकट करने का मोह न संवरण कर सके और प्रसाद का इम्मान एक सफल नाटककार होने के नाते नाटकीय शैली की ओर अधिक रहा। जब कभी वह मनोविश्लेषण की ओर प्रवृत्त हुआ भी उनके पात्रों ने उनकी एकाग्रता भंग कर दी और पात्रों के चरित्र की जो गुलियाँ विश्लेषणात्मक प्रणाली से ही सुनवाई जा सकती थीं उनके लिए भी प्रसाद को नाटकीय प्रणाली का धायप लेना पड़ा।

पात्रों की बहिर्मुखता

'जंकल' के चतुर्थ खण्ड के चारुम में 'घासोक प्राप्तिनी वसुधा अपनी कुटीर में दीपक बुझाकर' बैठी उसने 'भाँखें भी बन्द कर लीं' 'उसके जीवन की धन्यता रखनी उसके चारों ओर बिठी थी पाठक भी हृदय बामकर बैठ गया कि सेलक अब उसकी मन-स्थिति का विश्लेषण करेगा। पर, दुर्भाग्य से 'जटिका ने बाकर वसुधा का द्वार बटबटा दिया' और सारी एकाग्रता जाती रही।^{१२} इसी प्रकार, सुसदेव जीने के लिए जनपान का प्रबन्ध करने के प्रयत्न में 'ठिठली' की राजकुमारी अपनी मित्रता और धनिमयी भाँखों को घुमाकर जिवर ही से जाती थी धमाक का सोलसा मुह विकृत रूप से परिचय देकर जैसे उसकी हँसी उड़ाने के लिए मौन हो जाता। वह पागल होकर बोली—'यह भी कोई जीवन है। यह पड़कर पाठक धाधा करने लगता है कि अब सेलक पात्र के मन में गोता लगाएगा धामक वह सपाटा भी पर तभी 'यया है भाभी ! मैं था यया ।'^{१३}—कहते हुए जीने ने भर में प्रवेश किया और राजकुमारी को अपने मन के कपाट बन्द करके बहिर्मुखी होना पड़ा।

इसी प्रकार के घनेड स्वस प्रसाद के उपन्यासों में मिलते हैं जहाँ उन्होंने मनोविश्लेषण के लिए उपकरण तो जुटाए, पर ठीक भीके पर उनका पूरा उपयोग करने से धपना हाव लीज भिया।

११ रसाकर बोली, 'मन्त्र का कथा-सहित और दर्शन' 'रसमा पत्रिका, १९२९

'जो कवि काव्याली में मनु के भीमर मन्त्रिण के विषय में आरम्भकनक रूप से उल्लेख रहा है, कनको चरित्रमित्र विश्लेषणी प्रणिया पर समेद नहीं विश्व ज्ञ सकन। फिर भी आरम्भ ही है कि जंकल का कोई भी पात्र उन्हें मनोविश्लेषण के योग्य नहीं बँध कोई भी परिस्थिति गम्भीर काव्यगत उत्पन्न करने योग्य मान्य नहीं हुई।"

१२ प्रसाद 'दर्शन' पृ. २७४।

१३ प्रसाद, 'ठिठली' पृ. ६० ६३।

प्रत्यक्ष-प्रेरणाओं का चित्रण

किसी विशेष परिस्थिति में पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया उतना महत्व नहीं रखती जितना कि उसके प्रेरक कारण।^१ विभिन्न परिस्थितियों में तो पात्रों की क्रिया प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न हो सकती है। समान परिस्थितियों में भी उनकी प्रतिक्रियाएँ समान-समान हो सकती हैं।^२ पात्रों के चरित्र विकास में संगति ठहराने के लिए उन विभिन्न क्रिया प्रतिक्रियाओं के प्रेरक कारणों में एकसूत्रता माना धारणा आवश्यक हो जाता है।

धरमपत प्रतीत होने वाले आचरण की प्रेरणाओं में संगति

कभी-कभी अचानक प्रसाद भी अपने पात्रों के व्यक्त आचरण के प्रेरक कारणों पर प्रकाश डाल देते हैं, विशेषतः जब जब किसी पात्र का आचरण एकदम अप्रत्याशित हो। 'कंकाल' के परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों वाले पात्रों का मोस्वामी इच्छाचरण के धारम में पहुँचते ही आपसी बैर को भूल कर अपने प्रति इन्दी को साँत साव से देखते रहना धरमपत प्रतीत होने लगता है पर पीप्र की सख्त स्वयं उनके इस अप्रत्याशित आचरण के कारणों पर प्रकाश डाल कर उनके व्यवहार में संगति बैठा देता है। सतिका और बंटी का वह मनोमात्रिम्य नहीं रहा क्योंकि अब बाबम से इन दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। 'मनुष्य के हृदय में संयम के व्यवहार की इतनी तीव्रता थी कि उसके सामने और किसी के अत्याचार परित्युक्त हो नहीं पाते थे। वह अपने दुःख-मुक में किसी को सामीप्य बनाने की चेष्टा न करती' इत्यादि।^३ 'तितली' के मनुष्य की बात बिना बहुत राजकुमारी अपनी सम्बन्धिता के लिए गाँव भर में विख्यात थी पर वह सुप्रदेव चौबे की फुसलाहट में कैदे था नहीं। इसके लिए सख्त को चौबे के साथ उसके पुत्रों सम्बन्धों का सम्बन्ध करना पड़ा और चौबे की भेंट का उस पर जो प्रभाव पड़ा था उसका चित्रण भी 'उस दिन चौबे बिदा हुआ। किन्तु राजकुमारी के मन में अमानक हलचल हुई। समय के प्रौढ़ बाब की प्राचीर के भीतर जिस चारित्र्य की रखा हुई थी बाब वह संचि खोजने लगा था।'^४ तत्पश्चात् सख्त उन सभी कारणों पर प्रकाश डालता है जिन्होंने मनुष्य-तितली विवाह के प्रति उसके भावी विरोध को प्रेरित किया 'उपर हृदय में एक सन्तोष भी उत्पन्न हो गया था। वह सोचने लगी थी कि मनुष्य की मृहस्थी का बोध

^१ H. M. Maciver 'Society' Macmillan, London, 1930 p. 35.

^२ Haines, 'Living with Books' Columbia University Press, New York, 1950, p. 228.

^३ १ प्रकाश 'कंकाल' पृ. २२६।

^४ २ प्रकाश 'तितली' पृ. २६।

उसी पर है। उसे मधुबन की कल्याण काममा के साथ उसकी व्यावहारिकता भी देखनी चाहिये। डेरकोट जैसे बनेमा पीर तितली से बिबाह करके दखि मधुबन कैसे सुखी हो सकेया ? यदि तितली इन्द्रदेव की रानी हो जाती और राजकुमारी के प्रयत्न से तो वह कितनी । १ ३

मधुप्य का कथन इतना महत्त्व नहीं रखता जितना कि उन चर्यों का अभिप्राय। उसके कथन की साक्षरता या निरर्थकता उसके अभिप्राय पर ही निर्भर करती है। तहसीलदार द्वारा इन्द्रदेव के विरुद्ध चकसाई बाने पर 'तितली' की श्यामकुमारी जब स्थिति पर विचार करते-करते मीन हो गई तो उसके शोक को ताड़ कर उसे कम करने के अभिप्राय से सहसा माधुरी ने कहा 'क्यों मी बया सोच रही हो 'ये भोग तो ऐसी व्यर्थ की बातें निकामने में बड़े कष्टुर हैं ही। तुम को तो यह काम पहले ही कर डालना चाहिये।' ४ किन्तु क्या कर डालना चाहिये उसे साफ-साफ माधुरी ने भी धमकी नहीं सोपा था। "बह केवल मम बहलाने वाली कुछ बातें करना चाहती थी।" १ २

प्रस्तावनाओं का भी 'ग्राम्पेक्टिव' चित्रण

यद्यपि प्रस्ताव समय-समय पर अपने पात्रों की बहुकपी क्रिया प्रतिक्रियाओं के पीछे छिपी चमकी प्रेरणाओं को भी प्रकाश में लाते जाते पर बहुधा बाने या मनजाने उनके कई मुख्य प्रेरकों के बारे में या तो बह मीन भारण कर लेते हैं अथवा चीन-चीन परस्पर-विरोधी प्रेरकों की धोर संकेत मान करके धाये बढ़ सेते हैं। फलतः उनके कई पात्रों के चरित्र दुर्बल बन गए हैं। 'कंकाल' की नायिका मधुना किन कारणों से विजय द्वारा की गई हत्या को अपने धिर पर से लेने के लिए प्रेरित हुई थी। सैराफ इस सम्बन्ध में उसकी मानसिक प्रवृत्तियों का बिस्लेषण करने की बजाए अन्य पात्रों के परस्पर-विरोधी अनुमानों को उनके 'ग्राम्पेक्टिव' सम्मयन को पाठकों के समक्ष रख कर नीरसीर बिबेचन या काम उन पर छोड़ देता है। इस सम्बन्ध में वाला का मत है कि "बह स्त्री अवश्य उस मुश्क से प्रेम करती है जिसने हत्या की।" १ ३ पर संयत्त का मन सदैव इस विचार का प्रतिपाद करता रहा "वाला ! पर मैं कहता हूँ कि वह उससे मूला करती थी। ऐसा क्यों ! मैं न कह सकूया पर है बात कुछ ऐसी ही।" १ ३ ४ किन्तु को मिले अपने पत्र में निरञ्जन उसके प्रेरक भाव को एक धीरे रूप देता है 'वही मधुना

१०१ पृ. ६ १०१ पृ. ६

१ ४ प्रस्ताव, 'तितली' १०१ पृ. ६ १०१ पृ. ६

१ ५ पृ. ६ १०१ पृ. ६

१०६ प्रस्ताव, 'कंकाल' १ १०६ पृ. ६

१०७ पृ. ६ १०७ पृ. ६

तुम्हारी बाती । तुम जानती होमी कि तुम्हारे धन से पसने के कारण विजय के लिए वह पौसी पर बढ़ने जा रही थी और मैं जिसे विजय पर समस्त था दूर-दूर खड़ा बन से सहायता करना चाहता था ।” १ “ पर विजय और धनुषा के बाद के सम्बन्ध-विकास को देखते हुए पाठकों को कदाचित् हममें से एक मनुष्य की पूर्णतः सत्य दिखाई न दे ।” २

नाटकीय प्रणाली

प्रसाद दूसरा उपन्यासकार नहीं थे । उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण करने से पहले वह हिन्दी साहित्याकाश में एक सफल कवि और नाटककार के रूप में जगमगा चुके थे । पर जीवन की यथार्थताओं के निकट जितना उपन्यास है उतना नाटक या कविता नहीं ? इसलिए संस्थावाद की चक्की में निरंतर घिसते बसे या रहे मानव-कंकाल की मूक वेदना को मुखरित करने के लिए उन्हें साहित्य की इस विधा—उपन्यास—को भी अपनाना पड़ा । ३ उपन्यास क्षेत्र में घुसते ही बढ़ती हुई कीर्ति को देखकर ही प्रसाद उपन्यास की ओर प्रवृत्त हुए थे ऐसा समझना उनके प्रति अन्याय करना होगा । ४ प्रसाद उपन्यास की ओर झुके तो सही पर उनके साहित्य की मूल प्रवृत्तियाँ—कविता और नाटक—उनका साथ न छोड़ सकीं और, जाने या अनजाने उनके उपन्यासों पर हावी होती रहीं । पद्य का प्रयोग तो वह उपन्यासों में कर नहीं सकते थे क्योंकि उपन्यास गद्य-साहित्य की एक विधा है पर गद्य-काव्य के सुन्दरतम उदाहरणों से उनके उपन्यास भरे पड़े हैं ।

उपन्यासकार के नाते वह अपने उपन्यासों में प्रत्यक्ष (बर्णनात्मक तथा विस्लेषणात्मक) और अप्रत्यक्ष (नाटकीय) दोनों प्रणालियों का प्रयोग कर सकते थे पर उनका दम्यन नाटकीय प्रणाली की ओर ही अधिक रहा । ‘कंकाल’ ‘विपत्ती’ और ‘इरावती’ में नाटकीय प्रणाली का अधिकधिक प्रयोग इस बात का

१०८ पृष्ठी, ५ २६ ।

१ ६ पृष्ठी, ५० २६४ ।

“यह क्या बीत होगा कि एक ली चारि बसने कहा—‘चारि’ ।”

‘बहन ! “कह कर विजय बड़ बैठा ।”

११ प्रसाद ‘कनकेश्वर और साधवत’ ‘बाल्य कला और धन्य जीवन’ ५ ८६ ।

“सामूहिक चेतने में मिल मिलान का आभास दिखाते देखे हैं वह धन्य और लज्ज (धररा और कपरी) दोनों संसारों के बीच की धनु है । साहित्य की आत्मनुवृत्ति यदि इस स्थान तकमिली कभी और साधारणीकरण का स्तर कर लगे, तो बाल्यविकस का स्वर प्रकट हो लगे है । हिन्दी में इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण यह साहित्य ही बना ।”

१११ मीनाराम, ‘हिन्दी-उपन्यास’ ५ १३२ ।

“सम्पन्न प्रेसकार जी के प्रदीप्त चित्तों की मनोहरता देखकर प्रसाद जी भी इस लीम को संसार न कर लगे और उनकी कल्पना भी उन्नी और चौड़ गयी ।”

स्पष्ट प्रमाण है। अपने औपन्यासिक पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए उन्होंने उन सभी साधनों का प्रयोग किया है जो एक सफल नाटककार को उपलब्ध पड़ते हैं। चरित्रात्मक खूबी तो फिर भी उनके उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं। पर निरक्षरपणारमक शैली जिसकी सहायता से उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र की अनेक गुणियाँ सुलभता से करता है उनके उपन्यासों में बहुत कम मिलती हैं। फलतः उनके पात्रों का चरित्र-विकास कई स्थानों पर ठुकरा हो गया है।

घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण

चरित्रोद्घाटन और चरित्र विकास

अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए प्रसाद भी यथेष्ट घटनाओं का प्राम्दय लेते हैं। अपने प्रमुख पात्रों का एक-दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने उन्हें एक-दूसरे के अधिकारिक निम्न नामों का काम यह घटनाओं से ही लेते हैं। इसी लिए प्रेमचन्द के पात्रों की भाँति प्रसाद के पात्र परस्पर परिचय के लिए किसी तीसरे पात्र की—यहाँ तक कि सेखर की भी—सहायता नहीं रखते। कंकाव में विजय और मंगल की प्रथम भेंट थोड़े बाली घटना द्वारा ही होती है। बड़ी उत्प्रेरणा से उन्मुख होकर थोड़े की जमान पकड़ कर उसके नयनों पर एक सबल घुसा जमा कर उसे घाँव करते हुए विजय का हाथ पकड़ कर उसे नीचे से नीचे उठार लेने वाले युवक मंगल के प्रति विजय का रोम रोम आभारी हो गया।^{११२} इस घटना में मंगल की निरक्षरता तो प्रकट हुई ही इससे विजय और मंगल एक-दूसरे के सम्पर्क में भी आ गये और उनके बीच-तुलु परस्पर उसझने लगे।

निरंजन द्वारा यमुना को बेवासय से निकाल देने वाली घटना की रचना एक और तो निरंजन के बन्धन की प्रकाश में आने के लिए हुई और दूसरी ओर विजय और यमुना को एक-दूसरे के निकट आने के लिए।^{११३} इसी प्रकार, माता और मंगल का प्रथम परिचय लेने में उसे (यमुना को) साँठ की जब से बचाने वाली घटना द्वारा हुआ जिसके पश्चात् वे एक-दूसरे के जीवन में घुसते-घुसते गए।^{११४} 'सितली' के प्रारम्भ में ही नीले का घटना घटने वाली घटना द्वारा बहूँ सितली

^{११२} प्रसाद, 'कंकाल' पृ. २४-२५।

^{११३} वही, पृ. ७५-७६।

^{११४} 'यमुना की लेनी हुई बाली है वही—उसने कलहल की दृष्टि से विजय को देखा। विजय धूल-मुँहवा में बह गया। उसने ली की—एक कुली ली की—सरल सरलपुष्टि कमी म चढ़ी की। उसे अम हो गया जैसे विजय की मर हो।'

^{११५} प्रसाद, 'कंकाल' पृ. २५।

^{११६} 'विचारों में दोलनात्तु दुःख मंगल ने बस परिचय' 'यह तो गाय है।' 'मंगल के हृदय में एक मनीषा लूनी हुई। वह दग दगापर गाय के पास पहुँच ही गया और कलहल दुःख शब्दों में उसे कलहल के ही दाय। गाय भावनाहीन उसे बेचकर दल गयी।'

की सहज दयामुता का परिचय मिलता है वही इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों में सम्पर्क भी स्थापित हो जाता है।^{११२} 'इरावती' के धारम्भ में महाकाम के मन्दिर में हो रहे मृत्यु के समारोह में वहाँ बहुस्पतिमित्र की बुद्धता का परिचय मिलता है और ब्रह्मचारी की निर्भीकता और स्वाभिमान की भावना भी व्यक्त हो जाती है वहाँ साथ ही उपन्यास के प्रमुख पात्रों में छर्वर का मुखपाठ भी हो जाता है।^{११३}

प्रसाद जिस प्रकार घटनाओं के समावेश द्वारा पात्रों के जीवन-तंतुओं को परस्पर उत्तम कर उनके चरित्र को विकास की ओर ले जाते हैं वैसे ही किसी एक या दो एक पात्रों का उपन्यास में काम पूरा हो जाने पर उन्हें किसी और घटना के समावेश द्वारा उसी प्रकार निकाल बाहर फेंकते हैं वैसे मखन में से बाल। कई बार जो उपन्यास के धारम्भ में जिन घटनाओं से वह चरित्रविकास का काम लेते हैं उपन्यास के अंत में उनसे मिलती जुलती घटनाओं का प्रयोग पात्रों को उपन्यास के रमण से हटाने के लिए करते हैं। 'तिलमी' के पूर्वाह्न में मुस्ती के अचाढ़ में हाथी के चिगड़ जाने वाली घटना^{११४} द्वारा मेखक मनुवन और रीना को सम्पर्क में लाकर मनुवन की जीवन-विद्या को बदल देता है और उपन्यास के अंत में उसी से मिलती जुलती घटना^{११५} द्वारा लहसीसवार, बेक्या रीना पुवारी आदि को उनकी आवश्यकता न रहने पर, हाथी के पांशों से पीसा देता है।

मनोव्यथा की प्रतिबिम्बित

इसके अविरत प्रसाद पात्रों की मानसिक पीड़ा और एक-दूसरे के प्रतिप्रत्यक्ष दुष्टिशील की ओर संकेत करने के लिए भी घटनाओं का निर्माण करते रहते हैं। कंकाल में यमुना और मयल को घबरेने बाधे करते देख विजय की चिन्ता भक्का समा इसका बहुत बिलेपखारमक प्रयासी से न करके उपन्यासकार उसे विजय की बीमारी की घटना के रूप में प्रतिबिम्बित करता है। विजय की बीमारी में यमुना ने जिस समय से उसकी सेवा-मुद्रा की उससे संभव पर प्रकट हुए बिना न रहा कि वह विजय की ओर घाईष्ट है।^{११६} इससे यमुना के प्रति उसके रक्त में परिवर्तन था गया। इसी प्रकार गोस्वामी कुप्युञ्जय के आशय में यमुना की बेगुनी ने मंगल के हृदय को जो ठेस पहुचाई थी वह उसके प्रणवद श्वर के रूप में प्रकट हुई, जिसमें दिन रात

११२ प्रसाद, 'तिलमी' पृ. १०-१८।

११३ प्रसाद, 'इरावती' पृ. १०-१३।

११४ प्रसाद, 'कंकाल' पृ. १७२।

११५ वही, पृ. १८१-१८२।

११६ प्रसाद, 'कंकाल' पृ. ८८-८९।

एक करके मंजूर की सेवा करके उसके प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करने का माता को प्रसन्न मिलता । १२

पार्श्वों के चरित्र-विकास की कोई एक समस्या किसी घटना को जन्म देती है और इस प्रकार सम्बन्धित बहु घटना उसके तथा अन्य सम्बन्धित पार्श्वों के जीवन का गति देती है ।

कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण

नाटकीय ढंग की और प्रसार के आवश्यकता से अधिक मुकाब में उनके औपन्यासिक पार्श्वों को बाधनी बना दिया है । कई बार तो उनकी प्रयत्नता इतनी बढ़ जाती है कि वे लेखक की बात को बीच में ही काटकर अपनी कहने लग जाते हैं । परिणामतः उनके उपन्यासों में बहुत से कथोपकथन तो नाटक की भाँति कथामूर्तों को बोझी और कथालोक को गति देने के लिए ही होते हैं और उनका पार्श्वों के चरित्रोद्घाटन से कोई सम्बन्ध नहीं होता ।

औपन्यासिक पात्र जन्म लेते ही तो उपन्यास में आ नहीं जाते । उपन्यास-अवस्था में उन्हें जब तक नहीं माया जाता जब तक कि वहाँ उनके करने के लिए कोई विशेष काम न हो । इसलिये उपन्यास में जाने से पहले वे अपने जीवन के कई वर्ष बिता चुके होते हैं । उन्हें उपन्यास में पहली बार देखते ही उनका पहला जीवन-वृत्त जानने की जिज्ञासा होती है, जिसे उपन्यासकार प्रायः उनका प्रथम परिचय कराते समय संक्षेप में बता दिया करता है । पर प्रसार इस काम का भार भी अपने पार्श्वों पर ही छोड़ देते हैं । कथोपकथन के बीच में उनके पात्र स्वयं ही अपनी जीवनवाधा सुनाने लग जाते हैं । किछोरी घाघि का उपन्यास में पदार्पण करने के पूर्व का जीवन वृत्त हमें उन्हीं के शब्दों में मिलता है । और तो और प्रसार के बहुत से पार्श्वों के नाम तक का पता भी उनमें हो रहे कथोपकथनों से ही चलता है सिवाय उन्हें प्रसंग से नहीं बताता ।

इसके प्रतिरिक्त जब पात्र काफ़ी देर मायब रहने के बाद पुनः उपन्यास में आते हैं तो इतनी देर में कहीं रहे और क्या करते रहे इसका परिचय भी वे पात्र स्वयं देते रहते हैं ।

चरित्र-विकास की विविध समस्याओं का चित्रण

उपन्यास में प्रथम प्रवेश के समय की पात्र की स्थिति से लेकर उसके उत्तरोत्तर विकास की विविध समस्याओं का चित्रण भी प्रसार समय-समय पर उनमें हुए संघर्षों द्वारा कराते चलते हैं जिससे जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में होनेवाले असर फेरों का परिचय मिलता रहता है ।

पसह—तितसी ने ही तो ! उपन्यास के प्रारम्भ में ही उसमें भीर रामनाथ में भी संवाद चलता है उसमें उसका नामोचित प्रीत्युष्य स्पष्ट भ्रमकृता है 'बापू ! जब एकाल में तुमने मुझे पामा बा । सो बूझ पीकर मुझे वह पूरी कपा सुनायो । १२१' इसके पश्चात् जब वह बस प्राप्त होकर वास्य भीर यौवन की संधि पर पहुँच जाती है, तो कैसे वह मागिनी का रूप धारण करती जाती है

"तो क्या मैं तुम से कठ रही हूँ ?"—बिड़े हुए स्वर में तितसी ने कहा ।

"भाज न रही तो वो दिन मैं कठोगी । उस दिन रक्षा पाने के लिए भाज से ही परिश्रम कर रहा हूँ । नहीं तो कुछ की रोटी किसे नहीं पच्छी लमती ?"

तितसी इस सहज हँसी से भी भ्रमता उठी । उसने कहा—"नहीं नहीं मेरे लिए किसी को कुछ करने की आवश्यकता नहीं ।" १२२

संयत—विवाह के पश्चात् वह किस प्रकार एक उत्तरदायित्वपूर्ण महिला के रूप में जीवन को समझौता समझकर मार्ग में आनेवाले आड़ भ्रंशकों से बचती हुई चलती है यह पं० बीनानाथ की कथा के विवाह के धक्कर पर उसकी राजकुमारी से हुई मेट के बीच विवित होता है । कहाँ तो भाव उगलती हुई राजकुमारी और कहाँ संयत तितसी

"मैं कौन हूँ इसकी ? यह सिरचढ़ी तो स्वयं ही बूझा खोजकर पाई है । मता इस विस्फोट की आवश्यकता से क्या कार्य ?"

राजकुमारी का स्वर बड़ा तीव्र और रुखा था । "यब तो या गई हूँ बीबी"—तितसी ने हँस कर कहा ।

कुछ युवतियों ने उसकी बात पर हँस दिया तितसी भीष्मक सी अपने धपटप को खोजने लगी । फिर उसने साहस एकत्र किया और पूछा—

"बीबी मेरा धपटप लमा न करोगी ? १२३

बुढ़ और धर्मिय—जीवन की कठोर मयार्षताओं से टकराकर उसके मधुर स्वप्न भंगे ॥ बिहार गए हों पर उसका धैर्य नहीं टूटने पाया था प्रत्युत् वह पर्वत के समान धर्मिय बनी रही थी । इन्द्रदेव की सहायता को टुकटाकर तितसी के सौट घाने पर जब राजकुमारी ने सबसे पूछा कि मुकदमे में क्या हुआ ? उस समय के उसके प्रसंग और बुढ़ उत्तर में स्वावलम्बन की भावना घातप्रोत वीरता है

"पता नहीं लगा । और न तो उनके घाए बिना मुकदमा ही चलता है । जब तक हम लोगों को बुढ़ सीकर तो रहना नहीं होया बीबी ! बीना तो

१२१ मस्तर, 'मिर्ज़ा' पृ० ८ ।

१२२ वरी, पृ० १४ ।

१२३ मस्तर, 'मिर्ज़ा' पृ० १६२ ।

पैगा ही भितनी साँतें धाने-धाने को हूँ उसमी पराकर ही रहूँगी। फिर यह क्या हो रहा है ? — कहकर उसने भी को हाँकते हुए अपनी छोटी सी पठरी रख दी।

“धाय जगे ऐसे पेट में जोकर ही क्या होगा। मगवान् मुझे उठा ही भेते तो क्या उनको कोई अपराध मगता। मैं तो —”

“मैं भी तुम्हारी सी बात सोचकर छुट्टी पा जाती बीबी ! पर क्या करूँ मैं ऐसा नहीं कर सकती। मुझे तो उनके झीटने के दिन तक बीना पड़ेमा घोर जो कुछ वे दे गए हैं उसे संभाल कर उनके सामने रख देना होगा।”^{११२४}

तितमी और बीना के बीच समय-समय पर जो संवाद लेखक ने कराए हैं, उनमें तो उस प्रतिनिष्ठ भारतीय नारी का आदर्श मूर्त हो उठा है। ‘बहुत बीसा। छसार-भर उनको चोर हथारा और डाकू कहे, किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसलिए मैं कभी उनसे ब्रूसा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए, उस स्नेह के लिए, समुपट है।’^{११२५}

ममतामयी समाज के सम्मुख ‘अप्यावधि कठोर’ भारतीय नारी माँ के रूप में कैसे कुसुमावधि कोमल ममतामयी बन जाती है। निर्धन समाज से प्रेमेसे टनकर से सकने की समता रखनेवासी तितमी यह जानकर कि समाज ने उसके पुत्र के मन में भी उसके सतीत्व के बारे में संदेह उत्पन्न कर दिया है, कण्ठा-बिह्वल हो उठती है। मोहन के प्रति उसके दब्बों में आत्मविश्वास कूट-कूटकर भग्न पड़ा है।

“कह भी ! मुझे भीते भी मार न डाल। मेरे धाम। पुत्र ! तुझे डर किस बात का है ? तेरी माँ ने छसार में कोई ऐसा काम नहीं किया है कि तुझे उसके लिए मज्जित होना पड़े।”^{११२६}

इस प्रकार तितमी ही क्यों यमुना पट्टी बीना इरावती विजय मंजस इन्द्रदेव मधुवन आदि के परिवर्तन का विभिन्न अवस्थाओं और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में होनेवाले परिवर्तनों की झँकी समय-समय पर हुए उनके कथोप कथनों में मिलती रहती है।

अवचेतन की अभिव्यक्ति

बड़े मन से दबाकर रके हुए भाव कई बार सहसा धमाले में निकलें हुए पम्पों में मुखरित होकर व्यक्ति का अन्धा-धोड़ देते हैं। प्रसाद के पात्र कई बार, इस तरह घनायास ही पाठकों के सम्मुख धुमकर उन्हें आश्चर्यचकित कर देते हैं। बीना

११२४ वी. वू २३१ २३२।

११२५ पम्पर, ‘मिलनी’ वू २३०।

११२६ पम्पर, ‘मिलनी’ वू २३१।

बादसन की ओर घाट्टा थी यह तो बादसन भी जानता था पर सीसा इस मार्ग पर इतनी दूर निकल आई होगी इसकी उसे धारणा नहीं थी। मौका बिहार करते समय बादसन से अत्यंत सामारण बातचीत के बीच सीसा के मुख से निकले एक वाक्यांश ने सीसा को एकदम गिराकर रख करके बादसन के सामने तत्काल में ना खड़ा किया।

“बादसन ने हंसी से कहा—“सीसा ! तुम तो गया स्नान करने सबेरे नहीं आती। फिर कैसे हिन्दू ?”

सीसा ने हंसकर कहा—“तुम भी प्रति रविवार गिरजे में नहीं जाते फिर कैसे ईसाई ?”

‘तब तो न तुम हिन्दू और न मैं ईसाई !

‘बस केवल स्त्री पुरुष’ सहसा सीसा के मुख से बजाने में निकल गया। बादसन ने चौंक कर उसकी ओर देखा। सीसा झेंप-सी गई। १२०

इस प्रकार इस स्थल पर पाठक भी बंक्ति हुए बिना नहीं रहता। वह कभी भी यह नहीं सोच सकता था कि सीसा पर से रामनाथ की चिन्ता का रंग इतनी जल्दी उतर जाएगा।

१

भाषाभिव्यक्ति में व्यंग्यकता

कोई व्यक्ति अपने कथोपकथन में सदा ही पूर्णव्येष्ट सुल जाता हो यह बात नहीं। कई बार उसके अन्दर तो बहुत कुछ भरा होता है और बाहर उसका पड़ना भी चाहता है पर अनीचित्य के भय से हानि लाभ के फिती घम्य भाव से वह अपने भावैरिक भावों को बाहर आने से बलपूर्वक रोकता है। इस प्रकार उसके कथोपकथन में उसकी तत्कालीन मनोदशा का उल्लेख अथवा ही प्रकट हो पाता है जो उसके रोके से न बका हो। ऐसे स्थलों पर उपन्यासकार बड़े सकट में पड़ जाता है। यदि वह अनीचित्य का ध्यान रखे बिना अपने पात्रों के भावैरिक भावों को उनके अपने मुख से व्यक्त कराता है तो अस्वाभाविकता का बोध आने की संभावना रहती है और यदि वह उसे पूरी तरह से सुलने नहीं देता तो परिणाम कुछ इस प्रकार होता है। प्रसाद ने ऐसे स्थलों पर बड़ी कुशलता से ऐसे कथोपकथन कराए हैं जिनसे उनके भावैरिक भाव व्यक्त हो जाते हैं पर पूरी तरह सुलने नहीं। ‘तितसी’ में इन्द्रदेव और सीसा के विरुद्ध पहलवान रहने के लिए मनबरी और मामूरी के बीच जिस संवाद में संघर्ष हुई थी इस दृष्टि से वह उत्सेहनीय है।

“मामूरी ने भीतर के कमरे की ओर देखते हुए उठने मूढ़ पर हाथ रख दिया और कहने लगी—“ध्यायी मनबरी ! क्या इस बुद्धि से तुटकाया पाने का कोई उपाय नहीं ?

पड़ेगा ही बितनी सीधें धाने-धाने को हूँ सतनी गराकर ही रहूँगी। फिर यह क्या हो रहा है ?”—कहकर उसने भी को हाँकते हुए अपनी छोटी सी गठरी रख दी।

“आम सगे ऐसे पेट में बीकर ही गया होगा। भगवान् मुझे उठ ही सेते तो क्या उनको कोई अपराध सपता। मैं तो”

“मैं भी तुम्हारी सी बात सोचकर छुट्टी पा जाती जीजी ! पर क्या कर मैं ऐसा नहीं कर सकती। मुझे तो उनके जीटने के दिन तक बीना पड़ेगा और वो कुछ ने दे गए हैं उसे संभाल कर उनके सामने रख देना होगा।”^{११४}

तिरुची और सीमा के बीच समय-समय पर जो संवाद लेखक ने कए हैं, उनमें जो उस पतिलिखित भारतीय नारी का आदर्श मूर्त हो उठा है ‘बहूत सीमा। संसार भर उनको चोर हत्याघात और डाकू कहे किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसलिए मैं कभी उनसे बुरा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए, उस स्नेह के लिए, अनुवृत्त है।’^{११५}

ममतामयी समाज के सम्मुख ‘बक्याचपि कठोर’ भारतीय नारी माँ के रूप में कैसे कुसुमाचपि कोमल’ ममतामयी बन जाती है। निर्बल समाज से प्रेमे से टकरा ले सकने की क्षमता रखनेवासी तिरुची यह जानकर कि समाज ने उसके पुन के मन में भी उसके स्त्रीत्व के बारे में छद्म उत्पन्न कर दिया है, कष्टा-विह्वल हो उठती है। मोहन के प्रति उसके शब्दों में आत्मविश्वास फूट-फूटकर मर पड़ा है

“कहू भी ! मुझे पीते भी मार न जान ! मेरे मात ! पूछ ! तुम्हें डर किस बात का है ? तेरी माँ ने संसार में कोई ऐसा काम नहीं किया है कि तुम्हें उसके लिए भविष्यत होना पड़े।’^{११६}

इस प्रकार तिरुची ही क्यों यमुना बच्ची सीमा इरावती, विजय मंदल इन्द्रदेव मधुवन आदि के चरित्र-विकास की विभिन्न अवस्थाओं और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में होनेवाले परिवर्तनों की भीजी समय-समय पर हुए उनके कथोप कथनों में मिलती रहती है।

आयोजन की अभिव्यक्ति

बड़े माल से बचाकर रखे हुए भाव कई बार सहसा धजाने में निकले हुए शब्दों में मुखरित होकर व्यक्ति का मण्डा-फोड़ लिए हैं। प्रसार के पात्र कई बार, इस तरह धनायास ही पाठकों के सम्मुख खुरकर उन्हें आश्चर्यचकित कर देते हैं। सीता

११४ पृ. ५ २३१-२३२।

११५ प्रमद, ‘तिरुची’ पृ. २६०।

११६ प्रमद ‘तिरुची’ पृ. २३२।

बादसन की ओर भाकूट भी यह तो बादसन भी जानता था पर सीता इस मार्ग पर इतनी दूर निकल आई होयी इसकी उसे आशा नहीं थी। गौका बिहार करते समय बादसन से अत्यंत साधारण बातचीत के बीच सीता के मुख से निकले एक वाक्यांश ने सीता को एकदम निराश्रय करके बादसन के सामने सम्मुख में ला दिया

“बादसन ने हुंसी से कहा—“सीता ! तुम तो गंगा स्नान करने सबेरे नहीं आती । फिर कैसे हिन्दू ?”

सीता ने हंसकर कहा—“तुम भी प्रति रविवार गिरजे में नहीं जाते फिर कैसे ईसाई ?

उस तो न तुम हिन्दू और न मैं ईसाई ।

‘बस केवल स्त्री पुरुष’ सहसा सीता के मुख से अजाने में निकल गया । बादसन ने चौंक कर उसकी ओर देखा । सीता झेंप-सी गई ।”^{१२०}

इस प्रकार इस स्थल पर पाठक भी अकिंचत हुए बिना नहीं रहता । वह कभी भी यह नहीं सोच सकता था कि सीता पर से रामनाथ की सिखा का रंग इतनी बस्ती उतर आएगा ।

१

भावामिध्वानि में व्यंजकता

कोई व्यक्ति अपने कपोपकरण में सदा ही पूर्णरूपेण कुल जाता हो यह बात नहीं । कई बार उसके अन्दर तो बहुत कुछ मरा होता है और बाहर जबल पड़ना भी चाहता है, पर अनीधित्य के मय से हानि-नाश के किसी अन्ध भाव से वह अपने आंतरिक भावों को बाहर आने से बलपूर्वक रोकता है । इस प्रकार उसने कपोपकरण में उसकी तत्कालीन मनोबसा का उतना अंश ही प्रकट हो पाता है जो उसके रोके से न सका हो । ऐसे स्थलों पर उपन्यासकार बड़े संकट में पड़ जाता है । यदि वह अधित्य का ध्यान रखे बिना अपने पात्रों के आंतरिक भावों को उनके अपने मुख से व्यक्त कराता है तो अस्वाभाविकता का बोध आने की संभावना रहती है और यदि वह उसे पूरी तरह से सुमने नहीं देता तो अरिष कुछ कम जाता है । प्रसाद ने ऐसे स्थलों पर बड़ी कुशलता से ऐसे कपोपकरण कराए हैं, जिनसे उनके आंतरिक भाव व्यंजित तो हो उठते हैं, पर पूरी तरह सुलते नहीं । ‘गिरजी’ में इन्द्रिय और सीता के विच्छिन्न पदपत्र रखने के लिए अनवरत और भाकुरी के बीच जिस सबाद में संवि हुई थी इस दृष्टि से वह उत्तेजनीय है

“भाकुरी ने भीतर के कमरे की ओर देखते हुए उसके मुख पर हाथ रख दिया और कहने लगी—“प्यारी अनवरत ! क्या इस जुईन से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं ?”

"कुम्हार साहब इससे क्या कहें तो तुम्हारा क्या ?"

"ऐसा न कहो बनवरी।"

"तुम्हारी माँ तो फिर तुमको ही "

"जैह तुम क्या बक रही हो।"

"भगवा तो मैं कुछ दिन यहाँ रहूँ तो "

"तो रहो न मेरी रानी" "२५८

इस छोटे-से संवाद में बनवरी ने पावुरी की गम्भिर पकड़ की पर पावुरी प्रकट में कैंसे स्वीकार कर लेती कि उसका भावय नहीं है। केवल उसके प्रतिम हो कबनों से संबंध-भाव व्यक्तित्व करा देता है 'जैह ! तुम क्या बक रही हो' इस संवाद का प्राण है और इसमें भी 'जैह' की ध्वनि। प्रतिम कथन तो 'रहो न मेरी रानी' इस बात की पुष्टि भर करता है।

व्यवसाय द्वारा प्रणय निवेदन

ऐसे संवादों को भी जो प्रेमी प्रेमिका के बीच में प्रायः हुआ करते हैं, प्रसाद ने व्यवसाय के प्रयोग से न केवल प्रसन्नता के रूप से बल्कि दिया है, बल्कि इस प्रकार उन्हें और भी स्वाभाविक और सजीव बना दिया है। प्रेमिका पर पहली बार प्रेम जापन करते समय प्रेमी की बड़ी कठिनाई होती है। कुछ तो स्वाभाविक संकोचवश और कुछ इस भय से कि न जाने उसकी प्रेमिका उसके प्रणय-निवेदन को किस रूप में ग्रहण करे, वह प्रत्येक शब्द ठीक-ठीककर निकालता है और वह भी स्पष्ट रूप से नहीं।

विजय-यमुना

विजय द्वारा यमुना पर प्रथम बार प्रेम-जापन प्रसाद ने व्यवसाय-धर्म द्वारा ही कराया है

"यमुना, है बड़े आश्चर्य की बात ! पहाड़ी के इतने ऊपर भी यह जल कुछ सचमुच बहता है। परन्तु मैंने और भी ऐसा कुछ देखा है—जिसमें कितना ही जल पिरो, वह मरा ही रहता है।"

"सचमुच ? कहाँ पर विजय बाबू ?"

"तुम्हारी के रूप का रूप"—कहकर विजय यमुना के मुख की सही भाँति देखने लगा जैसे धनवान में देना फँककर बालक चीट नयानेबाने को देखता है।

"बाहू विजय बाबू ! आश्चर्य साहित्य का ज्ञान बढ़ा हुआ देखती हो!"—

कहते हुए यमुना ने विजय की ओर देखा—वैसे कोई बड़ी बूढ़ी गटसट सड़के को संकेत से झिझकती हो ।

जिस प्रकार व्यंजना द्वारा विजय ने प्रेम-आपन किया उसी प्रकार व्यंजना द्वारा ही यमुना ने उसका उत्तर दे दिया जिसे सुनकर 'विजय' सज्जित हो उठ ।^{११२}

प्रणय के क्षेत्र में मधुवन और तिलसी में जो संघि हुई थी वह भी व्यंजना द्वारा ही हुई थी । जब वह सीटने लगी तो मधुवन ने कहा—अच्छा फिर भाव से मैं रहा मधुवन और तुम तिलसी । यही न ?^{११३}

कालिन्दी-अग्निमित्र

वर्षाव द्वारा अग्निमित्र को धामनिष्ठ करके भी कालिन्दी स्पष्ट सबों में प्रणय निवेदन न कर सकी और सांकेतिक भाषा का आश्रय लेने पर विवश हो गई

“ कालिन्दी तूने मुझे यहाँ क्यों बुलाया अपना सपना स्पष्ट कहो । मैं अधिक नहीं ठहर सकता । ”

“ हाँ बेव ! तूही का मुह कुछ बातों के लिए बन्द रहता है, वह क्या भाव नहीं जानते ? ”

“ तब पर भी तुम चाहे कुछ हो मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ यह तो तुम्हीं को बताना होगा । ”

मेरी विपत्ति अभी तक नहीं समझ सके निपटुर ! मैंने जिस दिन से येनामन्दिर पर तुमको । ”

“ तुम रहो कालिन्दी मैं त्रिवियों के प्रेम का रहस्य नहीं समझ पाया । जाने दो मैं प्रणय के स्वाध्याय में असफल विद्यार्थी हूँ । बुरी कोई बात हो तो कहो । ”

जब कालिन्दी ने देखा कि अग्निमित्र निरंतर टातता चला जा रहा है तब कहीं जाकर वह अधिक स्पष्ट शब्दों में बोली—

“ समय के विश्वविधुत गम्हराज का रक्त मेरी कमनियों में है । मैं कुमारी हूँ समझ । मैं तुम्हारे प्रणय के अपसुक्त हूँ । मियुली इराबरी से कही अति । ”^{११४}

ऐसे स्थानों पर प्रसाद के संवाद लम्बे घीरे बीते न होकर बड़े बुस्त और

११२ प्रचार, 'संकल' ४ ६३ ।

११३ प्रचार 'मिलनी' ५ ६३ ।

११४ प्रचार, 'संकी', ५ २२-२३ ।

सजीव होते हैं। संक्षिप्त होते हुए भी वे पात्रों के मन में सब रही वास्तविक उपलब्धता को ध्वस्ततापूर्वक व्यक्त कर देते हैं।

प्रसाद की सीमा

सबाद कितने ही सफल हों हैं तो वे संवाद ही। पात्र की सत्तावीन मन-स्थिति की वे प्राथमिक अभिव्यक्ति ही कर सकते हैं। नाटक में तो नाटककार की मजबूरी देखते हुए, प्रत्येक ही संतोष किया जा सकता है। पर उपन्यासकार से तो यहाँ तक भी माँगा नहीं जा सकता है कि वह पात्रों के मानसिक इन्द्रियों की सततप्रतिष्ठित अभिव्यक्ति करा दे। मँजे हुए नाटककार होने के कारण प्रसाद इन संवादों द्वारा पात्रों के विकास की विभिन्न अवस्थाओं की सही-सही बिना करने में मंजे ही सफल हुए हों पर उपन्यास के लिए यह पर्याप्त नहीं। उपन्यास की वास्तविक समस्या तो पात्रों के चरित्र का अधिक विकास दिखाना है। इसलिए, उसे तो यह भी चिन्तित करना होता है कि उसके पात्र चरित्र-विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक क्यों कब और कैसे पहुँचे। पात्रों के चरित्र-विकास में क्यों कब और कैसे का उत्तर देना सफेद नाटकीय प्रणाली की सामर्थ्य से बाहर है। यह तो विस्लेषणात्मक प्रणाली से बूते का ही काम है। पर क्योंकि प्रसाद का प्रधान नाटकीय प्रणाली की ओर ही अधिक रखा और विस्लेषणात्मक प्रणाली की तो उन्होंने सुधा ही इसलिए यदि वह अपने पात्रों के भीतरी मनोमात्रों की तीव्रता उनके भीतर छलनेवाले सुझावों और विरोधी भावनाओं के चित्रण में सफल रहे हों तो इसे नाटकीय प्रणाली की सफलता ही समझना चाहिए। प्रसाद यदि नाटकीय तथा विस्लेषणात्मक प्रणालियों में सामंजस्य बैठा लेते—उन जैसे प्रतिभा-उत्पन्न लेखक के लिए यह कठिन न था—तो उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रथम श्रेणी का होता। ऐसा न करने से उनके कई पात्रों का चरित्र-विकास दुर्बल हो गया है।

जायरी द्वारा चरित्रचित्रण

तितली में हजरेब की मनोव्यथा का चित्रण प्रसाद ने जायरी द्वारा किया है। हजरेब एक संतुष्ट ही था। कमर से सीतलाल की गरी के जेमे हुए बल की कठोरता धारण किए रहने पर भी उसके भीतर का सरल मन ठाढ़ मारता रहता है। १२२ वह अपने परिपार्य के प्रति उदासीन हो यह बात नहीं। अपने प्रासपात के पक्षधर्मपूर्ण वातावरण के प्रति वह आनन्द है, अपने को दूसरों के विरोध का लक्ष्य बना पाकर उसके मन में प्रतिक्रिया भी प्रबल हो उठती है। पर जीवन के प्रति उसके बुलबुल बुद्धिजीव द्वारा उत्पन्न उसकी पलायनवृत्ति बाहर के लक्ष्य को उसके भीतर खेद साती है। उसे संसार में कोई भी ऐसा नहीं दीवता जिसे विरहास-पात्र मानकर वह अपना दिन जीस सके। वह भीतर ही भीतर गुस्सा रहता है—अपने

मातावरण से बिरा हुआ बेबस—सोमा-सोया था। ऐसी स्थिति में यदि वह डायरी के पन्नों पर अपनी मनोव्यथा उकेरकर हस्का न हो जाता तो पामन हो गया होता। 'उमाय का पूर्व सत्राण विस्मरण तो उसमें प्रकट हो ही गया था।' १३१

इन्द्रदेव जैसे पात्र की मानसिक इसलज्ज को प्रसार ग्रन्थ पात्रों से उसके कथोपकथन द्वारा तो व्यक्तित्व करा नहीं सकते थे क्योंकि उससे अस्वाभाविकता या जाने का डर रहता। विद्वेषणात्मक प्रणामी की धीर ओ ऐसे पात्रों की मानसिक गुलियों को प्रकाश में लाने के लिए अत्यन्त उपयुक्त रहती है, उनका भुकाव नहीं था। इसलिए उन्होंने डायरी का ही आश्रय लिया। इन्द्रदेव की यह डायरी उसके हृदय का दर्पण है जिसमें उसके मन पर पड़े हुए वे सभी संस्कार ओ बीसा तितली धीर प्रतपरी के बारे में उसकी मानसिक इसलज्ज का कारण बने वे धीर जिन्हें वह मनीषित्व के भय से सावध कभी भी प्रकट न कर पाता प्रतिबिम्बित हुए हीसते हैं।

“वह तितली बन कर मेरे हृदय में बीसा नहीं बनी रहती। तब तो उस दिन तितली को ही बीसा भिने देता वह कम सुन्दर न थी।

मैं स्वीकार करता हूँ कि संसार की कुटिसता मुझे अपना साथी बना रही है। वह निज माय तो बीसा का साथ न छोड़ेगा। किन्तु मेरी निष्कपट भावना जैसे मुझ से ली गई है। मुझे स्नेह होने लगा है कि मैं बीसा को बीसा ही प्यार करता हूँ या नहीं।” १३४

इन्द्रदेव यदि डायरी न लिखता तो उसके हृदय में हो रहे इन परिवर्तनों का पता न चल पाता और वह कभी प्रकाश में ही न पाता कि प्रेम के क्षेत्र में भी वह घटना है। कुलमुस है जितना कुनियासारी में।

इन्द्रदेव की डायरी में लिखित ग्रन्थ पात्रों के आचरण के सम्बन्ध में उस की टीका-टिप्पणी जहाँ लेखक (इन्द्रदेव) के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है वहाँ उन पात्रों के चरित्र को भी व्यक्त करती है, तथा उनके विकास पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। माधुरी के बारे में इन्द्रदेव लिखता है— “मेरी बहुत ! उसे कितना दुःख है। किन्तु अब देखता हूँ कि वह मुझ से स्नेह और सात्वता की माया करने वाली निरीह प्राणी नहीं रह गई है वह तो अपने लिए एक नुस्खा भूमिका चाहती है। मेरा पतन— तब तो हृदय व्यथित हो जाता है। १३२ अनन्तरी की छवि उसके मन में लमा गई है, फिर भी वह उसके रूप की कुलमिता को पहचानने में नहीं भूलता ‘बाहर से चंचल और भीतर से गहरे मनोयोगपूर्वक प्रयत्न करने वाली चतुर स्त्री है। हंसते-हंसते अपने जीवन से घरे हुए धर्मों को सोट पोट होकर असावधानी से दिसा देने का अधिगम करती है और काम में आकर कुछ कह देने के बहाने हँसकर सीट जाती है। १३३

१३१ पृष्ठ ५ ११५।

१३४ पृष्ठ ५ १२०।

१३२ पृष्ठ ५ ११७।

१३३ पृष्ठ ५ ११८।

सजीव होते हैं। संक्षिप्त होते हुए भी वे पात्रों के मन में मच रही तात्कालिक उपमा पुमस को सफलतापूर्वक व्यक्त कर देते हैं।

प्रसार की सोचा

संवाद कितने ही सफल हों हैं तो वे संवाद ही। पात्र की तत्कालीन मन-स्थिति की वे प्रासंगिक अभिव्यक्ति ही कर सकते हैं। नाटक में तो नाटककार की मजबूरी देखते हुए, इतने से ही संतोष किया जा सकता है, पर उपन्यासकार से तो यहाँ तक भी माँगा रखी जा सकती है कि वह पात्रों के मानसिक द्वन्द्वों की सतप्रतिष्ठत अभिव्यक्ति करा दे। मन्त्रे हुए नाटककार होने के कारण प्रसार इन संवादों द्वारा पात्रों के विकास की विभिन्न व्यवस्थाओं की फाँकी दिखा सकते हैं मन्त्रे ही सफल हुए हों पर उपन्यास के लिए यह पर्याप्त नहीं। उपन्यास की वास्तविक समस्या तो पात्रों के चरित्र का क्रमिक विकास दिखाना है। इसलिए, उसे तो यह भी विधित करना होता है कि उसके पात्र चरित्र-विकास की एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था तक क्यों कब और कैसे पहुँचे। पात्रों के चरित्र-विकास में क्यों कब और कैसे का उत्तर देना उसके नाटकीय प्रणाली की सामर्थ्य से बाहर है। यह तो विद्वेषपसारमय प्रणाली के बूते का ही काम है। पर क्योंकि प्रसार का कथान नाटकीय प्रणाली की ओर ही अधिक रखा और विद्वेषपसारमय प्रणाली को तो उन्होंने छुपा ही इसलिए यदि वह अपने पात्रों के भीतर मनोमात्रों की तीव्रता उनके भीतर छलनेवाले सूक्ष्मताओं और बिगोही माननाओं के बिजल में असफल रहे हों तो इसे नाटकीय रीमी की असफलता ही समझना चाहिए। प्रसार यदि नाटकीय तथा विद्वेषपसारमय प्रणालियों में सामर्थ्य बैठा सके—उन जैसे प्रतिभा-सम्पन्न लेखक के लिए यह कठिन न था—तो उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रबल बेणी का होता। ऐसा न करने से उनके कई पात्रों का चरित्र-विकास दुकड़ हो गया है।

ढाँपरी द्वारा चरित्रचित्रण

दिल्ली में इन्द्रदेव की मनोव्यथा का चित्रण प्रसार ने ढाँपरी द्वारा किया है। इन्द्रदेव एक अंतर्मुखी पात्र है। ऊपर से धीतकाल की मही के जमे हुए जल की कठोरता धारण किए रहने पर भी उसके भीतर का तरल जल ठाठें मारता रहता है। १३२ वह अपने परिपार्श्व के प्रति उदासीन हो यह बात नहीं। अपने पासपास के पड़पासपुण बाधावरण के प्रति वह जागरूक है अपने को दूसरों के विरोध का लक्ष्य बना पाकर उसके मन में प्रतिधिया भी प्रबल हो चली है। पर जीवन के प्रति उसके कुसमुल दृष्टिकोण द्वारा उत्पन्न उसकी पलायनवृत्ति बाहर के संघर्ष को उसके भीतर समेट पाती है। उसे संसार में कोई भी ऐसा नहीं बीसता जिसे विरसात-याग मानकर वह अपना दिल गोम सके। वह भीतर ही भीतर पुमता रहता है—अपने

बातावरण से बिरा हुआ बैबस—सोमा-सोमा था। ऐसी स्थिति में यदि वह डायरी में पन्नों पर अपनी मनोव्यथा उकेसकर हस्का न हो जाता तो पामस हो गया होता। 'उम्माह का पूर्व सखण बिस्मरण तो उसमें प्रकट हो ही गया था।' १३३

इन्द्रदेव जैसे पात्र की मानसिक हलचल को प्रसार धन्य पात्रों से उसके कथोपकथन द्वारा तो व्यञ्जित कर नहीं सकते थे क्योंकि उससे अस्वाभाविकता या जाने का डर रहता। बिस्मयपूर्ण प्रस्तावी की धोर जो ऐसे पात्रों की मानसिक मूर्तियों को प्रकाश में लाने के लिए अत्यन्त उपयुक्त रहती है, उनका मुकाब नहीं था। इसलिए उम्माह डायरी का ही धारण लिया। इन्द्रदेव की वह डायरी उसके हृदय का दर्पण है जिसमें उसके मन पर पड़े हुए वे सभी संस्कार जो सीमा तितली और भगवती के बारे में उसकी मानसिक हलचल का कारण बने थे और जिन्हें वह अपनीचित्र के भय से धारण कभी भी प्रकट न कर पाता प्रतिबिम्बित हुए दीखते हैं।

'वह तितली बन कर मेरे हृदय में सीमा नहीं बनी रहेगी। तब तो उस दिन तितली को ही बीसा मैंने देखा तब कम सुन्दर न थी।'

"मैं स्वीकार करता हूँ कि संसार की कुटिलता मुझे अपना साथी बना रही है। वह मित्र-भाव तो सीमा का साथ न छोड़ेगा। किन्तु मेरी निष्कपट भावना" जैसे मुझ से जो गई है। मुझे संदेह होने लगा है कि मैं सीमा को बीसा ही प्यार करता हूँ या नहीं।" १३४

इन्द्रदेव यदि डायरी न लिखता तो उसके हृदय में हा रहे इन परिवर्तनों का पता न पड़ पाता और वह कभी प्रकाश में ही न आता कि प्रेम के क्षेत्र में भी वह उसना ही बुलमुल है बिठना बुनिमादारी में।

इन्द्रदेव की डायरी में लिखित धन्य पात्रों के बावरण के सम्बन्ध में उस की टीका-टिप्पणी जहाँ निष्कल (इन्द्रदेव) के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है वहाँ उन पात्रों के चरित्र को भी व्यक्त करती है, तथा उनके विकास पर भी प्रष्टा प्रकाश पड़ता है। माधुरी के बारे में इन्द्रदेव लिखता है— 'मेरी बहन ! उसे किताब दुपल है। किन्तु अब देखता हूँ कि वह मुझ से स्नेह और सात्वना की आशा करने वाली लिपिह प्राणी नहीं रह गई है, वह तो अपने लिए एक बूढ़ मूर्खता चाहती है। मेरा पतन' तब तो हृदय व्यभिक्त हो जाता है। १३५ भगवती की छवि उसके मन में समा गई है फिर भी वह उसके रूप की कुत्रिमता को पहचानने में नहीं थकता 'बाहर से अंभल और भीतर से गहरे मनोयोगपूर्वक प्रयत्न करने वाली जगुर स्त्री है। हंसते-हंसते अपने यौवन से भरे हुए धनों को सोट पीट होकर प्रसाध वाली से दिखा देने का अभिनय करती है और काम में आकर कुछ कह देने के बहाने हँसकर लौट जाती है। १३६

१३३ वरी, पृ ११९।
 १३४ उम्माह 'निम्नी' पृ १९।
 १३५ वरी, पृ ११०।
 १३६ उम्माह 'निम्नी' पृ ११५।

जामरी अपने ओष्ठ रूप में लेखक पात्र के अपने चरित्रों में सिपिबड उसका चेतनाप्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कन्सायनेस) भी हो सकती है। पर उपन्यास के लिए यह निरसेपरत्तात्मक प्रणाली द्वारा अभिव्यक्त पात्र के चेतनाप्रवाह से कहीं अधिक उपयोगी होती है। पात्र के चेतना प्रवाह का, उसके मन की चारदीवारी में सीमित रहने से उसका प्रभाव किसी अन्य पात्र पर नहीं पड़ सकता। पर जामरी वहाँ एक घोर सेयक-पात्र के विकास पर प्रकाश डालती है जहाँ वह जिस किसी अन्य पात्र के द्वारा में पड़ जाए उसके भावी धाचरण को भी प्रभावित कर सकती है। इन्द्रदेव का इन चरित्रों के साथ—“ता तुमने पड़ भिना ? अच्छा ही हुआ”^{१३०}—जामरी को अड़ भालना और फिर कभी जामरी सिक्खे का नाम न लेना एक स्पष्ट संकेत है कि कदाचित् दोनो एक अपनी मनोव्यथा पहुँचाने के लिए उसे वही एक कपाय सूझा हो। किसी घोर तरह से सत्ता के सम्मुख अपना दिल खोल सकने की हिम्मत तो उसमें भी नहीं।

पत्रों द्वारा चरित्रचित्रण

प्रसार ने पत्रों द्वारा पात्रों के चरित्रोद्घाटन की सीमा को भी घुसनाया है। ‘कंकाल’ के अन्त में निरंजन का किछोरी को भिना पत्र उपन्यास के कथानक की बिखरी हुई कड़ियों को ही नहीं जोड़ता निरंजन, किछोरी तथा यमुना के चरित्र विकास की कई गुंथियों को भी खोलने में सहायक होता है और साथ ही उसके लेखक निरंजन की तत्कालीन विकासवस्था को भी चिह्नित कर देता है।

अंतःश्रेयवाची का चित्रण

पोल्साभी दृष्टांतरण के आशय में जाने को निरंजन किन कारणों से प्रेरित हुआ या वह सारे उपन्यास में वही बार इस पत्र से ही प्राप्त होता है। निरंजन लिखता है “मैंने उसकी (यमुना की) सहायता करनी चाही और तथा यह कि निकट भविष्य में उसकी सांसारिक स्थिति सुधार हो इसलिए मैं भारत रत्न में तथा सार्वजनिक कार्यों में सहयोग करने लगा।”^{१३१} विषय के प्रति निरंजन का समर्थ तो समझ में आ सकता है पर यमुना के प्रति उसके पहले कठोर व्यवहार को देखते हुए यह तब तक समझ में नहीं आता कि उसके प्रति उसे इतनी ममता कैसे हो गई, जब तक पाठक निरंजन के पत्र की इन पंक्तियों तक नहीं पहुँचता “मैं सोचता हूँ कि मैंने अपने दोनों को लौ दिया। अपने दोनों पर तुम हंसोगी किन्तु मेरे बाहे मेरे न हों तब भी मुझे ऐसी ही शंका हो रही है कि तारा की माता रामा से मेरा संबंध सम्पूर्ण अपने को समझ नहीं रहा सकता।”^{१३२}

१३० वरि. पृ १२२।

१३१ अन्त, ‘कंकाल’ पृ २६।

१३२ वरि. पृ २६०।

इतना ज्ञानवान् और संयमशील होकर भी निरंजन को अपने भ्रष्टाचरण से बूझा क्यों नहीं हुई, इसका उत्तर भी निरंजन स्वयं देता है कि वह अपने प्रत्येक कृत्य का मनोविज्ञान के सख्तों में सुपरीक्षण (रीचनमाइजेसन) कर लिया करता था अपने मन में उसे उचित सिद्ध कर लिया करता था 'पवित्र होने के लिए मेरे पास एक सिद्धांत था। मैं समझता था कि बर्म से ईश्वर से केवल हृदय का सम्पर्क है कुछ छुट्टी तक उसकी मानसिक उपासना करने पर वह मिस जाता है। इन्द्रियों से बाधनाओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं।^{१४} यमुना का उन्मेष करते हुए वह वहाँ अपनी भूल स्वीकार करता है वहाँ यमुना के चरित्र की उगम सत्ता का भी ज्ञान किए बिना नहीं रहता किचोरी। मैंने खोज कर देखा कि मैंने जिसको सबसे बड़ा अपराधी समझा था वही सबसे अधिक पवित्र है।^{१५} निरंजन के चरित्र विकास में जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में सत्कार की ठिकठानुभूतियों ने जो एक महान् परिवर्तन ला दिया था उसकी व्यंजना भी उसके पत्र द्वारा हुई है 'म्याम और दम्ब देने का इकोसमा तो मनुष्य भी कर सकता है। पर धमा में भगवान् की शक्ति है। सबके धमा के लिए वह महाप्रलय करता है उसी महाप्रलय की भाषा में मैं भी किसी निर्जन कोने में जाता हूँ बस बस।'^{१६}

इसी प्रकार, 'तिसरी' में मन्दराजी द्वारा पीला को लिखा गया पत्र वहाँ गारी की स्वतंत्रता के बारे में पाठ्यार्थ्य आदर्श के प्रति मन्दराजी के दृष्टिकोण को उपस्थित करता है, वहाँ भारतीय गारी के पत्रलिखों पर चलने के उसके कृत्रिम प्रयास की भी पोत खोज देता है।

स्वप्न और दिवास्वप्न

जयप्रकाश प्रसाद ने कहीं-कहीं अपने पत्रों के स्वप्नों और दिवास्वप्नों द्वारा उनके अचेतन मन में गहरी धरी हुई असाभाविक भावनाओं को और उन द्वारा उत्पन्न घातरिक उतावलों को जो उनकी व्यक्त किया प्रतिक्रियाओं को पुष्ट रूप से प्रेरित करते हैं प्रकाश में लाकर उनके चरित्र विकास में पड़ी अनेक बाँटों को खोलने का प्रयत्न किया है।^{१७} काण्डवासी मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि स्वप्नों व दिवास्वप्नों में मनुष्य प्रायः अपनी चेतन या अचेतन भावनाओं को पुष्ट किया करता

१४ वही, पृ २८६।

१५ वही, पृ २६०।

१६ वही, पृ २१।

१७ Fielding, 'Self-Mastery through Psycho-analysis' p. 49 :

"Dreams often reflect changes in our attitude towards life in general, and persons and things in particular as well as our innermost desires and secret cravings—unconscious"

है १४४ इसलिए किसी व्यक्ति के स्वप्न की समुचित व्याख्या द्वारा उसके चरित्र के व्यक्तित्व पर उस तक पहुँचा जा सकता है। १४५ जब कोई वासना अपने सामाजिक और अनुचित स्वभाव के कारण होने वाले लोकापवाद के डर से व्यभिचरित पाने से बचकर बेचैन मन से निकल कर अचेतन मानस में बस जाती है तो वह बार-बार स्वप्नों में व्यक्त हुमा करती है। १४६ और यदि वह वासना इतनी क्रूरिष्ठ होती है कि अपने मूलरूप में वह स्वप्न तक में भी बाह्य नहीं हो सकती हो तो वह अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट न होकर प्रतीकों के सहारे रूप बदल कर प्रकट हुमा करती है।

मुक्त इच्छाओं का प्रकाशन

रंकास का भंगम तारा को वैद्यालय से छुड़ा जाने के पश्चात् व्यक्त में तो उससे बहन का नाता रखता रहा पर भीतर ही भीतर वह उसे अपनी हृदयेवरी बना चुका था और चाहता था कि उससे विवाह करे। भोकरिया के डर से तारा की दृष्टि में गिर जाने के भय से वह अपनी घातरिक इच्छा को प्रकट करने का साहस नहीं कर पाता था। फलतः उसका घातरिक तनाव बढ़ता गया और एक रात वह स्वप्न में बर्त उठा

‘जीन कहता है कि तारा मेरी नहीं है ? मैं भी उसी का हूँ। तुम्हारे हृदयारे समाज की मैं बिना नहीं करूँ। वह देवी है। मैं उसकी सेवा करूँ या नहीं नहीं उसे मुझसे न छोड़ो।’ १४७

और इस प्रकार तारा पर उसकी घातरिक इच्छा प्रकट हो गई। इस स्वप्न में उसकी वासना ही व्यक्त नहीं हुई, प्रत्युत् सुपुत्रावस्था में तारा की घातितन के

१४४ (४) Ruch, *Psychology and Life* p. 529.

(५) Fielding, *Self Mastery through Psycho-analysis*, p. 37

“The dream is always the fulfilment of a wish or craving of the unconscious.”

१४५ Stager *Psychology of Personality* p. 11.

“The psycho-analysts have long held that dreams were symbolic expressions of inner tensions and that extensive personality interpretation was possible by way of the study of dream through free association.”

१४६ F Alexander *The Medical Value of Psycho-analysis* 1932, p. 79.

“Everything contradictory to the ruling tendencies of the conscious personality is its wishes, longing and ideals, and everything which would disturb the good opinion one likes to have of one-self is apt to be repressed—One of the symptoms of repressed emotion is symbolization, the representation of unconscious thoughts in acceptable forms in dream art.”

१४७ प्रखर ‘काल’ १ ४१ ४३।

निए निर्मज्जित करके उसने तारा की वासना को भी बया दिया । फिर जो कुछ हुआ उससे इन दोनों की जीवन-दिसा ही बबस गई ।

अचेतन आशंकाओं की अभिव्यक्ति

ठीक बिवाह वाले दिन जब मण्डप गंगा स्नान करने गया तो सीटा ही नहीं और सब लोग उसकी प्रतीक्षा करके निराश हो चले गए, तारा का हृदय धक-धक करने लगा । वह रोने लगी तो रही भी पर मन्मथ में रोना नहीं चाहिए—वह कुन कर न रो सकी ।^{११} मन्मथ उसे इस प्रकार निराशय छोड़ जाएगा यह तो वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकती थी । पर उसके अचेतन मन में ऐसी आशंका जरूर बिद्यमान थी जो उसके स्वप्न में कम बदलकर प्रतीकों द्वारा प्रकट हुई । उसने जो स्वप्न देखा^{१२} उसमें भूने का पुत प्रतीक बना मण्डप से बिवाह की उसकी आशा का, सामाजिक मङ्गलों ने विकृत रूप धारण किया अमानक पर्वत और लक्ष्मी का । तारा सम्मन सम्मन कर पत रही थी कि उसके आशा कपी पुत पर उसकी बाजी पन्दो बिजली बनकर कड़की और तब पुत टूट गया ।

हिन्दू जाति के लोके कर्मकाण्ड के प्रति विषय की ओर घनात्मा उसके अचेतन मानस तक में ऐसा घर कर गई थी कि वह स्वप्न में भी उसकी प्रामाणिकता के बारे में बहुत करने लग गया था ।^{१३}

इसी प्रकार भक्तिका का बाधम और बप्ती के पुष्ट प्रेम के बारे में सबेरे उसके स्वप्न में अभिव्यक्त हुआ । 'बाधम एक सुन्दर हृदय की आकांक्षा का सुचिपुर्ण मोहन का उद्गात' 'प्रेरणा का पवन' में लिपट गई 'कूर निर्दय' 'मनुष्य के रूप में पिशाच' मेरे मन का पुजारी 'व्यापारी' आपसूची बेचनेवाला । और यह कौन क्वाला बप्ती' बाधम असहनीय और ।^{१४} और फिर जब वह बाधम की निर्लज्ज कपटला की बात सोचती हुई व्यथित हो रही थी तो उसकी अचेतनावस्था में बही स्वप्न प्रतीकों द्वारा विकृत रूप में प्रकट हुआ 'वह धाँसे बन्ध किये थी, डर से सोसती न थी । उसने मेघ-शावक और शिगु का ध्यान किया । शावक की गोद में लिये शिगु प्यार कर रहा है । परन्तु यह क्या' यह क्या' — 'यह जिनूल सी कोई बिभीषिका उसके पीछे लड़ी है । ओह उसकी छाया मेघ-शावक और शिगु दोनों पर पड़ रही है' ।^{१५}

मनुष्य जब तिरस्त्री और राजकुमारी को गीत में निराशय छोड़ स्वयं क्षि

१४८. स्त्री, ५ २४ ।

१४९. स्त्री, ५० २४-२५ ।

१५. मण्डप, 'कर्मकाण्ड' ५ ६० ।

१५१. स्त्री, ५ २२० ।

१५२. स्त्री, ५ २२५ ।

कर अपने दिन काट रहा था, तब उसे यह भावका गिरसर सास रही थी कि उसकी अनुपस्थिति में इन्द्रदेव और चौबे तितली और राजकुमारी पर बुरे बर्तने उसे डर था कि वे कहीं उन धूर्तों के पंखों में न फँस जाएँ। उस रात जब वह मैना को हाथी से बचाकर घर लाया था और उसने अपने द्वार पर चौबे को भावार्थें समझाते पाया था तभी से राजकुमारी के चरित्र पर उसे संदेह हो गया था। यद्यपि वह संदेह धीमे-धीमे बढ़ा था तो भी वह उसके अवचेतन मन में कहीं गहरे जा बैठा था और अब अवसर पाकर वह परिवर्द्धित रूप में तितली को भी उसी में समेटे^{१२३} स्वप्न में प्रकट हुआ जिसमें तितली और इन्द्रदेव के विवाह की पुरानी चर्चा राजकुमारी और चौबे का अपवाद भ्रूंत की हत्या आदि उसके मन पर जमे हुए कई संस्कार बुलमिल कर विस्तृत रूप में प्रकट हुए।

इस प्रकार प्रसाद स्वप्न और विवास्वप्नों द्वारा पात्रों के चरित्र-विकास में पड़ गई पाठों को ही खोजने का प्रयत्न नहीं करते प्रत्युत उनके सहारे अन्य संबंधित पात्रों के चरित्र-विकास को भी पटि देते रहते हैं।

गीत

कुछ एक स्वप्नों पर प्रसार ने गीतों द्वारा भी पात्रों की वास्तविक मनोव्यथा को प्रतिबिम्बित किया है। गाने का अवसर प्राप्त होने पर पात्र अपनी मनोव्यथा के अनुक्रम ही कोई नील छेड़ देता है और उसकी किसी एक कड़ी को पकड़कर बार-बार गाने लगता है, मानो उसकी व्यथा को बाहर धीरे-धीरे निकालने के लिए वह एक मार्ग मिला हो और उसकी प्राकृति से उसे शांति और संतोष मिल रहा हो।

मनोव्यथा का चित्रण

‘कंकाल’ में खजाना—माता की मागी—ने प्रथम घंटे में ही मिर्जा के सामने जो गाना गाया वह मानो कोरा गाना न होकर उसके अपने हृदय की पुकार भी था उसे मर्त्य मेरी भण्डार पर जो दिया किसी ने जला दिया उसे भाह ! बर्तने बाद ने सरेखाम ही से बुझ दिया।^{१२४}

इसके धीमे जैसे खजाना को खूँस गया था। वह इसी कड़ी को बार-बार गाती रही। उसके संगीत में कसा न थी करुणा थी।^{१२५} इस बीच द्वारा वह मिर्जा तक अपनी पुकार पहुँचाने में सफल हो गई। तभी तो रहमनुस्ता के चारबी रखते ॥ मिर्जा जैसे स्वप्न से जाँका और उसने देखा—‘राजमुख संध्या से ही बुझ गया ओह-विहीन बीपक रामने पड़ा है। मन में घाया जैसे भर दूँ’।^{१२६} इस बीच में यहाँ

१२३ प्रसार, ‘हिन्दी’ ५४ वं सं. पृ. २२७-२२८।

१२४ प्रसार ‘कंकाल’ पृ. २३।

१२५ वही, ५२३।

१२६ वही, पृ. २७४।

एक धोर सबनम का हृदय बोल उठा है वहाँ इस नीत ने निर्वा को भी इस स्थिति में अनुकूल प्रतिक्रिया करने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार प्रसाद ने इस नीत से परिपोद्वाटन और चरित्र-विकास दोनों ही प्रकार का काम लिया है।

प्रेम-साधन कदम के बूझ के नीचे बैठे विजय को हारमोनियम बजाते देख घण्टी ने उसके पास आकर जो बाना गाया उसमें उसने भागो विजय को मोह लेने की अपनी इच्छा की ही अभिव्यक्ति की हो

पिया के हिया में पड़ी है गाँठ
 मैं कौन बरतन से खोलू ?
 सब सखियाँ मिथि फाग मनावत
 मैं बाबरी सी खोलू ॥१२०॥

इस नीत द्वारा घण्टी ने विजय पर अपना प्रेम ज्ञापित कर दिया। इस नीत ने वही काम किया जो घण्टी उससे सेना आहूती थी “भावकता थी उसके लहरीसे कण्ठस्वर में, और व्याकुलता थी विजय की परशों पर नाचने वाली उभरियों में। वे दोनों तन्मय थे।” १२०

नीत के साथ एकात्मिकरण (आइडेंटिफिकेशन)

इसी प्रकार तिलसी में पं० बीनाबाब की कन्या के विवाह से लौटते समय राजकुमारी के कानों में मना के नीत के बोल “लगे नैन बासेपन से” १२१ पड़ते ही उसके पाँव रुक गए और वह कुशिया की बात को मान घबिरे में बहुत सी स्त्रियों के पीछे बूबट लींचकर खड़ी हो गई। राजकुमारी को लगा कि बीना के गीत में उसका अपना हृदय बोल रहा है, उसके भी तो बचपन से ही बीने से नैन लगे हुए थे। ‘उसने विह्वल होकर कहा—‘बासेपन से।’ साथ ही एक खरी साँस उसके मुँह से निकल गई।” १२१ एक हिन्दू विधवा की मनोव्यथा दूसरों के पाए हुए नीतों को सुनकर घरी हुई आहों और बहाए हुए आँसु के रूप में ही निकल सकती है वह स्वयं तो गा सकती नहीं गाना उसके लिए बर्जित जो हुआ।

इस प्रकार, प्रसाद ने नीतों द्वारा वहाँ एक धोर पार्श्व की मनोकामना को व्यक्त किया है वहाँ उनसे पार्श्व के चरित्र-विकास का काम भी लिया है। नीतों द्वारा निम्नी पार्श्व की मनोव्यथा अन्य पार्श्व पर प्रभाव डालकर उनके भावी आचरण को प्रेरित करती है।

१२० गी. ५ ११३।
 १२१ मद्रास, ‘अंधक’ २५१ संस्करण ५० ११३।
 १२२ मद्रास, ‘विजयी’ ५० १७०।
 १२३ गी., ५० १७१।

भगवतीचरण वर्मा

परिचयात्मक विवेचन

भगवती चरण वर्मा उपन्यासों को कहानी का एक विकसित रूप मानते हैं और यह आवश्यक समझते हैं कि 'उपन्यास का आधार एक पुष्ट और सुन्दर कहानी हो।' उपन्यास के कहानी तत्व के प्रति उदासीन तो प्रेमचन्द भी नहीं थे, पर उनके साक्ष्य सेष्टा करने पर भी उनके उपन्यासों की कथावस्तु में थोड़ी-बहुत द्विविधता तो रह ही जाती थी। परिस्थिति-चित्रण की लव में उनके कथानक की एकता को हर बार बह जाना पड़ता था। बर्माजी की 'चित्रसेवा यदि हिन्दी साहित्याकाश में घाटे ही बमबाजा उठी थी, तो उसका एक कारण यह भी था कि पाप-पुण्य की समस्या को उसके वास्तविक स्वरूप में रखने के प्रयत्न के साथ-साथ उसके कथानक के पुष्ट तथा सुन्दर बनाने में भी सक्षम ने कसर नहीं छोड़ी थी। बर्माजी के उपन्यासों में इन दोनों गुणों के समाहार के कारण उन्हें 'प्रेमचन्द का संशोधित संस्करण'^१ भी कहा गया है।

सिद्धान्त-आरोपी पाप

प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाँति बर्माजी के उपन्यास भी समस्यामूलक हैं यद्यपि उनके उपन्यासों की समस्याएँ प्रेमचन्द के उपन्यासों की समस्याओं से निराल मिश्र हैं। समस्याओं के उद्घाटन के लिए बर्मा जी सुसंपटित और सुन्दर कथानक रचते हैं और उसके आसपास पात्रों का एक जमघट लगा देते हैं। पात्रों को वह

१. मगानिकरत वर्मा, 'सहित एक सचय है (भगवतीचरण वर्मा : 'एक भेरी', 'साप्ताहिक, विमुक्त' २. मित्रर, १९३३।

३. देवराज बगलपाव 'देवे भेद रातो : एक सचीपा' 'लीक' (राजस्थान) सं० ३—प्रिप।

रक्तत्र क्य से विकसित होंगे की छूट नहीं दते अपितु नियति के बिधान^१ का इच्छा दिखाकर स्वयं उनके नियामक बन जाते हैं और उन्हें पूर्वनिर्धारित रिखा में इस प्रकार मोड़ते रखते हैं कि समस्या के सभी पक्षों पर प्रकाश पड़ता जमा जाए। बर्माबी का विश्वास है कि “मनुष्य अपना स्वामी नहीं वह परिस्थितियों का दास है—निवृत्त है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है।”^२ इसीलिए उनके पात्रों की क्रिया-प्रति क्रियाओं में अनेक बार एकसूत्रता नहीं आ पाती और अनेक द्वाय समाधान भी बहुधा बौद्धिक ही रह जाते हैं। उनके सभी मुख्य पात्र सिद्धांत-धारी हैं।^३ उपन्यास में वे जिस सिद्धांत की तैक्य पर्वारण करते हैं उसके अनुकूल ही उनके द्रौप न्यासिक जीवन का जो एक-दो-तीन वर्षों तक ही सीमित होता है बिकास होता है। बर्माबी के उपन्यास उनके पात्रों के समूचे जीवन को विभित न करके उसके स्वत्पाण को ही भेते हैं।

निवृत्तिमात्रों बनाम प्रवृत्तिमात्रों पात्र

“पाप क्या है और उसका निवास कहाँ है ?”^४ इस समस्या को लेकर बर्माबी के प्रथम उपन्यास “विमलेखा” की रचना हुई। समस्या के सही रूप तक पहुँचने के लिए एक और ककरछ पड़ी युवा मोनी कुमारगिरि की जिसमें जीवन और विरासत में मिलकर एक प्रसौकिक कविता उत्पन्न कर दी है और जिसका दावा था कि उसने ससार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है।^५ और बूझती और निर्माण हुआ मोनी धर्मसं बीजगुप्त का जिसके हृदय में जीवन की समझ है और धर्मों में भावकता की भाँती जिसे ईश्वर पर विश्वास नहीं तथा सामोह-यमोह ही जिसके जीवन का साधन है और लक्ष्य भी।^६ परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के इन दोनों पात्रों के चरित्र के समूचे मुखावगुणों को व्यक्त कराने के लिए सृष्टि हुई पाटलिपुत्र की सर्वसुन्दरी तथा परम विदुषी लक्ष्मी विमलेखा की और इस काम में उसके सहायकों

१ (क) अन्तर्गत बर्माबी ‘साहित्य एक साधना है’ ‘साप्ताहिक हिन्दुस्थान’ २ सितम्बर, १९३६।

‘वत कुछ व्यवको बर्माबी-सी धरणी, लेकिन दूर कुछ दिनों से मैं निवृत्तिवादी बन गया हूँ।’

(घ) बर्माबी, ‘वाकिरी दल’ प्रथम संस्करण पृ. २३।

‘बनेबी ने वत का प्रश्न कहा—‘अलगव रहा गी क्य तक आ सपना है सेठ निवृत्ति के विधान के विचार कोन तक सपना है कोन तक सपना है?’

४ बर्माबी, ‘विमलेखा’ अर्थ संस्करण पृ. २०८।

५ अन्तर्गत बर्माबी ‘साहित्य एक साधना है’ ‘साप्ताहिक हिन्दुस्थान’ २० सितम्बर, १९३६।

‘ऊठे (‘दे-मेरे छले में’) राजनीतिक आलोचना पर ही चरित्रों का विकास हुआ है।’

६ बर्माबी ‘विमलेखा’ अर्थ संस्करण पृ. २।

७ वही, पृ. ७।

८ वही, पृ. ७।

के रूप में प्रकटारण हुआ क्योंकि सार्थक मृत्यु अथवा उनकी धम्पूड़ सुन्दरी पर सज्जातीय कन्या मधोमरा की और बीबगुप्त के सेवन दयनीक की। महाप्रभु रत्नाम्बर तथा उनका दूसरा शिष्य विशासदेव कचामक में आप नहीं पाते और समय निमयी से बीबते रहते हैं—केवल यह निष्कर्ष साहने के लिए कि मनुष्य न पाप करता है और न पुण्य, वह केवल बही करता है जो उसे करना पड़ता है। फिर पाप और पुण्य कैसा? वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषयता का दूसरा नाम है।^६

बर्माजी के दूसरे उपन्यास 'पतन' की समस्या उसके नाम से ही प्रकट हो जाती है। उपन्यास भर में लेखक कहीं भी पतन की सुनिश्चित परिभाषा नहीं देता अपितु उसके प्रकाशन के लिए प्रतापसिंह, रणवीर, भबानीशंकर, सुभद्रा (गुमछन), सरस्वती गुमनार आदि कुछ-एक स्त्री-पुरुष पात्रों को चुन लेता है और उनके पारस्परिक मीन सम्बन्धों के प्रीतिप्यानीति पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करता हुआ पतन की समस्या को सूता है। प्रताप सिंह का मिमिक्षा वासना के बीड़े^७ के रूप में हुषा है, वह प्रेम तो किसी से नहीं करता यहाँ तक कि चुननार से भी नहीं जिसने उसके लिए घर के सब धाराम छोड़े और उसे बचाने के प्रयत्न में अपने पिता की कटार का निशाना बन गई—पर स्त्री-पार्श्वों को प्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। वह तीव्र मति से पतन की ओर बढ़ रहा है। यद्यपि रस्वीर और सुभद्रा के मीन सम्बन्ध में भी लेखक पतन देखता है^८ उसे ही है एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और सरस्वती के परपुरुष सम्बन्धों की चर्चा भी वह बार-बार उठाता है^९ तो भी भबानीशंकर के पतन के सम्बन्ध में उसने धनायास ही जो कहा है "नरक से निकल कर वह फिर नरक में जा पड़ा इसीको पतन कहते हैं। बुद्धियों को जानते हुए भी बुद्धियों को मानसिक करना पड़ता है यह मनुष्य की कमजोरी है"^{१०} इस दृष्टि से वह 'पतन' के पात्रों की कमजोरी उनकी ही नहीं मनुष्यमान की कमजोरी दर्शाता है, जिसमें पतन का प्रसंग ही नहीं उठता। यह उपन्यास लेखक के इसी दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

विराज प्रेमी : एक मनोवैज्ञानिक कित

जिस समस्या को लेकर बर्मा जी हैं उसके उपन्यास 'तीन वर्ष' की रचना है, वह है—प्रेम का स्वल्प और विबाह से उसका सम्बन्ध।^{११} इस उपन्यास के

६ कर्मा 'विनयेज' पृ० २०५।

७ कर्मा 'जन्म' प्रीतिप्यासि, १६४६।

८१ पृ० ५ २२६।

८२ पृ० ५० १७२ २२२-२२६।

८३ पृ० ५ २२२।

१४ कर्मा, 'तीन वर्ष' कर्मापुत्रि सं० २ ५ ५० २२-२४।

नायक के रूप में धृष्टि हुई है अनाथ पर आदर्श विद्यार्थी रमेश की जो अपने मित्र की आर्थिक सहायता से तथाकथित उच्च और उच्चतम नागरिकों में बिचरने लगे जाता है, पर अपने पौराणिक संस्कारों के कारण इस आधुनिकतम उच्चता के मूल्यों को समझने में जोड़ा जा जाता है। वह प्रेम को ईश्वरीय और हो आत्माओं का बन्धन मानता है।^{१५} उसका विश्वास है कि प्रेम में ही सच्चा स्मृत है प्रेम अनाथ है प्रेम अनन्त है तथा प्रेम ही मनुष्यों का प्राण है।^{१६} रमेश के प्रेम के आत्मन के रूप में अवतारणा हुई उस तथाकथित उच्च वर्ग की पुबती प्रभा की जिसके लिए प्रेम अथवा विवाह का अन्त बन है।^{१७} जो प्रेम को भौतिक सम्बन्ध^{१८} से अधिक और कुछ नहीं समझती और उसे विवाह का आधार नहीं मानती।^{१९} उपन्यास के कथानक में कुँवर अमितकुमार की उपयोगिता इतनी ही है कि वह रमेश को आर्थिक सहायता देकर प्रभा की भाँसों में बड़ा देता अथवा वह सायद ही रमेश की ओर ध्यान देती पर लेखक ने इस पात्र पर वास्तविकता का आरोप करके उसे अपनी मान्यताएँ व्यक्त करने का माध्यम भी बना लिया है। इससे उसका रूप विकृत होने लगता है और वह अन्त में सभी पात्रों का अभिभावक बन बैठता है।

प्रेम के क्षेत्र से रमेश की इतनी निराशा हुई कि वह अपना संतुलन खो बैठा और उन्मादावस्था^{२०} की ओर बढ़ने लगा। उसकी अनुभूतियों की समस्त पीड़ा उसके बेचन मानस से निकलकर उसके अचेतन मन में धँसने लगी। इस अवस्था में यदि लेखक उसे कानपुर न ले जाता तो वह पावनस्थान में या जेल में पड़ा सकता।^{२१} इसलिये निर्माण हुआ विनोद और उसके आचार्य साधियों का जो दिन भर सचब पी कर सेटे रहते हैं और रात भर शिष्टियों के कोठों पर मारे-मारे फिरते हैं। रमेश इस नए समाज में ही उप सकता था। इस समाज के साथ ही रहना हुई सरोज की जो बेस्वा होने पर भी रमेश की पूजा करती थी उसे बैबता की तरह मानती थी। पूर्व अनुभूतियों की कटुता में रमेश ने इसे समझने में भी मसती की। वह सरोज के प्रेम को भी एक हकीकत समझता रहा।^{२२} पर सरोज ने जिसे रमेश बेस्वा ही

१५ वर्षों 'लैंग वर्ग' ५० ५४।

१६ वरी. ५ २४।

१७ वरी. ५० १ १।

१८ वरी. ५० १ १०।

१९ (क) वरी. ५० १ १८।

मिलजुल रूप है। रमेश में प्रेम को विवाह का आधार नहीं मानती।

(२) वरी. ५ १३६।

'हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं, रहना नहीं है और सारा करने रहे। विवाह की क्या आवश्यकता है?'

२ वरी. ५ १६०।

२१ Andre Tikhon, Psycho-analysis and Love, p. 39

२२ 'लैंग वर्ग' ५ २३२।

समझता रहा न इस से अधिक न इससे कम ^{१३} अपने प्राणों की माहुति देकर सिद्ध कर दिया कि उसका प्रेम तपस्यों का मुसाम नहीं ^{१४} बरु देना ही जानता है, सेना नहीं और विवाह के प्रति उदासीन है कदाचित् इसलिये कि वह देखा भी और मेखा से विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता।

झूठाबी पात्र

बर्मा बी के 'दे-मेदे रास्ते' की समस्या है—सम्मिश्रित परिवार व्यवस्था का पतन और उसकी सीमा है बर्मात्मक। बर्मात्मकता उपन्यास के कथानक तक ही सीमित नहीं रही प्रत्युत वह पात्रों के चरित्र-विकास में भी निहित है। उपन्यास का सबसे बड़ा ध्वंश यह है कि इसके पात्रों का विनाश—उपनाय ब्रह्मानाय ब्रह्मानाय प्रभानाय मनमोहन भयङ्क मिथ विश्वम्भर वयान बीणा में से किसी को ले में—उनके अपने हाथों ही हुमा परिस्थिति के अनुरोध से नहीं। बर्मा बी ने कथानक को ऐसा रूप दिया है जिस से एक ओर तो यह दिखाया जा सके कि किस प्रकार अपने स्थितिपालक 'काम्बोडिब' मुखिया की अहम्भ्यता से एक बना बनाया सम्मिश्रित परिवार बर्ष भर में ही विघ्नु समित हो कर बिछर जाता है और दूसरी ओर सन्नोतिकाल (सन् १९३०) की राजनीतिक अवस्थाओं धार्मिक भाव भावों तथा सामाजिक परिस्थितियों का विभण भी हो जाए।

इस उपन्यास के मायक के रूप में धनधारिता हुई तास्नुकेदार उपनाय विवाही की, जो उस सन्नोतिकाल के तास्नुकेदारों तथा सम्मिश्रित परिवार के मुलियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करता है। बर्माबी ने इस पात्र में इन दोनों बर्णों के समस्त गुण-दोषों का समाहार कर दिया है। सारे उपन्यास में उपनाय ही एक ऐसा पात्र है जिस पर लेखक ने सबसे अधिक ध्यान दिया है। उपनाय 'पत्थर के उस गृह की भाँति सड़ा सड़ा है जिसकी जड़ से विरोधी सहरों के बार-बार टकड़ने से उसके घास-पास का सब कुछ बह गया है वह अपनी अहम्भ्यता में अडिग है। ^{१५} उसे केवल एक बात का मोह है और वह है—'अपनी अपनी भात्मा का अपने सिद्धांत का। ^{१६} उसे विश्वास है कि 'जो कुछ मैं करता हूँ वही ठीक है जो कुछ मैं सोचता हूँ वही सत्य है। ^{१७} इसलिये मैं सभी मार्ग जिन पर उसके अपने लड़के तथा दूसरे भीष चल रहे हैं उसकी दृष्टि में 'दे-मेदे रास्ते' हैं। उपनाय के साथ ही साथ मेराक रत्न जानता है उसके सिद्धांत-परीरी पुत्रों ब्रह्मानाय उपनाय तथा प्रभानाय को जो बमरा कांग्रेस कम्युनिस्ट तथा क्रांतिकारी पार्टियों के सदस्य हैं। यद्यपि

१३ बर्मा बी ६० २३४।

१४ बर्मा बी ६ २१८।

१५ प्रमुरमज्जर मिट, "दे-मेदे रास्ते : समीक्षा" 'सम्यक्' ३ जुलाई १९४०।

१६ बर्मा 'दे-मेदे रास्ते' प्रिन्सिपल संग्रहण ३ ३००।

१७ बर्मा बी ६ ३००।

मिन्न-मिन्न राजनीतिक सिद्धांतों के अनुकरण से इनके बाह्यरूप अलग अलग दीखते हैं वास्तव में अपने पिता के चरित्र का अमिन्न अंग—उसकी अहम्मन्यता—इन तीनों में यथावत् दिखमाण है^{१८} और यह अनायास ही उनके आचरण को प्रभावित किए हुए है। रामनाथ तथा उसके पुत्रों बमानाथ उमानाथ तथा प्रमानाथ में अहम्मन्यता की मात्रा आश्चर्यवत्ता से अधिक है, तुलना द्वारा यह दिखाने के लिए भगवू मिश्र मार्कण्डेय, बह्मदत्त तथा भीष्मा की सृष्टि हैं। पिता रामनाथ के मुकाबिले में भगवू मिश्र की रचना हुई और तास्मुकेदार रामनाथ के मुकाबिले में श्री० एच० पी० विश्वम्भर दयाल की। वास्तव में रामनाथ को अकम्बोर देनेवाले यही दो पात्र थे।^{१९} इनके प्रवेश करते ही उपन्यास में आग धा जाती है।

अन के पित्राच के पुत्राच

बर्मा भी का उपन्यास 'आखिरी दीव' जिस समस्या पर आधारित है वह है अन के पित्राच द्वारा उत्पन्न विह्वल।^{२०} आन के युव में सम्मान और शक्ति के भी अन में ही एकाकार हो जाने से अन का पित्राच सब को गुलाम बनाए हुए है और समझता है कि 'हर आदमी की कीमत है इसकी भी और उसकी भी। बस केवल करीदार चाहिए—करीदार।'^{२१} फलतः समाज के सभी मूल्यों की प्राप्ति के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन के पीछे अन्धाधुन्य दौड़ लगाते हुए मानव स्वर्ग भी विह्वल हो गया है।

१८ बर्मा, 'मेरे-मेरे एले' पृ० ४३ और ४९ पर बह्मदत्त से अकम्बोर के अंग है—

'मे अन्ध हैं तथा कि तुमसे अहम्मन्यता है। बर्मा ही अधिक मित्रता तुम्हारे लिए में अन्ध अन्ध अन्धों में।' (पृ० ४९)

'वचनाव। तुमसे अहम्मन्यता है, अन्ध और अन्ध।' "तुम्हारी हर हरकत में तुम्हारे हर काम में दूसरों के साथ तुम्हारे वचनाव में तुम्हारी अहम्मन्यता का अन्ध अन्ध अन्ध है। (पृ० ४९)

१९ बर्मा पृ० ४३२।

(क) 'उपन्यास मुझसे बड़े 'आपकी आर्कटा है, मिस्टर जी। आपने मुझे अन्ध अन्ध अन्धों में बड़ा दिया। पर आपकी बात में नहीं आया।' (पृ० ४३०)

'अन्ध अन्ध अन्ध रामनाथ सिधारी के अन्ध है। अन्धों अन्धों अन्धों पर बर्मा।' (पृ० ४३२)

(घ) 'उपन्यास अन्धों तरह समझ गये कि विश्वम्भरदत्त से अधिक बल बल बल है, के अन्धों के कि अन्ध पुलिस अन्धों से के अन्धों हुए।' (पृ० ४३२)।

२० बर्मा, 'आखिरी दीव' अन्ध संस्करण पृ० २३८।

'हम सब केने के पुत्राच हैं अन हमारा ईश्वर है हमारा अन्ध है। हम केने को अन्ध में न पार है, न पुत्राच है, न अन्ध है, न अन्ध है—जो पुत्राच है अन ही है।

२१ बर्मा पृ० ४३०।

दीव' में फिल्म कम्पनी के कार्यकर्ता प्रादि मिलने ही ऐसे पात्र हैं, जिनपर लेखक की शक्ति और समय तथा उपन्यास का कसेवर व्यर्थ में ही व्यय हुआ है।

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

चरित्रानुरूप नाम

अपने पात्रों का स्रष्टा होने के नाते उपन्यासकार उनका सर्वज्ञ होता है। उपन्यास में पदार्थ्य करते समय की पात्रों की विकासावस्था से तो वह परिचित होता ही है उनके भावी चरित्र विकास से भी वह अनभिज्ञ नहीं होता। इसलिए पात्रों का नाम रखते समय वह जाने या अनजाने उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता और पात्रों के नामों द्वारा भी उनकी वैयक्तिक विशेषताओं को प्रतिबिम्बित कर देता है।^{११} इस रूप में भगवतीचरण वर्मा भी अपवाद नहीं कहे जा सकते। उनके पात्रों के नामों में ही उनकी साक्षुति प्रकृति की मूलक मिल जाती है। कई पात्रों के तो नाम और चरित्र में व्योम्यायय सम्बन्ध प्रतीत होता है और यह बता सकना कठिन हो जाता है कि नाम के आधार पर चरित्र बना है या चरित्र विकास के आधार पर नाम रखा गया है।

अजित—'टीन बर्ग' का कुँवर अजितकुमार—नाम अजित है तो वह रहा भी अजित ही। जब तक वह उपन्यास में रहा कीई उसे हरा न सका—न बाहुबल से और न बुद्धि-बल से। यहाँ तक कि रमेश उसपर गोली चलाकर भी उसे हरा न सका। उसने 'अनुभव किया कि अजित उससे बहुत ऊँचा है'।^{१२} अजित की ठर्कना शक्ति के धाये बैरिस्टर सर कुप्पुलू भी हार मानकर कह बैठते हैं "मैं आपके तकों को काट नहीं सकता।"^{१३} संसार में निराश प्रेमियों की संख्या बढ़ानेवाणी गटबट सीता भी अजित की मान गई "अजित! उफ, तुम बड़े प्रधानक जादुमर हो तुम से पार पाना असम्भव है।"^{१४}

बिनोद—'टीन बर्ग' के प्रथम खण्ड में रमेश का अमिन्न भिन्न या अजित और दूसरे खण्ड में उसका साथी बना बिनोद। बिनोद ने भी अपना नाम सार्थक करने में कोई कसर न छोड़ी थी। वैसे नाम वैसे काम। उसका सिद्धांत था कि 'मौद करो और प्रसन्न रहो। मौद करना ही जीवन है'।^{१५}

११. Wellek : "The Theory of Literature London, 1949 p. 225-27 :

"The simplest form of characterization is naming. Each appellation is a kind of vivifying, animating and individuating."

१२. वर्मा 'टीन बर्ग' पृ० १२१।

१३. वही पृ० १२१।

१४. वही, पृ० ७५।

१५. वर्मा 'टीन बर्ग' पृ० १२३।

बीबाना—‘टेढ़े-मेढ़े रास्ते’ के पात्र हिन्दी के कवि बीबानाजी अपने सम्भाव्य से—‘मेरे स्वामय का भार इन छोड़कों पर छोड़ कर आप सबे बाबमियों की खातिर शरी में पस दिए ? क्या उमीद सीधिए’—ही अपने नाम की सार्थकता सिद्ध कर देते हैं और फिर उनकी माकूति और वेध भूषा तो सब के लिए कोई बयह ही नहीं छोड़ती ‘कुरता पहने और तहमब बांधे मगि घर और नये पैर । वास बड़े-बड़े, बाड़ी मूछ साफ ।’^{४१}

शशिप्रभा—कवयित्री शशिप्रभा ने भी साहित्यकाण्ड में मनीष ग्रह की भाँति एक दिन अचानक उदय होकर अपना नाम धर्मपूर्ण बना दिया था ।^{४२}

इस प्रकार के पात्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो लेखक ने पहले इनकी कपरेखा बना ली हो और फिर उसके अनुकूल ही उनका नाम रखा हो ।

व्यंग्यात्मक नाम

व्यंग्यचित्रों से तो बर्माबी के उपन्यास भरे पड़े हैं । उनकी व्यंग्यात्मक घेसी और भी प्रसर हो जाती है जब वे किसी महफिल टी-पार्टी क्लब, कवि-गोष्ठी या राजनीतिक बैठक में माय लेने वाले व्यक्तियों का रस लेकर परिचय कराने लगते हैं । व्यंग्य उन पात्रों की वेध भूषा तथा माकूति प्रकृति तक ही सीमित नहीं रहता उनके नामों तक से भी व्यंग्य होता है । तीन वर्ष’ के दूसरे खण्ड में बेरपा प्रभा के यहाँ मगी महफिल में मुली उम्कठराय^{४३} को देखकर तो उनके नाम की सार्थकता पर बिरास हो जाता है पर उनके साथ ही ठाकुर और सिंह का नाम सुनकर जब धारचर्च होता है जो उनकी मूछें और बल-बल बदन^{४४} को देखकर तथा उन्हें रमेय के कुपयवहार से डर कर सबसे पहले मागता^{४५} देख बुर हो जाता है कि यह बीसवीं शताब्दी के घेरसिंह हैं और वह भी पहर के पासतू । ‘टेढ़े-मेढ़े रास्ते’ में बर्मा जी ने हिन्दी के साहित्यकारों के व्यंग्य बिज दिए हैं । व्यंग्य उन पात्रों के आकार प्रकार से ही नहीं उनके नामों से भी व्यंग्य होता है । कबिबर बिलासीजी ने अपना उपनाम बिलासी इसलिए रखा है कि वह अधिकांश स्त्रियों के दूधपन करते हैं और स्त्रियों के दूधपन उन्हें इसलिए मिल जाते थे कि उनकी कासी और नही सक्त मूरत पर स्त्रियों के पिता-पतियों को पूरा भरोसा था ।^{४६} भाटे कब के पठने बुझने मरकंकास-से आसोजक महालय का नाम रखा गया है ‘परम सुध’ ।^{४७} पके

४० बर्मा, ‘टेढ़े-मेढ़े रास्ते’ शिर्ष्य संस्करण १० २१० ।

४१ वही १० २१० ।

४२ वही १० २२ ।

४३ बर्मा ‘तीन वर्ष’ पृ १०० ।

४४ वही, १० १०१ ।

४५ वही, १ १०२ ।

४६ बर्मा ‘टेढ़े-मेढ़े रास्ते’ पृ २१४ ।

४७ वही, १ २१५ ।

हुए बाघों पर लिखावट सजाए, बड़े-बड़े बाँतों वाली पक्के रंग की लकड़हस्त पर धक्के उमर की कबजिरी का नाम है मृणासिनी।^{१५} यहाँ लेखक उनका सुन्दर नाम रख कर मानो उनकी साकृति-प्रकृति धीरे बेच-भुपा की बिस्ती उड़ा रहा हो।

विकासारम्भ के प्रारम्भ नाम

बर्माजी के औपन्यासिक पात्रों के कई नाम ऐसे हैं जो उपन्यास में पदार्पण करते समय के पात्रों के चरित्र की किसी उमरी हुई विशेषता को व्यक्त करते हैं, यद्यपि घाने चलकर वे विकास की एक नई बिधा पकड़ लेते हैं। 'टेढ़े-मढ़े रास्ते' के भ्रमर मित्र के प्रथम वर्णन यद्यपि एक भ्रमरासू बाह्याण के रूप में होते हैं^{१६} और रामनाथ तिवारी भी उसे एक भ्रमरासू भाई के रूप में ही जानता रहा^{१७} पर उसका विकास दूसरी बिधा में हो रहा था जिसकी चरमावस्था भी भ्रमरा मिटाने के लिए उसका प्राणोत्सर्ग।^{१८} इसी प्रकार यद्यपि 'तीन बर्य' की सीता का प्रथम परिचय—संसार में निराश प्रेमियों को संख्या बढ़ाने वाली^{१९}—इस रूप में कल्पना गया है कि मानो केवल मनोरंजन के लिए प्रेम करके वह अपने नाम 'सीता'^{२०} को धार्य कर रही हो पर घबित के सम्पर्क में घाने के बाद वह प्रेम को सम्मोहना पूर्वक लेने लग गई थी वह इलाहाबाद छोड़ते समय बाड़ी में बैठी हुई सीता की मुकाहटि से जाना जा सकता है।^{२१} 'विश्वमेधा' के चारम्भ का योगी कुमारमिरि जो कीमार्ग में मिरि के समान उल्लस और घड़िच का 'सबम जिसका साधन था और स्वयं जिसका सख्य'^{२२} बाद में शासना का मुलाम बन जाता है। इसी प्रकार, बीजगुप्त जो पहले बीज प्रकृति का उपासक था ईश्वर के बारे में जिसने कभी सोचा नहीं था तथा प्रमोद और प्रमोद ही जिसके जीवन का सख्य था,^{२३} बाद में योगी से योगी हो जाता है। बीजगुप्त का सेवक स्वेतांक भी जिसका हृदय उपन्यास के चारम्भ में एक ऐसी साकृति-सुखरी स्नेह के समान था जिस पर अभी कोई संस्कार कभी घसर नहीं बने थे—यदि वे भी तो केवल स्नेह से ही—जो तब अशोक या संसार में

१५ बही ५ पृष्ठ २३३।

१६ बही, ५ पृष्ठ २३४।

१७ बही, ५ पृष्ठ २३५।

१८ बही, ५ पृष्ठ २३६।

१९ 'तीन बर्य' चरित्रचित्रण, पृष्ठ २२।

२० रामकृष्ण वर्मा 'लक्ष्मण विन्दी-राज्य' नन्दी-प्रचारिणी तथा चतुर्थ संस्करण सं० १ पृष्ठ २३४।

२१ वर्मा 'तीन बर्य' पृष्ठ २४।

२२ वर्मा 'विश्वमेधा' का संस्करण पृष्ठ ७।

२३ वर्मा, 'विश्वमेधा', का संस्करण पृष्ठ ७।

उसने सभी-सभी पक्षार्पण किया था २० वही घनाड़ी उपन्यास के समाप्त होते-होते एक सज्जन प्रेमी के रूप में परिचित हो जाता है।

इस प्रकार, स्पष्ट हो जाता है कि भगवतीचरण वर्मा ने पात्रों के नामकरण द्वारा भी उनकी चरित्रिक विविधताओं को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है।

पात्रों का प्रथम परिचय

भगवतीचरण वर्मा उपन्यास के आरम्भ में ही सभी प्रमुख पात्रों का प्रवेश नहीं करा देते हैं। पहले तो वे उन्हीं पात्रों को लेते हैं, उपन्यास की कथा को चालू करने के लिए जिनका होना आवश्यक हो। फिर कथानक को गति देने के लिए तथा नामक-नायिका के विविध रूपों को प्रकाश में लाने के लिए समय-समय पर नए पात्रों का प्रवेश कराते जाते हैं। उनके कई प्रमुख पात्रों की अवतारणा उपन्यास के बीच-बीचा के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हुई है और उनके घाटे ही उपन्यास को गति मिली अन्य पात्रों में जान-सी या नई और नायक-नायिका के चरित्र के विकास की एक नई दिशा प्रहण की। 'पिचमेखा' में मणोरमा का प्रथम परिचय तब नहीं आकर मिलता है जबकि उपन्यास ८१वें पृष्ठ पर चला जा रहा होता है। उसके घाटे ११ कमलक में जुस्ती या जाती है और पिचमेखा बीजगुप्त श्वेतांक और कुमारपिरि में आंतरिक और बाह्य तनाव बढ़ जाता है। 'तीन बरस' में विनोद उपन्यास के दूसरे अंश में आता है नायक रमेश के विकास की नई दिशा के अनुरूप बाठाचरण बनाने के लिए और सरोज जिसने अपनी तपस्या से नायक के पूर्वजह को झकझोर दिया पहली बार पृष्ठ १८५ पर दिखाई देती है। 'छेड़े-मेड़े रास्ते' के रंगमंच पर उमानाथ झमझू मिश्र, बीणा मनमोहन आदि का सामना भी कथा विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हुआ है और उनके घाटे से नायक उमानाथ के चरित्र के विविध रूप प्रकाश में आए हैं। नायक की टक्कर के दूसरे पात्र डी० एस० पी० विश्वम्भरदयाल का जिसने उपन्यास में गति और रोचकता ला दी और जिसका मोहा रामनाथ को भी मानना पड़ा तब प्रवेश हुआ जब उपन्यास के ३८४ पृष्ठ गये या चुके थे। 'आखिरी दीप' में भी सैठ विष्णुमार और दीनमहाल नायिका के जीवन में नए मोड़ ला देने के लिए समय-समय पर प्रकट हुए हैं।

आरम्भिक उपन्यास

वर्माजी ॥ उपन्यासों में एक बात सटकनेवासी भी है और वह यह है कि उनके कई प्रमुख पात्रों के उपन्यास में पदावली करने से पहले ही अन्य पात्रों की

परस्पर बाधनीय में उनकी चर्चा छिड़ जाती है और उनके बारे में इतनी अधिक जानकारी प्राप्त हो जाती है कि उनके प्रति विशेष उत्सुकता नहीं रहती। 'चित्रलेखा' में महाप्रभु रत्नाकर और उनके शिष्यों की बाधनीय में कुमारगिरि और बीजपुत्र की प्राकृति और उनके आचार-विचार का इतना विस्तृत परिचय मिल जाता है कि उनके बारे में जानने के लिए कुछ खेप रहता ही नहीं। 'पतन' में सुमरा के 'गुलशन' रूप में प्रथम दर्शन पृष्ठ १४ पर होते हैं पर पृष्ठ ६ से १७ तक अन्य पात्रों की बाधनीय में उसकी जो चर्चा होती रही है उससे इसके प्रथम दर्शन में कोई विशेष रुचि नहीं रहती।

अनावरणक लम्बा प्रथम परिचय

बर्माजी अपने पात्रों का प्रथम परिचय बहुधा स्वयं उत्तम पुरुष में कराते हैं। उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में तो पात्रों का प्रथम परिचय इतना अनावरणक औपचारिक विस्तार लिये होता है कि वह नीरस तो बन ही जाता है। पात्र के चरित्रोद्घाटन में उसकी उपयोगिता भी मर्याद ही रहती है। 'चित्रलेखा' में कुमारगिरि का परिचय लेखक 'कुमारगिरि योपी बा।' इन शब्दों से आरम्भ करता है और घना पृष्ठ तक सैद्धांतिक ठके-विकठ करके अपने प्रारम्भिक चर्चों को सिद्ध करता हुआ इस वाक्य के साथ समाप्त करता है "और इसलिये कुमारगिरि योपी बा।" २५ 'पतन' के प्रथम परिच्छेद में नवाब बाबिरसलीसाह का प्रथम परिचय इतिहास-ग्रंथ के विवरणों की सी शुष्कता अनावरणक विस्तार और विरलेपण लिये हुए है। 'सन् १८५१ ई० की बात है' से उसका आरम्भ होता है और बीच-बीच में "नवाब दुर्गाम्बरस्य अपने कुल के अन्तिम शासक थे" 'नवाब साहब में अपने पूर्वजों की सी योग्यता न थी इतिहास और उनका पतन यह बतलाता है' "किंबदन्तिमाँ है कि नवाब साहब ने" "लोगों का कहना है कि वे", के-से बावसांय २६ आ-आकर उते इतिहास-ग्रंथों का विवरण बना देते हैं। आश्चर्य होता है कि नवाब बाबिरसलीसाह जैसे पात्र में जिसका कथानक तथा पात्रों के विकास में कोई विशेष योग नहीं लेखक व्यर्थ में क्यों उसका रहा है।

अतिप्रयोजितपुर्ण परिचय

बर्माजी ने नहीं भी पात्रों का काव्यात्मक परिचय न कराया हो यह बात नहीं। जब कभी भी वह इस ओर प्रवृत्त हुए तो रीतिकामीन पद्धति पर अतिप्रयोजित पूर्ण मर्यादक वर्णन पर उतर पड़े जो पात्र के युग में जैसे ही मनोबल प्रतीत होता है। 'पतन' में सुमरा का प्रथम परिचय इसी प्रकार हुआ है 'अमनार सम्बरी थी।

२५ अर्थात्, 'चित्रलेखा' पृष्ठ २२।

२६ अर्थात्, 'पतन' पृष्ठ १२।

उसका मुख चन्द्रमा की भाँति निर्मल था। आसन्न उससे भी अधिक। बिच समय बहू बसती थी। "मतवाले-से-मतवाले हाथी उसकी मतवाली बाँध पर समा जाते थे।" बिच समय बहू बोलती थी। "मनो कोयल पंचम स्वर में बूक रही हो।" इत्यादि।

ग्रीक उपन्यास

यह तो हुई बर्माजी की आरम्भिक रचनाओं में पात्रों के प्रथम परिचय की बात। पर धीरे-धीरे उसका प्रथम परिचयात्मक चित्रण प्रेमचन्द की धारणा से भी को—“किन्हीं चरित्र की रूपरेखा करते समय बुनियातबीसी की जरूरत नहीं। दो बार वाक्यों में मुख्य मुख्य बातें कह देनी चाहिए”^{१०} क—पकड़ने समता है। बार छः वाक्यों में ही वह पात्रों की आकृति प्रकृति की कुछ-एक उमरी हुई विशेषताएँ बता कर जाने बड़ जाते हैं। ‘आबिनी दाँव’ के आरम्भ में रामेश्वर का परिचय इसी सारगमिष्ठ से भी हुआ है। “रामेश्वर को सारा पाँव काका कहता था। छत्रदे बदन का लम्बा-सा घावमी मिश्रक और मस्त, बलती हुई बसती। मुँह पर एक घनीय तरह की कोमलता थी। बालों में एक घनीय तरह की चमक थी। सिचड़ी मूख सैकित घण्टी तरह से छड़ी हुई मुटी हुई दाढ़ी। बाल में सापरवाही से भरी हुई ऐंठ स्वर में मीठी-सी उपेक्षा की बुद्धता। रामेश्वर की धवत्ता करीब पैतालीस वर्ष की।”^{११} ऐसा ही राधा का प्रथम परिचय है। “राधा काफ़ी चौकीन की और वह मकान की सभ्य स्त्रियों से बलम रहने में अपनी छान समझती थी। ‘मवत्ता समभग सताईस-अठ्ठाईस साल की थी और उसका शरीर फैलने सपा था। सति से प्रपीकित जीवन धन बलने की मवत्ता में था गया था। राधा का सम्मान रूप के बाजार में कम हो गया था।”^{१२}

औपचारिक परिचय

बर्माजी के अधिकांश पात्र उक्त वर्ण में से हैं और आए दिन कतबों पाटियों मीटिंगों डिनरों में इकट्ठे मिलते रहते हैं जहाँ एक व्यक्ति गयी तुनी राधावती में उन्हें एक-दूसरे से परिचित कराता है। ऐसे अवसरों पर पात्र को सैछक की अपेक्षा नहीं रहती और वह संक्षेप में पात्रों के मख-मिख और बेच-भूपा वर्णन डाटा उसे आकार बकर छोड़ जाता है और उपन्यास का कोई पुराना पात्र उसका हाव पकड़ कर उसे दूसरे पात्रों के सामने ले जाता है। ‘तीन बच’ में उपन्यासकार सीमा को

१० बर्मा, पृष्ठ ४३।

१० (क) प्रेमचन्द, ‘मुख्य विचार’ पृष्ठ ४८।

११ बर्मा, ‘आबिनी दाँव’ पृष्ठ १।

१२ बर्मा, पृष्ठ १।

आवश्यक हो जाता है कि वह किस परिस्थिति में की गई है और उस समय प्राप्ति का पात्र का आलोच्य पात्र से सम्बन्ध कैसा था भौतिकपूर्ण जीवनसम्पूर्ण या दोनों में से कोई नहीं। और फिर यह भी कि जब टीका की गई उस समय आलोच्य पात्र उपस्थित था या नहीं। किसी पात्र की उपस्थिति में उसके मित्र या सम्बन्धी द्वारा की गई प्रशंसा इतनी विश्वसनीय नहीं होती, बिलम्बी कि उसकी अनुपस्थिति में उसके शत्रुओं द्वारा किया गया उसके किसी एक गुण का बल्लेबाज। इसी प्रकार, किसी पात्र की अनुपस्थिति में उसके शत्रुओं द्वारा की गई निन्दा की अपेक्षा उसकी उपस्थिति में उसके किसी मित्र या सम्बन्धी द्वारा उसके किसी कमगुण का प्रकाशन अधिक विश्वसनीय होगा।

निष्कर्ष अथ

मगधवीरराज बर्मा के पात्र भी एक-दूसरे के बारे में अपने निश्चित मत रखते हैं और समय-समय पर उन्हें प्रकट भी करते हैं। पर यदि किसी विशेष कारण से वे अपनी राय को प्रकट करने में असमर्थ हों उन्हें अपना मत प्रकट करने की हिम्मत न पड़े या उनकी राय ग्राही नहीं हो तो उपन्यासकार उनकी उस राय को व्यक्त करने नहीं देता अथवा उसका मुख्य सम्बन्ध हुआ स्वयं अपने शत्रुओं में उसे पाठकों तक पहुँचा देता है। इसलिये कि उससे उसके पाठकों को सहायता मिल सके। 'देहे-मेहे रास्ते' के आरम्भ में ही जब रामनाथ अपने छोटे लड़के प्रमानाथ को लेकर बड़े लड़के दयानाथ के मही उठे डाँट-उपट भगाने गया तब प्रमानाथ बड़ा चतुरक था कि वह अपने पिता और भाई की बड़ी मजेदार मुठभेड़ देखेगा। वह इस मुठभेड़ को मजेदार क्यों समझता था वह हमें लेखक बता देता है 'वह अपने पिता को अच्छी तरह से जानता था। दोनों ही चरित्रवान तथा अपने-अपने विस्वासों पर दृढ़ थे दोनों में ही स्वायत्तता का भाव प्रबल था किसी से बचना दोनों में से एक में भी नहीं जाना।' ^{१६३} पाठक को हल हो पात्रों के बारे में प्रमानाथ की यह राय और भी विश्वसनीय प्रतीत होगी लगती है, जब लेखक यह और बता देता है कि उन दोनों से उसका समान सम्बन्ध था 'पिता पर उसकी ममता थी, बड़े भाई के प्रति श्रद्धा थी' ^{१६४} और इसे आधार मानकर ही वह भागे बहता है।

रामनाथ के बारे में उसके छोटे भाई दयानाथ की बारम्बार भी सफ़ागत ऐसी ही थी। प्रमानाथ जब दयानाथ को लेने कमकता था रहा था तो वह रास्ते में अपने बच्चा दयानाथ के मही रुक गया। दयानाथ उसे दो-चार दिन रोक लेना चाहता था पर वह प्रभा ने बताया 'नहीं काका जी दयानाथ (रामनाथ) ने मिला है ? आप तो अपनी सफ़ाई लेकर जलम हो जाएँगे बीतेपी मेरे सिर पर' तब वह भी जाने

पर हाथ लगाये कुछ सोचकर धीरे से बोले 'अच्छी बात है। महया का तो माट, छाहरी तुम बनता है। तो फिर कल ही सही।' १६२

'तीन बर्ष' के मायक रमेश ने बेस्वा सरोज के कोठे पर बाँकेसाम से जो व्यवहार किया था उसे वह अपने लिए अपमानजनक समझकर रमेश से बहुत बुरा मान मचा था। पर रमेश की अनुपस्थिति में उन दोनों के मित्र बिनोद ने रमेश के बारे में अपनी राय व्यक्त की उससे पाठक को रमेश की उस अवस्था की समझने में बड़ी सहायता मिलती है। 'बाँके बाबू ! रमेश मनुष्य है उसके पतन में भी उसका स्वामिसाज है उसकी अहम्मन्यता है। आप इस समय क्रोध में हैं यदि धातिपूर्वक आप इसपर विचार करेंगे तो आप उसका धावर करेंगे आपका उसपर क्या धावेगी।' १६१

'तीन बर्ष' का पाठक जानता है कि अजित का प्रभा से न प्रेम है और न ईर। इसलिए जब रमेश को समझाने के लिए अजित प्रभा के बारे में कहता है कि 'प्रभा की दृष्टि में व्यक्तित्व का मुख्य नहीं है उसकी दृष्टि में मुख्य है रुपये पैसे का' पाठक को यह समझने में डेर नहीं लगती कि रमेश को प्रभा की ओर से निरास होना पड़ेगा। १६०

बर्माबी के पात्र कई बार जब आलोच्य पात्र की उपस्थिति में ही उसे सम्बोधित करके उसके स्वभाव की किसी विचित्रता या त्रुटि का उल्लेख कर देते हैं और वह पात्र उनका सम्बन्ध नहीं करता तो पाठक उस बात को ध्यान से सुनकर याद कर लेता है कि कदाचित् वह बार में उसके काम आए। 'तीन बर्ष' के प्रारम्भ में अजित का जो रूप सामने आता है, पाठक को तो वह विचित्र लग ही रहा था पर जब वह पात्रों को भी अजीब से कहते हुए पाता है कि वे उसे समझ नहीं पा रहे, तो उसे विश्वास हो जाता है कि अजित अज्ञेय है। पाठक बीभा के इस कथन को छोड़ भी दे कि 'अजित तुम्हें नहीं समझ पा रही हूँ, तुम मेरे लिए एक पहेली हो', १६३ पर जब अजित का अविष्ट मित्र रमेश भी उसे समझने में असमर्थता प्रकट कर दे 'अजीब तुम्हें मैं नहीं पहचान पा रहा हूँ' १६४ तो वह इसकी सत्यता में सँदे हँकार कर दे।

आमक डोका दिप्यणिमा

बर्माबी के धीपग्यासिक पात्रों की एक-दूसरे पर की गई कई टीकान-लिखी ऐसी भी हैं कि यदि उनकी तरह में छिने आलोचक पात्र के प्रेरक

१६१ पृ. १६१

१६२ पृ. 'तीन बर्ष' पृ. २६२।

१६३ पृ. 'तीन बर्ष' पृ. १६३।

१६४ पृ. १६४।

१६५ पृ. १६५।

(मोटिव) को जाने बिना उन्हें ही आधार मानकर भागे बढ़ा जाये तो वे पक्ष-प्रपक्ष कर दें। बीजगुप्त के आशंका प्रकट करने पर कि कहीं कुमारगिरि उन दोनों के बीच में न सा पड़े तो उसे झुठा साधनासम बिसाती हुई बिचमेखा कहती है। 'प्रियतम—' कुमारगिरि योगी है और भूख है। उसकी आत्मा मर चुकी है।^१ पर पाठक जानते हैं कि कुमारगिरि के सम्बन्ध में बिचमेखा की इन चय के पीछे उसका हृदय नहीं केवल कपट भाव काम कर रहा था।

कविता-गीत

बर्माबी के औपन्यासिक पात्रों में से वीरकार तो केवल एक है—किशोर, पर उसके अतिरिक्त अन्य पात्र भी यदा-कदा उमंग में आकर कोई माना गुनगुनाने लग जाते हैं। किसी दूसरे के सुनाने के लिए वे ऐसा नहीं करते। वास्तव में होता यह है कि उनके हृदय की भावनाएँ उस पाने के रूप में फूट पड़ती हैं—वह वीर जाहे उनका अपना न होकर किसी अन्य का हो। ऐसी स्थिति में वे पात्र अपने ही सायास आत्मनिवेदन न करें, उनके हाथ गुनगुनाया हुआ पाना उनके हृदय की तत्कालीन भावनाओं को व्यक्त कर देता है।

भाषाविश्लेष

विजयसिंह—'दे-मेदे पाले में कमिकारी बल की एक गुप्त बैठक हो रही थी और मनमोहन किसी गम्भीर विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिए मुनिका बना रहा था। सहसा उसके कानों में विजयसिंह के एक पाने की गुनगुनाहट पड़ी और वह सहसा रुककर उसे और से सुनने लगा। विजयसिंह की आवाज बोझी सी काँप रही थी। मनमोहन ही नहीं सभी श्रोत संतुप्त होकर उस पाने को सुन रहे थे। विजयसिंह रुक गया। उन्होंने एक डब्बी खींच ली फिर उसने मनमोहन की ओर देखा 'बयों, पपमी बात कहते-कहते रुक बयों गये? मनमोहन ने झुझकार कहा, "बाप किससे रुक?" गुप्त श्रोत सब के सब एक तरह की मस्ती में बर्क हो, धमकान् जाने इस मस्ती का अर्थ क्या होगा?" विजयसिंह और उसके साथियों में कितनी मस्ती मरी हुई थी और उनकी तत्कालीन मन-स्थिति क्या थी इसका अनुमान उस वीर से लगाया जा सकता है जिसे वह गुनगुना रहा था :

'उर की पानी से फुल की कामिल बोली—

सर आज हमेनी बर है बोली बोली।"^२

रामेश्वर—'आखिरी शब्द' उपन्यास के आरम्भ में ही उसका नायक रामेश्वर

घपने बैठ से नीट रखा होता है। घनाब कट चुका था और उसी समय संयोग से गहर के एक व्यापारी ने धाकर उसके बैठ से ही उसका घनाब खरीद लिया था। रामेश्वर प्रसन्न था। उसकी टैट में पाँच सौ रुपये थे। हीसी का स्थीहार सर पर धा गया था। किस तरह वह घपने मिर्चों को हावत देगा भाँग छेनी, माच-मान होना रंग-गुलाब छिमेया—“इन्हीं विचारों में मग्न उसने घपने बैठों की मेड़ छोड़कर घपने बाँव में प्रवेश किया। बाँव में प्रवेश करते ही उसने घनाप भरी “जेम री बीयर ध्रग, घायन तोरे धावे हैं सावन।”^{१०२} और उस घनाप के साथ ही उसके हृदय की सारी मस्ती समस्त धाह्यार गाँवभर में मुखरित हो गया।

किशोर—बैठे तो पिन्नी नीतकार किशोर का जो रूप हूँ ‘घाछिरी दीव’ में मिलता है, उसी के आकार पर वह एक पथ भ्रष्ट युवक है अधिक नहीं ठहरता पर राधा और बसेली दो महिलाओं की उपस्थिति में उसने घपनी को कविता गाकर सुनाई, उसमें तो उसका घोड़ापन पूर्ण रूप से निखर उठता है

‘छेनी रोटा भमिसार करूँ।

बी में घाटा है मधुबाना हाना बन तुम्हको प्यार करूँ।

है भाव हृदय में कुछ कपन, है भाव प्राण में कुछ कन्दन।

इस जीवन का मैं तुम्हसे धामियन से मृत्युपार करूँ।’^{१०३}

विनोद-रमेश—‘तीन वर्ष’ के पात्र रमेश और विनीत में प्रथम मेट के समय ही प्रेम के विषय पर जो तर्क-वितर्क छिड़ा उसमें प्रेम के मार्ग की सम्भता दिखाने के लिए विनोद ने कबीर का यह बोधा उद्धृत किया

‘यह है मारन प्रेम का लावा का बर नाहिं।

लौस बढ़ावे जूँ परे ता पर राखे पाँव ॥

और रामेश्वर ने उसके तर्क को काटने के लिए सबसे विपरीत धमिप्राय-वाला कवि का ही यह बोधा पेश किया ‘तिरिया विप की जान। इन पात्रों द्वारा दिये गये वे पदान्तर उद्धृत इन दोनों के उस समय के भावस्थिक मुद्राव की ओर स्पष्ट संकेत हैं कि विनोद रमेशी की ओर प्रवृत्त है और रमेश उससे बचकर भाव रखा है।

पत्र

सहज स्वभाव से मिले गये पत्रों में उनके लेखक की मनःस्थिति अनायास झलक पड़ती है। जब तक कि लेखक घपने मनोमार्थी को प्रकट होने से रूकाने में वि^१ से प्रयत्नशील न हो पत्र उसके मनोमार्थी का वर्णन बन जाता है।

^{१०२} कर्म ‘घाछिरी दीव’ पृ० १।

^{१०३} कर्म ‘घाछिरी दीव’।

वृन्दावनलाल वर्मा

परिचयात्मक विवेचन

प्रेरणा

मैसरी स्टीफन की धारणा है कि ऐतिहासिक कथामय धर्मोपम्याओं के भावक हैं। दूसरी ओर इतिहासकार पालग्रेव का कहना है कि ऐतिहासिक उपम्यास इतिहास के ध्वंश होते हैं। ऐतिहासिक उपम्यास साहित्यकार और इतिहासकार दोनों में से किसी को भी संतुष्ट नहीं कर पाता यदि इस कथन में कुछ भी सचाई है तो ऐतिहासिक उपम्यास लिखने की ओर उपम्यासकार प्रवृत्त क्यों होता है? हो सकता है कि कोई उपम्यासकार अपने उपम्यासों की कथावस्तु इतिहास से इसमिए लेता हो कि वर्तमान समाज की पुच्छभूमि पर अपने विस्वासों और मान्यताओं को प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त करने की उसमें सामर्थ्य न हो। यह भी हो सकता है कि वह अतीत के किसी भ्रम-विशेष की सम्मता और संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित हो कि अपने उपम्यासों के सहारे वह उसे फिर से जाना चाहता हो। या ऐसा भी हो सकता है कि उपम्यासकार से किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति के प्रति इतिहासकारों द्वारा किया गया अभ्यास सहा न गया और वह अज्ञापूर्ण खोज के बल पर उसके प्रति न्याय करने की भावना से ऐतिहासिक उपम्यास की ओर प्रवृत्त हुआ हो। वृन्दावनलाल वर्मा के अनेकानेक उपम्यास इसी भावना से प्रेरित हुए हैं। उनके ऐतिहासिक उपम्यासों की रचना के पीछे वह बड़ा विश्वास काम कर रहा है कि 'भारत का इतिहास लिखने वाले धर्मिक लेखकों ने खोप के परिधम और बिहता क प्रवाह के साथ हम को ग्याम नहीं दिया।' वर्मा जी का कहना है कि 'हम उनकी धर्मशीलता और सहृदी बिहता की नमस्कार कर सकते हैं परन्तु उनके दृष्टिकोण पर हमारी भीह तन बाठी है।' 'अंसी की रानी' की रचना का मुसाधार उनका

यह विदवास है कि रानी स्वराज्य के लिए सही संवेदों की ओर से झंसी पर दास्य करते-करते बनरस रोड से विवश होकर नहीं। पारसनीस के सम्बन्धों को मुख्यमान मानते हुए भी वह उसके इस विचार से सहमत नहीं कि रानी का धीरे-धीरे विवशता की परिस्थिति में उत्पन्न हुआ था।^१ इस प्रकार अपने ऐतिहासिक पात्रों के प्रति उपन्यासकार का पहले से ही एक स्थिर दृष्टिकोण^२ बन जाने से उनका चित्रण जتنا ऐतिहासिक तथ्यों के बस पर नहीं हो पाता जितना वास्तव के तम पर। यह बात 'झंसी की रानी' ही नहीं न्यूनाधिक रूप में बर्मा जी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

सामाजिक जटिल

अतीत के चित्रण की ओर बर्माजी कुछ ऐतिहासिक दृष्टि से ही प्रवृत्त हुए हैं। यह बात नहीं। ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में प्रेमचन्द की तरह वह भी एक पारदर्शक चेतना हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर खड़े होकर वर्तमान को समझने और सुधारने की चेष्टा भी उनके उपन्यासों में मिलती है स्पष्ट उपदेशकता के रूप में चाहे वह व्यक्त न हुई हो। बर्माजी का विश्वास है कि ऐतिहासिक उपन्यास से पाठक को धीरे-धीरे समाज को कोई कस्याणकारी प्रेरणा मिलनी चाहिये। बनमठ में विषयता की ओर से जाने वाला संवेद यदि ऐसे उपन्यास के निमित्त द्वारा मिल जाए तो मेहनत सफल हुआ।^३ उन्होंने लिखा भी है कि 'यदि मेहनत ने व्यक्ति के भीतर भरे दुःखार्थ और सखिखान्त पर बलिदान हो जाने की क्षमता को जमा दिया तो इतिहास के प्रकाशमान तथ्यों की सही व्याख्या होनी चाहिये सही व्याख्या हो गई। भूतकाल में देवताओं की सीमाएँ भी हुई हैं और दासता की भी। पात्र भी हो रही हैं। उपन्यास-लेखक दोनों की व्याख्या रोचक ढंग से कर सकता है और कटे, परन्तु पाठक धन्य में देवताओं के जिया-जमाओं पर मुग्ध होकर रह जाए और दासता की सीमा का विरस्कार उसका मन कर दे तो उपन्यास-लेखक ने इतिहास की सच्ची व्याख्या की।^४ कदाचित् इसीलिए वह अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक पात्रों के चित्रण तक सीमित नहीं रहे प्रस्तुत ऐसे पात्रों का निर्माण भी उन्होंने किया है जिनके नाम काल्पनिक हैं, परन्तु जिनका इतिहास सत्यमूलक है।^५ अनेक कारणों

१. कृष्णनारायण बर्मा 'झंसी की रानी'—दरिद्र नृणां प्रति १९५० पृ. १।

२-३. बर्मा 'ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण' 'मन पत्र', जनवरी-फरवरी, १९५१ पृ. ५४

इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाला भी अपना दृष्टिकोण रखता है परन्तु वह केवल इतिहास लिखने वाले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है।

४. बर्मा 'मित्रता की परिभाषा'—दरिद्र नृणां प्रति पृ. १५।

की सच्ची बटनाओं को उपन्यास में एक ही काल की घटना के रूप में संजोकर और अनेक व्यक्तियों के गुणधर्मों का एक ही पात्र में समाहार करके बर्माबी ने समाज की हृदय हिंसा से बाकी कहानी कही है। 'बिराटा की पद्मिनी' में कुबर्चसिंह का दासी-पुत्र होने के कारण राज्य के उत्तराधिकार से वंचित किया जाना 'मृगनयनी' में साक्षी और अटस के भवर्थातीय विवाह का समाज द्वारा व्यापक विरोध प्रादि अनेक समस्याएँ हैं जो पाठकों के हृदय को छू लेती हैं और जो प्रायः पूरी तरह से भुलभूत नहीं पाए। अतीत की कई आतम्य बातों से पाठकों को प्रेरणा भी मिलती है। 'झंसी की रानी' को ही लें। प्रायः के युग में जब देवगढ़ में साम्प्रदायिकता का बीजबाला है पठानों के नेता गुलामुद्दम्मर के चरित्र से बिछने रानी की साध को किसी प्रप्रेम का हाथ तक न लगने दिया जा पाठकों को प्रेरणा मिले बिना नहीं रह सकती। प्रप्रेमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश की स्वतन्त्रता के लिए हिन्दू-मुसलमानों ने एक-साथ मिलकर अपना रक्त बहाया था यह जानकारी प्रायः के युग के लिए पदस्य है।

इतिहासकार का दृष्टिकोण

ऐतिहासिक उपन्यासकार को सबसे बड़ी कठिनाई होती है अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में क्योंकि पात्रों के लोकविरुद्ध और इतिहास-सम्मत रूप के विरुद्ध वह उनके चरित्र का विकास नहीं कर सकता। इतिहास उसकी कल्पना के पर काट बाधता है और उस अपने पात्रों के साथ मनमानी नहीं करने देता है। यह कठिनाई उस उपन्यासकार के लिए और भी बढ़ जाती है, जो उन्हें किसी पूर्व निश्चित दृष्टि कोण से चित्रित करने का प्रयत्न से जुका हो। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार के लिए दो ही रास्ते रह जाते हैं। या तो वह स्वतन्त्र होन द्वारा अपने दृष्टिकोण के अनुकूल ऐतिहासिक सामग्री संकलित करे और उसकी प्रामाणिकता के आधार पर पात्रों के चरित्र का निर्माण करे और या फिर वह पात्रों के चरित्र के उस रूप के सम्पादन पर बल दे जो इतिहास की पहुँच से परे रहकर उनके व्यक्ति रूप को प्ररित करता रहा हो अर्थात् वह पात्रों के बहिर्मुख और उसमें व्यक्ति उनकी प्रिया प्रतिक्रिया में न उसमा रहकर उनके अन्तर्मुख और उसमें व्याप्त संघर्षों की पकड़ने की चेष्टा करे। अपने दृष्टिकोण का सफ़र निर्वाह तो उपन्यासकार हम सोना रास्तों में से किसी एक पर भी चलने से कर सकता है पर पहली प्रवृत्ति उसकी रचना को प्रीप्यासिक इतिहास बना देती है और दूसरी उन 'ऐतिहासिक उपन्यास' बनाने में योग देती है।

बहिर्मुख चित्रण

बर्माबी के उपन्यासों में पहली प्रवृत्ति ही अधिक रहो है। उनका ऐतिहासिक उपन्यासों की समीचीन-सम्मी भूमिकाओं के प्रतिरिक्त अन्तर्मुख अपनी ऐतिहासिक

पार्श्वों का उत्प्रेषण किया है। उनका पार्श्वों के बहिर्गम (माइग्रेटिव) चरित्र-चित्रण की धीरे धीरे अधिक प्रभाव इस बात का परिणामक है कि चरित्र-चित्रण में उनका दृष्टिकोण इतिहासकार का अधिक रहा है और उपन्यासकार का कम। जैसा कि हम आगे देखेंगे बर्माबी का औपन्यासिक चरित्र-चित्रण सदाही डंग का रहा है, जिसमें पार्श्वों का केवल व्यक्त—धीरे-धीरे भी सार्वजनिक पारिवारिक नहीं—जीवन ही चित्रित हुआ न कि संतरण (समैविटव) व्यक्तित्व और मनोवैज्ञानिक। इसीलिए, वह अपने पार्श्वों की व्यक्त क्रिया प्रतिक्रिया के घबेराव या घबरेलाव कारणों को नहीं पकड़ पाए। उदाहरणार्थ बर्माबी के 'झांसी की रानी' और भलेय के 'सेसर एक बीवनी' को लें। दोनों उपन्यासों में भलेयों का उद्देश्य एक-सा रहा है—पार्श्वों के चरित्र का क्रमिक विकास ब्रिचाना। बर्माबी 'झांसी की रानी' उपन्यास के माध्यम से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि 'रानी का शौर्य विचरता की परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं हुआ था'।^८ यद्यपि वह जन्मजात था जो धीरे-धीरे विकसित होता गया। 'सेसर एक बीवनी' में भलेय भी 'मानवता के संचित-अनुभव के प्रकाश में जीवन की कार्य कारण-परम्परा के सूत्र सुलझाने' में प्रयत्न हुए हैं।^९ दोनों उपन्यासों में रचयिताओं के उद्देश्य में साम्य होते हुए भी उनके दृष्टिकोण के अंतर के कारण पार्श्वों के चरित्र-चित्रण में बहुत बड़ा अंतर है। बर्माबी सतह के ऊपर ही ऊपर छू जाते हैं और भलेय उससे नीचे ही नीचे।

बर्माबी के चरित्रचित्रण की प्रबलता प्रकृतियाँ नहीं हैं जो पार्श्वों के बहिर्गम चरित्र-चित्रण में प्रेमभाव-परम्परा के उपन्यासकारों की रही हैं। यहाँ उनकी सभी प्रकृतियों का नहीं केवल उन्हीं का निरूपण किया जाएगा जिनको उन्होंने चरित्र चित्रण का मुख्य रूप से माध्यम बनाया है।

वैवाकास-परिस्थिति चित्रण

पार्श्वों की क्रिया-प्रतिक्रिया के ठीक-ठीक नुस्खाकन के लिए उस परिस्थिति का ज्ञान जो वेते ही आवश्यक होता है जिनमें वह व्यक्त हुई हों पर ऐतिहासिक उपन्यासों में पार्श्वों की परिस्थिति और वैवाकास के चित्रण का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अन्य उपन्यासों के पास और उनकी परिस्थितियाँ अपने गुण की अलग परिचित होम से पाठक के लिए उनका संकेत भर पर्याप्त होता है, वेप की वह अपने अनुभव के आधार पर कल्पना कर लेता है।^१ पर ऐतिहासिक उपन्यासों के पास, उनका गुण और उसकी परिस्थितियाँ पाठकों से बहुत दूर और वर्तमान गुण से भिन्न होने के कारण पाठक उन पार्श्वों के व्यक्त आधार-व्यवहार तथा क्रिया-कर्मों को पूरी तरह नहीं समझ सकता जब तक उपन्यासकार उनके वैवाकास और परिस्थिति का विस्तृत

^८ क्या 'झांसी की रानी'—भूमिका ५, ४।

^९ भलेय 'सेसर एक बीवनी'—भूमिका अन्तर्गत संस्करण १९४१, ५, ५१०।

की सर्वांगीण घटनाओं की उपन्यास में एक ही काम की घटना के रूप में संभोकर और अनेक व्यक्तियों के गुणानुसूची का एक ही पात्र में समाहार करके बर्माबी ने समाज की हृदय हिंसा देने वाली कहानी कही है। 'बिपटा की पश्चिमी' के कुपरसिंह का बासी-गुप्त होने के कारण राज्य के उत्तराधिकार से वंचित किया जाना 'मुगलबनी' में साली और घटस के अंतर्जातीय विवाह का समाज द्वारा व्यापक विरोध यदि अनेक समस्याएँ हैं जो पाठकों के हृदय को छू लेती हैं और जो धाज भी धुरी तरह से घुसक नहीं पाई। अतीत की कई शास्त्रवादी बातों से पाठकों को प्रेरणा भी मिलती है। 'अंसी की रानी' को ही में। धाज के युग में जब बेधमर में साम्राज्यपिता का बोलबाला है पठानों के नेता मुसमुहम्मद के चरित्र से जिसने रानी की साथ को किसी प्रदेव का हाथ तक न लगने दिया था पाठकों को प्रेरणा मिले बिना नहीं रह सकती। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश की स्वतन्त्रता के लिए हिन्दू-मुसलमानों ने एक-साथ मिलकर अपना रक्त बहाया था यह जानकारी धाज के युग के लिए धर्मस्थ है।

इतिहासकार का दृष्टिकोण

ऐतिहासिक उपन्यासकार की सबसे बड़ी कठिनाई इसी है अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में क्योंकि पात्रों के लोकविक्षात और इतिहास-सम्मत रूप के विरुद्ध वह उनके चरित्र का विकास नहीं कर सकता। इतिहास उसकी कल्पना के पर न शासता है और उस अपने पात्रों के साथ मनमानी नहीं करने देता है। वह कठिन उस उपन्यासकार के लिए और भी बड़ जाती है, जो उन्हें किसी पूर्व-निश्चित दृष्टि को ही चले रह जाते हैं। या तो वह स्वतन्त्र सोच द्वारा अपने दृष्टिकोण के अनुकूल ऐतिहासिक सामग्री संकलित करे और उसकी प्रामाणिकता के आधार पर पात्रों के चरित्र का निर्माण करे और या फिर वह पात्रों के चरित्र के उस रूप को स्वीकार करता पर मत दे जो इतिहास की पट्टन से घरे रहकर उनके व्यवहार रूप को प्रेरित करता रहा हो अर्थात् वह पात्रों के बहिर्भाग और उसमें व्याप्त तथ्यों को परकृष्ट की चेष्टा कर। न उनका रहकर उनके अन्तर्जगत् और उसमें व्याप्त तथ्यों को परकृष्ट की चेष्टा कर। अपने दृष्टिकोण का सफ़ल निर्वाह तो उपन्यासकार इन दोनों रास्तों में से किसी एक पर भी चमने से कर सकता है पर पढ़ती प्रवृत्ति उसकी रचना का 'ऐतिहासिक इतिहास बना देती है और दूसरी उन 'ऐतिहासिक उपन्यास' बनाने में योग देती है।

बहिर्भाग चित्रण

बर्माबी के उपन्यास में पढ़ती प्रवृत्ति ही अधिक रही है। उनका ऐतिहासिक उपन्यास १० सम्बन्धी-सम्बन्धी दृष्टिकोणों के अनिश्चित जिनमें उन्होंने अपनी ऐतिहासिक

लोभों का उत्प्रेषण किया है, उनका पार्श्वों के बहिरंग (माइनिटम) परिवर्धन की ओर अधिक मुकाब इस बात का परिचायक है कि परिवर्धन में उनका दृष्टिकोण इतिहासकार का अधिक रहा है और उपन्यासकार का कम। जैसा कि हम आगे देखेंगे बर्माजी का औपन्यासिक परिवर्धन सतही ढंग का रहा है, जिसमें पार्श्वों का केवल व्यक्त—और वह भी सार्वजनिक पारिवारिक नहीं—जीवन ही चित्रित हुआ न कि अंतरंग (सबैनिटम) व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक। इसीलिए, वह अपने पार्श्वों की व्यक्त क्रिया प्रतिक्रिया के अचेतन या अचचेतन कारणों को नहीं पकड़ पाए। उदाहरणार्थ बर्माजी के 'आंखों की रानी' और अमेय के 'शेखर एक जीवनी' को लें। दोनों उपन्यासों में लेखकों का उद्देश्य एक-सा रहा है—पार्श्वों के परिवर्धन का क्रमिक विकास बिलाना। बर्माजी 'आंखों की रानी' उपन्यास के माध्यम से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि 'रानी का जीवन विपत्तियों की परिस्थितियों में उत्पन्न नहीं हुआ था'।^१ अर्थात् वह अत्यंत या जो धीरे-धीरे विकसित होता गया। 'शेखर एक जीवनी' में अमेय भी 'मानवता के संचित-अनुभव के प्रकाश में जीवन की कार्य कारण-परम्परा के कुछ सुलझाने' में प्रयुक्त हुए हैं।^२ दोनों उपन्यासों में रचयिताओं के उद्देश्य में साम्य होते हुए भी उनके दृष्टिकोण के अंतर के कारण पार्श्वों के परिवर्धन में बहुत बड़ा अंतर है। बर्माजी सतह के ऊपर ही ऊपर रह जाते हैं और अमेय उससे नीचे ही नीचे।

बर्माजी के परिवर्धन की अधिकांश प्रवृत्तियाँ वहीं हैं जो पार्श्वों के बहिरंग परिवर्धन में प्रेमचन्द परम्परा के उपन्यासकारों की रही हैं। यहाँ उनकी सभी प्रवृत्तियों का नहीं केवल उन्हीं का निरूपण किया जाएगा जिसको उन्होंने परिवर्धन का मुख्य रूप से माध्यम बनाया है।

वैयक्तिक-परिस्थिति-चित्रण

पार्श्वों की क्रिया प्रतिक्रिया के ठीक-ठीक मूल्यांकन के लिए उस परिस्थिति का ज्ञान तो सबसे ही आवश्यक होता है जिसमें वह व्यक्त हुई हों पर ऐतिहासिक उपन्यासों में पार्श्वों की परिस्थिति और वैयक्तिक चित्रण का महत्व और भी बढ़ जाता है। अन्य उपन्यासों के पास और उनकी परिस्थितियाँ अपने मुँह की बात परिचित होने से पाठक के लिए उनका संकेत-भर पर्याप्त होता है, खेप की वह अपने अनुभव के आधार पर कल्पना कर लेता है। पर ऐतिहासिक उपन्यासों के पास उनका मुँह और उसकी परिस्थितियाँ पाठकों से बहुत दूर और वर्तमान मुँह से भिन्न होने के कारण पाठक उन पार्श्वों के व्यक्त आधार-व्यवहार तथा क्रिया-कलापों की पूरी तरह नहीं समझ सकता जब तक उपन्यासकार उनके वैयक्तिक और परिस्थिति का विस्तृत

^१ क्या 'आंखों की रानी'—भूमिका पृ. ४।

^२ अर्थात् 'शेखर एक जीवनी'—भूमिका अनुप संस्करण १९४१ पृ. ४१।

विचार न करे। ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने पात्रों के सीमित परिवेश का चित्रण करके ही नहीं रह जाता प्रत्युत् उस काम के, उस जाति के वर्ग और समाज के रीति रिवाज मनोवृत्ति और धार्मिक स्थिति का भी चित्रण करता हुआ पाठक को सुझाव देता है कि वह उनके संदर्भ में ही उसके कार्य-कर्मों का मूल्यांकन करे।

समाज-चित्रण

मुन्दावनसात बर्सा अपने उपन्यासों में स्निह्यकर्म व्यापक चित्रण पर नहीं करते। उनके स्निह्यकर्म के केन्द्र का 'फाकस' पात्रों के व्यक्तित्व निकटवर्ती परिवेश तक उनके घासपास के तंत्र केरे तक ही सीमित रहता है। इसलिए बर्माजी तात्कालीन जन-जीवन के अंदर में प्रवेश नहीं कर पाते उनकी बीड़ राजमहलों, दरबारों और राजा रानियों तक ही सीमित रहती है।

मृगनयनी—पर उनके 'मृगनयनी' और 'सोना' नामक उपन्यासों में वह बात नहीं छटकती। इन उपन्यासों में उनके पात्रों का चरित्र-चित्रण व्यापक पृष्ठभूमि पर हुआ, जिससे प्रमुख पात्रों के चरित्रोद्घाटन के साथ तात्कालीन जन-जीवन का भी परिचय मिल जाता है। उदाहरणार्थ वह स्थिति सीधिए जब राजा भानसिंह रात का बैराग बनकर प्रजा का हानि देखने निकलता है और एक मजदूर के घर का द्वार खट मटता है। उपन्यासकार स्निह्यकर्म इस प्रकार आरम्भ करता है

“भीतर बासे ने काँसते-कूँघते खटकर टटिया खोल दी। बाहर बासा भीतर आ गया। उसके सम्ये-सड़मे घरीर और मारी भरकम हाँफे को देखकर भीतर बासा डर गया। सम्ये-सड़मे ने टटिया के पास पूछे खोल दिये और भाग के बाब आ बीठा। बसने झोंकड़ी में नजर पधारी। एक कोने में बकिया डबर डबर मिट्टी और काठ के बर्तन, पीतल की एक पासी एक सोटा और कुछ नहीं।”^१

अपनी ओर से इतना मिथने के परचात् उपन्यासकार दोष बर्तन पात्रों पर छोड़ देता है। पाठकों को जब मजदूर परिवार की अर्थनीय अवस्था का परिचय पात्रों के कथोपकथन से ही मिलता है

‘मजदूर मिडिङ्गाकर बोला ‘दाऊ, मेरी पाठ में कुछ नहीं है। पसीब है। किसी बड़े घर को तक सी।

‘डरो मत। मैं जोर-उचकता नहीं हूँ।

‘जोन हो ? वहाँ से घाये हो ?

‘राई-आगवा बाँध के घाया हूँ।

‘नागदा तो जमड़ गया है। राई में क्या करते हो ?’

‘मजदूरी-निघानी। गुजर हूँ।

^१ बर्मा 'दुलन्यनी' १ १०१।

‘बूबर ठाकुर तो हमारी राणी भी हैं। उन्हीं के पास जा रहे हो क्या ?’

‘तौकरी डूबने आया हूँ। रास्ता भूल गया हूँ। किसे मैं कैसे बताऊँ ?’

‘बल्लभा मे बता हूँ। बसो बाहर, वहीं से बिस्सामे देता हूँ।’

‘कुछ खाने को है ?’

‘अभी तो कुछ नहीं है। हमारे लिए ही नहीं है। इससे कहा कि पीस दे सो यह बहुत बीमार है। मैं पीस नहीं पाऊँगा, क्योंकि बहुत भूखा हूँ।’

यहाँ यह बात उत्तेजनीय है कि बर्माबी पात्रों के कथोपकथन से उपन्यास के कथानक को गति देने और पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने का काम ही नहीं सेते प्रत्युत् कई बार स्थितिक्रम भी पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से ही करा देते हैं।

सोना—‘सोना’ में उपन्यासकार द्वारा वर्णित उस स्थिति का विवरण देखिए जिसमें अनूप ‘माई का भुड़ना’ बनकर अंपत से सोना का चुराया हुआ बहुमुख्य हार निकसवा लेता है।

‘मावना के साथ माता का भजन शुरू हुआ।

जैसे-जैसे भजन की गति बढ़ी सोमो को फुरेरी घाने लपी। जिसके सिर देवता को घाना था वह नामी देवता था। बनवा उसकी धोर टकटकी घमाकर देखने लगी। उस को ‘माई का भुड़ना’ कहते थे।

‘माई का भुड़ना’ यकामक कापा, हिना और उसने दो-एक बीसें मारीं। अनूपसिंह भी हिल उठा। हूँ भारी लगा। वैषण भाव को के सिर भा रहा है। उनमें एक कुंवर साहब राजा के साहू। पहले तो कुंवरिया-निवासी बनवा को भ्रम हुआ कि यह कोई विस्मयी कर रहा है। फिर विचारा हो गया कि राजपरवार में धीरे देवता की बैठक में मसखरी नहीं कर सकता। सब सोम कीगूहन के साथ देखने लगे।

अंपत को बचकर भिस गया। उसने माँठ पर गाँठ लोसनी धारम्म की। वह समझता था कि उसको कोई नहीं देख रहा है, पर अनूपसिंह साँस मीची-सी किए भी कुछ ताड़ रहा था। भाव धाते धाते भी।

जिस नावटे—माता के भुड़ना—को पहले भाव आया था उसकी कपकपी और हुंकारों के ऊपर भी अनूपसिंह की हुंकारें उठने लगीं। नावटे की कुछ कम पड़ गई।

अनूप हुंकारें भरते-भरते हाथ-पैर फेंकते-फेंकते सोटने लगा और नीचे

बिछी बरी नी पतों को मुट्ठियों में बंटोरने लगा। अजन की गति बहुत तीव्र हो गई थी।

अनूप एकाएक बैठ गया और बिचाहें मारने लगा, बायें फटने ली खी।^{११०}

अनूप का स्थिति-विशेष से अनूप की बुद्धि-कुसमता का परिचय तो मिलता ही है। तत्कालीन जनता के आर्थिक विश्वासों का भी पता चल जाता है, जिन्हें जाने बिना अनूप के तत्कालीन व्यवहार को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता।

मुड़ पर्वन

मुड़-स्वयं की बिकट परिस्थितियों का चित्रण तो बर्माजी के सभी उपन्यासों में अत्युत्तम हुआ है। स्वानामाज के कारण जबकि उदराल न बेकर 'झांसी की रानी' के अन्तिम मुड़ का एक संछ ही उदाहरणार्थ प्रस्तुत है

"अंग्रेजों ने बोड़ी देर में हम सबके चारों तरफ घेरा आस दिया। सिमट-सिमटकर उस घेरे को कम करते जा रहे थे। परन्तु रानी की कुत्सी तलवारें घासे का मांस साफ करती खी जा रही थी। पीछे के पीर सवारों की संख्या घटते घटते नमन्य हो गई। उसी समय तात्मा ने रहेसी और सबकी सैनिकों की सहायता से अंग्रेजों के झुह पर प्रहार किया। तात्मा कटिंग से कटिंग झुह में होकर बच निकलने की रणविद्या का पारंगत पक्षिण था। अंग्रेज बोड़-से सवारों का सामकुर्ती का पीछा करने के लिए झुहकर तात्मा की ओर मुड़ गए। सूर्यास्त होने में कुछ विलम्ब था।

सामकुर्ती का अलीपी सवार मारा गया। रानी के साथ कमल चार मरवार और उनकी तलवारें रद्द गई। पीछे से कड़ाबीन और तलवार वाले दम-पगड़हारे सवार। घासे संवीन वाले कुछ घेरे पर्वन।

रानी ने पीछे की तरफ देखा—रघुनाथसिंह और पुनपुहम्मर तलवार ने अग्र सैनिकों की संख्या कम कर रहे हैं। एक और रामचन्द्र देवमुन दासोदरदास की रक्षा की विमता में बरफान कर-करके लड़ रहा था। रानी ने रंगामुन की सहायता के लिए मुर्गर की इशारा किया और वह स्वयं संगीनवरदारों को दोनों हाथों की तलवारों से रागाट साठ करके घासे बढ़ने लगी। एक संगीनवरदार की हूत रानी के सीने के नीचे पड़ी। उन्होंने उनी समय तलवार से उस संगीनवरदार को गतम किया। हूत कटापी थी परन्तु घातें बच गई।^{१११}

११०. अर्थ 'छेद' 'व्यवहारिक विमुल्लख', ११ अंश १९११ पृ० ७।

१११. अर्थ, 'झांसी की रानी', पृ० ४६०।

प्राकृति-वैशम्य-वर्णन

पार्श्वों के चरित्र-चित्रण में उनके प्राकृति-वैशम्य-वर्णन का बड़ा महत्त्व होता है। इसीके माध्यम से उपन्यासकार अपने पात्रों को पाठकों के कल्पना-बलुओं के मागे साकार कर दिया करता है। जब तक पात्र की कोई किमा प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होती तब तक पाठक बाह्य साकार और रंग-रूप के आधार पर ही उसके चरित्र के सम्बन्ध में अनुमान लगाया करता है। प्राकृति का चरित्र और स्वभाव से सहस्य सम्बन्ध माना जाता है।^{१४} पार्श्वों की प्राकृति और वैशम्य-वर्णन के आधार पर समझा गया अनुमान बाह्य उतना ठीक न निकले बिना उसके हाव भाव और किमा-प्रतिक्रिया के सहारे समझा गया अनुमान^{१५} पर व्यक्ति की प्राकृति के आधार पर उसकी चरित्रिक विधिष्ठताओं का कुछ-न कुछ अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। वस्तुतः में भी जब हमारी किसी से पहली बार भेंट होती है तो हम भी उसकी पार्श्वों के रंग और चमक चेहरे की बनावट शारीरिक गठन आदि से उसके स्वभाव के बारे में अनुमान लगाने का प्रयत्न किया करते हैं।

प्राकृतिचित्रण (फिजियोनोमी) एक प्राचीन विज्ञान है और उसकी सहायता से दूसरों को समझने और समझाने की प्रथा भी कोई नई नहीं। उपन्यासकारों ने प्रत्यक्ष इसके बहुत कम लाभ उठाया है। सम्य-सम्य प्राकृति-वैशम्य-वर्णन की प्रवृत्ति तो बर्माबी के उपन्यासों में धारम से ही है पर ऐसा करते हुए उनका ध्यान पात्र के रंग-रस्य की सुदृढातिमूढम विशेषता की ओर रहा है और उनके वर्णन बाप उन्होंने पार्श्वों की चरित्रिक विधिष्ठता को दृष्टि में रखा है। 'गङ्गु बर' का एक प्राकृति-वैशम्य-वर्णन देखिए—

एक सवार की धातु सवह या सठारह वर्ष से अधिक न होगी। प्रत्यक्ष लसाट, कुछ सम्बाई भिये गोल चेहरा धाँखें कुछ बड़ी और बाबाम के साकार की हस्की दासी नाक सीधी और होंठ लाल छोड़ी साबार में एक हस्के से बड़ेबाली और जरा-सी धाने को मुकी हुई और नर्वन मुरहीबार। केश पीछे गढ़न तक लम्बे और बिस्कुल कासे और उनपर कही-कहीं रेश के कण। मोहँ पतली लम्बी और सिधी हुई और पलकें दीर्घ। सीना चौड़ा और कमर बहुत पतली बाहु लम्बे और हाव की उंगली पतली। भूयिया रंग के कपड़े पहने हुए, छोटी-सी हास और तरकस पीठ पर, कमर में लसवार और कन्धे पर कयाल। घाल पर लवा रोरी का तिलक किसी समय हाव पड़ जाने से

{x Allport Personality: A Psychological Interpretation p. 7

"There is also theoretical justification for judgements based on physiognomy growth is largely regulated by the glands of internal secretion, so too is the emotional life. Physical features therefore may logically be expected to reveal peculiarities of temperament

{x Ibid. p. 86.

पुछ गया था और भाये पर तिसक सकीर के आकार में बन गया था। इस आरक्त बक रेखा ने मुक के हस्के मेहुर् रंग को और भी तेजोमय बना दिया था।^{११}

इस वर्णन में उपन्यासकार का अभीष्ट पात्र को तेजोमयी आकृति प्रदान करने का है। जब उसके साथी का वर्णन देखिए, जिसमें भयंकरता का समावेश किया गया है

‘दूसरा सवार तेईस या चौबीस वर्ष का युवक था। पहले सवार की बाग्या वस्त्रा ने सभी जिम्कस साथ नहीं छोड़ा था और दूसरा मुनावस्ता में प्रवेश कर चुका था। रंग साबसा लम्बे काले बाल बेहरे की स्वामसता का और भी बहुरा बना रहे थे। मस्तक छोटा घालें बड़ी नाक सीधी परन्तु छोटी नहीं मोटी और गुन्हेदार ठोड़ी चौड़ी और भाये को घुंकी हुई। बायें कान में मछि-जटित बाली, सीना बहुत चौड़ा हाव छोटे परन्तु बहुत पुष्ट घापी रेह जैसे सांघे में बाली गई हो। घालें बहुत काली सजब और जस्ती-जस्ती बसने वाली घने में पड़ी मोठियों की घाला बेहरे के सांघलेपन को दीप्ति दे रही थी। बेहरा मोल हौठ कुछ मोटे। इसके भाये पर भी रोटी का तिसक था परन्तु वह पुछा नहीं था। यदि इस सवार के तिसक की सकीर लम्बी विरछी बन गई होती तो आकृति कुछ और नवानक हो जाती।’^{१२}

ऊपर के दोनों वर्णनों की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि बर्माजी आकृतिचित्रण के प्रति उदासीन नहीं और वह भी कि पात्रों को पाठकों की दृश्यता में आकार करने-मर के लिए ही वे उनके आहारूप का चित्रण नहीं करते अपितु उनकी आकृति के माध्यम से उनकी प्रकृति को भी व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं।

बर्माजी के उपन्यास इस प्रकार के आकृति-चित्रणों से भरे पड़े हैं, जहाँ जहाँ भी पात्र की आकृति द्वारा उनकी प्रकृति व्यक्त करने चेष्टा की है।

अन्तर्दृष्टि का समाव

जैसे कि हम पहले मिला जाए हैं, बर्माजी की चरित्र-चित्रण की पद्धति उपन्यासकार की अपने ही इतिहासकार की अधिक है। इतिहासकार की पहलू पात्र के चरित्र के उस अंश तक ही हो पाती है जो व्यक्त हो। उसकी सम्पूर्ण चेतन सब चेतन या अचेतन चेतनाओं से इतिहासकार का कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार, बर्माजी की उपन्यास-रचना की भी समस्त समस्त पात्रों के व्यक्त रूप को तथा उनके प्रबल आचार-व्यवहार को चित्रित करने में ही सही रही है। वह नहीं कि जीवन

की विविध परिस्थितियों में अपना रास्ता बनाते हुए उनके पार्श्वों को कभी किसी दुर्दिनता ने न सताया होगा जबकि उनके भीतर कभी द्वन्द्व न दिखा होगा। इसमें सन्देह नहीं कि युग की परिस्थितियों ने उनके पार्श्वों को बहिष्कृत बना दिया है परमाश्रित वे तो वे मानव ही। उनके जीवन की परिस्थितियों में ऐसे असंख्य कारण निहित रहते हैं कि उनमें मानसिक संघर्ष हो। उनके पार्श्वों में अन्तर्द्वन्द्व उठता भी है, पर उपन्यासकार ऐसे स्वप्नों पर रुकता नहीं। उनकी ओर संकेत भर करके घामे बढ़ सेता है। मानो वह अपने पाठकों से कह रहा हो कि 'मई अब पाव अपने मन का ठाना-बाना बुनने लगा है। हूँ उसकी एकाग्रता भंग नहीं करनी चाहिए और फिर उसके व्यक्तित्व जीवन से हमने सेना भी बना है।

'झाँसी की रानी' को ही मैं। उसके पति की मृत्यु हुई, अंग्रेजों ने झाँसी को हड़पन के लिए कमर बाँध ली। समस्त शासन-भार और प्रजापालन उसक कंधों पर पड़ा। फिर झाँसी पर अंग्रेजों का आक्रमण हुआ, एक-एक करके उसके बीर सरबार मुँह में सेत होते गए, उसे झाँसी तक छोड़नी पड़ी और अन्त तक वह अंग्रेजों से लड़ती-लड़ती रही। उसे असंख्य विपत्तियों का सामना करना पड़ा पर कभी उसके मन में हल्का नहीं पड़ा। 'मैं झाँसी नहीं दूँगी' अपना यह निर्णय जो पितर करने से पहले उसके मन में कितनी उलझना रही होगी अपने विश्वासघाती सरदारों के कुटुर्यों पर उसे कितना मानसिक क्लेश हुआ होगा। आत्मिक के किशे में अन्ध बत्ती और विश्वासिता देख उसे कितनी गिरावा हुई होगी—इसबाबि उसकी किसी भी मन-स्थिति का उपन्यासकार परिचय नहीं कराता। एक बार उसके पिता मोरोपन्थ के एक स्वपद का उल्लेख कर बैठता है पर सीधे ही पीछा झुकाकर घामे बढ़ सेता है।

"ममू सो गई। मोरोपन्थ जागते रहे। उन्होंने सोचा 'ममू की बुद्धि उसकी अवस्था के बहुत घामे निकल चुकी है। अभी तक कोई योग्य वर हाव नहीं लगा। वसिए जाकर देखना पड़ेगा।' इसी विचार के लौट-फेर में मोरोपन्थ का बहुत समय निकल गया। कठिनाई से अन्तिम पहर में नींद आई।" १५

यह मान भी मैं कि झाँसी की रानी को तो जीवन-भर विपरीत परिस्थितियों से झूझना पड़ा उसे सोचने कुड़ने तथा चिंतित होने का अवकाश कहाँ था। 'विपदा की पक्षिणी' की बेसी कुसुद तो ऐसी संघर्ष-निष्ठ नहीं थी। उसके मानसिक संघर्ष के सबसे कारण होते हुए भी उपन्यासकार उसके भीतर झाँक। उनको पकड़ने की चेष्टा नहीं करता। कुसुद से बर माँगा जा रहा है कि उसके प्रेमी कुजरसिंह का नाथ हो। 'ये राज्य उसकी कोठरी में गूँब गए। बारिणी बैठना की सापरवाही पर बैठ पड़े। कुसुद की उव कोठरी में एक साँस के लिए एक बमक-सी जान पड़ी और धूम्य मगन आम्बोहित-सा।

देश को घंटे-घंटों के पंखों से मुक्त कराके स्वराज्य-स्थापना के लिए वह कितनी बेठाव भी, उसका परिणाम हमें बाबा गंगादास से हुए उसके कथोपकथन से मिलता है

रानी—'इस देश को स्वराज्य कैसे प्राप्त होगा ?

बाबा—'इस प्रश्न का उत्तर तो राजा लोग दे सकते हैं।

रानी—'कहीं दे सकते तभी आपसे पूछने आई हूँ।

बाबा—'जैसे प्राप्त होता थाया है, वैसे ही होगा।

रानी—'कैसे बाबाजी ?

बाबा—'सैदा तपस्या बसिबान से।

रानी—'हम लोग कैसे स्वराज्य स्थापित कर पायेंगे ?

बाबा—'बढ़ते कैसे घर जाती हैं ? नींव कैसे पुरी जाती है ? एक पत्थर पिरता है, फिर दूसरा फिर तीसरा और चौथा इसी प्रकार। और तक उसके ऊपर मकान खड़ा होता है। नींव के पत्थर मकान को नहीं देक पाते। परन्तु मकान खड़ा होता है उसीके बरोते—जो नींव में पड़े हुए हैं। यद्वा का नींव एक पत्थर से नहीं बनी जाती। और, न एक दिन में—मनबरेल प्रयत्न निरन्तर बसिबान आवश्यक है।

रानी—'हम लोगों के जीवनकाल में स्वराज्य स्थापित हो जायगा ?

बाबा—'यह मोह क्यों ? तुमने धारम्भ किए हुए कार्य को प्रायः बड़ा किया है। अन्य लोग आयेंगे। वे उसको बढ़ावें आयेंगे। अभी कसर है।'^{११}

रानी के राज्य में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रसन्न थे और दोनों ही उसपर प्रायः स्वीकार कर लेने को तैयार रहते थे। औरसही से हुए कुछ बठानों के इस कारवाँनाप से इस समय पर बड़ा प्रसन्न प्रकाश पड़ता है

'औरसही को कुछ पठान मिले। इसने पूछा

'तुम्हारा कौन मुसक है खान ?

'मैं तो हमारा मुसक है बाबा तुम्हारा मुसक ?'

'यै मंसी का ही रहने वाला हूँ।

'तब हम तुम आई आई हैं बाबा।'

'आई साहब का राज्य है खान'

'बेजक है। और समारा तुम्हारा।'^{१२}

पदकुशार

मांसी गैली

पानों की

बापिच

१२. आई.

११. आई.

‘प्यार’ की हेमवती के नाम से हुए इस कथोपकथन में भीर राजपूत बासा का चरित्र प्रकट होता है।

‘हेमवती—‘इस समय जो संकट उपस्थित हुआ ॥ उसमें पराक्रम दिखसाइए। यहाँ भकेसी स्त्री के पास किसी बस-विधम के दिखसाने का अवसर नहीं है।

माय—‘एक बार संतोषजनक उत्तर मुझको दे दिया जाए, मैं तुरन्त अपने को आहुति करने के लिए उद्यत हूँ।

हेमवती—‘आप राजकुमार हैं, परन्तु यह भयानक शपथों का नहीं है। बाइये।’

माय—‘जाता हूँ परन्तु आपकी एक हाँ पर मेरा संपूर्ण भविष्य निर्भर है।

हेमवती ने नायिक की तरह फुफकारकर कहा—‘यदि आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं यहाँ से जाती हूँ। कुन्वेसा-कम्या न ऐसी माया चुन सकती है और न सह सकती है। और क्या राजा होने पर भी कुन्वेसा-कम्या का अपमान करने की शक्ति नहीं रखता।’ और वह वहाँ से दूधरी घोर बस बी। २४

कचनार

उपयुक्त छंदरस में ‘हेमवती के चरित्र की जो भाँकी मिलती है उसकी तुलना ‘कचनार’ के बधीपतिह से हुए कचनार के सबाद से कीजिये

‘कचनार के मेरों में तैज बड़ा।

उसने कहा, भिरे साज गाँवर डालिये। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिये। अपनी जीवन-सहचरी बनाइये। बचन दीजिये। मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी।

‘तुमने जोड़ी देर पहले अभी-अभी कहा था कि बासी हूँ।

‘बासी तो हूँ ही। आपकी और दीवी की, भयंकर सबकी सेवा करूँगी, परन्तु मैं ऐसा भ्रंगरत्ना नहीं बन सकती जो बच जाहा उतार कर चैंक दिया।

‘यदि मैं जबरदस्ती करूँ।’

‘भयम्भय है। आप मुझको तुरन्त मरा हुआ पायेंगे। २५

मृगनयनी

मृगनयनी और राजा मार्गसिंह के इस कथोपकथन में मृगनयनी के चरित्र की सात्विकता व्यक्त हो जाती है।

२४ कर्मवीर, ‘गढ़-कुम्हार’ पृ० ३८०।

२५ कर्मवीर ‘कचनार’ पृ० २६।

“मानसिंह उसके निकट जाने को हुआ। मृगनयनी धीरे अधिक मुस्कुराई।

‘धीरे निकट जाने तो मैं बहुत छोटी रह जाऊँगी।

मानसिंह स्थिर हो गया।

‘सुम संवस से प्रेम को व्यक्त बनाती हो धीरे में अपने विकार से उसको बचन कर देता हूँ। संवस के आधार वाला प्रेम ही धीरे भी टिके रहने की समर्थता रखता है।’

मृगनयनी न बर्तन टेढ़ी की उँवली ठोड़ी पर केरी धीरे पुस्कान को बढेरा।”^{१११}

इस प्रकार, लपटें हैं कि बर्माजी के पात्रों के चरित्रोद्घाटन में उनका कथोप कथनों का मुख्य योग रहा है। उनके उपन्यासों के कथोपकथन का उपन्यास के अन्य पात्रों से अनुपात बसा जाए तो पता चलेगा कि अपने औपन्यासिक जीवन में उनके पात्र बोझले अधिक हैं और करते-करते कम हैं। वे इतिहास-प्रसिद्ध पात्र भी जो जीवन भर कमल रहे अपने औपन्यासिक जीवन में बानूनी हो पए दीखते हैं। ‘मंसी की रानी’ को ही लें। जैसे ही उसका नाम ही पाठकों की नस-नस में बीरता का तंबार करने के लिए पर्याप्त है, पर बर्माजी के उपन्यास में उसका सीधे कथोपकथनों के माध्यम से ही अधिक व्यक्त हुआ है।

अनुभाव-चित्रण

पात्रों के कथोपकथन के बीच व्यस्त होने बाल उनके द्वारा पात्रों का चित्रण तो बर्माजी करते ही रहते हैं पर उनके उपन्यासों में पात्रों के अनुभाव-चित्रण का वार्षाविक महत्त्व पात्रों की स्वामी भावनाओं और उन पर आचारित पात्रों के परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या में है। अपने उपन्यासों में बर्माजी ने ब्रित पुम और बर्न के लोगों का चित्रण किया है जसमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम-आपन करने का सब विपत्ति मोल मिला होता था। इसलिए, प्रती प्रतिकारें एक-दूसरे की धीरे धाकूट होने पर भी अपने व्यवहार को इतना समत रखते थे कि कोई अन्य व्यक्ति उनकी बेव्यालों से वह न समझ सके कि वे एक-दूसरे में भासकत हैं। पहली दो-बार भेंटों में जब तक कि उन्हें विश्वास न हो जाए कि उनका प्रेमपात्र भी उन्हें चाहता है उनका व्यवहार इतना समत होता था कि दूसरे को भी उनकी हृदय-स्थिति कामस भावनाओं का पता न चल सके। पर हृदय की कोमल भावनाएँ प्रकट होने से भला रह सकती हैं व्यस्त बेव्यालों के रूप में वे बाह्य प्रत्युक्ति न हों उनके अनुभावों के रूप में पात्रों में बेहरे पर मजक मार जाती हैं। ‘नङ्ग-कुमार’ में हेमवती धीरे नाय की एक भेंट का

बिजय देखिए। एक-दूसरे के प्रति उनके धाकप्यण का संकेत अनुभावों से ही मिल पाता है अपने मुह से तो वे एक शब्द भी नहीं निकालते

‘धामन में पहुँचने पर नाग बरती पर ही सेट गया और तलवार की मूठ का सिराना बगम भिया। हेमवती एक कटोरा पानी लाई और उसने कटोरा उसकी ओर बढ़ाया। नाग ने कटोरा सेने के लिए एक हाथ जमीन पर टेककर दूसरा हेमवती की ओर बढ़ाया। चंद्रमा उसके सिर के पीछे था इसलिए उसका प्रकाश बरत में लड़े सहेजद और सामने बड़ी हेमवती पर स्पष्ट पड़ रहा था। उसने एक अणु धक्की तरह हेमवती को देखने की इच्छा से धीरे उसकी ओर की परन्तु मानो परबल दृष्टि दूसरी ओर हो गई। दूसरी बार उसने वह बेच्टा पानी पीते न की। अब की बार वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ। नीरे-नीरे देर तक पानी पिया और देर तक बुझता पूर्वक उसका धनसोकन करता रहा। बड़ी-बड़ी धीरे-धीरे पसल मूठस सिरछी बिलबल उसकी धीरे में समा गई। हेमवती ने भी उसे धक्की तरह देख लिया और सम से धीरे नीची कर ली। उसने कटोरा सेने के लिए बरत ध्यस्ता के साथ हाथ बढ़ाया। नाग की कलाई से हेमवती की कोमल उन लिया झू गई।”^{१०}

इसी प्रकार ‘विपटा की पणिनी’ में कुबरसिंह और कुमुद की एक मेट संस्पर्शीय है। संयम का बीच तोड़ खल-मर के लिए कुमुद के होंठों पर जो मुस्कान खेल जाती है उसीमें कुबरसिंह के प्रति उसका मुकाब प्रतिबिम्बित हो जाता है

“कुबरसिंह मन मसोसकर पीछे रह गया था। तरपति के दरबारों के सामने से निकला। उबर दृष्टि गई। कुमुद को देखा। सबनुच अवतार। कुबर नेनमस्कार दिया। कुमुद बरा-सी—बहुत बरा-सी मुस्कराई, धायब उसे भासूम भी न हुआ हो कि मुस्करा रही हूँ।”^{१०}

पात्र की मन-स्थिति तो पात्र के उन हाव-आवों में ही प्रकट हो सकती है जो सहज-स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुए हों। पारोपित अनुभावों में भसा उनकी छाया कहीं मिलेगी। बर्माजी के उपन्यासों में पात्रों के ऐसे अनुभावों के बिजय की भी कमी नहीं जो कृत्रिम हों और बिजका पारोप पात्रों ने अपनी घसमी मनोभावना को छिपाकर दूसरों को जोसा देने के लिए किया हो। राजा मानसिंह के जगुम से बचने के लिए ‘कपनार’ की नायिका को भगन बार ऐसे अनुभावों का पारोप करना पड़ता है

“कपनार ने अपना स्त्री-सुमम हबिमार संभाला। बू बट जबाड़ा। नेजों की बरीनिया ऊपर उठाकर मुल्लत बरा मुकाई। दृष्टि को धनमुदी

१० बर्माजी ‘मन-कुम्हार’ पृ. ६२।

१० बर्माजी, निरय की परिसी पृ. ७२।

घाँसों के एक कोने में से गई। सुम्बर हँठा पर उसने सूक्ष्म मुस्कान का सावभ्य बढ़ाया और मईम भोड़कर मधुर स्वर में कहा 'परसों छप्पा समय।'

मानसिंह उज्जस पड़ा। उसने कचनार की घोर बढ़ना चाहा। कचनार निवारण करती हुई बोली 'भाबर के पहले बर कम्पा को स्पर्श नहीं कर सकता।'

मानसिंह झिझक गया। २६

वह स्वयं कहती भी है कि 'स्त्री की बात उसकी ठाम-ठसवार है, यह मैं अपने नए धवरय कह सकती हूँ।'

यशपाल

परिधयात्मक विवेचन

यशपाल कला को कला के लिए नहीं मानते उनकी दृष्टि में कला का उद्देश्य जीवन की पूर्णता का ग्रहण है।^१ साहित्य की सामाजिक उपयोगिता में उनकी गहरी प्राप्ति है। अपने उपन्यास 'देसघोड़ी' की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है कि 'लेखक यदि कलाकार है तो उसके प्रयत्न की सार्थकता समाज के दूसरे आयामों की भाँति कुछ उपयोगिता की सृष्टि करने में ही है। विकास द्वारा समाज को सामर्थ्य और पूर्णता की ओर ले जाने में ही अभी की सामाजिक उपयोगिता है।'^२ समाज से स्वतन्त्र लेखक के अस्तित्व को मानने को वह तैयार नहीं। समाज की अनुभूतियाँ और भावों के विमर्श में ही वह साहित्य की साधकता समझते हैं। साहित्य में सामाजिक भावों के विमर्श में उन्हें प्राप्ति तो नहीं पर समाज के सदस्यों की अनुभूतियों को वह विशेष महत्त्व देते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि ये अनुभूतियाँ अस्तौय और उत्साह उत्पन्न करके भावों की सृष्टि करती हैं। उनकी धारणा है कि 'हमारे समर्थ का जगत् रूप केवल 'शिप्लोवर' का भीत्कार है। वह भोली-सबर्प और राष्ट्रों के संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। वह अथर्व है परन्तु वह हमारी सामाजिक स्थिति की वास्तविकता है।'^३ उपन्यासकार का कर्तव्य इस भीत्कार को निम्न विश्वास और प्रवर्धना की कला के माध्यम में खिपा देना नहीं अपितु निबन्ध और निरूपण की प्रवृत्ति द्वारा जनता को उसके प्रति सजग और सचेत रखते हुए समाज की वह भवस्था प्राप्त करना है जिसमें 'शिप्लोवर' की प्रवृत्ति और वृद्धि स मनुष्य पशु में बना रहे।

१ यशपाल 'शरा बन्दूक' भूमिका।

२ यशपाल 'देसघोड़ी' भूमिका तीसरा संस्करण १९४६, पृ. ४।

३ यशपाल 'देसघोड़ी' भूमिका पृ. ५।

प्रेमचन्द और यशपाल

यशपाल की प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है,^४ पर वह यदि प्रेमचन्द-परम्परा के उपन्यासकार हैं तो वहीं तक वहाँ तक उनके उपन्यासों के विषय और उद्देश्य का सम्बन्ध है। इसमें शन्देह नहीं कि प्रेमचन्द के उपन्यासों की तरह उनके उपन्यास भी वर्ग-संवर्ग के उपन्यास हैं। उन्होंने भी अपने उपन्यासों में सामिक विद्रुतियों और संघ-परम्पराओं पर कठिणस्त समाज-व्यवस्था और उसके बोने विधिविधियों पर सीधे व्यंग्य करते हुए पाठकों की सामाजिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयत्न किया है। प्रेमचन्द की तरह उनके औपन्यासिक पात्र भी छोपक और धापित दोनों प्रकार के ही हैं और वे कमजोर मध्य और निम्न-वर्ग में से मिले गये हैं तथा उनके वर्ग-वैषम्य और जीवन-व्यापी समस्याओं का मुसावारा करते हैं और उनकी धर्म सभी समस्याएँ सामिक व्यवस्था के ही विषय बन हैं। प्रतिपाद्य दोनों का निश्चिह्न एक ही है पर जैसा कि हम आगे देखेंगे प्रतिपादन-पद्धति दोनों की बखल-बखल रही है। अपने जीवन के अन्तिम चरण में मार्क्सवाद की ओर धाट्टा देते हुए भी व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टिकोण पूर्णतः साम्यवादी नहीं बन पाया था जब कि यशपाल अपने उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्धों और उनकी गति का विस्लेषण और प्रतिपादन कुछ मार्क्सवादी दृष्टिकोण से करते हैं। इसीलिए, दोनों के उपन्यासों की पृष्ठभूमि और पात्रों में साम्य होते हुए भी उनके चरित्र-चित्रण में अन्तर पड़ जाता है।

पात्र—वर्ग-प्रतिनिधि और व्यक्ति चरित्र

प्रेमचन्द के उपन्यास समाज की तथा समाज के भीतर बन और वर्ग के स्वरूप की कहानी है न कि उसके भीतर व्यक्ति और बन तथा व्यक्ति और व्यक्ति के संघर्ष की कहानी। व्यक्ति के लिए प्रेमचन्द के उपन्यासों में कोई स्थान नहीं। उनके प्रमुख पात्र किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि (टाईप) के रूप में ही चित्रित हुए हैं। यशपाल के औपन्यासिक चरित्र-चित्रण की विशेषता यह है कि उनके पात्र वर्ग प्रतिनिधि ही नहीं व्यक्ति चरित्र भी हैं। एक ही पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करता है और साथ ही व्यक्ति-चरित्र के रूप में भी विकसित होता रहता है। अपने समाज और वर्ग के मुलाक़्क़ातों का तो उसमें समाहार होता ही है उसके घटितरिक्त उसमें ऐसी विविधताएँ भी रहती हैं जो उसे उस वर्ग के दोष सभी तवरों से अलग व्यक्ति बना देती हैं। 'दिव्या' की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है कि 'यह (दिव्या) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की गति का चित्र है।^५ वह बात 'दिव्या' ही नहीं उनके अन्य उपन्यासों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। वे ऐतिहासिक पृष्ठ

^४ डॉ० एम्.एन. मजूमारी की कठोरण अभिलेख-संग्रह संश्लेषी विभाग, बरिदाय १०० २१।

^५ साहित्य दिव्या टिनीय संस्करण १९४०, पृ० २१।

भूमि पर जाहे आधारित न हूँ व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और यति का बिगड़ना उन सब में मिश्रता है। प्रत्येक मनुष्य के दो रूप होते हैं—एक सामाजिक और दूसरा व्यक्तिगत। मर्यादा के सपन्यासों में इन दोनों रूपों का बिगड़ना और उसके विकास का इतिहास मिश्रता है इसके लिए उन्हें पात्रों का बहिरंग (ऑब्जेक्टिव) ही नहीं अंतरंग (सब्जेक्टिव) चित्रण भी करना पड़ा है।

यहाँ हम मर्यादा के औपम्यासिक चरित्र चित्रण की उन्हीं प्रवृत्तियों की विवेचना करेंगे जो उन्हें प्रेमचन्द-परम्परा के सपन्यासकारों से कुछ भ्रमण कर देती हैं।

स्थिरस्थिति

व्यक्ति और परिस्थिति

मार्क्स का कहना है कि मनुष्य की चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व को स्थिर नहीं करती प्रत्युत इसके विपरीत उसकी सामाजिक स्थिति ही उसकी चेतना को प्रेरित करती है।^१ उसका बड़ा विश्वास है कि अस्तित्व मनुष्य के जीवन की भौतिक परिस्थिति ही उसकी बौद्धिक चेतना का निर्माण और विकास करती है।^२ मर्यादा के कई पात्रों का चरित्र मार्क्स के इस सिद्धान्त के आधार पर विकसित हुआ है। यह दिखाने के लिए कि पात्रों के जीवन के विविध मोड़ उनकी परिस्थितियों के जोर से आए, मर्यादा को उनकी स्थिति के चित्रण में विशेष ध्यान देना पड़ा है। अपने पात्रों को वह कदम-कदम पर ऐसी परिस्थिति में डालते जाते हैं, जहाँ समाज के आवेगों की बल देकर ही वे अपना अस्तित्व बचा पाते हैं। 'मनुष्य के रूप' की सोमा को ही लें। भगसिंह के माग बमने के निमज्जण को जिस सोमा ने पहले यह कहकर ठुकरा दिया था—'ऐसा नहीं कहते जी। तुम बड़े भले छात्रमी हो' वही सोमा यह सबार पाकर कि उसके साथ-ससुर उसे किसी बुरे के हाथ डेबने वाले हैं उसके साथ मागने के लिए बैचन हो उठती है और दूसरे छात्रवर्गों के पास भगसिंह को समेट लेती है। मागने के प्रयास में बम होने पर उस को पकड़ लिये जाते हैं और सिपाही उसे भगसिंह से भलग बूसरी कोठरी में डालकर बमकी देते हैं कि यदि वह शरणा को गायब करेगी तो बिमटे गरम करके भगसिंह के शरीर से बोटियाँ गोब ली जाएंगी तब यह अपने सतीत्व की बलि देने के लिए विमल हो जाती है। इस उपम्यास में सोमा का प्रवेश बुद्धी विमल के रूप में होता है और वह जीवन की

१ Karl Marx, 'Critique of Political Economy—Preface :

"It is not the consciousness of men that determines their existence but, on the contrary their social existence that determines their consciousness."

२ Ralph Fox, 'The Novel and the People Foreign Languages Publishing House, Moscow 1934 p. 72.

प्रचारसाधनों परिस्थितियों में मनसिद्ध के प्रेम का प्रभाव एकद्वार प्रयोग बढ़ती है। पर अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए उसे पय-पय पर अपने सतीत्व की बाजी मगानी पड़ती है और वह कुप्रसिद्धि कुछ हो जाती है—दुनिया को अपना प्रभूता दिखा सकती है अपना बदला ले सकती है।^{१६} इस प्रकार बिम्बा को तथा 'बेइश्वरी' के डा० चम्पा को उनकी परिस्थितियाँ नाना नाच मचाती हैं। यद्यपि 'की कमा की मि-जिन्दगी' इमें है कि वह स्थिति की गम्भीरता और मार्मिकता का इतना प्रभावोत्पादक प्रभाव करते हैं कि पाठक को पात्र की निरक्षता पर विश्वास हो जाता है।

आर्थिक परिस्थितियों का महत्व

अपने पात्रों के परिवेश का चित्रण करते हुए यद्यपि उन परिस्थितियों का बड़ा आभासपूर्वक विवेचन करते हैं जिन्होंने पात्रों को उस अवस्था तक पहुँचाया होता है। ऐसा करते हुए वह आर्थिक स्थितियों पर विशेष बल देते हैं। मार्क्सवाद भी व्यक्ति की आर्थिक परिस्थिति पर अधिक बल देता है। उसका विश्वास है कि व्यक्ति को बनाने और बियाड़ने में उसकी आर्थिक बंधा का मुख्य हाथ रहता है। प. डरिक एलिस ठो यह) एक भागता है कि "सभी सामाजिक परिवर्तनों और राजनीतिक घटनाओं के कारण किसी युग के दार्शनिक विचारों में नहीं, बल्कि उस युग की आर्थिक परिस्थितियों में पाये जाते हैं।"^{१७} यद्यपि मैं स्वयं भी निश्चय है कि "हमारे समाज का सम्पूर्ण केवल सिप्सोवर का बीरकार है।"^{१८} अपने के सामर्थ में ही 'समुच्च के रूप' की सोमा का उसके सास-ससुर बेचने की संसार हुए के और उस मुसीबत से अपने के लिए वह नाम निकली भी जिससे उसकी जीवन दिया हो बदल गई। अपने के सामर्थ से ही 'बेइश्वरी' के डा० चम्पा को पठान अपना करके से घरे से। यदि उन्हें समय पर अपना मिल जाता तो चम्पा के जीवन में इतना उमड़-केर न आता होता। 'बिम्बा' को भी बाघ बिदेसाधों ने मन के सोम में ही हविबारा था। अपनी पार्टी के लिए वह दबदबा करने के प्रयास में ही 'पार्टी कार्मिक' की पीठा पर बैठा करती थी और इसी कार्य के दौरान में उसका सैठ भावविना से परिवर्तन हुआ था जिससे उन दोनों के जीवन में परिवर्तन आ गया था। इस प्रकार, यद्यपि के प्रमुख धीमासाधित पात्रों के चरित्र-विकास में आर्थिक स्थितियों का विशेष हाथ रहा है।

^{१६} आभास 'समुच्च के रूप' पृ० २१६।

^{१७} Zola, Nana, Pocket Books, New York, 1931 p. 393।

"[For Nana's] work of ruin and death was accomplished, the fly had taken its flight from the filth of the slums carrying with it the ferment of social decay had poisoned those men sorely by touching them. It was good, it was just, she had avenged her people the rogues and the vagabonds, from whom she sprang."

^{१८} बेइश्वरी अन्तर्गत लज्जाश्री—आर्थिक और वैज्ञानिक द्वितीय संस्करण ईश्वर प्रकाशन
राज्य वर्ष १९४१ पृ० ३०।

^{१९} आभास 'समुच्च के रूप' पृ० २१६।

आकृति-वैशाम्य-वर्णन

मद्यपाल अद्भुत सम्बन्धित है। पापों की आकृति-वैशाम्य के वह ऐसे सभी सम्बन्धित चित्र प्रीति हैं कि पाप पाठकों की कल्पना में साकार हो जाता है। उनकी प्रकृति पापों के व्योरेवार मन्त्र-विद्या वर्णन की नहीं। उनके वर्णन पाप के सभी धर्म से आरम्भ होते हैं जिस पर सम्बन्धित पाप या पापों की वृद्धि सबसे पहले पड़ी हो और फिर अन्य-अन्य धर्मों की तरफ ध्यान खिंचता गया हो उनका चित्रण भी होता जाता है। 'पाटी कामरेड' की भीता से आकरिया और उसके साथियों की सब पहले पहले रेस्तरां में बैठे हुई तो पहले उनके काम में उसकी बातचीत के सम्बन्ध पड़े। उनका ध्यान उसके मुख की ओर गया और अपने साथी से बातचीत के समय व्यक्त होने वाले उसके अपमान हाव भावों को मर्मगुण्य होकर देखने लगे। उसके धर्म धर्मों की ओर उनका ध्यान बाध में गया। इसलिए पहले गीता के मुख का वर्णन होता है 'वह हंसती तो पतले होंठों में श्वेत दांत ऐसे जान पड़ते कि गुलाबी मन्त्र-मन्त्री भटार की फली फटकर मोठी झलक आए हों। पीछे भी धुरे के कले बैठी मन्त्री मन्त्री मोकदाद, बूझ उबसी। माथे पर लोरी बड़ी दिखती तो ऐसा लगता नजर सीने में मड़ी। एक अजीब सा कुमकुमापन। सात गेहुँगा रंग पतला पतला प्यारा सजीला-सा बदन।' १२

सोद्वेग्य रूप-वर्णन

यह नहीं कि मद्यपाल के उपासकों में पापों के लम्बे-लम्बे मन्त्र सिद्ध वर्णन हुए ही न हों। उनके सभी पापों के रूप वर्णन तो कई बार इतने लम्बे और विस्तार कर्पक होते हैं कि ऐसा लगता है मानो उपासकाकार पाप के धर्म-धर्म पर टुकटुक, उसकी छवि निहारता हुआ रस से-सेकर चित्रण कर रहा हो। सरसरी नजर से पढ़ने पर यदि ऐसा भी प्रतीत होने लगे कि ये स्वयं पाठकों की वासना को उभारने वाले हैं तो आश्चर्य नहीं। पर ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो आया कि वहाँ मद्यपाल ने पापी पापों के रूप चित्रण में विशेष ध्यान दिया है वहाँ वह चित्रण साम्य बनकर नहीं किसी-न किसी सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप में हुआ है। ऐसे चित्रणों में उसका जो भाव दिया जाता है उसकी ओर वर्णन के बाद संकेत करके वह पाप के प्रति पाठकों के दृष्टिकोण को एकदम बदल देता है। 'दिप्पा' में प्रभुमेन के निद्रोपचार के लिए सबरुत आई दासी का रूप-वर्णन देखिए

"छिसे हुए कदमी के समान स्निग्धवर्ण दासी ने नि-संख पदों से कक्ष में प्रवेश किया। उसका चेहरे और रूप इधर था। पीछा से एक मुक्ता बनी और नये स्फुटित मामली-कुसुमों की भाँसाये गुलाबी क्रीमेय पट से पीठ

पीछे बंधे सुनोम सरोजा पर, झूम रही थी। निरावरण क्षीणोवर का निवृत्ती से कटि की ओर उठता हुआ रंगुल उभार। कटि पर पीठ कीटय घाटक मुस्ताबनी की गेलला से सम्मसता हुआ। उसके कोमल बाहुओं पर मुक्ता बसी के अमर और वसय के। अमुक्त सुयमित केय मुस्ताबनिर्वा से गुंठे हुए के। धीरे पर कठोर स्पर्श स्पर्श प्रापि धातु नहीं केवल क्षीतम, सुखद स्पर्श मुक्ता के।^{११}

अप्युक्त चित्रण को पढ़ने पर ऐसा प्रतीत हो सकता है कि उपन्यासकार पाठकों की भावना को उभार कर उन्हें उपन्यास के प्रति आकृष्ट करने का निम्नतम साधन प्रयत्न रहा हो। पर इस वर्णन के बीछ ही बाद पाठक जब उपन्यासकार के ये शब्द पढ़ता है कि "द्वार से दर-दर कर भीतर घाटी क्षीतम धामु में उसके निरावरण धरीर के रोम छड़े के। स्वामी के विनोद के लिए उसका धरीर निरावरण था"^{१२} तो इस निरीह, असहाय बासी के प्रति उसकी भावना बलवत् जाती है। इस मारी के प्रति उसकी करुणा समझ आती है। उपन्यासकार का उद्देश्य भी यही है—धिर घोषित मारी के प्रति पाठकों की करुणा उभार कर यह साबूह करना कि पुष्प मारी के प्रति अपने सम्परायत स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण को बदले। अपने उपन्यासों में मधुपान बार-बार पाठकों के सामने वह प्रश्न से आते हैं कि क्या मारी केवल घोष की वस्तु है।^{१३}

इसी प्रकार, 'देवदाही' की गति के रूप वर्णन को भी। वहाँ भी उपन्यासकार का उद्देश्य डा० खन्ना में हो रहे मनोवैज्ञानिक परिवर्तन को दिखाना ही है, यह बात इस वर्णन के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट हो जाती है।

"समुत्सा के घर की वह कविता की प्राप्ति मुकम मुन्दरी दुबती रबीन रसमी हमास में लिपटे तिर से कानी नाधिन सी गुंठी दो बेलिनी कमर से नीचे लटकाने जोड़ी घास्तीन का घुटनों तक रसमी कुरता और सलवार की तब माहुरी से हुई जाती गुमाबी एडिबी अर्धवार सनीपरी नर रस कासी मसमल की छदरी में अपने प्रतीक्षा-मुपुष्ट जरोब दबाए, पीपन से आन्त धरीर के लिए उसके कर्म का सहारा लेती हुई, बाजा में बरक अपनी मारी पतकों को पीरे से घोल रबीनी हुई नीली भाँलों से उसकी माँछा में देखा किसी दिन यदि कहे 'क्या तुझे छोड़ आओने ?' तो भी क्या बाधर अपने जीवन का उद्देश्य देहती जाना ही समझेगा ?"^{१४}

११ आश्रम 'दिग्धा' पृ० ८२।

१४ आश्रम 'दिग्धा' पृ० ८२।

१२ आश्रम 'दार्त कावरेट' पृ० १२।

१३ आश्रम 'देहदाही' पृ० ६०।

पार्श्वों का अन्तर्दृष्ट

यद्यपि अपने पात्र के बाहर की परिस्थितियों का विचार तो करते ही हैं पर उन परिस्थितियों की उसके मन पर जो छाप पड़ता है और उसके फलस्वरूप उसमें जो द्वन्द्व छिड़ता है उसकी भी वह उपेक्षा नहीं करते। पार्श्वों के बाहर की परिस्थिति और उनकी कृतियों में मजे द्वन्द्व का विचार यद्यपि अधिकोद्यत अपने चक्षों में ही करते हैं—स्वयं पार्श्वों के मन में बैठकर उसमें हो रही उन्नत-गुणन की विस्तृत रिपोर्ट के रूप में। 'पार्टी कामरेड' के भावरिया ने एक दिन बातचीत के दौरान गीता से सिनेमा बसने को कहा। गीता ने उसके इस निमन्त्रण को यह कहकर ठुकरा दिया "यह आपको सोमा देता है ? मैं आपको ऐसा नहीं समझती थी। इस एक वाक्य की भावरिया के मन में क्या प्रतिक्रिया हुई और इसने उसके खरिज-विकास को नई दिशा प्रदान करने में कहीं तक योग दिया वह उसे खनीय है —

"सोच वह यही रहा था कि उसका कितना अपमान हुआ। अपमान के प्रतिकार में वह जान की बाजी लगाए बिना न रहता। परन्तु गीता ने अपमान किया इस दृष्टि से कि वह विचार था—'यह आपको सोमा देता है ? मैं आपको ऐसा नहीं समझती थी'—बार-बार ये शब्द उसकी स्मृति में घूम जाते थे।

इस प्रकार कभी किसी ने उसे सम्बोधन नहीं किया था। गीता ने उसे हल्कासा मसा आपसी समझ था इसलिए विश्वास कर नहीं करी जाने के लिए तैयार थी। गीता का यह विश्वास बना रहता तो सम्झ था उसने गीता की मन्त्रों में आकर और विश्वास जो दिया एक बेवना सी अनुमन हुई। १०

इसी प्रकार, 'दादा कामरेड' में यखोरा के प्रति अमरनाथ की मानसिक उपल-गुणन की रिपोर्ट भी पाठक को उपन्यासकार से ही मिलती है —

'उन्होंने सोचा, क्यों न एक दिन वह यखोरा से इस विषय में बात करें ? परन्तु इसके साथ ही अमान धाता क्या वह मुझे सच्ची बात बतायेगी ? यदि मेरे प्रति उसका वह विश्वास होता तो दूसरे पुरुष के प्रति उसका आकर्षण ही क्यों होता ?

"अमेरे में वह दोनों अपने-अपने पसंज पर पड़े छत की छोर धाँवें लगाये रहत। गीत दोनों को ही बहुत देर से धाँवी परन्तु वह बात न कर सकते। घने-घन अमरनाथ ने होठों तक बात आकर रुक जाती। एक-दो बेर कह डालने के लिए उन्होंने पुकार भी लिया—'देखो' यखोरा ने उत्तर दिया—'जी। परन्तु फिर अमरनाथ को साहस न हुआ। सोचा क्या

साम ? कह दिया 'उदय को सब स्कूल में भरती कर देना ठीक होगा ।
यद्योश ने उत्तर दिया—'जी हाँ ठीक समयमें ।' ११

संनविवाद (इन्टीरियर मोमोसॉग)

अप्रवास के उपन्यासों में ऐसे स्वयं भी काफी संख्या में मिल जाते हैं जहाँ वे पात्र धीरे पाठक के बीच में धड़े नहीं रहते अपितु पात्र के मन की चिड़की जोस उनके धारे पाठक को खड़ा करके स्वयं धसन हो जाते हैं । इस प्रकार, पाठक पात्रों के मन में हो रहे संघर्ष को अपनी बाँटों सेच पाता है उनके संतविवादों को अपने कानों सुन पाता है । ऐसे स्वयं उन स्वयं की अपनेसा अधिक स्वाभाविक बन पाए हैं जिनमें अप्रवासकार पात्रों के मानसिक संघर्ष की रिपोर्टें स्वयं देने लगे जाते हैं धीरे पाठक पात्रों की मन स्थिति को सुनने की अपनेसा प्रत्यक्ष रूपसे के लिए तरस जाता है । पात्रों के मन से पाठकों का सीधा सम्पर्क हो जाने से उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पात्रों की अधिक सहरी अनुभूतियाँ उन तक पहुँचाई जा रही हैं ।

उदाहरणार्थ 'पाटी कामरेड की पीठा का यह संतविवाद में जिसमें वह पाटी के दफ्तर से सीटफर जहाँ मजदूर धीरे रंग में हुए तक की सभीन कल्पनाएँ करने लगती है धीरे समाचार-पत्र में नहीं एक बात उसे माय या जाती है

"जर्मनी में लड़कियों धीरे स्त्रियों ने अपने पुत्रन केच-केच कर मुँह के समस देह की सहायता के लिए अपना इच्छा किया था धीरे अपान में बेरमावृत्ति हाथ देह की सहायता के लिए धन कमाया था । इस देह में ऐसे काम की किसी भी भावना से नहीं सह्य जा सकता । क्या यह स्वयं देह धीरे एमान का पत्रन नहीं है ? समाजवादी दस में क्या इसे सह्य किया जा सरेगा ? कभी नहीं । परन्तु इस देह में बिना जाने-बूझे पुत्र को पति कम स स्वीकार कर लेना क्या स्त्री का समसम्मान है ? कोई स्त्री बिचल हो बेरमा बनती है कोई बिचल हो पतिप्रता । भारिया मुँह ने क्या भी अपने बीरह जाने इसका मूल्य दिया था ? जैसे कपसा मोतीबाला बनवारी के साथ सिनेमा जाने से इसलिए इनकार न कर सकी कि बनवारी ने उसके माई की सहायता की थी । सेलिब बन्स कम्पनी (अपनी संघर्ष का मूल्य समूल करना) ? पात्र सीटफर दिस बहुलागा मुँफरा कर भुल करना हाथ मिलाकर दिस बहुलागा का कमर में हाथ बाधने देना ? प्रयोजन नहीं है । क्या है स्त्री भी ? उसका मूल्य पुत्र को संतोष देने में ही है ? यदि अपने एताप के लिए वह पुत्र को ही में उसे भुल न पहुँची ।

"अपने संतोष की बात मन में जाने पर सहसा मैकनाथ धीरे दुसरे

कामरेड वृष्टि के सामने आ गये और फिर उनके बीच गुच्छा भाव
रिमा १६

अपमूर्त अंतर्बिबाह में गीता की गहरी अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति नहीं
मिलती प्रत्युत इसमें उसके सब तक के मानसिक विकास की भी झंझकी मिल
जाती है और साथ ही विभिन्न व्यक्तियों के प्रति उसके वृष्टिकोण का भी पता चल
जाता है।

इसी प्रकार, 'बाबा कामरेड' की यसोवा का वह अंतर्बिबाह है जो उसके
मन में यह जानने पर उठता है कि उसका पति उस पर संदेह करने लग गया
है। इस अंतर्बिबाह में निरीह यसोवा की छटपटाहट की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति
हुई है

"यह मेरा अपमान क्यों कर रहे हैं—मुझ पर यह ज्वाबती क्यों कर
रहे हैं बाबिर मैंने किया क्या है, यही न एक घायमी से मेरे परिचय
का इन्हें पता लगा मैंने इन्हें यह नहीं बताया कि मैं कांग्रेस में काम
करने की बाबत बातचीत की है यह बात बरस से कांग्रेस में काम कर
रहे हैं मैंने तो कभी इनसे नहीं पूछा कि यह क्या और क्यों कर रहे हैं ?
इतनी सी बात पर संदेह ? केवल इसलिए न कि मैं स्त्री हूँ। मानो स्त्री
संदेह के काम के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकती।" १

अपने पात्रों के अंतर्बिबाहों में यद्यपि उनकी अचेतन प्रवृत्तियों को पकड़ने
की चिन्ता नहीं करते और न ही उन्हें अधिक लम्बे होने देते हैं। पात्र और पाठक
का सीधा सम्पर्क वह अधिक देर तक नहीं चलने देते। इसीलिए, उनके पात्रों के
अंतर्बिबाहों में वह डुकड़ता नहीं आ पाती जो अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को नीरस
बना कामती है।

घटनाओं द्वारा चरित्रचित्रण

घटना और व्यक्ति—मालतया की व्याख्या

घटनाएँ तो सभी उपन्यासों में सुझा करती हैं पर यद्यपि वे उपन्यासों में
घटनाओं को विशेष महत्त्व प्राप्त है। उनके पात्रों के जीवन में निरन्तर ऐसी घटनाएँ
घटित होती रहती हैं जिन के लिए वे प्रयत्न न समर्थता किसी चीज रूप से उत्तर
दायी नहीं होते पर जो उनकी जीवन-मार्ग को बदल कर उन्हें कुछ से कुछ बना देती
हैं। मार्क्सवाद का एक सिद्धान्त यह भी है कि 'व्यक्ति के बाहर भी एक बगडू है'

मनुष्यका व्यक्तित्व उससे नितांत स्वतंत्र है।^{२१} प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-न कभी कोई ऐसी बात हो जाती है जिसके कारणों को वह समझ नहीं पाता और यह मानने के लिए विवश हो जाता है कि उसके पीछे किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा ही रही होगी। हम सब लोग सुबह की सामाना में कितने ही कार्यों का भार अपने ऊपर ले लेते हैं। सुबह की प्रतीक्षा में कितने ही कष्ट अपनी इच्छा से सह लेते हैं, पर अनेक बार ऐसा होता है कि काम प्रयत्न करने पर भी हम अपने उद्देश्य में उन्नत नहीं हो पाते। अतः कोई ऐसी घटना हो जाती है जो हमारी सब आशाओं पर पानी फेर कर हमारे जीवन की विद्या ही बदल जा सकती है। ऐतिहासिक घटना के कारणों का विश्लेषण करते हुए एमेन्स ने स्वयं माना है कि ऐतिहासिक घटना को किसी अज्ञात शक्ति द्वारा प्रेरित भी कहा जा सकता है। उसका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा-शक्ति में अन्तर्गत सभी बाधक बनते हैं, पर अंततः उसका परिणाम ऐसा भव्यता है जिसकी कभी किसी ने इच्छा नहीं की होती।^{२२}

चरित्र-विकास में घटना का महत्त्व

उपन्यास के अध्यात्मिक पात्रों के चरित्र विकास में इस अज्ञात शक्ति की प्रेरणा रहती है। उनके पात्रों को बनाने और विचारने में संयोग का विशेष हाथ रहता है। कोई पात्र चाहे और न चाकर चाहे और निश्चय जाता है वहाँ उसे कोई बुझती मित जाती है और दोनों के जीवनसूत्र एक-दूसरे से घुल जाते हैं। यह केवल संयोग की बात ही नहीं कि 'बाबा कामरेड' का हरीश पुमिस से अपनी जान बचाने के प्रयत्न में रात के समय जिस, घर में घुस गया था वह पछोटा न था पर भाग्य चलकर यह घरमातृ भेंट ही बजोरा। दाम्पत्य जीवन में उन्नत-धुलन मचाने का मूल कारण बनी थी। 'पाटी कामरेड' के बापरिवा की गीता से भेंट भी अचानक ही हुई थी पर उसी से दोनों के जीवन-सूत्र एक दूसरे में इतने जलमले गए कि अन्तः कामरेडों के और प्रतिद्वन्द्वियों के साथ भेटा करने पर भी वे दोनों असत्य न हो सके। 'देवदोही' के डा० बन्ना का भयना हो जाना भी अचानक ही हुआ था जिससे उसकी और उसकी पत्नी की जीवन-आशा ही बदल गई। घटनाएँ तो प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी प्रचुरता से मिलती हैं और उनके पात्रों के जीवन में मोड़ ला देने का कारण

२१. Ralph Fox, 'The Novel and the People' p. 63:

"Marxism is a materialist philosophy. It believes in the primacy of the matter and that the world exists outside of me and independently of me."

२२. Ibid. p. 71:

"This again may itself be viewed as the product of a power which taken as a whole, works unconsciously and without volition. For what each individual wills is obstructed by everyone else and what emerges is something that no one willed."

भी मे बटमाएँ बनती है। पर उन बटनाघों के कारणा का उपन्यास के किसी भी पात्र से प्रत्यक्ष न परोक्ष सम्बन्ध न हो, ऐसा मही कहा जा सकता। उनकी निर्मला के जीवनव्यापी कष्टों का दायित्व उसके पिता की डाकू के हाथों मृत्यु वाली बटना पर है। यदि उसके पिता की मृत्यु न होती तो वह प्रच्छेद रंग में आसी वाली और उसे तीन सड़कों की बिमला न बनना पड़ता। पर वह बटना किसी असंश्लिष्ट शक्ति द्वारा प्रेरित हुई हो ऐसा उस उपन्यास से प्रतीत नहीं होता। उस बटना के बीच उसके पिता के चरित्र में निहित मिलते हैं जो उसकी माँ से सड़कर प्राची रात के समय घर से बाहर निकल पड़ता है। यदि वह घर से बाहर न निकलता तो डाकू से उसकी घेंट क्योंकर होती। इसी प्रकार, उनके उपन्यास 'गुनन' की आसपास के चरित्र को निहार देने का मेघ गहन वाली बटना को ही है पर उसका दायित्व उसके अपने महनों के प्रति मोह और उसके पति की मूर्खता पर था, न कि किसी प्रजात शक्ति पर।

कमोपकमन द्वारा चरित्रचित्रण

हम पहले कह आए हैं कि मगपास के उपन्यासों के कई पात्र बर्ग प्रतिनिधि और व्यक्ति चरित्र दोनों ही रूपों में चित्रित हुए हैं। 'मनुष्य के रूप' के कामरेड भूपण और मनोरमा को ही लें। जिसकी मनोरमा भूपण की और आकृष्ट है भूपण भी उसका ही उसमें समरूप है। पर उन दोनों के बर्गों में जो वैपश्य है उनमें सदा से जो संघर्ष चलता आया है, वह भूपण को मनोरमा का समरूप स्वीकार करने की छूट नहीं देता। इस रूप में वह अपने बर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। पर व्यक्तिगत रूप में वह मनोरमा के प्रति उन्मत्त है। बर्गप्रतिनिधि के रूप में वह मनोरमा और उसके बर्ग का ध्वस्त करने के लिए समर कहे हुए हैं, पर व्यक्तिगत रूप में वह उसे मोबा देने तक का विचार नहीं कर सकता। भूपण के चरित्र के ये रूप मनोरमा से हुए उसके इस कमोपकमन में व्यक्त हो रहे हैं।

वह स्पष्ट प्रश्न कर बैठी—“तुम्हारे व्यवहार में वह परिवर्तन क्यों आ रहा है ? मेरी ऐसी कीम बात देखी तुमने ?”

भूपण ने भी स्पष्ट ही उत्तर दिया—“अपने जीवन के लिए जो आस और कल्पना मैं बना बैठा था वह निराधार थी। मैं साधनहीन हूँ। साधनों के बिना जीवन सम्भव नहीं। पहले अटक कर ताते राह पर चल रहा था। समझ आते ही उस राह को छोड़ देना उचित है। अब तक मैं यह बातें केवल सिद्धांतों के विमोह और मानसिक संतोष के लिए कहता था। आज इन्हें अपने जीवन में अनुभव कर रहा हूँ। मैं अपने लिए, मेरी के लिए, जीवन के साधनों के अधिकार के लिए लड़ना चाहता हूँ। मैं तुम्हारा प्रावर करता हूँ इसलिए तुम्हें धोखा नहीं देना चाहता।” “तुम मेरी मेरी के

धनु-वत में हो। तुम्हारी श्रेणी से, बकरल हूँ तो तुमसे भी, मैं लड़ पा परन्तु तुम्हें व्यक्तिगत रूप से प्योका नहीं देना चाहता। 'तुम कुछ समझ सकती हो कि मैं अपनी श्रेणी से प्रसन्न कैसे हो सकता हूँ।' १२

इसी प्रकार, 'पार्टी कामरेड' में पार्टी के दफ्तर में हुआ वह कथोपकथन अस्मैजनीम है जो पार्टी के प्रेस के लिए महिला सदस्याओं द्वारा अपने सामूहिक नाम में वे चुनने के बाद हुआ।

"पीठा का सीक्रेट प्रिन्सिपल की बुद्धियाँ मोखीबामा के काम के कठि और पद्मा की कच्ची हाथ में मैं उसने पूछा—'बर्न कामरेड्स, यह महीने आपने दिए हैं। आप घर जाकर क्या उत्तर देंगी ?

प्रिन्सिपल ने उत्तर दिया—'कह दूंगी खी वय।

पीठा ने उत्तर दिया—'मैं कह दूंगी पार्टी को दे दिया है। जो होना देखा जायगा।

मोखीबामा ने भी पीठा का समर्थन किया।

सिक्रेटरी ने प्रिन्सिपल को बुद्धियाँ लीटाने के लिए धामे बढ़ाई—'अगर तुम्हें घर में सब बोलने का साहस नहीं है तो वह बुद्धियाँ हम नहीं लेंगे। प्रिन्सिपल का कहना मत हो गया। खी हो उसने कहा— मैं घर में ठीक बात कह दूंगी— और बैठ गई। १४

पीठा, प्रिन्सिपल सब एक ही पार्टी की तो सदस्याएँ हैं। एक ही वर्ग का तो वे प्रतिनिधित्व करती हैं, पर उपर्युक्त कथोपकथन में उनकी व्यक्तिगत चरित्रिक निरूपणाएँ अलग-अलग हैं, एक ही वर्ग की प्रतिनिधि होती हुई भी वे एक दूसरे से भिन्न 'व्यक्ति' के रूप में उभर आई हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक न होगा कि इस प्रकार के कथोपकथन स्वाभाविक नहीं बन पाए। उनके पीछे से लेखक की सोई-सवता बार-बार भँककर पाठक का ध्यान अपनी ओर खींच लेती है और उसके निकट उनका मुख्य राजनीतिक बुद्धिपूर्व से अधिक नहीं रहता।

पाँचवाँ अध्याय
मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

समु-बस में हो। तुम्हारी भेली से, बकप्य हुई तो तुमसे भी, मैं लड़ूँ बा, परन्तु तुम्हें व्यक्तिगत रूप से बोला नहीं देना चाहता। 'तुम कुछ समझ सकती हो कि मैं अपनी भेली से भलाय कैसे हो सकता हूँ।' ^{१२३}

इसी प्रकार, 'पार्टी कामरेड' में पार्टी के दफ्तर में हुआ वह कथोपकथन उत्तेजनीय है जो पार्टी के प्रेम के लिए महिला सदस्यों द्वारा अपने प्रामुख्य नाम में वे चुप्पे के बाव हुआ

'बीता का सीक्रेट प्रेमिका की चुड़िया' मोतीबाबा के कान के कटि और पद्मा की कपड़ी हाथ में ले उसने पुछा—'बर्न कामरेड्स, यह महने आपने दिए हैं। आप घर आकर क्या उत्तर देंगी ?

प्रमिता ने उत्तर दिया—'कह दूँगी जो यय ।

बीता ने उत्तर दिया—'मैं कह दूँगी पार्टी को दे दिया है। जो होमा देना आया ।

मोतीबाबा ने भी बीता का समर्थन किया ।

सेक्रेटरी ने प्रमिता की चुड़िया सीटाने के लिए धाँसे बढ़ाई—'धमर तुम्हें घर में सब बोलने का साहस नहीं है तो यह चुड़िया हम नहीं लेने । प्रमिता का चेहरा भास हो गया । यही ही उसने कहा—'मैं घर में ठीक बात कह दूँगी— और बैठ गई ।' ^{१२४}

बीता, प्रमिता सब एक ही पार्टी की तो समस्याएँ हैं। एक ही बर्ग का तो वे प्रतिनिधित्व करती हैं, पर उपभुक्त कथोपकथन में उनकी व्यक्तिगत चरित्रिक विविधताएँ झलक पड़ी हैं, एक ही बर्ग की प्रतिनिधि होती हुई भी वे एक दूसरे से विभिन्न 'व्यक्ति' के रूप में उभर आई हैं ।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक न होया कि इस प्रकार के कथोपकथन स्वाभाविक नहीं बन पाए । उनके पीछे से सैराफ की सोईस्वता बार-बार भाँककर पाठक का ध्यान अपनी ओर खींच लेती है और उसके निकट उनका मूल्य राजनीतिक बुद्धियों से अधिक नहीं रहता ।

पाँचवां अध्याय
मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

जन्म-दश में हो। तुम्हारी भेखी से बकरत हुई तो तुमसे भी, मैं जन्म परन्तु तुम्हें व्यक्तिगत रूप से बोला नहीं देना चाहता। तुम खुद समझ सकती हो कि मैं अपनी भेखी से असंग बंधे हो सकता हूँ।”^{१३}

इसी प्रकार ‘पार्टी कामरेड’ में पार्टी के दफ्तर में हुआ वह कपोपकवन उल्लेखनीय है जो पार्टी के प्रेस के लिए महिला सल्लाहियों द्वारा अपने सामूहिक शान में वे चुटुने के बाद हुआ।

“बीता का लीफेट, अनिमा की बुद्धियाँ मोजीबासा के कान के कटि भीर पद्मा की कच्ची हाथ में से उतने पृच्छा—‘वर्ष कामरेड यह पहले घाघने दिए हैं। आप घर जाकर क्या उत्तर देंगी?’

अनिमा ने उत्तर दिया—‘कह दूनी वो पए।’

बीता ने उत्तर दिया—‘मैं कह दूनी पार्टी को वे दिया है। जो होगा देखा जानका।’

मोजीबासा ने भी बीता का समर्थन किया।

लैफेट ने अनिमा को बुद्धियाँ मीटाने के लिए धावे बढ़ाई—‘घघर तुम्हें घर में सब मोसने का चाहत नहीं है तो वह बुद्धियाँ हम नहीं लेते। अनिमा का कहना शान हो गया। पढ़ी हो उतने कहा—‘मैं घर में टीक बात कह दूनी—’ भीर बैठ गई।’^{१४}

बीता अनिमा सब एक ही पार्टी की तो सदस्यार्थ हैं। एक ही वर्ग का तो वे प्रतिनिधित्व करती हैं, पर उपर्युक्त कपोपकवन में उनकी व्यक्तिगत चार्मिक विधिप्रकारों भिन्नक पड़ी हैं। एक ही वर्ग की प्रतिनिधि होती हुई भी वे एक दूसरे से बिम्ब ‘अपिष्ट’ के रूप में उभर आई हैं।

यहाँ वह स्पष्ट कर देना परंपरा न होया कि इस प्रकार के कपोपकवन स्वाभाविक नहीं बन पाए। उनके पीछे वे सचक की शोईस्वता बार-बार भौंककर बाठक का ध्यान अपनी ओर खींच लेती है और उसके निकट उनका मूल्य राजनीतिक मुक्तिर्षों से अधिक नहीं रहता।

१३ कालिदास, ‘जन्म के बंध’ ‘माघ’ अंक १९४८, पृ० ३६।

१४ कालिदास ‘पार्टी कामरेड’, पृ० ३५-३६।

मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

प्रस्तावना

व्यक्ति चरित्र का उद्भव

व्यक्ति के चरित्रचित्रण का मनोवैज्ञानिक आधार

हिन्दी-उपम्यास में मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

जैनेन्द्र इलायन्त कोसी और शरीय के औपम्यासिक चरित्रचित्रण की निम्न

लिखित प्रवृत्तियों का अध्ययन

परिचयार्थक विवेचन

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

पात्रों का प्रथम परिचय

आकृति-वैधर्म्य-चित्रण

अनुमाप चित्रण

अन्तर्दृष्टि-चित्रण

अंतर्निहित (इन्टीरियर मोनोलॉग)

मनोविश्लेषण

मुक्त आसक्त (फ्री एसोसिएशन)

आत्मविश्लेषण

वाचकता-विश्लेषण

स्वप्न-विश्लेषण

निराधार प्रत्यक्षीकरण-विश्लेषण (हैम्पुसीनेशन ऐनेलिसिस)

प्रत्यक्षोक्त-विश्लेषण (ऐनेलिसिस ऑफ रिफ्लेक्शन्स)

प्रतीकार्थक शैली

पूर्ववृत्तार्थक प्रणाली (केस-हिस्टरी, रीमैड)

सम्मीह-विश्लेषण (हिज्रो-ऐनेलिसिस)

चित्र-विश्लेषण

राज्य-सहस्रमूर्ति-परीक्षा

पञ्चार्थक शैली

उद्धरण-शैली

कथोपकथन द्वारा चरित्रचित्रण

जैनेन्द्र के औपम्यासिक चरित्रचित्रण में दुरुहता

मज्जे के औपम्यासिक चरित्रचित्रण में व्यक्तित्व का आभास



मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

प्रस्तावना

व्यक्ति चरित्र का उद्भव
व्यक्ति के चरित्रचित्रण का मनोवैज्ञानिक आधार
हिन्दी-उपन्यास में मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण
जैनेन्द्र इलायत जोशी और अश्वेय

जैनेन्द्र कुमार इलायत जोशी और अश्वेय के औपन्यासिक चरित्रचित्रण की निम्न
लिखित प्रवृत्तियों का अध्ययन

परिचयात्मक विवेचन
पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण
पात्रों का प्रथम परिचय
आकृति-वेद्यमूला-चित्रण
अनुमान-चित्रण
अन्तर्दृष्टि-चित्रण
अर्थाविवाद (इन्टीरियर मोमोमोम)
मनोविस्लेषण

मुक्त आसंय (फ्री एसोसिएशन)

आत्मविस्लेषण

भावकता-विस्लेषण

स्वप्न-विस्लेषण

निराधार प्रत्ययीकरण-विस्लेषण (इस्पुसीनेशन ऐनेलिसिस)

प्रत्ययमोहन-विस्लेषण (ऐनेलिसिस ऑफ रिक्लेक्शन)

प्रतीकात्मक शैली

पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली (केस-हिस्टीरि, रीचर)

सम्माह-विस्लेषण (डिज़ॉ-ऐनेलिसिस)

चित्र-विस्लेषण

शब्द-सहस्रमूर्ति-परीक्षा

पञ्चात्मक शैली

संस्करण-शैली

कथोपबन्धन द्वारा चरित्रचित्रण

जैनेन्द्र के औपन्यासिक चरित्रचित्रण में कुसृष्टता

अश्वेय के औपन्यासिक चरित्रचित्रण में अस्तीत्यता का आभास

प्रस्तावना

व्यक्ति-चरित्र का उदय

सब तक के उपन्यासों में तो थी—व्यक्ति और समाज के संघर्ष की तथा समाज के भीतर बर्ग और बर्ग के संघर्ष की कहानी पर यह संघर्ष यहीं तक सीमित न रहा। इसके बाद व्यक्ति और व्यक्ति में भी संघर्ष छिड़ गया। जिन कारणों से समाज का विघटन हुआ था उन्हीं कारणों से बर्गों और परिवारों का विघटन प्रारम्भ हो गया। परिवार एक जगिष्ठ सामाजिक संगठन है। किसी सामाजिक संगठन की बुढ़ता और स्थिरता बहुत कुछ उसके सदस्यों द्वारा स्वीकृत मूल्यों और उनकी मनोबुद्धियों के साम्य पर निर्भर करती है। पारिवारिक संगठन इस नियम का प्रपचार नहीं। प्रत्येक परिवार के पुसंगठन के लिए यह अनिवार्य है कि उसके सदस्यों के बीचनोई स्थ में तथा उनकी रुचियों और महत्वाकांक्षाओं में समानता हो। मध्य युग में पुरातन मूल्यों के प्रति दुढ़ विश्वास होने के कारण तीनों प्रकार की एकता सम्भव हो सकी थी। इसीलिए उस युग के परिवार भी एक ठोस बर्ग के रूप में मजबूत रह सके थे। पर डाविन मार्क्स तथा फॉयब के सिद्धान्तों के प्रभाव से तथा वैज्ञानिक उन्नति और औद्योगिक विकास के फलस्वरूप सभी पुरातन नैतिक और सामाजिक मूल्यों के प्रति प्रत्नी कारिता के भाव से तथा नये मूल्यों के प्रभाव में व्यक्ति-स्वार्थ का सूत्रपात हुआ। मनुष्य की प्रास्था अपने परिवेश—समाज बर्ग तथा परिवार—से हटकर अपने में ही केन्द्रित होती गई। उसकी बहुमुखता बढ़ने लगी और वह अंतर्मुख होता गया। उस के जीवन में व्याप्त बाह्य संघर्ष का स्थान आन्तरिक संघर्ष ने ले लिया।

व्यक्ति के चरित्र-विकास का मनोवैज्ञानिक आधार

डाविन मार्क्स और फॉयब की खोजों ने उपन्यासकार में भी नई जाग्रति ला दी। नये-नये आधििक और मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रकाश में उसका दृष्टिकोण बदल गया। जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण के बदलने ही उसका लिखना भी बदल गया। फॉयब के सिद्धान्तों ने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति चेतना का जो रूप उद्घाटित

किया था उससे उपन्यासकार को बड़ी सहायता मिली। जब तक वह अपने पात्रों के मन में हो रही जन-युवक का अनुमान उनके अस्त-व्यस्त पहनावे, विविध अनुभावों और व्यक्त-क्रिया-प्रतिक्रियाओं से ही पोड़ा-बहुत सजा पाता था और उस अनुमान के आधार पर ही उनकी मन-स्थिति का चित्रण करता था। अपने पात्रों के मन में हो रहे संघर्ष के अर्थों रूप से वह जब तक अनभिज्ञ ही रहा था। जब उसे पता चला कि बाह्य संघर्ष ही सब कुछ नहीं। वह तो बहुधा मानसिक संघर्ष की प्रतिबिम्बिता या उसका विद्वत रूप होता है। बाह्य की घटनाओं के घटित होने से पहले व्यक्ति-मानस में ही कई घटनाएँ घटित हो जाती हैं। बाह्य के स्तून संघर्ष में पड़ने से पहले उसे आंतरिक संघर्ष से कूझना पड़ता है। इस जानकारी के बाद उपन्यासकार की दृष्टि में व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष का कोई मूल्य न रहा। 'संघर्ष' और 'घटना' की उसकी परिभाषा भी बदल गई और साथ ही इनके चित्रण का स्वरूप बदल गया। उपन्यास में बाह्य संघर्ष का स्थान अन्त-संघर्ष ने ले लिया। बाह्य स्तून घटनाओं के प्रति उपन्यासकार उदासीन होता गया क्योंकि पात्रों की मन-स्थिति को ठीक-ठीक समझने के लिए इनसे सहायता तो मिलती नहीं थी अन्त में बड़ने की सच्चा बना रहती थी। इसलिए, जब वह अनुभूति के विभिन्न स्तरों पर व्यक्ति-मानस में हो रहे संघर्ष के अचेतन कारणों की खोज में मनोविरलेपण की ओर प्रवृत्त हुआ। फ्रायड एडलर और युंग के सिद्धान्तों ने तथा स्टैकेल और हैब्सबॉक एलिज की धारणाओं ने उसे नई दृष्टि प्रदान की। इससे वह नई आत्मविश्वास के साथ पात्रों के मानस की चीर-पूँछ करने और उनके अचेतन की परत-पर-परत खोजने में जुट गया। उसके चरित्र चित्रण में कोरे आनुकूलायुक्त अनुमान का स्थान मनोवैज्ञानिक प्रणालियों ने ले लिया और वह अनुभव की मनोविरलेपक की तरह मनोविरलेपण स्वप्न विरलेपण, प्रत्यक्षनाम-विरलेपण सम्प्रीह-विरलेपण, अन्त-सहस्रमूर्ति परीक्षा इतिवृत्तात्मक आदि विविध प्रणालियों द्वारा अपने पात्रों के अचेतन में पड़ी मनोवैज्ञानिक प्रणालियों और उनके कारणों को उजाड़ने लगा। जब उसका उपन्यास पात्र और परिस्थिति के संघर्ष का उपन्यास न रहा और न ही नायक और प्रतिनायक के संघर्ष का प्रसुत वह नायक के चेतना प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कन्ससनेस) का तथा उसके अन्तर्विवादों (इंटीरियर मनेमोमॉय) का उपन्यास ही गया।

हिन्दी उपन्यास में मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

यद्यपि वैज्ञानिक उन्नति और औद्योगिक विकास के कलस्वरूप होने वाली सामाजिक मूल्यों में गड़बड़ और सम्मिश्रित परिवारों के विघटन का चित्रण प्रेमचन्द ने उपन्यास 'रंजयि' और 'बोदान' से आरम्भ हाकर भयवर्तीकरण वर्मा के उपन्यास 'रागा' में काफी चरम-नीचा की तुलना है तो भी समाज के विविध नियमों के उद्भूत उदासीन तथा पारिवारिक मर्यादाओं की बाध्यता से मुक्त मूल नीतिरता

के विज्ञानों स्वतंत्र व्यक्ति-पार्श्वों की उद्भावना हिन्दी-उपन्यास में सबसेप्रथम जेनेत्र के उपन्यासों में ही मिलती है। जैसे तो प्रेमभण्ड ने अपनी उपन्यास-कला के विकास के अन्तिम चरण में और भयवतीचरण बर्मा ने उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण करते ही व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता और उसके अध्ययन की आवश्यकता स्वीकार कर ली थी पर व्यक्ति मानस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन की उसकी परत-पर परत खोमकर उसकी व्यक्त श्रिया-प्रतिश्रिया के अन्तर्गत इन्द्र को पकड़ने की भूतदाही प्रवृत्ति जीनेन्द्र के उपन्यास 'सुनीता' से ही आरम्भ होती है। यद्यपि जीनेन्द्र से पहले ब्रजमन्दनसह्याय के 'सौवर्गोपासक' (सन् १८१८) कृपामान मिश्र के 'प्यास' (सन् १८२३) और अचयनारायण के 'विमाता' (सन् १८३२) नामक उपन्यासों में मानव-मन के अध्ययन के प्रयत्न दृष्टि मोचर होते हैं पर उनका आधार मनोविज्ञान की अपेक्षा सत्ता भावुकतापूर्ण अनुमान था। इन उपन्यासकारों ने मानव-चरित्र कपी हिममग (घाईसर्ग) के कलममग अन्वय भाग के अस्तित्व को तो स्वीकार किया था और उसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता को भी महसूस किया था पर पश्चिम की नवीनतम मनोवैज्ञानिक उद्भावनाओं से वे साम न उठा सके थे।

जीनेन्द्र कुमार

'परख' 'सुनीता', 'कन्याश्री' से लेकर 'सुखरा' 'बिबत्त' 'अतीत' और 'जय वर्धन' तक उनके सभी उपन्यासों में बाहर की स्मृत घटनाओं की अपेक्षा और पार्श्वों के भीतर होने वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म हलचलों के चित्रण की ओर विशेष झुकाव मिलता है। कट्टा सुनीता मृणाल कन्याश्री सुखरा मोहिनी अनिता और इसा से लेकर सत्यजन हरिप्रसन्न श्रीकान्त जेनेत्र जितेन्द्र जयन्त और जयवर्धन तक उनके उपन्यासों के सभी प्रमुख पात्र सामाजिक और पारिवारिक संघर्ष से विमुक्त पर अपने भीतर के इन्द्रों में खोए हुए से भटकते रहते हैं। अपने जतन मन से वे जो करना चाहते हैं, वह उनके किए हो नहीं पाता और जो वे करना नहीं चाहते वह उनके साथ बधने पर भी अपेक्षित प्रेरकों के प्रभाव से हो जाता है। इन पात्रों को दिन रात बेचैन किये रहने वाले उनके भीतरी अन्तर्गत संघर्ष को पकड़ने के लिए, उनकी मनोवैज्ञानिक उद्भावनाओं को उनके गणार्थ रूप में विवृत करने के लिए तथा उनकी मूल छुठारों को उजाड़ने के लिए जीनेन्द्र ने प्राच्य मनोविज्ञान की नवीनतम छोजों से लाभ उठाया है। उनकी उपन्यास-कला के विकास के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक प्रणालियों के प्रयोग की ओर उनका झुकाव भी बढ़ता गया है। यही तक कि उनके नये उपन्यास 'जयवर्धन' में क्षोब्ध की मुख्त धारण-प्रणाली (सी एसोसिएशन टेक्नीक) का सांघोपांग प्रयोग मिलता है। वास्तव में जीनेन्द्र पहले उपन्यासकार हैं जिनकी रचनाओं में हिन्दी-उपन्यास के पाठकों को पार्श्वों के अन्तर्गत (सम्प्रेषित) चरित्र चित्रण के दर्शन हुए हैं।

इलाचन्द्र बोधी

पात्रों के अन्तर्गत चरित्रचित्रण की विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों के आधार पर विकसित करने वाले दूसरे अस्सेकनीय उपन्यासकार हैं—इलाचन्द्र बोधी। चरित्र चित्रण को सामाजिक पूर्वज्यों और दार्शनिक उसकनों से बचाकर उसे कुछ मनोवैज्ञानिक रूप देने का योग बोधी जी को ही है।

फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि मनुष्य मूलतः पशु है, पर बहुत धीमी पालतूक वृत्तियों पर बर्मे सम्पत्ता और संस्कृति का आरोप करके उन्हें दबाने का प्रयत्न करता रहता है। ऊपर से बड़ी प्रतीत होने पर भी वे पशु-वृत्तियाँ उसके अचेतन मन में गहरी बँसकर भीतर ही भीतर जलज-पुलज मचाती रहती हैं। मनुष्य जब-जब इन्हें बलपूर्वक दबाता है, तब-तब वे धीमे-धीमे रूप बदलकर अभिव्यक्ति पाती रहती हैं और जब कभी उनके अचेतन मन पर से चेतन मन का नियन्त्रण उठ जाता है—चाहे वह अस्वादिधन्य समय के लिए ही हो—वे वृत्तियाँ अपने मन रूप में भाव उठती हैं। इनसे उत्पन्न बुझाव मनुष्यों को जब उसका चेतन मन उनके दयार्थ रूप में समझे या स्वीकार करने से इन्कार कर देता है तब वे दमित (रिप्रेस्ड) होकर अचेतन में बँस जाती हैं और उसके भीतर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को कार्य देने लगती हैं। वे प्रक्रियाएँ उसके भीतर भीषण संघर्ष उठाती रहती हैं, जिसके कारण उसके लिए अपना मानसिक समुल्लस बगाने रखना कठिन हो जाता है और वह जीवन भर कस्तूरी-मृग की तरह भटकता रहता है। इलाचन्द्र बोधी के उपन्यास 'संग्यासी' का लम्बकिजोर, 'पर्य की रानी' की निर्दोषता प्रेत और छाया' का पारसनाथ 'निर्वासित' का महीब धादि उनके उपन्यासों के नायक-नायिकाएँ इसी प्रकार के 'मनोवैज्ञानिक कस' हैं। उनके अचेतन में भीषण झगड़ा छिड़ा रहता है जो उन्हें दिन-रात बेचैन किए रहता है। मनोविज्ञान की विविध प्रणालियों का सहारा लेकर बोधी जी ने अपने पात्रों के मानस की निर्दोष और-प्राद की है और उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं के कारणों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। इसीलिए, उनके उपन्यासों में फ्रायड के मनोविरलेपक और रमज-विरलेपक से लेकर सम्मोह-विरलेपक (हिप्नो-ऐनेलिसिस), एंडर स्ट्र इमूति बरीदा (बड एलोसिएलक ईस्ट) पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली (केस हिरटरी मंडक) तक सभी प्रमुख प्रणालियाँ वृष्टिमोचर होती हैं जिनका प्रयोग मनोविरलेपक अपने पात्रों पर किया करता है।

संक्षेप

शेखर : एक बीवनी की रचना द्वारा सत्य हिन्दी-उपन्यास की मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण के एक नये मोड़ पर से आए। यह एक हिन्दी के उपन्यासकारों की नए नई चारों के चरित्र के विविध रूपों के उत्पादन में ही लगती रही थी।
॥ क चरित्र विकास की कुछ-एक उभरी हुई अवस्थाओं के चित्रण में ही उल्लेख

अपने कर्तव्य की इतिथी माग भी थी। विकासमान चरित्र और उसकी अन्तःप्रेरणाओं के चित्रण का कोई ठोस प्रयत्न अब तक हिन्दी में न हुआ था। 'सेखर एक बीवनी से पाहले का चरित्र चित्रण चित्रपट पर दिखाई गई 'सिनेमा स्टाइलों' के समान अान्तःसामिक या हिन्दी उपन्यासों में 'अस चित्रों' का-सा विकासमान चरित्र और वह भी अान्तःकृत (सम्बन्धित) विज्ञान का भेद अज्ञेय को ही है। 'सेखर एक बीवनी' के रूप में विकासमान चरित्र को ठोस मनोवैज्ञानिक पुष्टभूमि प्रदान करके अज्ञेय ने चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में एक नया मुगं भा दिया। यह एक संस्मरणारमक उपन्यास है। अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचकर फाँसी की कोठरी में बैठा उसका नायक सेखर प्रत्यक्षोक्त करने लगता है। वास्तवस्था से लेकर उसके जीवन की घटनाएँ एक-एक करके उसके स्मृति-पट पर उमरने लगती हैं और उन्हीं स्मृतियों के निर्मम विस्लेषण द्वारा वह अपने विपठ जीवन में कार्य-कारण के सूत्र ढूँढ़ने लगता है। अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नबी के द्वीप' चरित्र के क्रमिक विकास का नहीं बल्कि सित चरित्र के उद्घाटन का उपन्यास है। वह चार सखियाओं का 'मनोवैज्ञानिक चित्रण' है, चार पात्रों के चेतना प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कान्ससनेस) का पर्यंकन है।

जैनेन्द्र की भाँति उपन्यासकार के साथ-साथ विचारक भी होने से अज्ञेय की भी अपनी निश्चित मान्यताएँ हैं, कुछ-एक पूर्वग्रह भी हैं, जो उनके उपन्यासों और उनके पात्रों के चरित्र-विकास को एक विशेष विधा प्रदान करते हैं। दोनों में साम्य यही है कि उनके पात्रों के चरित्र-विकास और चरित्र-चित्रण में उनके जीवन-दर्शन का प्रबल आग्रह रहता है। जैसे दोनों के दृष्टिकोण में आकाश पाताल का अन्तर है। व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करते हुए भी जैनेन्द्र व्यक्ति के 'अहं' को चक्राचूर करके उसे विरुद्ध व्यक्ति में मिसाना चाहते हैं, पर अज्ञेय व्यक्ति के 'अहं' को पुष्ट करना चाहता है। इसलिये जोखी के उपन्यासों में इस प्रकार का कोई आग्रह नहीं मिसता। अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण इन उपन्यासकारों ने चाहे किसी भी दृष्टि कोण से किया हो सस्ते मानुष अनुमानों से बचकर ठोस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को इन सबने अपने पात्रों के चरित्र चित्रण का आधार बनाया है।

अब हम इन उपन्यासकारों की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण के स्वल्प का अध्ययन करेंगे।

जैनेन्द्रकुमार

परिचयात्मक विवेचन

अत्यन्त धीर अर्द्धत सत्य तथा उसके व्यावहारिक रूप—समस्त बराबर बपत् के प्रति प्रेम, अनुकम्पा यानी सहिष्णुता—को जैनेन्द्र अपने साहित्य का परम श्रेय मानते हैं।^१ उनका विश्वास है कि समष्टि की उपसमष्टि के अर्थ विश्वभर में बिखर जाने की ओ सामान्य व्यक्ति के अन्तरगत में विद्यमान है, उसी का सम्बोधित रूप साहित्य है। साहित्यकार के लिए 'स्वात्म-सुखाय' साहित्य निर्माण हेतु न समझते हुए भी जैनेन्द्र उसके 'सौक्यसाध' तक पहुँचने में कोई हानि नहीं देखते पर सौक्यहित के नाम से कान्ति की दुहाई देते फिरना भी उनकी विचार-बाध से मिल नहीं जाता। उनकी धारणा है कि समाज में विकास ताप से नहीं तप से होगा। इसलिए, उनके विचार में समाज की धार की रीति-नीति को अस्त करने का कोई कान्तिकापी तब उपन्यास अथवा साहित्य का नहीं हो सकता। उन्होंने लिखा भी है "उपन्यास" जीवन में गति देने के लिए है। गति यानी जीवन। गति उसके की नहीं। वह गति को धारणी उत्तेजनदायक नहीं, बल्कि स्वतः-स्फूर्ति से करता है। उस गति का वह स्वयं स्वामी होता है। साहित्य को यही गति दष्ट है।^२

व्यक्ति-चरित्र

उपन्यास वस्तुपरक हो या भावनापरक इसके सम्बन्ध में भी जैनेन्द्र का निश्चित मत है कि उपन्यास की यदि जीवन का विकास-साधन बनना है तो अवश्य उसकी मर्यादा नहीं हो सकती। वास्तविकता का घरात उससे उठेगा जो स्वयं ऊँचा होगा। वास्तविक होने के प्रयास में उपन्यास अपने का व्यर्थ ही बना जायेगा। इसलिए, अपने पात्रों के चरित्र में उन्होंने ध्यान रखा है कि वे वस्तु-अवस्था के व्यक्तियों की तरह

१-२ 'साहित्य का श्रेय और प्रेम' पृ० १५।

२-३ 'अन्तर्गत में वास्तविकता' बीगा, रिपब्लिक, १९५६।

झड़-झड़ हो-हो मन के न हों क्योंकि "सच्चे धर्म में हमें उनसे साम तो अभी कुछ होगा जब वे हम से कम मांसम और अधिक मागसिक होंगे उनमें आत्मा अधिक होगी और पंचभूत कम ।"^१ अपने अधिकांश पात्र उन्होंने उस शिक्षित मध्यवर्ग से ही चुने जिसे माधुनिक शिक्षा-प्रणाली ने अधिक संवेदनशील बना दिया है और जो मूल नैतिकता की शिक्षा में समाज के समस्त विविध नियम के साथ प्रबल-सूचक चिह्न लगाकर उनकी अभ्यस्तता को कर बैठता है पर धर्मतन मन पर पड़े सहारे संस्कारों के कारण जीवन भर मानसिक संघर्ष की चकती में पिछता रहता है । सत्यजन श्रीकान्त, हरि प्रसन्न, जितेन्द्र ज्योति से लेकर सुनीता मुखार्थ, कल्याणी मुखर्जी, धनिता, सुबल मोहिनी इसा तक उनके सभी पात्र इसी वर्ग के भावना-धारी प्राणी हैं जो अपनी भीतरी भुमङ्गन के कारण बयै-अतिनिधि पात्रों की मर्यादा सीध कर व्यक्ति-परिवर्तन गए हैं ।

प्रचैतन इन्द्रों का चित्रण

पात्रों का चरित्र-चित्रण श्री जैनेन्द्र ने स्वयं वास्तविकता पर नहीं उससे ऊँचे पर ही किया है । उनका बूढ़ विश्वास है कि 'जो एकदम वास्तविकता में लिप्त है— वह फिर चाहे कितना भी बड़ा भावनी समझ जाय—सफल उपन्यासकार नहीं हो सकता । एकदम जरूरी है कि वह कुछ अशोच भी हो, 'मिस्टिक' हो ।'^२ अपने उपन्यासों में वह पात्रों के बुद्धिबोध पर व्यक्त रूप में न समझ कर उनके प्रत्यक्ष मानस की ओर प्रवृत्त हुए हैं । उनके विचार में धर्म के साहित्यकार के लिए सृजन का यही एक धर्म है 'हमारे अन्दर अत्यन्त अत्यन्त है । मैंता उसमें है, बीना उसमें है । उस सबको स्वीकार करके सही-सही उसे बाहर निकाल कर अपने को रिक्त करते जाना— मेरे लक्ष्य में यह बड़ा काम है । इससे अत्यन्त सृजन क्या होगा, यह मैं जानता नहीं ।'^३ पात्रों के प्रचैतन प्रत्यङ्गों को जिनके कारण वे किसी भी परिस्थिति से अपना मानसिक संतुलन नहीं बिठा पाते और कस्तूरी भूम के समान जीवन भर भटकते फिरते हैं उपाङ्गने में ही जैनेन्द्र की उपन्यास-कला की समस्त शक्ति लगी है ।

१ क० ।

२ जैनेन्द्र, 'उपन्यास में वास्तविकता' 'श्रीवा' दिसम्बर, १९४२ ।

३ जैनेन्द्र 'साहित्य का मेरा धर्म' पृ १२ ।

पात्रों के नामकरण द्वारा चरित्रचित्रण

मानव के मनस्वरूप के विज्ञान^१ विस्वर ह्यूस्टन का ध्यान जैनेन्द्र जी के उपन्यास 'अपवर्णन' का मायक इस सध्य की धीर दिखाता है कि "मयबान् के सिवा कोई किसी को नहीं जानता—सब यह है कि कोई अपने को भी नहीं जानता।"^२ यदि मयबान् के सिवा कोई किसी को नहीं जानता—यहाँ तक कि अपने को भी नहीं तो इसका कारण यह है कि हम सबका अन्तर कोई धीर ही है, धीर अन्तर के सिवा सब की क्षुब्ध की जानने का बम धीर बोल भर सकता है। परन्तु उपन्यास धीर उसके पास किसी धीर की नहीं उपन्यासकार की क्षुब्ध होते हैं। इसलिए उनके बारे में यदि कोई सब कुछ जानता है तो वह उनका अन्तर उपन्यासकार ही है। उपन्यासकार को पता होता है कि उसके पात्रों की मूल प्रवृत्तियाँ क्या हैं और उनका विकास किस दिशा में होना है। अपने पात्रों का नामकरण करते समय उसके सामने प्रायः उनका चरित्र भा जाता है और जाने या समझने उनके चरित्र की कोई-न-कोई बिशिष्टता उनके नामकरण का आधार बन जाती है। इस प्रकार, कई बार पात्रों के नामों से भी उनके व्यक्तित्व का आभास मिल जाता है।^३

चरित्रानुसृत नाम

जैनेन्द्रजी के धारमिक उपन्यासों में तो यह प्रवृत्ति बड़ी प्रबल रही है। उनके पात्रों के नाम ही उनकी आधुनिक बिशिष्टताओं पर प्रकाश डाल देते हैं। उनके धारमिक उपन्यास 'परम' के नायक का नाम है धृतराष्ट्र, नाम पढ़ते ही पाठक अनुमान लगाने लगता है कि कदाचित् समय को ही वह पात्र अपना घबराती घन मानेगा। बस्ती ही पाठक को बिन्हाग हो जाता है कि उसका अनुमान ठीक था बब वह इस नाम को अपने जीवन के एक मोड़ पर इस प्रकार बिर्लुप करते हुए जाता

१ जैनेन्द्र, 'अपवर्णन' पृ. ६१।

२ वही, पृ. १८।

३ Weale, 'The Theory of Literature', London 1919 p. 226-7

है "गूठ के बिना बकासत नहीं तो मैं बकासत करता ही नहीं जाओ।"४ परन्तु पार्श्वों के नाम बनायास ही उनके चरित्र के अनुकूप पड़ गए हों यह बात नहीं प्रत्युत सेवक को इस बात का गर्व है कि उसके पार्श्वों के नाम सार्थक हैं। कट्टो के नाम के बारे में सेवक स्वयं मानता है कि "यह नाम बिलकुल निरर्थक नहीं है।" कट्टो मिसहरी को कहते हैं। उसकी ठोड़ी मिसहरी के मुह जैसी है, जैसी ही नोकदार। उसके चेहरे से भी मिसहरी का भाव टपकता है। झटपट यहाँ दौड़ वहाँ दौड़ दबदबा देख सबर देद—ये सब भाव उसमें हैं।"५ बिहारी के नाम की सार्थकता बताने में भी उपन्यासकार नहीं बूझता "पर बिहारी सर्व है, सच्चा बिहारी। इतनी मेहनत में धमी-धमी जिस भविष्य के स्वयं को खड़ा किया था और जिसे धमी सवा ही रहा था उसको सत्य में झट झट कर जामा लेकिन धमी तो उस भविष्य के बचना-बुर केर के पास खड़ा होकर वह सिर सीधा रखकर मुस्कुरा ॥ देना, पीछे फिर बाहे किटना ही रोये।"६

जैनेन्द्रजी के और कई औपन्यासिक पार्श्वों का नामकरण उनके चरित्र के अनुकूप ही हुमा दिखाई देता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि यह सब सायास हुमा है। 'विकर्त' की नायिका 'भुवनमोहिनी' भुवनमोहिनी है। उस पर दुःख होकर उसका पति तो उसकी प्रशंसा करता ही है—“यह क्या आपने सोचा है, कहर बाइगा”७—पर वह स्वयं भी अपनी सम्मोहिनी से अपरिचित नहीं। उसे अपनी बुद्धि का अपने रूप और कौशल का मरोछा है।"८ उसके बस पर ही तो वह पुत्रि के ए० पी० बच्चा को अपने घर निमन्त्रित करके अपने प्रेमी कामिकारी जितेन को बचाने का प्रयास करती है और उसमें सफल रहती है। बच्चा को वह 'अत्यन्त स्नेहपूर्ण और कमनीय बात पढ़ती है और उस का रूप उसकी कुसीनता, उसकी बाकबातुरी देखकर वह सहसा पचभूत हो जाता है।"९ 'मुक्ता' का कामिकारी पात्र सात भी अपने नाम के अनुकूप ही है। वह आपत्तावह मने ही हो पर 'हीन धारमी है।"१० 'राम-नर' की नायिका मृणाळ के नाम और चरित्र-विकास में भी काफी साम्य देखने को मिलता है। कमल-नाम के समान वह धीमे-धीमे और लहरों के धपेड़ों के अनुकूप ही मुड़कर, स्वयं पंक में गहरी बँस कर भी समाज-व्यवस्था के कमल को पारंगत किने रहती है, उसे थोड़ा से बचाए रहती है।"११ 'अतीत' के नायक जयत का व्यक्तित्व भी उसके नाम

४ जैनेन्द्र, 'परा' पृ० १ ।

५ जैनेन्द्र, 'परा' पृ० २१ ।

६ श्री पृ० १८ ।

७ जैनेन्द्र, 'विकर्त' पृ० ५३ ।

८ श्री पृ० १३१ ।

९ श्री पृ० १३१ ।

१० जैनेन्द्र, 'सुरा' पृ० १४५ ।

११ जैनेन्द्र, 'रामनर' पृ० १० ।

हिन्दी उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास

के अनुसार बिजयी ही रहा है जो भी उसके सम्पर्क में आता है वह पराभूत हो जाता है। अनिता सुमति बुधिया कपिला आदि का तो कहना ही क्या चन्द्रनमा (चन्द्री) कीसी सर्पपूर्ण नारी भी प्रथम दर्शन में ही हार बैठती है और कुमार को भी जयल करवा हूँ जयल वह क्या काम है तुममें ? भाई, मानता हूँ माव तुम से। क्या जाहूँ जाता है कि" ११२

इसी प्रकार सुषमा कन्याली चन्द्रनमा (चन्द्री) सुनीता जयवर्धन स्वामी विद्यानन्द आदि के नामों में उनके चरित्र की किसी न किसी विविष्टता की झलक मिल ही जाती है। सुषमा कन्याली सुनीता दूसरों की बिम्बा का कारण बाने बन गई हों पर इस उम्र से इनकार नहीं किया जा सकता कि उनका प्रयत्न सदा इससे जलटी बिदा में ही रहा।

पात्रों का प्रथम परिचय

उपन्यास के रंगमंच पर जब कोई पात्र पहली बार प्रकट होता है तो उस की साहसि प्रकृति, नेत्र-मूपा भ्रू-मिमिमा क्रिया-प्रतिक्रिया पाठक के मन पर एक छाप छोड़ जाती है जिसके आधार पर वह उसके भावी आचार-व्यवहार का अनुमान लगाता रहता है। अपने पात्रों के समूचे चरित्र की जानकारी रखने के कारण उन सम्बन्ध में उपन्यासकार की अपनी बारछायाँ भी बनी होती हैं, जो धर्मव्यक्ति पात्र के लिए धनसह की प्रतीक्षा में रहती हैं। ठीक तो यह रहता है कि उपन्यासकार के लिए धनसह की प्रतीक्षा में रहती हैं। ठीक तो यह रहता है कि उपन्यासकार के नाम साहसि-नेत्रमूपा आदि के वर्णन द्वारा उन्हें पाठकों की कल्पना में साकार करके स्वयं समय ही जाए और उन्हें पाठकों की जानकारी अनायास धीरे-धीरे सुनने दें। पर बहुधा पात्र के बारे में उपन्यासकार की जानकारी अनायास ही उसके परिचय के रूप में फूट पड़ती है और पात्र के प्रति सज्जी सहानुभूति या पूर्ण व्यक्त हो जाती है।

परिचोदपात्र में उपन्यासकारका पूर्वग्रह

अपने प्रारम्भिक उपन्यासों में धर्मेश्वर भी भी पात्रों के प्रति अपनी बारछायाँ व्यक्त करने का मोह संवरण नहीं कर सके। 'सुनीता' के प्रारम्भ में ही वह श्रीकांत और हृदिप्रसन्न की चरित्रिक विशेषताओं का विस्तृत तुलनात्मक परिचय देने लग पाले हैं 'श्रीकांत तुने मन फुटवेह सम्पन्न परिस्थिति सुन्दर बख और पानिक बुद्धि का पुरुष था हृदिप्रसन्न बुद्धि से कुछ सन्देहशील, कमुर, कर्मगुपम तीक्ष्ण बुद्धि और परिस्थिति से असम्पन्न था' १३ यद्यपि पाठकों ने अपनी तरफ उन दोनों का

कुछ भी नहीं देखा होता। पाठकों को पात्रों के बारे में स्वयं कुछ जानन का अवसर प्रदान किये बिना ही वह उग पर अपनी धारणाएँ साद बेते हैं। हरिप्रसन्न तो अभी उपन्यास में प्रविष्ट भी नहीं होता कि लेखक अपना पूर्वग्रह व्यक्त करने लग जाता है। यद्यपि उसके कृत्यों में वे सभी चारित्रिक विशिष्टताएँ भ्रमक नहीं पायीं जिनका बखान लेखक पहले से ही करने लग जाता है। 'त्यागपत्र' में विनोद की माँ का प्रथम परिचय इस प्रकार कराया गया है—माता अत्यन्त कुछस गृहिणी थीं। जैसी कुशल थीं वैसी कोमल भी होतीं तो ? पर नहीं उस 'तो' ?—के मुह में मही बहना होगा। इतना ही हम समझें भी जितनी कुशल थीं उतनी कोमल नहीं।^{११} विनोद की माँ को पाठकों पर प्रकट होने का कोई अवसर दिये बिना ही लेखक पाठकों से घाघह करने लग जाता है कि वे उसकी बात सही मानते हुए 'इतना ही समझें' कि वह कोमल उतनी नहीं थी जितनी कुछस। यद्यपि मृणाल को एक बार पीटने के बाद उसके प्रति विनोद की माँ का जो व्यवहार रहा उसमें उसके कोमल हृदय की भ्रमक बनायाश ही मिला जाती है।^{१२}—व्यवहार उस का पाहे कठोर ही रहा हो। 'परस' में योड़ा कटु से परिचय करें कह कर लेखक एक उस पर परिष्कार मिला जाता है।^{१३}

पात्रों के प्रथम परिचय की इस शैली में उपन्यासकार पाठकों पर अपनी धारणाएँ जाद कर उन्हें पात्रों के प्रति पूर्वग्रहवान् तो बनाता ही है, साथ ही उपयुक्त समय से पूर्व उनकी चारित्रिक विशिष्टताओं को प्रकाश में लाकर उनके चरित्र विकास के प्रति पाठकों के अंतर्मुख भाव को भी मंद कर देता है। इसके अतिरिक्त कई बार पात्रों का चरित्र विकास उनके प्रथम परिचय से काफी दूर जा पड़ता है और लेखक हाथ इस प्रकार अपना मत सादना निरर्थक हो जाता है।

उपन्यास में पात्रों का प्रवेश तब तक नहीं होना चाहिए जब तक कि उनके करने के लिए कोई विशेष काम न हो।^{१४} केवल परिचय कराने के लिए पात्रों को उपन्यास के रसमंज पर ले आना और जब तक पुन आवश्यकता न पड़े तब तक के लिए उन्हें 'कोल्ड स्टोरेज' में बांध देना उपन्यास को सिचिस और बोझिल बनाता है। जैनेन्द्र के प्रारम्भिक उपन्यासों में यह रैलने में आता है कि वह एक घाम ही कई आवश्यक-अनावश्यक पात्रों का प्रवेश कराके उनका परिचय देने लग जाते हैं। 'अस्पाही' के प्रारम्भ में वह बकीस साहब के रूप में एक घाम ही उपन्यास के सभी पात्रों का औपचारिक परिचय कराकर पीछा मुड़ा लेते हैं।^{१५} बाकी पात्रों को तो

१४ जैनेन्द्र 'त्यागपत्र' पृ० ३।

१५ जैनेन्द्र 'त्यागपत्र' पृ० ३।

१६ जैनेन्द्र 'परस' पृ० २०-२१।

१७ E. M. Forster Aspects of the Novel p 61

१८ जैनेन्द्र, 'अस्पाही', पृ० ३।

कैर करने को कोई काम मिल ही जाता है, पर हिन्दी के साक्षर्यकार यो 'प्रबान' का परिचय कराने के बाद उसे 'कोलड स्टोरेज' में डाल देते हैं और फिर ऐसा गुमते हैं कि उपन्यास भर में उसके कहीं दर्शन नहीं होते।

इसके प्रतिरिक्त जैनेन्द्र कई बार पात्र के पाठकों के सामने आने से पहले ही उसकी बर्णना छेड़ देते हैं और उसके गुणानुगुणों का उल्लेख कर देते हैं। 'मुनीठा' में हरिप्रसन्न की प्रवृत्तारणा तो होती है पृष्ठ ६ पर, पर उपन्यासकार उसका कुछ गान प्रथम पृष्ठ से ही करने लग जाता है^{१६} और निरंतर करता रहता है। मुनीठा और उसकी प्रसन्न मूहस्त्री की बात भी उसके प्रकट होने से पहले ही छिड़ जाती है।^{१७} 'अवबर्धन' में शायक की बर्णना भी उसके उपन्यास के प्रारम्भ पर आने से पहले ही छेड़ दी जाती है। अवबर्धन के बारे में मुना ही है—उस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं। बकर उसमें कुछ संश्लेषण है।^{१८}

कुतूहलोद्दीपक प्रथम परिचय

जैनेन्द्र जी के उपन्यासों की कथावस्तु के विकास के साथ साथ उनके पात्रों का प्रथम प्रवेश भी सहज स्वाभाविक होता गया है। जीवनी की दृष्टि में लिये गये उनके उपन्यासों—'मुनीठा' और 'अतीत'—में तो पात्रों का प्रवेश और उनके प्रथम परिचय और भी स्वाभाविक बन पाया है क्योंकि यहाँ सेवक पात्र और पाठकों के बीच में न झड़ कर पात्र की स्वयं ही पाठकों पर छुटने देता है। मुनीठा के प्रथम परिचय में बड़े जोर की पकड़ है। 'अस्पृश्यता में हूँ अकेली हूँ' बत नीकर एक साथ है। अच्छे हैं स्वामी हैं पर वे सब दूर हैं। उनकी याद करते डर होता है। किस मुह से बाद कर ? उन्हें अपने ही हाथों में हटा कर दूर कर दिया है। अपने ही हाथों में धवना समाया बनाया है।^{१९} 'अतीत' में अवस के परिचय में भी कम पकड़ नहीं। 'वैतासीस तो कोई अवस्था हीती नहीं। इस कम में बीत कर रह जाने का क्या मतलब है। लेकिन कुछ कर, इस बीच से छुट्टी नहीं मिलती है कि मैं अब बीते पर ही हूँ आने के लिए नहीं हूँ। सोचता हूँ कि यह क्या हो गया।'^{२०} इस प्रकार मेराफ की प्रत्यक्ष सहायता के बिना ही प्रकट होकर वे पात्र बता देते हैं कि वे अपने भीतर अन्धका का सागर छिपाए हैं।

अपने प्रीति उपन्यासों में पात्रों का प्रवेश कराने के बाद उनके परिचय कराते समय जैनेन्द्र उन पर अपने मत का आरोप भी नहीं करते। पात्र का संक्षिप्त परिचय

१६ जैनेन्द्र 'मुनीठा' पृ० १, ६, १२।

१७ वही, पृ० ६, ५।

१८ जैनेन्द्र, 'अवबर्धन' पृ० १०, १३, १४।

१९ जैनेन्द्र, 'अतीत' पृ० ६।

२० जैनेन्द्र 'अतीत' पृ० १।

देने के बाद उसे किसी स्थिति में जासकर अपने आप खुलने देते हैं। वस्तुजगत् में भी तो ऐसा ही हुमा करता है। नित्यप्रति हमारी मये-मये जोगों से भेंट होती है। हर बार तो हमारे बीच कोई तीसरा व्यक्ति आकर परिचय नहीं करता। हम स्वयं ही धीरे-धीरे अपनी बेस भूषा और क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा एक-दूसरे पर खुलते हैं। सुखवा में क्रांतिकारी भास का प्रवेश बड़ा सजीव हुमा है। सुखवा के साथ-साथ पाठक भी पहले दूसरे कमरे से हुकूमत के सहने में उसकी आवाज सुनता है—और सगमग साथ ही साथ उसके बूटों की भारी बमक। और धीमे उसे कमरे के द्वार पर लड़ा पाता है—‘सिर से पैर तक निर्दोष युरोपियन निवास में।’ २४ पाठक स्वयं आश्चर्यचकित हो जाता है कि यह व्यक्ति कौन है, पर बस्ती ही सुखवा से उसका जो कथोपकथन होता है, उसमें वह धीरे-धीरे खुलता जाता है। ‘व्यतीत’ के आरम्भ में धनिता के प्रथम परिचय के रूप में पाठक को केवल यही मिलता है कि एकान्त खोज कर धन्ती (धनिता) धारी है और फुलों की भासा बयत (तब तक उसका नाम प्रकट नहीं होता) के गले में बास कर कहती है ‘माधो, मेरा इनाम माधो।’ २५ यह धन्ती कौन है और इसका अर्थ है क्या सम्बन्ध है—पाठक धन्ती इस बारे में सोच ही रहा होता है कि दोनों में बातचीत शुरू हो जाती है और पाठक उसमें से कुछ पाने के लिए चौकस हो जाता है। पात्रों के प्रथम परिचय की यह धनी भाव्यत सजीव है।

आकृति-बेधभूषा वर्णन

जो लोग समय-समय पर अपना पहनावा बैसा ही रखते रहते हैं जैसे पहनावे की समाज उनके-स व्यक्ति से आसा रखता है। उनकी बेध-भूषा में व्यक्तित्व की झाँकी पाना सतमा कठिन नहीं होता जितना ऐस भोगों के पहनावे में जो समाज के बेध-भूषा-सम्बन्धी नियमों के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। इसलिए ‘सुनीता’ के श्रीकांत ने जब अपने मित्र हर्षिसन्त को दूर गया के किमारे पर भेड़ में हर्ष से आर्से फाड़े लड़ा ऐसा और पाया कि ‘उसके बड़े-बड़े बास हैं और वह लहर का सम्भा-सा करता पहन रहा है।’ २६ तो उसने सोचा क्या वह साधु हो गया है। श्रीकांत के साथ ही पाठक भी सोचता है कि या तो यह व्यक्ति साधु हो गया होगा नहीं तो फिर यह आधमी निधता ही होगा। क्योंकि इस प्रकार की आकृति भासा आधमी या तो साधु हो सकता है या फिर सनकी। इस प्रकार, उपमासकार पात्रों की बेध भूषा के बयन द्वारा उनके चरित्र की असल विज्ञा दिया करता है।

२४ बेनेट, ‘सुनीता’ पृ. २६।

२५ बेनेट, धनिता पृ. २।

२६ बेनेट, सुनीता पृ. ६।

प्रारम्भ में गणित-वर्णन की प्रवृत्ति

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों के पात्र उपन्यास के रंगमंच पर आते समय पानी पूरी की पूरी पोशाक से भव्य आते थे—धीरे-धीरे उपन्यासकार रीतिकानीय कवियों की भाँति धीरे-धीरे उनके पहनावे का विस्तृत वर्णन कर देता था। भयवतीचरण वर्मा के प्रारम्भिक उपन्यास 'पतन' तक में भी इस प्रवृत्ति का साम्राज्य मिश्रता है।^१ कदाचित् इस प्रवृत्ति की व्यर्थता को देखकर ही प्रेमचन्द ने कहा था कि 'किसी चरित्र की कपड़े का वर्णन करने से उसकी प्रकृति की जड़ें नहीं बढ़ती।' ^२ परन्तु प्रेमचन्द अपने इस बोध-धारा में मुख्य-मुख्य बातें कह देती चाहिये।^३ परन्तु प्रेमचन्द अपने इस सिद्धान्त के पालन में सतर्क स्वयं रह सके ? निर्मला के पहने होने वाले पवित्र भुवन मोहन (बाबू के बा० सिन्हा) का प्रथम परिचय कराते हुए वह लिखते हैं 'विस्तृत वर्णन' का पत्रा पा। वहीं गोरा सिन्हा रंग। वहीं पतले-पतले मुसाब की पत्नी के से मोठ। वहीं चौड़ा भावा वहीं बड़ी-बड़ी घाँटें। जैसा कोट बिजुब टाई, बूट हीट उस पर लूब छिन्न रहे थे। नाम में बकानी का गकर बा घाँटों में भारम गीरेग के प्रारम्भिक उपन्यासों में भी मिल जाती है। पर जहाँ कहीं भी इसका प्रयोग हुआ है, सप्रयोजन ही हुआ है। सुनीता में जब भीकाम की हृत्पिचल से प्रथम बार मेट हुई तब उसने ऐसा कि "हृत्पिचल के बड़े-बड़े भाग थे। बाकी भी उप रही थी। बाहर का एक लम्बा कुरता था उस में बाबर, ऊँची बोती धीरे चप्पन"।^४ — धीरे वह विस्मय में हुआ का हुआ पड़ा रह गया। यहाँ लेखक को हृत्पिचल की प्रवृत्ति का निरूपण दिखाना अभीष्ट है। इसी प्रकार यह बताने के लिए कि सुनीता की बहुत सखा में अपनी सखा से कभी किसी को बाँटाया नहीं लेखक उपन्यास परिचय या कहता है 'बाबी बोती धीपी माँय धनवती बोती धनविन स्वबहार—बड़ी उमर तक इन्हीं का या ही लिये बढ़ती रही है।'^५

सामान्यतः लोच-लोच

प्रेमचन्द के उपन्यासों में ऐसे कुछ एक उदाहरण ही मिलेंगे जहाँ सही-सही पात्रों की निरंतर धीरे-धीरे उनकी प्रकृति कम से कम धारों में धारों को बाँटने की प्रवृत्ति का प्रयोग करने उनकी सांस्कृतिक दृष्टि को प्रतिबिम्बित करने के लिए है। नापते के व्यापारी के साथ रहती हुई 'व्यापक' की नायिका को उसके सतीने विनोद ने इस दृष्टि में पाया "देह दुबली थी मुख पीला

^१ कलकत्ता का नाम 'पतन' पृ. ५३।

^२ प्रेमचन्द, कुछ दिनों पृ. ५५।

^३ प्रेमचन्द, निरुपम पृ. ५६।

^४ 'दृष्टि' पृ. १३।

^५ 'दृष्टि' पृ. १३।

वा । गर्भवती थी । एक बोली में अपनी सब बेह डाँके बीठी थी ।”^{११} पर वही मूखास जब परिस्थिति-बदल अभ्यापिका बन गई थी तब वह उसे इस रूप में मिली “सफेद बिना कितारे की बोली थी । बास बीते जुड़े में बीये थे । शीशों की स्निग्धता बिदेयता से भिगाह को धाकट करती थी । बेह इकहरी भीर बणीभूत ।”^{१२} उसके बेश से ही बिगोह दोनों बार उसकी स्थिति को समझ गया । “अतीत के भावक जगत् से निराश बन्नी “उससे कुछ इंच पर सिर घौंघा किए पड़ी थी । कपड़ा हट आया या बाग बिहार घायल थे—बाहें पीछे जगत् की घोर बढ़ते-बढ़ते आपस में मिसकर उबर ही निम्नकी रह गई थी । शरीर भागो समूचा ही हिचकियाँ ले रहा था ।”^{१३} बन्नी को इस कष्ट मूर्ति से उसकी घातकिक अप्या कूटी पड़ती है । शार्चना से उठी सच-स्ताटा “विचरत” की नायिका मुक्तमोहिनी की शुचिर्घात मन-स्थिति उसके इस बेश में भी नमक पड़ती है “बाल बुले थे । शरीर पर साड़ी के अतिरिक्त सिर्फ मामूली घोंगिया पहने थी । घामपण का चिह्न न था ।”^{१४} “जयबर्चन” के मनस्वी आचार्य का व्यक्तित्व उनकी इस मूर्ति तक में प्रतिबिम्बित हो उठता है “पैसठ बर्ष के जैसे कोई बुधा पुरुष समझ हों “बेहरे पर शान्ति शरीर गुठा हुआ भीर समत बदन पर सिर्फ एक उपरमा पड़ा था भीर घुटने तक की बोली पहने थे ।”^{१५}

जसचित्र का सा सजीव चित्रण

जैनजी के कुछ एक वर्णनों में तो जस-चित्र की सी सजीवता मिलती है । समूची सम्भा का उल्लेख न करके वह केवल आत्मिक परिवर्तनों की ओर ही ध्यान बीबते बने जाते हैं । सुनीता अने स्टून पर लड़ी होकर अपने स्टडी कम की छत के बाते झट्ट से साफ कर रही होती है । उसके “सिर पर से साड़ी हट जाती है । एक आध तिमका-बाला बालों में उलझ गया है । किसी राग का भूला सा पद गुनगुना रही है ।”^{१६} बुहारी को बांस में लपकाकर वह मकड़ियों के आस में मार रही है, झाड़ू छोड़कर वह स्टून से उठती । “उठरते-उठरते साड़ी का धूटा पस्सा स्टून की एक कील में उलझ गया । उसने जोर से बींच कर वह पस्सा छुड़ा लिया जिसमें साड़ी जप फट भी गई । एक फीट बैठकर उसे कमर में कस लिया ।”^{१७} धीकान्त के साथ किसी भीर को भी आते पाकर “वह बखी में हल्ला ही कर लकी कि झाड़ू बीये बीस को

११ जैन, ‘समाप्त’ पृष्ठ ५ ।

१२ वही पृष्ठ २२ ।

१३ जैन, ‘अतीत’ पृष्ठ १५३ ।

१४ जैन, ‘विचरत’ पृष्ठ २ ।

१५ जैन, ‘जयबर्चन’ पृष्ठ ३२ ।

१६ जैन, ‘सुनीता’ पृष्ठ २२ ।

१७ वही पृष्ठ २३ ।

कोने में टिका बे। नीची निहाह चलते हुए हृदयसन्म की टाँग में जब मुर्सी लयी और वह उस पर बैठ गया तब होने में सुनीता ने 'भोली की पैट जोस ली और धिर पर पस्मा में निबा।' * सुनीता के इस बचलते बेस की चलती-फिरती बिसाकर बेसक मानो उसकी मनोमोकी दिखा रहा हो—कैसे उस की निश्चिन्ता और-धीरे हड़बड़ा हट में बचलती गई।

संक्षिप्त चित्रण

जीनेमारी के उपन्यासों में ऐसे स्वस भी मिल जाते हैं जहाँ वे किसी समय विधेय की शाय की भाकति-बेसभूपा का चित्रण एक साथ न करके उसे संक्षिप्त शैली में दूर-दूर तक बिखेर देते हैं। ऐसे किसी एक स्वस पर का वर्णन केवल प्रचुरी मोकी ही देता है। उन स्वसों की मिलाकर ही मोकी पूरी हो पाती है। उस धर्म स्वरसीय राशि में सुनीता जब हृदयसन्म के साथ चलने की हुई तो उसकी उस समय की बेस-भूपा का उसकी और हृदयसन्म की बातचीत में ही संक्षिप्त मिलता है

"हृदयसन्म की भाषाक मुनते ही सुनीता उठ लड़ी हुई।

भोली 'बन्नु ? मण्ठा चलती हुई।

हृदयसन्म ने कहा, 'भाभी ऐसे जलोपी। कपड़े लो बदल लो।

भाभी ने पूछा 'ऐसे नहीं बन्नु ? कपड़े बदल लूँ ?

हृदयसन्म ने कुछ विरिमत स्वर में कहा, 'ऐसे कपड़े पहन कर क्यों जलोपी भाभी, जो रोज के पहनने के हैं। भाव का दिन और दिन है। वह धपने में चलत है। वह हर दिन जीता नहीं है। पाज के इस दिन को ताबा रस मत बनाओ, भाभी। इसलिये और बस्य पहनो। भाभी, वह पहना जो धपे से धपे हो।

रैसमी ?

'हाँ कम से कम रैसमी।

सुनीता ने घामत भाव से कहा 'धपड़ी बात है।'

कुछ देर बाद सुनीता जब उसके सामने आई, तब वह बेल कर एकदम बग रह गया "क्या उसने बल्पना में भी वह रूप पाया है, जो धम सामने है ? बस्य क्या ध्यवित में इतनी प्रसा जान लचते हैं ? सुनीता की इस धुति को देखकर वह मन में सहमा-सा रह गया।" * यहाँ सेवक केवल ध्यवना द्वारा पाठक के मन में सुनीता की सुन्दर धुति समार देता है। सुनीता उस समय क्या कुछ पहने हुई की इसका पाठक को कुछ पता नहीं चलता। पर उत के लम्हाटे में सुनीता जब एक-एक करके

* ११ वही पृष्ठ १४।

* १२ वही पृष्ठ १७।

* १३ वही पृष्ठ १७।

अपने सभी वस्त्र हृत्प्रसन्न के सामने उतार कर फेंकती जाती है, उस पाठक बेसता है कि वह उस रात साड़ी पहने थी। उस साड़ी के नीचे जम्पर या धीर उस जम्पर के नीचे थी बाड़ी।^{१५}

इसी प्रकार, प्रथम भेंट में ही जब क्रान्तिकारी साल 'एक हाथ से ठोड़ी से मुझदा का चेहरा ऊपर उठा कर कहता है 'यु धार पीयसी सेव्य सुखदा'^{१६} तो पाठक पर भी मुझदा की तत्कालीन छवि की चाक बँठ जाती है, पर वह यह समझ नहीं पाता कि आज मुझदा में ऐसी क्या विशेष बात है। पहले तो कोई क्रान्तिकारी उस पर इस प्रकार मुग्ध न हुआ था। उस पर यह भेद सभी कुसता है जब वह मुझदा को अपने घर शंख के घाने काड़ी बेसता है और वह यह स्वीकार कर लेती है कि उस दिन हरिदा की ओर बाते हुए उसने हुस्का-सा 'मेक अप' किया था।^{१७}

सफल एकापी चित्रण

इतना ही नहीं जैनश्रद्धा तो एक कवम धीर घाये बढ़कर अपने उपन्यास के 'टेनीविजम' में पात्रों के उन्हीं घयोपायों को दिखाते हैं जो पाठकों के मन में वे भाव जगार सकने के लिए पर्याप्त हों जिन्हें वे जाग्रत करना चाहते हैं। उपन्यास-जगत् में तो और पाठक को सेलक पर ही निर्भर करना पड़ता है पात्रों का पुरा धारमकर बिज बेसता चाहने पर भी वह नहीं बेस पाता और उसे उतना ही ग्रहण करके रह जाना पड़ता है जितने पर सेलक अपना कैमरा 'फोकस' करता है। पर वस्तु-जगत् में भी घामने के व्यक्ति के अंग प्रत्यय को देखने की सुविधा रहने पर भी बहुधा हम उसे सिर से पैर तक नहीं बेस पाते हैं। समय की कमी या आन्तरिक इकड़झाहट के कारण, या फिर अधीक्ष्य की दृष्टि से कुछ एक अंगों पर ही हम अपनी दृष्टि टिकाये रहते हैं। यही बात अधीग्यासिक पात्रों के लिए भी स्वाभाविक हो सकती है। 'सुनीता' ॥ हृत्प्रसन्न को ही लें। एक तो वह श्रीकान्त के घर में पहली बार आया है और उसे घाये घमी कुछ-एक घटे ही हुए हैं। दूसरे "घरे ठहरना मैं सीमार नहीं हूँ" स्त्री की ऐसी हास्य में तो उसके सामने वह कमी नहीं पड़ पाया। ऐसा हृत्प्रसन्न भोजन पाने के लिए भीघे गर्भन मुकाये चौके में बीठा हो धीर परोखने वाली हो सुनीता— तो क्या उससे आशा रखी जा सकती है कि वह उस "अगिन्त घीबना"^{१८} की छवि धीरों में भर सकेगा। "जरा वाली घाये कीबिए" सुनीता की आवाज को सुनकर सहसा जगिज-सा होकर उसने सामने को देखा तो पाया कि 'एक बाह, पोरी-मोरी

१५ कवि, पृष्ठ १८१।

१६ जैनप्र 'सुखदा' पृष्ठ १२।

१७ जैनप्र 'सुखदा' पृष्ठ १६।

१८ जैनप्र 'सुनीता' पृष्ठ १।

कोने में टिका है। भीषी गिराहू बसते हुए हरिप्रसन्न की टाँग में जब कुर्सी लगी थीर वह उस पर बैठ गया तब इसने में सुनीता ने "बोली की चैट बोस भी थीर सिर पर पम्पा से भिया।"^{३४} सुनीता के इस बदनाम बेग की बसती-फिस्म दिखाकर मजकूर मानो उसकी मनोमोहकी दिखा रहा हो—कैसे उस की निश्चिन्तता भीरे-भीरे हड़बड़ाहट में बदलती गई।

संक्षिप्त चित्रण

जैनेन्द्रजी के उपन्यासों में ऐसे स्थल भी मिल जाते हैं जहाँ क किसी समय विरोध की पात्र की साहसि-वेधभूषा का चित्रण एक साथ न करके उसे संक्षिप्त शैली में दूर-दूर तक बिखेर देते हैं। ऐसे किसी एक स्थल पर का वर्णन कबल मधुरी भोंकी ही होता है। उन स्थलों की मिलाकर ही भोंकी पूरी हो पाती है। उस मणि स्मरणीय दृष्टि में सुनीता जब हरिप्रसन्न के साथ बसने को हुई तो उसकी उस समय की वेध-भूषा का उसकी भीर हरिप्रसन्न की बागचीत में ही संक्षिप्त मिलता है

"हरिप्रसन्न की आवाज सुनते ही सुनीता उठ खड़ी हुई।

बोली "बसू" ? पम्पा बसती हुई।"

हरिप्रसन्न ने कहा "भाभी ऐसे बसोपी। कपड़े लो बदल लो।

भाभी ने पुछा "ऐसे नहीं बसू" ? कपड़े बदल लू" ?

हरिप्रसन्न ने कुछ विस्मित स्वर में कहा, "ऐसे कपड़े पहन कर क्यों बसोपी भाभी जो रोज के पहनने के हैं। आज का दिन भीर तिन है। वह अपने में बसण है। वह हर दिन जीता नहीं है। आज के इस दिन को साया-रस मय बनाओ भाभी। इसलिए भीर बसण पहनो। भाभी वह पहनो जो बसने से बसने हों।

रेडमी ?

"हाँ कम से कम रेडमी।"

सुनीता ने शांत भाव से कहा, "बसती बात है।"

कुछ देर बाद सुनीता जब उसके सामने आई, तब वह देख कर एकदम बप रह गया "क्या उसने बसना में भी वह कम पाया है, जो धन सामने है ? बसण क्या स्थिति में इतनी प्रथा जास सकते हैं ? सुनीता की इस कृति को देखकर वह मन में सहना-सा रह गया।^{३५} यही लेखक केवल व्यंग्यन द्वारा पाठक के मन में सुनीता की मुन्दर कृति उभार देता है। सुनीता उस समय क्या कुछ पहने हुई थी इसका पाठक को कुछ पता नहीं चलता। पर राज के सम्पाठे में सुनीता जब एक-एक करके

३४ वही, पृष्ठ २४।

३५ जैनेन्द्र, 'दुर्लभ' पृष्ठ २७०।

३६ वही, पृष्ठ २७१।

अपने सभी वस्त्र हरिप्रसन्न के सामने उतार कर फेंकती जाती है, तब पाठक देखता है कि वह उस रात साड़ी पहने थी। उस साड़ी के नीचे जम्पर का धीरे उस जम्पर के नीचे थी बाड़ी।^{४१}

इसी प्रकार, प्रथम श्रेष्ठ में ही जब कान्तिकारी सात 'एक हाथ से ठोड़ी से सुखवा का चेहरा जम्पर उठा कर कहता है, 'यू धार रीयसी ऐम्ब सुखवा'^{४२} तो पाठक पर भी सुखवा की तत्कालीन छवि की याद बैठ जाती है, पर वह यह समझ नहीं पाता कि आज सुखवा में ऐसी क्या विशेष बात है। पहले तो कोई कान्तिकारी उस पर इस प्रकार मुग्ध न हुआ था। उस पर यह भेद अभी जुलुसा है जब वह सुखवा को अपने घर दरवाजे के धागे लट्ठी देखता है और वह यह स्वीकार कर लेती है कि उस दिन हरिबा की ओर जाते हुए उसने हल्का-सा 'मेक अप' किया था।^{४३}

सफल दुर्भावो चित्रण

इतना ही नहीं जैनप्रवासी तो एक कदम और आगे बढ़कर अपने उपन्यास के 'टेसीचित्रण' में पात्रों के उम्मीं अंगोपात्रों को दिखाते हैं, जो पाठकों के मन में वे आश्चर्य उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त हैं जिन्हें वे जाग्रत करना चाहते हैं। उपन्यास-अंगत् में तो 'और पाठक' को लेखक पर ही निर्भर करना पड़ता है। पात्रों का पूरा आश्रय बिना देखना चाहने पर भी वह नहीं देख पाता और उसे उतना ही ग्रहण करके रह जाना पड़ता है जितने पर लेखक अपना 'कैमरा फोकस' करता है। पर बस्तु-अंगत् में भी सामने के व्यक्ति के अंग प्रत्यंग का देखने की मुक्तिवा रहने पर भी बहुधा हम उसे सिर से पैर तक नहीं देख पाते हैं। समय की कमी या आन्तरिक हड़बड़ाहट के कारण या फिर औचित्य की दृष्टि से कुछ एक क्षणों पर ही हम अपनी दृष्टि टिकाने रहते हैं। यही बात औपन्यासिक पात्रों के लिए भी स्वाभाविक हो सकती है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न को ही लें। एक तो वह धीकान्त के घर में पहली बार आया है और उसे भावे अपनी कुछ-एक गल्टे ही हुए हैं। दूसरे "घरे ठहरना मैं तैयार नहीं हूँ" स्त्री की ऐसी हासत में तो उसके सामने वह कभी नहीं पड़ पाया। ऐसा हरिप्रसन्न भोजन पाने के लिए नीचे यवन झुकाये चौके में बैठा हो और परोसने वाली हो सुनीता— तो क्या उससे आधा रची जा सकती है कि वह उस 'अभिन्व मीठना'^{४४} की छवि धौलों में भर सकेया। "जरा वाली भावे कीजिए" सुनीता की आवाज को सुनकर सहसा सम्मिल-सा होकर उसने सामने को देखा तो पाया कि 'एक बाहु, मोटी-मोटी

४१ वही, पृष्ठ १८७।

४२ जैनप्र, 'सुखवा' पृष्ठ १२।

४३ जैनप्र, 'सुखवा' पृष्ठ १२।

४४ जैनप्र, 'सुनीता' पृष्ठ १।

बाहू धेर से एक कटोरी बाने ठहरी है।”^{४१} तभी पाठक को भी याद हुआ कि सुनीता की बाहूँ पोरी-पोरी थीं। हरिप्रसन्न को जब पता लगा कि श्रीकान्त के यहाँ कोई नौकर नहीं और सुनीता को ही सब काम अपने हाथ से करना पड़ता है तो वह एकदम बर्ब हो गया — पत्नी बारी नहीं है।”^{४२} तभी उसकी गम्भीर मुद्रा और बहस करने में उत्पन्न वेग श्रीकान्त ने कहा कि “यह धिक्कामत तो तुम उन्हीं से करता” पर “अब यह गले से कुपट्टा उतारो” बर्ब न रहो और ठीक से बैठो।”^{४३} तभी पाठक हरिप्रसन्न के मन में अभी तक पड़ा कुपट्टा देख पाता है पर इसके प्रति रिक्त और कुछ नहीं। सिनेमा जाने के लिए तैयारी करते समय सुनीता ने ‘बानी रेसमी साड़ी पहनी और वह बर्बण के सामने गई। बर्बण में से उसकी झलक मिल सकती थी—“उसने जोटी ठीक कर ली भागे पर बिन्ती बैठा ली और बेहरे को एक निबाह ठीक देख कर पास कर लिया।”^{४४} आश्चर्य में आकर पूरी छत्तार से कार बसाती हुई ‘विबर्स’ की नायिका मुबनमोहिनी के ‘भागे के जाने से और बर्बन के पीछे घटकती सहाराती उसकी बिरकती बटों और कानों पर से रू रू कर फरफराहट से फहराती उसकी साड़ी की पल्लों^{४५} गया उसे मोहिनी बमाने में पर्याप्त नहीं। ‘व्यतीत’ का नामक जयन्त जन्मी के साथ टैंकी में न जाने कहाँ-कहाँ घूमता रहा। जहाँ भी वे पहुँचते वे हो ही रहते। रोप सब सौग सब चीजें जैसे उन्हें वृक्ष बन जाते। अनुसूचि का एक सण जो जयन्त के लिए अमर बनकर भिकासजयी हो गया वह यह था कि— ‘जन्मी की उ गमियाँ मेरे (जयन्त के) हाथों में थीं— बारीक-बारीक वे उ बसियाँ।”^{४६} जब नायिका की पसली-पठली उ पसियाँ ही नायक की अनुसूचि को अमरता प्रदान करने के लिए पर्याप्त हों तो उसे नायिका के अग्र्य अंग-अस्त्रों को देखने तक की भी पूर्वत कहाँ होगी।

इंग्रैसचरित्र

कई बार हम किसी को देखते हुए भी नहीं देख पाते। व्यक्ति हमारे सामने है हम उसे देख भी रहे होते हैं पर मन न जाने कहाँ होता है कि पूरी तरह देख नहीं पाते पर जो कुछ भी देख पाते हैं, उसमें क्या उस व्यक्ति की झलक के प्रति रिक्त हमारी अपनी भग-स्थिति प्रतिबिम्बित नहीं होती। सुनीता जब बर्बण के सामने बेहरे को सही करके लौटी तो अज्ञानक हरिप्रसन्न से उसका सामना हुआ। हरिप्रसन्न

४१ बेनेट, ‘सुनीता’ पृष्ठ ११।

४२ वही पृष्ठ ११।

४३ वही, पृष्ठ ११।

४४ बेनेट, ‘सुनीता’ पृष्ठ ४४।

४५ बेनेट, ‘विबर्स’ पृष्ठ १।

४६ बेनेट, ‘बनीत’, पृष्ठ ७८।

पर उसकी छवि का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह मंत्रमुग्ध रह गया। 'उस समय रेसमी साड़ी की पानी घामा ॥ कापती हुई झमझम झमझम उसकी आँखों में रह गई थीर उसके कानों में साड़ी की तरल पलों को छूकर जाती हुई समीर की सरसपाहट भरने लगी।' १९ न चोटी दीखी थीर न माये पर की बिम्बी। हरीश बाबा के मकान पर जिस स्थिति में सुखदा की भेंट काठिकारी भाल से हुई थी उसमें असमंजस ॥ पड़ी वह चढ़ती निपाह से यही देखा सही कि छिर से पैर तक 'यूरोपियन सिबास' में एक भरे पूरे धारीर का स्वरूपभान पुरुष २० उसके सामने खड़ा है। स्थिति सुमझने से पहले वह इससे अधिक न देख सकी थी। अपनी घबेरी कोठरी में मिलने आई अनिता को मौतेते समय 'अटीठ' का नामक अवत उसे झगझम लेकर दहलीज के बाहर छोड़ दिया थीर स्वयं दरवाजे में से उसे आते हुए देखता रहा। पर वह जो देख सका वह केवल पड़ी का 'नहीं वह फूटी नहीं। मुँह को हाथों में नहीं लिया। सीधी चाम से छिर ऊँचा किए चलती चली गई।' २१ मौटली हुई अनिता के किसी संग या वस्त्र विशेष पर अवलोक की दृष्टि नहीं टिकी। वह उस समूची को ही आँखों में भरता रहा थीर वह अनिता उसे कभी भुल न पाई। इस प्रकार के स्वप्नों पर लेखक 'छोटो प्राणिक' वीसी की शारीकियों में न पड़ कर इंग्रैडनियम' को ही अपनाता है।

अनुभाव चित्रण

किसी स्थिति में पड़ते ही व्यक्ति की प्रतिक्रिया एकदम प्रकट नहीं हो आया करती। क्यों-क्यों थीर विच-त्रिस रूप में वह उससे प्रभावित होता जाता ॥ क्यों-क्यों थीर उसी रूप में उसकी मनोवस्था भी बदलती जाती है। स्थिति में पड़ जाने के पश्चात् थीर प्रतिक्रियात्मक विस्फोट होने से पहले व्यक्ति के अंग प्रत्यंगों में जो सूक्ष्मातिमूढम परिवर्तन होते हैं उनमें व्यक्ति की बदलती हुई मन स्थिति प्रति बिम्बित हो चढ़ती है। २२ व्यक्ति को समझने के लिए इन बाह्य धारीरिक परिवर्तनों पर ध्यान रखना उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना उसकी प्रतिक्रिया को जानना।

धोपन्थासिक पात्रों पर भी यह बात समान रूप से लागू होती है—जैनेन्द्र जी के पात्रों पर तो विशेष रूप से क्योंकि उनके पात्र हम और आपसी तरह डेढ़ डेढ़ दो-दो मन के नहीं। वे हम से कम मांसल और अधिक मानसिक हैं। २३ उनके

१९ जैनेन्द्र 'सुखदा' पृष्ठ ४९।

२० जैनेन्द्र 'सुखदा' पृष्ठ १९।

२१ जैनेन्द्र 'अनीत' पृष्ठ १८।

२२ Stagner 'Psychology of Personality' p. 239

Allport 'Personality: A Psychological Interpretation' p. 4२५.

२३ जैनेन्द्र कुमार, 'अन्यथा में आत्मविज्ञान' दीपा शिम्बर १९४९।

बाह, बैर से एक कटोरी घामे ठहरी है।”^{४९} तभी पाठक को भी ज्ञात हुआ कि सुनीता की बाहें गोरी-गोरी थीं। हरिप्रसन्न को जब पता लगा कि भीकान्त के यहाँ कोई भीकर नहीं घीर सुनीता को ही सब काम अपने हाथ से करना पड़ता है तो वह एकबल गर्म हो गया। “—पत्नी वाली नहीं है।”^{५०} तभी उसकी गम्भीर मुद्रा और बहस करने में उत्पन्न वेद भीकान्त ने कहा कि “यह भिकायत तो तुम उन्हीं से करना” पर “जब यह गले से बुपट्टा उतारो” गर्म न रहो और ठीक से बैठो।”^{५१} तभी पाठक हरिप्रसन्न के मन में अभी तक पड़ा बुपट्टा देख पाता है, पर इसके प्रति रिक्त और कुछ नहीं। चिन्ता जाने के लिए तैयारी करते समय सुनीता ने ‘भानी रेघमी साड़ी पहनी और वह बर्पण के सामने गई। बर्पण में से उसकी भ्रमक मिस सकती थी—“उसने चोगी ठीक कर ली भाबे पर बिम्बी बैठा भी और बेहरे को एक निवाह ठीक देख कर पास कर लिया।”^{५२} घाबेघ में धाकर पूरी रखार से कार बसायी हुई बिबर्त की नायिका भुवनमोहिनी के माथे के घाबे से और गर्दन के पीछे लटकती लहपट्टी उसकी बिरकटी लटें और कन्धे पर से रह रह कर फरफराहट से फहराती उसकी साड़ी की पल्लें^{५३} क्या उसे मोहिनी बनाने में पर्याप्त नहीं। ‘व्यतीत का नायक जयन्त चन्नी के साथ टैक्सी में न जाने कहाँ-कहाँ जूमता रहा। जहाँ भी वे पहुँचते थे वो ही रहते। रोप सब लोग सब चीजें जैसे उन्हें बुरा बन जाते। अनुसूति का एक क्षण भी जयन्त के लिए धमर बनकर बिकाजबसी हो गया वह यह था कि—“चन्नी की उमलियाँ मेरे (जयन्त के) हाथों में थीं” बायीं-बायीं वे उमलियाँ।^{५४} जब नायिका की पलसी-पलसी उमलियाँ ही नायक की अनुसूति को धमरता प्रदान करने के लिए पर्याप्त हों तो उसे नायिका के अन्य अंग-अस्त्रियों का देखने तक की भी पुसंत नहीं होगी।

हर्म्यसन्निध

कई बार हम किसी को देखते हुए भी नहीं देख पाते। व्यक्ति हमारे सामने है, हम उसे देख भी रहे होते हैं पर मन न जाने कहाँ होता है कि पूरी तरह देख नहीं पाते पर वो कुछ भी देख पाते हैं, उसमें क्या उस व्यक्ति की भ्रमक के प्रति रिक्त हमारी अपनी मनःस्थिति प्रतिबिम्बित नहीं होती। सुनीता जब बर्पण के सामने बेहरे को सही करके सोटी तो अचानक हरिप्रसन्न से उसका सामना हुआ। हरिप्रसन्न

४९ बेनेज, ‘सुनीता’ पृष्ठ ११।

४९. वही, पृष्ठ ११।

५० वही, पृष्ठ ११।

५१ बेनेज, ‘सुनीता’ पृष्ठ ४४।

५२ बेनेज, ‘सुनीता’ पृष्ठ १।

५३ बेनेज, ‘सुनीता’, पृष्ठ ७५।

पर उसकी छवि का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह मंत्रमुग्ध रह गया। "उस समय रेशमी छाड़ी की बानी धामा ही कांपती हुई भ्रमभ्रम-भ्रमभ्रम उसकी छाँवों में रह गई थी। उसके कानों में छाड़ी की तरस पलों को छुकर जाती हुई समीर की सरसपहट भरने लगी।" ११ न थोटी दीखी और न माथे पर की बिम्बी। हरीश बाबा के भक्तान पर जिस स्थिति में गुलबारा की भेंट प्रतिक्रिया नाम से हुई थी उसमें भ्रमभ्रम में पड़ी वह छड़ती निपाह से यही देख सकी कि सिर से धीरे तक यूरोपियन सिबास' में एक भदे पूरे सरीर का स्वव्यपमान पुरुष^{१२} उसके सामने खड़ा है। स्थिति गुलबारा से पहले वह इससे अधिक न देख सकी थी। अपनी धिंधी कोठरी में भिजने आई अनिता को सीटले समय 'व्यतीत' का नायक जबत उसे ऊपरम लेकर वहनीक के बाहर छोड़ आया और स्वयं दरवाजे में से उसे आते हुए देखता रहा। पर वह जो देख सका वह केवल यही था नहीं वह फूटी नहीं। मुँह को हाथों में नहीं लिया। सीधी बात से सिर ऊँचा किए जमती जमी गई।^{१३} सीटली हुई अनिता के किसी प्रय या वस्त्र विशेष पर जगत की दृष्टि नहीं टिकी। वह उस समूची को ही छाँवों में भरता रहा और वह अनिता उसे कभी मूल न पाई। इस प्रकार के स्मरणों पर लेखक 'फोटो ग्राफिक' रीति की दारीकियों में न पड़ कर इम्प्रेशनिसम' को ही अपनाता है।

अनुभाव-चित्रण

किसी स्थिति में पड़ते ही व्यक्ति की प्रतिक्रिया एकदम प्रकट नहीं हो आया करती। क्यों-क्यों और जिस-जिस रूप में वह उससे प्रभावित होता जाता है। क्यों-क्यों और उसी रूप में उसकी मनोरथा भी बदलती जाती है। स्थिति में पड़ जाने के पश्चात् और प्रतिक्रियारमक बिस्कोट होने से पहले व्यक्ति के भ्रम-भ्रमों में जो सूक्ष्मातिशय परिवर्तन होते हैं उनमें व्यक्ति की बदलती हुई मन-स्थिति प्रति बिम्बित हो उठती है।^{१४} व्यक्ति को समझने के लिए हम बाह्य शारीरिक परिवर्तनों पर ध्यान रखना उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना उसकी प्रतिक्रिया को जानना।

औपन्यासिक पात्रों पर भी यह बात समान रूप से लागू होती है—जैनेन्द्र जी के पात्रों पर जो विशेष रूप से क्योंकि उनके पात्र हम और पात्रकी तरह डेढ़ डेढ़ दो दो मन के नहीं। वे हम से कम भासस और अधिक मानसिक हैं।^{१५} उनके

११ जैनेन्द्र 'सुनीता' पृष्ठ ४१।

१२ जैनेन्द्र, 'सुनीता' पृष्ठ ११।

१३ जैनेन्द्र, 'सुनीता' पृष्ठ १५।

१४ Stagner 'Psychology of Personality' p. 220

Allport, 'Personality: A Psychological Interpretation' p. 42.

१५ जैनेन्द्र कुमार, 'अन्यथा में वास्तविकता' 'वीणा' दिसम्बर १९४१।

अधिकोश पात्र बहिर्मुख न होकर अंतर्मुख हैं और यही कारण है कि वीनेत्र भी के उपन्यासों तक पहुँचने पर हिन्दी-उपन्यास के पाठक को पहली बार ऐसा भगता है कि उसका पाला ऐसे पात्रों से पड़ रहा है जो अपने अंतस्तम में कहीं गहरे बहुत कुछ छिपाये हुए हैं पर उसे पाने के लिए उसे उन पात्रों के नहीं अपने मन की गहराइयों की मापना होगा। यहाँ आकर उसे ऐसा लगता है कि वह जमा तो वा पात्रों को परखने, पर परखा स्वयं ही जा रहा है। वीनेत्रजी के पात्रों के अन्दर ही अन्दर खिचड़ी पकती रहती है। उनमें प्रतिक्रियात्मक उबास तो बहुत ही कम आता है। उनके मन में बटनाएँ बटित होती हैं और मन में ही उनकी प्रतिक्रिया होकर रह जाती है बाहर उसकी भाष तक भी नहीं आती। तो भी यदा कदा आंतरिक भाव और मार कर उनके अंगप्रत्ययों में एक रेखा खींच बाते हैं जो एकाक्षर साध से अधिक नहीं टिक पाती। यदि उस साध यह रेखा पकड़ में आ गई तो पात्रों की मनःस्थिति का कुछ अनुमान लग गया, नहीं तो उनकी स्वल्पमयता उन्हीं में समा गई। इसलिये इनके पात्रों को समझने में उनके अनुमात्रों का अभ्यसन काफी सहायता देता है।

तात्त्विक मनोवशा का चित्रण

'सुनीता' का हरिप्रसन्न सत्या को पढ़ाने का जिम्मा लेने से कटपटा था। वह विचार में डूबा बैठा था कि सत्या चुपचाप उसके पास आ गई और बंधे हुए स्वर में बोली—'मुझे जीजी ने मेरा है—पढ़ने के लिए मेरा है। सुनकर हरिप्रसन्न इसका घबराया कि 'बस्ती-बस्ती हाथ की उँवभियाँ आपस में मलने लगा।^{१०} जिस रात सुनीता को हरिप्रसन्न के साथ आना था उस रात सत्या उसके पास भी जब किसी बहाने भी वह उसे न दास सकी तो उसे कहना पड़ा कि लालू सिनेमा देखने नहीं और कहीं जा रही है। तब ज्यों ही सत्या ने सहानुभूतिपूर्ण उच्छ्वास में पूछा—'जीजी कहाँ जा रही हो' 'सुनीता की आँखों में एक-एक मोटी बग आया।^{११} और उसने कहा—सत्या मेरी बहन तु रहने दे। मैं क्या बताऊँ कि कहाँ जा रही हूँ। सुनीता के इन शब्दों से अधिक उसकी निवर्णता का हास उसके आँसू बताते हैं।

इसी प्रकार उस रात जब भीकांत घर पहुँचा तो उसने देखा कि बीने में बाहर बड़ा तासा पड़ा है। उसकी सभल में कुछ नहीं आया। एक-दो मिनट वह वहीं खड़ा रहा फिर 'दाँव हाथ से छिर को जुबसाता हुआ^{१२} लौट पड़ा माना उसके छिर पर जोर से चोट पड़ी हो और वह उस चोट के स्वस को जुबसा रहा हो। भीकांत के इस प्रकार दाँव हाथ से छिर को जुबसाने की धोर यदि ध्यान न रहे तो सुनीता

१० वीनेत्र, 'सुनीता' पृष्ठ १५।

११ वही पृष्ठ १५१।

१२ वही पृष्ठ १७०।

और हरिप्रसन्न के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रति उसकी अनुभूति उपन्यास भर में और कहीं भी नहीं मिल सकेगी। कस्पाखी ने बकील साहब के घर आकर भी जब अपने घरने की बात बड़ी तो उन्होंने कहा कि वह इस तरह की बात सुनना नहीं चाहते। तब कस्पाखी का चेहरा फिर गया और वह बीमे से बोली—'भाप मेरा विश्वास नहीं करते। अच्छा— यह 'अच्छा' उसने अपने सम्बन्धित भाष से कहा कि बकील साहब उसके लिए तैयार नहीं थे।^१ और इस सम्बन्ध में ॥ मानो उसकी व्यथा को बोझ बहुत भार्य मिला। 'व्यथित' के भाषक अर्थात् ने जब बीमारी कपिता के काम-काजी साधारण और अनसंजुत हाथों को अपने होठों से छुमा कर कहा—'तुम्हारे आधीन आई' तब वह न जाने कौसी क्षण अनुभूति से भर गई कि 'उसकी बरोनियाँ फैन आई' देह जैसे कंटकित हो उठी हो। साधारणता चेहरे पर से मुप्त हो गई और वहाँ विषमता आ गयी।^२ अतः भर ही वह इस भाव में विमोह होकर और कुछ भीतर यहाँ से वहाँ तक उस पर डर लिख गया। कहीं वह पहला अणु क्षण में निकल आए तो कपिता के चेहरे पर अथ की रेखा ही सीखेगी और अर्थात् के प्रति उसकी भावना को समझ सकना कठिन हो जाएगा।

इसी प्रकार, सिनेमा हॉल में बैठे-बैठे राना और मीरा के चरित्र पर हो रही चर्चा के बीच जब सुनीता ने मीरा का पक्ष लेकर कहा—'मैं तो राना के साथ ही सकती हूँ। पर मीरा के साथ भी मुझे इजाजत दे दो कि मैं राना चाहूँ— तो मीरा के सुनीता के हाथ को अपने हाथ में लेकर आवाज में कहा—'सुनीता। तभी सुनीता ने तमा मोग ली। मीरा के फिर इतना ही कहा—सुनीता। और बीमे से अपनी मोह में से उठाकर उसका हाथ उसी की मोह में रख दिया।^३ मीरा के हाथ सुनीता के हाथ को अपने हाथ में लेने और फिर उसे उसी की मोह में रख देने में उसके उत्कामीन मनोभाव अभिव्यक्ति पा जाते हैं। तब उसने के बाद 'विबर्ट' का काविकारी जितने जब भुवनमोहिनी के वहाँ आ गया तो अलवार पड़ते-पड़ते उसके मन में जो अलसता मची उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वह 'ओर-ओर से सिगरेट के कण खींचता हुआ कमरे में टहलने लगा— और अलसता के पीछे के सामने आकर अपने को पूरी तरह देखने लगा।^४ अथवा इसी तरह के अनुभाव त्यागपत्र में मृणाल का पत्र पाकर सुनीता के आई^५ तथा मुखरा से प्रथम मेट के समय काविकारी साम^६ के प्रकट हुए।

१० मैनेज़ 'कस्पाखी' पृष्ठ ४२।

११ मैनेज़, 'कली' पृष्ठ १२९।

१२ मैनेज़, 'सुनीता' पृष्ठ १९।

१३ मैनेज़, 'विबर्ट' पृष्ठ २३।

१४ मैनेज़ 'त्यागपत्र' पृष्ठ २६।

१५ मैनेज़, 'मुखरा' पृष्ठ २६।

मुक्त-इंगित (केविलस एन्ट्रेप्रैन्स)

ऐसे बचसुर बहुत ही कम पाते हैं—जब जैनेन्द्र जी के शीपन्यासिक पात्रों के मनोवेग उनके हृदय के आसामुखी को छोड़कर बगल के साथ निरुत्स पड़ें। ऐसा तभी हो पाता है जबकि पात्रों के भरसक रोकने पर भी उनके मनोवेग बरबस उमड़ पड़ते हैं। तो भी पात्र समूचे नहीं उबल पड़ते, बल्कि धीम्र ही वे प्रकटित हो जाते हैं। उनमें प्रतिक्रियात्मक विस्फोट तो क्षण भर के लिए होता है पर उसको नियंत्रण में लाने के लिए पात्र को जो जोर लगाया जाता है, वह कुछ क्षण के लिए उसके चेहरे पर भावपूर्ण संतर्पण की छाया छोड़ जाता है जिसे देखने से पात्र के भीतर का बोझ-बहुत हाथ छूट हो जाता है। बकीर साहब से कल्याणी के पति डा० बसराजी जब कल्याणी द्वारा अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके पूजा पाठ में मने रहने की बात बड़-बड़ कर करते रहे तो पहले तो वह सब सुनती रही निगाह को मेज पर उठी तरह एक-एक बट्टी बचल भाव से बीठी रही। पर जब वह बल नहीं हुए तो कल्याणी एकदम फूट पड़ी—“बस हुमा। अब आप चुप रहिये बड़े खोर से ये शर कहकर वह काँप साईं। अपना उल्लूक उससे नहीं समझ सका। क्या चाहते हैं आप? यह कि मैं घर बाँटूँ? कहते-कहते उसके होंठ काँप कर नीचे पड़ गये।”^{११} उन दोनों के लिए यह अप्रत्याशित था पर इससे उन पर जो प्रकट हुमा उससे वे गुम-गुम स्तब्ध भाव से देखते और सुनते रह गए। उसकी बाली कुछ और लीची हो गई और वह पति की ओर देखकर बोली—“तुम साफ-साफ वह क्यों नहीं कह बैठे हो कि तुम क्या चाहते हो? मुझे तिल-गिल करके बसाला चाहते हो—तो वह हो तो रहा है।—अच्छा तो मैं अभी अपनी सब मूर्तियाँ तोड़ देती हूँ” यह कहकर क्यों ही वह झट कर बस पड़ने को हुई कि बकीर साहब ने उसे रोक दिया और “वह सब घर उठे बैसती की बैसती रह गई”^{१२} और फिर सहसा बप से अपनी कुर्सी में गिर गई। कुछ देर धूम्य में निगाह गाढ़े बैसती रही और फिर उन्मुखता के साथ बोली—“मैं क्या” “यह कहते-कहते मुझे हाथों से ठक कर फफक-फफक कर रोने लगी।”^{१३} इस प्रकार के प्रतिक्रियात्मक विस्फोट को देखने पर उसे ही कल्याणी एक बाधित प्रतीत हो पर उसके अनुभाव से विश्वास हो जाता है कि वह बाधित नहीं बिपी हिरणी है, बिप कर ही मानो बाधित बन उठी हो।^{१४}

अंतिकारी मंगलसिंह के प्रति चुनबा की सहायसुति जब एक-दम अपने पति के प्रति भूषा के रूप में फूट पड़ी और वह अपना सगुलन छोड़कर पति को ममा-दुरा कह बीठी तो उसे स्वयं ही अपने से डर लग आया। उसके मन में पति के प्रति ऐसा विद्रोह पैदा हो रहा था कि वह स्वयं उससे सहम गई और गुस्से से फफफती हुई

११ जैनेन्द्र, ‘कल्याणी’ पृष्ठ ४१।

१२ जैनेन्द्र, ‘कल्याणी’ पृष्ठ ४४।

१३ श्री, पृष्ठ ४४।

१४ श्री, पृष्ठ ४४।

कमरे से बाहर निकल गई । * 'अपठित' की चन्नी की लेकर जयल गया तो कस्मीर 'हनीमून' के लिए था पर अंतिम दिन तक भी वह अपने को उसे न सौंप सका बल्कि सीटने से पड़भी रात वह उसे डेरे में छोड़ी छोड़ स्वयं बाहर जावनी में निकल गया । जब वह चुपचाप नीटा तो चन्नी ने उसे धाबाब भी । अंत में उसे धाराचर्य से देखा और कहा कि वह उठ क्यों गई, सो जाए । सुनकर चन्नी ने 'दो-एक क्षण इसे देखा । ईसी नियाह थी । फिर एकाएक निहाल कंबल एक ओर फेंक कर वह खड़ी हो गई — भाँखों में कड़कती बिजली बदन तना जैसे कमान । ** अंत में बीसे से कहा — "चन्नी सही जय जाएगी ।" तभी चन्नी ने बाँठ मिसमिसा कर झटके से तन के तनिक से अन्तिम वस्त्र को भी उतार कर उसके मुह पर जोर से फेंका । वस्त्र को बस्ती से हाथों में रोक अंत में धाये बड़कर चन्नी को हाथों में उठाया और हठात् बिस्तर में डुबका दिया । मया था प्रतिरोध वह करेगी । प्रतिरोध उसने किया भी किन्तु जैसे रहने को नहीं मिलने को वह हुआ था । और फिर बिस्तर में वह शान्त हो गई । ** कामदेव के घर से बिंबी इस मन्त्रिवाहिता के मनोनाम उसकी प्रतिक्रिया में इतने प्रतिबिम्बित नहीं मिल सकते, जितने उसके बेहरे पर मिले मिलेंगे ।

बनाबटी मुद्र-वर्णित

जैनेन्द्र जी के पात्रों को समझना तब और भी कठिन हो जाता है जब वे प्रांतीय भाषाओं को बचाकर बेहरे पर सामाज विपरीत भाव से माने का प्रयत्न करते हैं । फिर भी धाये क्षण के लिए ही सही उसकी भाव बरबस उनके बेहरे पर झटक मार जाता है और यदि उस क्षण उनके बेहरे की ओर ध्यान न रहे तो उनकी समझने में भ्रम होने की सम्भावना रहती है । बकील साहब के घर से सीटने समय मोटर चलाते चलाते कस्यापी हँसकर कह रही थी कि उसकी साठी व्यस्तता एक प्रपंच है । पर जब वह हँसती हुई यह कह रही थी उसकी निपाह में कातरता की झलक सीख भाई थी पर पसक सीटते हठात् सीखाबहु मुस्करा भी रही थी । ** इसी प्रकार, जब बैतहावा हँसते-हँसते भाँखों में झाँक करकर कस्यापी अपनी कहाणी सुना रही थी कि जब वह कुछ दिन यात्रा ही गई तो किस प्रकार उसके पति डा० भटनागर के घर उससे लड़ने जैसे मये से तो कभी-कभी सहसा यह धामास मिल जाता था कि "उसके भीतर हँसी से बाण कुछ और है । " इसी

* जैनेन्द्र, 'कृष्ण' पृष्ठ १०० ।

११ जैनेन्द्र, 'अपठित' पृष्ठ ११९ ।

१२ वही, पृष्ठ ११९ ।

१३ जैनेन्द्र, कस्यापी पृष्ठ १८ ।

१४ वही, पृष्ठ १९ ।

प्रकार, 'विबर्त्त' की नायिका भुवमगोहिनी ने जितेग की ओर से मुसिस अफ्गार बच्चा का ध्यान हटाने के लिए जब उसे अपने यहाँ निर्मज्जित किया तो उसके घाव हुई बातचीत में वह अपने घातकिक भावों को बेहरे पर न प्रकट होने देकर उसके विपरीत भावों का आरोप करती रही। एक बार "बाण के लिए वह भीतर से विचलित" पर संभल गई। दूसरी बार, 'उसके हँसते हुए बेहरे पर तीव्र व्यंग्य का भाव' ^२ बच्चा को डीका। बच्चा घातकिक संवेह के पकड़ा हो जाने पर भी उस भाव को बेहरे पर आने से सफलतापूर्वक बचा गया। ^३ ऐसे स्थलों पर सयता है कि पात्र भीतर से कुछ भीरु हैं। "एक बेहुरा है जिसे छोड़ देने से काम बनने में मदद मिलती है एक रंग जो वास्तविकता को धमका दिया सके। चमक ऊपरी है, भीतर जाने गया है।" ^४

इस प्रकार देखते हैं कि जैनेन्द्र जी के पात्र जो कुछ भी थोड़ा-बहुत समझे जा सकते हैं उसका काफी योगदान पात्रों के बेहरों पर लिख जाने वाली भाव की रेखा को है—वह रेखा मने ही लक्ष्य भर से अधिक न टिके पर वह पात्रों के मन का घेब खोल जाती है। जैनेन्द्र जी के पात्र भी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। छिमसा के स्टेसन पर ट्राम के चलते समय हाथ जोड़े बिना बेटी चन्नी का बेहुरा 'विबर्त्त' के नायक अर्घत के ध्यान से जल्दी नहीं उठता। वह धार्कश्य चन्नी के बेहरे के सौंदर्य का इतना नहीं जा चितला कि उस बेहरे पर लिखी भाव-रेखा का बा। उस समय अर्घत के चर्खों में जैनेन्द्र इस उष्य को भीर स्पष्टता देते हुए लिखते हैं "अमर पर बेहरे सही सुन्दर होते हैं। लेकिन फिर भी कोई भाव रह जाता है। सामय भाव क्षण रहता है। क्षण ही आकृति के सौंदर्य को भाव का सौंदर्य के जाता है। आकृति खरीर के साथ चली जाती है, लेकिन जो खरीर में है नहीं सिर्फ भाव को चरुति के लिए कम में रेखा से उठी है वह सहज ही कैसे चली जा सकती है? वह मन पर छहर जाती है और भोगा मुक्तिम हो जाता है।" ^५

अन्तर्मुख

नियतिबादी पात्र

इन्स पात्रों के भीतर और बाहर दोनों ही हो सकता है—अन्दर जो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में और बाहर दूसरे पात्रों से समाज से या साम्य आदि प्रति मानवी सन्धियों में। वीछा कि हम देख चुके हैं जैनेन्द्र जी के पात्र आसल कम और मानसिक अधिक हैं। भाग में होड़ लेकर अपना पुत्रपार्थ दिखाने की लगन उनमें है

२१ जैनेन्द्र, 'विबर्त्त' १३४-१३५।

२२ वही, पृष्ठ ३२।

२३ जैनेन्द्र, 'अन्तर्मुख' पृष्ठ ३३।

२४ जैनेन्द्र, 'अन्तर्मुख' पृष्ठ ३८।

नहीं। जस्टे वे तो नियतिवादी हैं। स्थिति को उसके यथावस्थ रूप में वे नम्र नम्र किये बिना स्वीकार कर लेते हैं। 'स्वागपन' की मामिला को जब उसके पति ने स्वयं यह कह कर छोड़ दिया कि वह उसका पति नहीं है, तब वह सच्ची पतिव्रता मारी के भाते उस पर अपना भार नहीं डाले रहती। "पति मुझे नहीं देखना चाहते यह जानकर मैंने उनकी धाँसों के धागे से हट जाना स्वीकार कर लिया।" १०४ परब की कटो के धाँसों में पात्र जब यह मान लें कि "घनहोनी घट नहीं सकती होनी टस नहीं सकती। जो हो गया हो गया। उसे मिटाना अब बस से बाहर की बात है" १०५ तो वे बाह्य संघर्ष के प्रति उन्मुख हो कैसे सकते हैं? बेनेट्र भी के सभी पात्र नियति के बहाव में बहते हैं। श्रीकांत की भिड़ती पर सोचती हुई सुनीता भी यही स्वीकार करती है। "मुझे स्वयं कुछ नहीं रहना है नियति के बहाव में बहते ही चलना है, बर्म-अबर्म बिसार देना है।" १०६ सुनीता भी विधि के दुर्लभ १०७ को अपनी धाँसों के सामने देखती है, और मानती है कि "जीवन के सम्बन्ध में हमारा समस्त निर्णय समुद्र के तट पर कौड़ियों से खेलने वाले बालकों के निर्णय की भाँति है।" १०८ "जो व्यक्ति है, वह वही नहीं है। पापी पापी नहीं है पुष्पारमा पुष्पारमा नहीं है। चोर, चोर नहीं है। डाकू डाकू नहीं है तथा बेइया, बेइया नहीं है। सब वे हैं जो उन्हें होना बचा है। यह न मान लिया जाये कि यह कह कर मैं अपने को समा करती हूँ। प्राणय यही है कि किसी के लिए किसी को खोप में ले नहीं पाती। 'बिबर्त्त' की मोहिनी भी जितने को डाँड़स जँबाती हुई कहती है। 'बबरपों नहीं। जो हुआ हो गया। होनाहार कब टसा है।" १०९ 'व्यतीत' का नायक अव्यत भी नायक के हाथों साधारण है। 'एकाएक जब वह छोड़ने का निश्चय कैसे बन गया, क्यों बन कर बिग न सका प्राय भी मैं जानता नहीं हूँ। सिवा इसके कि अभाग्य साथ चलता है और क्या कहूँ।" ११० यही शिक्षायत 'अवर्धन' के पात्रों को है। एक ओर साचार्य कहते हैं 'दंड भी ईश्वर का है अवर्धन बैचारे का नहीं है इसी से मैं उसे अपनाये हुए हूँ ईश्वर से तो सझाई कम नहीं सकती गई।" १११ दूसरी ओर बिस्वर हूस्टन के प्राणपर्य प्रकट करने पर कि क्या अवर्धन नायकवादी हो सकता है अवर्धन कहता है "मैंने कभी नहीं पाया बिस्वर, कि कुछ मेरे पक्ष का है, तिनका तक उसके हिमाएँ हिसता है।" ११२

१०४ बेनेट्र 'स्वागपन' पृष्ठ ६२ 'अव्यतीत'।

१०५ बेनेट्र, 'परब' पृष्ठ १३१।

१०६ बेनेट्र 'उन्मुख' पृष्ठ १४४।

१०७ बेनेट्र, 'सुख' पृष्ठ ६१।

१०८ बेनेट्र 'सुख' पृष्ठ ६५।

१०९ बेनेट्र, 'बिबर्त्त', पृष्ठ २६।

११० बेनेट्र 'व्यतीत' पृष्ठ ४०।

१११ बेनेट्र, 'अवर्धन' पृष्ठ १४।

११२ बेनेट्र, 'अवर्धन' पृष्ठ ११२।

ऐसी स्थिति में अपने बाहर पूरने के लिए, संघर्ष निरत होने के लिए, बौनेन्द्र जी के पार्श्वों को कुछ रहता ही नहीं। बाह्य संघर्ष के कारण होते हुए, भी वे उनके प्रति घाब मूक होते हैं, उदासीन हो जाते हैं।

सामाजिक संघर्ष का प्रभाव

येप रही समाज से संघर्ष की बात। बौनेन्द्र जी के पास समाज में रहते हुए भी उससे कटे हुए से समय बिताई देते हैं। समाज के नाम पर उनका वास्ता पड़ता है पति या पत्नी के किसी मित्र या प्रेमी से। बौनेन्द्र जी की नायिकाओं के प्रेमी और पति एक न होकर समय-समय से पुनः होते हैं। जिनसे उनका प्रेम हो जाता है उनसे बिबाह नहीं हो पाता और जिन से बिबाह हो जाता है उन्हें वे मनसा-बाचा कर्मणा समर्पित नहीं हो पातीं। ऐसी स्थिति में धातुरिक और बाह्य दोनों प्रकार का और संघर्ष उनमें हो सकता था। यदि कोई और पात्र होता तो ऐसी अवस्था जनक स्थिति में या तो अपने जीवन-साथी को मार देता या स्वयं मर जाता, नहीं तो पामचक्राने में डूबर होता।^{८८} पर बौनेन्द्र जी के पार्श्वों के साथ ऐसा कुछ भी नहीं होता। और तो और, इस विषय पर उनके चेतन मन में विशेष संघर्ष भी नहीं छिड़ता क्योंकि वे स्थिति को साधारण मानते हुए उससे मानसिक संतुलन बैठा लेते हैं। वास्तविकता प्रकट होने पर पति छबार हो जाते हैं और 'विबर्त' के नामक नरेश की तरह पत्नी को डाइस बैठाते हुए कहते हैं 'तुम्हें छिपाने की तुम्हारे लिए कोई बात नहीं। प्यार का हक सब को है। तुम्हारा मेरा उसका सब का'^{८९} और उसका मार्ग प्रवस्त करत हुए कहते हैं 'अब मैं तो खीसवी तुम्हारा हूँ तो एक खीसवी भी मुझे प्रतिरिक्त जिनगी में न लौगी।'^{९०} सुनीता को भीकांत ने भी तो अपनी चिट्ठी में यही बात लिखी थी 'सुनीता तुम मुझे जानती हो। जानती हो कि मैं तुमको गलत नहीं समझ सकता। अब तुम से मैं चाहता हूँ कि' मेरे समाज को अपने से तुम बिम्बुस हुए कर देना।^{९१} सुनीता के पति का भी तो उसे यही कहना था 'मेरी प्रेक्षा तुम्हें तनिक भी छबार से छबार करने की नहीं है। तुम को न रहने

^{८८} Andre Tidon, 'Psycho-Analysis and Love' Panna Books Edn., 1949 p. 30 :

"The unnessessful lover may be in extreme cases, a pitiful individual to contemplate.... It may if the adrenal cortex, productive of anger and violence chemicals, has been sufficiently stimulated by suffering, provoke attempts at vengeance, cause hatred, murderous sayings which, if indulged in land the patient in jail, if repressed with difficulty land him in a sanitorium."

^{८९} बौनेन्द्र 'विबर्त' पृष्ठ ११।

९०. पृष्ठ ७१।

९१. 'तुम्हें' पृष्ठ १११।

हेक्टर में क्या पाईया ? तुम को पाईया तो अभी जब तुम तुम हो १९ मे हूँ
यही तुम्हारी विनम्र है । है न सुकशा । भाव तुम से कहवा हूँ कि मुझे अपने में मान
नो । इस तरह की बातों में मेरा ध्यान से विचार मत किया करो । २०

इस प्रकार, जैनेन्द्र की नायिकाएँ पर-पुरुष से प्रेम करने पर भी अपने पतिव्रतों
में बाह्य समया धार्मिक संघर्ष नहीं उठा पातीं । जब पति स्थिति की मनार्थता
को स्वीकार करके सबसे मानसिक संतुलन बिठा दें तो उनमें इन्द्र ही कैसे ?

अचेतन संघर्ष

जैनेन्द्र की की नायिकाओं को भी बाहर संघर्ष के लिए कुछ नहीं रहता ।
लोकापवाद की उन्हें चिन्ता नहीं समाज तो मानो उनके लिए अस्तित्व ही नहीं
रखता । रोप रहे पति के उनके मान में धक्के नहीं प्रत्युत उन्हें प्रोत्साहन ही मिल
रहते हैं । तो फिर इन्द्र किस से हो ? जैनेन्द्र की की नायिकाओं में बाह्य संघर्ष न
रही अतः वह तो है ही । मानसिक यातनाओं के कुण्ड में वे तिम तिम कर जमती
रहती हैं । पर क्यों ? माना कि जिससे उनका प्रेम हो गया वह उनका पति न बन
पाया और जो उनका पति बना उससे उन्हें प्रेम न हो सका । पर जब उनका पति
स्वयं ही उनके और उनके प्रेमी के बीच में से हट कर उनका मार्ग प्रसस्त कर दे
और वह केवल कपनी ही नहीं करनी में भी ला दे तो फिर उनमें अतः न क्यों
हो ? संघर्ष घरा परस्पर विरोधी तत्वों में होता है और वे तत्त्व जिसने अधिक
सघटत और अकाद्य होंगे उतना ही भीषण उनमें इन्द्र युद्ध होगा । पर जो स्त्री
बिना किसी प्रकार के संकोच के विश्वासपूर्वक अपने प्रेमी से कह सकती हो 'मैं
सब कुछ तुम्हारी हूँ और पति की केवल पत्नी २१ वह भी यदि मानसिक यातनाएँ
भोगती रहे और बुल-बुल कर मरती रहे तो क्या क्यों ?

कुछ भी हो सब यह है कि पतिव्रतों से आश्वासन पाकर भी जैनेन्द्र की
नायिकाएँ आनन्द नहीं हो पातीं । पतिव्रत धर्म के परम्परागत दृष्टिकार उनके
अचेतन मन में इतने गहरे बसे हैं कि वे पति के प्रति उदासीन होने के विचार-भाव
से अपने को भीतर ही भीतर अपराधी पाती हैं और अपने को पति से छोड़ कर
एकदम धमन नहीं कर पातीं । हरीश बाबा द्वारा धारोचित अतिकारी दम की बैठक
में भाग लेने के लिए जरूर जसते समय पति को सुकशा से ये शब्द कहे थे 'रुही के
भी इन्ध होता है और वह भी दायित्व रखती है । मैं इस समा में जाऊँगी, तुम रोऊ
नहीं सकते । २२ जिस सुकशा को अपनी गिराविल बुद्धि पर इतना विश्वास था जब
उसी सुकशा को हरीश से कहते पाते हैं 'मैं तो शाप हूँ पर पराधिकारी न बनाने ।

१९ जैनेन्द्र 'सुकशा' पृ० ५२ ।

२० वही पृ० ५२ ।

२१ जैनेन्द्र 'विषय', पृ० २० ।

२२ जैनेन्द्र 'सुकशा' पृ० २२ ।

धीरे धीरे 'उन' से प्रसन्न भी ? ^{११} जो धारण्य होता है। इसी प्रकार प्रभाव जब उससे महिमाओं की एक सभा की सम्पदाता करने की स्वीकृति लेने धार्या तो अपने धाप को वहाँ जाने के लिए निश्चय पाते हुए स्वयं स्वीकृति दे कर प्रथम में उसे धनार्थास ही कह सठती है 'अच्छा उससे पूछ लो' ^{१२} यद्यपि वह जानती है कि पति ने उसे पूरी छुट्टी दे रखी है। मुसलमानों को कुछ दिन रक्त के मकाम में मकसेसी रही उनमें अपने जन्मी संस्कारों के कारण उसे ऐसा लगता रहा मानो वह गरुड़ की वातना मोग रही हो। वहाँ वह सन्ने मन से पति का धाष्टान भी करती रही 'भाव बीबा बिन है, निरन्धय भाव स्वामी धार्यो'। कहीं गए हैं क्यों गए हैं, नहीं जानती' पर उन्हें भाव का जाना ही होया नहीं तो सब कुछ मेरे लिए निपटित वत जायगा। उन्हें धाना है, धाना है धाना है। ^{१३} इसी प्रकार, चित्रण की नायिका मुसलमानी पर जब चित्रण ने धीरे जाना कि वह अपने पति पर उसका मैद न छोले, तब वह जानते हुए भी कि पति को उस पर विश्वास है धीरे उसने उसे स्वतन्त्रता भी दे रखी है। पति के प्रति विश्वासपाठ करने की बात सोचते ही मानो उसे विष्णु शंकर मारने लगते हों। ^{१४}

विशेष-बुद्धि और यौन प्रवृत्ति में द्वन्द्व

बीनेन्द्र जी के पार्यों के विशेषतः उनकी नायिकाओं के अथेयन मन में उनकी विशेष-बुद्धि (कान्तिअंस) तथा यौन (सेक्स) प्रवृत्ति में निरन्तर द्वन्द्व चलता रहता है धीरे वही अजाने में उनके भाव और विचार को प्रभावित करके उनकी विविध क्रिया-प्रतिक्रियाओं को प्रेरित करता रहता है। उनकी नायिकाएँ धरसक बेष्टा करने पर भी अपने पति को समर्पित नहीं हो पाती। उनके अथेयन में कहीं वह भाव बहप संसा रहता है कि स्त्री के भी हृदय होता है धीरे वह भी कुछ धावित्व रखती है। उसके बुद्धि होती है धीरे वह निर्भय भी कर सकती है, वो वह पति की सुनानी क्यों करे। ^१ उनके भीतर की महता उन्हें उकसाती रहती है कि वे बेहो धीरे बिसाए कि वे क्या हो सकती हैं धीरे क्या हैं। ^१ पर वे प्रेमी को भी तो समर्पित नहीं हो पाती भी कबाचित् इसलिए कि उनकी विशेष-बुद्धि उन्हें पति के प्रति विश्वासपाठ करके उन्हें अपनी ही गहरों में धिरने नहीं देती थी। यद्यपि जन्मे मानसिक संघर्ष में उनकी विशेष-बुद्धि ही प्रबल रहती है वो भी अंततःपोषता उनकी यौन प्रवृत्ति उनकी इस विशेष-बुद्धि पर विजय पा जाती है। सुनीपा

११. बीनेन्द्र, 'सुदर' ४ ११।

१२. बीनेन्द्र, ४ २१।

१३. बीनेन्द्र, ४ ११७।

१४. बीनेन्द्र, 'विश्व' ४ ४१।

१. बीनेन्द्र, 'सुदर', ४ ११।

१. बीनेन्द्र, ४ २५।

का हृत्प्रसन्न के प्रति सुखा का अतिकारी भास के प्रति विवर्त की नायिका सुवमयोहिनी का जितेन के प्रति समर्पण तथा 'व्यतीत' की नायिका अनिता का जयंत से रात के उच्छ्वस व्यवहार के लिए समा मांगते हुए कहना—'जयंत, रात की रात नुस जागा । मैं सुभ में न थी । धब सुभ में हूँ । कहती हूँ मैं यह सामने हूँ । मुझ को तुम से सकते हो । समूची को जिस विधि चाहो से सकते हो' १ २—यंत में उनकी विवेक-मुक्ति पर उनकी यौन प्रवृत्ति की विषय घोषणा ही हो है । 'सैन्य' की प्रवृत्ति एक उत्तेजना ने उन्हें अपनी संकीर्णताओं से मुक्त कर दूसरे से मिलने के लिए मजबूर कर दिया । किसी दूसरे की अपेक्षा का स्वीकार कर लेना यह भाव की पराजय है । दूसरे के प्रति समर्पण में यह खुर खुर हो जाता है । १ ३ और यही बंनेन्द्रजी को अभीष्ट भी था । उनका विश्वास है कि 'कोई भी एकाकी नहीं है और किसी का कोई असम स्वत्व नहीं है । १ ४ 'एक से दो होने की अपेक्षा आवश्यकता मनुष्य के भीतर एक व्याप्त है । न कहो विवाह, कहो प्रेम । लेकिन प्राथमी अपने में अपने को पूरा नहीं पाता । दूसरे की अपेक्षा उसे है ही । १ ५

पर बंनेन्द्र जी के पुरव पात्र अपने को यथार्थ पाकर दूसरे की अपेक्षा रखते हुए भी अपने ग्रह में डूबे रहते हैं—न स्वयं किसी को समर्पित हो पाते हैं और न किसी के समर्पण को स्वीकार ही कर पाते हैं । 'सुखीटा का हृत्प्रसन्न गिरता-निरुद्धा एकदम बच जाता है । 'कम्पाणी का प्रीमियर जीवन भर अविवाहित रहता है । 'सुखा के कांत का और विवर्त के नरेश का ग्रहभाव अपनी पत्नी के प्रति उनकी उदारता का रूप धारण कर लेता है । 'व्यतीत' का जयंत भी अपने को अपने में लिए असंतोष मया कभी पूरी तरह बेकर शतम न हो सका । १ ६

मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

इस प्रकार के पात्रों के भीतर मच रहे द्वन्द्व को पकड़ में आना कोई सरल काम नहीं क्योंकि द्वन्द्व उनके चेतन में इतना नहीं असंतोष बिखना कि उनके अचेतन मन

१०२ बंनेन्द्र 'व्यतीत' पृ १३९ ।

१०३ Andre Tichon, 'Psycho-Analysis and Love' p. 48—49

"There is a natural source of conflict between them, for the ego urge is selfish, aiming as it does at the conservation of the individual and its personal up-building while the sex urge whose aim is to assure the continuance of the species, is altruistic. By altruism I mean that one human being must before finding the complete gratification of his sex urge join his body to that of the opposite sex, whose sex urge he helps to gratify the result of that cooperation being the creation of a third human being."

१०४ बंनेन्द्र 'कम्पाणी' पृ ६ ।

१०५ बंनेन्द्र, 'सुखीटा' पृ ५ ।

१०६ बंनेन्द्र, 'व्यतीत', पृ ६९ ।

में। वे पात्र दूसरों के लिए तो पहेली हैं ही। स्वयं अपने लिए भी पहेली बने हुए हैं। करना कुछ चाहते हैं और कर कुछ और बैठते हैं। अंत तक वे नहीं समझ पाते कि वे जो करना चाहते हैं ठीक वही उनके करने से क्यों नहीं हो पाता। वे सबसे क्यों दूर हटते हैं जिसके पास होना चाहते हैं? क्यों उसे पास बुलाते हैं जिससे दूर रहने में उनका मसा है?—स्वभाव के भीतर यह विरोध जाग कर उन्हें यहाँ क्यों पैदा कर दिया गया है कि पास पाते रहें और कुछ भी न कर सकें।^१ * वास्तव में उनके अचेतन में मजबूत इच्छा ही थी। उनकी पकड़ से बाहर है उनके भाव विचार और आचार को प्रभावित करता रहता है और उनमें भावजन्य तनाव पैदा करके परिस्थिति से उनका संतुलन नहीं बैठने देता।^२ * ऐसे पात्र यदि स्वयं भी अपनी भीतरी प्रणिव को समझना चाहें तो न खोज सकेंगे। इन पात्रों को बीरे-बीरे पाठकों पर खोजने के लिए जान पड़ता है। ब्रिगेड की को विशेष आवास करना पड़ा है और उन्होंने जाने या बचाने मनोविश्लेषण के लिए नहीं प्रयासी अपनाई है जिसे मनोविश्लेषक अपनाया करता है। मुक्त आसंग (फ्री एसोसिएशन) बाधकता-विश्लेषण (ऐनेसिसिस ऑफ रेजिस्टेंस) संक्रमण विश्लेषण (ऐनेसिसिस ऑफ ट्रांसफ़ॉर्मेशन) स्वप्न-विश्लेषण आदि। उपन्यास में इन प्रणालियों का प्रयोग यथावत् तो हो नहीं सकता इसलिए वे ब्रिगेड की के उपन्यासों में औपन्यासिक सुविधा के लिए रूपांतरित हो कर प्रयुक्त हुई हैं। इन प्रणालियों के प्रतिरिक्त लेखक ने पात्रों की कल्पना-शक्तियों—कविता गीत लेख आचार चित्र आदि—के माध्यम से भी उन के आंतरिक इच्छा को व्यक्त किया है।^३ * किया है यद्यपि प्रतीकारमकता की पुष्ट प्रतीति दिखाई देती है।

इस प्रबन्ध के पहले अध्याय के (ग) भाग में हम मनोविश्लेषण की विविध प्रक्रियाओं का निरूपण कर आए हैं। यहाँ हम देखेंगे कि ब्रिगेड की ने अपने उपन्यासों में इन प्रणालियों का कहाँ तक और किस रूप में प्रयोग किया है।

मनोविश्लेषण

मुक्त आसंग प्रणाली (फ्री एसोसिएशन मैथड)

‘अवधारण’ में सामोपार्थक्य मुक्त आसंग प्रणाली

ब्रिगेड की के उपन्यासों में ऐसे पात्र तो हैं ही जिनके अचेतन में बहुत कुछ सक्रिय

१ * ब्रिगेड ‘सुखदा’ पृ० ७२।

२ * Rush, ‘Psychology and Life’ p. 527-528:

“The conflict, though unconscious continues to influence the individual's thought, feeling and behaviour and is the cause of his emotional tension and inability to adjust.”

Heffman, ‘Freudianism and the Literary Mind’ p. 93:

“The artist is for Freud a neurotic who seeks and finds in art a ‘substitutive gratification of his thwarted desires.’”

है। रोप रही मनोविश्लेषक की बात। उनके सभी उपन्यासों में एक पात्र तो धरम्य ऐसा मिल जाएगा जो अपने या प्रधान पात्रों के व्यक्तित्व को पकड़ में लाने के लिए सर्वोत्कृष्ट रहता है और उन्हें कुसने में अधिकाधिक सहयोग देता रहता है। 'अमर्षन' का बिस्वर हूस्टन तो स्पष्ट रूप से अपने मनोविश्लेषक होने की कुहाई देता है 'मैं उसके (परिचय के) पास आपका निबन्ध ले आया चाहता हूँ।' ११ 'मुझे आपका कर्मनिबन्ध नहीं चाहिए, वह तो उजागर है ही आया हूँ तो संतर्पण लेने आया हूँ।' ११ 'मैं जीवन का निष्कर्षी हूँ और सभी के नियमों की खोज में हूँ।' १२ अमर्षन और इसा मी उसे इसी रूप में स्वीकार करके अपना सहयोग देते रहते हैं 'मैंने इसा से कहा है कि तुम (हूस्टन) बाहरी नहीं हो सत्य की खोज में हो इसलिए एक तरह से अपने हो—इसा नहीं रोक पीडा न करेगी मेरे पास कुछ छिपा नहीं सब खुला है।' १३ इन दोनों पात्रों और हूस्टन में इस प्रकार का समझौता हो जाने के बाद मनोविश्लेषक हूस्टन का काम कुछ सरल हुआ और वह बीरे-बीरे उन्हें मुक्त आसंग की स्थिति में ले आने लगा। '१२ मार्च—'को हूस्टन ने अपनी चापरी में इसा के बारे में यह लिखा

"मैंने कहा 'ठहरो तुम भूल में हो अथ के लिए तुम धन्य नहीं हो'

बीच में बोली 'नहीं मैं भूल में नहीं हूँ क्योंकि मैं जानती हूँ एक भूल मैंने की थी।

मैं समझ गया उसने मेरी ओर देखा जैसे भीतर तक देख लेता जाहा, फिर जाने किस अवस्था से बोली बोससे समय उसकी आँखें मुझ से डूब गई थीं, माली के बन्द ही हो गई थी बहुत दिनों की बात है, बीस सायब बार्डिस बर्ष पहले की सागर का तट था ११४

इस प्रकार संकेत मिल जाता है कि हूस्टन इसा को मुक्त आसंग की स्थिति में ले आया है और उसका मुक्त आसंग आरम्भ हो गया है, तथा हूस्टन बिना दखल दिए ध्यान से सुन रहा है। लगभग तीन पृष्ठ तक इसा अपने मन में जो में आता रहा बघाती रही। उसके बाद संकेत मिलता है, मुक्त आसंग की समाप्ति का

"उसकी आँखें पुसी' जैसे उसने अब पहचाना कि यह बार्डिस बरस बाद की बात है, कि बात मुझ बिस्वर हूस्टन से हो रही है जैसे जैसे आयास पड़ा इसने बहुत से बर्षों की जो वर्तमान हो आये थे, शायद मैं जो मुझा पार कर जाना था अंत में पार मिमा स्वस्थ बनती सी वह बोली

११ 'जेनेट, 'अमर्षन' पृ० १५।

१११ वही, पृ० २३।

११२ वही, पृ० ४५।

११३ वही, पृ० १०५।

११४ 'जेनेट, 'अमर्षन', पृ० १२८।

“तब से कभी मैंने उन्हें भयस नहीं पाया अपनी ओर से चेष्टा की है, बुष्टता की है, निर्लज्जता की है पर नहीं कुछ नहीं हुआ ‘पूछी हूँ यह प्रश्न है ?’”

मैंने कहा ‘भाप अघात न हों’

सुनकर वह मुस्कराई, न ही उस मुस्कराहट में बचसता थी वह एकदम धिष्ट थी और समय जैसे जो सुनाया वह पद पर बीजा बा, देखकर बर्चन के रूप में ही कह सुनाया गया था यों वह भलग बी यह भलग बा ।^{११६} इसके पश्चात् हूस्टन की शायरी में यह भिन्ना भिन्नता है भानो वह पाठकों के लिए इसा के उस मुक्त आसंग की व्याख्या कर रहा हो

“सुनकर मैं चमका जैसे कड़क कर बिजली की एक कौंध भीतर तक बीर गई । ये सब मर्यादाओं और प्राण प्रतिज्ञाओं के रहते थी जैसे नर के प्रति इस नारी में प्रश्न हो कि वह धातुत्व से अधिक क्यों है, उसका सारा ज्ञान उसकी कमनियों में रने बीर रक्त में बड़कते इस प्रश्न का समन कर रहा हो तो जय ने जो इसा का मान रखा तो ही क्या उसे नारी का अपमान मानूँ हो रहा बा ?^{११७}

इसके बाद बूझरा मुक्त आसंग धारण्य हुआ जो प्रताप के समान घाठ^{११८} पृष्ठ तक फैलता गया । हूस्टन ध्यानपूर्वक चुनचाप सुनता रहा और जब कभी वह बीच में रुकने को हुई, सीबन्धपूर्ण प्रश्नों से मुसलित करता रहा “असुकरता के लिए जमा कौनिए ; पर क्या मे पूछ सकता हूँ कि भापका पहला परिचय किस प्रकार हुआ ?”^{११९}

ऊपर के उद्धरणों से—विशेषत मोटे छापे अर्थाँ से—यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनेन्द्र जी यहाँ मुक्त आसंग प्रणाली का सांयोगिक प्रयोग कर रहे हैं—इसा पान है तथा विस्मर हूस्टन मनोविश्लेषक । दोनों ही अपने-अपने कर्तव्यों^{१२०} का संतोषजनक ढंग से पालन करते हैं । इस प्रकार के स्वत ‘जयबर्चन’ में एक नहीं’ अनेक मिलेंगे ।

अन्य उपन्यासों में मुक्त आसंग प्रणाली

‘जयबर्चन’ के से पूरे मनोविश्लेषणारम्भ न सही पानों को बीरे-बीरे मुक्त आसंग की स्थिति में से जाने बाते स्वतों की जैनेन्द्र जी के अन्य उपन्यासों में भी

११५-(क)नई। पृ १३ १३१ ।

(ख) K. Horney 'Self Analysis' p. 101.

११६ (क) जैनेन्द्र, 'जयबर्चन' पृ० १३२ ।

(ख) K. Horney 'Self Analysis' p. 122.

११७ जैनेन्द्र 'जयबर्चन' पृ १३२-१४० ।

११८-नारी पृ १३४ ।

११९ नारी प्रश्न पृ ७३ ।

कमी नहीं। पूरा जिसपर हूस्टन नहीं तो कम से कम उसका-सा एक पात्र उनके उपन्यासों में अवश्य मिल जाएगा।

सुनीता की जिज्ञासा—‘हृदिप्रसन्न के भीतर से पाँठ खींच निकालने में उपलब्ध हो सुनीता को भी बनना पड़ा था। ११० उससे प्रथम भेंट के समय से ही सुनीता को ऐसा प्रतीत होने लगा था कि हृदिप्रसन्न की बातों में कहीं कुछ कठिन सा है—जैसे कहीं कुछ रहस्य है, प्रभाव है, जिसे खोजना होगा। १११ सुनीता की जिज्ञासा प्रखर से प्रखरतर होती गई ‘क्या अतस्व यमान है और क्या उपजनित प्रेरणा को उसे बुनिया में यों बेकूटे कुमाए जा रही है ? किस रिजता को लेकर वह यों भटकता-भटकता अपनी पूर्णता की खोज में है ? यह सब क्या मैं पाऊँगी ? ११२

‘व्यामपन्न’ में मृणाळ को मुहुरित करने वाला है उसका भतीजा प्रमोद जिसे लगभग चार पृष्ठों तक फैली अपने विगत जीवन की कथा सुनाने के बाद वह कहती है ‘प्रमोद मैं न जाने क्या-क्या बकती रही। कहनी-भनकहनी न जाने क्या क्या कह गई हूँ ! बुनिया में मेरे एक तुम हो कि जिस से दुराव मुझ से नहीं रखा जाएगा। ११३

‘कस्याणी’ में मुक्त घासंग—‘कस्याणी’ के बकीस साहब भी मनोविश्लेषक से कम नहीं। वह जानना चाहते हैं कि ‘कस्याणी असरानी के स्वभाव में जो मृत्यु उत्पन्न का एक स्पष्ट चिह्नान नजर आता है वह यदि प्रतिक्रिया है तो किन बटनायों की प्रतिक्रिया है। व्यवसाय में वह सारवान है कर्त्तव्य में तत्पर’ फिर भी एक प्रघाति एक दमन एक विचित्रिस्ता को उनमें दिखाई देती है वह क्या है ? और वह क्यों है ? ११४ यह बकीस साहब अपनी इसी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए कस्याणी को कई बार मुक्त घासंग की स्थिति में ले जाते हैं। ऐसा एक स्थल देखिए

बोली—घाप ईश्वर को नहीं मानते हैं न इसी से सहज ही कोई बात आपकी समझ में नहीं आती। मैं क्या करूँ ?

मैंने कहा—‘हो सकता है वह मेरे समझने योग्य न हो। जाने दीजिए।

हस कर बोली—‘बात वैराग्य नहीं है। घाप नहीं समझते। फिर भी घाप जो पृथ्वी मगते हैं और समझना चाहते हैं उसके लिए बस्कि में हस्तक्षेप ही हूँ। घसम में मैं कुछ बताना चाहती हूँ। कुछ-की-कुछ समझी जाने से मुझे सुख नहीं। वह भी मुझे क्या समझते हैं लेकिन—‘और। सुनिए—

११० डीनेत्र ‘सुनीता’ पृ १५५।

१११ डीनेत्र ‘सुनीता’ पृ १५६।

११२ श्री पृ १५७।

११३ डीनेत्र ‘व्यामपन्न’ पृ १५८।

११४ डीनेत्र, कस्याणी’ पृ ६६।

में चुपचाप सुनने लगा ।

‘बिबाह से पहले मैं’ कुछ भी । बिबाह बिना मैं रह सकती थी । मेरा पत्नीत्व और मेरा निबलन, ये परस्पर कैसे मिलें ?’

कहकर उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे मैं हूँ ही नहीं । जैसे मेरे अनाम में बीमार के सामने भी यह सवाल इसी प्रकार उठा जा सकता है । १२१

इस प्रकार ‘कल्याणी’ का मुक्त आसंग आरम्भ हुआ और हमें बीच-बीच में संकेत मिलता रहा कि वह अपनी बात रहा है — ‘प्रथम में उत्तर की अपेक्षा न थी । सो वे आप ही कहदी गई १२२’ कहते हुए वे थोड़ी हँस आईं लेकिन क्या अब भी उन्हें मेरा ध्यान था ? १२३ यद्यपि इस मुक्त आसंग में कल्याणी अपने अचेतन में गहरी नहीं पठ पायीं तो भी उसका प्रबल सो यही रहा है कि अपने भीतर को बाहर ला वे जिससे वह कुछ की कुछ न समझी जा सके ।

आत्म विस्लेषण (सेल्फ एनेलिसिस)

‘सुखरा’ और ‘अच्छीत’ के आत्मकथा-रसिकों में होने के कारण उनमें मनो विस्लेषक की आवश्यकता रहती ही नहीं । इन उपन्यासों में आत्मविस्लेषण की चीन्ही अपनायी गई है । आत्मविस्लेषक और मनोविस्लेषक के अंग में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि प्रणाली दोनों की ही मुक्त आसंग की है । १२४ मनोविस्लेषक के पास होने पर पात्र उसे अपने मन में जो कुछ भाता है सुनाता जाता है और आत्मविस्लेषण में वह अपनी सहस्रसुतियों की ‘नोट’ करता जाता है—सिखाकर या मस्तिष्क में ही । आत्मविस्लेषण में अपनी सहस्रसुतियों को सिखा कर ‘नोट’ करना अच्छा समझा जाता है । १२५ इस दृष्टि से सुखरा और अचल के मुक्त आसंग लिखित रूप में होने से बढ़िया ही माने जाएँगे ।

सुखरा का आत्मविस्लेषण

सुखरा बीड़ के बूझों से बिरे पर्वतीय प्रदेश के एक अस्पताल में पड़ी है । समय उसके पास बहुत है और भीतर ध्येय की भी कमी नहीं । इसलिए वह अपनी

१२१ बीनेज, कल्याणी, पृ० ३१ ।

१२२ वही, पृ० ३२ ।

१२३ वही, पृ० ३३ ।

१२४ Karen Horney ‘Self Analysis’ p 156.

१२५ Ibid., p. 187 :

“It is advisable to jot down findings, and the main path leading up to them, even though they have been arrived at without taking notes.”

कहानी मिलने लग जाती है कि 'ऐसे कुछ बहियाँ तो कटेंगी नहीं तो काटने को जाती हैं'।^{१११}

निस्संकोच वर्णन—आत्मविश्लेषक को यह न भूलना चाहिए कि अपने मन में उठे किसी भी भाव या विचार को किसी कारणवश अभिव्यक्त करने से रोक सेना उसके हित में न होगा।^{११२} पर औपम्यासिक पात्रों का आत्मविश्लेषण उनके अपने हितार्थ के लिए न होकर अपने को पाठक के लिए बोधव्यय धमाने के लिए होता है। इसलिए, उपम्यास में वे अपने किसी भाव या विचार की व्यक्त होने से बचा जाते हैं तो पाठकों के लिए उनके दुःख हो जाने की सम्भावना रहती है। सुखदा भी एक स्थल पर पहुँच कर बरा बरती है और फिर शीघ्र ही पुनः मिलने लग जाती है : 'सब कहें—लेकिन सब कहने बैठे हैं तो सज्जा कि सब बात की कहें ? बिबाह से पहले मैंने सोचा था कि बिबाह कहाँ होगा उसकी धामनी छात थी भाठ थी रुपये होनी चाहिये'।^{११३} प्रसंग धाने पर वह अपनी किसी बात को भी गुप्त नहीं रखती। यहाँ तक कि वह भी बता देती है 'पाठक की सहानुभूति चाहती हूँ क्योंकि यह सब है कि हरिदा की ओर जाते हुए मैंने हल्का सा मेक-अप किया था।'^{११४}

मुक्त आशय के बीच में युक्तियुक्त चिन्तन का समावेश—आत्मविश्लेषक को एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि मुक्त आशय के बीच में जहाँ तक हो सके, वह तर्क-वितर्क से बचता रहे। आत्मविश्लेषण में तर्क-वितर्क के लिए स्थान तो है और काफी है—पर बाद में क्योंकि बीच में आकर वह सहस्रसूत्रियों के स्वतः प्रवाह को रोक देता है।^{११५} सुखदा की इस आत्मकथा में दार्शनिक स्तरों की भी कमी नहीं, पर वे प्रायः आशय के बीच में न आकर आरम्भ में या अन्त में ही आए हैं, विशेषतः आरम्भ में।^{११६} बड़े परिच्छेद के पहले मुक्त आशय के अंत में वह मिलती है। भाव हर तरह से अपना पूरा समर्पण पत्र को कर देने के आग्रह से बोधी की। बाकी सब कुछ को अपनी जिम्मेगी से मिटा जाने को सच्य थी। लेकिन जितना ही भीतर से चाहती थी कि वह हो सतना ही बाहर से वह बुझकर होता जाता था।^{११७} फिर अन्त में आशय से पहले उड़ी सूत्र को पकड़ते हुए मिलती है 'आदमी की यह विषयता किसे लिए है ? किसे नियम के वह अपीन है—स्वभाव

१११ कैनेज़, 'सुखदा' पृ० ३।

११२ Karen Horney 'Self Analysis' p 243.

११३ कैनेज़, 'सुखदा' पृ० १५, १६।

११४ वही, पृ० ३५।

११५ Karen Horney 'Self Analysis', p. 48.

११६ कैनेज़, 'सुखदा' पृ० ६, ११, १४, ३३, ३०, ३७, ३८, ३९, ७८, १११।

११७ वही पृ० ७१।

के भीतर बिरोध बाध कर हमें क्यों यहाँ पैदा कर दिया गया है कि भास पाते रहें और क्रुद्ध भी न कर सकें ? अपने को बेचकर भाज मुझे विष्णुल समझ में आ गया है कि जो बड़ (व्यक्ति) है वह नहीं है। पापी पापी नहीं है। पुष्पात्मा पुष्पात्मा नहीं है। सब वे हैं जो उन्हें होना बड़ा है। १३० सुखदा में इस प्रकार के धीरे भी कई स्थल मिलेंगे पर वे उसके मुक्त आसंग में बाधक नहीं बने हैं।

‘व्यतीत’ में मुक्त आसंग

पैदासीसहै जन्मदिन पर, ‘व्यतीत’ के नायक जयंत के पत-जीवन की घटनाएँ जन्म-दिन के समान एक एक करके उसकी आँखों के सामने नाच उठती हैं और वह उन्हें बताता जाता है। जयंत के मुक्त आसंग बीस-बीस पृष्ठ तक अबाध फैलते गए हैं वार्षनिक स्मृतियों में पड़ने की मानो उसे पुर्लत ही न हो। इन बीस-बीस पृष्ठों में अब कभी बीडिकता ने खोर मारा भी तो वह भीड्र ही उस पर काबू पाकर भागे बड़ लिया है। ये वार्षनिक प्रसंग उसके मुक्त आसंग में बाधक नहीं प्रस्तुत् उसकी व्याख्या करके पाठक के लिए सहायक ही बनते हैं। स्थानाभाव से मन्त्रे-मन्त्रे आसंग तो यहाँ उद्धृत नहीं किए जा सकते पर निरलेपणात्मक वार्षनिक प्रसंग देखिए

“आज कुछ मेरी ठीक तरह समझ नहीं आता। एक पड़ना होता है, हुनर सीखना विज्ञान सीखना होता है चीजों को समझना-गुनना होता है। इसमें से बुनिया के काम-काज बना करते हैं और बहुत सी तरिकियाँ हुपा करती हैं। मगर एक दूसरी चीज भी होती है, जिसका काम-भाम में दुमार नहीं है। कहते हैं, जोम इस दूसरी चीज से बनते नहीं हैं, बिगड़ते हैं। यह मन जो है भोका बिना कछा है फुसलाता रहता है, और उसकी एक बैर चुनी कि फिर कहीं का नहीं छोड़ता। लेकिन मुझे मालूम नहीं है। शायद ठीक ही हो। शायद यह वो चीजें उस्टी हों। एक बर्म हो और दूसरा पाप हो एक साधना हो और दूसरी बाधना हो एक छिन्नर की धोर से जाती हो दूसरी पाताल में गिरा जाती हो। प्रेम केवल बाह्य हो और ज्ञान-विज्ञान अस्मित हो।” १३६

‘आज सोचता हूँ अमिता कौन बी ? पुरी कौन से ? लेकिन कौन किस का क्या होता है ? मन से मान लेने की ही बात है। कानून तो नियम रहता है और वहाँ बस्तावेज होते हैं। लेकिन व्यक्ति के अन्तर को किसने पहुँचाया है। कारण नियम तो स्थिर है मन स्थिर नहीं है। पिता-पुत्र कहते हैं पति-पत्नी कहते हैं इसी प्रकार धीरे भाते रिस्ते हैं। इनका येर

कर परिवार बनता है। लेकिन क्या उस सब के नीचे सार सत्य क्या केवल मन का स्नेह ही नहीं है? समता है उस स्नेह की निश्चयता के मामले उससे विहीन। सत्य सब व्यवहार-व्यापक और जिसके के मानिए ही है।”^{१३५}

“अपने सम्बन्ध में, मैं कोई सम्मति नहीं दे सकता। तो भी जान पड़ता है कि मुझ में पौरव कम है। नहीं तो स्त्रियाँ ऐसे मुझ से क्यों व्यवहार कर निकलती हैं, जैसे बच्चे मोम से करते हैं। भी होता है इस पक्षि कार को इन्कार कर दू। लेकिन यह मेरी स्वीकृति माँगता कब है। एकदम धाकर धाव्युत्पन्न कर देता है। इन्कार भीतर मैं अपने को भुल जाता हूँ और स्त्री सब-कुछ हुई जमी जाती है। यीमती नीला बजावर को अपने अँतों में मुझे ले लेने में कोई विफल न हुई। बहादुरी का समया अब भी मेरे पास है, लेकिन कहीं न रही मेरी कप्तानी और मर्दुमी।”^{१३६}

‘ठीक ही होता है। सबको वह मिलता है जो योग्य है। इतना बड़ा ब्रह्मांड अनियम से नहीं चल सकता। यह और नक्षत्र सूर्य और चन्द्र पृथ्वी और पिंड सब अपनी कक्षा में और मर्यादा में हैं। अनियम कुछ नहीं है और यह उचित है कि मैं नीला बजावर के घर में हूँ जहाँ जमी के अभाव में मेरी ओर भी ध्यान का अभाव है। यह सर्वथा नियमित है। नीला को काम पड़ते हैं, क्योंकि बड़ा घर है और बार-बार धाकर मेरे आग्रह में चलन भी पड़ता है।”^{१३७}

बाधकता विक्षेपण (ऐनेमिसिस ऑफ रेसिस्टेंस)

मुक्त आसम में यद्यपि पात्र से यह छाया की जाती है कि उस समय उसके मन में जो कुछ आए उसे पूरे का पूरा किसी अंध को छोड़े बिना कहता जाए तो भी देखा गया है कि भरसक चेष्टा करने पर भी पात्र उन स्मृतियों या अनुभूतियों को जिससे उसे धमका होती हो या लज्जा घाती हो या वो छोड़ जाता है या उनके वर्णन में धानाकानी करता है और या फिर उन्हें छोड़ने से एकदम इन्कार कर देता है। मनोविक्षेपक ऐसे विषयों को बड़ा महत्त्व देता है क्योंकि उसकी दृष्टि में इन विषयों का पार्श्व की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों के ध्वस्तन कारणों से अनिष्ट सम्बन्ध होता है। मनोविक्षेपक का उद्देश्य बाधकता (रेसिस्टेंस) को तोड़कर पार्श्व को उन दुःखद स्मृतियों, इच्छाओं तथा अनुभूतियों के सम्मुख ले आना है क्योंकि जब तक वह चेतन में

१३६ वही, अनेत्र, पृ. १०१

१३७ वही, पृ. १४०।

१३८ वही, ‘अनेत्र’ पृ. १४६।

अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक नहीं होना उनका यथार्थ रूप जानना नहीं तो उन्हें हल कैसे कर सकेगा।^{१४३}

अपवर्जन और इसा की सामकता

'अपवर्जन' की इसा के जिन युक्त धारणों का उल्लेख पीछे किया गया है उन के लिए ममस्तुष के बिजामु हूस्टन को कोई बड़ा भयान नहीं करना पड़ा। अपने परस्पर सम्बन्धों की बर्बाद से अपवर्जन और इसा दोनों ही कतराते थे। अपनी प्रथम मेंट के धस्त में हूस्टन ने जब अपवर्जन से यह पूछा किनाह तो आपने किया नहीं है तो उसने हूस्टन का हाथ अपने हाथ में लिया और धीमे से दबाकर छोड़ दिया कुछ उत्तर नहीं दिया।^{१४४} हूस्टन की अपनी मेंट इसा से हुई और उसमें बात बताते बसते जब यहाँ तक पहुँची—“तो आपके बीच में क्या है?” तो इसा ने उसे दार्शनिक ढंग से टाँझते हुए कहा “क्या आप सुनने की आधा रखते हैं। बीच में है निराला खुद बड़ा लेकिन क्या मैं जब आपसे खमा माँग सकती हूँ?”^{१४५} और साथ ही महाम को भी बुला लेना। लेकिन जब फिर भी हूस्टन न माना तो इसा ने कहा “पर क्या प्रेम की व्याख्या मैं आपके साथ मुँह पड़ना होया? आपकी उम्र कम नहीं है—और मैं बाबारी कम नहीं हूँ”^{१४६}। इसी बीच महाम भी आ गई और एकदम भँव होले से उनकी बात खत्म न सकी। एक बार और भी हूस्टन को असफलता मिली। उस बार तो जब उसने बात बताने का हठ किया इसा तब गई और बाब में हूस्टन ने भी अपनी हठधर्मी स्वीकार करते हुए डायरी में लिखा “हूडा नारी के गर्म का उद्घाटन चाहते वाला मैं कौन था। उसकी छाँव में कातर हो-हो आई इसा यदि सहसा ही महामाननीया और प्रति दुर्लभनीया बन आई हो तो इसमें विस्मय क्या।”^{१४७}

स्पष्ट है कि अभी तक मनोविश्लेषक हूस्टन तथा पाप इसा में समझौता नहीं हो पाया है और इसा अपनी बुद्धि तथा मज्जास्पर्ध स्मृतियों तथा अनुसृतियों को उस पर प्रकट नहीं कर पा रही है, क्योंकि मनोविश्लेषक के प्रति विश्वास न होने पर जरूर एक चेष्टा करने पर भी पाप उसके सामने कुछ नहीं पाठा।^{१४८} पर जब अपवर्जन

१४३ Ruch, 'Psychology and Life' p. 528.

Karen Horney 'Self Analysis' p. 136.

१४४ डैनेज़, 'अपवर्जन' पृ० २४।

१४५ डैनेज़, 'अपवर्जन' पृ० ५५।

१४६ वही, पृ० २८।

१४७ वही, पृ० १०९।

१४८ Karen Horney 'Self Analysis' p. 136:

"With the best will in the world a patient cannot express himself freely and spontaneously if he has an unsolved resentment in his heart toward the person to whom he reveals himself."

ने इसा को समझ दिया कि हूस्टन तो सग्य की खोज में है, इसलिए वह उसमें रोक देना न करे^{१४८}। तब से हूस्टन के प्रति उसकी भावना में परिवर्तन आ गया और तभी वह मुक्त भासंग की स्थिति में आ सकी।

उमर के उदरगों से पता चल गया होगा कि इसा की बाबकता को तोड़ने के लिए हूस्टन को कितना प्रयत्न करना पड़ा और कितने धैर्य से काम लेना पड़ा—यहाँ तक कि अपमान भी सहना पड़ा। पर यहाँ बैठने वाली बात यह है कि अपने पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा करने से इसा ज्यों-ज्यों कतराती गई, त्यों-त्यों हूस्टन की इस विषय में जिज्ञासा प्रकट से प्रकटतर होती गई और अंततः वह उसकी बाबकता को तोड़ने में सफल हो गया।

सुखदा की बाबकता

इसी प्रकार की बाबकता का परिचय हमें 'सुखदा' में भी तो मिलता है। उस के मुक्त भासंग के प्रारम्भिक शब्द—“अपने भीतर देखू लेकिन भीतर क्या पा लूँगी?”—इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि अपनी कहानी मिचने का बड़ा संकल्प कर लेने के बाद भी उसका सकोच एकदम नहीं हट गया। हरीश दादा के पास आते समय उसने हुन्का-सा मेक-अप किया था किया तो वा कदाचित् हरीश को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए, पर उसका प्रयोग संयोगवश हो गया साम पर। अपने आकर्षण के इस भेद को वह तब तक छिपाये रखती है जब तक कि घर लौट नहीं आती। घर लौटकर जब वह दर्पण में अपना मुख देखती है, तभी इस विषय में उसकी बाबकता टूटती है। “(पाठक की सहानुभूति चाहती हूँ क्योंकि यह सब है कि हरीश दादा की ओर आते हुए मैंने हुन्का-सा मेक-अप किया था^{१४९}) उसकी इस स्वीकारोक्ति का कोष्ठक में होना ही यह बताता है कि इसे पहले धाना चाहिये या और जब यह काफ़ी बाद में जोड़ दी गई है। बीच-बीच में उसके ये शब्द भी उसके भीतर की बाबकता के चोख हैं ‘सच कहूँ ? लेकिन जब कहने बैठी हूँ तो लगता कि बात की।’^{१५०} यद्यपि आपसी मिचने का उसका बड़ा निश्चय उसकी बाबकता को अधिक बेर टिकने नहीं देता तो भी हम स्वयं के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। एक में हरीश के प्रति उसके अपने आकर्षण की ओर संकेत है और दूसरे में गृहस्त्री के प्रति उसकी ऊँच का आभास मिलता है।

‘कस्याणी’

कस्याणी का भी यकीन साहब पर एकदम बिस्वास नहीं बन पाया था। उस

१४८ जेनेट, ‘अवर्निस’ १, १०५।

१४९ जेनेट, ‘सुखदा’, १, ५९।

१५० जेनेट, ‘सुखदा’ १, १५, १६।

की घातरिक व्यापकता को समझ पड़ने को उद्यत रहती थी पर मानो विश्वास का पात्र न पा रही हो। बकीस साहब से यह तो यह कह देती है कि मन का बोझ कम तक सहा जा सकता है ? और मैं किसी से उद्य मन को बोझ नहीं सकती—मैं डाक्टर से भी तो कुछ कह नहीं सकती।

“कहते-कहते यह एकाएक रुक गई। जैसे धन-कहनी कहने के किनारे जा लगी हो। अन्तर एक मरी सौंघ लीज कर बोली—‘सब भाग्य है और क्या’।”^{१२१} पर जब बकीस साहब ने पुनः प्रश्न द्वारा बात धामे बढ़ानी चाही तो एक बार फिर वह मुक्त प्राण की स्थिति में पहुँच गई—‘मैं तो अपने से ही गाराज हूँ। सोचती हूँ मैंने अपना सब क्या कर जाला।—कहकर वह ऐसे देखने लगी जैसे कहीं न देख रही हो। उन आँखों में जैसे धुंधिल ही न हो।’ यह समझते हुए कि अब तो उसका मुक्त प्राण प्रारम्भ होने वाला है, बकीस साहब ने ज्यों ही उसे पूछा—‘क्यों-क्यों बात क्या है ? एकदम बाधकता जाल उपस्थित हुई और ठूठा सम्मलती हुई वह बोली—‘कुछ नहीं कुछ नहीं’ और फिर ‘अतिव्यस्त जाल से पड़ी की ओर देखकर कहा—‘भोह जाठ हो गया। मैं भूली। मुझे एक जगह जाला है। भण्ठा तो आप कहती हुई वह उठ लड़ी हुई और वहाँ से जल ली।’^{१२२} इस प्रकार कल्याणी अपनी घातरिक बात को प्रकट करने से अपने को बचा गई। और किसी ही बार जवाबदार ऐसे बचाती रही। यह तो बकीस साहब का जैसा था कि उसे वह मुक्त प्राण की स्थिति में से ही आए।

अस्तबिबाध (इन्टीरियर मॉनोलॉग)

विमुक्त अस्तबिबाध का अभाव

अस्तबिबाध तथा चेतना-प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कान्ससनेस) जो आत्म के मनो वैज्ञानिक उपन्यास के ‘स्टाइलिस्टिक’^{१२३} लक्षणी हैं, जैसा भी के उपन्यासों में साम्य ही मिले। यह नहीं कि उनके पास एकान्त में बैठकर निरन्तर जीवन की घटनाओं का स्मरण और मनन नहीं करते प्रत्युत उनके पास तो मांसल कम और मानसिक अधिक हैं। पर बात यह है कि पात्रों के अचेतन तक पहुँचने के लिए उनके उपन्यासों में अधिकतर मुक्त प्राण प्रयोजनी ही कथामुक्ति होकर प्रयुक्त हुई है। उनके पास अपने मन को जमा छोड़ देते हैं और अपने सामने बैठे व्यक्ति को अपने मन में जो कुछ हो रहा है बताते जाते हैं मानो वे सब कुछ अनुभव कर रहे हों। पर अस्तबिबाध में तो पास न बोसता है और न ही उसे सुनने वाला होता है।

^{१२१} जैनेन्द्र, ‘कल्याणी’ पृ. १७।

^{१२२} जैनेन्द्र, ‘कल्याणी’ पृ. १८।

^{१२३} Hoffman, ‘Freudianism and the Literary Mind’ p. 124.

उपस्थासकार 'रिपोर्टर' के रूप में

जैनेन्द्र जी के पास एकान्त मनन तो करते हैं, पर वहाँ हमारा सम्पर्क सीधा उनके मन से नहीं हो पाता। सेक्स हमारे धीरे पात्र के बीच बड़ा रहता है, मानो वह अपने महत्त्व को न भटकने देना चाहता हो। हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हम पात्रों के मन में जो हो रहा है उसे अपनी भावों से देख रहे हैं और पात्रों के साथ एकरसीयता स्थापित करके उनके साथ-साथ स्वयं भी अनुभव करते जा रहे हैं। यह तो बड़ी बड़ दीली है जिसका प्रयोग प्रेमचन्द प्रभृति उपस्थासकार करते आए हैं। मनोवैज्ञानिक उपस्थासकों के अंतर्विचार से यह बहुत दूर है। 'सुनीता' से एक उद्धरण देखिए

'उसका (सुनीता का) हुनस उसे बताता था कि यह घावमी हृत्प्रसन्न बिजना है उतना ही नहीं है' उसमें बेचना है किन को लेकर वह बेचना है? इस बारे में भी जैसे उसके मन में कुछ पता था। फिर भी मानो उसका पूरी तरह सेका बोका वह खोज सेना चाहती थी।

वह सोचती थी कि उसकी बहुत सत्या बुटी लड़की नहीं है और इस हृत्प्रसन्न में जो प्राणों की बेचनी है उसको भी एक लगाम की जरूरत है

'तुम्हें पता नहीं कि मेरा ठीक हो तो मुहत्त्व हृत्प्रसन्न समाज के लिए बहुत उपयोगी हृत्प्रसन्न होगा'—उसने सोचा। 'किन्तिन वह कहीं-कहीं रहता है? क्या उसका मेरा में पाऊँगी?

लेकिन नहीं सुनीता सोचती है 'हृत्प्रसन्न निष्प्रबोधन निष्कर्म नहीं होने दिया जायगा—मैं जब समायास उसकी भाषी बनी हू तो मैं देखूँगी कि वह प्रयोजनयुक्त होकर यहाँ रहता है।'

'वह सोचती स्त्री फिर किन लिए है यदि पुरुषों को प्रमोदनदान फलदान में निमोहित नहीं करती।

अपने स्त्रीत्व से साधार बनी वह देखती है कि परम-पुरुष का घसी पित्त वह नहीं है'^{१२४}

इस प्रकार, उसके मन में उठ रहे विचार की रिपोर्ट देता-बेता सेक्स घन्ट में कहता है "घादि-भादि उसने सोचा है।" अपयुक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि सेक्स पाठकों को इतनी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता कि वे पात्रों के मन से सीधा सम्पर्क रखें और वह बार-बार 'उसने सोचा 'वह सोचती है' आदि वाक्यों द्वारा पाठकों पर उनकी विचसतापूर्ण स्थिति प्रकट करता जाता है, मानो उन्हें यह पता हो 'तुम्हें मेरी रिपोर्ट पर ही निर्भर रहना होगा।

उपन्यासकार द्वारा बार-बार हस्तक्षेप

इस प्रकार के स्थलों से उनके इसी इतिहास-सीरी (प्रथम पुरुष) में सिद्धे उपन्यास—गरब सुनीता बिबर्त—गरे पड़े हैं। अब बिबर्त से एक उद्धरण लीजिए—

‘मोहिनी निष्प्रबोधन समग से उठी धीर कुर्सी में धा बैठी बँठी सोचती रह गई। इस व्यक्ति (बिबेन) पर उसे क्या आई। कितना बोझ अपने मन में लेकर यह उसकी धरण में धा पड़ा है। कितना उसने विश्वास किया। उस विश्वास के प्रति उसमें कृतज्ञता उठती थी। किन्तु विश्वास में सब आशेष क्यों? सर्व उससे साथ यह क्यों कि मैं अपनी ओर से विश्वास दूसरे को न दे सकूँ। जानती है वह (उसका पति) आत्मसी स्वभाव के पुरुष हैं, तुच्छता कहीं उनमें नहीं। वह कभी उससे कुछ नहीं पूछेंगे—वह सम्मन में पड़ गई। क्या कह दे कि स्वामी के प्रति अविश्वासिनी मुझे नहीं बनना है? अब बिबेन तुम देख लो रहना है रहो जाना हो जाओ। यह भुवनमोहिनी बही है लेकिन पत्नी भी है इससे वह स्वामिनी भी है अविश्वासी है।’ २२

यहाँ मोहिनी एक ऐसी मन स्थिति में पहुँच जाती है कि मचेतन उससे बहुत दूर नहीं रहता। यहाँ लेखक यदि स्वयं प्रवेश रहकर मोहिनी को उस पर ही छोड़ देता अपने को पाठक पर न लावता तो कदाचित् यहाँ एक अथवा अन्तर्बिबाह मिल सकता था। पर बार-बार बखस हैकर लेखक ने यहाँ ऐसी लिपटी बना दी है कि कई बार वह पता लगाने में भी कठिनाई होती है कि वह लेखक कहता है या मोहिनी सोचती है। सर्वनाम ‘वह’ का प्रयोग यहाँ मोहिनी के लिए भी हुआ है और उसके पति के लिए भी। मोहिनी के लिए ‘वह’ का प्रयोग लेखक करता है और पति के लिए ‘वह’ का प्रयोग करती है मोहिनी।

‘सुनीता’ में से एक अन्तर्बिबाह

आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पाया जाने वाला अन्तर्बिबाह तो नहीं पर उसकी-सी सीरी में बना एक छोटा-सा अन्तर्बिबाह सुनीता में मिलता है २३ वह सोचने लगी ‘अमसी रात तक ही मानो उसका अन्तर्बिबाह है कहकर लेखक उससे अलग हो जाता है :—

‘वह सोचने लगी कि अमसी रात तक ही मानो उसका यह अन्तर्बिबाह है। क्या अमसी रात पुनर्जन्म ही नहीं से बना होता?—वे लोग कौन हैं? वे क्या चाहते हैं? अपनी जानों को हवेली पर रखकर वे लोग क्या चाहते हैं? किन्तु सब परिवार ही क्या व्यक्तिगत की परिधि है? क्या मैं इसी में

२२४ डेलेट, ‘बिबर्त’ पृ २२।

२२५ डेलेट, ‘सुनीता’ पृ २४४।

बीच ? क्या इसे तोड़ कर, माँच कर एक बड़े हित में जो जाने की मैं न बड़ ? उस विस्तृत हित के लिए बीजों, उषी के लिए मरू तो क्या यह संयुक्त है अथर्व है ? जो मेरे स्वायी तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? मसानी तुमने ऐसी बिट्टी मुझे किस लिए जिजी ? क्या इसीलिए कि मुझे परस में जानना चाहते हो ?

कम रात वह क्या जीवन है ? वही उत्तर ही व्यक्ति का सत्य बनता है संभव से व्यक्ति बड़ी पराङ्मुख होता है । मैं उससे इन्कार कर सकती हूँ ? मैं सब जैसे इन्कार कर सकती हूँ ? लेकिन कम रात मुझे कहाँ जाना होता ? जो स्वायी तुम कहाँ हो ? कहाँ हो ? मुझे बताओ इस तुम्हारी बिट्टी का क्या यही आशय मैं पाऊँ कि मुझे स्वयं कुछ नहीं रहना है नियति के बहाव में बहते ही चलना है, बर्न-अबर्न बिसार देना है ?^{१२०}

बीच में सेसक के बोझ-सा रहस्य देने के बाद 'इस स्थिति में आकर वह उसी समय हृत्पिंसल की तरह जाने को उद्यत हुई । कहेनी कि 'सुनीता का भाव प्रवाह फिर बस पड़ता है और लगभग एक पृष्ठ तक चलता ही रहता है ।'^{१२१} यहाँ बाक्य भी छोटे छोटे और सरल हैं और पाठक को भी समीप होता है कि वह सुनीता के अचेतन तक जाहे न पहुँच सका हो पर उसके मन से तो उसका सीधा सम्पर्क है ही पर सेसक को यह छद्म नहीं । अन्त तक पहुँचने के पीछ ही बाद 'इसी तरह की बातें उसके मन में उठने लगीं' कहकर वह पाठक के भ्रम (इस्पूजन) पर कुठाराघात करके उसे काट फेंकता है ।

— स्वप्न विक्षेपण

अप्यवहारी मनोविस्तेषणों का विरचास है कि हमारे अचेतन प्रेरक जो जाग्रतावस्था में प्रकट नहीं हो पाते कई बार स्वप्न में अभिव्यक्ति पा जाते हैं और यदि वे प्रेरक इतने दुःख या असमायिक हों कि सुपुष्टावस्था में भी हम उन्हें स्वीकार न कर सकते हों तो वे स्वप्न में सीधे न व्यक्त होकर कम बहस कर जाते हैं । इस लिए उनका कहना है कि किसी व्यक्ति के स्वप्न के विस्तेषण द्वारा उसे अभिव्यक्ति रहने वाले अचेतन कारणों को पकड़ा जा सकता है ।

उपम्यासकार भी अपने पात्रों की धर्मगत प्रतीत होने वाली चेष्टाओं के अचेतन कारणों को व्यक्त करने के लिए उपम्यास में पात्रों के स्वप्नों का समावेश किया करता है पर वह मनोविस्तेषक की तरह स्वप्न का पूरा-पूरा व्योम न देकर, केवल उन्हीं तथ्यों का उल्लेख करता है जो उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए पर्याप्त हों ।

१२० जेम्स 'हनीट' १० १७७-१७८ ।

१२१ वही २ २४४ १७८ ।

इस तथ्य को जानते हुए ही मनोविश्लेषण प्रणाली में प्रवर्तक सिगमंड फ्रायड ने मनोविश्लेषकों को सचेत करते हुए कहा था कि कवियों द्वारा वर्णित स्वप्नों पर विचार करते हुए वे यह न भूलें कि उन्होंने अपने व्योरे में से तब सब कुछ निकाल दिया होगा जिसे वे अनावश्यक या अव्यय समझते होंगे।^{११९}

सुखदा का स्वप्न

बैनेट्र भी ने भी अपने पात्रों की मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के प्रत्येक कारणों की ओर संकेत करने के लिए अपने उपन्यासों में स्वप्न और विचार प्रत्यक्षीकरण (हैप्सुसीनेसन) को माध्यम बनाया है। एक दिन सुखदा जो पति को बर्सी-कटी सुना कर सोई तो उसने एक 'मयामक स्वप्न' देखा जिसका उल्लेख उसने इस प्रकार किया :—

"सोई न थी पर लपटी हुई भी न थी। उस हास्य में मैंने अनुभव किया कि कोई मेरा लकिया टटोस रहा है। मेरे मन में अनिश्चय न था। मैं और भी सोई बन गईं यानी मैंने अपने को भी न जानने दिया कि मैं सोई नहीं हूँ। उस हास्य ने लकिये के नीचे कुछ रखा। सोई हुई मुझको जाने किस ने बठा दिया कि वह पत्र है। फिर हास्य हट गया और कोई नहीं से जसा गया। वह कम-कम जसा। दरवाजे पर पहुँचा दरवाजे को माहिस्ता से कुकर उसने हटाया। मैं नींद में से एकाएक ओर से चीख उठी। चीख अपने में से आई थी और मैं सुब में न थी—नींद में थी। नींद की कैसुपी ने ही बताया कि बाबमी ठहर गया है ठिठका है, भा नहीं रहा है। और अपने में मैंने दो-तीन बार चीख ली थी।^{१२०}

पर अपने पति को उसने इस स्वप्न का जो व्योच दिया वह इस प्रकार है 'कोई भाया उसने मेरा लकिया छठाया नहीं टटोसा फिर हट कर सौदा तो उसके हाथ में 'लफ' वह मेरी तरफ बढ़ा।'^{१२१}

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि सुखदा द्वारा अपनी कहानी में दिए गये व्योरे में तथा उसने स्वप्न का जो व्योच अपने पति को दिया उसमें काफी अन्तर है, मानो उस स्वप्न में कुछ ऐसा है जिसे वह पति पर प्रकट नहीं होने देना चाहती। यह हम जानते ही हैं कि उस रात सुखदा बेर करके हरीश बाबा के पास से आई थी तो पति-पत्नी में काफी झगड़ हो गई थी। सारी रात पति का विस्तर आभी पड़ा रहा था।

^{११९} Freud, *Interpretation of Dreams* p. 378 :

"In considering dreams reported by a poet one may often assume that he has excluded from the report those details which he perceived as disturbing and which he considered unessential."

^{१२०} बैनेट्र 'सुखदा' पृ. ४८।

^{१२१} बैनेट्र 'सुखदा' पृ. ४८।

वह बाहर कुर्सी पर सेटा रहा था। सुखदा ने पाहा वह उठे, बाए धीर उसे से धाये। उसे अपने पर बहुत गुस्सा था रहा था धीर पति पर भी कि वह 'स्त्री की बात नेता है मन नहीं।' ^{११०} उसे हरीश पर भी कोष था रहा था पर हठात् वह भीतर से उसके लिए विरस्कार न जाती थी। पर एह एह कर उसे जान पड़ता था कि 'अन्ति' के सिवाय अब उसके लिए धीर राह नहीं। ^{१११} एक बजे के बाद उसे कुछ ऊँच था गई थी धीर तभी वह स्वप्न देखकर भीक सठी थी।

विस्लेषण

जब कोई व्यक्ति अपने प्रेमी के बारे में जिस पर वह बुरी तरह से मुग्न हो या किसी शत्रु के बारे में जिस पर वह क्रुद्ध हो सोचते-सोचते तो बाए तो उस के व्यवहार पर पड़े हात ही की अनुभूतियों के संस्कार ^{११२} अपनी सीखता के कारण स्वप्नावस्था में स्मृति-छाया के रूप में अभिव्यक्ति पा लेते हैं। इस प्रकार के स्वप्न निरे निराधार प्रत्यक्षीकरण की कोटि के होते हैं। ^{११३} उस रात सुखदा पति पर गुस्से तो थी ही धीर हरीश की धीर धाकूट भी थी। उसे वह भी दिखाई देता था कि 'अन्ति' के सिवाय अब उसके लिए धीर कोई राह नहीं। यहाँ अन्ति शब्द सामि प्राय है—शायद सेलक का संकेत गृहस्थ जीवन के प्रति अन्ति की धीर रहा हो। ऐसी अन्ति सुखदा जाग्रतावस्था में तो कर ही नहीं सकती थी स्वप्न में भी वह ऐसा करने की धावद ही लेख सकती। इसीलिए, सम्भव है कि उसकी इस भावना ने स्वप्न में यह रूप धारण किया हो कि उसका पति स्वयं उससे लग धाकर घर छोड़ रहा है धीर जाने से पहले उसके नाम एक पत्र लिखकर उसके लकिये के नीचे रख रहा है। पति के रात के व्यवहार को देखते हुए सुखदा इसे सम्भव भी समझ सकती थी। पर पति के उसे इस प्रकार छोड़ जाने पर अपने को अरुणित तथा उन लोगों के रहस्य पर पाकर जिनमें उसकी कोई मित्रता नहीं उसकी भीक निकल गई हो। हरीश को जाने की उसकी इच्छा ने तो स्वप्न में उसके पति के स्वयं घर से निकल जाने का रूप धारण कर उसका मार्ग प्रसस्त कर दिया पर अपनी बिबेक-बुद्धि (कॉन्सेप्स) की डाँट-उपट ने तथा उग्रमित प्रत्यावर्तन (रिपेसन) की प्रवृत्ति ने उस की भीक निकल भी। इस प्रकार, बेनेग्र भी स्वप्न द्वारा सुखदा की मूल समस्या—

११२ मैकेर 'सुखदा' पृ ४८।

११३ वही पृ ४८।

११४ Praśastapadābhāṣya V B. S. Benares, 1895, p. 184:

"Samskara-patara.

११५ Siva, Indian Psychology: Perception p. 318-319:

"There are many dreams which are not excited by peripheral nerve-stimulation but by the intensity of the subconscious impressions left by a recent experience ... These dreams are purely hallucinatory in character."

उसके घबरेल मग में बस रहे उसकी 'कॉन्सेप्स' और 'सेक्स' भावना में संघर्ष का आभास दिना देते हैं।

निराधार प्रत्यक्षीकरण (हैल्यूसीनेशन)

स्वप्न के अतिरिक्त बौनेत्र जी ने पात्रों के निराधार प्रत्यक्षीकरण (हैल्यूसीनेशन) के आधार पर भी उनके घबरेल में बस रहे संघर्ष की झलक दिखाई है। 'मनोमात्रा प्रमद'^{१११} स्वप्नों के समान निराधार प्रत्यक्षीकरण भी निरे मनो-रचना^{११२} ही होते हैं। इनमें व्यक्ति उड़ीपन (स्टिमुलस) के अभाव में भी उसे प्रत्यक्ष कर सेता है। इनमें अन्तर केवल यह है कि स्वप्न में निराधार प्रत्यक्षीकरण सुपुष्ठावस्था में होता है और 'हैल्यूसीनेशन' में वह जाग्रतावस्था में ही हो जाता है। जाग्रत अवस्था का प्रत्यक्षीकरण स्वप्न के प्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा स्पष्ट होता है।^{११३} इस क्रिया में अधिकतर दृष्टि तथा ध्वनि-सम्बन्धी प्रत्यक्षीकरण ही पाया जाता है।^{११४} मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों में यह क्रिया साधारण परिस्थिति में भी पाई जाती है।

कस्याणी का निराधार प्रत्यक्षीकरण

बौनेत्र जी के उपन्यास 'कस्याणी' की नायिका भी 'हैल्यूसीनेशन' के रोग का शिकार है। उसे जो निराधार प्रत्यक्ष हुआ उसका व्योम उपन्यास में इस प्रकार मिलता है —

'कोई एक महीने से गुसलबाने से खिसकी की आवाज उन्हें सुन पड़ती थी। जैसे कोई मुह बाधकर रोता हो। साँस का धँसरा गाढ़ा होता कि आवाज धुलू हो जाती। पहले तो वह सुनती रही और टालती गई। सोचा, होगा कुछ। कहीं मन का भ्रम ही न हो। पर बीब वह टाले न टल सकी। जैसे वह आवाज उठती हो तो अन्तर कलेजे को पकड़ लेती हो। कई बार झटपट वह वहाँ गई। पर देखे तो कहीं कुछ नहीं पहुँचने पर सब सुनसान बीखता था। वह झोट भावी और अपनी पंचराहट पर हँसना चाहती। ऐसे

१११ Madhava Sarawati, 'Mitabhashini' p. 68

११२ Sinha, 'Indian Psychology Perception' p. 314:

"Hallucinations are pure creations of the mind. And some dreams are also pure creations of the mind."

११३ Frank Padmore Apparitions and Thought Transference p. 185.

"A dream is a hallucination in sleep, and a hallucination is only a waking dream, though it is probable that the waking impression seeing that it can contend on equal terms with the impression derived from the external objects, is more vivid than the common run of dream."

११४ शरितान्त सिन्हा 'मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान' पृ १५७।

कई दिन निरुक्त थो। हठात् उधर से ध्यान मोड़ना थाहा। पर रह-रह कर सिसकी मरती किसी स्त्री की वह आवाज कानों पर धाती ही थी। सुनकर भी मैं होम चढ़ती। कुछ सुझता नहीं था। एक रोज साधी रात बीते वह सपने से जाँक कर बगी। सम्नाटा था। बत्ती मद्धम जल रही थी। सपने सिर में घुम रहे थे। तभी सुनती क्या है कि जैसे गुसलखाने में कुछ फुस फुस आवाजें हो रही हों। कमरे में वह धकेली थी। मारे डर के वह नहीं की वहीं पड़ी सी रही। पर काम चौकन्ने थे। धीरे बेतना उद्दीप्त थी। कुछ दूर से वह आवाजें बरा प्रबल हुईं। जैसे किसी स्त्री धीरे पुरुष में बहस छिड़ी हो। बहस बरा में बड़ेका बल आई। अब कुछ साफ सुनाई देने लगा—

एक पुरुष कण्ठ ने कहा—बुप नहीं रहेगी क्यों? स्त्री कण्ठ ने उत्तर दिया—मैं नहीं रहूँगी बुप। कभी नहीं रहूँगी। मुझे मार क्यों नहीं डालते? लेकिन बुप मैं नहीं रहूँगी। न

‘नहीं रहेगी? मुझे गुस्सा न दिया।’

‘ओ मन मैं है पुरा क्यों नहीं कर डालते हो? तो भुक्त को मार डालो। पर समझ रखना बुप मैं मरने के बाद न रहूँगी।’

‘नहीं रहेगी?’

‘नहीं नहीं नहीं रहूँगी।’

‘देख मैं फिर कहता हूँ।’

‘नहीं नहीं नहीं। हाँ बौंटो मसा—’

‘नहीं? तो ले मत रह बुप—’

उसके बाद कुछ आवाज मराई सी निकली। छटपटाहट सुनाई दी धीरे-धीरे सब शांत।

कस्याणी तो जैसे इस पर पत्थर बल आई थी। मति-मति उसकी लो गई थी। इतने में पहराई आँखों से देखती है कि एक आदमी उसी तरफ से आकर उसके कमरे में से बार-बार बसा जा रहा है। उनकी बिम्बी बँध गई। डर के मारे चीख भी न सकी। दाएँ में वह आदमी जाने कहाँ बिसा गया। उन्हें पसोना छूट जाता था। कुछ पल बाद होश हुआ, तब धीरे से वह भीती। लाँग बग धाये पर तब तक सब लुप्त हो चुका था। कस्याणी घाँसे काँड़े जमा हुए उन सब नीकर आकरों को देखती रह गई। कुछ भी मुँह से न बतला सकी।

उसके बाद उनका कहना है कि कई बार वह स्त्री उन्हें धोती है। इधर तीन रात्र से वह पीछा ही नहीं छोड़ती। जब उसका गला बँट जा रहा था धीरे घाँसे निरुक्त पड़ रही थी, उसकी वह मूर्ति बार-बार सामने पार होती है। मुसलमानों में कस्याणी नहीं जाती पर यह कमरे में आ जाती।

मन से वह दूर नहीं होती। सचहरे बचन की, प्रतिधाय सुखी, सभी जैसे समानी उमर भी नहीं है। पर्यवर्ती है। सब भी वह इस घर में रहती है और रोब मिलती है। कस्याली बचती है पर कहाँ बचे ? उसकी पत्नी धीरे, कायर युवा ।

(कस्याली—पृ० ७१—१५)

‘इन्फैन्सिजल’ की पृष्ठभूमि

कस्याली के इस प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या में पहले से पहले उसे इस स्थिति तक पहुँचाने वाले संवेदन कारणों को पकड़ना होगा। कस्याली के जीवन में सेनाक आरम्भ से ही मृत्यु उत्सव का प्रभाव दिखाता है। वह विश्वास कर लेना चाहती है कि धीरे मर जाएगी “मैं अधिक कास नहीं बीटूँगी। ऐसा बीना कठिन और व्यर्थ है”^{१००} —“आप मानिए या न मानिए, मैं आपसे कहती हूँ कि इस बार मैं नहीं बचूँगी”^{१०१} इस वय के आगे मैं नहीं बीटूँगी।”^{१०२} कस्याली गर्भवती है। गर्भवती स्त्री ज्यों-ज्यों प्रसव के निकट पहुँचती जाती है उसके बचपन के वने हुए डर पुनः उभर आते हैं। यदि वह अपने को अजाने में ही पकड़ी गई समझती हो वह महसूस करती हो कि यमोत्पन्न आध्यात्मिक विह्वल से उसका आकर्षण कम हो रहा है और बच्चा होने पर उसकी स्वतन्त्रता में भी बाधा पड़ेगी तो वह यह विश्वास कर लेना चाहती है कि प्रसव के समय या तो वह मर जाएगी और वा बच्चा मर जाएगा। यदि वह अपने को किसी प्रकार अपराधिन पाती हो तो उसका यह विश्वास और भी पक्का हो जाता है। ऐसी स्त्री प्रसव को मृत्यु-वन्ध समझ बैठती है।^{१०३} कस्याली भी इसी प्रकार की स्त्री है। बच्चों के प्रति अपने आकर्षण को वह मन्द नहीं होने देना चाहती उसकी नित्य गई तथा अधिरिक्त सज्जा इसका प्रमाण है। समाज में अपने स्वतन्त्र विहार में वह बच्चों को बाधा समझती है इसलिए उसकी दोनों सक्रियता कामेष्ट में ही रहती है।^{१०४} कस्याली में निराधार मृत्यु भय के घर कर जाने का सबसे बड़ा कारण यह है कि पर-पुरुषों से सम्बन्ध रखने के कारण वह

१०० बेनेट, ‘कस्याली’, पृ० १०।

१०१ वही पृ० १६।

१०२ वही पृ० ४२।

१०३ Simone De Beauvoir: ‘The Second Sex’ Parahley’s English translation, Oxford 1953, p 484।

“Pregnancy seems to them (those who see themselves essentially as erotic objects) no holiday no enrichment at all, but rather a diminution of the ego... When the woman approaches her term, all her childish terrors come to light again if through feeling of guilt she believes she is under her mother’s curse she persuades herself that she is going to die.”

१०४ बेनेट, ‘कस्याली’ पृ० ७२।

भीतर ही भीतर अपने को पति तथा समाज के प्रति अपराधिन पाती है। इस विषय में वह बड़ीस साहज से प्रश्न भी करती है "जो उस समाज के नियम को भंग करता है उसका क्या होना चाहिए ?—मैं पूछती हूँ कि कुराचारिणी स्त्री को क्यों नहीं मर जाना चाहिए ?" १०५ "मैं पापिष्ठा हूँ मुझे मर चुपौ। मुझे कोई क्यों न मृदा ? धर्म के भायक मैं नहीं हूँ।" १०६ इससिए यह विश्वास कर लेना चाहती है कि प्रसव के समय उसे अपराधों के दह-स्वरूप मृत्यु मिलेगी। मृत्यु का वह चेतन में स्वागत भी करती है क्योंकि इस प्रकार वह गृहस्थ-जीवन को नित्यप्रति की कमह से भी छूट जाएगी। इस प्रकार कल्याणी की गर्भस्थिति अपने को आकर्षण का केन्द्र बनाए रखने की उसकी प्रवृत्ति विवाहित जीवन से उसका असामंजस्य तथा उसकी अपराध-भावना सब मिलाकर उसमें धीरे-धीरे मृत्यु के आकारण भय (फोबिया) को विकसित करते रहते हैं जो बाद में उसके गिराधार प्रत्यक्षीकरण का मूल कारण बनता है।

व्याख्या

'हेल्मुसीनेसन' की आरम्भिक अवस्था में तो वह अपने प्रत्यक्षीकरण के सत्य होने की बात को सायास टालती रही "उसने सोचा कि होना कुछ। कहीं मन का भय ही न हो" १०७ पर बाद में ज्यों ज्यों उसका रोम बढ़ता गया है आवाजें उसके टालने की मरसक चेष्टा करने पर भी न टर्सी और उन्हें असत्य मानने की उसकी चेष्टा को झँझोड़ने लगी। तब हार कर वह उन्हें सत्य मानने के लिए मजबूर हो

१०५, Bagnat 'Psychology of Personality' p. 333 :

"A comparison of Col. 2 (fears reported by adjusted wives) with Col. 6 (fears reported by unadjusted wives) shows a decided excess of some fears for the maladjusted group.

१०६, Ibid., p. 334

"Because such behaviour was contrary to her own moral standards (or Super-Ego demands) she resisted the temptation but found it necessary to develop many defences...Those included...the fear of death (punishment for her bad thoughts.)"

१०७ McDougall, An Outline of Psychology p. 373 :

"The hallucinated patient in an early stage of his trouble may dismiss by an effort the phantom figures or the voices whispering of threats and persecution. And so long as he can do this, he does not believe them real, in spite of their sensory vividness. But in a more advanced stage of the disorder he cannot dismiss them; the phantom of the voice is insistent resists his best efforts to dismiss it, he then begins to believe in its reality. And the most complete proof of the reality of any object is the resistance offered by it to our bodily efforts to move or change it. Solidity is the over-whelming evidence of reality."

मई। मंत्रद्यूबस के शब्दों में किसी वस्तु की यथार्थता का हमारे लिए सबसे बड़ा प्रमाण है उसे छूटाने या बदलने की हमारी प्रत्येक शारीरिक चेष्टा में उस द्वारा उत्पन्न वाष्पकता।^{१०८} कन्साखी के 'हैल्थ्यूसीनेशन' को प्रारम्भिक अवस्था से निकालना हमें भ्रम में डालने में सामर्थ्य एक कारण उसकी शारीरिक पीने की शक्ति भी हो जो उसने अपनी गिरावा को भुस जाने के लिए खास ली थी 'मुझे सामर्थ्य इस वस्तु मिला है। पर मला मैंने किया है और क्या करूँ ? एक बहू (पति) हैं जो बड़ी हिम्मत दिखाकर मुझे छोड़ कर चले गये हैं। एक ये (देवताकीकर) हैं जिन्हें मैं पक्का जानती हूँ कि इन्होंने स्त्री की हत्या की है। एक घायल हैं जो किसी को कुछ सहाय नहीं देंगे। फिर मैं क्या करूँ ? मला करती हूँ तो कौन कहने वाला है कि क्यों करती हूँ ? १०६

तात्कालिक कारण

कन्साखी के उस रात के प्रत्यक्षीकरण का जिसमें उसे पहले बहू और बाद में किसी स्त्री के बड़ कण्ठ से निकली आवाज सुनाई दी और फिर उसने एक आधमी को अपने कमरे में से गुजरते देखा—तात्कालिक कारण उसके परदेसी पति का बहू पत्र था जिसमें उसने उसे सब प्रकार से अपराधी ठहराकर बताया था कि वह भ्रान्त की सहायता से अपना अधिकार प्राप्त करेगा —

तुम जानती हो तुम्हारी क्या हालत थी जब मैंने तुमसे विवाह करके तुम्हें बचाया। तुम्हारा कुलीन विवाह असम्भव था। माँ-बाप को तुम सब प्यारी थीं। मैंने तुम्हारा उधार किया 'तुम्हारे कुछ एक पर तो बन्ना था तुम समझती हो तुम कमाती हो ? लेकिन जब तुम मुझ भी उठ सकती हो तो मेरी नशीलता' कानून हिन्दी स्त्री को हक नहीं देता। पैसे पर अधिकार मेरा है। तुम्हारा ट्रस्ट भी नाबालक है क्योंकि मैं कहूँगा कि मेरे वस्तुवत्त फर्मी हैं। तुम यह सकती हो पर मातहत बनकर नहीं तो नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम्हें सहायकों का सहारा है पर मुझे डेकना है कि मैं कौन हूँ और क्या कहते हैं। १०७

उस रात बहुत सम्भव है कि वह पत्र की बात सोचते-सोचते निराशापूर्ण स्थिति में ही सोई हो। कमरे में वह बीसे भी शकेशी भी रही थी जिससे उसके भय को और भी प्रभय मिला होगा और अर्ध-आधतावस्था में उसने यह प्रत्यक्षीकरण किया।

^{१०८} McDougall, *An Outline of Psychology* p. 372.

^{१०९} मैनेत्र, 'कन्साखी' पृ. २२६३।

^{११०} वही, पृ. ३०।

विश्लेषण

इस प्रत्यक्षीकरण में हल महाराष्ट्रीय स्त्री की भावगमन अनुभूति कस्याली की अनुभूति के समान होने से कहा जा सकता है कि उस प्रत्यक्षीकरण में कस्याली की 'ईयो' ही उस स्त्री के रूप में प्रकट हुई होगी।^{१५१} कस्याली स्वयं भी तो कहती है कि "वह सुन्दरी युवती मुझे बार-बार देखती है बार-बार चींखती है। सोचती हूँ कि वह हम सबकी प्रतिनिधि है।"^{१५२} कस्याली के पति ने उसे पीटा तो कई बार या ही पर वह इस विचार को न सह सकने के कारण कि उसका पति उसके प्रति हिंसक भाव रख सकता है, उसे दमित (रिप्रेस्) किये हुए थी। उसके ये शब्द—'हूँ' वह (उसकी पिटाई की बटना) भूठ है। नहीं वह कुछ नहीं। मैं उसको सही नहीं कह सकती तो वह समझ नहीं तो क्या है? और यदि मेरी पसली पर कुछ उन्होंने कह-सुन लिया तो क्या वह याद रखने की बात है।^{१५३}—इसका प्रमाण है। उसके पति की उसके प्रति हिंसक भावना ने जिसका वह दमन करती रही थी इस प्रत्यक्षीकरण में महाराष्ट्रीय पुरुष का रूप धारण किया। दोनों में धर्म्य हुआ और अंत में उस स्त्री की मृत्यु के रूप में कस्याली का मृत्यु-मय (ईय कोबिया) प्रकट हुआ। इस प्रकार, कस्याली के इस निरावार प्रत्यक्षीकरण के रूप में जेनेन्ड की उसके अचेतन में सक्रिय 'कांसेन्स' तथा 'सेन्स' भावना के सर्प की एक झलक दिखा देते हैं।

जेनेन्ड के औपग्यासिक चरित्र चित्रण में कुदृष्टता

विषय की गूढ़ता

मूलप्रणीत विचारधारा

हिन्दी-उपन्यास अथवा में जेनेन्ड की एक पहली के रूप में आये। हिन्दी के वह पहले उपन्यासकार हैं जिसने अपने पाठकों को बची-बोझाई, किसी किसी सामाजिक नैतिकता की संकीर्णता से निकाल कर मूल नैतिकता तक पहुँचाने के लिए उन्हें गहरे आत्म-विमर्श की ओर प्रवृत्त किया। जेनेन्ड की तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी-उपन्यास के पाठक में सामाजिक मूल्यों को परखने वाली अपनी निर्णायक बुद्धि पर जो एक प्रकार का विश्वास हो गया था उसे उनके उपन्यासों ने एकदम अक्षोभ दिया और धारण किया कि वह अभी और गहरे पठे। अपने विरपोपित नैतिक मूल्यों को इस प्रकार

१५१ Freud, 'Interpretation of Dreams' p. 299 300 :

"If I do not know behind which of the person which occur in the dream I am to look for my ego. I observe the following rule : that person in the dream who is subject to an emotion which I experience while asleep, is the one that conceals my ego."

१५२ जेनेन्ड, 'कस्याली' पृ. २८।

१५३ वही, पृ. २८।

मुठसामा जाता देख पाठक को बेहद भुभ्रमाहृत हुई और वह कोसते-कोसते यह कहना चाहते समा कि मेरा क्या समझ-बुझ मिलता जा रहा है पर वह ऐसा कह नहीं पाया। मेरा हाथ प्रतिपादित मुर्खों की सत्यता को संविध समझते हुए भी वह यह महसूस करते पर मजबूर हो गया कि मेरा हाथ भी यदि बुनीदी में सफाई कर रहे है। 'कल्याणी' के प्रकाशित होने के कुछ ही दिनों बाद आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से प्रसारित एक समीक्षा में प्रजेय जी भागो जैन के पाठकों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। 'यै फिर कहना चाहता हूँ कि उसके (कल्याणी के) पढ़ने से बेहद भ्रमाहृत होती है और मैं मानता हूँ कि वह भ्रमाहृत सब कुछ न होकर भी इस बात का सबूत पक्कर है कि मेरा कहीं बहुत गहरे पर चोट की है।'^{१८४} पर सभी पाठक तो ऐसे स्पष्टवादी नहीं हो सकते। सबियों से पड़े उत्कार एकदम कैसे बूत सकते हैं। इसलिए जैन जी से भी बड़ी भाषा की गयी जो उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से की गयी थी। उनके उपन्यासों में किसी विविष्ट चिन्तन-बाध के आधार पर समस्याओं का निरूपण छोड़ा जाने समा पर निरुद्धा ॥ हाथ लगी। बाँटों और से भावार्थ उठने लगी जैन के उपन्यास पढ़ेगी हैं 'इस प्रहेलिका पर हम सोचते ही रह जाते हैं। कुछ पार नहीं मिलता कुछ मेव नहीं पाते।'^{१८५} — 'विचार-मीलकता का जो सक्रिय और स्पष्ट स्वरूप हम एक मीलक विचारक और कलाकार की कृति में देखने को उत्सुक रहते हैं उसकी आधिक पूर्ति भी इन उपन्यासों द्वारा नहीं होती। हम एक कदम भावना से दूसरी कदम भावना में घटकते रहते हैं।'^{१८६} इस प्रकार मेरा की आत्मा से उसकी विचारबाध से सामुग्य स्थापित न कर सकने के कारण उसके पात्रों और उनकी विविष्ट स्थितियों से जिनका एकात्मिकरण नहीं हो पाया उनके लिए ये उपन्यास दुर्घोष बने रहते हैं।

प्रश्न की ओर में

जैन जी के उपन्यासों की बुराहता यदि पाठकों की मान्यताओं ॥ उनकी विचारबाध से मेव न जा सकने से ही हो तो जो दिना किसी प्रकार के पुनर्ग्रह के उनके उपन्यासों को पढ़ें उन्हें यह दिखायत नहीं होगी चाहिए। पर वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। श्री प्रभाकर माधवे के लिए भी जिनके बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने जैन और उनके साहित्य को निकट से देखा और पढ़ा है 'जैन एक ऐसी समझ है जो पढ़ेगी से भी अधिक थुड़ हो। वे हमने सरस हैं कि उनकी सरलता भी बर सये।'^{१८७} यही नहीं जैन जी स्वयं भी अपनी इस रहस्यमयता से अपरि

^{१८४} 'भारती' अगस्त १९४१ पृ. ११।

^{१८५} पुरुषोत्तम पण्डित, 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य के कुछ कलाकार', 'छात्र' मार्च १९३२।

^{१८६} मन्मथनार गजपेयी, 'आधुनिक साहित्य' 'भारती' गवर्नर लाइब्रेरी से २० अ. १ १९३१।

^{१८७} प्रभाकर माधवे श्री जैन-मन्मथनार—एक व्यक्तित्व 'इस' अगस्त, १९३१।

जित नहीं। इसी को सटप करके हुए अपने आलोचकों के प्रति उन्होंने एक बार लिखा भी था— 'गहन पहचान में उतर कर जसमा ऐसा सरस नहीं होता जैसे ऊपर मैदान में चलना। सिखना क्यों है? अपने भीतर की उपभक्तों को सुसम्भ पाने के लिए भी तो वह है। वहाँ भीतर बड़ी बकरी घोंघरी पतियाँ हैं, वहाँ प्रकाश हो जाए तो बात ही क्या। इससे वहाँ पँठ कर राह खोजने वाले की गति कुछ भीमी या कुछ दुर्बल या कुछ बकरीभी सी हो जाए तो तम्य मानना चाहिए। यह उसके लिए गर्व की बात नहीं साधारण की बात है।'^{१८८}

तो क्या उनके उपन्यासों की रहस्यमयता का कारण जेनेत्र भी उठने नहीं बिठना कि उनके विषय—मानवमन—की अपनी गूढ़ता है? पात्रों की मानसिक अनुभूतियों का चित्रण तो हिन्दी-उपन्यास में जेनेत्र की के धाने से पहले भी होता था पर वे अनुभूतियाँ पात्रों के चेतन मन की होती थीं चायद इसी लिए वे मानवी भाषा में जो चेतन मन की ही एक उपज है स्पष्ट अभिव्यक्ति भी पा जाती थीं। पर जेनेत्र की पात्रों के चेतन में नहीं घटके रहते प्रत्युत उसे भीर कर उनके अचेतन की परत पर परत खोमने लग जाते हैं। तो क्या अचेतन का उसी प्रकार स्पष्ट रूप नहीं पकड़ में आ सकता जिस प्रकार चेतन का? मनोविश्लेषण प्रणाली के प्रवर्तक सिगमंड फ्रायड ने अचेतन की व्याख्या करते हुए एक बार लिखा था कि उसकी भीतरी प्रकृति हमारे लिए उसी प्रकार अज्ञेय रहती है जिस प्रकार बाह्य जगत् की वास्तविकता अचेतन मन द्वारा उपलब्ध सामग्री में उसकी उठनी ही प्रभूरी नमक मिमरी है बिठनी हमारी आनन्दियों द्वारा बाह्य जगत् की।^{१८९} मनुष्य के चेतन व्यापारों में प्रतिबिम्बित अचेतन को समझ सकना साधारण लोगों के नहीं मनोविश्लेषकों के ही बस की बात है। हम लोग तो कभी ही उसमें झाँक पाते होंगे। अपनी चेतन कल्पनाओं और निचारों की भाषा में ही हम इसे थोड़ा-बहुत जो कुछ भी हो समझ पाते हैं। जब यह अचेतन कल्पनाओं और निचारों की भाषा में भी पूरा समझ नहीं आ सकता तो उसे स्पष्टतया समझाया कैसे आ सकेगा और वह भी चर्खों की ससीम भाषा में। बुद्धिमयित ये शब्द सतह की सहरों को घिनते हैं सहराई को वे कहाँ जाते हैं? क्या वे उसकी तनिक भी पाते हैं जो अस्तव्य है? जो अनुभव होता है, क्या वह चर्खों में आता है?'^{१९०}

१८८ जेनेत्र कुमार, 'साहित्य का जेव और डेव' पृ १०६।

१८९ Hoffman, Freudianism and the Literary Mind p. 71.

"It inner nature is as unknown to us as the reality of the external world and it is just as imperfectly reported to us through the data of unconsciousness as is the external world through the indications of our sensory organs." (S. Freud).

१९० जेनेत्र कुमार, कथापरी पृ ८०।

पाठकों के लिए आवास-साध्य

तो क्या स्पष्ट अभिव्यक्ति की यह साचारी जिसका जगह भी न उल्लेख किया है। उनकी ही नहीं सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की साचारी है? यदि यह सच है तो मानना होगा कि सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में बोझी बहुत स्पष्टता बरकर रहती है। जोसेफ फ्रैंक ने जब एक बार कहा था कि—“मनोवैज्ञानिक उपन्यास साधारण धर्म में नहीं पड़े जा सकते। उनके पुनर्पठन की अपेक्षा रहती है।”^{१११} तो कदाचित् उसका यही आशय था कि एक बार पढ़ने से वे समझ में नहीं आते। सच तो यह है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास कबल भेषक से नहीं पाठक से भी आवास की अपेक्षा करता है।^{११२} और यही माँग जैनेन्द्र भी के उपन्यास भी अपने पाठकों से करते हैं। वह बात उन्होंने उपन्यास-लेख में पद्यापण करते ही खोल दी थी—“मैंने जयहनुमद कहानी के तार की कड़ियाँ तोड़ दी हैं। यही पाठक को बोझ बनना पड़ता है। और समझता हूँ पाठक के लिए यह बोझ आवास बाधनीय होता है—मच्छा ही भगता है।”^{११३} समझा यह कबल कथामक पर ही नहीं पात्रों के चरित्र चित्रण पर भी लागू होता है।

“जैनेन्द्रपत्र”

जैनेन्द्र भी के उपन्यास यदि आवास-साध्य ही हों तब तो कोई बड़ी बात नहीं बिना किसी पूर्वग्रह के बोझा आवासपूर्वक पढ़ने से उनके उपन्यास स्पष्ट हो जाने चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो मानना पड़ेगा कि उनके उपन्यासों की खुस्वमयता उनकी मूलग्रही विचारधारा के कारण या उनके उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक होने के कारण ही नहीं उनकी उपन्यास-कला के वैशिष्ट्य के कारण उसमें व्याप्त ‘जैनेन्द्रपत्र’^{११४} के कारण भी हो सकती है। तो फिर यह ‘जैनेन्द्रपत्र’ क्या है? ^{११२}

१११ Edol, 'Psychological Novel' p. 108:

“A stream of consciousness novel cannot be read in the usual sense—it can only be re-read” (Joseph Frank).

११२ Ibid., 100-101:

“We are asked to see into the characters, to make deductions from such data as may be offered us—and at the same time to live for ourselves the experience with which we are confronted on the printed page. This is asking a great deal of the reader.”

११३ जैनेन्द्र कुमार, ‘परब’ पृ. ३।

११४ B. H. Vatsyayan, *Hindi Literature Contemporary Indian Literature* Sahitya Akademi, New Delhi, 1967 p. 80:

“Another writer who cannot easily be placed in the general movement of Hindi Literature is Jankendra Kumar whose novels and short stories constitute one of the most significant literary contributions of his period.”

११५ रेडिक्ले—‘अरुण’ जनवरी १९४१ पृ. ३२।

दौली प्रदर्शन

नयी शैलियों के प्रति मोह

जैनेन्द्र जी की उपन्यास-कला की पहली विशेषता है चरित्रोद्घाटन की नई नई प्रणालियों के प्रति उनका मोह। 'परख' से लेकर 'अयवर्धन' तक उन्होंने बरबस बरबस कर चरित्र चित्रण की कई प्रणालियों को अपनाया है। 'परख' 'सुनीता' और 'विभर्त' में उन्होंने प्रेमचन्द की तरह परम्परागत बर्णनात्मक शैली (उपन्यासकार द्वारा प्रथम पुरुष में बर्णन) अपनाई है। 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' की शैली बीबनी की रही है। उपन्यास का एक पात्र प्रथम पुरुष में धीरे-धीरे नायिका के जीवनवृत्त और उसके चरित्र-विकास पर प्रकाश डालता रहता है। 'अयवर्धन' की शैली देखने को तो डायरी की है, पर वास्तव में यह 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' वाली शैली का ही एक रूपान्तर है क्योंकि इसमें नायक-नायिका का वृत्त एक ही पात्र की डायरी में लिखा मिसता है। मिल्न-मिल्न पात्रों की डायरियों में नहीं। 'सुखदा' और 'व्यतीत' में 'भारतकथा' शैली का प्रयोग हुआ है—नायक अपना नायिका उत्तम पुरुष में आपबीती सुनाते हुए स्वयं ही अपने को सोनते बसते हैं।

इतिहास ज्ञानी इस प्रकार, नई-नई शैलियों के प्रति आकर्षण के कारण जैनेन्द्र जी उपन्यासकार की सहजोपलब्ध स्वतन्त्रता का उत्साहपूर्वक स्वागत करते अपने लिए सीमाओं का निर्माण करते रहे हैं। इतिहास ज्ञानी लेखक द्वारा प्रथम पुरुष में पात्रों को उद्घाटित करते रहना आज चाहे कितनी ही क्लृप्तमन्त्री जाए, सर्वोत्तम रही है। यह शैली उपन्यासकार को एक साथ 'स्रष्टा' और 'कलाकार' दोनों ही बनाकर उसके काम को सरल बना देती है। हम यदि एक दूसरे के लिए—और बहुधा अपने लिए भी—एक पहेली हैं तो इसलिए कि जो हमारा स्रष्टा है, हमारे बारे में सब कुछ जानता है, वह मौन है—कुछ बताता नहीं और हम जो एक-दूसरे के स्वभाव की व्याख्या करने का बम भरते हैं, कुछ जानते नहीं केवल अनुमान के आधार पर ही दीड़ लगाते हैं। इसलिए इस शैली में और चाहे कोई दोष या जाए, पात्रों का चरित्र विकास अस्पष्ट नहीं रह सकता क्योंकि सम्बन्धी सर्वान्वर्तनी लेखक भाव स्पष्टता पढ़ने पर कभी भी उनके विकास की टूटी कड़ियाँ जोड़ सकता है। 'परख' 'सुनीता' और 'विभर्त' में जैनेन्द्र जी ने यह शैली अपनाई तो है पर बड़े संकोच के साथ। यदि वह अपने अधिकारों का पूरा-पूरा सामं सठाकर पात्रों की विविध क्रिया प्रतिक्रिया के प्रेरकों में एकमुखता से धाते तो वे पहेली न बने रहते। यही भी वे 'सिरजनहार' की बराबरी करने का मोह नहीं छोड़ सके हैं—'सृष्टि ही तो दीखती

है सप्ता कहाँ बीजता है।^{१६१} तो फिर अपनी सृष्टि उपन्यास में वह क्यों बिखरि
बै।

आत्मकथा-सीरी : 'सुखदा' और 'व्यतीत' की आत्मकथा-सीरी सजीव और
प्रभावोत्पादक होते हुए भी अपनी सीमाओं में जकड़ी हुई है। आत्मविश्लेषण
प्रणाली की मजबूरियाँ ही इन सीरी की मजबूरियाँ हैं। आत्मविश्लेषण में पात्र को
अपनी ही विश्लेषण सक्ति पर निर्भर करना होता है क्योंकि उसकी सहायता के लिए
कोई मनोविश्लेषक तो वहाँ होता नहीं। इसी प्रकार आत्मकथात्मक उपन्यासों में
पात्र को अपने चरित्र-प्रकाशन के लिए स्वयं ही सब कुछ करना पड़ता है। उपन्यास
कार उसकी कोई प्रत्यक्ष सहायता नहीं कर सकता। आत्मविश्लेषण साधारण व्यक्ति
के बूते की बात नहीं। इसके लिए कई वर्षों का अभ्यास और साधना अपेक्षित है।
मनोविश्लेषक की सहायता के बिना यदि कोई मुक्त धारण कर सके तो यही
बहुत होता है। यह काम तो सुखदा और जयंत दोनों ही अच्छी तरह कर लेते हैं पर
इतने से ही तो काम नहीं चल जाता। माना कि उनके द्वारा दिए गए मुक्त धारणों
के व्योरे में उनकी मनोवैज्ञानिक समझों के अचेतन कारण निहित हैं पर उन्हें
पकड़ तो नहीं सकेगा जो अचेतन मन की भाषा समझने की विद्या में विद्यारथ हो।
सुखदा और जयंत में यदि अपनी मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों के अचेतन कारण पकड़ने
की सुरु होती तो वे असहाय होकर इस प्रकार न कहते 'मम भी मैं क्यों यह
नहीं समझ पाती कि व्यक्ति जो जाहूँ है ठीक वही उसके करने से क्यों नहीं हो
पाता।'^{१६२} 'एकएक जगह छोड़ने का निश्चय कैसे बन गया क्यों कर बन कर टस
न सका धाव भी मैं जानता नहीं हूँ। सिवा इसके कि अमाग्य साथ चलता है और
क्या कहूँ ?'^{१६३} जब पात्र अपने अचेतन प्रेरकों को बता सकने में अपनी असमर्थता
प्रकट कर दे और उपन्यासकार अपनी ओर से कुछ भी न बता सकने के लिए मजबूर
हो तो पाठक के पक्षे क्या पड़ेगा। वह तो भ्रमता कर ही रह जाएगा। पाठक अनु-
मयी मनोविश्लेषक हो तो भी शायद ही वह पात्रों को पूरा-पूरा समझ सकेगा क्यों
कि पात्रों द्वारा दिए गए स्वल्प विवरण पर ही उसे संतोष करना पड़ेगा। पात्रों से
प्रश्नोत्तर द्वारा और कुछ पाने की सुविधा जो मनोविश्लेषक का सहजाधिकार माना
जाता है, उपन्यास के पाठक को कहाँ ?

१६१. (क) मैनेज़, 'सुनीता' प्रकाशना पृ. ६।

(ख) Allen, 'Writers on Writing' p. 137 :

"The artist should be in his work like God in creation invisible and all
powerful; he should be felt everywhere and ~~even~~ nowhere." (Gustave
Flaubert to Mlle de Chantepie.)

१६२. मैनेज़, 'सुनीता' पृ. ७२।

१६३. मैनेज़, 'व्यतीत' पृ. ४०।

मनोविश्लेषक-दीप्ती त्यागपत्र 'कस्याणी' और 'जयवर्धन' की प्रणाली को मानक-पाठ-दीप्ती से भी अधिक पक्करदार है। 'सुखदा' और 'जयवर्धन' को तो अपने-आप का ही जानना-समझना है पर प्रमोद बकीस साहब और हूस्टन को पहले दूसरों को—अमर—मृणाल कस्याणी, जयवर्धन और इला को—समझना है और फिर पाठकों को समझाना है। उनकी सब से बड़ी कठिनाई यह है कि यह सब कुछ उन्हें अनुमति नहीं देते अनुमान के बस पर करना पड़ता है। अपने को समझने की प्रेरणा दूसरों को समझना जितना अधिक कठिन है उतने ही अधिक प्रस्पष्ट हो गए हैं वे उपन्यास—'सुखदा' और 'म्यतीत' से। 'त्यागपत्र' के प्रमोद 'कस्याणी' के बकीस साहब तथा 'जयवर्धन' के विभवर हूस्टन को न्यूनाधिक रूप में एक मनोविश्लेषक का काम करना पड़ता है और अपने पात्रों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं के प्रवेदन कारणों की समझने के लिए मुक्त आसक्त आश्रयता विश्लेषण स्वप्न-विश्लेषण आदि प्रणालियों का प्रयोग करना पड़ा है जिनके बिना मनोविश्लेषक का मुकाबला नहीं। मना विश्लेषक प्रणाली में उपयुक्त और पर्याप्त सामग्री के संकलन के लिए मनोविश्लेषक और पात्र का प्रतिदिन का सम्पर्क कम से कम दो तीन वर्ष तक चलता रहता है। अब कहीं, मनोविश्लेषक अपने को इस स्थिति में समझता है कि कुछ अनुमान स्या उसके। १६६ पर 'त्यागपत्र' का प्रमोद होष पकड़ने पर केवल तीन बार बार मृणाल से मिलता है और वह भी कुछ दृष्टियों के लिए। 'कस्याणी' के बकीस साहब का भी कस्याणी के पास धाना-जाना उसकी वर्तमानता तक ही रहता है और वह भी प्रति दिन नहीं कभी-कभी ही। 'जयवर्धन' का 'हूस्टन' तो सप्ताह भर में जयवर्धन के नेतृत्व को पा लेना चाहता है। एक तो व्यावसायिक मनोविश्लेषक न होने के कारण उन्हें अपने पात्रों को मुक्त आसक्त की स्थिति में आने में बड़ी कठिनाईओं का सामना करना पड़ा यही एक ही अपमान भी सहना पड़ा। दूसरे वे अपने पात्रों के मुक्त आसक्तों, उनके निराधार प्रत्यक्षीकरण तथा स्वप्न की उचित व्याख्या करने में भी असमर्थ रहे हैं। ऐसी स्थिति में, जब प्रधान पात्र अपना समुत्पन्न जो बँटा हो, मनोविश्लेषक पान नुत्पष्ट व्याख्या कर सकने में असमर्थ हो और सेपक बीच में रहन न वे सक्ता हो पाठक से ही आशा रखना कि वह मनोविश्लेषक की-सी सोचता रहे क्या उसके प्रति आग्रह करना न होगा ?

निर्मित सीमाएं

इस प्रकार, कई-मई सीमियों के मोह में पड़ पर बीमर भी द्वारा उपन्यासकार के सामान्य अधिकारों का उत्तरोत्तर त्याग करके अपने लिए सीमाओं का निर्माण

El Rach 'Psychology and Life' p. 531 :

"Psycho-analysis has also been criticised because it has an intensive method of therapy that requires a great deal of time and money Daily contacts over a two or even three year period are not at all uncommon."

करते जगना भी उनके पात्रों की दुःखता का एक कारण हो सकता है। पर कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र भी ने ही तो इन प्रणालियों का प्रयोग नहीं किया जगमग सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में इन्हें अपनाया जाता है। यहाँ यह बता देना अन्यायपूर्ण न होगा कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार उपन्यास में दिखाई चाहे न हैं उसमें अपने प्रवेश के अधिकार को वे इस प्रकार तिलांजलि कभी नहीं देते जैसा कि जैनेन्द्र भी करते हैं। श्वेत्कार एक धीमती से तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जायगी। इसके अतिरिक्त जब भी कोई उपन्यासकार किसी ऐसी प्रणाली का प्रयोग करता है जिसका सम्बन्ध भ्रष्टाचार के प्रकाशन से हो तो उसके उपन्यास में उचित टीका टिप्पणी का समावेश पाठकों की दृष्टि से उतना ही प्रायश्चित्त होता है जितना कि मनोविश्लेषण प्रणाली में पात्र (सम्बन्ध) की सहायता के लिए उसके भ्रष्टाचार प्रेरकों की व्याख्या। इसलिये, यह मानना होगा कि जब तक पाठकों का भ्रष्टाचार तक पहुँचाने वाली प्रणालियों की प्रक्रिया पर सहज अधिकार नहीं हो जाता उपन्यासों में उचित व्याख्या के समावेश द्वारा उसे समझाने का दायित्व उपन्यासकार पर ही रहेगा। उपन्यासकार अपने इस दायित्व से कतराएगा तो उसके पात्र पहेली से घिसने।^१ कदाचित् यही कारण है कि पात्रोन्मीलन की तरह धाजकस उपन्यासकार अपनी कृतियों के साथ टिप्पणियाँ भी जोड़ देते हैं।

पाठक किसी उपन्यास को केवल पढ़ता ही नहीं साब-साब अनुभव भी करता जाता है, और वहाँ उसकी अनुभूतियाँ किसी एक भी पात्र की अनुभूतिमा से मेल खा जाती हैं और उस पात्र से उसका सामुच्च्य स्थापित हो जाता है, वह रस-विमोह होकर बाह-बाह कर उठता है।^२ जैनेन्द्र जी भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं 'साहित्य की कसौटी यह संस्कारशीलता है जो हृदय-से-हृदय का भेस बाहरी है और एकटा में निष्ठा रखती है। सहृदय का चित्र भुविष्ट करता है, वह साहित्य करण है। संकुचित करता है, वह छोटा।'^३ पर साहित्य द्वारा चित्र के मुद्रित प्रभाव संकुचित होने का प्रश्न तो सभी उठेगा यदि वह पात्र के लिए बोधमय हो।

१ Hoffman, 'Freudianism and the Literary Mind' p. 131:

"It may be that interpretation and comment are indispensable accompaniments of experimental writing, at least until the means of such interpretation becomes a part of the reader's own mental equipment."

२ E. E. Schickel, 'Psychological Novel' p. 108:

"Perhaps the only generalization possible then is that in a novel which uses internal monologues, ... the author succeeds only when the reader achieves a certain state of identification or relationship with the sole mind that is offered to him on the pages of the book."

३ जैनेन्द्र कुमार, 'साहित्य का भेस और भेस' पृ. २३३।

बेहूष व्ययक्तता (सम्प्रतिष्ठानस)

जैनस्र बी की उपन्यास-कसा की एक धीर निसिप्टता है उसकी व्ययक्तता । हिन्दी में बह पहले उपन्यासकार हैं जो अपने पात्रों के चरित्र-विकास के लिए घटनाओं पर निर्भर नहीं करते प्रत्युत उसके लिए जीवन की सूक्ष्मातिमूख गतियों का सहारा लेते हैं । सुह-से-सुह संकेत भी उनके उपन्यासों में उतना ही महत्त्वपूर्ण हो गया है जितनी कि प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों में बड़ी-से-बड़ी घटना । इसी प्रकार, उन के पात्रों के पास साफ-साफ कहने को बहुत कम है संकेत करने को ही अधिक है । इन इगितों को व्यक्त करने वाली पात्रों की भाषा इतनी अधिक सरल है कि बच्चा हो छोटी है । उनके छोटे-छोटे अलग-अलग भावों में बेहूष व्ययक्तता है । एक बार उन्होंने स्वयं भी कहा था “कोई कवन सीधे अपने अर्थों में और कोई घटना अपने सीमित अर्थ में चार्क नहीं होती । सबका अर्थ विस्तृत है—इससे सब कुछ मात्र संकेत रूप में सूचक-इंगित रूप में ही प्रकटारी है।”^१ “जैनस्र बी की बीसी और भाषा अपनी विभासा और समग्र बुद्धि के एकीकरण में एक संकोचशील भाषा है । उनका अमिप्राय स्पष्ट है, किन्तु संकोच अमिप्राय को ग्रहण करने के लिए कुछ एक-एककर पसने को कहता है—वै अमिप्राय की रास को हस्की सीध देकर चलते हैं बीम देकर नहीं उनकी गति में एक चिन्तनशीलता है चिन्ता के प्रति एक सजग मृदुता एक कोमल समझौता । बीसी की इस व्ययक्तता के कारण बह एव पहेली-सी लगने लगती है । जैनस्र बी इस पहेली को कहीं तो खोल देते हैं और कहीं उसे पहेली ही बनी रहने देकर विभासा जगा बाते हैं।”^२ पाठक बहुधा उनके इंगितों को समझ नहीं पाता और पात्रों का चरित्र विकास उसके लिए अस्पष्ट रह जाता है ।

प्रचलन शार्पनिकता

जैनस्र बी की उपन्यास-कसा में एक धीर समझ है उनकी शार्पनिकता । वैसे तो प्रत्येक उपन्यासकार का जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण होता है जो जाने या अजाने उसकी कृति को एक रंग दे देता है ।^३ वास्तव में उच्च कोटि की रचना पाठक का मनोरंजन ही नहीं करती उसके बौद्धिक विकास के लिए बाध भी प्रदान करती है ।^४ पर जैनस्र बी की उपन्यास-कसा की समझ यह है कि उनका जीवन-दर्शन

१ १ वर्ष ५ १११ ।

२ ४ साहित्यिक विश्लेष, ‘जैनस्र के चिन्तन—एक समीक्षा’ ईश्वर ५ १११ ।

३ १ Hinson An Introduction to the Study of Literature p. 131.

४ १ Ibid. p. 162:

“If one thing is proved with certainty by the whole history of literature down to our time, it is that the self-preserved instinct of humanity rejects such art as does not contribute to its intellectual nutrition.” (John Addington Symonds).

सनकी रचनाओं में आसानी से नहीं मिल पाता। वह स्वयं भी इस बात को मानते हैं—“पाठक पुस्तक में मुझे मुश्किल से पाएगा। यह नहीं कि मैं उसके प्रत्येक शब्द में नहीं हूँ लेकिन पुस्तक के बिना पात्रों के माध्यम से मैं पाठकों को प्राप्त होता हूँ प्रत्येक स्थान पर उन पात्रों के अनुकूल गैर रूप विकृत हो जाता है। उन्हें सामने करके मैं भोट में हो जाता हूँ।”^१ “अपने पाठकों पर जैनिक भी अपने जीवन-दर्शन का आरोप नहीं करना चाहते। इस दृष्टि से कि पाठक उन्हें उपदेशक न समझ बैठे, वे पात्रों के जीवन की दुष्कावितुल्य यतियों को लेकर ही अपना माध्यम व्यक्त कर देते हैं। इस घोर उन्होंने एक बार संकेत भी किया था “बड़ी से बड़ी वस्तु अनुपयोगी और छोटी से छोटी बटना भी व्यक्ति और वस्तु के जीवन में विवाद माध्यम बन सकती है। तुल्य इस दृष्टि में कुछ भी नहीं।”^२ “इसलिए, पाठकों की दृष्टि में उनके पात्रों के जीवन की दुष्कावितुल्य बटनाओं को भी यथेष्ट महत्त्व न मिल सकने से यदि प्रतीत होने लगे कि नैतिक आदर्शों का उनके उपन्यासों में कोई स्थिर माध्यम प्राप्त नहीं—उनका वर्तन सामाजिक जीवन से पलायन का दर्शन है”^३ “तो आश्चर्य न होना चाहिए। इसी प्रकार, यदि उनके ‘उपन्यासों का अन्त भी निष्कर्ष-बिहीन’^४ दिखाई दे तो भी कोई बड़ी बात नहीं। यह धाराका सेवक को पहले से ही थी “इस प्रकार, असम्भव नहीं कि कसा का उपास्य विमुक्त ही रहे और परित्यक्त-जन की कुछ शास्त्र विम्वेद हाथ यही पहले कि कसा का सिंहासन तो उपास्य-गुण्य है और बड़ी निरुद्धता के प्रतिविकृत और कुछ भी नहीं है।”^५

अपमार्ग्य मनोबैज्ञानिक व्याख्या

जैनिक भी के औपन्यासिक पात्रों के अचेतन में सक्रिय संघर्ष की एकक्यता और उपन्यास के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उनका विकास की समान शिक्षा ग्रहण कर लेता हूँ यह सोचने के लिए विवश कर देता है कि क्या, वास्तव में ही उनके उपन्यासों में नैतिक आदर्शों को स्थिर माध्यम नहीं मिल पाई है और क्या सच ही उनका अन्त निष्कर्ष-बिहीन रहा है? और मानसिक संघर्ष में से गुजरने के बाद सुनीता का हरिप्रसन्न के प्रति सुलभा का भाव के प्रति भुवनेश्वरी का जितन के प्रति भारम रामपुत्र तथा ‘अपरीत’ की नायिका अमिता का जयन्त के प्रति चञ्चल लभ होने के बाद समा मीमते हुए कहना “जयन्त रात की बात भूल जाओ। मैं सुख में न थी। अब

१००. जैनिक, ‘सुनीता’ प्रकाशना पृ ३।

२ = जैनिक, ‘सुलभा का भाव और प्रेम’ पृ ११३।

३ = जैनिक, ‘सुनीता’ प्रकाशना पृ १३।

४ = रामकृष्ण वर्मा, ‘उपन्यास का अन्त’, ‘परिभाषा’ अन्तर्गत, १९४०।

५ = जैनिक, ‘सुलभा का भाव और प्रेम’ पृ ३३।

इसलिए समूचा उपन्यास पढ़ चुकने पर भी उसके हाथ कुछ नहीं आ पाए, पात्र उसे पहेली-से समें और उपन्यास निष्कर्ष बिहीन बीसने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं।

इस प्रकार, पात्रों के अचेतन को पकड़ में ले आने के प्रयत्न में जैनेन्द्र जी द्वारा अपनाई गई कुछ चारमर्चितन प्रणाली और उसमें आवश्यक व्याख्या-सूत्रों का अभाव चरित्रोद्घाटन की नई-नई सीढ़ियों के मोह में पड़कर उनके द्वारा उपन्यासकार के सहज अधिकारों का उत्तरोत्तर त्याग करके अपने लिए सीमाओं का निर्माण आवश्यक कला से अधिक व्यवस्था के समारोह द्वारा पाठकों को भ्रमाते रहना उपदेसारमकला से बचने के प्रयत्न में अमिप्राय की रास की बीस नहीं हस्की सींच देकर बचना प्राप्ति कई विचित्रताएँ मिलकर उनकी उपन्यास-कला में एक ऐसा 'जैनेन्द्रपन'^{१११} का देती हैं, जिससे पूरी तरह परिचय पाए बिना पाठक उपन्यास के पात्रों से अपना सामुज्य स्थापित नहीं कर पाते और वे उस साहित्यात्म्य की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं जिसे जैनेन्द्र साहित्य का प्राण मानते हैं^{११२}, उपन्यास उन्हें उत्कृष्ट नजर आने लगते हैं और पात्र सकय भ्रष्ट।

१११. आत्मचरित्र 'भारती' अगस्त, १९४१ पृ० ९५।

११२. जैनेन्द्र 'सहित्य का अर्थ और प्रेम' पृ० ४३।

इलाचन्द्र जोशी

परिचयात्मक विवेचन

इलाचन्द्र जोशी का विश्वास है कि भाव विश्व में जो उन्नत-पुनर्जन्म मभी हुई है उसका मूल कारण यही है कि हम अपने अन्तर्जीवन की पूर्ण उपेक्षा कर के बाह्य जीवन को ही सब कुछ समझ बैठे हैं और इस तथ्य के प्रति घालें मुँह सेते हैं कि व्यक्तियों के अन्तर्जीवन के स्वप्न ही सामूहिक बाह्य जीवन के स्वप्नों के रूप में—विश्वव्यापी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रतीक बन कर—प्रकट होते रहते हैं। परिणामस्वरूप हम अपनी जीवनपथ समस्याओं का वास्तविक रूप नहीं समझ पाते और उनके समाधान के लिए जो उपचार प्रस्तावित हैं वे भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। अपने उपन्यासों में जोशी जी निरंतर इस तथ्य के अनुसंधान में जुटे रहे हैं कि अज्ञात चेतना के पाताल लोक में स्थित अतम नरक के विस्फेपण द्वारा बाह्य जीवन-तथ्यों के साथ उन नारकीय (किन्तु मूल) जीवन-तथ्यों का समुचित सम्बन्ध स्थापित करके मानव-जगत् में किन उपायों से अपेक्षित स्वर्ग की स्थापना की जा सकती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने उपन्यासों में जीवन में घटित होने वाली विरोध घटनाओं को लेकर उन्हें कुछ विशेष पार्श्वों के जीवन-भूतों में पिरोकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि व्यक्ति जो है वह वही नहीं है। उसके बाहरी रूप के भीतर कितनी परतों के भीचे उसका अन्तर्भी रूप छिपा रहता है और यदि रात-दिन के जीवन की लुब्धता का पर्दा हटाकर किसी साधारण समझे जाने वाले व्यक्ति के भीतर हम एक भी भ्रमरक दैस सकें तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहे।^१ इसके साथ साथ उन्होंने इस तथ्य को भी उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है कि व्यक्ति के जीवन में जो भी घटनाएँ घटित होती हैं वे अकारण साम्प्रतिक नहीं घटित होतीं उन घटनाओं में

१ जोशी, 'प्रेत और ज्ञान' मूल्यांकन पृ. ११।

२ जोशी 'दर्शक' पृ. १६६।

मानस में छिपे रहते हैं। उन छोटी छोटी घटनाओं की छोट में पबतोष्ण विकास मानसिक प्रवाह ठाठें मारता रहता है। साथ ही उन्होंने यह भी बताने की कोशिश की है कि जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी उपेक्षणीय नहीं। बड़ी-बड़ी बातों से तो मनुष्य की ऊपरी सतह का परिचय मिलता है, पर छोटी-छोटी बातें उसके मन में छिपी हुई विशेषताओं को प्रकाश में लाती हैं। 'इन्हीं छोटी-छोटी बातों पर गौर करते रहने से जीवन के बड़े-बड़े महत्वपूर्ण किन्तु उनमें हुए रहस्य सुझाते बसे जाते हैं।'^१

पात्र-व्यवस्था-विवरण

इस प्रकार जोशी जी को अपने उपन्यासों के लिए ऐसे नामक और नायिकाओं की आवश्यकता पड़ी जो वेबताओं के समान बाहर और भीतर एक समान न होकर मनुष्य की भाँति बाहर कुछ और भीतर कुछ हों। उन्होंने अपने उपन्यासों के नामक के रूप में बुना पारसनाथ के-से व्यक्तियों को जिनके 'मुख की अभिव्यक्ति मर्यादा एक बाहरी मुद्रा होता है तथापि वह मुद्रा ऐसा अकृत्रिम जान पड़ता है कि कोई भी उसे देख कर धोके में भा सकता है, उनके उस मुद्रा के नीचे उनका जो असली व्यक्तित्व संकेतों वाले साँपों की तरह संकुचत कुब्जली बन रहे हुए है, वह प्रारम्भ में छिपा ही रह जाता है।'^२ उनकी नायिकाएँ भी गन्धिनी जैसी स्त्रियाँ ही बनीं जिनके 'सौम्य, शान्त और चिप्टे मुद्रा के नीचे उनका पर्यंकर सोम-हर्षक रूप' छिपा रहता है।^३ ऐसे ही पात्रों के जीवनवृत्त को लेकर वह बता सकते थे कि उनके जीवन की घटनाओं का मूल उनके अपने ही मन की अतल महाराज्यों में है न कि बाह्य परिस्थितियों में। बल्कि उनके मन में पड़ी हुई पक्की पाठों में है। प्रेमचन्द की तरह जोशी जी का अपने कथानायक समाज के बनी शोषक वर्ग या निर्धन-शोषित वर्ग से जुड़ने की आवश्यकता न थी क्योंकि उन्हें पात्रों की समस्याओं का मूल बाह्य प्राकृतिक परिस्थितियों में नहीं उनकी मानसिक परिस्थितियों में दिखाना था। वास्तविकता तो यह है कि प्राकृतिक रूप से बुढ़ होते हुए भी उनके पास मानसिक रूप से बेहद कमबोरी है।

नायक-नायिकाएँ : 'मनोवैज्ञानिक केस'

जिस ध्येय का लेकर जोशी जी ने अपने उपन्यासों की रचना की थी उसके लिए ऐसे पात्रों की आवश्यकता न थी जो केवल तुल्य चारित्रिक निष्ठा वाले कुछ पुरुष

१. जोशी, 'संस्मृति' मारा मण्डार, कर्तुं संस्मृत्य प्रयास १ १११।

जोशी, 'अज्ञान का पर्व' १ ४११।

२. मारी येत और ज्ञान १ २०।

३. वही, १ ११०।

हों क्योंकि वे जानते हैं कि बचता बनकर पूजा पा खाना प्राप्त है पर मनुष्य बन पाना कठिन है।^१ उन्हें तो वे पान चाहिए वे जो मनुष्य हों—मनुष्य की सभी कम जोरियों को मिये हुए—स्वभाव से कुसमुल और इतने संबन्धनीस हों, कि छोटी-से छोटी घटना भी उनके चेतन को चीर कर अचेतन में एक प्रस्थि बनकर गहरी धंस जाए और वहाँ से उनके साधार-विचार और व्यवहार को निरन्तर प्रभावित करती हुई किसी भी परिस्थिति से उनका संतुलन न बैठने दे। उनके सभी पाशों के मन में कोई न कोई ऐसी बात पड़ जाती है जो जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में एक विपद् परिवर्तन लाकर उन्हें जीवन भर बेचैनी का मोटा बनाए रखती है। 'पर्व की रानी' की मायिका निरंजना की प्रस्थि यह है कि वह कभी अचेतन में भी धूस नहीं पाती कि वह एक बेक्या माता और झुनी पिता की सङ्कीर्ण है।^२ 'प्रेत और छाया' के नायक पारसनाथ के अचेतन में वह बात एक प्रस्थि के रूप में बसी हुई है कि उसकी मां वास्तव में व्यभिचारिणी है और वह उसकी वारस सन्तान है।^३

इस प्रकार उनके सभी नायक-मायिकाएँ 'मनोवैज्ञानिक केस' ठहरते हैं। जोसी भी जो इस बात का यर्थ भी है कि उनके कथा-नायक चरित्रिक बृद्धता वाले न होकर दुर्बल स्वभाव वाले कुसमुल व्यक्ति हैं।^४

मनोविस्लेषक पात्र

इन मनोवैज्ञानिक केसों को जो बाहर कुछ और भीतर कुछ और हों, ठीक-ठीक समझ सकना कोई सरल काम नहीं। उनकी समस्याओं के वास्तविक स्वरूप को प्रकाश में लाने के लिए, उनकी मानसिक प्रस्थियों को उजाड़ने के लिए, जोसी भी जो ऐसे पाशों की भावश्यकता पड़ी जो मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से पूर्णतः परिचित हों और मनोविस्लेषक की-सी दक्षता से इन पाशों की मानसिक प्रस्थियों के विस्लेषण द्वारा उनके अचेतन में बसी कुसल-अनुभूतियों को उनके चेतन में लाकर इस रूप में व्याख्या करें कि वे असह्य न बनी रह सकें। 'पर्व की रानी' के मुख की 'जिप्सी' का नायक रंजन 'निर्वासित' का महीप आदि म्युनायिक रूप में मनोविस्लेषक का काम भी करते हैं।

इस प्रकार, जोसी भी के उपन्यासों में मोटे रूप से तीन प्रकार के पाशों को स्थान मिला है। पहले वे जो मनोवैज्ञानिक केस हैं दूसरे वे जो उनकी मनोवैज्ञानिक उलझनों को जग्य देकर तिरोहित हो जाते हैं और तीसरे वे हैं जो मनोविस्लेषक की भाँति उनकी मानसिक उलझनों की व्याख्या करके उनके वास्तविक रूप को प्रकाश

१. छोटी, 'अराध का पंखी' पृ० ४२०।

२. छोटी 'प्रेत और छाया' पृ० २९५।

३. छोटी, पृ० १०।

४. छोटी 'जिप्सी'—अनंतदास, ७०६।

में लाते हैं। वास्तव में, इनके पहले भीर सीसरे बर्ब के पास ही महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें भी अधिक महत्त्वपूर्ण है—सीसरा बर्ब भगोविन्दसेपकों का जिनके द्वारा की गई व्याख्याओं के प्रभाव में—वे व्याख्याएँ चाहे पियसी ही प्रतीत हों—बोसी भी के नायक-नायिकाएँ पहुँची बन जाते और उनके उपन्यास गोरसर्पभा प्रतीत होने समते।

पात्रों का प्रथम परिचय

माटकीय प्रवेश

बोसी भी के उपन्यासों में पात्रों का प्रथम प्रवेश माटकीय ढंग से होता है। प्रेमचन्द की भाँति वह पात्रों की पाठकों के सामने आने से पहले स्थिति के निर्माण में नहीं जुटे रहते। उपन्यास शुरू होते ही एक या अधिक पात्र इसी प्रकार किसी परिस्थिति से उसने हुए दिखाई देते हैं, जिस प्रकार पर्वो उठते ही स्वर्गभर पर माटक के पास। 'मुक्ति पत्र' खोसते ही पाठक उपन्यास के नायक राजीव को अमीनाबाद पार्क में एक बेंच पर बैठे हुए पाते हैं। 'प्रेत और छाया' शुरू होते ही पारसनाथ और उसके साथी एक झुन्डारा होटल में बार्तालाप-मग्न मिलते हैं। 'निर्वासित' का आरम्भ भी माटकीय ढंग से बिना किसी प्रकार की भूमिका के होता है। पाठक देखता है कि कांग्रेस के एक बड़े बससे में स्टेज के नजदीक पीड़ में बैठा हुआ एक युवक (महीप) सामने खड़ी एक स्वयंसेविका (नीलिमा) की ओर एकटक देख रहा है। 'पर्व की रानी' का आरम्भ भी इस प्रकार माटकीय बीबी में होता है "मेरी छविनी बन्धुप्रसाद ने घाकर मुझ से कहा—आज एक बहुत ही सुन्दरी लड़की होस्टल में भरती होने आई है। ऐसा जान पड़ता है कि वह किसी राजा की बहूकी है।"¹

प्रेमचन्द और बयसकर प्रसार की भाँति बोसी भी अपने उपन्यासों के सभी पात्रों का प्रवेश उपन्यास के आरम्भ में नहीं करा देते क्योंकि उनके उपन्यासों की बटनार एक दूसरे से असम्बद्ध हैं—उनमें सम्बन्ध केवल इतना है कि एक ही पात्र उन विभिन्न स्थितियों में पड़ता है—और लेखक का सर्व्वेय पात्रों को विभिन्न स्थितियों में डालकर उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को उजाड़ना है। इसलिए, कोई भी पात्र किसी भी समय उपन्यास में प्रवेश पा सकता है। उनके उपन्यासों के प्रत्येक पक्ष में उनमें गए पात्रों का प्रवेश होता रहता है। 'प्रेत और छाया' में मंजरी का प्रवेश बर्ब पृष्ठ पर हुआ तो नीलिमा का ६१वें पृष्ठ पर और हीरा का ११७वें पृष्ठ पर हुआ। 'जहाज का पंखी' में करीम खासा का प्रवेश १२२वें पृष्ठ पर होता है, शीष्ट का २९४ वें पृष्ठ पर, बेसा का २४६ वें पृष्ठ पर, लीला का ३३५वें पृष्ठ पर और स्वामी जी का ३०६ में पृष्ठ पर।

मनसिद्ध बर्चन सीसी

इस प्रकार पार्श्वों को पाठकों के सामने लाकर बोधीबी उनकी प्राकृति प्रकृति का बेधभूपा का परिचय करने की ओर बढ़ते हैं। पार्श्वों का विशेषतः नामक-नामिकाओं का परिचय करते समय बोधी बी संक्षेप-सीसी से काम न लेकर उनकी प्राकृति-प्रकृति तथा बेध-भूपा का ध्योरेवार चित्रण करने लग जाते हैं, जो कई बार एक ध्वनि साधे मनसिद्ध-वर्णन के निकट ठहरता है। वह पाठकों को छूट नहीं देना चाहते कि वे उनके पार्श्वों को जिस रूप में चाहें समझ लें प्रत्युत वे इस प्रयत्न में रहते हैं कि प्रथम प्रवेश से ही पाठकों के मन पर पार्श्वों के बारे में बैसी है। छाप पड़ती रहे बैसी वे चाहते हैं। इसलिये वे पार्श्वों की प्राकृति और बेध भूपा का ध्योरेवार बर्चन तो करते ही हैं, साथ ही यह बताना भी नहीं भूलते कि उन पार्श्वों का ध्वन्य अपस्मित पार्श्वों पर क्या प्रभाव पड़ा है। ऐसा करने में उनका प्रथम परिचय अनावश्यक रूप में लम्बा हो जाता है और पक्षपातपूर्ण भी प्रतीत होने लगता है। उससे पाठकों का पूर्वग्रह बढ़ जाने की सम्भावना भी रहती है।

‘परे की रानी’ में निरंजना का प्रथम परिचय इस प्रकार का है “जिस लड़की को लेकर होस्टल की सब लड़कियाँ लड़ी थीं वास्तव में उसका रूप ऐसा अद्भुत अपूर्व और अमृपम था कि स्त्री-पुरुष बाल-बूढ़ किसी भी लिये भी उसके प्रति उदासीन रहना असम्भव था मेरा यह ध्रुव विश्वास है। उसकी आंख उन्नीस या बीस वर्ष के लगभग होयी। वह नीले रंग की ऐसी छाड़ी पहने थी। यद्यपि होस्टल की लड़कियों के लिए भड़कीले रंग की छाड़ी पहन कर जाने वाली लड़कियाँ ही थोड़ा बहुत कीनूहल जमाइने को खैरियत थीं तथापि उस नवागत लड़की की विशेषता उसकी छाड़ी से कोई सम्बन्ध नहीं रखती थी। उसका अनिर्बचनीय सौन्दर्य-मण्डित व्यक्तित्व सब सामारण विशेषताओं के ऊपर था। मैं स्वयं एक नारी हूँ इसलिये उस आश्चर्यजनक अप्रत्याशित नारी-रूप का बर्चन जैसे कर मेरी समझ में नहीं आता। प्रथम दृष्टि में मुझे ऐसा लगा जैसे वह मामाबिनी बिजली की सी-सी चलीप्ट तरंगों को अपने मुख पर किसी मंत्र-बल से निरपन्न अवस्था में बाँधे हुए हैं जैसे किसी भी समय इच्छा करने पर बटन दबाते ही उसके मुख की वे सब चकित-तरंगें एक साथ हिंस्रोहित होकर प्रबल प्रलय प्रकाश से जगमगा सकेगी” ११

एक दूसरा उदाहरण लीजिये—उनके उपन्यास ‘बहाज का पंथी से। दीप्ति का प्रथम परिचय इन शब्दों में कराया गया है “मुझे दीप्ति का व्यक्तित्व जाने क्यों बहुत ही प्रिय लगता था। वह बड़ी ही ईशमुख डीठ स्वस्थ और सुन्दर लड़की थी। अपनी माँ से उसने थोड़ी-सी मोटाई पाई थी और अपने पिता से लम्बाई। उसका मोटा-सा बेहुरा भी उपयुक्त अनुपात में गोलार्ध लिये हुए लम्बा था। एक परस्पर को लम्बा पीरने पर जा दो फीटें बन जाती हैं बैसी ही बड़ी और लनी हुई उसकी दो जगमग

माँसें हो सुदीस भीहीं की छत्रछाया के नीचे प्रवेशोभियाँ करती थीं। तब तक लम्बी, जमरी हुई धीर कुछ मुकीसी थी। हाँतो की वो सुफेर पंक्तिवाँ सीधी धीर सामंजस्य पूर्ण थी। दोठों की वो पतली रेखाएँ ११ के अंक की तरह सामने-सामने रखे हुए दो समान आकार वाले बनुयों की तरह संक्ति सी जाग पकती थीं। पर उसका वास्तविक सौंदर्य उसके मुख की इस सुन्दर समावट धीर बनावट पर निर्भर नहीं करता था। उसके कुण्डलहित उबार धीर मानपूर्ण धस्तर की वो प्रत्यक्ष छाया उसके चेहरे पर पड़ती थी, वह किसी विशेषतः दर्बक पर गहरा प्रभाव छोड़े बिना न रहती।^{११}

आकृति-वैशम्यता वर्णन

आज के युग में व्यक्ति सामाजिक मुख्य गढ़बड़ा गये हैं, केवल आकृति बचवा वैशम्यता के आधार पर किसी व्यक्ति के चरित्रिक गुणों के संबंध में कुछ भी अनुमान लगाया जासक ही सकता है, तो भी किसी व्यक्ति से सर्वप्रथम घेंट के समय उसकी आकृति धीर वैशम्यता के आधार पर अनुमान लगाने के प्रतिरिक्त उसे समझने का धीर कोई उपाय भी नहीं रहता। आकृति धीर वैशम्यता के आधार पर लगाया गया अनुमान कितना भ्रामक होता है इसका सुन्दर उदाहरण बोधी जी के उपन्यास 'आज का पंजी' में मिलता है। उपन्यास के नायक की सम्बन्धिता का तथा इन के प्रति उसके वैराग्य का किसी को पता नहीं चलता धीर उनकी दृष्टि उसकी आकृति धीर वैशम्यता पर का घटकती है धीर वे उसके 'धिर के कभी-सूखे प्रसन्न-व्यस्त बाव, बनी बात से गरी बयारियों की तरह वो पलमू खें धीर उन पलमू खें के धपल-बपल धीर नीचे फँसे हुए, एक हफ्ते से न छोले गये उसन कटवाने के बाव घेप रू जाने जाने सूके सूटों की तरह छितराये हुए बाड़ी के कड़े बाव आय रोम के रोमियों की तरह मुरझाया हुआ बुझा-पतला मुले हुए कपड़ों की तरह रक्तहीन सफ़ेद बेहुरा, घेंची हुई माँसें नई पड़े हुए दाग धीर बाणों की धीर जमरी हुई मुकीसी हडिब्याँ तिस पर कई दिनों से बुलने की बुबिबा न होने से मैला कुर्ता धीर मैसी बोटी'^{१२} जो देखकर तत्काल अपनी बैब की सँभालते हुए सरक कर उससे दूर हट जाते हैं। क्यों कि उसकी इस वैशम्यता से वे उसे गिरफ्त के प्रतिरिक्त धीर कुछ मान ही नहीं सकते। इसी वैशम्यता के कारण वह जिस माडुड़ी मझाछप के घर से निकाल दिया था वहाँ जब वह बूसरी बार स्वल्प धीर और सबसे कपड़ों को पहने रहोइए की मौकरी के लिए पहुँचा तब उसका बड़ा स्वागत हुआ। यह बटना वहाँ एक धीर आकृति धीर वैशम्यता के महत्व की सामने आती है, वहाँ प्रारम्भिक अवस्था में उस व्यक्ति की अपने सरीर धीर वैशम्यता के प्रति उदासीनता के रूप में धीर बाव में

११ मेरी 'आज का पंजी' पृ० २२४।

१२ मेरी, 'आज का पंजी' ११।

अपने स्वास्थ्य-सुधार के प्रति उसके विशेष प्रयास और उसकी उभरी बेसमूचा जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण के कमिक विकास को भी व्यक्त करती है।

प्रेमबन्ध का-सा वर्णन

पार्श्वों के प्राकृति और बेसमूचा-वर्णन में इसाचन्द्र जोशी प्रेमबन्ध के समकक्ष ही ठहरते हैं। अपने उपन्यासों के किसी भी पात्र की प्राकृति और बेसमूचा के बारे में वे अपने पाठकों को झूट देना नहीं चाहते कि वे मन-बाहे रूप में उनकी कल्पना करें। वे अपने पात्रों का व्योरेवार नक्षत्रिण-वर्णन करके पाठकों को मजबूर कर देते हैं कि वे उन पात्रों की कल्पना उसी रूप में करें, जिस रूप में लेखक चाहता है। अपने पात्रों की बेसमूचा का वे कितने विस्तार से वर्णन करते हैं इसका अन्धाधरा तो उपयुक्त उद्धरण से ही सय सया होया फिर भी एक और उदाहरण प्रस्तुत है। 'प्रेत और छाया' की मंजरी का वर्णन यह इस प्रकार करती हैं "लकड़ी का कर सम्भा है, और मोटाई उस कर के अनुपात में न होने पर भी वह बहुत बुझी भी नहीं दिखाई देती थी। उसकी छाड़ी ने उसके सिर का केवल धाया भाग ढक रखा था। पहले काले और बिकने वाली के बीच में एक पतली किन्तु मुखि से संवारी हुई माँग उसके सारे व्यक्तित्व को एक सीमापन प्रदान कर रही थी पर उसका सिरा बहुत मुकीला न होकर कुछ गोलाई मिले हुए था और आश्चर्य की बात है कि उस गोलाई के कारण उसकी नाक की सुन्दरता घटने के बजाए और अधिक बढ़ी हुई मसूम होती थी।" १४ उनके उपन्यासों से बेसमूचा-वर्णन के ऐसे अर्थस्य उदाहरण लिए जा सकते हैं, जो ऐतिहासिक नक्षत्रिण-वर्णन की याद दिलाते हैं और जिनके आधार पर वे प्रेमबन्ध बहिक पूर्व प्रेमबन्ध-मुन के उपन्यासकारों के निकट ठहरते हैं। 'प्रेत और छाया' की मन्जरी के निम्नलिखित वर्णन की काम्य-सूटा बर्णनीय है, यानी लेखक स्वयं उसकी रूप-सुधा का पाल करने के लिए एक गया हो "वह एक हरे रंग की चमकदार रेशमी छाड़ी पहने थी। सिर के बीचों-बीच माँग इस सफाई से निकाली गई थी कि न एक बाल छपर था न एक बाल छपर। उसके ऊपर सिंगूर की एक हल्की-सी गुलाबी रेखा ऊप के घटसु राग की तरह खिल रही थी जैसे जोर सम्भकारमय जीवन के बीच में मर-जीवन का सदाब पद दिखाती हो। माँग के दोनों ओर मुसामयस्पूर्ण रूप से लहराते हुए बाल उसके सारे व्यक्तित्व का एक कमात्मक आतीनता प्रदान कर रहे थे। उसके मुख का चोरा रंग (चायब मोघन और पीठर धारि के प्रयोग से) निरुत कर अम्भततर हो उठा था। कपाल के बीच में एक छोटी-सी पोत बिन्दी सोमाम्य पूर्ण की तरह चमक रही थी। उसका सारा मुखमण्डल स्वास्थ्य सौर्व और मृ पार से विप रहा था।" १५

१४ जोशी, 'प्रेत और छाया' पृ० ४०।

१५ वही, पृ० ४१२-४१३।

माँझें दो सुदीन गौहों की छत्रछाया के नीचे घटलौसियाँ करती थीं। नाक सम्भी समरी हुई धीर कुछ मुकीसी थी। शीतों की दो सफेद पकितियाँ सीधी धीर सामंभस्य पूर्व थीं। मोठों की दो पलखी रैसायें ६६ के धंक की तरह धामने-सामने रखे हुए बं समान धाकार बाने बनूपों की तरह धंकित सी जान पड़ती थीं। पर उसका बास्त बिक छौरयें उसके मुख की इस सुन्दर सजावट धीर बजावट पर निर्भर नहीं करता था। उसके कुम्हारहित उदार धीर भावपूर्ण धन्दर की दो धम्मकत धाया उसके बेहुरे पर पड़ती थी, वह किसी विशेषतः दर्शक पर पड़ता प्रभाव छोड़े बिना न रहती।^{११}

प्राकृति-वैशम्यका वर्णन

प्रायः के युग में जबकि सांख्यिक मूल्य नक्षत्रा पाये हैं, केवल प्राकृति वर्णना वैशम्यका के आधार पर किसी व्यक्ति के चरित्रिक गुणों के संबंध में कुछ ही अनुमान लगाया जा सका है। तो भी किसी व्यक्ति से सर्वप्रथम मेट के समय उसकी प्राकृति और वैशम्यका के आधार पर अनुमान लगाने के प्रतिरिक्त उसे समझने का धीर कोई उपाय भी नहीं रहता। प्राकृति और वैशम्यका के आधार पर लगाया गया अनुमान किताब जायक होता है। इसका सुन्दर उदाहरण बोरी की के उपन्यास 'महाका का पंखी' में मिलता है। उपन्यास के नायक की धम्मरिक्ता का उदा बन के प्रति उसके वैराग्य का किसी को पता नहीं चलता धीर जबकी दृष्टि उसकी प्राकृति और वैशम्यका पर का धकती है धीर वे उसके धिर के कन्धे-सूँके, धस्त-धस्त बास बनी बास से घरी न्यारिखों की तरह दो वनभू से धीर लम लमभू से के प्रपल-बलस धीर नीचे फँसे हुए, एक हफ्ते से न धीरे गये धस्तल कटवाने के बाद रोप रह जाने बाने सूके बुँदों की तरह धिरपाये हुए बाड़ी के कने शाल धय रोप के रोपियों की तरह मुरझाया हुआ कुलना-पतला, बुने हुए कपड़ों की तरह रजहीन सफेद बैहुरा धोरी हुई माँझें गड़े पड़े हुए शाल धीर बालों की धीर समरी हुई मुकीसी हडिब्याँ, धिस पर कई बिनी से धुलने की धुनिबा न होने से मैसा कुटी धीर मैली बोरी^{१२} को देखकर लफास धपनी बैज को रैमामसे हुए धरक कर बससे धुर हट जाते हैं। धर्वो-कि उसकी इस वैशम्यका से वे ससे गिरहकट के प्रतिरिक्त धीर कुछ भाग ही नहीं सकते। इसी वैशम्यका के कारण वह जिस धामुही महाधम के बर से निकाल दिया जा वहीं बैज वह धुसरी बोर स्वस्य छटीर धीर उसके कपड़ों को पहने रहोइए की नौकरी के लिए पड़ोषा लम उसका बड़ा स्वागत हुआ। यह बटना वहाँ एक धीर प्राकृति और वैशम्यका के महाका को सामने जाती है, वहाँ धारमिक धवस्ता में उस व्यक्ति की धपने छटीर धीर वैशम्यका के प्रति धवसीनता के कथ में धीर बाह में

१२ बोरी 'महाका का पंखी' पृ० २२४।

१३ बोरी, 'महाका का पंखी' ११।

अपने स्वास्थ्य-सुधार के प्रति उसके विशेष प्रयास और उसकी उसी बेसमूपा जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण के क्रमिक विकास को भी व्यक्त करती है।

प्रेमचन्द का-ता वर्णन

पात्रों के दृष्टि और बेसमूपा-वर्णन में इलाचन्द्र बोधी प्रेमचन्द के समकक्ष हैं। ठहरते हैं। अपने उपन्यासों के किसी भी पात्र की दृष्टि और बेसमूपा के बारे में वे अपने पाठकों को झूट बताना नहीं चाहते कि वे मन-बाहे रूप में उनकी कल्पना करें। वे अपने पात्रों का व्योरेहार मज्जाधिस-वर्णन करके पाठकों को मजबूर कर देते हैं कि वे इन पात्रों की कल्पना उसी रूप में करें, जिस रूप में लेखक चाहता है। अपने पात्रों की बेसमूपा का वे कितने विस्तार से वर्णन करते हैं, इसका प्रत्याशा तो अपर्युक्त उद्धरण से ही मन बना होना, फिर भी एक घोर उदाहरण प्रस्तुत है। 'प्रेम और छाया' की मंजरी का वर्णन वह इस प्रकार करते हैं "सहृदी का कह सम्भा है और मोटाई उस कर के अनुपात में न होने पर भी वह बहुत दुबली भी नहीं दिखाई देती थी। उसकी छाड़ी ने उसके सिर का केवल आधा घाय डक रखा था। गहरे काने और बिकने बालों के बीच में एक पतली किन्तु सुरभि से संभारी हुई नाँव उसके सारे व्यक्तित्व को एक टीकापन प्रदान कर रही थी पर उसका सिर बहुत मुकीला न होकर कुछ पोछाई भिये हुए था और आश्चर्य की बात है कि उस पोछाई के कारण उसकी नाक की सुन्दरता बढने के बजाए और अधिक बड़ी हुई भासूम होती थी।" १४ उनके उपन्यासों से बेसमूपा-वर्णन के ऐसे घटस्थ उदाहरण दिए जा सकते हैं जो पीठिकासीन मज्जाधिस-वर्णन की धार दिखाते हैं और जिनके आधार पर वे प्रेमचन्द बल्कि पूर्ण प्रेमचन्द-मुग के उपन्यासकारों के निकट ठहरते हैं। 'प्रेम और छाया' की लम्बिनी के निम्नलिखित वर्णन की काव्य-शृंगार वर्णनीय है, मानो लेखक स्वयं उसकी रूप-सुभा का पाल करने के लिए एक बना हो "वह एक हरे रंग की चमकदार रेशमी छाड़ी पहने थी। सिर के बीचों-बीच नाँव इस सफाई से निकाली गई थी कि न एक बाल इसर था न एक बाल उभर। उसके ऊपर सिरुर की एक हल्की-सी पुताबी रेखा ऊप्य के घटस्थ रंग की तरह क्षित रही थी जैसे गोर घम्यकारमय जीवन के बीच में नव-जीवन का प्रकाश-यम दिखाती हो। नाँव के दोनों ओर सुखमयस्यपूर्ण रूप से सहपते हुए बाल उसके सारे व्यक्तित्व को एक कलात्मक शास्त्रीनता प्रदान कर रहे थे। उसके मुख का गोरा रंग (घायब सोपान और पीछर धारि के प्रयोग से) निरुद कर उज्ज्वलतर हो उठा था। कपाल के बीच में एक छोटी-सी गोस बिन्दी सीमाव-पूर्ण की तरह चमक रही थी। उसका सारा मुखमण्डल स्वास्थ्य, सीधर्म और शृंगार से रिय रहा था।" १५

१४ ओटी, 'प्रेम और छाया' पृ ५०।

१५ वही, पृ ११९-१२१।

वेधभूपा में पाशों का प्रतिष्ठापन प्रतिबिम्बित

नित्यप्रति की सहज-स्वामाधिक वेधभूपा के बबले जब कोई व्यक्ति विशेष सज्जपत्र में बिछाई पड़ता है, तो उसकी वेधभूपा में यह परिवर्तन उसकी मन-स्थिति के परिवर्तन का भी चोख होता है। बनने-संवरने में उत्साह या वेधभूपा के प्रति भावपरवाही मन की दो विभिन्न स्थितियों प्रसन्नता और नैराश्य के भी प्रतीक हो सकते हैं। साथ ही जिस दूसरे व्यक्ति से निम्न के लिए वेधभूपा में उत्साह प्रपञ्च अनुत्साह व्यक्त हो उसके प्रति भी उस पात्र के स्व का पता चल सकता है। 'नीलिमा' की नीलिमा को जब महीप के घाने की सूचना मिली तो वह धनी विस्तर पर ही बैठ रही थी। सूचना पाकर वह उसी प्रकार पसंग से सीधे ड्राईंग रूम में प्रायः सीढ़ी चली आई थी। उसके सिर के पुंभणसे बाल और सोने के समय के श्वेते रेशमी कपड़े अस्त-व्यस्त थे उसकी सुन्दर बालसाई हुई बड़ी-बड़ी मादर्य्यक भाँखों में एक स्निग्ध मादकता छाई हुई थी रात में गाड़ी नींब का उपयोग करने के कारण उसके मोरे उबले मुख पर एक ऐसी चिकनाई भा गई थी जो उस घरसाई को एक मोहक मञ्जुरिमा प्रदान कर रही थी।" इसने मैं बाहर बड़े-बड़ों से कार का हार्न बजा। हार्न की आवाज से ही यह जान कर कि ठाकुर साहब आए हैं, नीलिमा तत्काल प्रायः चौकटी हुई भीतर चली गयी और फिर जब वह पुनः ड्राईंग रूम में आई तो कपड़े बदल कर आई थी और उसके मुख पर स्निग्ध गम्भीर छाया और स्वामाधिक मुद्रा वर्तमान थी। 'नीलिमा' का महीप के सामने साधारण पहनावे में अस्त-व्यस्त वेध में प्रकट हो जाना पर ठाकुर साहब के सामने नहा-बोकर श्रु पार-प्रसादन करके मुख पर गम्भीरता का भाव बनाकर ही जाना इस दोनों व्यक्तियों के प्रति उसके मिल मिल दर्जा का चोख है। 'प्रेत और छाया' के पारसनाथ के साथ चौर के लिए चलते समय नन्दिनी का और 'पर्व की राणी' के इन्द्रमोहन के साथ प्रवर्धनी देखने के लिए चलते समय निरञ्जना का विशेष उत्साह और बलि से साज श्रु पार, उन दोनों महिलाओं के उन पुरुषों के प्रति आकर्षण का परिचायक है।

पाशों की बाह्य रेखाएँ : सुनिश्चित

बौसी की पाशों की आकृति वेधभूपा का बहुत उपन्यास में उनके प्रथम प्रवेश के समय कर रहे हों या विभिन्न परिस्थितियों में उनकी घायत बाह्य स्वरूप का अपेक्षारहित चित्रण करके पाशों को बहुत अधिक सुनिश्चित और सुनिश्चित रूप में पाठकों के सामने से घाने की है। उनका यह वर्णन बाहे किटना ही प्रभावोत्पादक या बचिकर हो इतना पूर्ण होता है कि पाशों के बारे में और कुछ जानने के लिए कोई दोष नहीं रहता। उनके वर्णन में सेसक कोई भी स्थान रिक्त नहीं छोड़ता जिसमें कि पाठक अपनी बलि के अनुसार रंग भर सके बसिक वह तो सेसक की बलि को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाता है। पाशों की आकृति की अत्यधिक

मुस्यष्टता उन्हें पाठकों के पास लाकर भी उनके मन से दूर डाल देती है। पर वहाँ माकड़ि और बेधमूपा कुछ भी उमारदार न बना कर उसे पाठकों की कस्यना पर छोड़ दिया जाए, वहाँ भी पाठकों का मन अधिक बन्धीर होकर रम जाता है। महान् पात्र सब समयम ऐसे ही होते हैं जो पाठक की रूचि और कस्यना को बधित नहीं उन्हें स्तुति ही करते हैं, इसलिए उनके प्रति पाठकों की सरसुकता निरंतर बनी रहती है।^{११}

अनुभाव-चित्रण

स्विति में पड़ने के पश्चात् और मनोभावों का प्रतिक्रियात्मक विस्फोट होने में पड़ने मनुष्य के धातविक भाव उसकी भू-विविधा तथा उसकी अन्य सुश्रावों के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते रहते हैं। इसलिए, किसी व्यक्ति की सण-विशेष की मनोवधा जानने के लिए उसके अनुभावों में होने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों का अध्ययन इतना आवश्यक हो जाता है, जितना शायद उसकी क्रिया प्रतिक्रिया का भी नहीं।^{१२} व्यक्ति के शब्द तो बाधा भी दे सकते हैं पर उसके अनुभावों की भाषा बोधा नहीं दे सकती। इसलिए, जिसके पास पैनी दृष्टि हो और हो अनुभावों की भाषा का ज्ञान उसके लिए किसी का कुछ भी गुप्त नहीं रह सकता।^{१३}

मुख-वैमिश (फेसिपल एक्सप्रेसन)

जोड़ी भी चरित्रचित्रण की इस प्रणाली से अपरिचित नहीं पर वे समस्त शारीरिक चेष्टाओं के संकेत में न घटके रह कर मुखाकृति पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। उनका विश्वास है कि 'व्यक्ति की भीतरी सुन्दरता या कुसूरता का प्रामास उसके मुख पर सब समय झलकता रहता है।'^{१४} इसीलिए तो उनके अप्रत्यास

११ कैनेत्र, 'संक्षिप्त का शब्द और शब्द' प्रारंभ प्रकाशन देखी १९१६, पृ. १८१-१८२।

१२ W. Adler 'Der sinn des Lebens Vienna, Leipzig, Rolf Farnes (Social: Inter rest: a Challenge to Mankind), p. 50:

"These (movements of the body) speak a language which is usually more expressive and discloses the individual's opinion more clearly than words are able to do."

१३ Freud, "Fragments of an Analysis of case of Hysteria ("Dora"), 1903, "Collected Papers" Vol. III, p. 94:

"He that has eyes to see and ears to hear may convince himself that no mortal can keep a secret. If his lips are silent, he chatters with his finger-tips; betrayal oozes out of him at every pore."

१४ Allport 'Personality: A Psychological Interpretation' p. 481:

"Richly supplied with nerves and striated muscles the face is capable of the most varied expression.....Not only is it the region where most impressions are received, but its exposure to the outer world makes it the station for signals of rejection threat or invitation to others."

‘निर्वासित’ की भीसिया को जब ठाकुर साहब जून से भिक्षा गया भीराज सिंह का पत्र सुनाता है तो वह ‘अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को अपनी घाँटों में बटोर कर स्मिर दृष्टि से उसकी घोर देखती रखती है। चिट्ठी में वर्णित उस लोम-हर्षक और भयमयी बात की सच्चाई (या झूठाई) का पता लगाने का एकमात्र उपाय उसके लिए यही था कि ठाकुर साहब के मुख के बदलते हुए माँहों पर धीरे किया जाए।”^१ पर किसी की मनोरंजा को उसके नेहरे पर स पड़ सेवा कोई सरल काम नहीं इसके लिए अनु मनी चाहिए। इस क्षेत्र में अपनी सफलता स्वीकार करता हुआ भीराजसिंह कहता है “दूसरों के मन के भाव का आयास जान लेने का बाधा करने का साहस कम-से-कम मुझे तो नहीं होता। जब तक मौखिक सबूतों द्वारा किसी बात का प्रसुटन स्पष्टतया न हो तब तक केवल माँह-गिरा और भावमास से किसी के मन की सच्चाई बात को जान लेने की कल्पना करना अपने मन की ज्ञाति को बढ़ावा देना है।”^२ ‘प्रेत और छाया’ की हीरा जी पारसनाथ की उस व्यंगपूर्ण मुस्कान को न समझ सकी थी जो उसके नेहरे पर उस समय व्यक्त हुई थी जबकि हीरा ने उसकी इस आशंका को बिस्त्रुत निराधार बताया था कि नगिनी के अजीब रह कर उसका व्यक्तित्व नष्ट हो रहा है। “हीरा को यदि मानव-स्वभाव की विडुतियों का पहचान ज्ञान होता और यदि उसने मनुष्य के मुख पर विभिन्न अवस्थाओं और विविध रूपों में उभरने और बिलीन होने वाली रेखाओं का अध्ययन करना सीखा होता तो पारसनाथ की उस मुस्कान की भाङ में वह देखती कि एक लोमहर्षक और नारकीय प्रतिहिंसा अपनी कुटिल डाँड़ों को बिखा रही है।”^३

मुख-अध्ययन (फेस रीडिंग)

यह स्थिति तो हम पात्रों की है, जो कोरे ‘मनोवैज्ञानिक केंद्र’ में जिनमें सर्वदृष्टि की कमी है पर दूसरे वय के पात्र को न्यूनाधिक रूप से मनोविश्लेषक का भी काम करते हैं। मुख-अध्ययन (फेस-रीडिंग) में प्रवीण हैं। दूसरों की गोपनीय भावनाओं को समझने के लिए वे उनके मुख का ही ध्यानपूर्वक अध्ययन करते हैं और इसी से एक-दूसरे को काफ़ी कुछ समझ भी लेते हैं। ‘पर्व की रानी’ के इन्द्रमोहन की ‘शम्भूिर मुलाहति में अकस्मात् जो एक अनोखा घातकोत्पादक भाव स्फुट हो पड़ा था उसमें निरंजना ने अपनी प्राथमिक जेटों में ही उसकी मूल प्रकृति का आश्चर्यजनक आभास पा लिया था।”^४ ‘प्रेत और छाया’ के पारसनाथ ने नगिनी का परखावा सटकटाया। जब दरवाजा खुला नगिनी उसके सामने खड़ी थी। “अथवा

१ बेटी, ‘निर्वासित’, पृष्ठ २२३।

२ वही, पृष्ठ २३।

३ बेटी, ‘प्रेत और छाया’ पृष्ठ ३००।

४ बेटी ‘पर्व की रानी’ पृष्ठ २४।

साथ में पारसनाथ ने उसके मुख पर चरम विस्मय की भाँति का भाव देखा उसने बाह दूसरे ही क्षण वह भाव कोमल विषाद के एक हल्के से धावरण के रूप में बदल गया और उसके बाह हँस उठे। तत्काल वह हल्का सा सपत्कासीन बावस भी हट गया और निमल सुन्न प्रसन्नता के प्रकाश से उसका साध मुख प्रभासित हो उठा।^{१४} 'निर्वासित' के ठाकुर साहब के यहाँ प्रीति भोज के पश्चात् नीतिमा और कृपा के हाव-भावों उनकी मुद्राओं और चेष्टाओं पर महीप और भीरव एक-एक घाँटों से और एकांत मन से गौर करते रहते हैं, जैसे उन दोनों के जीवन और मरण की समस्या जन्हीं मुद्राओं और चेष्टाओं पर निर्भर करती हो। ऐसे ही कृपा और नीतिमा करती हैं। एक बार कृपा की दृष्टि का अनुसरण करते हुए नीतिमा की दृष्टि भी भीरव की ओर चली गयी। भीरव के म्हाल और सदास मुख पर न जाने कौन सी भयावह और रहस्यात्मक छाया उसने देखी कि वह सहन ही नहीं।^{१५}

घाँट : मन का वर्णन

सुखाकृति में भी जोशी जी ने विशेष रूप से घाँटों का चित्रण किया है। कहते हैं, घाँटें भारमा की खिड़की हैं और मन का वर्णन। मन में प्रयत्न से छिपाकर रखा हुआ गुप्तातिगुप्त भाव भी घाँटों में झलक उठता है। कदाचित् इसीलिए जोशी जी के पान दूसरों को समझने के लिए उनकी घाँटों को विशेष ध्यान से देखते हैं। 'परे की रानी' की घीसा जब निरंजना से हृदयोद्गम की उबारता की चर्चा कर रही थी तो उसने देखा कि निरंजना भावमग्न होकर सुन रही है उस समय 'उसकी घाँटों से कभी एक पुलकपूर्ण धाव झलक उठता था, कभी एक तीव्र बेदना व्यक्त होती थी और कभी एक विशिष्ट व्यंज का प्रामाण्य।'^{१६} 'प्रेत और छाया' की नन्दिनी जब अपने पति के विरक्त धाव उपलब्ध रही थी उस पारसनाथ को ऐसा पान पड़ा जैसे 'उसके अन्तर की सारी बूणा एकत्रित होकर उसकी घाँटों में समाकर उस व्यक्ति के विरक्त विस्फुरित होना चाहती हो।'^{१७} इससे पहले जब पारसनाथ एक बार नन्दिनी के यहाँ गया था तो उसे देखते ही नन्दिनी की घाँटों में 'संकोच बेदना और प्रसन्नता के भाव एक साथ व्यक्त हो उठे थे।'^{१८}

सुपुष्पावस्था से अनुभावों का चित्रण

जोशी जी पार्श्व की वास्तविकता के ही अनुभावों का चित्रण नहीं करते उनकी सुपुष्पावस्था में उनके चेहरे की रेखाओं और उनमें होने वाले परिवर्तनों के

१४ जोशी, 'प्रेत और छाया' पृ० १६१।

१५ जोशी, 'निर्वासित' पृ० १०५।

१६ जोशी, 'परे की रानी' पृ० १५१।

१७ जोशी, 'प्रेत और छाया' पृ० २०२।

१८ वही, पृ० १६५

माध्यम से भी उनके हृदय की व्याप्ति को उद्घाटित करते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने सुपुष्पावस्था की मुद्राओं और उनके होने वाले परिवर्तनों का काफी पहलू अध्ययन प्रस्तुत किया है। जॉन्सन और वेल्गंड का विश्वास है कि बिच मुद्रा में कोई छोटा है वह भी उसकी एक स्थायी वैयक्तिक विशिष्टता होती है।^{११} अनेक अध्ययनों के रोगियों की सुपुष्पावस्था की मुद्राओं की उनकी ईगिक रिपोर्ट से तुलना द्वारा एहसास हो इस परिणाम पर पहुँचता है कि मनुष्य का मानसिक हमला स्वामी रूप से उसकी सुपुष्पावस्था और बाह्यतावस्था की दोनों मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्ति पाता रहता है।^{१२} अपनी खोजों के साधारण पर वह यहाँ तक बता देता है कि कौन-सी मुद्रा चरित्र की किस विशिष्टता को व्यक्त करती है। जोनी की सुपुष्पावस्था की अन्य मुद्राओं की उपेक्षा करके पार्श्वों के चेहरे पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। 'बिप्पी' का नायक भी कोई हुई मनिषा के पास बैठ कर उसके मुख पर व्यक्त होने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों का अध्ययन करता है "वह प्रमाद निद्रा में मग्न हो किन्तु उसके कपोल की गर्तें पसकों का स्नायुतन्त्र होठों की लम्बा जैसे किसी घात अनुसूति से प्रतिपक्ष नई-नई चेष्टाओं के साथ चामित हो रहे थे। कभी वह अपनी माँहों को चिकोड़ती थी जैसे किसी निर्मम पीड़ा से कपहना बाहरी हो।"^{१३}

मुख अध्ययन का महत्त्व

जोनी की बाह्यतावस्था की छायाचित्रिक चेष्टाओं-मुद्राओं का चित्रण कर रहे हों वा सुपुष्पावस्था की चेष्टाओं का उनके अध्ययन का प्रधान केन्द्र पार्श्वों का चेहरा ही रहता है और वह मुद्राकृति में होने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों के चित्रण में इतने सीन हो जाते हैं कि क्षेप छायाचित्रिक मुद्राओं की उन्हें कुछ ही नहीं रहती। तो क्या वह मान लेता होगा कि केवल 'मुद्राकृति' के अध्ययन के बल पर व्यक्ति की मनःस्थिति का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है? इस विषय पर मनो-वैज्ञानिकों ने काफी मनोरंजक खोजें की हैं कि मनुष्य के शरीर का कौन-सा भाग

११ Johnson and Welgand, Proc. Penna. Acad. Sci., 1927 2, p. 43-45.

"The way a person sleeps is a very stable personal characteristic—as stable as its strength of grip or his speed and accuracy in mental Arithmetic."

१२ Adler, 'Problems of Neurosis: a Book of Case-histories' Vegan, Paul, Trench, London, p. 183:

"By comparing the sleep postures of patients in various hospitals with the reports of their daily life, I have concluded that the mental attitude is consistently expressed in both modes of life, sleeping and waking."

१३ जेरी, 'मिस्त्री' पृष्ठ ११।

उसकी भीतरी भावनाओं को उसके भावों को समझने में सबसे अधिक सहायक होता है। मरक नामक एक मनोवैज्ञानिक ने एक अभिनेता की अनेक प्रकार की भावनाय मुद्राओं के दूरे-दूर के चित्रों का अध्ययन किया और अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भावों का सर्वाधिक मुख प्रत्याका तो तभी तब पाठा है, जबकि छाया धीरे-धीरे सहित दिखाई देता हो।^{११}

कतिपय मनोवैज्ञानिकों की यह खोज भी कम रोचक नहीं कि मनुष्य के मनोवेष के ऊपरी भागों वाले भाग में अधिक स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होते हैं या नीचे के मुख वाले भाग में। इस बारे में, हनावास्ट नामक मनोवैज्ञानिक बड़ी छलबीन के बाद इस परिणाम पर पहुँचा है कि मनोवेषों को स्पष्टतया प्रतिबिम्बित कर सकने में स्थायी रूप से न तो नीचे मुख वाले भाग को बेव्यक्त कहा जा सकता है और न ही ऊपर के भागों वाले भाग को, तो भी अधिकतर नीचे का भाग मुख और प्रसन्नता की स्थिति को स्पष्टतया ज्ञापित करता है और ऊपर का भाग मय, बेचना और विस्मय की स्थिति को जल्दी उजाड़ता है।^{१२} इस दृष्टि से जोड़ी की जब अपने पार्श्वों के क्षेत्रों में सक्रिय मय हिंसा और गुला की प्रवृत्तियों को उनके चेहरे के ऊपरी भाग—विशेषतः माँछों—द्वारा व्यक्त कराते हैं तब तो ठीक है, पर जब वे "माँछों में संकोच बेचना और प्रसन्नता के भाव एक-साथ व्यक्त"^{१३} कराते जाते हैं, तब बात कुछ बन नहीं जाती।

अन्तर्मुख

अभिव्यक्ति संघर्ष

जोड़ी की के पास जीवन भर संघर्ष की जरूरी में पिसते रहते हैं पर वह संघर्ष उन्हें अपने बाहर की शक्तियों से नहीं अपने भीतर की प्रवृत्तियों से करना होता है। हम उनके जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया है, पर हम उन्हें किसी दूसरे

११ W. H. Riska, "A Preliminary Study of the Interpretation of Bodily Expressions," Teachers College contrib. to Educ., 1923, p. 574.

१२ (a) Raeb, *Psychology and Life* p. 183:

"Interestingly enough, neither the lower half nor the upper half of the face was consistently superior in expressing emotion in recognizable patterns. However the lower half was consistently more revealing in the expression of happiness and mirth, while the upper half was more revealing in the expression of fear and surprise."

(b) N. G. Hanewall "The Role of the Upper and the Lower parts of the face as a basis for Judging Facial Expressions" II. In *Poised Expressions and 'Candid Camera' Pictures* Journal of Psychology 1944 31 : p. 23-35.

१३ जोड़ी, मेड और बाबा १४ १९२१।

से नहीं, अपने से ही करना पड़ता है।^{१२} परिणामतः वे पाठनार्थों को मही में तिरा लिये करके जसते रहते हैं। जीवन भर वे इतने व्यग्र रहते हैं कि क्षण भर के लिए भी उन्हें नींद नहीं मिसता। जैसा कि हम पहले सिद्ध थाए हैं, जोशी जी के व्यक्तिगत पात्र 'मनोवैज्ञानिक केस' हैं। उनकी समस्या यह है कि सामर्थ्य और साधन होते हुए भी वे यह नहीं कर पाते जो करना चाहते हैं, और जो नहीं करना चाहते वह उन से हो जाता है। धारम्भ से ही जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में एक ऐसी विकृति या बाधा है जो किसी भी परिस्थिति से उनका सम्बन्ध नहीं बैठने देती और उनको उत्तरोत्तर बेचैन किए रखती है। धार्मिक संवेदनशील होने के कारण छोटी-से-छोटी घटना भी उनमें इतनी अधिक दुःखद अनुभूतियों को जन्म दे देती है कि वे उनके लिए असह्य हो उठती हैं और इतना झुंझ कर उनके अचेतन में अनेक प्रकार की छवियों का निमग्न कर देती है। मनुष्य का अचेतन ठगता रहता है। विशेषतः इस वयार्थ को जो समाज द्वारा निषिद्ध और अस्वीकार्य हो, पर इस प्रकार, अपने आप को अपने में साम की अपेक्षा हानि की सम्भावना ही अधिक रहती है। उसे वचास्प स्वीकार करने में ही सहाई है। इन पात्रों का चेतन मन जब तक सकल रहता है। ये दुःखद अनुभूतियाँ उनके अचेतन में बसी रहती हैं परन्तु ही किसी कारण चेतन का संकुच घट जाता है उनके अचेतन में कोई पक्षी वे अनुभूतियाँ अपने मन कम में उभर जाती हैं और उनके व्यवहार में एक विस्फोट ला देती हैं। इस प्रकार इन पात्रों के चेतन और अचेतन में लगातार संघर्ष चला रहता है, जिसमें कभी चेतन जीत जाता है और कभी अचेतन। जब उनके अचेतन पर चेतन का संकुच रहता है, तब तक वे साधारण सामाजिक मनुष्य की भाँति शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार करते रहते हैं पर चेतन के बीसा पड़ते ही अचेतन उसके संकुच को उठा फेंकता है और उनकी किसी हुई समस्त दृष्टि और क्रुतिसत प्रवृत्तियाँ अपने मन कम में नाच उठती हैं और परिस्थिति से उनका संतु मन बैठने-बैठने रुक जाता है। एलडर का विश्वास है कि जीवन में यत्न दृष्टि अपनाते से व्यक्ति के चेतन और अचेतन में लगातार संघर्ष चला रहता है।^{१३} जोशीजी के सभी पात्रों के मन में धारम्भ से ही कोई-न-कोई ऐसी बाधा पड़ जाती है, जो जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण को विकृत कर देती है।

'पर्व की रात्री' की निर्दोषता के हृदय में सीला के प्रति सच्ची भयदा वर्तमान है, जिस पर भी वह उसके सर्वनाथ के लिए खुशी रहती है। वह नहीं चाहती कि सीला के प्रति को हथिया कर सीला के सर्वनाथ का कारण बने। पर जो वह करना नहीं

१२. जोशी 'अज्ञान का पक्षी' पृष्ठ ४६२।

१३. Adler 'Sinn des Lebens' (Social Interest: a Challenge to Mankind), p. 170।

"If one proceeds correctly one will always find the self, the whole, while from an incorrect view a conflict may seem to be present such as between the conscious and the unconscious."

बाहरी नहीं उससे होता जाता है। अपने स्वभाव की इस विविधता पर उसे स्वयं धारण है।^{१०} जब तक उसका चेतन मन यह भ्रमा रहता है कि वह एक बेस्पा माठा और सूनी पिता की संतान है तब तक तो वह ठीक रहती है पर ज्यों ही यह विचार किसी बहाने से उसके मन की ऊपरी सतह पर आ पहुँचता है, उसका सारा व्यक्तित्व एक भीषण युद्ध के-से आन्दोलन से घस्त-घस्त हो जाता है और उसके मन में तत्काल यह राखसी इच्छा जाग उठती है कि किसी को काट बाँट।^{११} 'प्रेत और छाया' का मायक पारसनाथ न तो जीवन भर स्वयं किसी नारी को समर्पित हो पाता है और न ही किसी बुरे के समर्पण को स्वीकार कर पाता है। उसके मन में यह बात घोंट बनकर पड़ी हुई है कि उसकी माँ व्यक्तिचारी है और वह उसकी बारज संतान है। जब तक यह बात उसे याद नहीं रहती, वह किसी भी नारी के जीवन से बड़ी तेजी के साथ उलझता जाता है, पर ज्यों ही यह बात उसके चेतन पर उभर आती है वह उस नारी में अपनी व्यक्तिचारी माँ की प्रतिच्छाया पा, उससे पीछा छुड़ा कर भाग निकलता है। जीवन भर वह एक-से-बुरी और बुरी-से-तीसरी नारी की ओर भटकता रहता है और उसका भटकना तब तक नहीं रुकता जब तक कि उसका पिता मरने से पहले उसे यह प्रमाणित नहीं कर जाता कि उसकी माँ व्यक्तिचारी न होकर जीवन भर पतिव्रता ही रही थी।

फ्रायड के 'प्लेजर' और 'रीऐसिटी' सिद्धान्त

ओधी जी के पास फ्रायड द्वारा प्रतिपादित 'शुद्ध सिद्धान्त' और 'यथार्थ सिद्धान्त' के पारस्परिक संबंध के भी अच्छे उदाहरण हैं। मनुष्य किसी भी अनुभूत सुख को नहीं छोड़ना चाहता। वह चाहता है कि उसका सुख घमर हो जाए, उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति तत्काल ही हो जाए—उसका परिणाम चाहे कुछ भी निकले। यह उसकी सन मूल प्रवृत्तियों की माँग होती है, जिन पर उसकी विवेक-बुद्धि का संकुच नहीं रहता। पर उसकी विवेक-बुद्धि को उसकी सामाजिक नैतिकता की माँग होती है, उसे किसी उच्चतर सुख की आशा बँबाकर उसकी असामाजिक इच्छाओं की पूर्ति की टालती रहती है। विवेक-बुद्धि का संकुच जब भी कभी किसी कारणवश घट जाता है—चाहे सण भर के लिए ही उठे—मनुष्य की पापविक प्रवृत्तियाँ जल नर्तन के लिए मचल उठती हैं। इस प्रकार मनुष्य की मूल पापविक प्रवृत्तियों और उसकी विवेक-बुद्धि में विरन्तर संघर्ष चलता रहता है।^{१२} ओधी जी के पात्रों की तो इच्छापूर्ति की माँग

१० 'ओसी, परें की रानी' पृष्ठ १३४।

११ वही पृष्ठ १३१-१३४।

१२ Freud, *Beyond the Pleasure Principle* International Psycho-analytical Press, 1921 p. 5।

"Under the influence of the instinct of ego for self preservation the (pleasure principle) is replaced by the reality principle which without giving up the intention of ultimately attaining pleasure yet demands and enforces the postponement of satisfaction, the renunciation of manifold possibilities of it and the temporary endurance of pain on the long and circuitous road to pleasure

से नहीं, अपने से ही करना पड़ता है।^{१२} परिणामतः वे यातनाओं की वही वे तिन तिम करके जमते रहते हैं। जीवन भर वे इतने व्यग्र रहते हैं कि कल भर के लिए भी उन्हें नींद नहीं मिलता। बीसा कि हम पहले भिन्न पाए हैं, बोरी जी के धर्मिकान्तर पात्र 'मनोवैज्ञानिक केस' हैं। उनकी समस्या यह है कि सामान्य और साधन होते हुए भी वे यह नहीं कर पाते जो करना चाहते हैं, और जो नहीं करना चाहते वह उन से हो जाता है। धारम्भ से ही जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में एक ऐसी विकृति पड़ जाती है, जो किसी भी परिस्थिति से उनका अनुपम नहीं है, वे देती और उनकी उत्तरोत्तर बेचैन किए रहती है। प्राथमिक संवेतनशील होने के कारण छोटी-से-छोटी बटना भी उनमें इतनी अधिक दुःख अनुभूतियों को जन्म दे देती है कि वे उनके लिए असह्य हो उठती हैं और समित होकर उनके अचेतन में अनेक प्रकार की बीबीयों का निर्माण कर देती है। अनुपम का संवेतन कमता रहता है। विवेकत उस प्रकार को जो समाज द्वारा नियंत्रित और प्रतीकार्य हो, पर इस प्रकार, अपने आप को छाने में लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना ही अधिक रहती है। उसे अपना स्वीकार करने में ही अमाई है। इन पात्रों का चेतन मन जब तक सकल रहता है, वे दुःख-अनुभूतियाँ उनके अचेतन में बनी रहती हैं परन्तु ही किसी कारण चेतन का संकुच उठ जाता है, उनके अचेतन में सोई पड़ी वे अनुभूतियाँ अपने मन रूप में उभर आती हैं और उनके व्यवहार में एक विस्फोट या देती हैं। इस प्रकार इन पात्रों के चेतन और अचेतन में लगातार संघर्ष चला रहता है, जिसमें कभी चेतन जीत जाता है और कभी अचेतन। जब उनके अचेतन पर चेतन का संकुच रहता है, तब तक वे सामान्य सामाजिक अनुपम की भाँति सिष्टतापूर्ण व्यवहार करते रहते हैं, पर चेतन के बीसा पड़ते ही अचेतन उसके संकुच को उठा फेंकता है और उनकी धिरी हुई समस्त क्रियाएँ और क्रियाएँ प्रकृतियाँ अपने मन रूप में नाच उठती हैं और परिस्थिति में उनका संकुचन बैठते-बैठते रुक जाता है। एवम्बर का विश्वास है कि जीवन में प्रत्येक दृष्टि अपनाते से व्यक्ति के चेतन और अचेतन में लगातार संघर्ष चला रहता है।^{१३} बोरीजी के सभी पात्रों के मन में धारम्भ से ही कोई-न-कोई ऐसी गड़बड़ पड़ जाती है जो जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण को विकृत कर देती है।

'परे की रानी' की निरंजना के हृदय में शीसा के प्रति अपनी ममता सर्वमान है, कि पर भी वह उसके सर्वनाश के लिए तृप्ति रहती है। वह नहीं चाहती कि शीसा के पति को हथिया कर शीसा के सर्वनाश का कारण बने। पर जो वह करना नहीं

१२ बोरी 'मनन का पक्ष' पृष्ठ ४१२।

१३, Adler 'Zian des Lebens' (Social Interest: a Challenge to Mankind), p. 170.

"If one proceeds correctly one will always find the self, the whole, while from an incorrect view a conflict may seem to be present such as bet ween the conscious and the unconscious."

बाहरी बही उससे होता जाता है। अपने स्वभाव की इस विविधता पर उसे स्वयं आश्चर्य है।^{१२} जब तक उसका चेतन मन यह भूला रहता है कि वह एक बेरया भावा और कूनी पिता की संतान है, जब तक वो यह ठीक रहती है, पर ज्यों ही वह विचार किसी बहाने से उसके मन की क्रमशः उस पर आ पहुँचता है उसका सारा व्यक्तित्व एक भीषण झुक्कन के-से धाम्बोलन से धस्त-धस्त हो जाता है और उसके मन में तत्काल यह दाससी इच्छा जाग उठती है कि किसी को काट काट।^{१३} 'प्रेत और स्याय' का नामक पारसनाथ न तो जीवन भर स्वयं किसी नारी को समर्पित हो पाता है और न ही किसी दूसरे के समर्पण को स्वीकार कर पाता है। उसके मन में यह बात घोंट बनकर बैठी है कि उसकी माँ व्यभिचारिणी थी और वह उसकी कारण संतान है। जब तक यह बात उसे याद नहीं रहती वह किसी भी नारी के जीवन से बड़ी तेजी के साथ दूरी होता है, पर ज्यों ही यह बात उसके चेतन पर उभर आती है, वह उस नारी में अपनी व्यभिचारिणी माँ की प्रतिबिम्बता पा, उससे पीछा छुड़ा कर भाग निकलता है। जीवन भर वह एक-से-दूसरी और दूसरी-से-तीसरी नारी को घोर घटकता रहता है और उसका घटकना जब तक नहीं रुकता जब तक कि उसका पिता मरने से पहले उसे यह प्रमाणित नहीं कर जाता कि उसकी माँ व्यभिचारिणी न होकर जीवन भर पवित्रता ही रही थी।

आमर के 'प्रेमर' और 'रीदेसिरी' सिद्धांत

ओपी बी के नाम अमर द्वारा प्रतिपादित 'सुख सिद्धांत' और 'यथार्थ सिद्धांत' के पारस्परिक संघर्ष के भी अच्छे उदाहरण हैं। अनुप्य किसी भी अनुमृत सुख को नहीं छोड़ना चाहता। वह चाहता है कि उसका सुख अमर ही जाए, उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति तत्काल ही हो जाए—उसका परिलाम बाहे कुछ भी निकले। वह उसकी मन मूस प्रवृत्तियों की मान होती है, जिन पर उसकी विवेक-बुद्धि का प्रभुत्व नहीं रहता। पर उसकी विवेक-बुद्धि, जो उसकी सामाजिक नैतिकता की मान होती है उसे किसी सम्भवतः सुख की भाषा बँबाकर उसकी सामाजिक इच्छाओं की पूर्ति को दासता रहती है। विवेक-बुद्धि का प्रभुत्व जब भी कभी किसी कारणवश उठ जाता है—बाहे सस्र बार के लिए ही उठे—अनुप्य की पाशविक प्रवृत्तियाँ नज़ नर्तन के लिए मचल खड़ी हैं। इस प्रकार अनुप्य की मूस पाशविक प्रवृत्तियों और उसकी विवेक-बुद्धि के निरंतर संघर्ष चलता रहता है।^{१४} ओपी बी के पात्रों की वो इच्छापूर्ति की सासरा

१२ 'ओपी, पों की रानी' पृष्ठ १३५।

१३ वही पृष्ठ १३१-१३२।

१४ Freud, Beyond the Pleasure Principle International Psycho-analytic Press, 1924 p. 5:

"Under the influence of the instinct of ego for self-preservation (pleasure principle) is replaced by the 'reality principle' which without giving up the intention of ultimately attaining pleasure yet demands and enforces the postponement of satisfaction, the renunciation of manifold possibilities of it, and the temporary endurance of pain, on the long and circuitous road to pleasure."

सदा भीरु भी कठोर मर्यादाओं से टकराकर बिखरती रहती है। समाज के विधि विवेकों तथा उसकी नैतिकता के संस्कारों की वह पर वह उनके मन पर इसी पक्की कमी हुई है कि जब कभी समाज के मन किसी वासना की पूर्ति के लिए प्रवृत्त हो उठता है तो उनकी विवेक-बुद्धि—जो सामाजिक नैतिकता का ही एक रूप है—उससे टकरा जाती है और उनकी प्राथमिक प्रवृत्तियों का मूल गर्त में चहसा बीच में ही रुक जाता है। इस प्रकार उनके जाने या अजाने उनके चेतन अचेतन में उनकी मूल प्रवृत्तियों तथा विवेक-बुद्धि में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है जो उन्हें अग्र क्रिये रक्ता है और उनके भरसक चाहने पर भी परिस्थिति से उनका मेस नहीं बैठने देता।

'निर्वासित' की नीतिमा अपनी बहुत और भी से खोरी महीप को अपने मही नाम पर आमन्त्रित तो कर लेती है पर एकान्त में उससे मिलने के लिए साहस नहीं बढ़ोर पाती। क्योंकि वह अन्तरात्मा की प्रसारणा सह करने में अपने को असमर्थ पाती है। इसीलिए जब नीकर ने उसे महीप के जाने की सूचना दी तो यद्यपि उसकी संकट भावना जो उस समय उसके चेतन मन में थी उससे कहलवा देती है कि उन्हें दुसा नामो पर भीतर मन ही मन वह कह रही होती है 'उन्हें लौट जाने को कह दो।' विवा के समय भी जब महीप नीतिमा से माय बसने का प्रस्ताव करता है, तो उस 'विचित्र पायसपन के से प्रस्ताव को मानने के लिए उसके मन का एक अज्ञात कोना विचलित हो उठता है। यह उसकी मूल मही प्रवृत्ति की मीग थी परसहसा उसकी विवेक-बुद्धि—समाज के विधि-विवेकों की मीग—उस पर विजय पा लेती है और वह अत्यन्त आकु-लता से बोल उठती है "नहीं महीप यह सम्भव नहीं।" "तुम नहीं जानते मेरी विषय चारों को, मैं असंख्य बंधनों से बंधी हुई हूँ—बाह्य के बन्धन अपने ही मन के बंधों न हों मैं जाती हूँ।"^{४१} 'प्रेत और छाया' का नायक पारसनाथ मंजरी से प्रेम करता था और उसके सामीप्य-स्वाभ के लिए तरसता था। पर मंजरी की माँ की मृत्यु वाली काव राजि में जब मंजरी ने अपने दोनों भायों से पारसनाथ के दोनों पुटने पकड़ लिये तो उसके मन में एक तीव्र झट्ट भव्य छठा। उसका हृत्त विचित्र हो उठा 'एक ओर उसे पुत्र की अनुमति बरबस पुनर्जित कर रही थी जिसकी प्रतीक्षा वह इतने दिनों तक अत्यन्त अर्पण के साथ करता आया था और दूसरी ओर मृत-नाथ के पुत्र का विकट अर्धपूर्ण (काल्पनिक या वास्तविक) भाव प्रार्थन से उसके रोएँ खड़े कर रहा था।^{४२} वास्तव में यह उसकी नैतिक भावना उसकी विवेक-बुद्धि ही थी जिसके मय से वह मंजरी के समर्पण को स्वीकार करने में, अपनी वासना की उत्काम पूर्ति में हिच किचा रहा था।

४१. 'मेरी, निर्वासित' पृष्ठ १२८।

४२. यही पृष्ठ १२९।

४२. 'मेरी, प्रेत और छाया' पृष्ठ १२५।

इस प्रकार, बोधी जी के पाशों के चेतन और अचेतन में तथा चेतन-अचेतन दोनों की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों में निरन्तर द्वन्द्व-युक्त होता रहता है, जिसे उखाड़ने के लिए वह विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग करते हैं।

मनोवैज्ञानिक व्याख्या (इन्टरप्रेटेशन)

व्याख्या मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का एक अनिवार्य घंग है। जब कोई उपन्यासकार किसी ऐसी प्रणाली का प्रयोग करता है जो उसके पाशों के अचेतन को प्रकाश में लाती हो तो इसके उपन्यासों में व्याख्यात्मक घंटों का समावेश आवश्यक हो जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्याख्या उसनी ही अनिवार्य है जिसनी मनोविश्लेषण में। जिस प्रकार पाशों के अचेतन में रही अनुभूतियों के उनके चेतन में आ जाने पर है उनकी मनोवैज्ञानिक प्रकृति नहीं छुलक जाती प्रत्युत समस्या के कारणों का वास्तविक स्वरूप पात्र को समझने के लिए मनोविश्लेषक द्वारा व्याख्या की भी जरूरत पड़ती है। उसी प्रकार उपन्यास के पाशों की मानसिक प्रवृत्तियों के अचेतन कारणों के वास्तविक स्वरूप को पाठकों पर व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार द्वारा व्याख्यात्मक टिप्पणियों का समावेश आवश्यक हो जाता है। इनके अभाव में पात्र और उनका चरित्र-विकास पाठकों के लिए पहेली बना रहता है। इसलिए, जब तक उपन्यास में व्यक्त पाशों की अचेतन अनुभूतियों की व्याख्या पाठकों की सोझता का एक संवत्न बन जाए, पाशों की अचेतन कठिनाइयों की व्याख्या का उत्तरदायित्व उपन्यासकार पर ही रहेगा।^{१२}

बोधी जी के उपन्यासों में इस प्रकार की व्याख्याएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। वास्तव में व्याख्यात्मक घंटा उनके उपन्यासों का प्राण है। इनके बिना पाशों के आचार विचार और व्यवहार में कार्य-कारण के सूत्रों को ढूँढ़ निकालना साधारण पाठकों के बूते की बात नहीं।

निरंजना की अचेतन प्रवृत्तियाँ

उनके उपन्यास 'पर्व की रानी' की नायिका निरंजना हम्मोहन के अंधकार रूप से परिचित होने पर भी उसे अपनी और आकर्षित करने की जरूरत चेष्टा करती है और दूसरी ओर सीमा को हृदय से आहरी हुई भी निरन्तर उसके विनाश की ओर धधक रहती है। उसकी इन परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों में येत बैठाना पाठकों के लिए दुष्कर हो जाता यदि उपन्यास के अंत वाला निरंजना के गुप्त मनमोहन जी का यह व्याख्यात्मक संघटन न जुड़ा होना : 'जो व्यक्ति तुम्हारा रक्त बनकर भी मरक बनने पर उताव्र था तुम्हें एक बेरया की बेटी समझकर धारण हीन दृष्टि से देखता था, (अपनी लड़कियों तक को उसने कभी तुम्हारे पास नहीं आने दिया) और साथ ही

तुम्हारे सीधे के प्रति समर्पित होकर लड़, बल और कौशल से तुम्हारा कौमार्य नष्ट करने की प्रबल इच्छा रखता था उसके सड़के के भीतर लालसा की धाम मड़का कर उसे जीवन भर भवृष्टि की छाँव में तड़पाते रहने की प्रवृत्ति जान में या मनबान में तुम्हारे भीतर घर कर गई थी 'केवल उसे जला-जलाकर बिनाश के पन की ओर से जाकर ही तुम्हारी प्रतिहिंसक वृत्ति ने सम्तोष नहीं किया बल्कि उसके भीतर बने हुए सेतान को पूर्ण रूप से उमाड़ कर अपने अज्ञात में तुमने उसे हस्ता के लिए उकसाया । इस बात से तुम्हारा सम्तर्पण यह सम्तोष भी प्राप्त करना चाहता था कि केवल तुम्हारे पिता ही जूनी नहीं थे बल्कि संसार के प्रत्येक पुरुष के भीतर वह भावना निहित रहती है वह तुम्हारे सामने तुम्हारी माता के प्रतीक के रूप में आई थी । जब से तुमने सुना कि तुम्हारी माता एक बेस्वा थी और उसने तुम्हारे पिता को जोखा दिया, उसके निरन्तर ही तुम्हारे मन में तुम्हारे मनबान में अपनी उस बेस्वा माता के विरुद्ध विद्रोह की भावना बड़ पकड़ गई होती जिसने तुम्हारे पिता को जूनी बनने के लिए बाध्य किया । चूंकि अपनी माता के समान ही स्नेहशील सीता को तुम्हारे प्रेत में माता के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया होगा इसलिए उसके विरुद्ध तुम्हारा वह हिंसक भाव पूर्ण रूप से कारगर हुआ । '४४

पारसनाथ की सामाजिक चिन्ता

'प्रेत और छाया' का पारसनाथ जीवन भर कैपड़े के मोटे की तरह घटकता रहा । अपने जीवन में आई अनेक नारियों को वह हृदय से चाहता हुआ भी उनके प्रति समर्पित न हो सका और न ही उनके समर्पण को स्वीकार कर सका । अपने इस असाधारण जीवन की व्याख्या वह स्वयं मंजरी की ही हुई सफाई के रूप में इस प्रकार करता है "तुम्हें याद होना मैंने एक दिन तुमसे कहा था कि मैं अपनी माँ के पति का बेटा नहीं बल्कि उसके प्रेमी का सड़का हूँ । मुझे इस बात का अन्वेष्टा था कि मेरी बात सुनकर तुम उसी वक्त से मुझसे बूणा करके सबोणी पर तुमने अपने विद्यालय हृदय की गहरी संवेदना का परिणय देते हुए कहा था—'नहीं तुम कदाई बूणा के मोघ नहीं हो कोई भी बुद्धी मावमी बूणा के मोघ नहीं हो सकता । इस बात कि तुम्हारी महामता का परिचय अकस्म मित्रा पर उससे मेरे समान सीता-हृदय किन्तु प्रबल अनुभूतिशील प्राणी की आत्मगमनि कुछ भी कम नहीं हुई । आत्मगमनि की वह भावना कभी सर्वनाशी और आत्म-शोधी भी इसकी कल्पना ध्यान में स्वयं नहीं कर सकता कोई दूसरा क्या कर सकेगा । इस भावना ने सारे संसार को मेरे लिए बर्णकर रौख नरक में परिणत कर दिया था और वह नरक में निवास करने वाले प्रेती और छायाओं के सदृश मैं जीवन बिताया करता था और जाग्रतावस्था में रहने पर भी सब समय मित्रा विचरण के योगी कान-का धावरण किया करता था एक बरत ही बात ने मेरे सारे व्यक्तित्व को ऐसे बर्णकर रूप से जीवाशेष कर दिया यों याद

जब मुझे इस बात का निश्चित प्रमाण मिला गया कि मैं बारज नहीं बल्कि अपनी माँ के पति का ही पुत्र हूँ तो मेरी सारी भावनाएँ ही एकदम पलट गईं । २

मुमन्दा की जीवन प्रवृत्ति

‘मुक्ति-पथ’ की विधवा मुमन्दा जो लोकसाज और कुल-भर्याबा सब कुछ को तिलांजलि देकर मुक्ति-निवेश की स्थापना के लिए राबीब के साथ घर से निकल भागी थी और जिसने दिन रात अथक परिश्रम द्वारा मुक्ति निवेश को सुदृढ़ बना दिया था वही मुमन्दा अब आई बर्ष में ही उससे छुटाकर दूर भागने के लिए तैयार हो उठती है, जो पाठकों को उसके इस आचरण पर आश्चर्य होता है । उसके इस व्यवहार के कारणों को जानने की प्रक्रिया की उत्सुकता के रूप में मानो पाठकों की उत्सुकता ही व्यक्त हुई है । मुमन्दा उसका उत्तर इस प्रकार देती है ‘तुमसे क्या छिपाऊँ रानी भवश्य ही इतने दिनों तक मेरे मन में कहीं न कहीं यह इच्छा रही हुई थी कि मेरे भीतर के असते हुए रेमिस्तान में जहाँ चिनवारियों की तरह लकटे हुए बामू के कणों के सिवा और कुछ नहीं है वहाँ कहीं एक कोने में अगर तनिक हरिवासी छा जाती । तब सावय जीवन कुछ सुधरे ही रूप में सामने आया होता । सबनऊ छोड़कर अब उनके साथ यहाँ आई, तब अस्पष्ट, एकदम अस्पष्ट-सी आशा भी मेरे मन में वर्तमान थी कि सावय उस हरिवासी के छाने का समय आ गया है । पर— आज आई बर्ष भीत चुके हैं, और भीतर वही बिगल-धराएँ जलती हुई रेत आँधियों के वेग से घाय घाय-घाय की आवाज से लड़ी जाती आ रही है । कई पीढ़ियों से संवर पड़ी हुई जमीन तुम्हारे पानीय बामू के बुर्दों कर्मोद्यम से आज लहलहा रही है । पर मेरे भीतर की जमीन एकदम सूखी और सूनी पड़ी है । बामू केवल बामू । पानी की बूँद भी कहीं नहीं है—हरिवासी की कील कहे ।’ २

नीलिमा का अपसाधारण (एम्बोर्मल) व्यक्तित्व

‘निर्वासित’ की नीलिमा एक रात बड़े उत्साह से महीप के साथ अपनी माँ से दूर भागने के लिए हठ करने लगी थी और अपनी अस्वामाधिक और अपसामान्य मनोरथा के कारण असाधारण घटनाक्रम के फेर में पहुँचकर महीप को अपना ‘हस्तेड’ बनाने पर उसने जो एक नई उलझन अपने और साथ ही महीप के मन में उत्पन्न कर दी थी अपनी माँ से मिलने के बाव उस सबसे वह केवल जो दिम में मुग्न हो गई थी । उसमें आया इतना विषम और तीव्र परिवर्तन पाठकों को आश्चर्य में डाल देता, यह बात जोसी जी प्रण्वी तरह जानते थे इसलिए वह नीलिमा की उस रात की मन स्थिति की बड़े मनोयोग से व्याख्या करते हैं जो सात पृष्ठ भर सेरी

१. जोसी, मेरा और साता ४१६-४१७ ।

२. जोसी ‘मुक्ति-पथ’ ३०-३२-३३ ।

है।^{१२} यहाँ स्वामिनाथ के कारण इतनी लम्बी व्याख्या तो नहीं दी जा सकती, पर उसका एक संक्षेप प्रस्तुत किया जाता है —

‘स्टेशन पहुँचते ही जब तबि की गति रुकी, तब सहसा नीलिमा के मन की गति-प्राकृत बसा की गति भी स्वगित हो गई। उसका जो ससाधारण व्यक्तित्व कुछ प्रजीव से मनोवैज्ञानिक कारणों से उस दिन जमर उठा या बह बड़ी तीव्र गति से विभोक्त होने लगा—जैसे कोई विमान आकाश में भीमों ऊपर स्टेटास्केयर में—उड़ान भरने के बाद सहसा सीधा नीचे उतरने को बाध्य हुआ हो और उस उद्देश्य से बड़ी तेजी से गिरते जाता बना जा रहा हो। उस बोतालोरी की मय्याबस्ता में उसके मन की धाँसे जिस प्रजीव रंग से बरकते हुए छत्रछायाओं—‘परिवेशनों’—में वास्तविक तथा कास्मिक दृश्यों को देख रही थी उनकी अनुभूति नीलिमा को विभिन्न और विभ्रा मक लग रही थी। जब महीप टिकट खरीदने गया और नीलिमा व्यस्त यात्रियों की भीड़ के बीच में एक स्थान पर खड़ी रही तब उसे (नीलिमा को) अचानक ऐसा लगा कि उसका जो विमान कुछ ही क्षण पहले ‘स्टेटास्केयर’ में उड़ान भर रहा था, वह पृथ्वी पर टकरा कर चकनाचुर हो गया है। उसकी माँ ने न जाने टेनीपेची की किस चुम्बक-शक्ति से ‘उकैट’ से भी तीव्र गति से चलने लगे, जोन प्रत्य उससे उस मनोविमान पर कैका था। क्योंकि उस दिन संध्या के छोटे को रूप व्यक्तित्व समरा हुआ था जब वह एक बिस्कोट के साथ सहसा किसी गयी, तब तत्काज विचनी की तरह उसकी धाँसे के भागे सर्वत्र माँ का ही रूप विभासित हो उठा और एक मात्र माँ की ही निष्ठा ने सर्वोच्च रूप कारण करके उसके सारे मन को चारों ओर से तूफानी बादलों की तरह छा दिया। यही कारण था कि महीप जब टिकट खरीद कर उसके पास पहुँचा तब वह भीख मार उठी। उसका प्रतिदिन के जीवन का वही साधारण व्यक्तित्व कराह उठा जिसमें एक पल के लिए भी माँ के स्नेह-बन्धन से मुक्त होने का साहस कभी नहीं हुआ कभी हल्का ही नहीं हुई। उसकी सारी बहिष्कारना मुहार मार उठी—‘माँ ! माँ ! माँ ! जिस माँ के जीवन में पहुँची बार सर्वकर बिहोड़ करके वह जसी भाई थी उसके सहस्र कर अपने को चारों ओर फैलाकर बिहूत और विकल अनुभव के साथ जैसे कह रहे थे—‘धा बा बैटी धा बा। तेरे लिए इस जीवन में एकमात्र इन्हीं हाथों में आश्रय है। एकमात्र माँ की मोद ही ऐसा स्थान है जहाँ नाना विराधी और विपक्ष बर्जों से भरे इस जीवन में तू अपने फिर दिन के अपभ्रंश के अनुसार सन्तुलित से बैठ सकती है और आराम से करबट ले सकती है। इसे छोड़कर इतनी देर तक तू व्यर्थ के किन भ्रामक स्वप्नों, भ्रमत्वाकांक्षा को किन मरीचिकाओं से भरे लोफ में भटकती रही ? आवा बैटी धा बा।’^{१३}

१२ बोरी, निर्दिष्ट ५ २७२-२७३।

१३ बोरी, निर्दिष्ट ५ २७५-७७।

सम्बन्धी-सम्बन्धी तर्कपूर्ण व्याख्याएँ

व्याख्यात्मक ग्रंथ तो सभी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हुआ करते हैं। बल्कि ये इन उपन्यासों का एक अनिवार्य भाग भी हुआ करते हैं। पर जोड़ी जी के उपन्यासों में व्याख्याएँ सम्बन्धी होकर व्याख्याओं का रूप धारण कर लेती हैं। मानो ये व्याख्याएँ ही साम्य हैं। कुछ एक मनोवैज्ञानिक समस्यार्यों की व्याख्या के लिए ही उनके विधान काय उपन्यासों की रचना हुई हो। इसलिए यह निवारणीय हो सकता है कि इस प्रकार की सांघोर्षीय व्याख्याओं के लिए उपन्यास अधिक उपयुक्त हो सकता है या मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ। मनोविश्लेषण की दृष्टि से भी ये सम्बन्धी-सम्बन्धी तर्कपूर्ण व्याख्याएँ ठीक नहीं बैठतीं क्योंकि फ्राइड के मतानुसार मनोविश्लेषण का तर्कपूर्ण सदन मज्जन और विमल से कोई साम्य नहीं प्रस्तुत करता वह स्व तो केवल व्यक्ति की मानसिक शक्तियों की कार्य-कारण परम्परा को उसके चेतन में ले आता है।^{१४} इस लिए फ्राइड की बारछा है कि पात्र की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों की कार्य-कारण परम्परा के सम्बन्ध में अपने अनुमानों को पात्र पर व्यक्त करना। ऐसा कि 'पर्व की रानी' का मनमोहन और 'निर्वासित' का गद्दीप करता है। मनोविश्लेषण-प्रणाली की सबसे बड़ी भूख होती। मनोविश्लेषक को व्याख्याओं का केवल उत सीमा तक और उत रूप में प्रयोग करना होता है कि वाम अपनी दमित अनुभूतियों को स्वयं अपनी चेतन स्तुतियों में आ सके। 'पर्व की रानी' के मनमोहन की तरह मनोविश्लेषक अपने पात्र से यह कभी नहीं कहता कि उसका इस या उस प्रकार सोचना गलत है, प्रस्तुत यह उसे इस योग्य बनावा है कि वह अपनी मानसिक समस्याओं के कारणों को ग्रहण कर सके।^{१५}

स्वप्न विश्लेषण (ड्रीम ऐनेलिसिस)

जोड़ी जी के पात्रों के चचेतन में रही पड़ी दुःख अनुभूतियाँ जो उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं की जगमगाती हैं। बीच-बीच में उनके स्वप्नों तथा दिवा स्वप्नों में भी अभिव्यक्ति पाती रहती हैं, पर वहाँ के अनुभूतियाँ अपने वास्तविक रूप में न प्रकट होकर रूप बदल कर ही जाती हैं। इनके पात्रों के स्वप्नों में प्रायः के सभी संघटन (पैकेजिंग) मिस जाते हैं, जिसका उत्सेह फ्राइड ने किया है। यहाँ स्वाभाविक से उनके पात्रों के सभी स्वप्नों को न लेकर सहाकरण के लिए कुछ-एक स्वप्नों को ही निभा जा सकेगा।

^{१४} Freud 'de l'Inconscient' M.P., p. 147-151.

^{१५} Freud 'Introductory Lectures on Psycho-analysis' trans. Joan Riviere, Allen & Unwin, p. 237-38.

स्वप्न-संपदन (ड्रीम मैकेनिज्म)

उसके उपन्यास 'बहाव के पंखों' का नायक जब लीला के यहाँ से भी भागने की सोच रहा था तब उसने रात को यह स्वप्न देखा "बचपन में जिस घर में, जिस पड़ोस में जिस युग में और जिस बातावरण में मैं रहता था उससे सम्बन्धित एक झट पटांग और पर्यहीन-सा स्वप्न था वह। स्वप्न के अधिकांश पात्र न जाने कब घर चुके थे। अधिकांश बातें मेरे अपने युग की कर रहे थे पर बीच-बीच में एक-आध अस्पष्ट बात मेरे वर्तमान बातावरण से सम्बन्धित कर बैठते थे। पर वे क्या कहते थे और क्या करते थे यह मैं किसी भी तरह ठीक से याद नहीं कर पाता था। कभी लगता था जैसे बचपन के युग के किसी मेले में हम लोग जा रहे हैं। उस मेले के राग-रंग और गन्नाड़ में कभी समी पुराने लोग सम्मिलित दिखाई देते थे कभी इस युग के लोग गन्नाड़ में कभी उनमें से कोई भी बात नहीं करता था—जैसे मैं उनके बीच में होने से मेरे साथ उनमें से कोई भी बात नहीं करता था—जैसे मैं बार-बार उसका र भी न था। लीला न जाने कहाँ से उसमें घुसक हो गई थी। मैं बार-बार उसका मान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता पर वह जैसे चुपके पहचान ही नहीं रही थी—या मुझे तक उसकी दृष्टि पहुँच ही नहीं पाती थी। वह प्रसन्न दिखाई देती थी और मेले के हुस्नद के बीच में अपना भी उल्लसित स्वर मिला रही थी। घन्ट में एक बार बड़ी मुश्किल से उसने मेरा स्वर पहचाना और फिर मुझे देखकर बबराई हुई-सी मेरी ओर बोली आई। भाते ही बोली, "छो यहाँ से भागो। इस मेले में निश्चय ही कोई बहुत बड़ा उपद्रव होने वाला है। और बिना मेरे जाने की प्रतीक्षा किये ही वह जानूस से उल्टी बिछा की ओर लौटने से भागने लगी। उसके लिए चिन्तित होकर मैं भी उसके पीछे लौटा। इस बीच सचमुच बड़ा घुसक हो गया। मैं उसके लिए दूरी तरह घबराया हुआ उसे दूर-दूर खोजने लगा पर उसका कहीं पता नहीं लगा। घन्ट में एक स्थान पर उसे देखकर मैं उस का साथ देने के लिए लौट ही रहा था कि सहसा मेरी नींद उलट गई।" २१ इस स्वप्न में अनिश्चितता पानेवाली पात्र की प्रवेष्टन अनुभूतियों की विवृति में कई स्वप्न-संपदन काम कर रहे हैं।

'कनेक्शन मैकेनिज्म' २२ द्वारा उसके बचपन के घर, पड़ोस और आसपास का वातावरण बचपन में देखे हुए किसी मेले की भीड़ भाड़ और विभिन्न अवस्थाओं के परिचित व्यक्ति सब बुलमिल कर एक ही स्वप्न में प्रकट होते हैं और उनके साथ ही जा जाती है लीला भी। लीला के प्रवेश करते ही बचपन के सभी दृश्य पूछमुचि में लगे जाते हैं और केवल लीला और वह ही रह जाते हैं। यहाँ बिस्वापन-संपदन (डिस्प्लेसमेंट मैकेनिज्म) २३ काम करने लगता है। नायक की अपनी भावनाएँ

२१ मोरी, 'बहाव का पंखी' ४४०-४४१।
 २२ Freud, Interpretation of Dreams trans. by A. A. Brill, Allen & Unwin, p. 270
 २३ Dalbeiz, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. 82.

स्वप्न में उससे कट कर सीसा की भावनाओं के रूप में प्रकट होती हैं। मापना जाहता है वह पर स्वप्न में देखाता है कि सीसा नबर्छाई हुई सी जाग रही है और वह उसके पीछे-पीछे लौट रहा है। इसके प्रतिरिक्त जिस रूप में यह स्वप्न उपस्थित है वह वही नहीं है, जो वास्तव में उसने देखा था। जागने पर तो वह स्वप्न को एक रस भूल गया था। अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयत्नों के बाद स्वप्न के एक अस्पष्ट से भाषा को ही वह अपने सबसे मन तक साने में सफल हुआ था और वह अस्पष्ट सा भाषा वही है जिसका वर्णन यहाँ किया गया है। फ्रायड ने इस स्वप्न-संघटन को 'संकरी एम्बोरेसम'^{११} की संज्ञा दी है।

जाटकीकरण-स्वप्न-संघटन

'प्रेम और छाया' की मंजरी की माँ जब एक घमासक रात्रि में मृत्यु-बीबा पर पड़ी हुई की और पारसनाथ डाक्टर के साथ दवाई लेने गया हुआ था तब मंजरी हवाक नाव से ऊँचे पर घुटने टेक कर दोनों हाथों के सहारे सटिमा के डके पर निश्चेष्ट अवस्था में आँख बन्द करके बैठ गई। अपने भविष्य की चिन्ता करते करते उसे घमासक बीबा या दाई और उसने स्वप्न देखा कि 'बहु प्रेम और छायाओं के किसी घोर दुःस्वप्नमोह में किसी दुर्बल पहाड़ी पथ पर एकाकी बची जा रही है—किसी घमासक रहस्यमय अनिश्चित स्थान में बड़ेरा दूकाने के लिए जैसे समय बहुत कम है और चलने में सीधता न करने से अत्यन्त संवसारमयी काल रात्रि उसे घेर कर अपने विकटाल लवङ्गों से उस मेरी। वह हाँफती हुई, ठोकरें खाती हुई केवल बची जा रही है, वहाँ पहुँचने पर उसे विमान मिलेगा इसका कुछ भी स्थान उसे नहीं है। वहाँ जाटकीकरण संघटन (इम्बोरेसम यैकेविरम)^{१२} ने काम किया है। नींद जाने से पहले की मंजरी की पुश्तिलाएँ ही इन स्वप्न में जाटकीय डंव से

११-(*) Dalziel, 'The Psycho-analytical Method and the Doctrines of Freud', p. 120-121.

"Freud gives the name of 'secondary elaboration' to the process whereby the dreamer's mind, in proportion as it draws near to the waking thought, introduces a more or less artificial order into its chaotic production. In order to make the exact nature of secondary elaboration understood, Freud quotes the following passage from Herlock Holmes: As a matter of fact, we might even imagine the sleeping consciousness as saying to itself; Here comes our master Waking Consciousness, who attaches such mighty importance to reason and logic and so forth. Quick, gather things up, put them in order—any order will do—before he enters to take possession.

(*) Freud, 'Interpretation of Dreams' 'Basic Writings of Sigmund Freud' trans by Brill The Modern Library New York, 1929 p. 462.

१२ Dalziel, 'The Psycho-analytical Method and the Doctrines of Freud', p. 121.

प्रकट हुई हैं। पहाड़ जिस पर कि वह पसी जा रही है उन मुसीबतों का पहाड़ है जिनका उसे सामना करना है। उसका एकाकीपन खोतक है। उसके प्रसहाय जीवन का और उसका बसेरा बूढ़ेते रहना विद्यालय जीवन में किसी से भी वैवाहिक सम्बन्ध न बाँट सकने की ओर संकेत है।

इसी प्रकार जोसी जी के पात्रों के स्वप्नों में छाँवद्वारा वर्णित सभी स्वप्न-संघटन काम करते हुए दिखाई देते हैं।

हैम्यूसीनेशन

जोसी जी के उपन्यासों में उनके पात्रों के भ्रमचित्रों में पड़ी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ उनके निराधार प्रत्यक्षीकरण (हैम्यूसीनेशन) के रूप में भी प्रतिबिम्बित पाती हैं। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ जब भी मंजरी से मिथुन करने की स्थिति में जाता है मंजरी की मृत माता की विकृत प्रेतात्मक छाया उसकी छाँवों के सामने आ जाती होती है और वह स्पष्ट देखने लगता है कि उसकी मुखाकृति से बड़ी पहले की सी बिना बड़भागे वाली बीमत्सता विकृत व्यंग्य और निन्दुर परिहास व्यक्त हो रहा है। पारसनाथ जानता है कि यह 'उसका भ्रम है, 'हैम्यूसीनेशन' है और उसके अन्तस्त्व में बनी हुई पापवृत्ति और भय की भावना की काल्पनिक प्रतिच्छाया के सिवा वह और कुछ नहीं है। पर यह सब जानते हुए भी वह जैसे कुछ भी नहीं समझ पाता या और भय की वह काल्पनिक छाया जीवित और प्रत्यक्ष सत्य की तरह उसकी आत्मा को घुरी तरह जकड़ लेती थी।^{११}

पूर्व-वृत्तात्मक प्रणाली (केस हिस्टरी मथड)

इस प्रबन्ध के पहले अन्वय का (क) भाग में हम पूर्ववृत्तात्मक प्रणाली का निरूपण कर आए हैं। यह बड़ी उपयोगी प्रणाली है। इसका उचित प्रयोग किया जाय तो यह मनोविज्ञान और साहित्य दोनों की कसीनी पर पूरी उतर सकती है।^{१२} इसमें मनोवैज्ञानिक पात्र की वर्तमान अवस्था को समझने के लिए उसके पूर्ववृत्त और उसकी विगत अनुसूचियों को एकत्रित करता है। इसके अतिरिक्त इसमें वह पात्र पर किए गए अपने विभिन्न प्रयोगों का वर्णन उसके मनोविश्लेषण द्वारा निकले निष्कर्ष तथा विभिन्न प्रकार के धोकड़ों को भी सम्मिलित करता है।

पूर्ववृत्त : अपनी ज़बानी

जोसी जी के उपन्यासों में इस प्रणाली का प्रचुर भाषा में प्रयोग हुआ है

११ (क) जोसी, 'प्रेत और छाया' पृ. १८१-१८२।

(ख) McDugall 'An Outline of Psychology' p. 372.

१२ (ग) W Allport, 'Personality: A Psychological Interpretation' p. 205.

बिदेपत उनके उपन्यास 'बहाल का पंजी' में। इस उपन्यास में पहले तो ऐसे पूर्ववृत्त बताये हैं, जो पात्रों की अपनी जवानी कहे गये हैं। जैसे करीम बाबा की 'घाप बीटी कइानी' ^{१३} जो मनमय ठेरह पृष्ठ तक चलती रहती है। इसके बाद बताया है करीम बाबा के पास रहने वाले हरीपद का पूर्ववृत्त उसके अपने सपनों में जिसकी जानकारी के प्रमाण में उसके बेनी को गया के जाने के प्रेरक भाष को समझ सकना कठिन हो जाता। ^{१४} इसके बाद बताया है उस 'अस्मानधीन' अभावित युवती बमोय का किस्सा छाटी उमर से ही धारीरिक, धार्मिक, नैतिक और धार्मिक सोपण का विकार बनने के कारण जिसका सरल निष्पन्न चुका था। ^{१५} उत्पन्नात् पूर्ववृत्तों की बातें भी जाती हैं। पहले तो एक-एक करके मिस साहमन के चक्के में बेसा का काम करने वाली मङ्गियों—यमना सुखाता बुनेखा, सुखिया धारि—का वृत्त मिलता है। इन वृत्तों से यह तो पता चलता ही है कि किन-किन विषयताओं के कारण इन मङ्गियों ने यह वृत्ति सेवा स्वीकार किया और साथ ही बेसावृत्ति के कारणों पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। ^{१६} यहाँ तक पात्रों के पूर्ववृत्त उनके अपने सपनों में मिलते हैं।

बढ़ि यह मान लें कि पात्रों ने बिना किसी प्रकार के बुधान-निष्ठान के अपने पूर्व इतिहास का ठीक-ठीक वर्णन किया है, तो भी कहना न होया कि उन्होंने घापबीटी जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही बताई होगी और यह आवश्यक नहीं कि जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण ठीक ही रहा हो। इसलिये इन पूर्ववृत्तों की विरल सटीकता भी विचारणीय हो सकती है।

पूर्ववृत्त : हज़ारों की जवानी

इस उपन्यास के अंतिम खण्ड में जितने भी पूर्ववृत्त मिलते हैं वे एक मानसिक संस्पृष्टता के विभिन्न चोबियों के हैं, जो 'न जाने कितनी आघातों पर पानी छिलने से जितने घरानों के कुचले जाने से, अपना मानसिक संतुलन खो बैठे हैं।' ^{१७} अधिकांशतः वे उनके सम्बन्धियों से सुनी-सुनाई बातों पर आधारित हैं। वे पूर्ववृत्त पात्रों की अपनी जवानी नहीं कहे गए। जैसे बीना का पूर्ववृत्त कुछ तो उसके बाबा ने बताया था जब वह उसे भरती कराने आया था और कुछ स्वर्ण बीना ने बताया था। ^{१८} इसलिये इन पूर्ववृत्तों की विश्वसनीयता और भी संदिग्ध हो उठती है।

१३. मोटी, 'अस्मान का पंजी', पृष्ठ १४०-१४१।

१४. यही, पृष्ठ १८२-१८३।

१५. यही, पृष्ठ २०२-२०४।

१६. यही, पृष्ठ २०५-२१८।

१७. मोटी, 'अस्मान का पंजी' पृष्ठ २०८-२१८।

१८. यही, पृष्ठ १९०।

इन पूर्ववृत्तों से एक और बात प्रकाश में आती है कि इन स्त्री पात्रों के पापपरायण का मूल उनकी अत्युत्त संवस-प्रवृत्ति में है और पुष्प पात्र अधिकांशतः शारीरिक कठिनाइयों के कारण अपना मानसिक संतुलन खो बैठे हैं।

चित्र-विहसोपण

कलाकार का व्यक्तित्व उसकी कृति में अनायास ही अभिव्यक्ति पा लेता है। याद वह व्यक्ति के मित्रावृत्त में उसके व्यक्तित्व की झींझी पाने के प्रयास किए जाते हैं तो उसकी स्वतः निर्युत चित्रकारी में उसके चरित्र को छुड़ने के प्रयोगों की सफलता में संदेह न करना होना। ओषी जी ने भी अपने उपन्यासों में विशेषकर 'प्रेम और छाया' में पात्रों की निरुद्बल चित्रकारी के माध्यम से चरित्रचित्रण की प्रशंसा का प्रबोध दिया है। नन्दिनी द्वारा बनाए गए चित्रों के आधार पर ही तो पारसनाथ उसके हृदय में अथकती विह्वल की भयंकर प्रति की कपटों को देख सका था। यद्यपि नन्दिनी ने अपने प्रति बनीरिया जी का एक 'सीमा छाया' (किन्तु कलात्मक) रेखा चित्र अंकित करना चाहा था परन्तु उसके हाथों पड़ कर वह व्यंग्य-चित्र बने बिना न रह सका। उसमें बड़ी ही भोंड़ी और बीमत्त वाङ्मयि प्रकट हो पड़ी थी। केवल बीमत्त ही नहीं बल्कि अनाथ भी मानो अपने प्रति के प्रति उसकी समस्त बीमत्त और अनाथ भावनाएं उस चित्र के रूप में प्रस्तुत हो पड़ी हों। इसी प्रकार, नन्दिनी द्वारा बनीं गए लीकरानी के चित्र से जो पिछले चित्र की आकृति से कुछ कम बीमत्त नहीं था पारसनाथ आखानी से यह अनुमान लगा सका था कि 'वह निश्चय ही अपनी लीकरानी से बुरा करती है—अपेक्षित रूप से। नन्दिनी ने उसे जो 'सैल्स पोर्ट्रेट' दिखाया था, उसमें उसके अनाथान में ही उसका अपना गुप्त व्यक्तित्व प्रकट हो उठा है। नन्दिनी के अवचेतन मन की जो अनुभूतियाँ रेखाओं के रूप में उसके चित्रों में छुट पड़ी थीं उनकी तबार्ई की पहचान कर ही पारसनाथ उन तीनों चित्रों में प्रतिबिम्बित प्रति तथा लीकरानी के प्रति नन्दिनी की गुप्त भावनाओं को समझ सका था।

इस प्रकार, ओषी जी अपने पात्रों के चरित्रचित्रण के लिए उनके द्वारा अनायास बनीं गए रेखाचित्रों का भी उद्घाटन लेते हैं। पात्रों के स्वतःनिर्युत चित्रों में उनकी मानसिक प्रवृत्तियों को खोजना तो मनोविज्ञान की एक विशेष प्रशंसा है, जिस पर बेहतर प्राप्ति मनोवैज्ञानिकों ने अच्छा परिधम किया है। इनकी पारंगता है कि व्यक्ति की मनःस्थिति को समझने में स्वतःनिर्युत रेखाचित्रों का जो कितने ही अनापचनाप क्यों न लगते हों और बातचीत के दौरान में अनापचनाप किसी हुई रेखाओं का विशेष महत्व है।^{१६}

१६ T. B. Waeher "Interpretation of Spontaneous Drawings and Paintings," *Genet. Psychol. Monogr.*, 32, 3-70.

सम्बन्ध-सहस्रमूर्ति परीक्षण (बर्बे एसोसिएशन टेस्ट)

व्यक्ति के चरित्राध्ययन की एक प्रणाली सम्बन्ध-सहस्रमूर्ति परीक्षण भी है। इसमें पात्र को एक सम्बन्ध-ग्रु ससा बड़ाई या सुनाई जाती है और उसे कहा जाता है कि प्रत्येक सम्बन्ध के पढ़ने या सुनने के पश्चात् उसके मन में प्रतिक्रिया के रूप में जो पहला शब्द आता हो, उसे बताए। तत्पश्चात् पात्र द्वारा बताए गए शब्द के विस्मरण द्वारा उसके व्यक्तित्व के बारे में अनुमान लगाया जाता है।^१

बोधी की नौ पार्श्वों के चरित्रोद्घाटन के लिए अपने उपन्यास में इस प्रणाली का भी प्रयोग किया है। 'मेठ और छाया' की मंजरी ने पारसनाथ से ज्योंही 'किमास' कर चुकी से निश्चय का विवाह की बात लेनी, 'विवाह' शब्द सुनते ही पारसनाथ का मुँह अचानक बन्द हो जाता। वही तक कि उस पर एक हल्की-सी कासिमा पुट गई, पता नहीं क्यों यह सम्बन्ध क्यों है उसके अन्तर्भव के लिए हींसा बना हुआ था।^२ 'न चाहने पर भी उसके मन में यह इच्छा आय उठी कि एक सख्त मन्द के से मंजरी के स्नेहपाश से अपने को छुड़ा कर, अपने भीतर और बाहर के सब मोटने वाले वातावरण से मुक्त होकर कहीं भाग निकले। किसी ऐसे समाज सूत्र एकाकी और निपट निर्जन स्थान में जा पहुँचे जहाँ न किसी व्यक्ति का सम्पर्क हो, न समाज का न निज का श्वास हो, न पचाए का—हो केवल अन्तःसुमापन और इच्छा की बाबाहीन, झूठ और उन्मुक्त पति।'^३ पारसनाथ ने अपने माता और पिता के वैवाहिक जीवन का जो रूप देखा था उसने उसके अचेतन में एक ऐसी गीठ दास दी थी कि वह 'विवाह' शब्द तक से भी बुरा करने लग गया था।

शब्दों की प्रतिक्रिया

जो शब्द पार्श्वों के भीतर कुछ अनुमूर्तियों को उत्पन्न करते हैं, उनके प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया सीधे प्रकट नहीं होती^४ और उसका स्कोर बढ़ जाता है। इसलिए जब मंजरी ने प्रधानक 'विवाह' शब्द का उल्लेख किया तो पारसनाथ का 'भीतर ही भीतर बून सूझने लगा और कुछ क्षण तक चुप रह कर वह मरे मन से निर्जीव स्वर में ही उसका उत्तर दे सका था' पर जब तक उसकी धार्मिक प्रति

^१ Sigmund 'Psychology of Personality' p. 28.

^२ बोधी, 'मेठ और छाया', पृष्ठ २०१।

^३ बोधी, 'मेठ और छाया' पृष्ठ २००।

^४ H. D. Carter "Emotional Factors in Verbal Learning : IV Evidence from Reaction Time" *Journal of Educational Psychology* 1937 : 28 : p. 101-109.

"Reaction times were significantly longer for unpleasant words than for pleasant or neutral words."

किया व्यक्त नहीं हुई थी तब तक उसकी धारणा मन स्थिति की मूल्य उसके चेहरे पर मिसरी रही थी।

'जिप्सी' के नायक नृपेन्द्र के लिए 'मीरू' शब्द पादू का अक्षर रहता था। बड़ी कठिनाई के बाव इस पादू का कारण कहीं उसके धारणे स्पष्ट हुआ था 'उसके नाम का पहला अक्षर 'नृ' है और छुटपन में उसकी माँ उसे 'मीरू' कह कर पुकार करती थी। मीरू की पुकार से उसके संकटित मन को ऐसा सवा, जैसे उसकी माँ की आत्मा उस महिला के स्वर में उसे सावधान कर रही हो। *४

'बंवा-बमुना में घासू-बस' यह पंक्ति सुनते ही 'बहाल का पंखी' की सीमा की आँखों से घासू उमड़ धाये थे। इस सम्बन्ध में वह स्वयं कहती है 'बब कभी मैं पंत बी का यह गीत खास कर बंवा-बमुना में घासू-बस' यह पंक्ति सुनती हूँ तब न जाने क्यों मेरे भीतर से आँखों का उल्लास पुरे जोरों से उमड़ने लगता है और मेरी आँखों से उसी समय घासू निकल जाते हैं। *५

इस प्रकार इसाचन्द्र बोधी अपने पात्रों के धारणों को व्यक्त करने के लिए शब्द-सहस्रमूर्ति-परीक्षण का भी प्रयोग करते हैं।

अन्तर्विवाह (इन्स्टीरियर मीनोसॉज)

अपने पात्रों के अन्तर्दृष्ट को व्यक्त करने के लिए बोधी भी ने अपने उपन्यासों में अन्तर्विवाहों का भी प्रयोग किया है। अन्तर्विवाह पात्र का ऐसा मानसिक वार्तालाप होता है जिसे न तो कोई बोलने वाला होता है और न ही कोई सुनने वाला। *६ इसका उद्देश्य पात्र के मनोबल में पाठक का सीधा सम्पर्क करना होता है। इसमें उपन्यासकार अपने पात्र को पात्र और पाठक के बीच से निकाल कर अलग हो जाता है और पाठक को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह पात्र के मन की छिड़की में से झाँककर उसके समस्त मानसिक संघर्ष को अपनी आँखों से देख रहा हो।

'निर्वासित' के दूसरे भाग के अठे परिच्छेद में महीप की प्रभुत्वपूर्ण उद्दिष्टता को व्यक्त करने के लिए बोधी भी उसके अन्तर्विवाहों का उल्लेख करते हैं, जिनमें से एक नीचे उद्धृत किया जाता है *७

"इसलिए अब समष्टिगत जीवन में सच्ची शांति और सच्चे कल्याण की स्थापना के उद्देश्य से महासारथ्य विचारों के प्रचार के प्रयत्न व्यर्थ हैं।

इसके बजाय धकेले मेरे या मेरे ही जैसे कुछ छिटपुट व्यक्तियों के असंगठित प्रयत्नों से इस फल की प्राप्ति की जा सकती है जब इस घोर

*४ 'जेटी, जिप्सी' पृष्ठ ४२६।

*५ 'जेटी, 'बहाल का पंखी' पृष्ठ ३०८।

*६ Edel, 'The Psychological Novel' p. 80.

*७ 'जेटी, निर्वासित' पृष्ठ ३२२, ३२६।

महात्मा गांधी के समान महापुरुष के संघटित प्रयत्न निष्फल सिद्ध होने के सघन प्रकट हो रहे हैं। इसीलिए मोट जैसो अपने पिछले कवि-जीवन के स्वप्नों की ओर। समस्त कवि के अन्तर्जीवन के ये स्वप्न विस्मयपूर्ण संस्कार और अछानित के इस युग में प्रकाश की कुछ सीमा फिरछें प्रस्फुटित करने में समर्थ हों। व्यक्तिगत जीवन क्या वास्तव में उतना उपेक्षणीय है जितना विश्व-विनाश के लिए भंगरुत करने वाले महाभेता और उनके महादण्ड बता रहे हैं? निष्प-संशय का मूल उद्देश्य ही यह है कि मानव का व्यक्तिगत जीवन तुच्छी और व्यक्तित्व हो उच्छी शोकसेवा का श्रेय ही यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों विचारों और स्वप्नों के क्षेत्र में स्वतंत्र हो। वह अत्यन्त-असंख्य विस्मय का पुरा विनाश होने के पहले जितना भी बोझ संस्कार विस्तार है, उसमें कहीं न व्यक्तिगत जीवन की राह हीसी कर ही बाध? कहीं न शक्ति अंतर्जन्तु के स्वप्नों की पिटाई का तात्ता ठोड़ कर उन्हें पायस विश्व के घावे निपट मम्म कम में बिखेर दिया जाय? ठीक है। ठीक है। मुझे मही करना होना। इसी में जाण है नहीं तो धीरज की तरह मानव-विनाश ही एकमात्र उपाय है। मैं जानता हूँ कि दुनिया मुझे मजोड़ा कहेरी पर धोड़े क्या संस्मृत उतने ही श्रेय है, जितना कि उन्हें दुनिया सम म्नी है? सभी कारिदारियों को अपने संशय श्रेय की संस्मृता के उद्देश्य से जीवन भर एक स्थान से दूसरे स्थान में भागते रहना पड़ा है मानस और सेनित से लेकर सुभाष शीत तक का वही हास रहा है। मेरे और उन लोगों के अन्तर्देवन में केवल इतना ही अंतर है कि उन लोगों का श्रेय इसी अत्यन्त जीवन में किसी-न-किसी प्रकार की राजनीतिक संस्मृता प्राप्त करने का रहा है और मेरा श्रेय इस अत्यन्त जीवन से परे एक वास्तविक किन्तु असंस्मृत जीवन में व्यक्तिगत तथा समष्टिगत साध्यात्मिक संस्मृता प्राप्त करने का है।^{१०८}

उपसृक्त अन्तर्विवाद और इसी प्रसंग में महीप के जिन अन्य अन्तर्विवादों का 'निर्बोधित' में अन्तरेक्ष मिलता है के साधारण कोटि के ही कहे जा सकते हैं। वे उस प्रकार के अन्तर्विवाद नहीं जिसका श्रेय मनीषात्मिक उपम्यासों में पापों के इन विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जो उसके अन्तर्गत मन के निकटतम हों। इस दृष्टि से मिले गए अन्तर्विवाद साधारण युक्तिमुक्त भाषणों से भिन्न रूप धारण कर लेते हैं क्योंकि हममें कोई उर्ध्वतन्त्र कम नहीं था पाता^{१०९} और पापों के मन में जो विचार और अनुभूति जब और जित रूप में आती है, वह उसे प्रकट करता जाता है। महीप के उपसृक्त उद्धरण का संकल्पित क्रम उसे मनो वैज्ञानिक अन्तर्विवादों से अलग कर देता है।

^{१०८} मोटो, 'मिलोडिन' १४ १११-११२।

^{१०९} Edal Psychological Novel p. 80.

सम्मोह विश्लेषण (हिप्पी ऐनेत्तिस्त्रिग)

घोड़ी भी मैं अपने उपन्यासों में सम्मोहन प्रक्रिया का भी सहारा लिया है। पर उनके उपन्यासों में इस प्रक्रिया का प्रयोग पाशों के ध्वेष्टन में एबी पड़ी धनुषियों को प्रकाश में आने के लिए इतना नहीं हुआ। जितना कि एक पाश का दूसरे पाश को सम्मोहित करके उन्हें अपनी इच्छानुक्रम बलाकर स्वार्थसाधन के लिए। उनके प्रेमी प्रवृत्ति प्रेमिका पाश प्रायः एक-दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए इस क्रिया का आश्रय लेते हैं। उनके उपन्यास 'हिप्पी' का मायक नृपेन्द्र हिप्पी भूमिमी को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए उस पर सम्मोहन क्रिया का प्रयोग करता है और उसे सम्मोह-मित्रता की प्रवृत्ति में लाकर धारमविश्वासपूर्ण बुद्धि धारकों और संसृष्टियों (सन्नेसम) द्वारा उसके विरोधी भावों को जीत लेता है। जब मनिया सम्मोहन विरा में आ जाती है तब वह एक कुशल सम्मोहक की तरह उसके कहता है —

"तुम्हारा सुटकारा अभी मिलेगा जब मैं चाहूँगा। मैं चाहूँगा होऊँ या कुछ और पर हर हालत में तुम्हारा प्यार चाहूँगा—मुझे प्यार करो। उसी में कुछ आशी और उसी में अपनी सारी शिखरी बचा दो। बोला, करोवी मुझे प्यार ?

"हाँ।"

"अब बोला प्यार करोवी और कुछ रहूँगी ?"

"हाँ प्यार करूँगी और कुछ रहूँगी।"

"अब तो मैं काल की तरह नहीं लगता।"

"नहीं।"

"अब नीचे से उठ बैठो।"

मनिया पर सम्मोहन का वह पहला प्रयोग था और मनिया पर इसका प्रभाव भी स्पष्ट रहा।

कुशल इच्छा-प्रवृत्ति वाले पाश

कहना न होना कि इस प्रकार दूसरों के प्रभाव में आकर मैं भोज ही सम्मोहित होते हैं, जिनमें मनाश्रम का समाव होता है और धारम-विश्वास की कमी जिनमें दूसरों की राज के मूल्य को धारिणीय करके देखने की धारम हो और अपनी राज की सन्नाई पर सन्नेह रहता हो।^{५५} सम्मोहन क्रिया के धारमिक प्रयोगों में मनिया

^{५५} ओरी 'हिप्पी' ५० ११।

^{५६} Adler, *Monochromatische Leipzig: Hirsch, 5th edn. Zurich: Rascher 1947* (*Understanding Human Nature New York, Greenberg, Publishers Inc., 1927*), p. 83

"In general, those who are especially susceptible to suggestion and hypnosis are inclined to overestimate the opinions of others, that is, to have a low opinion of the correctness of their own views."

पर इसीलिए प्रभाव पड़ सका था कि उसमें आत्म विश्वास की कमी थी और वह नृपेन्द्र को अपने से थोड़ातर समझती थी। पर ज्यों-ज्यों मनिया में आत्म-विश्वास की मात्रा बढ़ती गई त्यों-त्यों सम्मोहन क्रिया का प्रभाव कम पड़ने लगा। पन्द्रहवें परिच्छेद में नृपेन्द्र ने जो प्रयोग किया उसका केवल भाषा ही प्रभाव मनिया के चरित्रमन पर पड़ा था।

सम्मोहन क्रिया के बारे में एक सलेसनीय बात यह है कि किसी पात्र पर सम्मोहक का प्रभाव उसी मात्रा में पड़ता है, जिस मात्रा में पात्र के हित सम्मोहक के भाषण में सुरक्षित रह सकते हों। किसी पात्र की हानि बोधकर उस पर स्वाधी प्रभाव डालने का प्रयास निश्चित रूप में व्यर्थ सिद्ध होता है।^{१८२} अपनी असफलता के कारणों पर प्रकाश डालता हुआ नृपेन्द्र स्वयं इस बात को स्वीकार करता है

“तब मेरी असफलता का कारण यह था कि तब मैं मनियों की सच्ची मर्यादा-कामना से प्रेरित होकर—सच्चा धार्मिक बन पाकर उसके मन को प्रभावित करने को उद्यत हुआ था, पर मान मैं उसकी वास्तविक कामना कायना से प्रेरित न होकर, अपनी स्वार्थ-हानि की भावना से ईर्ष्या-द्वेष होकर, दुश्मिनी मानसिक बल के प्रयोग से ‘हिप्नाटाइज’ करने चला था।”^{१८३}

दृढ़ इच्छा-व्यक्ति वाले पात्र : सम्मोहक

बीबी की के साथ सम्मोहकों में भी पात्र एक-दूसरे को प्रभावित करने के लिए सम्मोहन-क्रिया का प्रयोग करते हैं। ‘निर्वासित’ के ठाकुर लक्ष्मीनाथपुख्तसिंह भी इस कक्षा में इस हैं। उनमें एक ऐसी दृढ़ता है जो दूसरों की इच्छा-व्यक्ति को—प्रतिरोधकर दुर्बल इच्छाव्यक्ति वाले व्यक्तियों की इच्छाओं को—कुबल कर उसके स्थान पर अपनी इच्छा का आरोपण करने की क्षमता रखती है।^{१८४} ठाकुर साहब की तीव्र इच्छाव्यक्ति का आकर्षण क्या के लिए ऐसा प्रयत्न सिद्ध हुआ कि उसका प्रतिरोध करना उसके लिए सम्भव नहीं रहा और कोई दूसरा पात्र न देखकर उसने अपनी तीव्र इच्छाव्यक्ति को उस प्रबल प्रवेगशील इच्छाव्यक्ति के भागे धारित कर दिया।^{१८५} इस प्रकार बीबीन नर क्या अपनी इच्छा के विरुद्ध ठाकुर साहब की ओर

१८२. (४) Adler 'Menschenkenntnis' Leipzig: Hirzel, 8th edn. Zurich: Rascher 1947 ('Understanding Human Nature' New York, 1947), p. 82 :

"The degree to which an individual may be influenced depends among other factors, upon the extent to which his rights seem safe-guarded by the man exercising the influence."

(५) Dr Tracy : 'How to use Hypnosis' Arco Pub. Co., London, p. 8.

१८३. गोरी, 'मिथ्या' पृ. १४३।

१८४. गोरी, 'मिथ्या' पृ. १८८।

१८५. गोरी, 'मिथ्या' पृ. १६१-६२।

आकृष्ट रही और अपने इच्छित व्यक्ति बीराम सिंह के प्रति उदासीन। अपनी इस स्थिति से छुटकारा पाने का और कोई उपाय न देखकर अन्त में उसने आत्म-हत्या कर ली।

‘अठ घोर छाया’ में भी ‘हिन्दीविषय’ का सम्बन्ध मिलता है। पारसनाथ जब बिना कुछ खाए-पिये ही नन्दिनी के गहों से जाने लगा तो “बाह, यह कैसे हो सकता है बिना खाए पाप नहीं जा सकते”, यह कहकर नन्दिनी पों उठी जैसे वन पुरैक उसका रास्ता रोकने के लिए खड़ी हुई हो और घाँस के एक झंझर में मँचरी की माँ धाई। पर उसने बरबस मन की धाँसे भूँद ली और एक उत्सुक, मोड़क और पावन दृष्टि से नन्दिनी की ओर देखा। उस एक क्षण में उसने नन्दिनी के मुख पर किस रूप का आभास पाया। बाबूमरणी। कुछ भी हो वह नन्दिनी की उस रहस्यमयी दृष्टि के मोहक आकर्षण का प्रतिरोध न कर सका और ‘हिन्दीविषय’ किए गए व्यक्ति की तरह बुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया। नन्दिनी आसन की छड़ी की तरह अपनी सर्वनी को पारसनाथ की ओर हिलाती हुई और अपनी रहस्यमयी दृष्टि में रहस्यमय मुस्कान झलकाती हुई, आसन के नकसी स्तर में बोली—“देखिए, मेरे जाने तक उठिएगा नहीं?” यह कह कर वह लौटे जाती गई।^{१८६}

संजीत द्वारा सम्मोहन

‘पहें की रानी’ में तो संजीत द्वारा सम्मोहन का भा एक उदाहरण मिलता है। इन्द्रमोहन द्वारा बनाए गए प्यासी की संजीत-महरी का निरंजना पर जो प्रभाव पड़ा उसका वर्णन वह स्वयं इस प्रकार करती है “मैंने यह स्पष्ट अनुभव किया कि पहले मेरे मन के अन्तर्गत बहुर में एक अयोध्या मंथन किया चलने लगी जिसके परिणामस्वरूप प्रेम और मुखा राग और द्वेष, पीड़न और प्रतिहिंसा तथा और भी बहुत-सी प्रभुतिमाँ एक-एक करके समझ कर ऊपर को जाने लगी और उन सबके मिश्रण से एक निराने पुलित्त जाल के मेरे मन की ऊपरी उसको चारों ओर से छा दिया। क्षीप्र ही वह जाल टूट गया और धीरे-धीरे एक विमानमयी अनुभूति ने मेरे अरीर का अस्तित्व ही लोप कर दिया और मेरा ‘मैं’ अतीव्रिय ‘ईश्वर’ के साथ एकाकार होकर उसमें पूर्ण रूप से विलीन गया। मेरी मोहविष्टता इस सीमा को पहुँच गई थी कि इन्द्रमोहन की उस समय बीजा कुछ निर्बल पुष्पों जैसे उसे मैं कदापि न डाम पाती। ऐसी पूर्ण विषमता मुझ में था गई थी। पर ईश्वर तो उस चरण लय में मेरी साज रह गई—मैं बच गई।”^{१८७}

^{१८६} मोती, ‘मेरा घर बाल’ पृ० २६८-२६९।

^{१८७} मोती, ‘पहें की रानी’ पृ० २८-२९।

‘हिप्नोटिज्म’ बोली जी की बुद्धि में

वहाँ सम्मोहन क्रिया के बारे में बोली के विचारों का उल्लेख करना असंभव न होगा। ‘त्रिप्ती’ में वह लिखते हैं “हिप्नोटिज्म” को जो कला वास्तविक रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध होती है वह किसी के सिखाए से सामयाचीन नहीं होती कुछ विशिष्ट बाह्य नियमों के समारूप पात्रम से वह अपने रूप में प्रकट नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ विशेष प्रसाधारण्य भए ऐसे होते हैं जब प्रत्यक्षता का कोई विशेष सुप्त भाव सहसा स्वतः जाग्रत हो उठता है। और इस उदा। प्रवस्था में वह इन्द्रिय व्यक्ति पर वैसे भी प्रभाव डालना चाहता है उसमें निश्चित रूप से वृद्ध होता है। तब जो भी आदेश उसके भीतर से निकलता है उस प्रभाव करने की शक्ति किसी विरले योगनिष्ठ व्यक्ति में ही होती है।”^{११} बोली जी के इस उद्धरण के संदर्भ में जब हम उनके इसी उपन्यास के पात्रम मुपेक्ष को यह कहते पाते हैं तो आश्चर्य होता है “तब क्या सिलबिया भी हिप्नोटिज्म की कला में प्रवीण है? निश्चय ही यही बात है। केवल इतना ही नहीं उसका धम्यास इस कला में इतना अधिक बढ़ा हुआ है कि उसने मलिया के अन्तर्मन में बहुत गहरी लुत्ताई करके अपना प्रभीष्ट बीज बोवा है।”^{१२}

मनोविश्लेषण

वैसा कि हम पहले जिन चुके हैं बोली जी के उपन्यासों के प्रमुख पात्र मनोवैज्ञानिक ‘केस’ हैं। उनके अचेतन में कोई न कोई ऐसी दाँठ पड़ जाती है जो उनके विचार और व्यवहार को प्रभावित करती हुई किसी भी स्थिति से उनका संतुलन नहीं बिटने देती। उनका चेतन मन जो कुछ चाहता है वह कर नहीं पाता और जिससे बचना चाहता है, वह हो जाता है। क्यों हो जाता है, यह वे नहीं जान पाते। इस प्रकार, वे पात्र जीवन भर कस्तूरी-मूस की तरह घटघटे रहते हैं। इन पात्रों की मनोवैज्ञानिक बुद्धियों के कारणों को व्यक्त करने के लिए बोली जी ने फ्रायड की मनोविश्लेषण प्रणाली का भी प्रयोग किया है।

मनोविश्लेषण का उद्देश्य

फ्रायड के अनुसार मनोविश्लेषणमयक इसाज का लक्ष्य इसी में है कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दृष्टियों का उनका वियत जीवन भी उन घटनाओं की स्मृति में प्रतिबिम्बित कर दिया जाए, जिनके कारण वे दृष्टियाँ पड़ी हैं।^{१३} जीवन के प्रति

११. बोली ‘त्रिप्ती’ पृ० १२१।

१२. वही. पृ० २४१।

१३. Dalbeiz, Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. १००।

“The essence of analytical cure consists in rendering morbid beliefs by reducing them to the memory of events from which they sprang.”

समस्त दृष्टिकोण को ध्यान देने वाले कारणों की जानकारी नमस्ती को दूर कर देती है। व्यक्ति की घातक उसकी स्मृति में बंदन जाती है और उसका अचेतन व्यवहार (ऑटोमैटिज्म) चेतन से हार मान लेता है।^{११} इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए बोली भी पहले इन पात्रों के मनोवैज्ञानिक इतिहास के पुनर्निर्माण द्वारा विगत जीवन की उन घटनाओं की खोज करते हैं, जो उनकी मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों का कारण हों और फिर उन्हें पात्रों की स्मृति में लाकर उनके चेतन मन में से घाते हैं। तब उनके पात्रों का ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अब वे सत्य को पा गए हैं और उनका जीवन जर गटकना उनके अचेतन पर पड़े हुए पर्दे के कारण था। इस बार में 'निर्वासित' के महीप के प्रति जो उस उपन्यास में मनोविश्लेषक का भी काम करता है बीराब के ये शब्द उल्लेखनीय हैं 'भापकी बातों से मेरे भीतर की जो बन्द झालें खुली हैं वे उस बहकते हुए सत्य को अब प्रत्यक्ष देखने लगी हैं जिसके ताप का अनुभव मैं अपने अज्ञात में पहले दिनों तक करता रहा था पर जिसे देख नहीं पा रहा था।'^{१२} मनोविश्लेषक के धन्य में किसी पात्र का इस प्रकार अनुभव करना मनोविश्लेषक की सफलता का संकेत होता है।

मुक्त आसंय प्रणाली (फ्री एसोसिएशन)

फ्रॉयड से पहले और उसके समय में भी मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के अचेतन तक पहुँचने के लिए सम्मोहन-क्रिया का प्रयोग करते थे। सम्मोहन-निद्रा में अपने पात्र को यह विश्वास दिला कर कि वह छोटी उमर का है, वे बीरे-बीरे प्रश्नों द्वारा उसके विगत जीवन की उन घटनाओं और अनुभवों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते थे जो उसकी मानसिक द्रवियों का कारण होती थीं। पर क्योंकि पात्र के अचेतन में दमित सामग्री उसकी सम्मोहन-निद्रा में ही आ सकती थी उसके चेतन में नहीं इसलिए उसकी मानसिक गीठ कुछ समय के लिए ही खुल जाती थी, सब के लिए नहीं। इसीलिए फ्रायड ने सम्मोहन-क्रिया को न अपना कर मुक्त आसंय प्रणाली का आविष्कार किया। बोली भी ने भी अपने उपन्यास 'बिप्पी' में सम्मोहन-क्रिया की प्रकृति दिखाई है।

मुक्त आसंय की प्रणाली में पात्र को आशय से सूटा कर कहा जाता है कि वह अपनी आत्मोपमात्मक सक्ति को बचाकर अपने विगत जीवन की घटनाओं और अनुभवों को अपनी स्मृति में लाता जाए और जिस रूप में कोई घटना या कोई बात उसकी स्मृति में आए वह अपनी ओर से कुछ बिनाए बिना उसे कहता जाए।

११ Dalbeth, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. 202 :

"Apprehensions of the causes of error from error Habits dissolve in memory Automatism yields to consciousness."

१२ बोली, निर्वासित, पृ० १११

फ्रायड का विश्वास है कि इस प्रकार स्मृतियों के स्वतः परिवर्तित प्रवाह में व्यक्ति की अनेकानेक प्रतिक्रियाओं के कारणों की खोज की जा सकती है।

बोधी जी के उपन्यास 'निर्वासित' का बीराज, महीप कपी मनोविश्लेषक के पास अपने हृदय का बोझ हल्का करने के लिए स्वयं ही व्याकुल हो उठता है। बीरे-बीरे उसके मुख की अभिव्यक्तियों में परिवर्तन होने लगता है। उसकी भावें कमजोर उठती हैं और उसके मुख पर एक उलझनायुक्त आश्चर्यमय भाव की प्रतिबिम्बाया व्यक्त हो जाती है। बीराज की मुखाकृति को देखते हुए महीप को यह समझने में देर नहीं लगती कि वह हृदय खोल कर बातें करने की प्रासंगिक स्थिति में है। इस लिए उसके मन की बातें जानने का कीतूहल होते हुए भी महीप एक बहुत मनो-विश्लेषक की तरह उसे उकसाता नहीं केवल जिज्ञासु भाव से उसकी ओर देखता रहता है। बीराज कास भर के लिए चुप रहा और फिर मुक्त आश्रय के रूप में उसकी वात्साह्य वह निकली जो अपने तीन पुत्रों तक प्रवाहित होती रही।^{१३} उसे यही स्थानाभाव के कारण है सकना कठिन है।

बाधकता (रेजिस्टेन्स) विश्लेषण

उसके बाद जब पुनः महीप ने बीराज से पूछा कि आरम्भ की तो उसने देखा कि बाधक बीराज अपने मन की बहुत सी बातें उसके आगे खोलने के लिए आरम्भ से ही उत्सुक रहा, तथापि वह अभी तक अन्तर की बहुत-सी बाधाओं को पार नहीं कर पा रहा है।^{१४} इस प्रकार, मुक्त आश्रय में अपनी सहस्मृतियाँ मनोविश्लेषक को सुनाते-बुनाते पात्र का रुझान बन कर कहीं और भटक जाना इस बात का सीधा फल होता है कि उसके अन्तर से कोई ऐसी घटना उभर कर उसकी स्मृति में आ रही है, जिसे वह या तो प्राकृतिक दुःख होने के कारण दबा देता चाहता है और या वह घटना इतनी घनत्व और अलौकिक है कि वह मज्जा अपना अथवा उसे कहने में संकोच करता है और उस बात को छिपाने के लिए मनोविश्लेषक का ध्यान दूसरी ओर फेर देना चाहता है। पात्र की इस स्थिति को फ्रायड ने बाधकता (रेजिस्टेन्स) कहा है।^{१५} ऐसी स्थिति में मनोविश्लेषक का पहला काम यह होता है कि वह पात्र की इस अंधकाव्य वृत्ति को हटाए और उसका विश्वास प्राप्त करके उसे मन की गोपनीय बात को प्रकट करने के लिए कहें। फ्रायड का विश्वास है कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण उसके निपट बीजम की उन घटनाओं में निहित रहता है, जिन्हें वह मनोविश्लेषक से छिपाने का प्रयत्न करता है। इसलिए फ्रायड बाधकता की बाधकता को हटाकर उनकी गुप्त बातें जान लेने पर विशेष बल देता है।

१३ बोधी, 'निर्वासित', पृ० ८१-८२।

१४ वही, पृ० ८२।

१५ Daloz, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. 81.

उसकी धारणा है कि इस बाधकता को हटाए बिना पात्रों के सचेतन को पा सकना असम्भव है।

‘निर्वासित’ का महीप मनोविश्लेषक के कर्तव्यों से समभिन्न नहीं, वह बीराज सिंह से कहता है ‘बेकिए, ठाकुर बीराजसिंह, आपने जब अपने व्यक्तिगत जीवन की कुछ गुप्ततम बातें मेरे धामे प्रकाशित करने की कृपा की है तब दूसरी बातों के सम्मान में इस तरह का संकोच न आपकी सुझाता है न यह उचित ही है। आप यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर दें तो बहुत सम्भव है कि आपके मन की शान्ति पृथ्वी धीरे यह भी सम्भव है कि मैं भी अपनी समझ के अनुसार आपको इस विषय में कुछ सलाह दे सकूँ।’^{१६} महीप का यह कथन ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार एक मनो विश्लेषक अपने पात्र की बाधकता को हटाने के लिए उसे कहता है। महीप के इस कथन से बीराज के मुख पर से वास्तव में संकोच का पर्दा जैसे बहुत कुछ हट जाता है और वह महीप की ओर देखता हुआ अपने मन की बातों का कहने लगता है।

मनोवैज्ञानिक व्याख्या

मुक्त धारण की स्थिति में आ जाने से ही पात्र की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ दूर नहीं हो जाती। मुक्त धारण तो इतना करता है कि पात्र के सचेतन में पड़ी शक्ति को उसके चेतन में ला देता है। पर जब तक वह शक्ति कुसे नहीं पात्र की मनोवैज्ञानिक कठिनाई दूर कैसे हो। इसलिये बाह्य में मनोविश्लेषक की व्याख्या द्वारा पात्र के चेतन में घाई हुई शक्तियों का जोसना होता है और पात्र को उनके कारणों के बारे में जानकारी कपनी होती है। इसलिये ‘निर्वासित’ का महीप कृपा के ठाकुर साहब की ओर आकर्षण की जिसके कारण बीराज के सचेतन में गौंठ पड़ गई थी, व्याख्या करना नहीं भूलता ‘मुझे ऐसा लगता है कि ठाकुर साहब की तीव्र इच्छा शक्ति का आकर्षण कृपा के लिए ऐसा प्रबल स्थित हुआ है कि उसका प्रतिरोध करना उसके लिए सम्भव नहीं रहा है और कोई दूसरा कारण न देखकर उसने अपनी तीव्र इच्छा-शक्ति को उस प्रबल वैमर्शिक इच्छा-शक्ति के धामे शक्ति कर दिया हो—किसी नय से वहीं शक्ति स्वाभाविक नियम से।’^{१७}

इस प्रकार बीराज का पहला मुक्त धारण समाप्त हुआ। यद्यपि इससे बीराज को पूरी मानसिक शान्ति नहीं मिली तो भी वह इस बात को स्वीकार करने में संकोच नहीं करता कि महीप ने उसे जो बात मुझाई है, वह सच सच है।^{१८} उसे आश्चर्य है कि जिस वास्तविकता को महीप केवल-आप नष्ट की वास्तवीय से भौव नवा उसे वह तीन वर्षों के प्रत्यक्ष अनुभव से भी नहीं ताड़ पाया। उसकी यह स्वीकारोक्ति

-१ जोशी, ‘निर्वासित’, पृ० २२।

क. गरी, पृ० १००।

ग. गरी, पृ० १११।

स्पष्ट रूप से उसे एक 'मनोवैज्ञानिक केस' का रूप दे देती है, और यही तो मनो-विस्लेषक का ।^{१६}

'निर्वासित' में इसी प्रकार का एक और स्थल है—साएरा बेबी का मुक्त धारण—जो लगभग इस पृष्ठ तक फैला है ।^{१७}

इस प्रकार फॉब्स की मनोविस्लेषण प्रणाली के आधार पर भी बोधी की अपने पात्रों की मानसिक स्थितियों का उद्घाटन करते हैं ।

^{१६} बेबी, 'निर्वासित' पृ. १०० ।

^{१७} वही पृ. १२९/१३० ।

अध्याय परिचयात्मक विवेचन

अज्ञेय के उपन्यास सर्व-सर्व के उपन्यास नहीं न ही है व्यक्ति और व्यक्ति के सर्व के उपन्यास हैं। आण के अनिश्चय सम्भवस्था और अटिक्तता के युग में 'एक व्यक्ति के भीतर जो अनेक बहुमुखी व्यक्तित्व समर' ^१ पाये हैं और उनके कारण उसमें जो सर्व बन रहा है मानवता के संक्षिप्त अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से उसे पहचानने की कोशिश ^२ करना ही उनके उपन्यासों का चरम लक्ष्य है। इस प्रकार, उनके उपन्यास व्यक्ति चरित्र के उपन्यास बन गए हैं। अज्ञेय की रचि सदा व्यक्ति में ही रही है। ^३ सामाजिक दृष्टि को वह मलत नहीं कहते पर उसे निर्यात्मिक भी नहीं मानते क्योंकि व्यक्ति को दबा कर मानने का जो भी निर्यम होना—प्रलत होना भ्रम होना असह्य होना। ^४ उनका विश्वास है कि व्यक्ति अपने सामाजिक संस्कारों का पुत्र भी है, प्रतिबिम्ब भी पुत्रभा भी। उसी तरह वह अपनी वैयक्तिक परम्पराओं का भी प्रतिबिम्ब और पुत्रभा है—जिन परिस्थितियों से वह बनता है, वहीं को बचाता और बदलता भी बनता है वह निरा पुत्रभा निरा भीष नहीं है वह व्यक्ति है, बुद्धि-विवेक-सम्पन्न व्यक्ति। ^५

शेखर : एक जीवन

'शेखर एक जीवन' पवीयुत वैदका की केवल एक पाठ में फाँसी के पाग एक सशक्त आत्मिका की का अपने गत जीवन का प्रत्यक्षीकन है—वह जानने के लिए कि वह जैसा है वैसा हुआ क्यों। इस सहेदक की पुति के लिए वह भावुकता से काम

१ स. डी. वास्तव्यम 'आधुनिक कल्याण और टिप्पणी' 'कल्याण' अज, १९२९, पृ० ४२३।

२ अज्ञेय 'शेखर एक जीवन'—मृगिका प्रकाश, पृ० १०।

३ अज्ञेय, 'नदी के डींग एक परिचय' 'जय सम्मेल' मई १९२९, पृ० ३८३।

४ अज्ञेय 'नदी के डींग' पृ० १७८।

५ अज्ञेय 'नदी के डींग एक परिचय' 'जय सम्मेल', मई, १९२९ पृ० ३८३।

न लेकर 'जीवन की विज्ञान-संपत्त' 'कार्यकारण-प्रणाली'—आत्म-विस्तेपण—को 'अनासक्त निर्ममता' से उपजाता है। इस प्रकार व्यक्तित्व का कमजोर विकास देखकर एक बीवनी का प्रमुख विषय बन गया है जो सौंदर्य के धर्मों में आधुनिक उपम्यास की मूल समस्या है।^१ बीवनी के पहले पाप में देखर के आत्मकाय का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है—१ आत्मकाय की परिस्थितियों के बात-प्रतिबात से देखर के चरित्र का विकास और २ उसके निमित्त उन परिस्थितियों की धारणा। देखर अंतर्भावना यदि एक सशक्त कार्रकारी बन सका तो निरपेक्ष ही वह अपने आत्मकाय में एक साधारण बाधक न रहा होगा। उसे साधारण तथा घट्टावारी बाधक के रूप में विकसित करने के लिए वहाँ उसे जग से ही विरोधी विज्ञाना बकरी या वहाँ उसकी परिस्थितियों का भी ऐसा होना आवश्यक था कि उनके उसमें भीतर का विरोध-बीज पनप सकता। इसलिए अश्वेन देखर की वहाँ स्वभाव से ही आधुनिक (एरेटिक) या विनीत (कमिनिस्म) न बनाकर स्वचालित (सेल्फ ड्राइरेक्टिव)^२ तथा विरोधी (डिफ़ेंसिव)^३ बनाते हैं। वहाँ उसके पारिवारिक वातावरण—उसके माता-पिता का स्वभाव आई-वहनों में उसका स्थान घर के विभिन्न-वैय्यात्मक विषय आदि—तथा उसकी पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद आदि की परिस्थितियाँ भी इसी प्रकार की बनाते हैं कि उसका समाजीकरण यदि न बड़क उनके और वह उससेतर विरोधी होता बना जाए। इस लिए, शैलक देखर में सहज बुद्धि की कमी नहीं रहता। किन्तु 'उस बुद्धि की प्रभाव-वर्ति का निर्देश करने वाली क्षमि संसार में नहीं थी। वह बुद्धि उसकी भी उसके प्रयोग के लिए थी वह उसका मनचाहा उपयोग करता था और वह जानता था, वहाँ अपने अपनी सहज बुद्धि की शिरसा मानी वहाँ अपने क्षमि किया और वहाँ उसकी बुद्धि को दूसरों ने प्रेरित किया नहीं वह बड़का बना।'^४

१ अश्वेन, 'लिटल एंड बीवनी', प्रथम भाग, पृ० ६।

२. Helson, An Introduction to the Study of Literature p. 148.

३. R. J. Havighurst and Hilda Taba, 'Adolescent Character and Personality' John Wiley New York, 1940, p. 124:

"The Self-Directive person is conscientious, orderly and persistent. He sets high standards for himself and is seldom satisfied with his performance. He is ambitious, strong-willed and self-sufficient, yet characterized by self-criticism and self-doubt."

४ Ibid., p. 163:

"In general, the Defiant person is one who has had early and continued experiences of neglect and frustration. Society represented at first by family and then by school and peer group, has not satisfied his needs and he, in turn, has failed to incorporate the ideals and values of society."

५ अश्वेन, 'लिटल एंड बीवनी', प्रथम भाग, पृ० १७।

उपन्यास-मध्यवर्ती परिवार

घोखर के माता पिता का चुनाव हुआ उच्च-मध्यवर्गी से, क्योंकि इस वर्ग के सदस्य एक तो आर्थिक रूप से स्थायित्ववादी होने के कारण मात्र संवर्ग से बने रहते हैं, और दूसरे, समाज के बिचि-भियेब भी उनके लिए इतने कड़े नहीं रहते। इस वर्ग के बच्चों के लिए मजबूरी नहीं होती कि वे पढ़ने या खेलने के लिए घास मोर्चों के बच्चों के साथ मिलें। उनके लिए तो घर पर ही पढ़ने और खेलने का व्यवस्था प्रबन्ध कर दिया जाता है। घोखर के पिता इसी सम्पन्न वर्ग के एक सरकारी अधिकारी थे। वे तो वैसे भी किसी एक स्थान पर अधिक देर नहीं टिक पाते थे—घाब यहाँ और कल वहाँ। उन्हें रहने के लिए कोठी भी प्राप्त नगर के बाहर एकान्त में मिलता करती थी, इसलिए किसी स्थान के बात-समाज के सम्पर्क में घाने के बजाय घोखर को कम ही मिले। घोखर के माँ को कुछ और लचकबिहीन बचाने के लिए ऐसी परिस्थितियों का निर्माण आवश्यक ही था क्योंकि यदि वह घर से बाहर अन्य बच्चों के साथ सम्पर्क रख पाता तो कम में शायद उसके माँ दूटता रहता और वह निरन्तर अपने आचार-व्यवहार के प्रति आनन्दित न रह पाता। इस वर्ग के आचार-व्यवहार के कारण बचकों के आचार-व्यवहार के कारण घर वालों से तो कटे-कटे रहते ही हैं, बाहर वालों से भी मिल नहीं पाते और अन्तर्मुख, आत्मचिन्तक, कमवादीय अथवा स्वायत्त रहने लगते हैं। किसी प्रकार के प्रभाव से प्रेरित न होने से जीवन में भी उन्हें कोई बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं रहती समाज के नैतिक मूल्यों के प्रति उनमें उदासीनता बढ़ने लगती है और कदा के प्रति लपका होने लगता है, क्योंकि वह उन्हें जीवन की नीरसता से पराक्रम का एक मात्र प्रदान करती है।^{११}

अन्योन्य स्वभाव के माता-पिता

घोखर के माता-पिता के अपने-अपने के लिए आवश्यक था कि उनके माता और पिता अन्योन्य स्वभाव के हों^{१२} और वे दोनों बात-समाज से अपरिचित

११ Havighurst and Taba, *Adolescent Character and Personality* p. 122 :

"Variation of his type (i.e. Self Directive) is found in certain upper middle class youths who are 'indispensables'. They appear to be more sophisticated and almost a little weary of the life of ambitions, thrills and severe morality. They are 'mavericks' who belong and yet do not belong. They may have artistic or literary interests..... they seem to understand them better and to have more depth in their personalities. At the same time, they are often moody self-critical and uncertain of themselves."

१२ Mrs. E. Fraenkel, *Common Sense in the Nursery* Penguin Book, revised edn. 1948, p. 213 :

"Children are particularly acute in observing differences of opinion in their elders..... If the child is treated quite differently by several different authorities, or by the same person in different moods, he will become uncertain, nervous and irritable."

होते । रोखर के पिता मानेस में भातसायी के माँ मानेस की कमी के कारण निर्दम
 इन प्रवृत्तियों के मेम और संघर्ष में ही रोखर का पालन-पोषण हुआ था ।^{१४}
 रोखर अपने पिता का अपाकक^{१५} था रोखर पिता से घिट कर भी उन्हें पूजता था
 माँ को पीटती नहीं, पर समा देती है समुद्रह की बस्की में पीस कर ।^{१६} रोखर के
 घातावरण बमने के लिए यह घातक ही था कि वह माता की अवेसा पिता की
 ओर ही आकर्षित होता ।^{१७} पर माँ के प्यार से बंभित रहना भी उसके लिए घातक
 हो सकता था । इतने पुष्ट यह जाना बिनाही एक हिंसक डाकू बन जाता यदि समय
 समय पर उसकी अफ्त भावना की अनुचित मुष्टि के लिए उसे किसी स्त्री का प्यार
 न मिलता । उसकी माँ के प्यार की अतिपूर्ति के लिए रोखर को उसकी बहन सर
 स्वती की रचना करनी पड़ी जो एक दिन उसके मन में एकाएक 'सरस्वती' से 'बहन'
 और 'बहन' से 'सरस' हो गई ।^{१८} रोखर का बच बर के बाहर भी सम्पर्क बढ़ने
 लगा तब उसकी सेक्स भावना की वृष्टि के लिए धारणा की वृष्टि हुई । इस प्रकार
 मद्रास कामेज में बहो बहू अपने स्वभाव के कारण किसी सुबती से निस्संकोच न
 निघ-बुल सकता था उसकी इस भावना के लिए उसके सहायी कुमारप्पा की बक-
 रत पड़ी, जिसे आर्थिक सहायता देकर वह हथिया लेना चाहता है । 'कुमार, यदि
 मेरे घटिरिक्त तुम और किसी के हुए तो मैं तुम्हारा बला पॉट हूँ' ^{१९} अर्थ की
 अवधारणा भी तो इसी योग की वृष्टि में हुई थी । वेस से छुट जाने के बाद से तो
 रोखर को निरन्तर उसका आत्मावनकाटी प्यार मिलता रहा और वही उसके जीवन
 को छाया पति और बिसा ब्रह्मन करता रहा । रोखर के जीवन में इन सभी पाशों
 का महत्व है क्योंकि इनके लिए यह प्यार के रोखर की सेवक भावना को ही सुख
 बहीं किया था बल्कि कुछ समय के लिए उसे व्यय किए रखने वाले मानेसों से मुक्त
 करके उसके भीतरी तनावों को भी खींचा कर दिया था ।^{२०}

रोखर के यह को सुख करने वाले अन्य पात्र

रोखर की यह भावना की वृष्टि जहाँ एक ओर उसके बर के घातावरण और
 उसके माता-पिता तथा बहन माइनों के उसके प्रति व्यवहार से हुई, वहीं उसे बूढ़ से
 दुइतर बनाते रहने के लिए मद्रास की एंटीगोनम बसब के राखन सहायिब आदि

१४ अवेस, 'रोखर : एक जीवनी', प्रथम भाग, पृ० १२४ ।
 १४ वही, पृ० १२६ ।
 १५ वही, पृ० १२७ ।
 १६ वही, पृ० १२६ ।
 १७ वही, पृ० ८० ।
 १८ अवेस, रोखर : एक जीवनी, प्रथम भाग, पृ० २०६ ।
 १९ M. Klein 'The Psycho-analysis of Children Hogarth Press 1922, p. 76-77

सबसे अधिक पाठसाक्षर के विचारों को कावेस-समिक्षण के विचार के स्वयंसेवकों, जैन के धर्म्य व्यक्तियों मोहसम रामजी धारि का निर्माण हुआ। उसकी यह भावना के उत्पन्न (समिक्षण) के लिए जैन में विद्याभूषण की बकरत पड़ी। विद्याभूषण से ही उसे यह दृष्टि मिली कि 'धर्मिमान या धर्मकार एक सामाजिक कर्तव्य भी हो सकता है।' इसके प्रतिरिक्त सेसर की प्रथम विरोध भावना के उत्पन्न के लिए सृष्टि हुई बाबा मदनसिंह की जिससे सेसर ने जाना कि 'अहिंसात्मक एकता' भी हो सकता है।

इत प्रकार सेसर ही इस उपन्यास का प्रमुख पात्र ठहरता है, धर्म सभी पात्रों में है। सेसर के माता-पिता उसकी बहुत सरस्वती उसकी प्रेमी शारदा सभी सभी विद्याभूषण मोहसम रामजी बाबा मदनसिंह धारि का प्रतिष्ठित सेसर के व्यक्तित्व के कर्मिक निर्माण के लिए ही है। यद्यपि धर्म का अपना व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावशाली बन गया है, तो भी उपन्यास में उसका स्थान उस धर्म से अधिक नहीं रहा जिस पर बराबर बढ़ावा जाकर सेसर का जीवन ठेक होता रहा है।^{११}

'नदी के द्वीप' के नाम

'सेसर एक जीवन' की तरह 'नदी के द्वीप' भी व्यक्ति चरित्र का उपन्यास है पर इसका विषय व्यक्ति चरित्र का कर्मिक विकास नहीं किस्तिष्ठ चरित्र का उद्घाटन ही है। योरा को छोड़कर 'नदी के द्वीप' के धर्म सभी पात्र परिपक्व व्यक्तित्व लेकर ही उपन्यास में आते हैं। योरा का चरित्र प्रथम उपन्यास में ही परिपक्वता को प्राप्त होता है पर उसके व्यक्तित्व का कर्मिक निर्माण उपन्यास का सत्य नहीं प्रतीत होता उसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं के उद्घाटन की ओर ही उपन्यास कार का ध्यान रहा है।

'नदी के द्वीप' के पात्रों का चुनाव उस बुद्धि-जीवी मध्यमवर्ग से हुआ है जिसकी सीढ़िका सभी पुरातन मूल्यों के आगे प्रथम सूचक चिह्न बना चुकी है और उनके बचने में अभी तक न कुछ और वा सकी है और न स्वयं बना सकी है। वे शीघ्र आर्थिक रूप से स्वाभिसारी हैं—यहाँ तक कि रेखा योरा धारि सभी पात्र भी अपनी सीढ़िका में दूँध समाप्त की—उसके विभिन्न नियमों से दूर कल्पना-जगत् में रहते हैं। यह बुद्धि-जीवी मध्यमवर्ग तो बड़े ही शाश्वत जन-जीवन से प्रत्यक्ष भा पड़ा है, पर 'नदी के द्वीप' के पात्र तो उस वर्ग के भी असाधारण सदस्यों में से हैं जो केवल सीढ़िका पर ही पुरातन मूल्यों, समाज के विधि-नियमों की पकड़ेमका कर पाए हैं—उनके साथ

अर्द्ध, 'सेसर एक जीवन' दूसरा भाग, पृ० ५५।

अर्द्ध, 'सेसर एक जीवन' प्रथम भाग, पृ० १९।

उन में तो बड़ी पुराने संस्कार उसके जमे हुए हैं और उनका पानों की रीस भावना निरन्तर समर्पण बिना रहता है जो उन्हें सदा बेचैन किये रहता है। उनके सपने में बड़े बड़े संस्कार उन्हें वृत्ति (कम्प्लिमेंट) के लिए नीकुलिया तान के एकल पंक्तों और कमीर की निर्बल अंशदायीं पर मटक से जाते हैं पर वहाँ भी उन्हें समर्पण का निर्वाप आनन्द नहीं बूटने देते।

'नदी के द्वीप' का मायक मुनन है। मुनन जैसे तो रिचिचस में डॉक्टर है, पर उपन्यास का विषय वैज्ञानिक मुनन का चिन्तन नहीं व्यक्ति मुनन की भीतरी मुनन का उद्घाटन है जो उसके विचारों और कामों को निदिष्ट करती है।^{१९} रेखा और भीरा प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष उसकी दो परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों को उकसाती हैं रेखा उसकी यौन प्रवृत्ति (लैस प्रज) को उदीप्त करती है तो बीरा उसकी विवेक बुद्धि (कान्सिंस) को जो सामाजिक नैतिकता की यात्रा है यात्रा करती है। जैसे तो मुनन भी उस की वास्तव्युक्ति का साधन बनता है, पर वह बात मौल्य है। यदि वास्तव्युक्ति ही सन्नित होती, तो वह कदाचित् अन्तमात्र मुनन है अधिक प्रवृत्ति उद्घाटन कर सकता। वह तो रेखा से समझौता करने को तैयार ही था। बल्कि मुनन की बात तो मायक की समझ में भी नहीं जाती थी कि 'घाँसि की भी हो रही है रिचर्च भी और मोकरी भी बन रही है।' रेखा उसकी बात मान लेती तो 'वह अपना सब काम-काज छोड़कर उसे लेकर कहीं गया जाता बर्न-बर्न।'^{२०} सब तो यह है कि रेखा के मायम से वैज्ञानिक मुनन के भीतर का असली कामुक मुनन व्यक्त हो उठा है। वास्तव की नदी के प्रवाह में एक बार तो उसकी 'रिचर्च-वर्च' सब कुछ बह गई थी। उसे दूकने से यदि कोई बचा सका तो वह बीरा का अस्तित्व ही था। मुनन की इन दो प्रवृत्तियों में बड़े जोर का संघर्ष चलता है। जब रेखा उसकी जीवन-यात्रा को निदिष्ट कर रही होती है, पीर की यात्र बीच-बीच में धाकर उस पर संकुच का काम करती है और फिर रेखा को 'कम्प्लिमेंट' के बाह्र जब वह पीर की ओर प्रवृत्त होता है तब बीच-बीच में रेखा का ध्यान उसे विचलित करके पीर के प्रति पूर्णतया समर्पण नहीं होने देता। यद्यपि मुनन के जीवन में निरन्तर उसकी लैस-मायना—रेखा—की ही प्रवृत्ति रही तथापि अन्ततोगत्वा पीर को उसके समर्पण की परिस्थितियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि उसके समर्पण के पीछे लैस-प्रवृत्ति नहीं थी।

उपन्यास के चौथे पात्र अन्तमात्र की आत्मयकता विचारणीय हो सकती है क्योंकि न तो वह कदावायक मुनन के संघर्ष को बढ़ा सका है और न घटा सका है। वह कभी रेखा को प्रत्यक्ष-विवेकन करता-फिरता है और कभी पीर को पर उनमें से कोई भी उसकी बात पर ध्यान नहीं देती। ईर्ष्यावश वह रेखा और पीर को मुनन से विमुक्त करने का प्रयत्न तो करता है पर उसके प्रयास की व्यर्थता इनी से सिद्ध हो

१९. पन्ने ४, 'नदी के द्वीप' पृ० ४४२।

२०. पन्ने ४ पृ० ४४२।

जाती है कि भुवन को भी उसकी निरर्थकता पर विश्वास है और वह उसे एक पत्र में स्पष्ट कह देता है "अब धीरे-धीरे प्रति किसी विन्या 'गबन' का अर्थ भुवन मानो जिस भी चीज पर तुम्हारा लोभ है, उसके लिए निर्बाध होकर क्षुब्ध करो।" २२ स्वतन्त्र रूप से अग्रभाष्य का चरित्र-चित्रण करना ही रहा हो उपन्यास में वह ठीक से जग नहीं पाया।

पात्रों का प्रथम परिचय

वस्तु-वस्तु में हम नित्य प्रति कई लोगों से मिलते हैं, पर पहली नज़ में ही तो हम सबके प्रति साक्ष्य नहीं हो जाते। अनेक बार गिनने पर भी कई लोग हमें अपनी ओर नहीं खींच पाते और कई लोग प्रथम नज़ में ही अपने प्रति हमारा प्रतिक्रिया बड़ा देते हैं। उपन्यास के पात्रों की भी सावधानी इसी में है कि वे प्रथम नज़ में ही पाठक का ध्यान अपनी ओर खींच लें। इस दृष्टि से पात्रों के प्रथम परिचय का भी उपन्यास में विशेष महत्त्व हो जाता है।

नामक का प्रवेश—विकसित अवस्था में

प्रवेश के उपन्यासों के कथानक आगे से पीछे चलते हैं। इसलिए, उनके कथा नायक का प्रथम परिचय हमें उनके विकास की धार्मिक अवस्था में नहीं मिलता। पर्व बढते ही नायक अपने विकास की प्रगति का किसी एक अवस्था में उपन्यास के रंग में बदल जाते हैं और बीच-बीच में मिलता है। बिना किसी सूचक के नाटकीय रूप से लेखक उसे पाठक के सामने से घाता है। स्थिति-विशेष में अपनी किसी क्षणिक प्रति क्रिया के माध्यम से वह हम पर नहीं खुलता और न ही बोलकर हमें अपने बारे में कुछ बताता है। हमारे सामने तो उसकी स्मृति (रिकॉलेक्शन) ही जाती है और उसके ही हमें उसके बारे में जोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त होती है।

रोजर—रोजर से जब पाठक की पहली नज़ होती है तब रोजर का व्यक्तित्व परिपक्व हो चुका होता है। 'रोजर : एक बीवनी' का पर्व उठते ही रोजर अपने विशिष्ट रूप में पढ़ी की कोठरी में अपने जीवन का प्रत्यक्षदर्शन करता हुआ तथा 'अपने अतीत जीवन की दुबारा जीता हुआ' मिलता है। २३ उसे धीरे-धीरे पढ़ी मिल पाएगी, उसके बारे में इसके अर्थ हमें और कुछ नहीं बता जाता। फिर कुछ एक गुप्त गुप्त स्मृतियों में दूसरों से उसके सम्बन्धों की जानकारी प्राप्त होती है। मुख्य रूप से उसका परिचय तो उपन्यास के प्रथम खण्ड : 'उपरोध ईश्वर' २४ से ही मिलना आरम्भ होता है।

२२ अर्थ, 'अरी के लिए' ३० ३४०।

२३ अर्थ, 'रोजर : एक बीवनी', प्रथम भाग, पृ० १३।

२४ अर्थ, 'रोजर : एक बीवनी' — — — — —

भुवन—'नदी के द्वीप' का पर्वी छठे ही उसका नामक भुवन उपन्यास के रंग मंच पर हफ्ता-बफ्ता सा जसती रेतगाड़ी का ईंस पकड़े कड़ा दिखाई देता है। भुवन कीर्ण है और क्यों ऐसे कड़ा है कुछ पता नहीं चलता। पानकारी के नाम पर केवल बड़ी मित्रता है कि रेखा नाम की किसी स्त्री ने जब सहसा उसकी कुहनी पकड़ कर मुठकराकर उसे दबैसते हुए कहा था "धन्या नन्दी से सवार हो जाइए, आपकी गाड़ी या रही है।"^{१७} वह जखरी याड़ी पर सवार हुया था। फिर जब उसकी स्मृति शरीर के पाने उसदने सगती है तब दूसरों के साथ जखरी बाटपीठ के बीच में पीरे-पीरे पता चलता है कि वह प्रोफेसर है।^{१८} और डाक्टर है। बाद में उसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार मिलता है "कामिष के बाद" वह चार-छः वर्ष वैज्ञानिक खोज और रिसाट में लगाकर पहले से भी कुछ घन्टों की और तटस्थ हाकर एक कस्बे के कामेज में सैन्यधार हो गया है।^{१९}

धन्य पात्र नायक के स्मृति-वट पर

धन्य के उपन्यासों के कथा-नायक के प्रथम दर्शन किसी भूमिका के बिना उपन्यास के रंग-मंच पर होते हैं तो धन्य चारों के प्रथम दर्शन होते हैं कथा-नायक के स्मृति-वट पर। वहाँ उनके विकास के आरम्भिक मूक मिलते हैं वह बात नहीं। उन पात्रों के जिस रूप की उसके मन पर सबसे गहरी छाप बड़ी होती है वही उसकी स्मृति में सबसे पहले उभर आता है। ये पात्र उसकी स्मृति में उस रूप के नहीं आते जिस रूप से वे उसके जीवन में आए हों बल्कि जिस पात्र के द्वारा वह सबसे अधिक प्रभावित हुमा होता है, वही उसकी स्मृति में सबसे पहले आता है, उसके जीवन में आई वह सबसे बाद आया हो।

'देखर एक बीवनी में उपन्यास के रंग-मंच पर तो केवल कथा-नायक देखर ही रहता है। धन्य सभी पात्र उसके स्मृति-वट पर छाया चित्रों के रूप में मिलते हैं। सबसे पहले देखर की स्मृति में छवि आती है। इसलिए नहीं कि उसके जीवन में वह सबसे पहले आई थी या वह उसकी सबसे ताजी स्मृति थी^{२०} बल्कि इसलिए कि 'देखर का हुना धमिनाई रूप से उसके होने का केकर था। छवि हमारे सामने सर्व प्रथम उस रूप में आती है जबकि उसका विवाह हो चुका होता है और 'उसके जीवन के चलने के लिए एक पट्टी निविधत हो गई होती है।'^{२१} देखर के स्मृति वनट पर गूरा छाना-चित्र दीखता है दारवा के "मस्तीक" का। उन्नी गीढ़ की घोर देखर

१७ नन्दी 'नदी के द्वीप' पृ. १।

१८ वही, पृ. १।

१९ वही, पृ. १०।

२० नन्दी, 'देखर: एक बीवनी' पन्ना नम, पृ. ११।

२१ नन्दी, 'देखर: एक बीवनी' पन्ना नम, पृ. १६।

बसा जा रहा है धारदा से मिलने । मकान के द्वार पर रोखर सहसा हुधा बढ़ा रह जाया है—मकान खाली है ।^{१२} यहाँ खाली मकान देखकर ही पाठकों को संतोष कर मेमा पड़ता है । धारदा को ज़रा देख नहीं पाया । रोखर को ही धारदा नहीं मिसी दो पाठक को जैसे मिल सकती थी ? रोखर की स्मृति में तीसरा व्यक्ति आता है उस की माँ को उसके पिता से यह कहती हुई गुनाई पड़ती है 'और सच पूछो तो मैं इस का (रोखर का) भी विवाह नहीं करती ।'^{१३} इसके बाद खाना-बिब आता है—खीसा का जो रोखर की छिप्या थी पर जिसका वह मुब न था । खीसा के लिए वह था एक बड़ा ठा माई—किन्तु ऐसा माई जिससे प्रेम किया जा सके जिस पर भुका जा सके, जिसके आभार पर स्वप्न बुने जा सके ।^{१४} खीसा की पढ़ाई बोड़ी देर ही चल पाई थी कि पाठक देखता है कि वह बन्द हो गई ।

उपन्यास के प्रथम चरित्र से लेकर रोखर के व्यक्तित्व का विकास व्यवस्थित रूप से दिखाने लपटा है और सभी से भ्रम्य पात्रों के भी खाना-बिब रोखर के स्मृति-पट पर क्रमशः उमरने समते हैं और हमें उसके माता-पिता बहून सरस्वती प्रेमिका धारदा महाश कातेब के सहपाठी कुमार, राजकन और सबाधिष, बाहीर कातेब के साथी कापेस सिबिर के स्वयंसिब, जेल-जीवन के बन्दी साथी-बैठा बिखामुपस काबा मदनसिंह, मोहसब रामजी तथा बसि के पति रामेशबर, अंतिकापी बल के घरस्थों आदि का परिचय मिलता है—पर उसना ही बिचना रोखर को बनाने के लिए आवश्यक था । इस प्रकार पाठक जिस भी पात्रों को देख पाता रोखर के स्मृति-पट पर ही देख पाता है—रोखर की स्मृति में के जैसे पुरसित हैं जैसे ही, सीधे अपनी दृष्टि से नहीं ।

'मरी के हीप' में भी रेखा और चन्द्रमामन के प्रथम दर्शन उपन्यास के नायक मुबन के स्मृति-पट पर ही होते हैं । मुबन की स्मृति में पहले तो रेखा का वह चित्र आता है जब वह प्रत्यक्ष के स्थान पर उससे बिदा लेती हुई अवैयक्तिक बर लम्बे दिनम से कहती है 'मैं बापकी बड़ी कठमर हूँ—और बापने तो इस बापसी की पात्रा की भी प्रोत्तिकर बना दिया' और सहसा मुबन की जुझनी पकड़कर मुत्कराकर बड़े ठेनकर बसती माई पर बढ़ा देती है ।^{१५} दूसरा चित्र उमरता है रेखा से उसके प्रथम परिचय का जिसमें रेखा को पारसी दृष्टि से देखकर मन-ही-मन उसने कहा था—'जो ही नहीं रेखा देवी की इसनी चर्चा होती । सममें कुछ है जिसका उन्मेष जीवन का उन्मेष है ।'^{१६} उक्त समय उसने तबब किया था कि रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है ।^{१७} इस प्रकार पाठक पर रेखा की वाक बैठ जाती है, यद्यपि उसका अधिक

१२ अर्धे २, 'रोखर : एक जीवन' प्रथम भाग, पृ २४ ।
१३ वही, पृ २२ ।
१४ वही, पृ २२ ।
१५ अर्धे २, 'मरी के हीप' पृ ४ ।
१६ अर्धे २, 'मरी के हीप' पृ २ ।
१७ वही, पृ २० ।

परिचय उसे बाध में मिलता है। २० भुवन की स्मृतियों में ही अग्रमात्र के दर्शन होते हैं और वहीं से पता चलता है कि वह भुवन का कालेज का सहपाठी और मित्र है, स्थानीय पायनियर का विशेष संचारवाता है और सनमंड से परिचित है, यों भी बहुमयी साधनी है” २१ यद्यपि पाठक अभी तक अपनी पाँकों से उसे नहीं देख पाया है। पीरा के प्रथम दर्शन हमें उपन्यास के रंग-मंच पर ही होते हैं और तैत्तिक स्वयं उसका तथा उसके और भुवन के सम्बन्धों का परिचय कराता है और साथ में भुवन की टिप्पणी बोझा नहीं झूलता “उसमें जीवन है, जीवन की सालसा है—ऐसी जो कई विद्याओं में उसे सम्प्रेषण की प्रेरणा दे।” २२

अज्ञेय अपने पात्रों का प्रथम परिचय नाटकीय ढंग से कराते हुए बिना किसी भूमिका के उन्हें उपन्यास के रंग-मंच पर से बाएँ या मायक के स्मृति-कलक पर ही उनका छाया चित्र दिखा दे वह उनके बारे में पाठक को जतनी ही जानकारी कराते हैं जिससे उन पर पात्रों की बाढ़ बैठ जाए और वह उनके बारे में जिज्ञासाधीन हो जडे।

प्राकृति-वैशम्यका लक्षण

पहले कह जाए हैं कि अज्ञेय की रचि व्यक्ति में है, किसी समाज या वर्ग में नहीं। उनके सभी मुख्य पात्र ‘व्यक्ति’ हैं, किसी वर्ग के प्रतिनिधि नहीं। पात्रों का पूरा लक्ष-धित दर्शन उन्हें व्यक्ति-चरित्र बना सकता हो ऐसी बात नहीं। अयोरेवार वर्तन यदि कुपलता से क्रिया जाए तो ऐसे ‘टाइप’ बनकर बना सकता है जो सस्म से ही पहचाने जा सकें। व्यक्ति-चरित्र का उपन्यासकार जिस प्रकार अपने पात्रों के धीत को एक बीजदे में कस कर सचक-बिहीन नहीं कर देता उसी प्रकार उन्हें प्राकृति और वैशम्यका की मोटी और पक्की रेखाओं में बाँधकर उन्हें गुड़िया नहीं बना देता। वह उसकी बाहरी सज्जा में नहीं झटकाता प्रत्युत ठोस बाह्य आचरण को भीरकर उनके भीतर की तरल मानसिक क्रिया का चित्रण करने की ओर प्रवृत्त होता है और उसी के द्वारा वह उन्हें धर्म सब मानवों से भिन्न व्यक्ति बना देता है। साथ ही वह यह बात पाठकों की रचि और करपना पर छोड़ देता है कि वे उसे कैसी ही पोशाक पहना लें।

प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण के प्रति उदासीनता

शेखर-मणि-सरस्वती—मीनपर के पास एक बजरे के घघ भाग में बैठे घाठ वर्ग के सेखर का तो अज्ञेय कुछ जड़ता-जड़ता सा हुमिया दे भी देते हैं—‘वामक निकर पहले हुए, किन्तु साथ सरीर गया उसमें हुए पूरे बात’ २३—पर उसके पास हो

२० अज्ञेय, ‘नरी के दी’ पृ० २६।

२१ वही, पृ० ६।

२२ वही, पृ० ७६।

२३ अज्ञेय ‘राज’ पृ० ७६।

बैठी हुई ठेरह बर्ष की सरस्वती की बेसमूपा की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। उसका परिचय वह इस प्रकार देते हैं, "उससे कुछ ही दूरी पर, एक मड़की बैठी है। किन्तु मनसा वह सेकड़ों हजारों मील दूर है। उसके पास एक अनेक भिन्न-भिन्न पड़े हैं और उसकी गोद में एक किताब है— काव्यदास का 'रघुनन्द'। पर वह भिन्न भी नहीं देख रही पुस्तक भी नहीं पढ़ रही। वह उस बालक की ओर एक शुभ्य दृष्टि से देख रही है मुँह से कुछ गुमगुमा रही है और मनसा पता नहीं क्या सोच रही है।" १९ सरस्वती के इस परिचय से पता चल जाता है कि लेखक की रचि इस पात्र के शरीर के आकार प्रकार में नहीं बल्कि उसके मन में है। लेखक की पहुँच उसके मन की गहराइयों तक है क्योंकि मन की गहराइयों में ही तो प्रत्येक मनुष्य स्थित होता है, अदृशिय होता है। शशि की बेसमूपा का बर्णन तो शेखर एक बीचमी के दोनों भायों में आकर ही कहीं मिलेगा। इस एक उदराल के विषय शेखर के अपने शरीर या उसकी बेसमूपा का बर्णन भी उपन्यास-भर में बुलैम होगा—ऐसे संक्षिप्त भले ही मिल जाएँ कि वह बहुर भाटी हो मना या सुट-बूट-टाई पहनने लग गया।

भुवन-रेखा-गौरा—इसी प्रकार 'नदी के द्वीप' के नायक भुवन का शरीर कैसा था उसके जयन-नवज कैसे थे वह किस प्रकार की पोशाक पहनता था— उपन्यास भर में इसकी चर्चा नहीं मिलेगी। हाँ, रेखा की सफेद ऐसी चोटी का उल्लेख एक बार बकर हुआ है पर वह इसलिये नहीं कि रेखा को वह प्यौती है, बल्कि इसलिये कि वह पहनने वालों को दूर ले जाती है। दूर ही नहीं एक ऊँचाई पर भी। २० रेखा के नेहरे का 'हाथ कोकस', उसके मुख का हू-बहू भिन्न कहीं नहीं मिलता हू-बहू भिन्न तो दूर उसका कोई भी भिन्न नहीं मिलता केवल यही पता चलता है कि वह साँवले बर्ण की है। २१ रेखा की उमरियों का बर्णन भवस्य दो बार हुआ है, पर वह इसलिये नहीं कि वे पुनरुत्था का आवर्ष उपस्थित करती थी बल्कि इसलिये कि उनके उमरे हुए जोड़ रूपरत्न की अपेक्षा मनस्तम्भ की ओर ही इतिव करते थे २२ उसके चिन्तनशील स्वभाव के सूचक थे। २३ ठेरह बर्ष की गौरा का आकार-वर्णन केवल तीन शब्दों तक ही सीमित है 'लम्बी, कुसलनु, गम्भीर गौरा' २४ बीच में एक बार उल्लेख है कि रेखा से प्रथम मेट के समय उसने एक सफेद चोटी पहन रखी थी—'बहुत छोटी-छोटी सफेद कूटी वाली बिन्दन की'। २५

१९ वही, पृ. ११।

२० अर्धेन 'नदी के द्वीप' पृ. १३३।

२१ वही, पृ. १३२।

२२ अर्धेन, 'नदी के द्वीप' पृ. १३२।

२३ वही, पृ. १२७।

२४ वही, पृ. ७४।

२५ वही, पृ. १२२।

बीन पार्श्वों की मुनिभिन्न रूप-रेखा

कुमार—घन्नेय के उपन्यास व्यक्ति-चरित्र के उपन्यास हैं जकर धीरे उनके सभी प्रमुख पात्र व्यक्त हैं, पर टाइट से घनय व्यक्ति बनाने के लिए उन्हें भी 'टाइट' की आवश्यकता पड़ी है और उन 'टाइट' पार्श्वों को स्मरणीय बनाने के लिए लेखक ने जहाँ उन्हें उनके समुचित विधिष्ट सीमा प्रदान किया है वहाँ उनकी माहति, वेग-भूषा भी बीबी ही रखी है। 'ऐकर' एक बीनबी के प्रथम माप में ऐकर के कालेन-होस्टल के छात्री कुमार का अपोरेवार वर्णन हुआ है—“युवक का चेहरा सुन्दर था जो कि सुन्दर और स्वच्छ, पीली प्रायः ईश्वरी हुईं नाक सीधी और छोटी मोठ पतले सम्मे धीरे चंचल। सिर पर सम्मे सम्मे धीरे मुँह-पल्ल नाम के जिन्हे उसने ढंग से काट रखा था। बाड़ी-मुँह उसके नहीं थी—घनी फूट भी नहीं रही थी। कद धीरे पठन से भी वह चौदह-पंद्रह वर्ष से अधिक नहीं जान पड़ता था। ५४ कुमार उस समय सोमह वर्ष का था और ऐकर की 'सर्व' प्रकृति के अनुकूल ही उसके कड़ा लगाता था और यह बात ऐकर की 'सर्व' प्रकृति के अनुकूल ही थी जिसके कारण वह कुमार की ओर खिंचा था। कुमार के इस रूप को देखते हुए ऐकर का उसकी ओर खिंच जाना असम्भव नहीं प्रतीत होता—उसके पास रंग रूप भी था और घनी उसकी बाड़ी-मुँह भी नहीं छपी थी। जो लोग कालेन के होस्टल में रहे चुके हैं, उन्हें कुमार के 'टाइट' को पहचानने में कठिनाई नहीं हुई होगी। उसके 'टाइट' के अनुकूल उसके नयन-नयन इसीलिए तो बनाए गए हैं कि वह आसानी से पहचाना जा सके।

सारवा—ऐकर से प्रथम अँट के समय सारवा की वेगभूषा के वर्णन में भी लेखक ने बचि दिखाई है। ऐकर ने पाया कि 'अच्छी के बटन में भी लगना नहीं है। उसके घनी तक कुछ नीले नाम जो बाहर खुले से सब एक रेचनी रिबन से बँधे हैं धीरे पर वह एक सँकेर कुल्ली पहने है और एक एडिपों से ढँका सँकेर सहैया या पेट्रीफोट।”५ संकट सारवा भी तो एक 'टाइट' ही सिद्ध होती है। यदि वह घनि की तरह 'व्यक्ति' बन सकती तो ऐकर को उसका निराशा क्यों मिलती।

बिद्याभूषण—केस में जब ऐकर को अपने केस के प्रथम व्यक्ति से मिलने की अनुमति मिल गई तो पहले ही दिन उसकी अँट बिद्याभूषण से हुई। सारवर के लिए दोनों एक-दूसरे को सिर से पैर तक देखते रहे “बिद्याभूषण कद का मध्य बलिष्ठ धीरे का और दोरे रंग का कोई भीस वर्ष का युवक था। पीछे की ओर सँकटे हुए

इसे बाध, पीड़ा माया सीधी-नाक धीर पतले घोंठ, सीधी धीर पतली ठोड़ी—सबक है वह अभ्यसनसीस हठी बीकता या घाँसों में अनन्य उसके एक कोमल हास का पंचम प्रकाश या । २१ विद्याभूषण की आकृति का इतना ध्योरेवार बर्णन करने का प्रायश यही दिखाना है कि वह शकल-सूरत से ही उस टाइट का नजर भावा या जो सेखर के मन के अनुकूल^{२२} हो सकती थी ।

अश्वेय के उपन्यासों में वेद्यभूषा बल्लभ के स्वप्नों को देखकर विश्वास हो जाता है कि उन्होंने उन्हीं पार्श्वों की धार्मिक सृष्टि का बर्णन किया है जिनके भीतर पुसने की उन्हें जरूरत नहीं थी । जिन पार्श्वों के हृदय की वे सहृदयी नापने में व्यस्त हैं जो पात्र उनके उपन्यासों के व्यक्ति-चरित्र हैं उनके बाह्यावरण के प्रति वे सदा उदासीन ही रहे हैं । जब वे पात्र मनसा मुक्त हैं तो तैसक उन्हें बाह्य रूपरेखा में क्यों बांध दे । पाठक आश्चर्यक समझें तो अपनी रधि धीर कल्पना के अनुसार उन्हें जैसा चाहे, सजा लें ।

अनुभाव-चित्रण

अश्वेय के सभी प्रमुख पात्र बुद्धि-वीवी हैं । बाहर से तो वे सुनभे हुए प्रतीत होते हैं पर अपने भीतर बेहब चलने रहते हैं । किसी के “मन के जो दुकड़े हो गए हैं धीर कभी-कभी तो वो से भी अधिक जान पड़ते हैं,”^{२३} किसी के “धमर किन्ती बड़ी टंकी जैसे पानी की जमा है”^{२४} धीर किसी के “भीतर एक पुसड़न है जो उसके विचारों धीर कामों को निरिष्ट करती है ।”^{२५} वे पात्र नहीं चाहते कि उनके भीतर जो है उस पर किसी दूसरे की नृष्टि पड़े—वह तो उन का अपना है निजी है । वे जानते हैं कि “निजी सत्य को न कहना आसान है न सहना आसान है”^{२६} यह जानते हुए वे बाहर से सदा जानक रहते हैं धीर इसीलिए, सामयिक कम धीर बौद्धिक अधिक हो गए हैं । अपने वास्तविक आशय पर वे बहुधा आशंनिकता का आरोप कर लेते हैं । बात भीत के समय की उनकी धार्मिक मुद्रा अनुभाव स्वर-अकम्पन आदि का यदि ध्यान पूर्वक अभ्यसन न किया जाए, तो भ्रम ही सजता है कि वे सामारण अर्धव्यक्तित्व स्तर पर ही आशंनिक बर्णन जमा रहे हैं जबकि उनकी आशंनिकता के पीछे एक बूढ़ अभिप्राय छिपा होता है । उनके प्रति प्रीति धीर कान खुले रखकर ही जाना जा सकता है कि “बात के अर्थ से असंग उसमें धीर भी अर्थ है—अकथित, अकल्प्य अभिप्राय ।”^{२७}

२१ अश्वेय सेखर : एक बीकती' दूसरा पाग पृ २२ ।

२२ यही, पृ० २२ ।

२३ यही, प्रथम भाग पृ ३१ ।

२४ अश्वेय 'यही के हीन' पृ १३६ ।

२५ यही, पृ० ३४२ ।

२६ यही पृ १३ ।

२७ अश्वेय 'नदी के ईला' पृ २३६ ।

ऊपर से झाड़्य रुम बाकी तटस्थ बातचीत गजर घाने पर भी बहु वास्तव में निजीपन मिले होती है ।

पूझाव्य की अभिव्यक्ति

काफ़ी हाउस की घोर बहती हुई 'नदी के द्वीप' की रेखा अपने साथ बस रहे भुवन से कह रही है कि "काफ़ी हाउस का भी एक बस्का है । काफ़ी के बस्के से धायद ज्यादा मह्य नहीं है । और साथ ही यह भी पुष्ट होती है—“माप को कैसा लपटा है ?” भुवन सीमा उत्तर न देकर कहता है, “भन्त का विचार है कि जीवन से तटस्थ होकर तो निमट बटने के लिए ऐसी घण्टी बमह हुसरी नहीं—तटस्थ भी हों और देखते भी बसें यह यहाँ का लाम है ।” तभी रेखा थोड़ा हँस देती है—“पर माप तो ऐसा न मानते हों—माप तो मैं ही इतने तटस्थ जान पड़ते हैं कि दो निमट की तटस्थता का धायके लिए क्या आकर्षण होता ।”^{१८} ऊपर से बात साधारण हम से कहीं गई प्रतीत होती है, पर रेखा की तीखी दृष्टि^{१९} से उसका सहसा आगम समझ कर भुवन चौंक उठता है कि बात तो निजी स्तर पर हो रही है और उसे उसकी तटस्थता पर उदाहना विमा जा रहा है ।

‘नदी के द्वीप’ के पार्श्व की बबराहट भी कई बार आसानी से नहीं पकड़ी जा सकती । उसे पकड़ने के लिए उसके केहरे का सूक्ष्म अध्ययन ही पर्याप्त नहीं होता उसकी बातचीत के लहजे की भी अपेक्षा रहती है । काफ़ी हाउस में बैठा भुवन जब जीवन की नदी पर पुल बाँधने की बात सोच रहा था और रेखा कल्पना कर रही थी कि वह उसके प्रवाह में एक छोटा द्वीप है, प्रवाह से थिरा हुआ भी उसके कटा हुआ भी । उसी कल्पना में अपने को छोटा-छोटा भुवन सहसा रसमत्तकर बोन जठा—“रेखानी, माप क्यों काफ़ी हाउस घाटी हैं ?” उत्तर में रेखा ने “नहीं ? मैं”—एक ही दम्पर की दो प्रकार के स्वरों में धातुति करके चुप हो गयी ।^{२०} भुवन ने महसूस किया कि “बिना कुछ कहे भी रेखा कितना कुछ कह सकती है । मानो अचानक उठ लड़े हुए इस प्रश्न पर वह बबराह जड़ी हो और बात के बदलते स्तर के साथ संतुलन बिटाने के लिए समय चाह रही हो । और भी थोड़ी देर बाव बोली—“मैं तो—माप मानिए—काफ़ी पीने ही घाटी हूँ ।”^{२१}

कई बार सहज स्वाभाविक रूप से बिना किसी विशेष अभिप्राय से, कोई बात नहीं जाती है पर उसे कहते ही नहने जाने को महसूस होने लगता है कि वह किसी गूढ़ आशय को भी व्यक्त कर रही है तब उसकी मुल-मुला में जो परिवर्तन आ जाता

१८. अर्बेन, 'नदी के द्वीप' पृ० १७ ।

१९. वही, पृ० १७ ।

२०. वही, पृ० १८ ।

२१. अर्बेन 'नदी के द्वीप' पृ० १८ ।

है, उसे देखकर सुनने वाले का ध्यान पहले उस गूढ़तर आशय की ओर ही जाता है। शेखर ने शक्ति को धाकर दिन-भर की पेंटरी की कमाई शक्ति के हाथ पर रख दी। शक्ति ने शरारत से हँस कर कहा—‘बस कुछ इतनी ही ?’ तो शेखर ने हँसते हुए उत्तर दिया—‘और क्या सब—ओ कुछ वा सब तो दे दिया।’^{११} उसने वह बात सामारणतः कही थी क्योंकि उसे जितने रुपये दिन भर में मिले थे उसने वे सब शक्ति के हाथ पर रख दिये थे। पर उसकी बात बीच में ही रख गई और वह “एका-एक अपनी बात के गूढ़तर अभिप्राय से सन्निहित होकर चुप हो गया। उस चुप्पी से वह गूढ़तर आशय शक्ति पर भी व्यक्त हो गया उसका बहुरा मन्मीर हो आया, आगे बढ़ा हुआ हाथ नीचे सटक आया और वह धीरे-धीरे भीतर चली गई।”^{१२}

प्रेम-स्थापन

प्रेमियों के लिए सबसे कठिन काम प्रेम स्थापन का होता है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ या करती हूँ यह कहना कितना कठिन है और इसे सह्य करना कठिनतर है। इसलिए प्रेमी यह बात शब्दों की भाषा में न कह कर अनुमानों या संकेतों द्वारा ही व्यक्त कर पाते हैं। शेखर के लिए तो प्रेम स्थापन और भी कठिन हो जाता है क्योंकि जिस पर वह व्यक्त करना चाहता है वह रिश्ते में उसकी मौसेरी बहन है जिसके प्रति इस प्रकार का भाव प्रकाशन सामाजिक बन आया और फिर उसे यह भी डर था कि शक्ति उसे क्या समझेगी। उस रात आत्म-हत्या करने के प्रयत्न में असफल होकर जब वह बर लौट आया तब अपने कमरे में उसने शक्ति को पाया। फिर रात भर शक्ति उसके पास ही साट पर बैठी रही थी। शेखर उसके प्रति पिबल कर रह रहा था। एक बार हिम्मत करके उसने बीमे स्वर में कहा—‘शक्ति तुम क्या हो कुछ समझ में नहीं आता’ और जब शक्ति उसकी बात सुनने के लिए उस पर झुक गई और स्वर स्वर से बोली—‘क्यों शेखर ?’—[“कब से तुम्हें बहिन कहता आया हूँ पर बहिन जितनी पास होती है उतनी पास तुम नहीं हो इसलिए वह जितनी दूर होती है उतनी—दूर भी तुम नहीं हो”] यह कहते-कहते शेखर ने एका-एक शक्ति की दोनों आँखों को दोनों हाथों से अपनी आँखों पर ओर से दाब लिया मानो आँखें सुनने से कुछ धन्य हो जाएगा। फिर शक्ति की काँपती हुई आवाज—‘क्या अभिप्राय है तुम्हारा शेखर ?’—पर शेखर ने फिर दोनों हाथ उठाए, कनपटी के पास से शक्ति का सिर हल्के से पकड़ा और उसे अपने ऊपर झुका कर ता “अभिप्राय मैं नहीं जानता तुम्हें जानता हूँ और जानता हूँ कि जितने स्वप्न देखे हैं सब तुम में धाकर घुस जाते हैं।” शक्ति के झुकने में न समझौता

धी न प्रतिरोध वह मुझी थी, पर स्वयं निश्चय भी^{१५}। मानो वह इस व्यापार में तटस्थ रहना चाहती हो।

जब शोकर बाबा के साथ जंगल में पिस्तौल टेस्ट करने गया था और साँभ को डेर तक नहीं मीठा का और सचि ने दूर विस्तार करने की धमकाव सुनी थी वह द्वार पर उसकी प्रतीक्षा में खड़ी बसकर बैरला से जर घाई की और उस चक्का हट में ही उसे दिव्य-दृष्टि मिली थी—शोकर के प्रति अपने सम्बन्धों के बारे में। वहीं वह बैरल सर्वाँ खा गयी थी और समझ गई थी कि अब वह अधिक दिन नहीं जी सकती। वह शोकर पर अपनी इस अनुमति को प्रकट हो लेने देना चाहती थी पर व्यर्थों की भाषा में इसे कह सकना कठिन था। उस को सचि ने शोकर को बाट पर अपने पास बैठा लिया। शोकर पैताने बैठा तो उसने कहा—“वहीं वहीं नहीं पास आओ।” मंचबानित शोकर बाबे सरक आया। एक बिना एक छन्द और कहे ‘सचि ने अपनी ठोड़ी उठाई, उसकी छाँछें अचानिमीलित थीं और छोठ अचसुसे वह निरधन मुद्रा बोसती नहीं थी। सचि धर तो शोकर की कुछ नहीं समझ सका फिर एक बाड़ उसके भीतर समझ घाई और उसने सचि के स्निग्ध, स्वयं किन्तु बेकिम्बल घाठ चुन लिये—निर्द्वन्द्व बरख, बीरब बुम्बल’^{१६} और, इस प्रकार, सचि के मुँह निमग्नता की सम्मानित किया। मुँह से एक सी धब्ब कहे बिना मुँह-मुद्राओं की भाषा में ही उन दोनों का आवाज प्रदान होता रहा।

तुल्य त्वमात्मिक मुद्रा

दूसरों की उपस्थिति में ‘नदी के द्वीप’ के पार्श्वों की निश्चितता के अस्मिन् में जो आभास करना पड़ता है उसकी कसर ने एकान्त में अपने अलसी रूप में आराम करके निकाल लेते हैं। उस समय की उनकी मुद्रा से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपने भीतर किसनी व्यथा को छिपाए हुए हैं। कारनीर की कैंबाइयों पर भुवन के तम्बू के बाहर निकल कर रैला मानी चौपनी में अपनी व्यथा को धो बाँधना चाहती हो—“वह एक बटान पर बैठ गई—‘दूदा खोला बाल दोल बाले फिर फिर को एक बार फटक कर उन्हें कन्धों पर पैसा लिया। फिर चौप की और मुह उठा कर मोठों बग्न कर ली उसका साध छीर सिबिल हो आया’^{१७}।” भुवन ने एक बार पहले भी प्रथम मेट के समय रैला को इस मुद्रा में निश्चेष्टा देखा था—और तभी से वह उसके प्रति प्रेषित हो गया था^{१८}। इसी प्रकार चण्डनाथय बैठा व्यक्ति भी अपने में किसी निराशा छिपाए हुए होया इसका अनुमान उसकी

१५ अनेक ‘शोकर : एक खोजी’ दूसरा अंश, पृ० ११३।

१६ वही, दूसरा अंश, पृ० ११६।

१७ अनेक ‘नदी के द्वीप’ पृ० १६३।

१८ वही, पृ० ११।

इस कसूरा मुद्रा से सजाया जा सकता है। रेखा सचानक उसके घर गई तो देखा कि वह प्रवीणी में धाब धमाके उसके निकट मुका बैठा है, घुटनों पर कुहिनियाँ हथेलियों पर छोड़ी टेके निनिमेष दृष्टि से धाब को देख रहा है। उसकी मुड़ी हुई पीठ, क्षिप्रित पैर, सलाह पर सट के हुए बांस। १८

जब पात्रों की सीधी अभिव्यक्ति के मार्ग में उनकी सीधिकता धड़ खाती है और वे सामासपूर्वक अपने भीतरी भावों को उमड़ने से रोक लेना चाहते हैं तब प्रत्येक उनकी शारीरिक मुद्राओं अनुभावों आदि के चित्रण द्वारा उन्हें पाठक पर लोच बैठे हैं।

अन्तःकृष्ट

जीवन नाम संघर्ष का है। मनुष्य अपूर्ण पैदा हुआ है। जन्म से ही उसे दूसरों की अपेक्षा खूबी है और यह अपेक्षा उसके भीतर भाँति-भाँति की इच्छाओं को जन्म देती खूबी है। घर बाहरी घर से तो कोई चीज भिन्न नहीं जाती यदि ऐसे भिन्न सकती होती तो कबाचित् संसार में संघर्ष का नाम तक न रहता। इच्छा से इच्छा पूर्ति तक पहुँचने के लिए मनुष्य को अपने भीतर और बाहर, दोनों ओर, संघर्ष करना पड़ता है। अपने भीतर उसे मन की परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों से झुझना पड़ता है और बाहर सामाजिक शक्तियों से। समाज यदि अपने सभी सदस्यों को उनकी इच्छानुसार चलने दे तो उसकी व्यवस्था कितने दिन चले? इसलिए समाज अपने सदस्यों को जो सुरक्षा प्रदान करता है, उसके बदले में उससे भी माँगा रहता है कि वे समाज के विधि-नियमों का पालन करते हुए व्यवस्था को बनाए रखने में सहायक हों।

बाह्य संघर्षों से पलायन

प्रत्येक के उपन्यास व्यक्ति चरित्र के उपन्यास हैं और उनके सभी प्रमुख पात्र व्यक्तिवादी हैं—समाज-व्यवस्था के प्रति उदासीन उनका यह इतना गुण है कि वे कभी नहीं यह सकते कि उनकी इच्छा-पूर्ति के मार्ग में कोई भेड़ें। जो उनके मार्ग में पड़ता है उसे वे अपना परम शत्रु समझते हैं—चाहे वह कोई भी हो। अपने बाहर—घर में स्कूल में कालेज में समाज में—वे सब एक ही रस पाते हैं जब तक उनके धर्म की पुष्टि होती रहती है। जब और वहाँ उनके धर्म पर थोटा पड़ती है या थोटा पड़ने की सम्भावना होती है वे अपने हानि-नाश की चिन्ता छोड़ छिपित कर उस स्थिति से घसल हो जाते हैं और इस प्रकार अपने धर्म की साधारण से भिन्न—असाधारण घोषित करके अपने धर्म की पुष्टि कर बैठते हैं। जीवन के प्रति उनका एक

इन्टिक्वेल बन जाता है जो उन्हें बाह्य संघर्ष से भाग कर घातपूर्ण होने के लिए प्रेरित करता रहता है” ।

पलायनवादी होकर—‘गेखर एक बीवनी’ के नाटक गेखर का जीवन के प्रति एक ऐसा इन्टिक्वेल बन गया है कि वह किसी स्मिति के भीतर रहेगा तो उसका स्वामी बन कर, नहीं तो विभित कर आत्म-स्थित हो जाएगा। उसे कोई ऐसा उतना नहीं चाहिए जिसकी ओर वह देखे उसे वह चाहिए जो उसकी ओर देखे ।^{४०} माई पर चोट पड़ते ही वह बाह्य परिवर्तन की लिए वहाँ से भाग गया। जब-जब उसका दर्प कुछछा गया वह घर के कुचल देने वाले बाठावरण^{४१} से निकल भागने के लिए व्याकुल हो उठा। कई बार तो भाग भी गया।^{४२} अपमान की सम्भावना देख लू कॉम्बेट स्कूच से जाता।^{४३} दूसरे स्कूच में सारी समाज से कावमीरी बाजार गीत यवाने के अपराध में उससे आनिटरी छीन कर एक घुसलमान नड़के की है ही नहीं उसकी तो उसे बरबाद नहीं भी बर सारी समाज के सामने उसे जो ‘मुर्दा बनवा पड़ा था वह अपमान उसके लिए घसड़ा था और वह मास्टर के पैट में सात बार, उसे ‘दम्भ’ कहकर तीर की तरह समाज से बाहर हो गया। इससे उसकी पड़ाई बन्द हो गई, इसकी उसे भिन्ना नहीं पर स्कूच से वह हार कर नहीं जीत कर निकला इसका उसे संतोष है।^{४४} वह इतना घोर चर्चवादी बनता गया कि जब उसने अपनी माँ को अपने पिता से यह कहते सुना कि ‘तब तुमो तो मुझे इसका (गेखर का) भी विरवात नहीं तो वह स्त्री-हत्या (माँ की हत्या) से भेकर आत्म हत्या तक सभी प्रकार के साधनों पर विचार कर चुकता है’^{४५} और फिर घर से भाग गया है। समाज कामेय के हाइसल होन्टल में अपनी बात पसली न देख वह धमुरी के होस्टल में

^{४०} Alfred Adler 'Der Sinn des Lebens' Vienna, Leipzig: Rolf Passer (Social Interest: a Challenge to Mankind), p. 112:

"The neurotic from childhood on, is trained in his law of movement to retreat from tasks that he fears might, through his failings in them, injure his vanity and interfere with his striving for personal superiority for being the first, a striving that is all too strongly disoriented from social interest. Further more, his life motto 'all or nothing' usually only slightly modified, the awareness of a person continually threatened with defeat, the internalised affects of one who lives as though he were in a hostile country his impatience and his greed evoke more frequent and stronger conflicts than would be necessary."

^{४१} माई, 'रीफ्ट वन बीवनी' पन्ना ५५, पृ० १५५।

^{४२} माई, पृ० १८०।

^{४३} माई, पृ० ११ १८० १८६।

^{४४} माई, पृ० १४।

^{४५} माई, पृ० ६९।

^{४६} माई, पृ० १५९।

जसा चाया था।^{१००} सारदा के हाथों मद्रास में किसी पराजय से भ्रम कर अपने घर से भाग कर वह लाहौर आ गया।^{१०१} लाहौर में जेल जाने से पहले कांग्रेस में और कांग्रेस के छिदिर में उसके धर्म की खूब पुष्टि होती रही और वह भी वहाँ जान लगा कर काम करता रहा।

काँग्रेस-छिदिर में वह दूसरों को अनुशासन में रखता है इसका उसे मर्म है पर स्वयं किसी का अनुशासन नहीं मानता इसका उसे जोड़ा भी जेल नहीं। अपने मातृहृत्ओं के अनुशासन ग्रह करने पर उनकी बर्षियाँ सतरवा कर उन्हें छिदिर से निकसवा देता है, पर स्वयं अपने अधिकारियों के सामने झुक जाता है—‘मैं अपने फँसने की वजह नहीं मानता भ्रातृ उसे रद्द करें वह आपकी मर्जी है’ आप जैसा गुजार करना चाहते हो कीजिए। मुझे सबसे कोई छोड़कर नहीं होता। मुझे हवाजत है।^{१०२} दूसरों का अनुशासन मानने से तो उसके धर्म की चोट पहुँचती है। जेल से बाँटकर उसे संघर्ष का सामना करना पड़ा। वह लेखक बना तो प्रकाशकों से उसका पाला पड़ा और उनसे हार खाकर ‘आत्म हत्या का उपाय खोजता’ घर से बाहर निकल पड़ा।^{१०३} यदि एक स्त्री उसकी बाँह पकड़ कर उसे सड़क से एक तरफ न खींच लेती तो वह कार के नीचे धाकर मर गया होता।^{१०४} सचि को लेकर जब उसके समाज से लड़ने की नीयत आई तो वह फिर भावने की सोचने लगा। रद्द रद्द कर उसे विचार आता कि स्वनातिवद करना ही है तो क्यों न इसी दूर जाए कि घास-घास के गुँधरों में। मार्गों की खींच वहाँ तक न पहुँचे।^{१०५} उसने धारम की छाँस ली जब क्रान्तिकारी बल ने उसे अड़ाई सौ रुपये देकर लाहौर से कहीं दूर जाने का मुख्य दिया और वह वहाँ से बिस्ती भाग आया। इस प्रकार, दोहर का जीवन बाह्य संघर्ष से पलायन का जीवन रहा।

मुबन की पलायनवादी—‘जरी के द्वीप’ के नामक मुबन का जीवन-दर्शन भी संघर्ष से पलायन का जीवन दर्शन है। जैसे तो लेखक ही उसे समाज की धाँसों से बचाए रखता है, पर प्रकृत्या भी वह एकांत प्रिय है। समाज से टक्कर लेने की बात तो दूर, सामाजिक-संघर्ष का संकेत पाकर ही वह ऐसा भागता है कि पीछे मुड़कर नहीं देखता। देखा को लेकर वह कई दिन उसके साथ बिस्ती घूमता रहा और वहाँ से नैनीताल तक भी आ गया, पर उन दो के प्रतिरिक्त किसी तीसरे के प्रतिरिक्त का ध्यान उसे नहीं रहा। समाज तो मानो उसके लिए हो ही नहीं। पर जब नैनीताल

१०० पृष्ठ ४, ‘रोज़ : एक बीबी’, प्रकाश भवन पृ० ११६।

१०१ पृष्ठ १११, ‘दूसरा भाग’ पृ० १।

१०२ पृष्ठ १११, ‘दूसरा भाग’ पृ० ११६।

१०३ पृष्ठ १११, ‘दूसरा भाग’ पृ० ११६।

१०४ पृष्ठ १११, ‘दूसरा भाग’ पृ० ११६।

१०५ पृष्ठ १११, ‘दूसरा भाग’ पृ० ११६।

में होटल के मैनेजर ने रजिस्टर की घोर हाथ बढ़ाते हुए उससे पूछा कि वह किस नाम से दो कमरे किराए पर लेना चाहता है, वह ठिठक गया। होटल रजिस्टर और मैनेजर के ब्रह्म के रूप में 'सम्पत्ता की सब समस्याएँ उसकी गहर के बाये कोन लगी' ५३ और वह वहीं से रेखा को लेकर ऐसा भासा कि गौकुक्षिमा लाभ की निर्जन ऊँचाइयों में बाँकर ही उसने लीख ली। इसी प्रकार भुवन और रेखा के पारस्परिक प्रियता से जो 'सर्जन-बार्मानिस्ट' बन रहा था उसके बारे में वह विचलित हो उठता है और सामाजिक संघर्ष को सामने देख रेखा से विवाह का प्रस्ताव करता है पर रेखा उसकी विन्या को ठीक समझ लेती है और उस 'सर्जन-बार्मानिस्ट' को पकने ही नहीं देती और इस प्रकार भुवन को, और अपने को भी भारी संघर्ष से बचा लेती है। अपनी सृष्टि के बाद रेखा तो भुवन को बोट के लिए मुक्त छोड़कर जाती गई, पर भुवन का पलायन बन्धन हुआ। बोट के सम्मुख वह अपने भाव को प्रपञ्ची पाठा रहा और उससे बात कर पहले बाबा में भटकता रहा और बाद में सेना में भरती होकर अपनी इच्छा से बर्बाद बना गया। बोट के सम्मुख स्वयं भी वह अपनी इस कमजोरी को स्वीकार कर लेता है, "बोट में भाष गया था—तुम से आगा था—पर तुम से भागने के लिए ही नहीं—एक बोझ घुमे रहा लिए था रहा था।" ५४

संघर्ष : पात्रों के चरित्र में

भरोच के पात्रों का जीवन-दर्शन उन्हें बाह्य संघर्ष से बचाए रखता है और वे धीरों से कट कर अपने को प्रसाधारण—दुष्टों से अपेक्षित—समझ कर अपने दाई को मुष्ट भी कर लेते हैं तो फिर इनको बेचैनी क्यों? माना कि समाज सदा उनके प्रति भ्रमामय करता रहा, उसके विधि विधेय उनके मार्ग में धड़के रहे और पुष्टा के संसार में वे पप-नप पर कुचले गए। पर जब वे जानते हैं कि समाज उन्हें अपने साथि में डाल कर टाड़न बनाता चाहता है उन्हें समाज के नृस्य माग्य नहीं वे उस साथि में न डल कर सेप सबसे प्रसन्न व्यक्ति ही बने रहना चाहते हैं ५५—व्यक्ति के घंत तक बने भी रहते हैं—तो फिर इनकी व्याथा कैसी? सब तो यह है कि भरोच के नाम अपने बेतन में समाज के प्रचलित मूल्यों को टुकटा कर उसके विधि विधेयों की प्रवर्तना करके अपने दाई का मुष्ट करके अपने बेतन में भरो ही मुष्ट हो लेते हैं। इनके बीतर निरंतर एक उल्लस-भुवन मची रहती है जो उन्हें अभ्यवर्तित किए रखती है और स्थिति से इनका मत नहीं बैठने देती।

इसीलिए रोचर की एक 'घंट-कथा' है जिसे वह कह डालना चाहता है, एक

५३ भरोच 'मरी के हीर' १० १३१।

५४ भरोच, 'मरी के हीर' १० १५०।

५५ भरोच 'रोचर एक जीवन' प्रथम भाग, ३ १६।

अत्यवेदना है जिसे वह बहा देना चाहता है। एक संत-कथा है जिसमें वह मुटा देना चाहता है।^{१४} उसे लगता है कि उसके मन के दोनों छच्छ और युद्ध कर रहे हैं उसकी बेचारी पर राजत्व पाने के लिए लड़ रहे हैं कभी किसी का प्रभाव बड़ जाता है कभी किसी का और इसके फलस्वरूप उसके कार्यों में एक प्रतिबिम्बा, एक अव्यवस्था या कमी है।^{१५} यही हास्य पात्र की है रोखर उसके चेहरे पर पड़ता है कि वह बोर बातें बोल रही है।^{१६} 'यरी के द्वीप' के नायक पुष्पन के पीछर भी एक पुष्पन है, यद्यपि वह उसे नहीं समझ पाया पर वह उसके कार्यों और विचारों को निरिच्छा करती है।^{१७} रेखा के पास भी कितनी बड़ी 'टंकी बग्गे पानी की' जमा है।^{१८} ये पाहूबाबी पात्र यदि समाज के प्रचलित मूल्यों की अवहेलना कर सकते हैं तो चेतन स्तर पर ही। उनके अचेतन में उनकी यौन प्रवृत्ति तथा विवेक बुद्धि, में जो समाज के विधि-नियमों की ही भावना है निरंतर एक संघर्ष चलता रहता है जो उनके साथ विचार और व्यवहार को प्रभावित करके स्थिति से उनका संतुलन नहीं बैठने देता।

यौन-प्रवृत्ति पर विवेक-बुद्धि की विजय

रोखर के अचेतन में सारगम से ही उसको यौन प्रवृत्ति और विवेक बुद्धि में और संघर्ष चलता रहा जो उसे निरंतर अव्यवस्थित किए रखता है। रोखर की मनोवैज्ञानिक समस्या यह है कि उसकी संस्कार भावना पर क्या ही उसकी विवेक-बुद्धि का बड़ा प्रभुत्व रहा है जिसके फलस्वरूप जीवन के महान लक्ष्यों में वेन को या किसी भी गहरे नाव-निमोड़न के क्षण में वह सहसा पाता है कि उसमें पूर्णता नहीं है, लग्नमयता बुराईय संवृति नहीं है है एक अशुभ प्रसंगत तटस्थता। संस्कार और विवेक उसके जीवन की एक पाठ बन गये हैं।^{१९}

रोखर-सरस्वती-चारवा-उसे सबसे पहला प्यार मिला अपनी सदी बहुत सरस्वती का जो एक दिन उसके मन में एकाएक 'सरस्वती' से 'बहिन' और 'बहिन' से 'सख' हो गई।^{२०} तब से रोखर के संसार में वह या और सरस्वती की और कहीं कोई नहीं था।^{२१} उसे लगता था कि जिस प्रकार 'जो बाँधिय है मिय है और समझी और

१४. कठेव, रोखर : एक बीमारी' पहला भाग, पृ० ३८।

१५. वरी, पृ ३१।

१६. वरी, दूसरा भाग पृ० १३७।

१७. कठेव, 'यरी के द्वीप' पृ० ३५२।

१८. वरी, पृ० १३३।

१९. कठेव, रोखर : एक बीमारी' दूसरा भाग, पृ ५५५।

२०. वरी, पहला भाग पृ १।

२१. कठेव 'रोखर' एक बीमारी' पहला भाग, पृ १५७।

सहानुभूति करने वाला है उसका पुत्रीपूत रूप सरस्वती है।^{१४} वह मोक्षने लगता कि सरस्वती उससे बड़ी न होकर एक मात्र वर्ष छोटी होती—इतनी कि कहने को वह बड़ा होता।^{१५} विवाह के बाद सरस्वती का उसे छोड़ कर किसी धीरे के साथ भते भाग देखने के लिए बसता था। उसने सरस्वती को एक दिन कहा भी था—
'तुम यहीं क्यों नहीं किसी से बांधी कर लेती।'^{१६} विदा का समय उसने मुह फेर चुकते गये से निकाला था—'सरस्वती'। लेकिन वहन के लिए 'धर्म' को अपने अंतरात्म कह कर भी वह जीव चलाता था। सरस्वती जन्मी नहीं। देखने के लिए अर्थात् चित्तवा प्रकृत होने लगी उसे अपने लया कि वह कुछ चाहता है लेकिन क्या चाहता है, वह वह नहीं समझ पाता। अपने धीरे की भी वह नहीं समझता लेकिन उसे लगता वह कुछ अनुचित है कुछ निषिद्ध, कुछ अपमय।^{१७} यह धारणा उसकी दिव्य-बुद्धि की—उस पर पड़े सामाजिक संस्कारों की—ही को धारणा की, जो वहन के प्रति उसके प्यार को सामाजिक रूप नहीं देने देती थी।

धामे बसकर सरस्वती के प्रति उसका प्यार धारणा की ओर प्रवृत्त हो जाता है। धारणा से वह कुछ पुन-विन जाता है पर अंतःकरण बच पर न जाने का उन दोनों का मुक्त सम्झौता रहता है।^{१८} धारणा के साथ बिताए हुए महान क्षणों में भी उसके धीरे की वृत्ति नहीं हुई, उसमें संशय हो रही चर्चबला बिखरी नहीं।^{१९} धर्म में उनके संस्कार उन दोनों के बीच में बड़ बड़ धीरे धारणा ने यह कहते हुए प्रेम कहानी समाप्त कर दी—'जिन बातों का न हुआ होता ही अधिक उचित है उन्हें बाद करने में कुछ लाम है ऐसा मैं नहीं समझती।'^{२०}

सिद्ध-सति—धर उसके जीवन में आई सति। सति देखने की मोहोरी वहन है, यही धर की सबसे बड़ी समस्या है। यों-यों के निकट से निकटवर होते पर धर को अपने लया कि वह जितने स्वयं देखता है, देख सति में धारणा पुन जाता है। उसकी समझ में नहीं जाता कि सति क्या है। वह उसे वहन कहता था, पर वहन जितनी पास होती है जितनी पास सति नहीं। इसलिए वहन जितनी दूर हटती है—जितनी दूर भी वह नहीं।^{२१} पर सति के धारणाधारी प्यार में वह सम्पूर्णता 'निर्द्वन्द्व धामस्तक' दूब नहीं सकता, क्योंकि न वह पनु है धीरे न ही धरनाधारी।

१४ पञ्चम, रोमर 'एक जीवनी' पहला भाग, पृ० १४७।

१५ वही, पृ० १४८।

१६ वही, पृ० १४०।

१७ पञ्चम, रोमर 'एक जीवनी' पहला भाग, पृ० १४५।

१८ वही, पृ० १४२।

१९ वही, पृ० १४१।

२० वही, पृ० १४०।

२१ वही, दूसरा भाग, पृ० १४५-४६।

बहु शिक्षित सम्म घोर ससक्त है।^१ २—सचि से 'बहु कुछ माय नहीं सकता' क्योंकि दोनों की धमनी एक है—बाहे बाप की एकता से एक बाहू बरदान की।^३ ३ सचि की कठिनाई बोहरी है। एक तो शेखर उसका मौसेरा भाई है और दूसरे वह किसी और की विवाहिता है। अपनी स्थिति स्पष्ट करती हूँ वह शेखर से कहती है—“मैं विवाहिता हूँ। अपना बाप मैंने स्वीकृति से लिया है अपने का इहका संकल्प कर दिया है—प्राप्ति के ही है। जो मे लिया है मेरा नहीं है उसकी ओर से मैं कुछ नहीं कह सकती न कुछ स्वीकार ही कर सकती हूँ न प्रतिपाद कर सकती हूँ और—न कुछ दे सकती हूँ। पर तुम में मेरा वह जीवन है जो मैं हूँ जो मेरा मैं है। और वह मूर्त नहीं है, इसलिए कम सब नहीं है कम बीता नहीं है। शेखर तुम मुझे बहिन माँ भाई, बेटा कुछ भव समझो, क्योंकि मैं—मर चुका नहीं हूँ। एक ज़ामा हूँ।

और प्रमूर्त होकर मैं—'सुम्हारा अपना बाप हूँ जिसे तुम नाम नहीं दोगे।^४ ४ पर उस रोज जब शेखर बाबा के साथ विस्तीर टैस्ट करने गया था और डॉक्टर को बेर तक नहीं मीठा था और वह उसकी प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी यह घोष कर पकरा उठी थी कि जब शेखर को पुन नहीं देखा सकेगी, बरगहट में उसे विष्य दृष्टि मिली थी। उसने बहुत कुछ देखा जो पहले नहीं देखा था। इतना स्पष्ट नहीं।^५ ५ इस विष्य दृष्टि ने ही शायद सचि को अपनी विवेक-बुद्धि से ऊपर उठाकर 'इन्सैस्ट बैरियर' को तोड़ने में समर्थ बना दिया हो। इस अनुभूति के बाद सचि यदि कुछ बेर भीवित रहती तो शायद शेखर के प्रति उसका प्यार असामानिक रूप धारणकर लेता। पर लेखक ने यह स्थिति बचा ली।

'इन्सैस्ट प्रेम की भावना है शेखर और सचि की वासना तो दमित होकर उनके ध्येयतन में बसी जाती है और उनके चेतन में उनकी संयोग ही रह जाता है। इस प्रकार, उनके सम्बन्धों की पवित्रता तो बनी रहती है, पर उनकी दमित वासना उनके ध्येयतन में उनकी 'कान्सेन्स' से उग्राए रहकर उन्हें बेचैन किए रहती है।^६ ६

१ २ अर्द्ध, 'रोज़ : एक बीजनी', दूसरा भाग, पृष्ठ २२२-२३।

३ ३ वही पृष्ठ २२०।

४ ४ अर्द्ध, 'रोज़ : एक बीजनी', दूसरा भाग पृष्ठ २३३।

५ ५ वही, पृष्ठ २३३।

६ ६ Dalbley, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' Vol. I para. T F Lindzey 1961 p 134

An incestuous love strikes repression, the emotional and the sexual components are separated, and the only emotional component persists in consciousness, owing to its apparent desexualization. The original love is transferred to a new feminine object which resembles the former but the link between sexual emotion and genital sexuality is not re-established."

भुवन रेखा

'नदी के द्वीप' के भुवन धीरे रेखा के भी सम्बन्ध में उनकी यौन प्रकृति धीरे 'कान्स्टैन्स' में एक भीषण संघाम बिड़ा रहता है। अन्तर केवल इतना है कि 'धीरे' एक बीवनी के प्रधान पार्श्व के सम्बन्ध में पहले 'कान्स्टैन्स' की यौन प्रकृति पर विजय होती रहती है धीरे बाद में यौन-प्रकृति की जीत स्थगित होती है, पर 'नदी के द्वीप' में पहले यौन-प्रकृति जीतती रहती है धीरे बाद में 'कान्स्टैन्स'। मौकूझिया तास के एकल प्रवेश में भुवन के भीतर यह संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। रेखा के समर्पण की वह स्वीकार नहीं कर पाता। पर क्या वह रेखा को चाहता है ? प्यार करता है ? नकारात्मक अन्तर उसमें भीतर से नहीं आता। लेकिन क्यों नहीं सहज स्वीकारी उत्तर आता, क्यों यह स्थगता है। भुवन की ऐसा लगता है कि उसके भीतर धीरे नहरे किसी एक स्तर पर एक संघर्ष है पर किस्म स्तर पर, वह वह नहीं ध्यान पाता धीरे उसे कुरेद कर ऊपर भी नहीं ला पाता। यही उसकी 'कान्स्टैन्स' की विजय होती है धीरे समर्पण होता-होता बीच में रुक जाता है।

पर कान्स्टैन्स की झेपाइशों पर उसकी यौन प्रकृति जोर धार कर विजय पा गई। रेखा का हेमन्ट जयी धाप छूट गया उसने भुवन की पुष्प करके बाग सिपा धीरे वह 'कुमफ्लिन्स' हो गई। पर इसके कमलरूप जिस 'उच्चन बावतिनिस्ट' का सुनपाठ हुआ था—वह इन दोनों को बासना के बाबुवान जीवन की सभार्थ भूमि पर ला पटकता है। 'उच्चन बावतिनिस्ट' के हित चिन्तन में भुवन का रेखा, से विवाह प्रस्ताव धीरे बाद में उसका रेखा को आस्वाद्यन देना—“रेखा को हुआ है, मुझे उसका दुःख नहीं है।—वह जो माएया—माएया या माएयी, वह तो मुझाबप है—वह मेरा है मेरा बर्षित है—उससे मैं लजाऊँगा नहीं वह तुम मुझे खोवी। भूलना मत तुम्हें धीरे तुम्हापी देन को मैं बरदान करके लेता हूँ।” “उसकी 'कान्स्टैन्स' उसके सामाजिक संस्कारों की ही विजय की चोकर है। रेखा उसके विवाह प्रस्ताव पर कहती तो यही है कि “भुवन, तुम समाज की दृष्टि हैं। देखते हो, वह दृष्टि बल्ल नहीं है, पर निर्यामिक भी नहीं है। व्यक्ति को क्या कर इस आमत का जो निर्याम होना—गसत होना मूख होना घसल होना।” पर स्वयं ही वह व्यक्ति को क्या कर, अपनी धीरे भुवन की इच्छा के विरुद्ध आकर सामाजिक दृष्टि को अपनावी हुई—भुवन का हित सोचते हुए ही रही—उस 'उच्चन बावतिनिस्ट' को समाप्त कर देती है। इस प्रकार, उसके सम्बन्ध पर नहरे जमे सामाजिक संस्कारों की, उसकी कान्स्टैन्स की जीत होती है।

'उच्चन बावतिनिस्ट' समाप्त होता-होता भी भुवन के सम्बन्ध में एक मोठ डाल पाता है। उसे ऐसा लगता है कि उसने ही उसके प्रति अत्यधिक बिठा प्रवृत्त करके रेखा को उसे समाप्त करने के लिए प्रेरित किया है। उसे ध्यान में बेहरे दीखने

रागते हैं—मृत चेहरे बच्चों के चेहरे ।^१ * बीरा के सम्मुख अपना अपना स्वीकार करते समय उसकी माणी में, उसके ध्येय में व्याप्त बीर व्याघ्र, उमड़ घाई घी-जस समय बीरा के रींगटे काड़े हो पडे थे उठे ऐसा लगा था कि 'वह आवाज मानों आवाजराज में गटकती हुई कोई प्रेतव्याघ्र वहाँ पुभीमृत होकर स्वरित हो रही हो ।'^२ इस स्वीकारोक्ति के बाद भुवन को ऐसा लगा कि जो बीर उस पर था—'सागर का बूझा जो उसके कंधों पर सवार था, 'वह उतर गया'^३ और उसके बाद वह निश्चित रूप से गीरा की ओर प्रवृत्त हो गया ।

इस प्रकार देखते हैं अद्येय के पात्रों में बाह्य संघर्ष न रही उनके ध्येय में उनकी मौन प्रवृत्ति तथा विवेक-बुद्धि में इतना नीगरण संग्राम मचा रहता है कि वे अपने कस्तूरी मृग की तरह जीवन भर मटकते फिरते हैं । उनके घटत ध्येय में सक्रिय संघर्ष को पकड़ने के लिए तथा उनकी व्याघ्र का उखाड़ने के लिए लेखक मनी विस्लेषण का सहारा लेता है ।

मनीविस्लेषण

'रोखर एक बीवनी' और 'नदी के द्वीप' हैं दो दोनों व्यक्ति-चरित्र के उपन्यास, पर चरित्र-सम्बन्धी समस्या दोनों की असम असम है । 'रोखर एक बीवनी' का मुख्य है विकाशोन्मुख चरित्र के कमिक-विकास का चित्रण, पर 'नदी के द्वीप' की समस्या चरित्र का कमिक-विकास नहीं, विरसित चरित्र का उखाड़न है । इसीलिए दोनों की चरित्रचित्रण की टेकनिक में भी बहुत अन्तर पा गया है ।

'रोखर एक बीवनी' की टेकनिक

'रोखर एक बीवनी' जनीमृत देवता की एक रात में देसे हुए बिजान' को ध्वस्त बन्द करने का प्रयत्न है । फ्रांसी की कोठरी में बैठा और कामिकारी रोखर यह जानने के लिए प्रवीर हो उठा है कि वह जो कुछ है, जैसा है, वैसा वह क्यों और कैसे हुआ । जीवन-मात्रा के प्रतिम पड़ाव पर पहुँच कर वह प्रत्यक्षोक्त करने बैठता है और एक-एक करके जीवन की बटनाएँ उसके स्मृतिपट पर उमरने लग जाती हैं । पहले तो वह 'बम्बैविटम्नी' अपने जीवन को कुबारा जीने लग जाता है, पर ज्यों-ज्यों उसकी स्मृतियों में एक कम जाने लगता है वह तटस्थ दृष्टा के रूप में 'बम्बैविटम्नी' स्थिति का निर्मम विश्लेषण करने लगता है । इस प्रकार सहस्मृतियों के आधार पर आत्म-विश्लेषण द्वारा चरित्र का कमिक-विकास दिखाता 'रोखर एक बीवनी' की मुख्य टेकनिक बन गई है ।

^१ १०८ पंक्ति, 'नदी के द्वीप', पृष्ठ १५२ ।

^२ ३ पंक्ति, पृष्ठ १८२ ।

^३ ११ पंक्ति, पृष्ठ १८२ ।

घटीत की स्मृतियों के विश्लेषण द्वारा चरित्रनिर्माण

'मेजर एक जीवनी' में मेजर के वर्तमान की व्याख्या उसके घटीत के विश्लेषण द्वारा की गई है।^{१११} और यह विश्लेषण उसके वास्तविक जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं की श्रृंखला से आरम्भ होता है। फ्रायडवादी मनोविश्लेषकों का विश्वास है कि अनुकूलित विवेक के बिना सम्भव अनुकूल के प्रौढ़ जीवन की घटनाओं की श्रृंखलाओं और संसाधनश्रृंखलाओं से होता है। उनका मूल उसके वास्तविक जीवन के समय और दुःख अनुकूलित में होता है जो सुझाव देता है कि उसके चरित्र में इन संघर्ष रचनाएँ हैं और उसके भाषा, विचार और व्यवहार को प्रभावित करके स्थिति से उसका मेल नहीं ईच्छे देती।^{११२} एकर का तो यहाँ एक कहना है कि चार पाँच वर्ष की अवस्था में बच्चे का जीवन के प्रति एक बार जो दृष्टिकोण बन जाता है, वह आसानी से नहीं बदलता और अनुकूल की वर्तमान और घटीत दोनों की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों का मूल वास्तविकता में अपनाये जीवन के प्रति मूल दृष्टिकोण से उत्पन्न संघर्षों में होता है।^{११३} इसलिए वास्तविक जीवन की घटनाओं और उनके प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को छोड़ने के लिए उस काम के सम्बन्ध में उसकी स्मृतियों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।^{११४}

प्रत्यक्षजीवन-अन्वेषी

वास्तविक जीवन की स्मृतियाँ—अनुकूल के चरित्र को समझने के सफल साधनों में है उसकी स्मृतियों का विश्लेषण। ये स्मृतियाँ आकस्मिक रूप से प्रकट नहीं

१११ Dalziel, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. 41

११२ Freud, 'New Introductory Lectures on Psycho-analysis', W W Norton & Company New York, 1923, p. 291 :

"The first years of infancy (up to about the age of five) are for a number of reasons, of special importance, because the impressions of this period come up against an unformed and weak ego, upon which they act like traumas. The ego cannot defend itself against the emotional storms which they call forth, except by repression, and in this way it acquires in childhood all its predispositions to subsequent illnesses and disturbances of functions."

११३ Ansbacher 'The Individual Psychology of Adler' p. 237 :

"Both the present and the past difficulties have their common origin in the early established neurotic disposition, which is based on an early mistake in judgement."

११४ Adler 'The Science of Living' Greenberg Publisher Inc., New York, 1929, p. 118 :

"...the style of life of a person does not really change. In the style of life formed at the age of four or five, we find the reaction between the remembrance of the past and actions of the present."

हो जाया करती^{११२} उनका पीछे इच्छासक्ति की प्रेरणा रहती है।^{११३} जो स्मृतियाँ ध्वान्तक समर घाई प्रतीत होती हैं वे भी किसी समय की हमारी इच्छा के परिणामस्वरूप ही बाव में प्रकट हुई होती हैं। वास्तव में स्मृतियों की तीव्रता और स्पष्टता उन्हें प्रेरित करने वाली इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है।^{११४}

विज्ञान" इसलिए, वास्तविकता की जो स्मृतियाँ दोहरा बनीमूठ बेदना की उस रात में देख सका वे उससे पहले नहीं देखी जा सकती थीं। जीवन के अन्तिम पड़ाव पर पहुँच कर उसके दबाव-प्रत्यास से यह आभास निकलने लगी कि उसकी मृत्यु की क्या सिद्धि होगी। उसके सामने यह प्रश्न था कि उसके जीवन की क्या सिद्धि थी। बनीमूठ बेदना में उठे इस प्रश्न के साथ ही उसमें बसवती इच्छा उत्पन्न हुई अपने उस जीवन के प्रत्यक्षलोकन की। प्रत्यक्षलोकन की उस प्रबल इच्छा-सक्ति से प्रेरित होकर उसके जीवन की घटनाएँ एक-एक करके उसके स्मृति-पद पर उतरने लगी।

अपने स्मृतियों के आधार पर कार्य-कारण के सूत्रों की खोज

वास्तविकता की घटनाओं की बाँध दोहरा का साम्य नहीं। उसका साम्य तो है इस बाँध द्वारा जीवन में कार्य-कारण के सूत्रों की खोज कर यह जानना कि उसके जीवन की सिद्धि क्या थी। पर जिन घटनाओं को वह अपनी खोज का आधार बनाता है उन सबकी पूरी-पूरी याद भी तो उसे नहीं। किसी घटना की उसे पूरी स्मृति है तो यह याद नहीं कर पाता कि उस समय उसकी मनोस्थिति क्या थी, उस घटना के प्रति उसके भाव क्या थे। और कई बार उसकी स्मृति में किसी घटना के प्रति उसके भाव ही आ पाते हैं और मूल घटना मरसक भेष्टा करने पर भी उसकी स्मृति में हू-बहू नहीं आ पाती। कई बार तो उसे ऐसा सम्झ भी होने लगता है

११२ Adler "What Life Should Mean to You" Little Brown Company Boston, 1931 p. 73 :

"There are no chance memories ; out of the incalculable number of impressions which meet an individual, he chooses to remember only those which he feels, however dimly to have a bearing on his situation."

११३ McDougall, 'An Outline of Psychology' Methuen & Co., London, 1943, p. 310 :

"The strength of our attention our interest during any experience, is main condition of our remembering."

११४ McDougall, 'An Outline of Psychology' p. 310 :

"We remember and recollect effectively in proportion as we have strong motives for doing so"

Ibid., p. 311 :

"Our desire or purpose to recollect is the determining factor of our subsequent recollections."

कि 'जो बटमारें उसकी स्मृति में पूरी की पूरी या गई हैं उनका मूल रूप नहीं रहा होमा या कि उसकी मन-स्थिति द्वारा विकृत होकर आई है, या कहीं यह बात तो नहीं कि वे कौरी कल्पित हों। अंतिम दिनों में अपने जीवन का धर्म अभिप्राय उसकी निष्पत्ति और सिद्धि कोमत्ता हुआ वह अपने उद्योग की सफलता के मोह में पड़कर केवल धन की निर्मलता से विपकर सुख की भावस्थि में पड़ गया हो।^{११८} और यह स्मृति बटना के साथ से दूर या लड़ी हो।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रोकर की स्मृतियों में उसके जीवन की मूल बटनाओं का सत्य निहित नहीं है भी तो वृत्त नहीं बनूँ है। रोकर स्वयं इस तथ्य की स्वीकार करता है। उन्हें "स्मृतियाँ कहना 'स्मृति' के धर्म को कुछ खींचना ही है। क्योंकि वे सब मुझे ठीक इस रूप में याद नहीं हैं जबकि उनके तथ्य याद ही नहीं हैं—मुझे याद आते हैं केवल वे भाव जो मैंने अनुभव किये हैं वह विशेष मन स्थिति जिसे लेकर मैं किसी रूप में कभी भागी हुआ था। और ये जो बिच में खींचता हूँ वे जन्हीं मन-स्थितियों को लेकर उन पर निर्मित हुए साबापट याद हैं। यदि वे स्मृतियाँ हैं तो मन की स्वतन्त्र स्मृतियाँ हैं वही स्मृतियाँ नहीं जिनकी मूल घाप बिठाने के लिए घातें साबन हुआ करती हैं।"^{११९} तो क्या अपनी हूटी-कूटी धर्म स्मृतियों के आधार पर बस रही पीछर द्वारा कार्य-कारण के सूत्रों की लोच में कोई सार्थकता हो सकती है? क्या इस प्रकार पकड़ में आए गए कार्य-कारण के सूत्र विश्वसनीय माने जा सकते हैं?

जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण तथा उसके जीवन-दर्शन को जानने के लिए उसके अतीत की विशेषतः बाल्यकाल की स्मृतियों का विश्लेषण डा० एडलर के 'अपस्ति मनोविज्ञान' (इंडिविजुअल साइकोलाजी) की एक महत्वपूर्ण तोज है।^{१२०} डा० एडलर का विश्वास है कि मनुष्य की स्मृतियाँ जीवन के प्रति बन चुके उसके दृष्टिकोण के प्रतिफल नहीं जा सकतीं। जीवन में सर्वस्य दुःख-सुख बटनाएँ घटित होती रहती हैं और उन सबके संस्कार मनुष्य के अचेतन पर पड़ते रहते हैं पर जब जाहें कोई बटना प्राकृतिक रूप से स्मृति पट पर उमर आए, ऐसा नहीं होता। मनुष्य के अचेतन में पड़े हुए बटनाओं के कलम बही संस्कार उमर कर उसके चेतन में आ पाते हैं, जो मनुष्य के जीवन दर्शन के अनुकूल हों।^{१२१} उसका

११८ 'मनोवैज्ञानिक शोध' एक जीवन' दूसरा भाग, ५३ (१८६)।

११९ 'मनोवैज्ञानिक शोध' एक जीवन' दूसरा भाग, ५३ (१८६)।

१२० Adler 'Significance of Early Recollections' Inter Journal, Indiv. Psychol., 2 p. 731.

"The discovery of the significance of early recollections is one of the most important findings of Individual Psychology."

१२१ Adler 'What Life Should Mean to You' p. 73-74.

"Memories never run counter to the style of Life."

हिन्दी-उपायात में परिभाषितता का विकास

विश्वास है कि वास्तविकता के बीचे या पाँचवें चरण में ही मनुष्य का जीवन के प्रति जो एक दृष्टिकोण बन जाता है, उसका मनुष्य की पृथिवी की स्मृतियों और वर्तमान की क्रिया-प्रतिक्रिया से बलिष्ठ सम्बन्ध होता है। मनुष्य के चेतन में धार्मिक दृष्टि के स्मृतियाँ यदि ठोकर-ठीक समझी जा सकें तो सबसे मनुष्य के अचेतन की गहराइयों में छिपे सचके सचार्प की अझाँकी मिल सकती है। १०२

कल्पित स्मृतियाँ भी अपेक्षणीय नहीं

कल्पित स्मृतियाँ भी अपेक्षणीय नहीं

‘व्यक्ति-मनोविज्ञान’ वाले इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं कि वास्तविकता की बटनाओं की स्मृतियों में मूल घटना का सत्य नहीं था पाता। वे यह भी जानते हैं कि बहुत सी स्मृतिवां परिवर्तित धीर विकृत रूप में प्रकट होती हैं। धीर कई तो कल्पित होती हैं, पर उनका विश्वास है कि इससे उन स्मृतियों का महत्व कम नहीं होता जस्टे धीर बढ़ जाता है। स्मृतियों में भाए घटनाओं के कल्पित तथा परिवर्तित अंशों में व्यक्ति के जीवन का जड़ बय निहित रहता है। १९३३ इसलिए, इन अंशों के उचित विश्लेषण द्वारा व्यक्ति के अचेतन जीवन-दर्शन को समझा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक तब भी निराश न होना यदि कोई यहाँ तक आ सकता है। किसी घटना की याद नहीं आ रही पर भी है। योंकि वह जानता है कि

किसी घटना की याद नहीं आ रही पर हाँ मैं स्मृति में घटना को रब सकता हूँ — क्योंकि वह जानता है कि मनुष्य की कल्पना वही घटना की रचना कर ही नहीं सकती जो उसके जीवन-दर्शन द्वारा अनुशासित न हो। १९४ कल्पित स्मृतिओं के बारे में एडसर ने एक ऐसे पात्र का उल्लेख किया है जिसने उसे यहाँ तक कहा था "तुम मुझ पर विश्वास नहीं करोगे पर मुझे अपने जन्म की सारी घटना अच्छी तरह याद है, जब मेरी माँ मुझे अपनी गोद में लिये हुए थी। १९५ दोखर को भी तो अपने जन्म की घटना याद है यद्यपि उस द्वारा बणित अपने जन्म के समय की बातें अत्यन्त विभिन्न मौकों पर विभिन्न अस्मन्मन्त्र भावों को सुनकर टूटी-फूटी मुद्राओं को लेकर टूटे-फूटे अव्यक्त विचारों को किसी गूढ़ अंतःशक्ति से भाप कर, एकत्रित किये हुए मनविषयों का पुँज है। १९६

१९६ Adler "Significance of Early Recollection"
 "Rightly understood"
 denoted

Adler "Significance of Early Recollections" p. 233.
"Rightly understood, these conscious
depths just as profound as
ed during the

297 Ibid., p. 283-84.

What is altered or imagined:

Adler "Scenes of Living" p. 135-37:
The Psychologist knows that the person's imagination cannot create anything but that which his style of life commands."

anything but that which his style of life commands." p. 233-34

“Significance of Early Recollections” पढ़ना मध्य पृष्ठ १।

पहली-पहली स्मृतियों का मूल

स्मृतियों के विपरीतपक्ष द्वारा वरिष्ठोद्घाटन की प्रणाली में सबसे प्रमुख बात यह है कि व्यक्ति अपनी कहानी का धारण करे और कहानी करता है। उसकी पहली स्मृति कौनसी है और उस स्मृति में आए व्यक्ति को वह किस रूप में याद करता है। इन स्मृतियों की उचित व्याख्या द्वारा उसके आधारभूत जीवन-दर्शन को पकड़ा जा सकता है।^{१२०} रोडर के स्मृति-पट पर सबसे पहले उभरती है उसकी मीसरी बहन छवि। इससे समझ जा सकता है कि रोडर को उसकी वर्तमान स्थिति तक पहुँचाने में छवि का विशेष हाथ रहा होगा। जिस रूप में रोडर उसका स्मरण करता है उससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—‘तुम वह छान रही हो जिस पर येत जीवन बरकर बड़ाया जाकर ठेक होता रहा है—जिस पर मँज-मँज कर मैं कुछ बना हूँ जो संसार के धामे लड़ा हुमे में खिंचत नहीं। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि रोडर को मरि छवि की याद सबसे पहले आई तो इसलिये नहीं कि वह रोडर के जीवन में सबसे पहले आई थी या वह सबसे लंबी स्मृति थी। रोडर स्वयं स्वीकार करता है कि सबसे पहले छवि उसके स्मृतिपट पर इसलिए उभर आई कि रोडर का होना अनिर्वाच्य रूप से छवि के होने को लेकर है।^{१२१} इससे इन दोनों का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है कि छवि का होना रोडर के लिए है न कि रोडर का होना छवि के लिए। इस प्रकार, रोडर के स्मृति-पट पर सबसे पहले जो व्यक्ति उभरता है वह वही है जिसके द्वारा उसके माँ को छेप भिन्नता रहा है।

रोडर की दूसरी स्मृति है अपनी माँ के बारे में जिसने उसके प्रति धारणा प्रकट करके उसके माँ को एक बड़ी बोट पहुँचाई थी। अपनी माँ के शब्दों—‘सब पूछो तो मैं इसका भी विश्वास नहीं करती’—से उसके मन-मन में आया लग उठी थी। उसका उद्गम उसकी छाया में इन शब्दों में उभरता था—‘मजबूत होता कि मैं कुत्ता होता, दुर्गन्धमय कोड़ा-कुमि होता—बनिसबत इसके कि मैं बीता ब्राह्मी होता जिसका विश्वास नहीं है’^{१२२} और उसने निश्चय प्रशिक्षण की थी कि वह माँ को नहीं मानेगा। इसके साथ ही उसे एक और बटना की याद आती है, जिसमें उसकी माँ ने उसके माँ को समझाया था। वह बेट से बेट भुगा कर साया था और माँ के बड़ाए हुए हाथ को देखकर उसने कहा था—‘मैं धीबल में मे लो—बहुत है।’ उसकी माँ ने धीरे-धीरे धीबल तो पीताया था, पर साथ ही ईसते हुए यह भी कह दिया था—‘धीबल तो सब पीताईनी जब तुम कुछ कमा कर साधोगे, इसके लिए क्या?’^{१२३} सभी रोडर के एक विचित्र दृष्टि से माँ की ओर देखकर उसके ऊँचे

[१२०. Adler 'What Life Should Mean to You' p. 71.

[१२१. आर्ट ४, 'रोडर' ४४ बीबी बीबी भाग, पृष्ठ २१।

[१२२. आर्ट ४, पृष्ठ २१।

[१२३. आर्ट ४, पृष्ठ २१।

विरासत है कि वास्तविकता के बीचे या पाँचवें वर्ष में ही मनुष्य का जीवन के प्रति जो एक दृष्टिकोण बन जाता है उसका मनुष्य की घटीत की स्मृतियों और वर्तमान की क्रिया प्रतिक्रिया से अनिष्ट सम्बन्ध होगा है। मनुष्य के बचन में आई हुई ये स्मृतियाँ यदि ठीक-ठीक समझी जा सकें तो उनसे मनुष्य के भवेतन की यहपथ्यों में जिसे उसके संवर्ष की भाँकी मिल सकती है।^{१११}

कल्पित स्मृतियाँ भी उपयोगी नहीं

‘व्यक्ति मनोविज्ञान’ वाले इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं कि वास्तविकता की घटनाओं की स्मृतियों में भूल घटना का सत्य नहीं आ पाता। वे यह भी जानते हैं कि बहुत सी स्मृतियाँ परिवर्तित और विकृत रूप में प्रकट होती हैं। और कई तो कल्पित होती हैं, पर उनका विरासत है कि इससे उन स्मृतियों का महत्व कम नहीं होता उसके और बढ़ जाता है। स्मृतियों में आए घटनाओं के कल्पित तथा परिवर्तित अर्थों में व्यक्ति के जीवन का सर्वेक्ष निहित रहता है।^{११२} इसलिये इन अर्थों के उचित विवेचन द्वारा व्यक्ति के भवेतन जीवन-वर्धन को समझा जा सकता है।

किसी घटना की याद नहीं आ रही पर हाँ मैं स्मृति में घटना को रच सकता हूँ— क्योंकि वह जानता है कि मनुष्य की कल्पना बीसी घटना की रचना कर ही नहीं सकती जो उसके जीवन-वर्धन द्वारा अनुसाधित न हो।^{११३} कल्पित स्मृतियों के बारे में एडलर ने एक ऐसे पान का उल्लेख किया है जिसने उसे यहाँ तक कहा था “तुम मुझ पर विरहास नहीं करोगे पर मुझे अपने बग्न की छापी घटना अच्छी तरह याद है, जब मेरी माँ मुझे अपनी गोद में लिये हुए थी।”^{११४} देखर को भी तो अपने बग्न की घटना याद है। मगरि उस द्वारा बणित अपने बग्न के समय की बातें अचम्भ विभिन्न दोकों पर विभिन्न सम्बन्ध भाग्यों को सुनकर, हटी फूट मुझाओं को लेकर, हटे-हूटे सम्भव विचारों को किसी कुछ अंतःशक्ति से बाँध कर, एकनिष्ठ किये हुए मनचित्रों का पुंज है।^{११५}

१११ Adler ‘Significance of Early Recollections’ p. 223;
“Rightly understood, these conscious memories give us glimpses of depths just as profound as those which are more or less suddenly recalled during treatment.”

११२ Ibid., p. 223-24

“What is altered or imagined is also expressive of the patient’s goal.”

११३ Adler ‘Science of Living’ p. 154-57;
“The Psychologist knows that the person’s imagination cannot create anything but that which his style of life commands.”

११४ Adler ‘Significance of Early Recollections’ p. 223-24

११५ यह न दोहरा बढ़ अस्वीकार्य घटना याद, पृष्ठ ४६।

बहुमो-बहुनी स्मृतियों का महत्व

स्मृतियों के विपरीतपक्ष द्वारा चरित्रोद्घाटन की प्रणाली में सबसे प्रमुख बात यह है कि व्यक्ति अपनी कहानी का आरम्भ कैसे और कहाँ से करता है। उसकी पहली स्मृति कीमती है और उस स्मृति में आए व्यक्ति को वह किस रूप में याद करता है। इन स्मृतियों की सशित व्याख्या द्वारा उसके आचारमूल जीवन-दर्शन का पकड़ा जा सकता है।^{११०} रोसर के स्मृति-पट पर सबसे पहले उभरती है उसकी मौसेरी बहन ससि। इसके समझ का सकता है कि रोसर को उसकी वर्तमान स्थिति तक पहुँचाने में ससि का विशेष हाथ रहा होगा। जिस रूप में रोसर उसका स्मरण करता है उससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। 'तुम बड़े छान रही हो जिस पर मेरा जीवन बराबर बढ़ाया जाकर रूढ़ होता रहा है—जिस पर मैं बँक-बँक कर मैं कुछ बना हूँ जो संसार के भागे बढ़ा होने में सशिव नहीं।' यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि रोसर को ससि की याद सबसे पहले आई तो इसलिए नहीं कि वह रोसर के जीवन में सबसे पहले आई थी या वह सबसे ठाढ़ी स्मृति थी। रोसर स्वयं स्वीकार करता है कि सबसे पहले ससि उसके स्मृतिपट पर इसलिए उभर आई कि रोसर का होना अनिवार्य रूप से ससि के होने को लेकर है।^{१११} इससे इन दोनों का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है कि ससि का होना रोसर के लिए है न कि रोसर का होना ससि के लिए। इस प्रकार, रोसर के स्मृति-पट पर सबसे पहले जो व्यक्ति उभरता है वह वही है जिसके द्वारा उसके ग्रह को तोप मिसरा रहा है।

रोसर की दूसरी स्मृति है अपनी माँ के बारे में जिसने उसके प्रति अविश्वास प्रकट करके उसके ग्रह को एक गहरी घाट पहुँचाई थी। अपनी माँ के शब्दों—'तब पूछो तो मैं इसका भी विश्वास नहीं करती—मे उसके मन-मन में आज तब उठी थी। उसका उद्गम उसकी डायरी में इन शब्दों में उभरा था—'घबड़ा होता कि मैं कुत्ता होता दुर्गन्धमय कीड़ा-कृमि होता—बनिसकत इसके कि मैं बैठा घावनी होता जिसका विश्वास नहीं है'^{११२} और उसने निश्चय प्रतीक्षा की थी कि वह माँ को नहीं मानेगा। इसके साथ ही उसे एक और घटना की याद आती है, जिसमें उसकी माँ ने उसके ग्रह को समझाया था। वह बँक से बँक भुना कर लाया था और माँ के बड़ाए हुए हाथ को देखकर उसने कहा था—'माँ आँख में मैं तो—कूट हूँ।' उसकी माँ ने धीरे-धीरे आँख तो फँसाया था पर साथ ही ईसते हुए यह भी कह दिया था 'आँख तो तब फँसाऊँगी जब तुम कुछ कमा कर लाओगे इसके लिए क्या?'^{११३} तभी रोसर ने एक विशिष्ट दृष्टि से माँ की ओर देखकर उसके कौने

११० Adler 'What Life Should Mean to You' p. 73.

१११ यहाँ 'रोसर : एक जीवनी', पन्ना पाग पृष्ठ २४।

११२ यहाँ पृष्ठ २४।

११३ यहाँ पृष्ठ २४।

हुए शीशम की उपेक्षा करते हुए एक तिपाईं खींचकर उस घर अपने रख दिये थे ।

खेबर की स्मृति में फिर उमरती है—धीमा । धीमा का वह इस प्रकार स्मरण करता है—“वह मेरी खिप्पा की घर में उसका कुछ न था—‘उसके लिए मैं था एक बड़ा-सा भाई, किन्तु ऐसा भाई जिससे प्रेम किया जा सके जिसके आचार पर स्वयं बुने जा सकें और जो उपेक्षा से उन्हें लोढ़ है”^{१११} यहाँ धी धीमा को खेबर की उपेक्षा है, न कि खेबर को धीसा की । इसलिए पढ़ाते-पढ़ाते एक दिन ऐसा आभा कि वह उसे पढ़ाने नहीं बना । दो दिन नहीं तीन दिन नहीं और चौथे दिन उसने धीसा के पिता को पत्र लिख दिया कि वह उसे नहीं पढ़ा सकता ।

उसने माह, एक के बाद दूसरे दो दूसरे उमरती हैं । एक है—जम बिस्कोट से मरे एक क्रांतिकारी के छत्र का जिसके दोनों ओर दामनी भुज से साधार स्त्री और पुरुष के दो आकार उसकी नितांत सम्बन्धना कर, छत्र के छार-भार आनियनबद्ध हो जाते हैं ।^{११२} दूसरा दुसरा है आजीवन न न लौटने का निश्चय करके खेबर का घर से निकलने का जबकि घर से दूर एक जल प्रपात के पास प्यास मग्न हो वह सोचने लगता है कि “जीवन ऐसा होना चाहिए, पुत्र स्वयं, संनैतपुर्से प्रकट गिरन्तर सवेष्ट और प्रसिद्धीय भरणार के सम्बन्धों से मुक्त और सदा विद्रोही ।”^{११३}

पहली असम्बद्ध स्मृतियों की व्याख्या

अत्यन्तसोफन की प्रथम चिट्ठा से प्रेरित उपर्युक्त परम्पर असम्बद्ध चट्टानों की स्मृति के रूप में खेबर की कहानी प्रारम्भ होती है । सभी वह कहानी का चित्र नहीं पकड़ पाया है । पर खेबर की इन आरम्भिक और असम्बद्ध स्मृतियों और उन पर उसकी टीका-टिप्पणियों से जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण की व्यक्ति हो जाती है जिसको जाने बिना ‘खेबर एक जीवनी’ को समझ सकता बहुत कठिन है । खेबर और प्रह्लादी है । वह किसी स्थिति में रह सकता है तो उसका स्वामी बन कर, किसी व्यक्ति से सम्पर्क रख सकता है तो उससे बड़ा बन कर नहीं तो वह स्थिति और व्यक्ति दोनों से भागेगा । उसे ऐसी प्रत्येक स्थिति और व्यक्ति से घूला है जो उसके माह की पुष्टि नहीं करता—वह स्थिति चाहे उसके लिए उपादेय हो और वह व्यक्ति चाहे उसको प्यार देने वाली या ही हो ।

खेबर का होना अनिर्धार्य रूप से धर्म के होने को लेकर इसलिए ही होना है कि धर्म का होना खेबर के माह की पुष्टि को लेकर है । खेबर के बनने में ही वह टूट गई थी ।^{११४} धीसा को भी खेबर की ही उपेक्षा रही न कि खेबर को धीसा

१११ ‘जबकि शीशम एक जीवनी’ पहला भाग, पृष्ठ ३२ ।

११२ वही पृष्ठ ३२ ।

११३ वही, पृष्ठ ४२ ।

११४ जेवर, ‘टोटल नन जीवनी’, पहला भाग, पृष्ठ २६ ।

की। जब सेक्टर को यह महसूस होने लगा कि अब घायल उसे भी घीसा की अपेक्षा होने लगे, वह झूठ बोलकर घीसा से घीसा झुड़ा भाग खड़ा होता है। और अंतिम समय स्वीकार भी करता है कि झूठ बोलकर उसने अपने को घीसा से नहीं अपने घाय से छुपाया था।^{१३४} अपनी माँ से उसे इसलिए गुला है कि वह सदा उसके झूठ की सतकारती रहती है उसे ठेस पहुँचाती रहती है। अंतिम बिनो में भी जब कभी उसे यह विचार आता है कि उसके काँसी की कोठरी में होने के कारणों में उसकी माँ के उसके प्रति व्यवहार की प्रतिक्रिया भी हो सकती है तो भी इस विराट परिवर्तन के लिए, इस इतने गहरे प्रभाव के लिए, माँ को खेद देने की उसकी इच्छा नहीं होती।^{१३५} माँ के प्रति वास्तविक में सेक्टर का जो दृष्टिकोण बन गया है उसमें परिवर्तन आ सकने में वह असमर्थ है। वह स्वयं भी तो कहता है—इस न मरने वाली बच्चा का कारण वह एक कम्पित पिता ही है, जो मेरे मन ने वह रखाई घर की दीवारों को भेद कर देखा था, उस समय जबकि माँ कह रही थी—“मैं तो इसका भी विश्वास नहीं करती।”^{१३६} अब तक सेक्टर के अचेतन से यह विचार नहीं मिटता, माँ के प्रति उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन कैसे हो ?^{१३७}

सबसे पुरानी स्मृति

स्मृतियों के बारे में इसरी महत्वपूर्ण बात यह होती है कि व्यक्ति की वास्तविकता की सबसे पुरानी स्मृति कौन-सी है। इससे जीवन के प्रति उसके मूलभूत दृष्टिकोण का पता चलता है। पुरानी स्मृति की उपबोधिता इसमें भी है कि इससे एकदम यह भी पता चल जाता है कि कोई व्यक्ति अपने विकास का सारम्भ कहाँ से मानता है।^{१३८} सेक्टर को भी अपने जीवन की सबसे पहली बी-एक बटमारों ठीक ठीक पर अपनी प्रभुमूर्ति ही याद हैं। वे बटमारों जिन तीनों पहली प्रेरणाओं का विवरण करती हैं वे हैं—घाँसवा भय घीर लैफ्ट।^{१३९} इन स्मृतियों में कौन पहले की है और कौन बाद की यह बता सकना सेक्टर के लिए कठिन है क्योंकि वे लगभग एक ही काल की हैं।^{१४०}

१३४. अर्देव सेक्टर : *मन जीवनी* पृष्ठ २४।

१३५. वही पृष्ठ २०।

१३६. वही, पृष्ठ २२।

१३७. Adler "Die Technik der Individual Psychologie", VI 2, 1930, Chap. 1. ("A School Girl's Exaggeration of her own importance, Int. J. Indiv. Psychol., 3), p. 8:

"The style of life which is formed in the preschool period, does not change except by the individual's own recognition of his faults and errors."

१३८. Adler "What Life Should Mean to You" p. 73:

१३९. अर्देव सेक्टर : *मन जीवनी* पृष्ठ २४।

१४०. वही, पृष्ठ २०।

अहंभाव—यहसी स्मृति में वह तीन वर्ष का है। पर उसका बिजबी बर्ष ऐसा है, वैसा निपोनियम साक्ष्य वर्ष तक बिजबी रह कर भी नहीं प्राप्त कर सकता। उसका भाई बीमार है और उसे डाक्टर को बुलाने को कहा गया है। दोहर बार से जमा वो धामा है, पर उसकी उत्तरदायित्व मानना नहीं तक है कि उसे कोई महत्त्व का काम दिया जाय। उसे करने के विषय में अपने को बाध्य नहीं समझता। हृदय के किनारे पर के वीरजबल ने उसका ध्यान धीरे धीरे बिना है और वह उस पर बढ़ कर उसे जोड़ा समझ कर अपने पिता की नकल करता हुआ उसकी 'मरदन' बपबरा रहा है। उधर से धाने-धाने वाले राहियों को मुह बिड़ाता है। "बहु संसार से एक सैटरकस की ऊँचाई भर ऊँचा है। अपने इस भासन से वह सारा संसार देखता है। उसकी बुद्धता पर हँसता है।" तभी डाकिमा आकर उसे बजवेंस्ती उतार बैठा है। पर खेकर अपना बरसा ले लेता है—उत्तरते समय डाकिम की सेमिनियों पर फिर कर उन्हें कुचल बैठा है और साथ निकलता है तब इस प्रकार अपने को विश्वास दिला लेता है कि वह बिजबी है। घर पहुँच कर छहसा पिता की हथेली का आभास ही बाप बिभाता है कि वह पणचीन चिनु है, जिसे डाक्टर को बुलाने भेजा गया था और जो उसे बिना बुलाए एक बंटा समाकर लौट आया है।^{११०}

भय-अवृत्ति—दूसरी स्मृति उस समय की है जबकि वह अकेला मजदूरबनर में भूम रहा था—उस कमरे में वहाँ हिज पशु दिखावे गये हैं। एकाएक एक भीमकाय बाघ को देखकर, जो एक रंजा झपटने को उठा रहा है वह भीज मारकर वहाँ से भाग निकला है। वह बाघ एक वर्ष के धम्बर भग हुआ कूब है, पर खेकर वहाँ अकेला है, कोई भी उसे बठाकर उसका डर दूर करने वाला नहीं। वह डर उस समय वो दब गया पर उसके मन में घर कर गया। उस दिन के बाद उसे नर्बकर स्वप्न माने सगे रात को वह भीज-भीज उठता। उसका वह डर अपने धाप ही मिटा। एक बार बैठा ही बाघ उसके घर लाकर रखा गया। बहुत मुश्किल से वह अपने माइनों की देखा-देखी उसके पास भी गया उसकी पीठ पर भी बैठा और उसे निजर्वि पाकर छाहृत करके उसके मुह में हाथ दातकर भी देखा। तब डर एकाएक दूट गया। उसने बाकू लेकर उस जान की काड़ डाला और पास जूँस को बिलेर कर इसने सदा जिसके लिए उसे बण्ड भी मिला। उस पर इसका एक मह्य प्रभाव पड़ा। उसने समझ लिया कि भय करने से होता है। संसार की सब अमानक वस्तुएँ हैं—केवल पास-कूब घरा एक नाम जिससे डरना मूर्खता है।^{१११}

संरस-अवृत्ति—तीसरी स्मृति बड़ी मही और बीमल है। उसका ठीक-ठीक रूप और मूल कारण उसे याद नहीं। चिनु दोसर कोई दुख देता रहा है—याद नहीं

कि क्या, किन्तु इतना बार है कि उसमें कुछ समुचित कुछ वनित कुछ मुझाएवा
कुछ जुगुप्साजनक है और इसी के समुद्रम बाधना उसे देखकर उसके मन में आ
रही है। वह दृश्य सर्वथा है।^{१४४}

पुरानी स्मृतियों में मूल जीवन-दर्शन का स्वरूप

रोबर की इन सबसे पुरानी स्मृतियों में एकमूर्तता है। वे तीनों मिसकर
किसी बात को दिखाती हैं और वह है—जीवन के प्रति बन रहा उसका दृष्टिकोण।
वह धरने को संसार के समकक्ष नहीं सदा उससे ऊँचा समझता रहेगा और उसकी
भद्रता पर हँसता रहेगा। उसका वह सम्भासन बाहे 'सेटर-बक्स' पर बोड़े की पीठ
के धाराय से बनाया गया हो और एक हम कल्पित हो—उसकी ऊँचाई सेटरबक्स की
ऊँचाई भर हो। धरने को इस स्थिति में मान लेने से उसे बाहे और कोई साम न
हो उसके अर्ह को छोड़ मित्रता रहेगा। दूसरी घटना उसकी निदरता की ओर
संकेत करती है कि वह जब भी कभी कोई भयानक वस्तु देखेगा उससे डरेगा नहीं
उसका बाह्य नाम फाट डालेगा उसके भीतर मरी [] बाह्य-कूट निकाल कर
बिखरा देगा और क्रुम हँसेगा।^{१४५} तीसरी वटना यह बताती है कि वह वासना के
उत्पन्न पाप-कर्म के दिनारे तक पहुँच कर सीट छोड़कर किसी बाह्य स्फाट डर
वा आसामर्ष के कारण नहीं बल्कि एक साम्प्रतिक स्वतः उत्पन्न गति से
मर कर।

रोबर द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण समाज-सम्वत् नहीं उसके विवि
नियमों के विपरीत है, पर इससे उसे बेर नहीं प्रसन्नता ही होती है। क्योंकि उसका
विश्वास है कि 'जो नियमों से नहीं चलते किन्तु नियमों की मूल प्रेरणा को समझ
कर अपना नियम स्वयं बनाते हैं जीवन तो उन्हीं का है।'^{१४६} रोबर के जीवन
व्यापी विद्रोह का प्रेरक भाव भी तो यही है कि वह दूसरों के बनाए हुए नियमों से
नहीं चलगा उनकी मूल प्रेरणा को समझकर अपना नियम स्वयं बनाएगा।

प्रत्यक्षसोक्त विवेचन

अतीत के विवेचन द्वारा वर्तमान की व्याख्या करने के लिए व्यक्ति के
प्रकट प्रतिष्ठाओं के कारणों को उसके वास्तविक जीवन के प्रति दृष्टिकोण में
जोड़ना होता है और उसके लिए आवश्यकता पड़ती है अतीत की घटनाओं की
जिनकी आवृत्ति स्मृति में ही की जा सकती है। पर पुरानी स्मृतियों द्वारा अभिव्यक्त
दृष्टिकोण को वर्तमान प्रतिष्ठाओं का कारण मान बैठना भ्रामक होगा। ये स्मृतियाँ
तो संकेत-भाषा होती हैं और यह बताती हैं कि उस व्यक्ति का वर्तमान जीवन के किसी

^{१४४} अर्थात् 'रोबर : एक जीवनी, प्रस्ता मज, पृ० २२-२३।

^{१४५} वही, पृष्ठ २२।

^{१४६} वही, पृष्ठ २३।

विशेष पक्ष की ओर धारदारता कीसे बढ़ता गया है। पर यदि व्याख्याकार इस विषय में विशेषज्ञ हों तो वह स्मृतियों द्वारा दिए गए संकेतों का धर्म समझ सकता है।^{१४०} दोषर का इस विषय में काफी धारणा दिखाई देता है—लेखक के इस धर्म के परिणाम का एक दोषर को भिन्न गया प्रतीत होता है।^{१४१} धारिता की स्मृतियों के विस्लेषण द्वारा वह अपनी वर्तमान स्थिति के कारणों को धारिता की घटनाओं में ही ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है।

धर्म की पुष्टि

दोषर को खोजी मिलने जाती है, इसकी उसे चिंता नहीं। वह एक प्रसन्न है कि वह एक नीमकाय डर—आसन के डर का—भीतरी जोखमापन दिखा सकते हैं। सफल हुआ है। वह हँसता है कि उसने दोषर के सबसे बड़े डर पर प्राप्य किया है, वह डर बिजय पाई। अपनी इस मनोस्थिति की व्याख्या दोषर अपने वास्तविकता की उस घटना के विस्लेषण द्वारा करता है जबकि उसने पहली बार जाना था कि बिजय भाव से वह डर कर जाना था। वह निर्जीव जान है। धीरे-धीरे वह उसके भीतर का भाव कुछ बिखेर कर हँस दिया था। उस नाम को छोड़ देने पर उसे कुछ तो मिला था पर उस घटना से उसे निश्वास हुआ गया था कि संसार की सब भयानक वस्तुएँ केवल भाव से भरा हुआ निर्जीव जान है, जिससे डरना मुर्खता है। भयानक वस्तुओं के प्रति दोषर के इसी बुद्धिकोण ने उसे उलट बना दिया था। निष्कर्षक धीरे-धीरे बनने की प्रेरणा भी उसे इसी भाव से मिली थी।

स्वस्थ के वास्तविकता की माँ—सम्बन्धी स्मृतियों से उनके तथ्य प्रकाश में आते हैं। उसकी माँ का उन स्मृतियों में गया स्थान रहता है, उनमें वह किस रूप में प्रकट होती है। उस समय उसके प्रति पात्र का गया भाव रहता है—हम सबसे उसकी वर्तमान की घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। दोषर की वास्तविकता की स्मृतियों में उसकी माँ का विच्छिन्न स्थान है। वह बार-बार उसके स्मृति-बट पर उतर जाती है, पर उसका मातृत्व रूप कभी भी दोषर की स्मृति में नहीं आता। दोषर के प्रति उसकी माँ के अभिरास प्रकट करने वाली घटना को वह भूल नहीं पाता। इनके-दुर्बले उल्लेख के प्रतिरिक्त ही बार-बार वह घटना धीरे-धीरे उसके प्रति दोषर की प्रति भिन्न जोरेदार उसकी स्थिति में आई है।^{१४२} तभी उसमें अपने-आप एक परिवर्तन आता धीरे-धीरे सोचने लगा— मैं क्यों डर मानूँ ? कोई नहीं निश्वास करता न

[१४०. Adler 'Early Recollections' p. 284 :

"To estimate its meaning we have to relate the early pattern of perception to all we can discover of the individual's present attitude, until we find how the one clearly mirrors the other"

१४० अर्ध, 'दोषर' एक नीमनी धारणा का, मूर्धिका पृष्ठ ५।

१४२ वही, पृष्ठ २५, २६ तथा १५४-१५५।

करे। मैं योग्य हूँ। योग्य बनूँगा रहूँगा। इस जोट को चुपचाप सहूँगा इस अपमान को पिछेमा धीरे बीजने नहीं दूँगा। धीरे धीरे संसार का मादर धीरे बिबाध पाकर उसे माँ के मुँह पर पटक दूँगा धीरे कहूँगा 'महदेव ! मैं इसे ठुकराता हूँ'।^{११२} इस प्रकार, अपनी विकासोन्मुख धारणा में एक धीरे धीरे खिपा कर दोसर एक प्रसीत बिद्रोही के रूप में पकने लगा।^{११३}

जीवन के प्रति आलोचना

दूसरी प्रकार की पटनाएँ जिसकी स्मृति दोसर की सबसे अधिक है, वह स्कूल कालेज धीरे समाज की वे स्थितियाँ हैं जिनमें उसे धारीरिक या किसी अन्य प्रकार का हानि मिला हो। वास्तव में उसकी स्मृतियों में प्रभावता है ही इसी प्रकार की पटनाओं की। दोसर का ध्यान स्मृति तक में भी कभी इस धीरे जाता ही नहीं कि उसके उन्नत व्यवहार के कारण उसके उन्मुख विकास से उसके माता-पिता सम्पापक-अध्यापिकाओं कालेज जीवन के छात्रियों तथा उसके सम्पर्क में आने वाले धान्य लोगों को कितना कष्ट व असुविधा हुई होगी। उसे तो केवल यह पता है कि कब कहीं धीरे कितने उसे बेचना पड़ गई थी। अपने प्रति दूसरों के अपराधों को बढ़ा बढ़ा कर दिखाने की दोसर की इस प्रवृत्ति से यह पता चलता है कि जीवन के 'होन्टाइम' पक्ष की ओर ही उसका अधिक सम्मान है। इसीलिए उसकी कहानी उस की बेचना का एक अभिन्नतम निजी इस्तावेल 'ए रेकार्ड ऑफ पर्सनल सफ़र'।^{११४} बन गई है। वास्तविकता से ही उसके मन में यह बात बर किए हुए थी कि वह उपेक्षित है, उसका कोई मादरस कोई क्लब, कोई बचान नहीं धीरे वह अपने चारों ओर के जीवन के लिए मंगा हो गया है, प्रत्येक जोट प्रत्येक झोंका प्रत्येक आवाज के लिए प्राण्य।^{११५} वह समझता है मैं बूढ़ा के संसार से इतना कुछसा गया हूँ पीड़ा से इतना मिथ हुआ हूँ कि आनन्द मेरा अपरिचित हुआ गया है।^{११६}

पिता के साथ हुई अन्तिम नोट की छोड़कर उसकी स्मृति में उसका पिता सदा दंडनायक के रूप में ही धामा है। डाक्टर की बुला आने की अपेक्षा रास्ते में नौटकरबस के धान्य बैठते रहने के कारण पिता की इहेमी का आघात सहने ^{११७} अपने एक अध्यापक को 'मुक्कु मास्टर' ^{११८} धीरे दूसरे की ऐस' ^{११९} कहने पर पड़ी

११० अर्सेन, रोज़ : एक बीमारी' पृष्ठ १८०।

१११ अर्सेन 'रोज़ एक बीमारी' बरता मग, पृष्ठ १८०।

११२ अर्सेन, रोज़ : एक बीमारी' बरता मग, पृष्ठ ८।

११३ वही, पृष्ठ १३२।

११४ वही, पृष्ठ १३१-१३२।

११५ वही, पृष्ठ ५२।

११६ वही, पृष्ठ २६।

११७ वही, पृष्ठ ७०।

मार, सारमाज को अनाथबन में बसेसा भुस जाने पर पिता की डाँट-उपट १२४ ईश्वर में अनास्था प्रकट करने पर बैठ से उसके सामने पिटाई, १२५ अपड़ासी से छूटने के प्रयत्न में बाँह भटक कर उसकी नाक छोड़ जाने के अपराध में पिता की छाड़ी का कः बार उठना और फिरमा और छः बार ही उसके शरीर में एक रोमांच था हो जाता पर उसका न हिलमा १२६ आदि उसकी अनेक स्मृतियों का सम्बन्ध पिता से आई मार से है। बीरे-बीरे तो सेसर की इतनी आरत पड़ गई की कि सगर रत करने के बाद वह नही लम्पयता से पिता के अप्पड़ की प्रतीक्षा किया करता था। १२७

अपनी माँ के भी उसका ही ही बसे बाब है। पिता सेसर पिता से ही अधिक या पर पिता से पिट कर भी उसके प्रति बुरी भावना उसके हृदय में नहीं आती थी। माँ पीटती जाहे कम है पर उसके व्यवहार के लिए वह उसे कभी अना नहीं कर पाया था। घर के सब बिदेसी कपड़े जमा देने पर माँ हाथ उसके बात भी बिदेसी कर दिये जाता १२८ और अपने माई अन्न की वेशिम न देने के अपराध में माँ हाथ पहले उसके मुँह पर ठकाठक हो-बार लपड़ की मार और फिर उसका हाथ मेज पर रख कर पहले बूँसे से और फिर पट्टी से मारने लगता और अन्त में सेसर का यह सतर—'नहीं पूया, कह दिया नहीं पूया जाहे जान से बार बाधा' १२९ आदि घटनाओं की उसकी स्मृति छोकी नहीं पड़ती।

स्कूल और कानन के जीवन की भी उसे बहुधा वे घटनाएँ ही याद हैं, जिन में उसके साथ क्वाबरी हुई थी—कामेट में सिस्टर का उस पर आरोप 'तुमने बहुत खराब की है' १३० स्कूल में उसकी मागिटरी का दिन वाला और सारी क्लास के सामने मास्टर का उसे 'मुर्दा' बनाना। १३१ कानन में कुमार का उसे बोझा देना १३२ उसे बाइरों के होस्टल से निकलवाने के लिए बड़कों की साबिब। १३३

इसके अतिरिक्त सेसर को वे सब घटनाएँ और उनसे सम्बन्धित लोग बाब हैं जिनमें वह सकारल या आकरल सताया गया है। जिस से सीटने पर प्रकासकों के उस पर किए गए अत्याचार, सा० अभीलक राय का उसके विरुद्ध पञ्च, १३४

१२८ अर्धेन 'सेसर : एक जीवन' प्रथम भाग पृ० ७२।

१२९ वही, पृष्ठ ६३।

१३० वही, पृष्ठ ११९।

१३१ वही, पृष्ठ ११०।

१३२ वही, पृष्ठ ११८।

१३३ अर्धेन 'सेसर : एक जीवन' प्रथम भाग पृष्ठ १५२।

१३४ वही, पृष्ठ १४३।

१३५ वही, पृष्ठ १५३।

१३६ वही, पृष्ठ १५४।

१३७ वही, पृष्ठ १५४।

१३८ वही, प्रथम भाग, पृष्ठ १५०-१५४।

सृष्टि के पक्षि परमेश्वर द्वारा लगाया गया उस पर मिथ्या धारणा^{१९२} धारि दूसरों द्वारा उस पर किए गए किसी भी प्रत्याहार को वह भूल नहीं पाया।

विद्रोह भावना

इस प्रकार के बहुत धनुषों और उनके प्रति अपनी विशेष समझ के कारण उसे वास्तविक में ही वह विश्वास हो गया था कि इस संसार में 'अध्याय ही अध्याय है और वह अध्याय विशेषकर सब पर किया जाने के लिए है'^{१९३} इससे उसकी महसूसमुदा बढ़ने लगी और वह संसार के उस अध्याय के विरुद्ध बचने लगा। जीवन भर वह बहु महत्त्व करता रहा कि—'उसके चारों ओर कुछ है बाह्य है पीड़ा रोम, मृत्यु सब कुछ है। वेद विदेश के सम के ठेकेदारों ने अपनी कुल आविष्कार क्षिति को बर्णन करके मरक में बिल बुरी से बुरी और भयंकर से भयंकर वातवायों का सुबन किया है वे सभी संसार में, उसके संसार में मौजूद हैं'^{१९४} पर उसका निश्चय था कि वह उन्हें स्वीकार नहीं करेगा, उनके विरुद्ध विद्रोह करेगा उनसे लड़ेगा। प्रत्येक प्रकार के अध्याय के विरुद्ध विद्रोह के भाव ने उसमें न मिटने वाली एक बौद्धिक पुला भर दी थी जो उसके भीतर अस्मितकारी शक्तों को बेव से विरहित कर सकी थी।

'सबसे' प्रवृत्ति : विद्रोह पर संकल्प

रोखर की स्मृति में कुछ व्यक्ति और स्थितियाँ ऐसी भी समझी हैं—और बार-बार उबरती हैं—जिनसे उसका अपारमक सम्बन्ध रहा, जिनसे उसे चोट नहीं पहुँची प्रत्युत प्रोत्साहन ही मिलता रहा। इसमें उन्हे नहीं कि रोखर को बनाने में उन लोगों का हाथ रहा जिनसे उसे घोर गुला भी, पर रोखर को रोखर बनाने में इन व्यक्तियों और स्थितियों का भी कम महत्त्व नहीं रहा, क्योंकि उनमें तीन होकर रोखर अपना दुःख भूल सका।

रोखर को दूटने से बचाने वालों में दीर्घ स्थान रहा उसकी मौखी बहन पवि का उसके बाद धारवा का पर इन दोनों के लिए उसे बचाए रखने का येव उसकी सभी बहन सरस्वती की ही है। सरस्वती के प्रभाव में वह कभी का मर गया होता।^{१९५} धीमा, प्रतिभा शाल, धारि धारि का स्थान इनके बाद है। इन व्यक्तियों की स्मृतियों के निस्तेपण द्वारा रोखर का दिशा देता है जिस प्रकार पुला के सब इतनी शक्ति थी कि वह सब कुछ को रोखर की रोखर को समझा सके, लगी

१९२ अनेन 'रोख' एक बीपवी' इन्द्रा मय, पृष्ठ १७८।

१९३ वही, वही मय १ १५१।

१९४ वही, पृष्ठ ७४।

१९५ अनेन, 'रोख : एक बीपवी' वही मय, पृष्ठ १३०।

प्रकार इन व्यक्तियों के प्रति उसकी भावना ने उसे जगाया और समर्थ बनाया कि वह उस बोट का सामना करे, जो उसके हृदय को लगी है।^{१०३}

सेखर की स्मृति में यदि उसके अपने खर्चों में जीवन भर वह खान रही जिस पर सेखर का जीवन बार-बार बड़ाया जाकर ठेक होता रहा। सेखर ने महसूस किया कि एन्नि धार्ष से नहीं, धार्ष के प्रतीक से मिलती है, तो यदि उसके धार्ष का प्रतीक नहीं^{१०४} और उसे बनाने के प्रयत्न में स्वयं सहर्ष टूट गई। इसी प्रकार, जब से सेखर ने बीसा को पढ़ाना छोड़ा उसकी 'जगहना भरी आवा' उसके साथ रहने लगी। सेखर अब तक उससे बचता आया है, पर अपने प्रतिपक्ष समय में वह उसकी धब्बा को झुठलाता से स्वीकार कर लेता है और लज्जा मुखा कर मान लेता है कि झूठ बोल कर सेखर ने आत्मे को बीसा से नहीं अपने से छिपाया था।^{१०५} बीसा के भावों के फिरो का कारण साफ नहीं था—जब प्रेम सर जाता है तब बासना उसके सब को छुट्टाये-छुट्टाये फिरती है और उससे अपने को थोके में छिपाना चाहती है और यह भी कि बासना नस्वर है, गुरभा जाती है, तब प्रेम-तन्तु ही जीवन की स्मरता बनाए रखता है।^{१०६}

सेखर की सभी बहुत एक दिव उसके मन में एकाएक 'सरस्वती' से 'बहुन' और 'बहुन' से 'सरस' बन गई।^{१०७} जब वह मानव-आत्मा के बचाव सार में बैठे था या तब उसे जगहना वाला उसके प्रति सरस्वती का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार ही था। जब वह दुनिया भर की संवेक्षा की पणि में बस रहा था तब उसे जुमसने से बचाने वाला कबल नहीं उसकी बहुत, सरस्वती।

सौतल्लिनी-जी धारवा ने धाकर सेखर के बसते हुए मस्त्वहीन हृदय को सौतल्लिनी और सरस्वती प्रदान की। सेखर अपने घर का कुचलने वाला बाठावरल धारवा की पहली चिठवन में ही मूल गया। सेखर के से मदनप हाथी पर धारवा ने संकुच का काम किया—नहीं तो क्या सेखर उसके इन खर्चों के लिए उसे कभी जमा कर सकता 'तब ए छिती बाय लाइफ यू'।^{१०८} वह हर बात में उसे 'सिबी' कहती रही^{१०९} और उसका पैसा कटाना सेखर को पसंद तक नहीं। बीरे-बीरे सेखर महसूस करने लगा कि उसका प्रतिपक्ष सम्बन्ध धारवा से और धारवा के विचार से है।^{११०} जब दिनों जिस मकसूरि में से वह गुजर रहा था उसमें धारवा ही एक

[१०३] प्रोफ. 'रोजर रक बीमनी' कला भाग, पृष्ठ १००।

[१०४] वही, दूसरा भाग पृष्ठ १२३-१२४।

[१०५] वही, कला भाग, पृष्ठ ४४।

[१०६] वही, कला भाग, पृष्ठ ४४।

[१०७] प्रोफ. 'रोजर रक बीमनी' कला भाग, पृष्ठ १००।

[१०८] वही, पृष्ठ १६०।

[१०९] वही, पृष्ठ १७२।

[११०] वही, पृष्ठ १७२।

मान धाड़म (ओएसिस) भी। धारवा ने मर्यादा धाड़म को दुकान दिया था, तो भी वह उसे न दुकान सका। धुध-बसना बैबी के रूप में वह उसके स्वप्नों में समाई रही। १८१

सचि धारवा धरस्वती धीसा धादि धारियाँ यदि धेधर के जीवन में न धादीं, तो वह उस धाठना धरे जीवन के न उबर पाता। उसने कभी का धारमधोत कर लिया होता। इस धोर वह कई बार प्रवृत्त हुआ भी पर बच जाता रहा। जीवन के प्रति धात्मकान से ही उसने का धृष्टिकोण धपमामा का धससे धरपम धोर धृणा का धिप धस ही मरम कर धाठता का धापम करके धपना धास बना होता। १८२ धेधर की धृणा की धावना में धधि धात्मिकता का धाई तो इन्हीं धारियों के कारण धिनमें धधने धाधर की धीका को धन के लिए धहीं तो कुछ समय के लिए ही सही धो सका। इन धारियों के धसय से केवल उसकी धाठना को ही प्रमय धही धिसा। उसकी धाठबंदना भी धनमें कुछ समय के लिए धो सकी धीर वह धूटने से बचता रहा।

धेधर का धिधर्य

इस प्रकार धपने धतीत की धाठनाधूर्य धीर धाधारमक धटनाधों की धसृधियों के धिसेधण द्वारा धेधर इस धिधर्य पर धहोचता है कि धाठनाधूर्य धटनाधों ने उसे धीधिक धारिधक धृणा की धमता दी, धसमें धध्याय के धिधर्य धिधोह की धाय धर की १८३, धीर धाधारमक धटनाधों से उसे ध्यापक धेम की धामध्यं धिसी धीर इन धोनों के धोय से ही वह बन पाया—धेधर, धोर धाधिकारी धेधर।

धेधर धाध की धई धपने धीधन की धिधिम धधिधधधियों की धिसेधण धनक ध्याध्याध हूँ धेधर को धमधने में सहायक धिध होती है। कर्धकि इन ध्याध्याधों में धेधर का धीधन-धर्यन धधिधिधध हो धठता है।

'नदी के धीप' की धेकनिक

'नदी के धीप' की धरिधधिधण धधधधी धमस्या 'धेधर एक धीधमी' की धमस्या से धिम्य है। 'धेधर : एक धीधमी' की धमस्या यह है कि उसका धायक धीसा है धीसा वह धृधा धणों ? धीर इसके धमधान के लिए धधर्यत धई। उसकी धधमान धमस्या के कारणों को धसके धतीत में धोजने की। इससे धेधर की धरिधधिधण धी धीसी का रूप बना—धतीत के धिसेधण द्वारा धधमान की ध्याध्या धीर, इस प्रकार, धरिध के धमिक धिधास का धिधण। 'नदी के धीप' में धाय धीसे हूँ, धे धीसे के धस ही उनके धधमान रूप के कारणों के धधि धिधासा धाय के धिना से लिए धय है।

१८१ धरी, धूसर धम, धू २३।

१८२ धरी, धधध धम, धू ३०।

१८३ धधेध 'नदी के धीप' धधध धम धू ३०।

यहाँ लेखक का लक्ष्य उन पात्रों को उनकी वर्तमान स्थिति में पहुँचाने वाले घटीत के गर्भ में छिपे कारणों की खोज नहीं, उनके विकास की वर्तमान अवस्था का उद्घाटन है। इस प्रकार, 'नदी के द्वीप' चरित्र के अभिक विकास का उपन्यास न होकर विकसित चरित्र के उद्घाटन का उपन्यास हो गया है। 'खेखर' में उसके नायक की वर्तमान विकासस्थिति का इतना ही महत्त्व है कि उसको समझने के बहाने लेखक उसके घटीत का विस्लेषण कर सका है, पर 'नदी के द्वीप' में वर्तमान ही सब कुछ है।

खेखर 'एक बीवनी' की टेकनिक की सीमा

'खेखर 'एक बीवनी' का चित्रपट अत्यन्त विद्यामय है और स्पष्ट भी पर उसमें कठिनाई एक यही है कि खेखर के सिवाय और सब की दृष्टि से वह पट प्रोफ़ण है। कोई सीमा अपनी मजह से उसे देख नहीं सकता। जिसने भी उस पट पर झरते हुए चित्र देखने हों उसे कमानायक खेखर की दृष्टि से ही उन्हें देखना होना या खेखर द्वारा दी गई उन चित्रों की रिपोर्ट पर विश्वास करना होना। खेखर के ३०-३२ वर्ष के लम्बे घटीत की वचनमयी प्रमुख घटनाओं का विस्लेषण उपन्यास में हुआ पर वह समस्त विस्लेषण हुआ है—एक व्यक्ति खेखर के दृष्टिकोण से ही। खेखर के घटीत की स्मृतियों के आधार पर किसी स्वतन्त्र निर्णय पर पहुँचना बड़ा कठिन है क्योंकि उसके घटीत की जो सामग्री उपलब्ध है, वह अपने यथावस्थ रूप में न होकर खेखर के अपने दृष्टिकोण के रूप में रंगी हुई है और पाठक को बहुधा ऐसा प्रतीत होने लगता है कि खेखर उस पर अपने दृष्टिकोण को आदकर उसे स्वतन्त्र रूप में किसी निष्कर्ष पर पहुँचाने नहीं देता। पर वह करे क्या? खेखर के घटीत को जानने का उसके पास और कोई साधन है ही नहीं। यह खेखर की खेसी की—घटीत की स्मृतियों के विस्लेषण द्वारा वर्तमान की व्याख्या—की सीमा है।

'नदी के द्वीप' की टेकनिक की विशेषता

'नदी के द्वीप' का चित्रपट इतना विस्तृत तो नहीं जितना 'खेखर 'एक बीवनी' का पर उसमें खेखर के सीमित दृष्टिकोण वाली बात नहीं। इसमें पात्रों का चरित्रोद्घाटन एक ही पात्र के चेतना-मार्ग से उसके सीमित दृष्टिकोण से नहीं हुआ। इस में चार पात्र हैं—मुबन, रेखा, गीता और बन्नामानव। चारों के दृष्टिकोण प्रमथ-प्रमथ हैं। चारों ही स्वतन्त्र रूप से अपना उद्घाटन और दूसरों का अध्ययन करते हैं। इसमें ११ परिच्छेद हैं और कुछ अन्तर आकर प्रत्येक पात्र के नाम पर दो-दो परिच्छेद हैं, जिनमें उसके अपने दृष्टिकोण से ही कथा प्रवाहित हुई है। तीन-चार परिच्छेदों के बाद ही संतराज है, जिनमें चारों पात्रों के पारस्परिक पत्र-व्यवहार के आधार पर उनके विभिन्न दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन उपलब्ध है। खेखर में लेखक के लक्ष्य पटल रहने पर भी नायक का निजी दृष्टिकोण (सब्सैविटिव व्यू) ही प्रमथ

मिसठा है क्योंकि लेखक जिस तटस्थ विमल (साम्यविमल मू) बहुत है, उस पर भी देखकर का चरित्र लगा है। 'नदी के द्वीप' की टेक्निक में यह विशेषता है कि इस से प्रत्येक पात्र का 'साम्यविमल' उद्घाटन ता हो ही जाता है साथ ही उसके प्रति अन्य तीन पात्रों के समय-समय दृष्टिकोण व्यक्त हो जाते हैं। 'नदी के द्वीप' चार संवेदनाओं का अध्ययन है—'साम्यविमल' तथा 'साम्यविमल' दोनों ही प्रकार से।

प्रत्ययलोकन प्रणाली

प्रत्ययलोकन की प्रणाली का प्रभाव 'नदी के द्वीप' में भी हुआ है पर एक सीमा तक ही। उपन्यास का आरम्भ उनके भाव 'भुवन के रेखा के साथ लक्षण में बिनाए पठ सप्टाह की बटनाओं की स्मृतियों से होता है। जो बटनाएँ उसके स्मृति पट पर एक-एक करके उभर कर उसे अपने में उसका रही हैं वे सप्टाह घर से अधिक पुरानी नहीं।

दूसरा प्रत्ययलोकन रेखा का मिलता है। भुवन के हेमन्त-सम्बन्धी बात सेइने तथा उनके बिनाह विच्छेद के कारणों को जानने की उसकी उत्सुकता को वह यथा स्थिति टासती रही थी पर 'जंतर-मंतर' के ऊपर बढ़कर अब उसे सचानक याद आया कि उसका पति हेमन्त वहाँ अपने एक मुवा मनु को लेकर आया था और 'तारे को लेकर बानों ने बड़ा की कसमें खाई थी'।^१ '५' तभी उसे सम्बन्ध विच्छेद वाली बटना याद आ गई और वह उसे 'भुवन को सुनाने के लिए' धीरे-धीरे छोड़ी। यद्यपि भुवन ने उसे सुनने से इन्कार कर दिया तो भी रेखा के स्मृति-पट वह बटना स्पष्ट उभर आई और वह अपने जीवन के उन दुःख अर्थों को दुबारा जीने लग गई।^{१५५} रेखा और हेमन्त को एक-दूसरे से अलग हुए १-७ वर्ष^{१५६} से अधिक नहीं हुए थे, इसलिए वह बटना भी १-७ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं।

तीसरा प्रत्ययलोकन फिर भुवन का है। जब वह मोटर में बैठकर भीमवार से पहुँचाने का रहा था और रेखा उससे पिछली सीट पर बैठी हुई थी तभी क्यों-क्यों उस आने जाती थी क्यों-क्यों भुवन का मन अधिकाधिक तीव्र मेटकों के साथ बीछे जाता था और बीरे बीरे रेखा की कापी में पड़े हुए भाव स्पष्ट होकर उसकी आँखों के आगे दोड़ने लगे थे—एक के बाद एक पक्षित, जैसे सिनेमा की पक्षियाँ मानो बैसाब पर बड़ी हुई घूमती जाती हैं और एक-एक पक्षित आनोहित होती जाती है।^{१५७}

१५४ 'नदी के द्वीप' पृष्ठ १४४।

१५५ वही पृष्ठ १४२।

१५६ वही पृष्ठ १६१।

१५७ वही पृष्ठ १५५।

पात्रों की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति

भुवन और रेखा के ये प्रत्यक्षसंक्रमण सोहृदय नहीं। दोसर की भाँति ये पात्र प्रत्यक्षसंक्रमण द्वारा अपने जीवन की सिद्धि नहीं जानना चाहते और न ही अपने घटीत में से कार्य-कारण परम्परा के उनके सूत्र सुनझाना चाहते हैं। इसलिए घटीत की जो घटनाएँ उनके स्मृति-पट पर मात्र उठती हैं वे उनकी नीर-झड़ धारण नहीं करते। यद्यपि इनका प्रत्यक्षसंक्रमण सोहृदय नहीं और उनकी स्मृतियाँ भी कोई बहुत पुरानी घटनाओं की नहीं तो भी जिस रूप में घटनाएँ उनकी स्मृति में आई हैं, उससे उन की तत्कालीन मन-स्थिति और उन मूल घटनाओं के प्रति पात्रों की संवेदनाओं का पता चल जाता है। यद्यपि माँघड़ वात्स्यकाल की स्मृतियों के महत्त्व पर ही बल देता है एवम्बर वात्स्यकाल की पुरानी स्मृतियों या प्रीतिवस्था की नई स्मृतियों में कोई अंतर नहीं समझता^{१८८}, इस दृष्टि से कि स्मृतियाँ नई हों या पुरानी जीवन के प्रति व्यक्ति के मूल प्रतिभास को ही अभिव्यक्त करती हैं, जो क्यों भर बैठे का बैठा बना रहता है^{१८९} यद्यपि पुरानी घटनाओं से जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को झूँट सकना आसान होता है।

भुवन रेखा

६

रेखा ने जो भुवन की कुहनी पकड़कर उसे ठेसते हुए कहा—“घण्टा बन्सी से खमार हो जाइये, आपकी गाड़ी जा रही है। उसके स्पर्श ने भुवन की नस-नस में उत्तेजना भर दी—“उसने सहसा जाना कि वह भीतर कहीं विचलित है और उसकी कुहनी चुनचुना रही है और उसका हाथ उसका अपना अवयव नहीं है और सब पर्वत विपर्यय हैं।^{१९०} किसी मारी का स्पर्श वह मारी जाहे प्रेयसी ही हूँ। इतनी उत्तेजना भर देवा घसाधारण-सा प्रतीत होता है, पर भुवन को जो इतनी तीव्र संवेदना हुई, उसका कारण था वह धर्म जो भुवन ने रेखा के उसकी कुहनी पकड़कर ठेसने का लगाया था। गाड़ी पर बैठे हुए भी वह अपनी कुहनी पर रेखा के स्पर्श का दबाव अनुभव कर रहा था और उसे ऐसा प्रतीत होता था कि ‘वह दबाव डकेलने का नहीं खींचने का है।^{१९१} उसका यह धर्म मगाना ही उसकी संवेदना को तीव्र-से-तीव्रतर कर रहा था और साथ ही उसके अपने भीतर के भाव को उद्घाटित करता है कि

^{१८८} Anubeehar 'The Individual Psychology of Alfred Adler p. 191 (Comments).

^{१८९} Adler 'Science of Living p. 118

"We should not distinguish too sharply between old and new remembrances, for in new remembrances also the action line is involved."

‘सरी के ही’ पृष्ठ ४।

सम्बर-ही सम्बर वह रेखा की धीरे धीरे तरह खिंच गया था। संवेदना की तीव्रता ने ही यह सप्ताह की घटनाओं को उसके स्मृति-पट पर ला दिया था।

प्रथम जेंट के समय ही पारस्परिक वास्तवीय के बीच अपने किसी प्याइष्ट के समर्पन में भुवन का अंग्रेजी की इस कविता का उद्धरण देते समय 'ठमिऊ-सा रुझना' (ह पेन-मार्ग लविष यू इव मोर दैन घाई कैम बैधर) धीरे फिर उससे पहले का शब्द 'डीमोस्ट' का जाबा।^{१११} काफी हाऊस में रेखा के इन शब्दों पर उसका जीक उठमा 'पर आप तो यों ही इतने तटस्थ जान पड़ते हैं कि (काफी हाऊस की) वो मिनट की तटस्थता का धापके लिए क्या धाकपूर्ण होना'^{११२}—धीरे फिर संयतकर उठर देना—'यों तो धाता हूँ कि जोड़ी के लिए जीवन के सरपूर प्रवाह में अपने को डाल सकूँ—मुझे तो हमेशा यह डर रहता है कि कहीं तटस्थता के नाम पर मैं उनसे बिस्कुत दूर न जा पहुँचूँ'^{११३} रेखा के बारे में उसकी जन्मजात से पूछताछ, नदी के किनारे भुवन के आसह पर रेखा का एक बँसरा पीठ सुनाता, भुवन द्वारा अपने बारे में रेखा के ये शब्द सुन लेना अकेले हूँ सभी सीक पकड़ कर बसते हैं'^{११४} फिर प्रतापवद तक दोनों के हकट्टे छुट्टर का बर्चन धारि सप्ताह पर की घटनाएँ, जो भुवन की स्मृति में धाई बनका चुनाम ही रेखा के प्रति भुवन के आंतरिक प्रसिध्दाय का सद्भावन कर देता है कि भुवन रेखा के व्यक्तित्व से सजग गया है।^{११५}

प्रथम जेंट की स्मृति—भुवन की रेखा की सबसे पहली स्मृति^{११६} उसके उस रूप की है, जबकि वह लखनऊ वाली पार्टी के दौरान में 'कमरे की एक मोर मूम के एक छोटे से वृत्त के बीचों-बीच कुर्सी पर बैठी थी, घटा उसका सामा धीरे मोहों धँबरे में भी बाकी नेहरे पर साफ़ प्रकाश पड़ रहा था जिससे नाक मोठ धीरे ठोड़ी की धाकार रेखा-मुनहनी होकर उभर आई थी।'^{११७} रेखा की इस स्थिति निरचमता पर भुवन का जौनहल धाकर टिक गया था। उसने देखा कि रेखा में एक बूढ़ी है एक सलपाव है कि वह जिस समाज से निरी है धीरे जिसका केन्द्र है उससे धादूती की है। उसे गया जैसे रेखा के व्यक्तित्व की खुल्यमबता उसे चुनौती दे रही हो। यद्यपि किसी के व्यक्तित्व की चुनौती की प्रतिक्रिया भुवन को प्रायः सर्वदा नकारात्मक ही होती थी रेखा के व्यक्तित्व की चुनौती की वह टाल न सका था, टालने की बात ही उसके मन में न आई थी।^{११८}

१११ लवक, 'नदी के किनारे' पृष्ठ २२।

११२ वही पृष्ठ २७।

११३ वही, पृष्ठ २७।

११४ वही, पृष्ठ २७।

११५ वही, पृष्ठ २२।

११६ वही पृष्ठ २४०।

११७ वही, पृष्ठ २२।

११८ वही, पृष्ठ २२।

बड़ी जिसे पत्र लिखा या रहा हो उसके प्रति पत्र-लेखक की भावनाएँ भी व्यक्त हो जाती हैं। पत्र में जब किसी धन्य पात्र की चर्चा छिड़ती है, तब उसके बारे में पत्र लेखक के हक का भी पता चल जाता है। 'नरी के डीप' में पत्रालेखक सीता की उस से बड़ी उपयोगिता रही है पत्रों के परस्पर सम्बन्धों तथा एक-दूसरे के प्रति उनकी बदलती संवेदनाओं का प्रकाशन। जब वे एक-दूसरे से दूर हो पड़ते हैं तबमें एक अन्तरात्म पत्र आता है और वे परस्पर मिल नहीं पाते उस समय भावनाओं के आदान प्रदान का एकमात्र माध्यम पत्र ही रह जाते हैं। वे पत्र ही उस पत्रों की कोमल भावनाओं की संवेदनाओं तथा अनुभूतियों के बाह्य बनते हैं।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण

पत्रों में पात्र जब जाने या समझने आत्म-ज्ञापन करने लगते हैं तब जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का तथा उनके जीवन-दर्शन का पता चल जाता है। इस प्रकार उनके जीवन-दर्शन की जाग सेने के बाद आत्म ज्ञापन में निहित उनका उद्देश्य स्पष्ट होने लगता है। सीता को भुक्त और चन्द्रमाधव दोनों ही पत्र लिखते रहते हैं। इपर-उपर की बातों से निकल कर जब भी दोनों पत्र अपने पत्रों में व्यक्तिगत बातों पर आते हैं, उनके पत्र में जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण अपने आप प्रकट पड़ता है और उन दोनों के दृष्टिकोण की तुलना द्वारा हम उनकी मनोकृति समझ सकते हैं।

चन्द्रमाधव अपने एक पत्र में सीता को लिखता है 'हमें जिसकी यहाँ बितना थोड़ा-सा सुक मिलता है उतना ही हमें सातुर कृतज्ञ होंगे से जे लेना चाहिए—उसी का नाम स्वाधीनता है, बाकी सब संशय है, अन्तहीन आशाहीन संशय'।^१ सीता पत्रों से चन्द्रमाधव के सम्बन्ध का उत्तरोत्तर विकास जीवन के प्रति उसके इसी दृष्टिकोण द्वारा प्रेरित होता है। किसी से उसे वैयक्तिक लगान नहीं। जिस किसी से भी उसे मुक्त की आशा होने लगती है, उसी की ओर वह खिंच जाता है और उसके अविकारिक निकट होने के लिए असीर हो उठता है। जब तक उसे आशा रही कि वह रेखा को अपने नाम में बँधा सकेगा तब तक रेखा ही उसकी जीवन मैत्रा की कर्षणार बनी रही। रेखा के प्रति आत्म-ज्ञापन करते हुए एक बार तो वह अपने पत्र में स्पष्टरूप से प्रथम निवेदन कर देता है 'रेखा तुम नहीं जानती कि मैंने कितनी बार तुम्हें बुलाया था' 'तुम' कह कर ही नहीं 'तू' कह कर—तुम न कहकर केवल धीलों से मन से हृष्य की महक से अपने समूचे प्रतिरूप से। तुम अगर डेस्टिनी को मानती हो तो कहूँ कि जब से तुम्हें देता है तब से वह जानता रहा है कि डेस्टिनी ने मुझे तुम्हारे साथ बाँधा है, और मैं चाहूँ न चाहूँ इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि मैं तुम्हारी ओर बढ़ता जाऊँ, तुम दूर जाओ तो तुम्हारे पीछे घाऊँ

पून्नी के परसे धीरे तक भी' ।^१ * धीरे जब उसने देख लिया कि यह किसी भी सचिदानुचित उपाय से रेखा को अपनी धीरे सींचने में सफल नहीं हो सकता तब रेखा की धीरे से निरास होकर वह गोरा की धीरे प्रवृत्त हुआ धीरे उसकी धीरे जाल फैलाने लगा । प्रेम भरे अपने एक पत्र में वह नीरा को भी लिखता है 'सैन्टीमेंटल बातें मुझे कहनी ही नहीं आतीं नीरा जी । पत्र कहता हूँ कि उस दिन की वह भेंट मेरे लिए एक प्रलयणीय अनुभव था धीरे कदाचित् वहीं से मेरे जीवन में वह परिवर्तन शुरू हुआ जो आज देख रहा हूँ । मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि आप इस प्रकार मेरी हेस्टिनी बन जाएंगी' ।^२ * जब उसे नीरा भी अपने जाल में पड़ती हुई न बीबी तक उसने कुछ-प्राप्ति के लिए बम्बई की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री बम्बसेबा से दूसरा विवाह कर लिया ।^३ *

भुवन—विवाह के सम्बन्ध में नीरा को अपनी राय देता हुआ भुवन अपना ही जीवन-दर्शन प्रकट कर देता है : 'तुम्हें जो राह दिखती है उसी पर चलो नीरा ! बर्र के साथ साहस के साथ । धीरे ही जो तुम से सहमत नहीं हैं, उनके प्रति उदारता के साथ जो बावक [] उनके प्रति कहला के साथ । धीरे राह पर जब ऐसा साथी मिलेगा जिसका साथ तुम्हें प्रीतिकर, वाञ्छनीय कल्याणप्रद लगे, तब किसी की बात न सुनना जान लेना कि प्रब स्वतन्त्ररूप से जोखिम करने का समय आ गया । यही मैं मानता हूँ, स्वयं उस पार्ष्व को नहीं पाता वह दूसरी बात है । पर वह ठीक है, इसके बारे में मुझे जरा भी संशय नहीं है ।^४ * भुवन के मार्ग में कोई व्यक्ति बिरोध रूप से तो नहीं पड़ा—उसकी सबसे बड़ी प्रवृत्ति थी उसके प्रवेष्टन में सक्रिय परस्पर बिरोधी प्रवृत्तियाँ—फिर भी ब्रह्माचार के बारे में कहा जा सकता है कि वह भुवन के प्रति ईर्ष्या का भाव रखता था । ब्रह्माचार के अपने प्रति उस दल से भुवन अपरिचित नहीं था । यह जानते हुए भी कि ब्रह्माचार उसे दूसरों की दृष्टि में गिराना चाहता है, वह उसके प्रति उदारताभिषिक्त उदासीनता का भाव ग्रहण किए रखता है धीरे ब्रह्माचार की अंतिम विवृति की चर्चा करता हुआ वह नीरा को अपने एक पत्र में लिखता है 'किसी पर दया करना पाप है, नहीं तो मैं ब्रह्म को दया का पात्र मान लेता' ।^५ * भुवन की यह टिप्पणी उसके जीवन-दर्शन के अनुकूल ही है ।

पत्रों के द्वारा मानसिक चित्र

'नदी के द्वीप' के पात्रों के परस्पर सम्बन्ध एक-दूसरे के चेंद की सुविधा

१ १ अर्द्ध, 'नदी के द्वीप' पृष्ठ ८३ ।

२ ४ नदी, पृष्ठ ११८ ।

३ ५ नदी, पृष्ठ ४०० ।

४ ६ नदी, पृष्ठ १११ ।

५ ७ अर्द्ध 'नदी के द्वीप' पृष्ठ ४८ ।

के समान में स्थिर नहीं रहते। शारीरिक मेंट के समान में वे पथों द्वारा मानसिक में जारी रखते हैं। प्रथम मेंट के समय उनमें जो परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, उसे वे मेंट के समान में सुलने नहीं देते। अपितु पथों में आत्म-साधन द्वारा उसे सतरोत्तर विकसित करते रहते हैं। इसलिए पिछली मेंट के बाव और अपनी मेंट के होने तक वे पथों द्वारा या तो एक-दूसरे के बहुत निकट या भुके होते हैं और या फिर इतने दूर या पकते हैं कि उन्हें पुनर्मिलन की कोई इच्छा ही नहीं रहती। इस प्रकार दो मेंटों के मन्तराल में हुए पथों के पथों से उनके परस्पर सम्बन्धों के क्रमिक विकास को जोड़ा जा सकता है।

रेखा-भुवन : एक-दूसरे की ओर

भुवन से पहली मेंट के समान्ता तथा दूसरी मेंट से पहले रेखा से उसे जो पथ मिले, उनके साधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि वह द्रुत गति से भुवन की ओर खिंची बसी जा रही है और उसे अपनी ओर खींचने में प्रयत्नशील है : 'आपका परिचय मेरे हृदय के भुवन से क्यों मैं एक प्रकार क्योडि-किरण-सा है मैं तो किसी हृद तक कर्मबादी हूँ और सोचती हूँ कि मेरा इस बार का भग्नक जाना और आपसे मेंट होता और आपके साथ प्रतापक तक लौटना 'मिखा हुआ' था।^{१०}

'पर अब मैं उनके (चन्द्रमाधव के) साथ न जा सकूँगी—न अकेले न पार्टी में। इसलिए जाने की बात छोड़ देनी चाहिए। हाँ आप घर पर और लोगों को साथ लेकर जाने वाले हों तो मैं बस सकूँगी और आपका साथ पाकर प्रसन्न हूँगी—हाँ, आप मेरा साथ चाहें तक।'^{११}

'चन्द्रमाधव जी मैं मुझे लगनक बुसाया था। मैं बीपहर को पहुँची तो पहले हम सोच काफी हाऊस गये वहाँ आपके विषय में बातें होती रहीं मैंने तत्प क्रिया कि उनकी बातों में बार-बार एक छिपी ईर्ष्या व्यक्त हो उठती है जिसका कारण न समझ सकी।'^{१२}

'आपकी बिहठी की बात जोहती रूँगी। बसिक सोचती हूँ कुछ दिन आपके निकट इसलिए रह सकूँ कि जानूँ कि आपने मुझे क्या कर दिया है, नहीं तो एक पहरा परित्याग मुझे सानता रहेगा।'^{१३}

रेखा के पथों के उपपुनर उत्पत्तियों के अतिरिक्त उसके पथों के प्रारम्भ और मन्त के क्रमिक विकास—'प्रिय भुवनजी विनीता-रेखा'^{१४} 'प्रिय भुवन

१०. सद्य 'मरी के ईश' इव ११।

१०६ मरी, इव ११२।

११० मरी, इव ११२।

१२१ अवेव, मरी के ईश' इव १२४।

१२३ मरी, इव १२०-१२१।

बीं बापकी—रेखा' (धीर फिर बापे नया पग्ला ओढ़ कर पन्नामास द्वारा किए गए प्रेम-निवेदन की अपेक्षा करते हुए) 'भुवन बी—रेखा'^{११३} से भी इस बात का समर्थन हो जाता है कि वह भुवन के सामीप्य-लाभ के लिए तत्पर उठी है।

भुवन रेखा : एक-दूसरे से दूर

'बायनमिस्ट-सर्वन' के मजदुरे ही गिर जाने पर रेखा और भुवन के असम समान स्थानों पर चले जाने के बाद उनमें जो परोक्ष व्यवहार हुआ उससे उन दोनों की तात्कालिक मनोदशा का तो पता चलता ही है। साथ ही यह भी बात हो जाता है कि कितनी तेजी से वे एक-दूसरे से दूर हो रहे हैं। रेखा अपने भतीत के 'फुलफिमसेण्ट' के सुख के अभाव में घासू बहाती है और भुवन उसे चाहते हुए भी अपनी भीतरी भुमकन के कारण पुनर्मिलन में अपने को असमर्थ पाकर उससे दूर भागता जाता है।

रेखा द्वारा भुवन को पत्र

"वहाँ फूल के सुहानी छारबीया बूप बीं धीर तुम के। धीर मेरा बरें पा। यहाँ गरम कद्दागम बीकलायी हुई हरियाली है, बूप से देह चुनचुना चट्ठी है। धीर तुम नहीं हो। धीर बरें की बचाव एक सुनापन है जिसे मैं खाति मान लेती हूँ।"^{११४}

"क्यों नहीं तुम पत्र लिखते? इतने दिन बाट देखते हो गए तुम्हारी धीर से कोई संकेत नहीं मिलता तो एक भयानक उदासी मन में छा जाती है, जिससे मयता है कि कभी उबर नहीं सकूँगी। कोई हवाप कोई संकेत तो दो भुवन—यों क्यों मुझे छोड़ दिया है तुमने?"^{११५}

"जो कुछ भी मैं चाह सकती वह मैंने तुम्हारे साथ में पाया है—प्यार भी वासना भी दोनों का जरम सुस्वर रूप—तब धीर मासब क्यों? तुम्हारा भीन मुझे चलता है क्योंकि मैं अधिकाधिक माँगती हूँ धीर वह सम्भव नहीं है, वह उचित भी नहीं है। भतीत को कोई अधिप्य नहीं बना सकता।"^{११६}

"मैं भीतर मर गई हूँ भुवन तुम से कट कर फिर से कहीं भी बढ़ सकती हूँ—किसी भी बुरे से बुरे मर-मनु के साथ भी रह सकती हूँ।"^{११७}

१ सर्वेय, नदी के बीन' एड १९२१/२२।

४ बीर एड १९२२।

५ बीर एड १९२२।

६ अवेय 'नदी के बीन' एड १९२८।

७ बीर, एड १९२६।

मुश्किल द्वारा रेखा को पक

“रेखा क्या कहूँ धीर करते नहूँ ? मैं मानता हूँ कि जो कहता नहीं थाता वह इसीलिए नहीं थाता कि वह मन के सामने ही स्पष्ट नहीं है—हो सकता है कि मैं स्वयं ठीक नहीं जानता कि क्या कहना चाहता हूँ—फिर भी भीतर जो झुमझुम है, उसके सामने कुछ जैसे प्रस्पष्ट है यद्यपि मैं उसे नहीं जान पाया धीर बही मानो मेरे धीर विचारों धीर कामों को निश्चित करती है” १९१८

“रेखा एक बात को तुम समझोयी- तुम नहीं समझोयी तो कोई नहीं समझ सकेगा- प्यार मिताता है साध मोगा हुआ स्नेह भी मिताता है लेकिन क्या ऐसा नहीं है कि एक चीजा पार कर देने पर वे अनुभूतिवाँ मिताती नहीं असम कर देती हैं, सदा के लिए धीर अन्तिम रूप से।” १९२१

“मेरे पास अधिक शिव नहीं हैं कहूँ कि एक ही है, पर नहीं—हमारे सामने अनुभवों का सम्बन्ध ही, रेखा। हमारे बीच में हीवार-सा बाड़ा हो जाता है। हम मिलते लेकिन मानो इस हीवार के पार-पार हम मिताएँगे लेकिन मानो इस चौखटे के भीतर है एक-दूसरे को देखते लेकिन मानो इस चौखटे में अकेले हुए—तुम उधर से मैं इधर से रेखा मैं धब भी तुम्हें प्यार करता हूँ उसमा ही पर १९२२

आम्य पार्श्वों के प्रति रुच

इसी प्रकार, परस्पर भेंटों के संतराम में चन्द्रमायक धीर रेखा में, चन्द्र मायक धीर मुश्किल में तथा मुश्किल धीर वीर्य में जो पत्र व्यवहार होता है उससे एक-दूसरे के प्रति उनका रुच व्यक्त होता रहता है। पत्रों में जब कभी तीसरे पक्ष की कर्त्ता छिड़ जाती है तो वलित पक्ष के चरित्र पर तो प्रकाश बढ़ता ही है साथ ही उस पक्ष के प्रति पत्र-लेखक के प्रतिभाव का भी पता चल जाता है। वीर्य को निवे प्रपने एक पत्र में उसके विवाह-सम्बन्धी निर्णय की बात छोड़ते हुए चन्द्रमायक मुश्किल पर जो छीटा करता है—“सुना वा कि आपके विवाह का निश्चय हुआ वा फिर सुना वा कि बात टूट गई यह भी सुना वा कि ‘मास्टर साहब’ के परामर्श से—मुश्किल जैसे विज्ञान के गवेषक की बात को कहकर है क्यादा प्रहमियत थी है बी जा सकती है। वह तो ऊन-ऊन भी नहीं है ऊन ही ऊन है धीर उस सागर से उमरता बही होता। यों आपके सामने निश्चय ही स्पष्ट कर्त्तव्य-पत्र होगा ऐसा मेरा विश्वास है” १९२१—उसमें मुश्किल के प्रति उनका ईर्ष्यापूर्ण रुच अपने आप ही व्यक्त

२१८. प्रवेश, ‘नदी के तीर’ पृष्ठ ३४२।

२१९. वीर्य, पृष्ठ ३४४।

२२. वीर्य, पृष्ठ ३४४-३४५।

२२१. प्रवेश ‘नदी के तीर’ पृष्ठ ३६।

हो उठता है। भाद्रमास के गौरा का जो उत्तर मिला उसमें गौरा का सामस्यमान का भाव तो झलकता ही है। पर साथ ही भुवन के प्रति गौरा की यज्ञ की भी अभिव्यक्ति हो जाती है। 'मास्टर साहब के बारे में आपने जो लिखा है, उससे मैं पूर्ण सहमत हूँ पर आप उससे जो परिणाम निकालते हैं उससे नहीं। वह विज्ञान में झूठे हैं, ठीक हैं। उसे आप नया भी कह लीजिए, पर इसलिए वह राय नहीं दे सकते यह मैं नहीं मानती। यों वह राय कभी देते ही नहीं पर जब वे सब वह अधिक सम्मान्य होगी, क्योंकि वह घनासक्त होगी। ऐसा मैं जानती हूँ।' २१२ अपने एक पत्र में रेखा का उल्लेख करता हुआ भुवन गौरा को लिखता है "उसके (बन्धुपापक) वहाँ एक घोर 'रिमाकॅजल' व्यक्ति से परिचय हुआ—एक श्रीमती रेखा देवी से। तुम उन्हें देखतीं तो घबराह प्रभावित होतीं—एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा के सहज ठेक से नहीं कुछ की भाँति से निष्कार है।" २१३ और इस प्रकार रेखा के व्यक्तित्व की प्रभावोत्पादकता का परिचय मिल जाता है।

इस प्रकार, पञ्चात्मक बीबी के प्रयोग द्वारा यहाँ एक घोर मेसक-पात्र की सांस्कृतिक मानसिक अवस्था का 'सर्वाङ्गित्व' चित्र उपस्थित कर देते हैं वहाँ पत्रों में किसी तीसरे पात्र की जर्नल द्वारा घासोप्य पात्र का 'सांस्कृतिक' अध्ययन भी प्रस्तुत हो जाता है।

‘मेसर एक बीयनी’ और ‘नबी के डोप’ की समान टेकनिक उद्धरण असी

प्रारम्भ के उपन्यासों में हिन्दी के प्रतिरिक्त अंग्रेजी बोलता संस्कृत पंजाबी आदि अनेक मापार्यों के बीतों और यह पक्षाओं के उद्धरणों का बाहुल्य देखकर कुछ लोग चौंक उठे हैं, परन्तु वास्तव में इसमें चौंकने की कोई बात नहीं। पात्रों के चरित्रोद्घाटन की, उनके शूद्धतम चरित्रों को खोजने की तथा उनकी साम्प्रतिक समस्याओं के विवरण की यह भी एक प्रणाली है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य की साधारण से साधारण क्रिया भी अकारण प्रकट नहीं होती। उसके बीच पहले से ही मनुष्य के अन्तर्गत में पड़े रहते हैं और अनुकूल अवसर पाकर प्रकट हो जाते हैं। फ्रिडर नामक एक मनोवैज्ञानिक ने तो यहाँ तक लिख कर दिया है कि क्रिया का भूहे से सीटी बजना या कुछ गुमगुमाना, किसी चीज की अप्रिय या घटना किसी वय या पय के अर्थों को उद्धृत करना आदि तक भी निरर्थक नहीं होता। उसकी इस प्रकार की क्रिया का अर्थ उसके चेतन में जाड़े न आया हो पर

हो उठता है। पञ्चमाश्व की पीरा का जो उत्तर मिला उसमें गीत का धात्मसम्मान का भाव तो झलकता ही है। पर साथ ही भुवन के प्रति पीरा की घटा की भी समीक्षकता हो जाती है। 'मास्टर साहब के बारे में आपने जो लिखा है, उससे मैं पूर्ण सहमत हूँ पर आप उससे जो परिणाम निकालते हैं, उससे नहीं। वह विशाल में डूबे हैं ठीक है। उसे आप नसा भी कह लीजिए, पर इसलिए वह राम नहीं है सकते यह मैं नहीं मानती। यों वह राम कभी देते ही नहीं। पर जब ऐसे तब वह प्रबल सम्मान्य होनी क्योंकि वह घनासक्त होपी ऐसा मैं जानती हूँ।'^{१९२२} अपने एक पत्र में रेखा का संक्षेप करता हुमा भुवन पीरा को लिखता है "उसके (पञ्चमाश्व) यहाँ एक घोर 'रिवाकैवस' व्यक्ति के परिचय हुमा—एक श्रीमती रेखा ऐसी थे। तुम उन्हें देखतीं तो शक्य प्रभावित होतीं—एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा के सृष्ट तंत्र से नहीं कुछ की छाँव से निरूप है।'^{१९२३} और इस प्रकार रेखा के व्यक्तित्व की प्रभावोत्पादकता का परिचय मिल जाता है।

इस प्रकार पञ्चात्मक लैसी के प्रयोग द्वारा धर्म्य यहाँ एक घोर मेधा-मात्र की तात्कालिक मानसिक अवस्था का 'इम्बेडिड' चित्र उपस्थित कर देते हैं, यहाँ पत्रों में किसी तीसरे पात्र की चर्चा द्वारा आलोच्य पात्र का 'आम्बेडिड' सम्ममन भी प्रस्तुत हो जाता है।

'दोसर एक जीवनी' और 'नदी के तीरे' की समान टेक्निक उत्तरण-धर्म्य

धर्म्य के उपन्यासों में हिन्दी के प्रतिरिक्त संवेदी बंगला संस्कृत पंजाबी आदि अनेक भाषाओं के भीतों और पत्र पत्रों के उत्तरणों का बाहुल्य देखकर कुछ लोग चौंक उठे हैं, बरन्तु वास्तव में इसमें चौंकने की कोई बात नहीं। पात्रों के चरित्रोद्घाटन की, उनके नूतन रूत्यों को खोजने की तथा उनकी आन्तरिक उत्पन्नियों के विश्लेष की वह भी एक प्रणाली है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य की साधारण के साधारण क्रिया भी सकारण प्रकट नहीं होती। उसके बीच रहने से ही मनुष्य के धर्म्यतन में पड़े रहते हैं और अनुकूल अवसर पाकर प्रकट हो जाते हैं। फिस्टर नामक एक मनोवैज्ञानिक ने तो यही तर्क सिद्ध कर दिया है कि किसी का मुँह से छिटी बजाना या कुछ चुनचुनाना, किसी भीत की अधुनी तान खेड़ना किसी पत्र या पत्र के पंखों को उड़ान करना आदि तक भी निरर्थक नहीं होता। उसकी इस प्रकार की क्रिया का सर्व उसके चेतन में जाहे न माना हो, पर

उत्तराणों के रूप में व्यक्त होने पर वे उनके व्यक्तिगत भाव नहीं प्रतीत होते। इसलिए, जब कोई पात्र अपनी ऐसी कोमल भावनाओं को व्यक्त करना चाहता हो बिना किसी सम्बन्ध अपने सम्मुख सके किसी अन्य पात्र से हो तो उन भावनाओं को इस रूप में व्यक्त करने में उसे किसी प्रकार का भय और आशंका नहीं रहती। उत्तराचारमक सीसी की इस व्यवस्था और इस रूप में उसकी उपादेयता के कारण ही कदाचित् मन्नेय के उपन्यासों में इसका प्रचुर भाषा में प्रयोग हुआ है। 'नदी के द्वीप' के नामक भुवन के वे शब्द इस सीसी की उपादेयता को और भी स्पष्ट कर देते हैं "मान सीजिए कि 'क' 'ख' से प्रेम करता है। उनका प्रेम एक तथ्य है, चाप बड़ी भासानी से कह सकते हैं कि 'क' 'ख' से प्रेम करता—चापका अपना कोई तपात्र 'क' 'ख' से नहीं है। इसीलिए जब कल्पना कीजिए उस स्थिति की जिसमें अपनी धोर से यह बात कहनी हो। 'क' 'ख' से प्रेम करता है यह कह देना किटना भासना है, और 'मैं तुमसे प्रेम करता हूँ' यह कह पाना किटना कठिन—किटना 'पेनफुल'। क्योंकि एक तथ्य है दूसरा तथ्य—धीर तथ्य न कहना भासना है न सहना भासना है।"^{१११} इसलिए मन्नेय के उपन्यासों में प्रेमी पात्र और प्रेमिका पात्र दोनों ही एक दूसरे के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करते समय बड़ी सतर्कता से काम लेते हैं और यथा-सम्भव उन्हें अपने शब्दों में व्यक्त न करके दूसरों की 'कोटेडम्ब' के रूप में ही प्रकट करते हैं। इस ढंग से वे अपनी कोमल से कोमल भावनाएँ भी एक-दूसरे पर बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के प्रकट कर देने में सफल हो जाते हैं क्योंकि न तो उनके लिए इस रूप में उन भावनाओं को कह सकना कठिन होता है और न दूसरों के लिए उन्हें सह सकना ही कठिन होता है।

रेखा की भावनाएँ—पहलमाँव की धोर जबसे हुए रास्ते में उधरी हुई एक चट्टान पर भुवन और रेखा बैठ जाते हैं और भुवन की धोर से परमाक्ष्य होती है कि कुत्तियों के घाने से पहले रेखा एक बाग या दे। रेखा खड़ी हो जाती है, सामने आकर वह रैबलियों से ठोड़ी पकड़ कर भुवन का मुँह छठाती है कि उस पर पूरी धूप पड़े धण नर उसे निहार कर भुक्कुर भुम लेती है और तत्पश्चात् उसका यह पात्र मुखरित हो उठता है —

‘यदि वो नदियों का जीवन
कोमल नृत्यों में बीते
कुछ हासि सुन्हारी है क्या?
पुपभाप नू पड़े जीते।’^{११२}

इस बीच को गाकर रेखा कैबल अपनी अन्तरात्म इच्छा को ही गद्दी व्यक्त कर देती बल्कि भुवन के मन में भी उसी इच्छा को उद्दीप्त करने का प्रयास करती है।

पहलपान पहूँच कर चाँदनी रात में रेखा भुवन की जो पीत मुनासी है वह एक घनन कवि का है —

‘अब मेह ए बिप्ली घाउट घाफ मी ।’^{१११६}

इस यौत में मानो रेखा ही अपनी प्रलय-निवेदन कर रही हो ।

अपनी पुनर्जन्म के पश्चात् पहलपान में रेखा भुवन के लिए जो एक निष्काफा छोड़ गई थी, उसमें एक काव्य पर किसी कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी मिली हुई थी —

‘घाई सैह दू माई सात की स्टिस बेट बिनाउट होप

फार होप बुह की होप घाफ द रांग बिग

बेट बिनाउट लव फार लव बुह की लव घाफ द रांग बिग

देयर इज बेट केय बट द केय एंड द लव एंड द होप फार

घात इन द बेटिंग ।’^{१११७} —

रेखा के इस उद्धरण में उसकी तात्कालीन मनोरथा प्रतिबिम्बित हो उठी है कि किस प्रकार वह अपने अविष्य को भुवन की कृपा-दृष्टि की परीक्षा में छोड़ देती है ।

ऐसर—‘ऐसर एक जीवनी’ में भी इस उद्धरण-शैली का भरसक प्रयोग हुआ है । वास्तव में ऐसर और शारदा घान्ति और ऐसर तथा पद्मि और ऐसर इसी शैली में एक-दूसरे के प्रति अपनी प्रलय निवेदन कर पाते हैं । एकान्त संघर्ष में बैठा हुआ ऐसर शारदा को भीतानि की यह कविता सुनाता है —

‘घाव द के द लोटस ब्लून्ड एसास माई माइन्ड बाव स्टूडेन्स

एन्ड माई मू इट लाट ।’^{१११८}

(जिस दिन सततन घिना उस दिन मैं अपनी भा या मैंने नहीं जाना)^{१११९}

ऐसर हाथ लाए गए संवेदी कविताओं के एक संग्रह में से घान्ति ने एकान्त में ऐसर को जो कविता सुनाई, वह यह थी —

‘बेक बेक बेक

घान बाई कोलड से क्रैप जो सी ।

एन्ड माई बुह बेट माई टंग बुह अटर

द बाट्स बेट एराइज इन मी’^{११२०}

पद्मि की आत्मनिष्पत्ति—पद्मि और ऐसर के लिए तो एक-दूसरे के प्रति अपनी कोयम भावनाओं को प्रकट कर पाना और भी कठिन था क्योंकि वे बहुत भाई होने के कारण एक-दूसरे के प्रति अपनी भावनाओं को स्वयं भी छीक से नहीं

१११६ अमेर ‘मरी के हीन’ पृष्ठ २१४ ।

१११७ मरी, पृष्ठ २१० ।

१११८ अमेर, ऐसर : एक जीवनी, पहला भाग, पृष्ठ १७८ ।

१११९ अमेर ‘एरल एक जीवनी’, दूसरा भाग, पृष्ठ १२३ ।

हिन्दी-उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास

समझ पाते थे उन्हें प्रकट करना तो उनके लिए और भी आवश्यक हो गया था। आपसी छद्मरस-खेती को समाप्त करके उनके लिए तो और भी आवश्यक हो गया था। जिस रात खेहर पाटी के नीचे सम्बन्धों में चौकसी की उन्हें विशेष आवश्यकता थी। जिस रात खेहर पाटी के नीचे साकर आत्महत्या करने के प्रयत्न में असफल होकर घर बीटा था उस दिन साठी रात साधि उसके पास ही रही थी और उस रात के खेहर के सामीप्य से उसकी मनःस्थिति में जो परिवर्तन आया था उस द्वारा पाए गए इस पीठ में वह मुक्ति हो उठा था —

“घाबि मर्मर-ध्वनि कम जागिसो रे !
घाबि भय धत्तर भाये

कोबा पचिकेर पद-ध्वनि बाजे

ताई चकित-चकित भूम भागिसो रे -

घाब मर्मर-ध्वनि केन जागिसो रे ।” १३३

मरने से कुछ ही दिन पहले साधि ने खेहर से इस कविता को पढ़ कर सुनाने के लिए साधू किया —

“घाई बांट दु बाई, झाईल भु सव मी

झाईल गेट भु होल्ड मी केयर

झाईल आपतर लाईल अपना बाई सिप्य

एख लाईलस भार इन माई हेयर

माई बांट दु बाई झाईल भु सव मी

मोह ह भुठ केयर दु सिव

टिम सब हूक नभिम मोर दु भास्क

एख नभिम मोर दु सिव

माई बांट दु बाई ” १३४

इस कविता में खेहर-सम्बन्धी साधि की भावनाएँ अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो पायी हैं।

इस प्रकार, अपने उपन्यासों में छद्मरस-खेती के समावेश से प्रभेय पात्रों की जन अन्तर्गत भावनाओं को भी वास्तविकता से उजाड़ सके हैं, जिन्हें प्रगल्भ के पात्र कभी व्यक्त न कर पाते।

स्वप्न-विमोक्षण

‘मरी के दीप’ की रैसा का कहना है कि ‘सपनों’ के सिर-पीर नहीं होते। होते हैं जैसा मनोविश्लेषक बताते हैं तो उनका अर्थ जानने की शक्ति नहीं होती। १३५

१३५ अनेक ‘रोक’ : पृष्ठ ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००

प्रत्येक के पात्रों को गंध ही अपने स्वप्नों के चर्च आगने की जरूरत न हो प्रत्येक के पाठकों को उनके औपन्यासिक पात्रों के स्वप्नों में निहित गुह्य चर्च को जानना प्रयत्न आवश्यक हो जाता है वे स्वप्न चाहें कितने ही वे सिर-पीर के प्रतीत हों क्योंकि प्रत्येक के अपने पात्रों के स्वप्नों के व्यक्त रूप (मैनिफेस्ट-फॉर्म) के उत्प्रेषण द्वारा उनकी भीतरी गाँठों को उघाड़ने का प्रयत्न किया है। उनके पात्रों की इन भीतरी गाँठों का वास्तविक स्वरूप जाने बिना उन्हें ठीक-ठीक समझ सकना कठिन हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि किसी व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण जितना अधिक यथार्थ होगा उसे उतने ही कम स्वप्न आएँगे। इसी लिए ग्राम् रेखा गया है कि स्वप्न दृष्टिकोण वाले व्यक्ति को स्वप्न आया ही नहीं करते, क्योंकि जागृतवस्था में ही वह परिस्थिति की यथार्थता से अपने मानसिक संतुलन बैठा लेता है।^{१३६} स्वप्न-विश्लेषण प्रणाली के प्रवर्तक फ्रॉयड का कहना है कि प्रत्येक स्वप्न का एक चर्च होता है^{१३७}—विश्लेषण द्वारा वे सिर-पीर के प्रतीक से प्रतीक स्वप्नों की भी युक्तियुक्त व्याख्या की जा सकती है।^{१३८} स्वप्न का चर्च समझ में आ जाने पर स्वप्न के कारणों का पता चल जाता है क्योंकि वास्तव में स्वप्न का चर्च ही स्वप्न का कारण होता है।^{१३९} मनुष्य के अधीतन को समझने में स्वप्नों की उपादेयता पर जोर देते हुए फ्रॉयड से पहले बर्मन कवि हेबेस ने भी अपने वास्तविक वस्था के संस्मरणों में कहा था कि यदि कोई व्यक्ति अपने स्वप्नों का संकलित करके उनकी परीक्षा करे और उन स्वप्नों के साथ उनसे सम्बन्ध रखने वाली सहस्रवृत्तियों (ऐसोसिएषन्स) की खोज वे और फिर यदि उन स्वप्नों को अपने भीतरी के स्वप्नों के साथ मिलाकर उनका अध्ययन करें तो इस प्रकार वह अपने आप को मनो-विज्ञान की किसी भी अन्य प्रणाली की अपेक्षा अधिक प्रखरी तरह समझ सकेगा।^{१४०} फ्रॉयड पहला मनोवैज्ञानिक था जिसने बड़े साहस के साथ हेबेस के

१३६ Adler, "On the Interpretation of Dreams" *Int. J. Indiv. Psychol.* 2, No. 1 3-16.

१३७ Freud, *Interpretation of Dreams*. p. 19 103:

"The Dream has a meaning."

१३८ Dalbier, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud', p. 34:

"The strangest dream may be found on analysis to have a completely logical explanation."

१३९ Frink, 'Morbid Fears and Compulsions' p. 19-22:

"The meaning of the dream is the cause of the dream."

१४० Ansbacher 'The Individual Psychology of Alfred Adler' p. 257:

"If, man would collect his dreams and examine them and would add to the dreams which he is now having all the thoughts he has in association with them, all the remembrances, all the pictures he can grasp from them, and if he would combine these with the dreams he has had in the past he would be able to understand himself much better by this than by means of any other kind of Psychology (Hebbel)."

हिसारी-उपग्रहात में सारित्रिभक्त का विकास

इयाम-सांघवल (ड्रीम-सैकेमिडम)
निराम-सैकेमिडम

नियम प्रविष्टि के बीजन में हमारे कुछ धनुमय और धर्मगत पुष्प तबिलनाएँ होकर हमारे अचेतन में बहरी बंध जाती हैं और अचर्य वाक्य विद्वत् रूप कारण करके हमारे स्वप्नों में प्रकट होती हैं। यद्यपि स्वप्न में प्रकट होने वाले विकार विविध प्रकार के मिलते, पर मनोविरमेयकों में उनका संघटन मुख्य रूप से पाँच प्रकार का माना है 'संपन्न (कन्वेन्शन) विस्मयन (डिस्मैलेशन) नाटकीकरण (ड्रेमेटाइजेशन) प्रतीकीकरण (सिम्बोलाइजेशन) तथा संकष्टीकरण (इन्टेन्सिफिकेशन)। अचेतन के उपयोगों में पाँचों की मानसिक पुरवियों को प्रकाश में लाने के लिए अत्यंत सभी प्रकार के स्वप्न-संघटनों का प्रयोग हुआ है।

मनेक प्रकार के विचारों पथों और व्यक्तियों से सम्मिश्रित समित्त भावनाएँ
 पथ स्वप्न में इस प्रकार विवृत होकर प्रकट हों कि वे सब पुनः-मिल कर एक से ही
 योग्य एक ही होती हैं उससे संयोजन (कन्वेन्शन) स्वप्न-समयन कहते हैं। १५५
 या या सब छोटे भाई बन्धु को संयोजन में रखी जाते हैं। १५६
 पथ पर रख कर उसे पहले बूते से ही और फिर पदों के सिरे से माप या और
 नही दिया नहीं हुआ बाह्य जान से भार शक्ति को न वह पाते हुए कहा या नहीं
 या या न किसी ने उससे पूछा ही। १५७ उस दिन दोहरा नही
 या-सा चारपाई पर बैठ गया और बगल में सोने की चूल्हा पर
 से बैठ बाह्य पुनः से सार्वजनिक भाई, और नही उसकी दोर में बना फिर रम

Freud, Interpretation of Dreams p. 339
"The interpretation of dreams is the royal road to a knowledge of the unconscious elements of the mind."

"The interpretation of dreams is the 'royal road' to unconscious elements in our psychic life."

"The dream is man's path to a knowledge of the
and reproduces of the dream theoria."

... of Dreams ...
... in man, pain and ...
... of the dream ...
... of the dream ...

१९५५ मध्ये 'मरी के बलि' का प्रदर्शन ।

दिया। तब झींझू भाए । सरस्वती ने उसका धिर उठा कर भीरे से ठकिए पर रख दिया। वह सो गया। रात को उसने जो स्वप्न^{२४४} देखा वह इस प्रकार था

एक बिस्तीर्ण मरुस्थल। बुपहर की कड़कपी हुई धूप।

रोखर एक ऊँट पर सवार उस मरुस्थल को भीरता हुआ भागा था रहा है। भागा था रहा है। सबेरे से या कि भिखारी रात से वह जैसे भागा था रहा है।

धीरे उसके पीछे कोई था रहा है। रोखर को नहीं मालूम कि कौन, लेकिन वह जानता है कि कोई उसका पीछा कर रहा है और कभी वह मुड़ कर देखता है, तो पीछे बहुत से ऊँटों के घेरों से उड़ी धूल उसे बीखती है।

सीधरा पहर? धूप कम नहीं हुई, धीरे भी तीखी हो गई बात पड़ती है। और रोखर मागता था रहा है और उसके पीछे वह 'कुछ' भी बढ़ा था रहा है।

एकाएक सामने सेब के फूलों का बाग जिसके चारों ओर मिट्टी की ऊँची बाड़ लगी हुई है जिसमें कहीं-कहीं बिलें हैं और कहीं-कहीं भायरिस-जैसा कोई पीला है। रोखर ऊँट पर से उतर कर बाड़ पार करके बाग में घुस जाता है।

बाग में कुछ फूलों से लदे हुए हैं। इतने अधिक सबे हैं, कि सारी जमीन पर भी फूल बिखे हैं और वह बिलकुल शुभ्र हो रही है—

रोखर यकी साँस लेकर एक पेड़ के नीचे फूलों की सध्मा पर सेटठा है और सो जाता है।

सध्मा। सारा आकाश भारलत हो गया है। प्रतिबिम्बित लानी से धूमि भी सास जान पड़ रही है, और सेब ने कुछ मानो जंगली गुलाब के हों गये हैं— प्रत्येक फूल ऐसा सुन्दर लालिम हो गया है।

रोखर सठ बैठा है। सबरे का घातक उस पर फिर छा गया है। वह जानता है कि उस 'कुछ' ने वह बाग घेर लिया है और उसमें प्रवेश करने की ताक में है। और उसके ऊँटों के घेरों से उड़ी धूल चारों ओर छाई हुई है, उससे आनाश भय था रहा है।

रोखर उठकर एक ओर को मागता है बाग में से निकल जाता है पयरीला रास्ता बढ़ाई। रोखर बढ़ता था रहा है। वह 'कुछ' पीछे रह गया है लेकिन रोखर को बहुत घागे जाना है—बहुत घागे। किसी खोज में यद्यपि वह नहीं जानता कि किस वस्तु की खोज।

सध्मा घनी हो जाती है। रोखर अब भी चल रहा है। वह प्यासा है पर पानी कहीं दीगता नहीं। हाँ दूर वहीं जैसे भरने का रथ हो रहा है एक अट्टान के ऊपर बढ़ कर रोखर घागे देखा है और एकाएक रुक जाता है।

सामने नीचे बहुरता हुआ एक पहाड़ी झरना बह रहा है। कुछ स्वप्न निर्मल

शेखर मुटने टेक कर बैठता है, और हाथ टेक कर समझकर सिर नीचे मट फाता है जैसे अन्य पशु पानी पीने के लिए करते हैं। पर पानी बहुत नीचे है और वह उस तक पहुँचता नहीं।

उसके हाथ पर सरस्वती का हाथ है। वह भी उसके पास उसी तरह मुटने टेके बैठी है यद्यपि अभी तक वहाँ नहीं थी। और दोनों प्यासी प्राँकों से पानी की ओर देख रहे हैं।

शेखर बेबूता है पानी के मध्य में प्रवाह से किसी प्रकार भी प्रभावित न होता हुआ पत्थर से गाँव पर एक धकेला फूल खड़ा है। बहुत बड़ा—मिपटी हुई सी एक ही बड़ी सफेद पत्ती जिसके बीच-बीच में एक ठपे सोने-स बरुँ की एक डब्बी (पिस्टिल) है।

और देखते-देखते एक दिव्य छान्ति उसके ऊपर छा जाती है और वह जानता है कि यही है जिसे खोजने वह माया का जिसके लिए वह माय रहा था और वह छान्ति इतनी मरपूर है कि शेखर को रोमांच हो जाता है, वह दबाकर सरस्वती का हाथ पकड़ लेता है।

वह माय पड़ा। स्वप्न इतना सखीव इतना यथार्थ था कि शेखर ने हाथ बड़ाया कि सरस्वती का हाथ पकड़े। वह उसने नहीं पाया।

तब वह चारपाई पर उठ बैठा। इधर-उधर देखा। उठकर सरस्वती की चारपाई के पास गया। जब वह खोई हुई थी।

शेखर ने उसका मुँह देखने की चेष्टा की पर देख नहीं सका। सीट धाया एक सन्तुष्ट-सी साँस लेकर लेकर बैठ गया और फौरन नि स्वप्न नींद में धकेल हो गया।”

विरसेपथ

इस स्वप्न में शेखर के गत जीवन के अनेक भाग विचार और अनुभूतियाँ तथा कई वृत्त मिल कर एकाकार हो गए हैं। इसमें शेखर के जीवन का कटु यथार्थ मरस्यत के रूप में प्रकट हुआ है और उसका ग्रह (ईश) ऊँट के रूप में जिस पर चढ़ कर वह मरस्यत को नीरता हुआ भासा था रखा है। उसका पीछा करने बासा कुछ उसके माँ-बाप और अन्य लोगों के ग्रह हैं। जो उसे घेर कर उसका समझीकरछ करना चाहती हैं। इस मरस्यत में उसे केवल एक ही माहव (प्रोएसिस) दिखाई देता है और वह है सरस्वती। शेखर प्यासा ही भागता जाता था रखा है। उसकी प्यास ‘सिक्त’ की प्यास है जिसे वह बुझना चाहता है। पर झरने के पास पहुँच कर भी वह अपनी प्यास नहीं बुझ सका है। उसके हाथ पर सरस्वती का

हाथ है और वे दोनों प्यासी भाँखों से पानी की ओर देख रहे हैं। एक दूसरे के निकट तब होने पर भी दोनों प्यासे ही रह जाते हैं। बसन्ती 'सैक्स' दृष्टि (प्रतिक्रियेतन) की वे पा नहीं सकते वे सवे बहान-भाई हैं, सायब इसी लिए।

इस स्वप्न में बहिन दृश्य भी भिन्न-भिन्न समय पर रोखर द्वारा आघातबन्धना में देखे हुए अनेक दृश्यों के मिश्रित रूप हैं। उदाहरणार्थ स्वप्न के इस विवृत दृश्य— 'तामने सेब के बगों का बाग जिसके चारों ओर मिट्टी की ठोपी बाड़ लगी है जिसमें कहीं-कहीं बिलें हैं, और कहीं-कहीं आयरिस जैसा कोई पौधा है' २४२ का मूल रूप इस प्रकार है 'अब दोनों (रोखर और सरस्वती) सबसे निकट की दीवार पर पहुँचे और बीच से बिलों के मुँह बन्द करने लगे। कमी-कमी वे सायब की अपनी प्रिय आयरिस के पौधे की बीच सेते और उन्हें भी बिलों में दूँस कर बीचड़ से दबा देते'। २४३ यहाँ यह स्मरण रहे कि इस मूल दृश्य का सम्बन्ध रोखर की इस अनुमृति से है जिसमें सरस्वती उसके मन में एकाएक 'सरस्वती' से 'बहिन' और 'बहिन' से 'सरस' हो गई थी। २४४

विस्थापन (डिस्प्लेसमेंट)

आघातबन्धना में किसी व्यक्ति के प्रति महसूस की हुई भावनाएँ जब स्वप्न में उस व्यक्ति से हटकर किसी अन्य व्यक्ति से सम्बन्ध हो जाती हैं तब उस स्वप्न संवटन को विस्थापन (डिस्प्लेसमेंट) कहते हैं। २४५ रोखर एक बीवनी में इसका एक बड़ा अंश उदाहरण है। जिस दिन रोखर ने स्मृता शान्ति के पास आकर बड़े भार से डरते-डरते अपना एक हाथ उसकी छोड़ी के नीचे कंठ पर रख दिया था और रोखर के हाथ पर टप से एक बड़ा-सा घाँसू गिरा था और रोखर ने महसूस किया था कि उसके हाथ के नीचे शान्ति का कंठ एक बार कुछ काँप गया था। उस रात स्वप्न में रोखर ने देखा कि 'शारदा तपेलिक से आकाश होकर मर रही है वह उसके पास गया और शारदा उसे कह रही है 'तुम मुझे मृत नए न नहीं हो मैं मरती' ? और उसके बड़े-बड़े गरम घाँसू टपटप रोखर के हाथ पर गिर रहे हैं।' २४६ रोखर के इस स्वप्न में पिछले दिन की उसकी शान्ति सम्बन्धी समस्त अनुभूत सम्बेदनाएँ ही स्वप्न में विवृत होकर प्रकट हुई हैं। २४७ स्वप्न में उनका

२४५ अदेव 'रोखर एक बीवनी परता गाग १४ २४५।

२४६ यही १४ २१।

२४७ यही १४ २१।

२४८ Dalziel 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p 82. Vol. I

२४९ अदेव 'रोखर एक बीवनी प्रथम भाग, पृ २६३।

२५० Freud, Interpretation of Dreams, p २२३।

"The experiences of the previous day furnish the most obvious material of its contents."

सम्बन्ध शान्ति से टूट कर धारवा से नष्ट गया है। पिछले दिन तपेविश्व से आक्रामक शान्ति ने उसके साथ जो कुछ किया था स्वप्न में वही कुछ धारवा उसके साथ करती है।

इस स्वप्न में शेखर की भावनाओं का विस्फासित होना एक स्पष्ट संकेत है कि शान्ति के प्रति शेखर के आकर्षण के कारण शेखर की विवेक-बुद्धि (कांसीन्स) ने उस अपराधी ठहराया था धारवा के प्रति उसके सच्चे प्रेम के शान्ति की ओर उनका पड़ने के कारण। अतः स्वप्न में शेखर को शान्ति के इस आशय प्रदान से संतुष्टि हुई थी अथवा स्वप्न में उसकी विवेक-बुद्धि इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी। उसके अचेतन में जो संघर्ष छिड़ गया था उसी ने स्वप्न में शेखर की सच्ची प्रेम भावना को धारवा से ही गंठना स्वीकार किया। फायदा का विचार है कि आगुवावस्था की अनुसूतियों का स्वप्न में इस प्रकार विस्फासित विवेक-बुद्धि द्वारा ही प्रेरित होता है क्योंकि आगुवावस्था की धिया उसे स्वीकार नहीं होती।^{१२१} स्वप्न के बाद शेखर का उठ बैठना और देखना कि उसका साथ सरीर कांप रहा है, धर्मकार मानो उसे काटने लगा है^{१२२} और फिर सप्ताह-भर उसका शान्ति को बेलने न आना दिन भर अपने कमरे के किबाड़ बन्द करके बैठे रहना भी उसकी सैक्स भावना और विवेक-बुद्धि के उसी संघर्ष को व्यक्त करते हैं, जिसकी प्रथम व्यक्ति इस स्वप्न में हुई।

मातृकीकरण (मातेडाइसेशन)

बहु स्वप्न से थोड़ा पहले की आगुवावस्था के बाद व विचार स्वप्न में छाया चित्रों में बहम कर प्रकट होते हैं और अन्तर्मुख के समान आँखों के सामने नाच उठते हैं, तो इस संघटन की मातृकीकरण कहते हैं। 'शेखर एक बीवनी' में इस प्रकार की विकृति या उबाहण बहु स्वप्न है जो शेखर ने काश्मीर की ऊँचाइयों में सीढ़ियों की धोज में भटकते हुए देखा था। काश्मीर भाषा की प्रथम रात को वह अपने सीढ़ों में कुछ का पीकर भेटा हुआ था वह बहुत थक गया था इतना थक गया था कि उसे नींद भी न आई—वह भेटा-लेगा सोचने लगा "कैसे मूर्ख है वह क्या और भी कोई ऐसे सीढ़ियों की धोज में निकला होगा? कहानियों में अक्सर सुनते हैं सेन्ट्रल कभी किसी ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि वे कहानियाँ धन हैं? 'कहानी और यथार्थ' ये दो घसग घेरियाँ हैं यह ज्ञान छोटे से बालक के मन में भी बैठ दिया जाता है 'वही एक मूर्ख ऐसा है कि नहीं समझ पाया यथार्थ जीवन में रह कर जीवन की धोज पकड़ना चाहता है—क्यों न लोग उस पर हँसे? उसे मूर्ख समझे? घर पर नगर की गंधवी और कोनाहल से घिरी हुई उसकी स्त्री भी

१२१ Freud Introductory Lectures on Psycho-analysis p. 117

१२२ अक्षय शेखर : एक बीवनी' अक्षय अक्षय, पृष्ठ १८१।

उसे हँसती होती कि मुझे छाड़ी करके सौंदर्य की खोज करने जाता है २१३ यह सोचते-सोचते वह सो गया और स्वप्न में उसने देखा "एक काभी चट्टान की गोम गोम घाँसें उस पर टिकी हैं। वह चट्टान कह रही है 'तुमने बहुत प्रशंसा किया जो सौंदर्य की खोज में जैसे भाए मेरे पास। और फिर वह एकाएक उसकी स्त्री में परिवर्तित हो गई जो ठठा कर हँस पड़ी। २१४ इसके बाद वह उठकर बाहर निकल आया और धीरे-धीरे कई वृक्ष उसकी घाँसें के सामने से गुजर गए।

इस स्वप्न में जागृतावस्था के भाव और विचार ठोस चट्टान के रूप में प्रकट हुए जिसका सम्बन्ध उसकी सौंदर्य की खोज से ही रहा। धर्म जागृतावस्था में अपनी स्त्री (कल्पित) के सम्बन्ध में सोच ही रहा था कि वह उसकी मूर्खता पर हँसती होगी पर स्वप्न में वह चट्टान ही उसकी स्त्री के रूप में परिवर्तित होकर उस पर हँसने लगी। इस प्रकार शेकर की जागृतावस्था के भाव उसके स्वप्न में छायाचित्रों के रूप में प्रकट होते हैं। २२२

प्रतीकीकरण (सिम्बोलाइजेशन)

बच प्रचलन में गहरी बीबी हुई व्यक्तियों या घटनाओं-सम्बन्धी अनुभूतियाँ स्वप्न में अपने प्रविष्ट रूप में न प्रकट होकर प्रतीकों के रूप में व्यक्त होती हैं। जब उस प्रक्रिया को 'प्रतीकीकरण' कहते हैं। नाटकीकरण (ड्रामेटाइजेशन) और प्रतीकीकरण (सिम्बोलाइजेशन) में अन्तर यह है कि पहले प्रकार के स्वप्न-संघटन में भाव या विचार ठोस वस्तुओं में बदलते हैं पर प्रतीकीकरण में या तो भाव भावों में बदलते हैं और या वस्तुओं में। २२१ 'नदी के द्वीप' में देखा मुबन के पीछे में भर्ती हो जाने की सुचना पाने के बीज ही परचात् जो स्वप्न देखती है उसमें उसके मन में दिये

२२१ अन्वय 'शेकर एक बीबी' दूसरा भाग-पृष्ठ २७-२८।

२२४ की पृष्ठ २८।

२२५ Freud, Interpretation of Dreams p. 223 :

"(Elliberer a Freudian dreamer while engaged in intellectual work and forcing his mind, inspite of a strong desire for sleep, to attend to an abstract thought,) it frequently happened that the thought escaped him, and in its place there appeared a picture in which he could recognize the substitute for the thought."

२२६ Dalziel, 'Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud' p. 163 :

"Two fundamental qualities distinguish symbolization from dramatization. In the first place, whereas dramatization leads from the abstract to the concrete, from the concept to the image symbolization leads from the concrete to the concrete, from the image to the image. In the second place the relation between the sign and the thing signified is strictly individual in dramatization, whereas in symbolization such a relation is the same in one man and another (Cf Freud, 'Introductory Lectures on Psycho-analysis, p. 176).

हुए सन्देश और सञ्चारों प्रतीकों द्वारा प्रकट या व्यक्त होती है। भुवन को मिले एक पक्ष में रेखा अपने स्वप्न का व्योम इस प्रकार हैती है —

‘देखा कि तुम हमारे घर आए हो। हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति में और सबसे मिले हो, पिता तुम्हें बाहर नदी के किनारे की रीस पर मेरे पास बैठा गए हैं, फिर हृष लोभ कायम की नावें बना कर नदी में डालते हैं और उनका बह जाना देखते हैं। नावें कभी दूर-दूर तक नहीं जाती हैं कभी पास या जाती हैं कभी टकरा भी जाती हैं कभी नदी में बहते हुए सीमानों में उलझ जाती हैं। सहसा देखती हूँ कि उन्हीं हमारी कायम की नावों में हृष भी बैठे हैं रीस पर बैठे देख भी रहे हैं पर नावों में भी हैं फिर नावें एक बावु के द्वीप में जा लपटी हैं वहाँ हम उतर कर नावों को खींचने लगते हैं पर नावों में बैठे भी रहते हैं। अब हम रीस पर से देखते भी हैं नावों में बैठे भी हैं नावों को खींच भी रहे हैं। फिर देखती हूँ बहुत से द्वीप हैं हर एक पर हृष नाम में भी बैठे, नाव को खींच भी रहे हैं और रीस पर बैठे देख तो रहे ही हैं। सहसा नदी का पानी बहती हुई बावु हो जाती है और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नहीं, कोई और बहता है तुम मुस्कानों की ओर कहें चेहरा तुम्हारा ही है वही भी है जो बहती है अब जाना है, जानेंगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा हो जाएगा तुम कहते हो सपना बोड़ी बेर और बेको न फिर चेहरा बस नहीं सकेगा। फिर मैं तुम्हारी मुस्कान देखती रही बोड़ी बेर में जाय गई। सपनों के विर-विर नहीं होते—होते हैं वैसे मनोविश्लेषक बताते हैं तो उनका अर्थ जानने की जरूरत नहीं होती पर मैं जानी एक मधुर भाव लेकर, फिर ध्यान आया कि तुम तो बर्मा में कहीं होते।’ १२५०

विरलेपक

इस स्वप्न में रेखा के पिता का भुवन को बाहर नदी के किनारे की रीस पर बैठा जाना रेखा की इस दृष्टि को व्यक्त करता है कि भुवन के साथ उसके मौन सम्बन्धों की सामाजिक भाव्यता मिल सकती—सामाजिक भाव्यता के अभाव में ही रेखा ने दोनों के मौन सम्बन्ध से उत्पन्न ‘वायुमिनिस्ट सर्जन’ को उत्पन्न होने से पहले ही मिरा दिया था। रेखा और भुवन का कागज की नाव पर बैठा रेखा के अचेतन में व्याप्त इस धारणा का प्रतीक है कि उन दोनों के सम्बन्धों की नींव कच्ची है और वे सम्बन्ध अधिक दूर तक नहीं चल सकते। स्वप्न में सहसा नदी के पानी का बहती हुई सूखी बावु हो जाना उनके पारस्परिक सम्बन्धों के नीरस हो जाने का प्रतीक है।

धीरे धुवन के बेहरे का बरसकर किसी धीरे का बेहरा बन जाना प्रतीक है। रेखा के प्रति धुवन के बरस हुए कस का। इस प्रकार, प्रतीकों द्वारा इस स्वप्न में रेखा की भास्तुरिक वास्तविकताओं को व्यक्तित्व में मिली है।

अज्ञेय अपने सपन्यासों में क्रांति द्वारा स्वीकृत समयग सभी प्रकार के स्वप्न संघटनों द्वारा अपने पात्रों के अचेतन में सक्रिय परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों के चौर संघर्ष का जो उन्हें निरन्तर विचलित किए रखता है धीरे परिस्थिति से उनका मान-सिद्धि संतुलन नहीं बैठने देता बिगड़ कर देते हैं।

प्रतीकात्मक प्रणाली

अज्ञेय के सपन्यासों में प्रतीकात्मक प्रणाली का भी प्रयोग हुआ है। उनके पास जब किसी ऐसी भावना को प्रकट करना चाहते हैं जो सत्य होते हुए भी कटु हो वास्तविक होते हुए भी असामान्यिक हो तो वे उसे अविद्या द्वारा प्रकट न करके प्रतीकों द्वारा ही प्रकट करते हैं। इस धारणा से कि अपने सपन्यास में वे भावनाएँ कहीं प्रत्यक्ष न कर दें। इसके अतिरिक्त कभी-कभी स्पष्टीकरण के लिए भी पात्र प्रतीकों का सहारा लेते हैं। 'नदी के द्वीप' सपन्यास का तो नाम भी प्रतीकात्मक है। 'नदी के द्वीप' प्रतीक है, इस सपन्यास के पात्रों के व्यक्तित्व का। रेखा के सपनों में वे सब पात्र जीवन-सरिता के 'प्रवाह' में छोटे-छोटे द्वीप हैं। उस प्रवाह के धिरे हुए भी उससे कटे हुए भी धूमि से बँधे हुए धीरे स्थिर भी पर प्रवाह में सर्वादा असहज भी—न जाने कब प्रवाह की एक स्वीरिणी लहर आकर मिटा दे बहा ले जाए फिर बाहे द्वीप का फूस-मले का आच्छादन कितना ही सुन्दर क्यों न रहा हो।^{१२८} इस सम्बन्ध में अज्ञेय की एक कविता का यह अंश भी उल्लेखनीय है —

हम नदी के द्वीप हैं।

हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर ओतस्विनी वह धाम।

वह हमें आकार देती है।

हमारे कोण, पत्तियाँ अन्तरीप, उमार, संकट फूल

सब मोसाहर्षा उसकी यड़ी हैं।

माँ है वह। हैं इसी से हम बने।

किन्तु हम हैं द्वीप।

हम धारा नहीं हैं।

स्थिर समर्पण है हमारा। हम सब से द्वीप हैं—ओतस्विनी के।

किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना—रेत होना है।

हम बहेंगे तो चहेंगे ही नहीं ।

धीर उलझिये । प्यवन होया । चहेंगे । सहेंगे—मिट जायेंगे ।

धीर फिर हम बुरे होकर भी कभी क्या धार—बन सकते !

ऐत बनकर हम सजित को समिक गँदसा ही करेंगे ।

अनुपमोयी ही बनायेंगे ।^{११२}

सामाजिक भावनाओं की अभिव्यक्ति

छेदार की अपनी पीढ़ी निकलते समय अनेक बार प्रतीकों का सहारा लेने के लिए बाध्य हो जाता है जबकि उसे अपने अन्ततम के ऐसे गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना होता है जो सामाजिक तथा धार्मिक हों। छेदार ज्यों-ज्यों बढ़ता गया अपनी अपनी बहूँ सरस्वती के प्रति उसका आकर्षण भी बढ़ता गया। एक स्थिति ऐसी आ गई कि छेदार के लिए 'छेदार का धीर सरस्वती की धीर कहीं कोई न था। जिसे हम संसार कहते हैं, उसका अस्तित्व मिट गया था।'^{११३} सरस्वती छेदार की बहूँ ही नहीं सभी बहूँ की इसलिये अपनी स्मृति तक में भी छेदार उसके प्रति अपनी माँ-ताओं की उनके वास्तविक स्वभाव में नहीं ला सकता था—उनके नीति-विरोधी होने के कारण। इसलिये सरस्वती के साथ अपने सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए वह प्रतीकों का सहारा लेते हुए लिखता है "उन्हीं वर्षों के विनीत दिन सरस्वती उसके मन में एकाएक 'सरस्वती से बहूँ' और 'बहूँ' से 'सरस' हो गई थी—यद्यपि इस अन्तिम संस्कार नाम का उसने कभी उच्चारण नहीं किया इसे मन में ही छिपा रखा।"^{११४} अर्थात् छेदार के लिए सरस्वती सहसा साधारण स्त्री से सम्बन्धी और सम्बन्धी से प्रेम का आलम्बन बन गई। इसी प्रकार 'नदी के द्वीप' की धीर के लिए उसके मास्टर भुवन की कमरा 'मास्टर की' से 'भुवन मास्टर की' होकर 'भुवन बादा' हो गए थे।^{११५}

प्रतीकों के सहारे प्रलय निवेदन

प्रेम के क्षण में 'तुम' और 'तू' प्रतीकों का पूरक प्रयोग हुआ है। स्त्री और पुरुष पात्रों का जब तक एक-दूसरे हैं प्रेमी प्रेमिका का सम्बन्ध नहीं घटता तब तक के एक-दूसरे के लिए 'आप' शब्द का प्रयोग करते हैं। पर ज्यों-ज्यों वे एक-दूसरे के निकट आते जाते हैं 'आप' शब्द का स्थान 'तुम' शब्द लेता जाता है। 'आप' मानी हमके लिए विलगाव का सूचक है और 'तुम' अनिवार्य का।

११२ कल्याण लक्ष्मणन हिन्दी साहित्य की प्राचीन और उनकी सामाजिक दृष्टि, कल्याण पब्लिशर्स १९७७ पृ० २३।

११३ अश्वेत, शम्भू : एक जंजीरी बहना भाग २ पृ० १२७।

११४ वही, पृ० = १।

११५ अश्वेत 'नदी के द्वीप' पृ० ७२।

कई बार तो पात्र इन प्रतीकों के सहारे अपना प्रणय निवेदन कर देते हैं। अपने एक पत्र में रेखा को प्रणय निवेदन करते हुए चन्द्रमाभव मिलता है "रेखा तुम नहीं जानती कि मैंने कितनी बार तुम्हें बुलाना चाहा है 'तुम' कह कर ही नहीं 'तू' कहकर—कुछ न कहकर केवल धीलों से, मन ही हृदय की बड़कन से अपने समूचे अस्तित्व से।" १९१ इस सम्बन्ध में युवन को मिले गीत के एक पत्र का यह संस भी उल्लेखनीय है : "मैं 'तुम' लिख गई हूँ—बिना इजाजत लिखे ही—तुम तो न मानोगे ? बोमने में सगठा है जब भी मिसू भी तो 'घाय' ही कहूँगी पर बिट्टी में 'तुम' लिखना ही आसाम भी धीर ठीक भी जान पड़ रहा है बस्कि सोचती हूँ 'घाय' अब कैसे लिखू ?" १९४ कई बार इन प्रतीकों को ठीक प्रकार से न ग्रहण करने पर पात्रों को बोझ भी लग जाता है। 'नदी के द्वीप' में रेखा धीर चन्द्रमाभव इस धोखे का शिकार होते हैं। रेखा, किसी विशेष अभिप्राय से नहीं केवल उम्र में बढ़ी होने के कारण चन्द्रमाभव को 'तुम' कह कर बुलाने लग गई थी, चन्द्र भी उसे कभी-कभी 'तुम' कहने समझा या पर उसका 'तुम' कहना अभिप्राय या इस बात का संकेत या कि वह रेखा से अनिच्छता चाहता है। चन्द्र के इस अभिप्राय को न समझ सकने के कारण रेखा को उसकी इस प्रवृत्ति के रोकने की आवश्यकता न महसूस हुई। पर इस धीर रेखा की चुप्पी का कार्य चन्द्र उसकी स्वीकारिता लपटा रहा। इस प्रसंग में युवन को मिले रेखा के ये शब्द उल्लेखनीय हैं "फिर उन्होंने कहा 'यहाँ से रूँधी डूँटी चला जाए।' मैंने आपत्ति की तो बोले 'रेखा भी जरा-सी धीपी से डूँटी हो ?' वह मुझे सब धाप कहते हैं, 'घाय' धीर 'तुम' की लिबड़ी कुछ अद्भुत मगी पर घायब बिस्ती का मुहावरा है इसलिए मैंने ध्यान न दिया यह भी न लक्ष्य किया कि उनका स्वर धाबिष्ट है—बाब में यह भी धाब धावा—संक्षेप में कहूँ कि चन्द्र माभव ने अपना प्रेम निवेदन किया—जवानी भी धीर एक लिखा हुआ पत्र देकर भी।" १९६

'नदी के द्वीप' में धीर भी कई प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं 'कुतफिल मेंट' शब्द प्रतीक है, रेखा धीर युवन के परस्पर यौन सम्बन्ध का धीर इस सम्बन्ध के कमस्वल्प को होने वाला या उसकी बर्णन करते हुए दोनों उसके लिए 'धर्मन आपत्ति' निष्ठ शब्द का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार, प्रतीकों द्वारा प्रत्येक अपने पात्रों की असाधारणिक प्रवृत्तियों को उनकी मनोरथा में धाने वाले सूत्रमासिगुह्य परिवर्तन को चित्रित करते चमते हैं।

१९१ अथर्व 'नदी के द्वीप' पृ ११५।

१९४ वही, पृ ४६०।

१९५ वही, पृ १५।

१९६ वही पृ १९६।

कथोपकथन

घनेय के उपन्यासों में कथोपकथन काफ़ी माप में मिलते हैं विविध रूपों में भी। ये कथोपकथन कड़िबारी कथोपकथनों की भाँति सदा एक-से नहीं रहते अपितु पात्रों और उनकी स्थिति के अनुसार यत्किंचिद् बदलते रहते हैं। कथोपकथन की परम्परागत प्रणाली के अतिरिक्त घनेय के उपन्यासों में स्मृति में आए कथोपकथन (रिकॉमेन्डिड डायलॉग) आन्तराधिक (इंटरमिटेंट) संवाद लिखित रूप में बातां भाप आदि कई रूपों में मिलते हैं। ये कथोपकथन केवल कथानक को ही धामे नहीं बढ़ाते पात्रों का चरित्रोद्घाटन भी करते हैं। उनमें पात्रों की तात्कालिक मनोवस्था, उनके व्यक्तित्व की जुमझुन उनके व्यवहार में सबसे-सुबल संभाव रखने वाली प्रवृत्तियाँ सहज में ही प्रतिबिम्बित हो उठती हैं।

एक के प्रति दूसरे के कल की अनिव्यक्ति

पारम्परिक भेंट के समान ये एक-दूसरे से निकट का सम्बन्ध बनाए रखने के लिए धीरे धीरे एक-दूसरे के स्थापित सम्बन्ध को उत्तरोत्तर अनिष्ट बनाए रखने के लिए पात्र को काम पत्रों से लेते हैं, एक-दूसरे से भेंट का सामान्य प्राप्त होने पर वे वही काम घापी बातचीत से लेते हुए एक-दूसरे पर जुलसे जाते हैं। चन्द्रमाचन के यहाँ मुचन से हुई पहली भेंट के पश्चात् रेखा ने मुचन को अपनी धीरे घाकूट करने के लिए जो वन सिले वे उनका मुचन पर नया प्रभाव पड़ा वह जानने के लिए सबसे हिम्मी में दूसरी भेंट के समय रेखा बड़ी उत्कण्ठा से संनत-संनतकर, बातचीत प्रारम्भ करती है। स्टेशन से बाहर निकलते हुए उसे लेने आए मुचन को यह सूचित करते हुए कि वह बाई० बम्बू० ए० में ठहरेगी, उसने देखा कि मुचन ने उसे पास ठहराने का कोई साधन नहीं किया साधन करना तो दूर, उसे यह बताकर कि वह स्वयं कामिज में ठहरा है एक प्रोफ़ेसर के साथ, माथो मुचन कह रहा हो कि उसे हम नियम में दिलचस्पी नहीं है। तब रेखा ने बात का रस बढ़ाते हुए कहा —

“मुचन जी, एक स्मार्क की बात कहूँ ?”

“क्या ?”

“मैं बी-बार दिन यहाँ एक कार्ड तो घाप घपता कुछ समय मुझे बने ? हिम्मी में मेरे परिचित तो बहुत हैं, पर वह तुम्हारी की बात अधिक है या कर की नहीं जानती।”

“मुझे तो यहाँ कोई काम नहीं है, वो-एक व्यक्तिगत तो ही मित्रता मुमता हूँ मेरे पास बहुत समय है।”

“उबाऊँगी नहीं, यह बचन बेजी हूँ।” रेखा हँसती है। “ऊब जाने से पहले ही हट जाऊँगी—मुझे धीरे कुछ तो नहीं घाता पर ऊब के पूर्व जलण

बुन पहचानती हूँ। कहीं कि मेरे जीवन का मुख्य पाठ यही रहा है—ऊन की साठ सीढ़ियाँ। २८०

इस प्रकार भूमिका बाँधने के पश्चात् भुवन के बाप 'अधिक बात बिस बिषय की कर सकता हूँ वह स्वयं उबाने वाला हूँ' में प्रयुक्त 'बिषय' शब्द को नया अर्थ देते हुए एक सीमा प्रकाश कर देती है—

“भुवन बी आप आपने बारे में बात कहते हैं—करते रहे हैं ?

“नहीं तो—या बहुत कम। वह भी कोई बिषय है ?”

“तो ठीक है। कहना चाहिए कि वह नया बिषय है—मेरे लिए तो है ही आपके लिए भी है।” रेखा की धाँसें हँसी से चमक उठी। “घीर में बायबा करती हूँ इस बिषय से नहीं ऊँची—आप ही सब छोड़ें तो छोड़ें बल्कि मैं फिर-फिर सौट आऊँ तो आप कुछ तो न मानेंगे ?”

भुवन ने चौड़ा सकुचाते हुए यद्यपि कुछ तीप भी पाकर कहा “न-नहीं ता पर मैं फिर आपको बार्न करता हूँ वह बिषय बड़ा गीरस है घीर कहीं पहुँचता नहीं।”

“मैं तो पहले ही बता चुकी हूँ कि कहीं पहुँचने का सोम ही मुझे नहीं है—ऐसी मात्रा पर हूँ जो कहीं पहुँचती ही नहीं घण्टहीन है, यही क्या कहीं पहुँच जाना नहीं है ?”

“यह भी एक बुद्धिकोश हो सकता है—” कहकर भुवन निबत्तर-सा कुछ सोचने लग गया। २८१

इस बातचीत के पश्चात् रेखा यह तो समझ गई कि भुवन को तिथे उसके पत्र बेकार नहीं गए पर यह जानना अभी बाकी था कि उनका प्रभाव कितना घीर किस रूप में पड़ा होगा। इसलिए अपने दिन भूमते समय उसने फिर एक घीर प्रयास किया :—

“काफ़ी पीठे-पीठे रेखा ने पूछा, “भुवन बी आपने पहाड़ जाने के लिए घीर किसी को आमन्त्रित नहीं किया ?

“नहीं तो। फिर मेरा जाना ही तो नहीं हुआ—”

“अच्छा, आप जहाँ रिसर्च के लिए जाना चाहते हैं, वहाँ मैं आ जाऊँ तो आपके काम का बहुत हर्ज होगा ?”

भुवन ने झिंझकर कहा “वह तो एकदम बियाबान जंगल है रेखा बी। वहाँ—”

“फिर भी—कर्म कीजिए—”

“नहीं—घाप ही पड़ने करती न चाहें तो—छास नहीं होगा—इतना ही कि घापकी घसुबिया का ध्यान हमेशा रहेगा—”

“धीरे काम में बाधक होगा ।” रेखा हँस दी “ठीक है, मैं तो यों ही कह रही थी ।” २१२

इस प्रकार यह विश्वास हो जाने पर कि भुवन पर उसके पक्षों का वांछित प्रभाव पड़ा है वह बड़े नटझट भाव से उसे प्रतिकारपूर्ण ढंग से चेता देती है

“कल रात वाली गाड़ी से चली जाऊँगी—लेकिन वहाँ मन न लगा तो कासीर या जाऊँगी कहे बेटी हूँ । घाप भी खदेड़ देंगे यह कहकर कि हुन नहीं है ?”

भुवन ने हँस कर कहा “मैं क्या कहूँ या यह बताने का भी हुन नहीं है ।” २१३ भुवन के इस उत्तर से रेखा की पूरी तसल्ली हो जाती है और फिर बाब में यदि वह सहसा भुवन को इन खर्बों में ‘बड़े लाभदायक हूँ घाप । मुझे यों बचना अच्छा लगता है ?’ डाँट सकती है तो इस विषय के अन्त पर ही ।

यहाँ स्वानामात्र के कारण केवल एक ही उद्धरण दिया गया है पर अनेक के उपन्यासों में इस प्रकार के अनेक स्वयं मिलेंगे वहाँ पात्र दूसरे पात्रों के अन्तर्गत को जानने के लिए बातचीत बलाते हैं और स्वयं न जुलकर उन्हें जुलाने के लिए प्रेरित करते हैं ।

आन्तराधिक (इन्टरमिट्टेंट) सम्वाद

‘नदी के द्वीप’ में कथोपकथन की और भी कई धर्मियों के प्रयोग मिलते हैं । ये प्रयोग खटकते नहीं अपितु कथोपकथन की स्वाभाविकता को बढ़ा देते हैं । ‘इन्टर मिट्टेंट टॉक’ को ही मैं संक्षेप में इसे कितना स्वाभाविक बना दिया है । रेखा और भुवन एक ही यात्री में सफर कर रहे हैं । रेखा महिलाओं के बिच्चे में बैठी है और भुवन पुरुषों के बिच्चे में सफर कर रहा है । गाड़ी ज्यों ही किसी स्टेशन पर रुकती है, भुवन रेखा की खिड़की के सामने प्लेटफार्म पर या खड़ा होता है और पिछले स्टेशन पर हुई बातचीत के सूत्र को पकड़कर दोनों पुनः बातचीत में लीन हो जाते हैं और उन्हीं समय का ध्यान नहीं रखता । उनकी भलाता गार्ड की सीटी से ही भंग होती है और सहसा उनकी बातचीत बीच ही में टूट जाती है । जब तक यात्री चलती रहती है वे दोनों विचारधारी विषय पर चर्चा करते रहते हैं । अगला स्टेशन आने पर उनकी बातचीत का विस्तारिता पुनः चला पड़ता है । “बात ज्यों-ज्यों घाने चलती थी अन्तरे स्टेशन पर फिर न जा पहुँचना भुवन के लिए उतना ही अचानक जान पड़ता या अनुचित ही नहीं भुवन स्वयं भी बात घाने सुनने को उत्सुक रहता था ।” २१४

२१२ पृष्ठ, ‘नदी के द्वीप’ पृ० १११-११४ ।

२१३ पृ०, पृ० १४६ ।

२१४ पृ०, पृ० १४ ।

रेल के राफर ने इस प्रकार इंटरमिटेंट १०० टॉक के रूप में उनके भावप्रकाशन को सहज बना दिया था।

लिखित संवाद

कथोपकथन की एक धीर सीसी सी 'नवी के द्वीप में मिलती है और यह है लिखित कथोपकथन। समोर्वैज्ञानिक की यात्रा के लिए रेखा को बनाने दिग्ग में बैठकर मुबन प्लेटफार्म पर उसकी लिफ्ट की के सामने था खड़ा हुआ। उसने रेखा रेखा अपनी मोट-बुक निकाले उस पर कुछ लिखा रही है। कुछ ही देर बाद जब रेखा ने वह मोट बुक उसकी ओर बढ़ा दी तब उसने पढ़ा —

“उस दिग्ग में बैठकर बोकी हेर के लिए मैं अपने को यह मना करी थी कि हम साथ ही इस बाकी में यात्रा कर रहे हैं। पर अब यह लगता है कि आप मुझे बिदा कर चुके और उपचार बाकी है।”

मुबन ने कुछ न कहकर कापी लीटा ली।

रेखा ने फिर लिखा “अगले स्टेशन पर आप प्रतापगढ़ से आये बाद बसाने आयेगे ?”

अब की बार मुबन ने कहा “अर पछिस बीबिए। और लिखा “आप ही ने तो कहा था “आप अगले स्टेशन पर आना ?”

रेखा के चेहरे पर हल्की-सी खवाही लेम गई। कापी में उसने लिखा नहीं मेरी ख्यालती है। मुबन ने फिर कापी ले ली। बीच से कसम निकाल कर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखा “मकेले हैं न लमी भीक पकड़ कर बताते हैं।” फिर तनिक रुककर उस पर दुहरे उदररा-बिहल मगा दिए।^{१०२}

अगले के उपन्यासों में कथोपकथन का जो रूप प्रचुरतम मात्रा में मिलता है वह है—स्मृत बातालाप (रिकलेमेन्टिड डायलॉग)। कथोपकथन की इस सीसी में कथोपकथन और उनमें आय लेने वाले पात्रों से पाठकों का सीधा सम्पर्क नहीं हो पाता और न ही वे कथोपकथन उन्हें अपने मौखिक रूप में ही उपलब्ध होते हैं। उन्हें वे कथोपकथन उस रूप में ही मिलते हैं, जिसमें वे किसी पात्र या पात्रों की स्मृति में आ पाते हैं। ‘गेटर एक बीबनी’ के सभी कथोपकथन और ‘नवी के द्वीप’ के वे कथोपकथन जो मुबन की स्मृति में पुनः उभर उठते हैं इसी कोटि के हैं।

अगले के उपन्यासिक चरित्रचित्रण में अ-सोसता का आभास

एसी धीर पुष्प के तीन सम्पर्कों की जहाँ हिन्दी के उपन्यास-साहित्य के लिए

१०२. पन्ने ४, नवी के द्वीप पृ ११११।

१०३. नवी पृ १११११।

कोई नई चीज नहीं। पर इन सम्बन्धों का जितना विचार भी स्वच्छन्द चित्रण मात्र के उपन्यासों में हुआ है, उतना साधारण ही प्रयत्न मिले। जैसे ता 'सेखर' एक जीवनी में भी कई ऐसे स्वस हैं जिनमें एकान्त का विचार व्यापक हो उठा है। फिर भी 'सेखर' एक जीवनी के सेखर-सारणा, सेखर-शान्ति सेखर-धर्म के मार्ग में सीकड़ों प्रदर्शने हैं। एक घोर बर बालों का घर है तो बूझी घोर समाज के विधि-नियमों का। घर वालों से भावकर दूर भी जैसे चारों ओर समाज उन पर कड़ी निगरानी रखे रहता है। समाज की धातों से भोजन होकर एकान्तवास का प्रबन्ध कर में, तो भी उनकी विचार कृति अपने गमन रूप में नहीं प्रकट हो पाती, क्योंकि वहाँ उनकी अपनी विवेक-बुद्धि (कान्सीस) उनके मार्ग में यह जाती है। शक्ति घोर सेखर को ही में। बर बालों से दूर, वे दूसरे घर में साव-साव एक कमरे में रहते हुए भी निर्बिष स्वच्छन्दता का उपयोग नहीं कर पाते क्योंकि समाज की कड़ी निगरानी उस भी उन पर रहती है। वहाँ से भागकर वे दिल्ली में जा जाते हैं। वहाँ उन्हें एकान्तवास की सुविधा तो मिल जाती है समाज की कड़ी निगरानी भी उन पर नहीं रहती पर फिर भी वे एकान्त विचार नहीं कर पाते। उनके मन पर जैसे संस्कार उनके संयम का बाँध नहीं टूटने देते। जहाँ घर के लिए भी वे संस्कार उन्हें नहीं छूटने हैं कि वे दोनों बहुत-याही हैं।

'नदी के द्वीप' में राजा और भुवन के मार्ग में ऐसी कोई बाधा नहीं है। उनके घर बालों का तो कहीं निक भी नहीं जाता समाज उन दोनों के लिए माना प्रतिष्ठित नहीं रहता। 'इन्वेस्ट' नाम की बाधा भी उन दोनों के बीच में नहीं, तो फिर उनका सम्मुख विचार क्यों ? जैसे—विशेषतः जबकि वे एक-दूसरे को चाहते हैं। लेकिन चाहता तो उन्हें मिथुन तक न के बाकर उस स्थिति की घोर सक्रिय भर करके काम चला सकता था, पर लेकिन चाहता उस तो। इसलिए 'नदी के द्वीप' में एकान्त का विचार उत्तरोत्तर व्यापक होता जाता है और अकेले-अकेले मिथुन बढ़ता जाता है—“कुसे संसार में अकेले काफ़ी हाउस में अकेले कुबसिया बाप में अकेले, मनुष्य की कछार में अकेले मौजूदगिया ताल में अकेले सुमियन में अकेले सर्वत्र अकेले हैं अकेले।”^१ अकेले ही अकेले वे दोनों 'कुमफिलमेंट' की ओर बढ़ते रहते हैं।

अज्ञेय और लॉरेस में साम्य

'नदी के द्वीप' के इन स्वसों को गढ़ते हुए प्रसिद्ध अज्ञेय उपन्यासकार डी० ए० लॉरेस की याद आती है। लॉरेस का कहना है कि सभी घोर पुरुष दोनों प्रभव प्रभव 'सेखर' हैं उभयसंगिकता (बाई सेक्सुएलिटी) एक वैज्ञानिक कल्पना है। इस लिए, जहाँ किस्सा है कि सभी घोर पुरुष का मेन यदि हो सकता है तो मिथुन द्वारा ही। मिथुन द्वारा ही वे एक-दूसरे में प्रवेश करके एक-दूसरे की प्रकृति को समझ सकते हैं और एक-दूसरे के स्वच्छन्द और प्रयोगवादी रूप को पहचान सकते

है।^{१९९} इस प्रकार मिथुन सर्रिस के उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण धग बन जाता है।^{२००} इस प्रकार के मिथुन को सर्रिस पाप नहीं मानता यदि दोनों उसे ठीक समझते हुए सच्चे प्रेमी-प्रमिका बनना चाहते हों और दोनों में अपने प्रेम की व्योति जलाए रखने के लिए सच्चा साहस हो—फिर वह इच्छा बाहे व्यक्तिक ही क्यों न हो।^{२०१} इसका अतिप्राम यह नहीं कि सर्रिस उपन्यास और नैतिकता को दो परस्पर विरोधी दृष्टि मानता है। नैतिकता को तो वह कसा का घावस्थक संग मानता है पर ऐसी नैतिकता को जो उत्कट और सांकेतिक हो न कि उपदेष्टात्मक।^{२०२} उसका विश्वास है कि कोरी उपदेष्टात्मकता उपन्यास को मिथ्याण बना देती।^{२०३} सर्रिस का कहना है कि उपन्यास यदि डग से निखा जाय तो वह जीवन के गुप्ततम स्थलों का भी उद्घाटन कर सकता है क्योंकि जीवन के वासनापूर्ण गुप्त स्थलों पर ही हमारी संवेदनाएँ सबकुछ होकर समझ पड़ती हैं, हमारे मन को साफ और ठरो-साबा करती हुई।^२

१९९ Hoffman *Freudianism and the Literary Mind* p. 169

२०० D. H. Lawrence, 'Lady Chatterley's Lover' Signet Book, 1930, p. 175 :

"And she adored me. The serpent in the grass was sex. She somehow didn't have any I got thinner and crazier. Then I said we'd got to be lovers. I talked her into it. I was excited, and she never wanted it. She just didn't want it. She adored me, she loved me to talk to her and kiss her. In that way she had a passion for me. But the other she just didn't want. And there are lots of women like her. And it was just the other that I did want. So there we split."

२०१ D. H. Lawrence, 'Studies in Classic American Literature' New York 1930, p. 148 :

"The sin in Hamlet and Arthur Dimmesdale (of the Scarlet Letter) case was a sin because they did what they thought it wrong to do. If they had really wanted to be lovers, and if they had had the honesty and courage of their passion there would have been no sin, even had the desire been only momentary."

२०२ Ibid. p. 254 :

"The essential function of art is moral.....But a passionate implicit morality not didactic. A morality which changes the blood, rather than the mind."

२०३ D. H. Lawrence, *Morality and the Novel Phoenix*, p. 228 :

"If you try to nail anything down, either it kills the novel or the novel gets up and walks away with the nail."

२०४ D. H. Lawrence, 'Lady Chatterley's Lover' p. 60 :

"Therefore the novel properly handled can reveal the most secret places of life; for it is in the passionate secret places of life above all, that the tide of sensitive awareness needs to ebb and flow cleansing and refreshing."

समयग यही दृष्टिकोण धारण का भी प्रतीत होता है। धर्म्य स्वयं भी अपने को मॉरेस के निकट मानते हैं।^{१८१} यह बात 'नदी के द्वीप' के निम्नलिखित स्वर्णों की मॉरेस के उपन्यास 'मेडी बैटर्बीज सगर' से तुलना करने से और भी स्पष्ट हो जाएगी।

"मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नहीं है, केवल क्षण और क्षण का खेलकूत है—मानवता की तरह ही काल प्रवाह भी मेरे निकट युक्ति सत्य है वास्तव बिकला क्षण की ही है। क्षण सनातन है।"^{१८२} (पृष्ठ ३६)

+ + +

"रेखा कुछ सीधी होकर बैठ गई। भुवन ने दोनों बांहों से उसे कमर से घेर लिया। फिर उठ कर पीरे से रेखा की जाँघ पर रख दिया।

फिर धीरे धीरे किसी देर तक ऐसा रहा। सहसा रेखा चौंकी। भुवन का छाँट कर रखा था। जल्दी से मुँह कर रेखा ने उठका मुँह देखना चाहा पर उसने और भी जोर से उसे रेखा की जाँघ में गड़ाकर अपनी एक बाँह से ढक लिया।

रेखा बैठी रही बिन्तुक निश्चल। डाँकी सारी संवेदनार्थ जैसे पर्यंत खत्म हो गईं पर साथ ही भीतर कहीं कुछ बढ़ होने लगा।

भुवन सिसक रहा था, जब उसकी सिसकी स्पष्ट सुनी जा सकती थी। रेखा ने फिर उसे सीबा करना चाहा पर न कर सकी। फिर वह बैठी ही निश्चेष्ट बैठी रही।"^{१८३} (पृष्ठ १७९)

+ + +

भुवन ने उठकर उसके कानों पर कड़े—ठंडी जैसे कर्पे। बसाह उसे सिंटा

१८१ H. Vatsyayan, "Hindi Literature" 'Contemporary Indian Literature' Sahitya Akademi, 1957 p. 84.

"Ajmera (1911—) is sometimes bracketed with Joshi as an exponent of the Freudian novel—wrongly. His literary activities are, in fact, Browning and D. H. Lawrence."

१८२ D. H. Lawrence 'Lady Chatterley's Lover' p. 13.

"Connie had adopted the standard of the young; what there was in the moment was everything. And moments followed one another without necessarily belonging to one another."

१८३ D. H. Lawrence 'Lady Chatterley's Lover' p. 21-22.

"She stared at him dazed and transfixed and he went over and knelt beside her and took her two feet alone in his two hands, and buried his face in her lap, remaining motionless. She was perfectly dumb and dazed, looking down in a sort of amazement at the rather tender nape of neck, feeling his face pressing against her. In all her burning dismay she could not help putting her hand, with tenderness and compassion, on the defenceless nape of his neck and he trembled with a deep shudder."

रिधा, कम्बल उड़ा दिए। धीरे-धीरे उसके चेहरे पर हाथ फेरने लगा। चेहरा भी बिस्कुम ठंडा था। उसने साट के पास झुट्टे टोक कर नीचे बैठते हुए रेखा के माथे पर अपना गरम हाथ रखा उसका हाथ धीरे-धीरे रेखा के कन्धे सहसाने लगा। भुवन ने कंबल खींच कर कन्धे ढक दिये। कंबल के भीतर उसका हाथ रेखा का बस सहसाने लगा।

सहसा वह चौंका। गीने रेखम के भीतर रेखा के कुचाय ऐसे थे जैसे छोटे छोटे हिमपिंड। और अब तक वह रेखा के सहसा बात बजने मने थे।

सहसा रेखा ने बांहें बड़ाकर उसे खींच कर छाती से लगा लिया उसके दाँतों का बजना बन्द हो गया।"१८४ (पृष्ठ १६७)

+ + +

"भुवन जाने से पहले मैं एक बात कहना चाहती हूँ। घाई एम 'फुल फिस्ड'। अब अगर मैं मर जाऊँ तो परमात्मा के—प्रकृति के—प्रति यह धाक़ेस लेकर नहीं जाऊँगी कि मैंने कोई 'फुलफिस्ड' नहीं जाना—कृतज्ञ भाव ही लेकर जाऊँगी—परमात्मा के प्रति और 'भुवन तुम्हारे प्रति।"१८५ (पृष्ठ १७०)

+ + +

"रेखा जो कुछ हुआ है मुझे उसका दुःख नहीं है परिणाम नहीं है। और जो हुआ है उससे मेरा मतलब केवल प्रतीत नहीं है भविष्य भी है—कारण भी परिणाम भी। और यह नकारात्मक बात लगती है—मैं कहूँ कि मैं प्रसन्न हूँ एक क्षणिक है मेरे भीतर—एक क्षणिक भविष्य के प्रति एक स्वागत-भाव। यही मैं तुमसे कहना चाहता हूँ—वह जो घायला—घायला या घायली वह तो मुहाबरा है—वह मेरा है, मेरा भविष्य—उससे मैं लज्जाऊँगा

१८४ D H Lawrence *Lady Chatterley's Lover* p. 103 :

"You lie there," he said softly and he shut the door so that it was dark, quite dark.

With a queer obedience she lay down on the blanket. Then she felt the soft groping helplessly desirous hand touching her body feeling for her face. The hand stroked her face softly softly with infinite soothing and assurance and at last there was the soft touch of a kiss on her cheek."

१८५ Ibid., p. 103 :

"Then she wondered, just simply wondered, why? Why was this (sexual intercourse) necessary? Why had it lifted a great cloud from her and given her peace?"

नहीं वह तुम मुझे लोगी। भुसना मत—तुम्हें धीर तुम्हारी बेन का मैं बर
बान करके भेजा हूँ। १८१ (पृष्ठ २८१)

+

+

+

यही यह जान लेना असंभव न होगा कि 'नदी के द्वीप' के लेखक के सिद्धा
न्तानुसार— जो रस होती है जीवन को समझनी है उसे धरतीमत्ता नहीं कहना
चाहिए। १८०—इन प्रसंगों को धरतीमत्ता नहीं कह सकते। उपर्युक्त स्थिति में
भुवन धीरे देखा दोनों को रस दिया था, दोनों के—विशेषतः देखा के—जीवन को
समझा भी था इस समय से इन्कार नहीं किया जा सकता—वह समझना चाहे क्षण
भर के लिए था। वास्तव में भुवन की इस बात का मर्म है धीरे सन्तोष भी कि
वह देखा की 'फुसफुस्मेंट' का निमित्त बन सका "ती बया यही 'फुसफुस्मेंट' नहीं
है कि कोई किसी को वह परम अनुभूति दे सके—बेने का निमित्त बन सके—जो
जीवन की निरर्थकता को सहसा सार्थक बना देती है? सबभूष ऐसे संवि-स्मृत पर
ही करना चाहिए, यह कहते हुए कि मैं कुछ दे सका जो मुझसे बड़ा है, मुझसे
धन्य है। १८२

१. १. II. 'Lawrence, Lady Chatterley a Lover' p. 163 :

"To tell the truth, he was sorry for what had happened, perhaps most
for her sake. He had sense of foreboding. No sense of wrong or sin,
he was troubled by no conscience in this respect. He knew conscience
was chiefly fear of society or fear of oneself. He was not afraid of
himself."

१८०. धरती 'नदी के द्वीप', पृ० २८३।

१८२. वही पृ० २०८।

છઠા અધ્યાય
ઉપસહાર

उपसंहार

हिन्दी-उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास क्रम

प्रारम्भिक हिन्दी-उपन्यास—लोकरंजन की भाँप—समायात चरित्रचित्रण—
सोहरेय चरित्रचित्रण—सामाजिक प्राम्थोन्नत—लोकरंजन की भाँप—बहिरंग
चरित्रचित्रण—सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखने वाले उपन्यासकारों के
चरित्रचित्रण पर तुलनात्मक टिप्पणी—मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण—अन्तरंग
चरित्रचित्रण—मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के चरित्रचित्रण पर तुलनात्मक
टिप्पणी ।

उपन्यासिक चरित्रचित्रण की मुख्य समस्या

उपन्यासिक चरित्रचित्रण का मर्म



उपसंहार

हिन्दी-उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास कम

उपन्यास की हम चाहें कोई भी परिभाषा स्वीकार करें पर इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि उसका मुख्य विषय मानव-जीवन है। मानव एक पहेली है एक रहस्य है—दूसरों के लिए ही नहीं अपने लिए भी। इस पहेली को सुझाने ही उस रहस्य को खोलने की थोड़ी-बहुत चेष्टा प्रत्येक उपन्यास में मिलती है। उपन्यास का वास्तविक विषय तो मानव है पर मानव जीवधारी है उसका जीवन होता है। जीवन-संग्राम में प्रस्तुति उसकी विविध क्रिया-प्रतिक्रियाओं से ही उसका चरित्र मिल पाता है। इसलिये, उपन्यास मानव को उसके जीवन से प्रसंग करके नहीं देख सकता और उसका विषय विस्तृत होकर मानव-जीवन बन जाता है। मानव-चरित्र के उद्घाटन के लिए उपन्यास को मानव के जीवन और जगत् दोनों का जलजु करता पड़ता है। उपन्यासकार वस्तु-जगत् का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी मात्र को अपने कल्पित उपन्यास-जगत् के बीच लाकर, उसके जगत् की परिस्थिति का चित्रण करता है और उस परिस्थिति में हुई पात्र की क्रिया प्रतिक्रिया का बहसेपण करता हुआ उसके प्रति पात्र के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। पात्र की प्रवृत्तियों के साथ उसकी परिस्थितियों का अंतर्बिरोध दिखाने से ही उपन्यासकार का काम नहीं बनता प्रसंग निरन्तर बहजती हुई परिस्थितियों के कारण जीवन के अनुभवों में हुए परिवर्तन के फलस्वरूप इस अंतर्बिरोध में जो स्फांतर घटित होता रहता है, उपन्यासकार को उसे भी दिखाना होता है। इस प्रकार, चरित्रचित्रण के प्रयत्न में उपन्यास मानव की अपनी परिस्थितियों के साथ उसके सम्बन्ध की तथा अपने विचारों के प्रति उसके दृष्टिकोण के उत्तरोत्तर विकास की अभिव्यक्ति बन जाता है। हिन्दी-उपन्यास भी इस प्रक्रिया का अपवाद नहीं।

उपन्यास से मोक्षार्जन की माँग

हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि भारतम्बु कास (सन् १८२०-१९०० ई०) के

प्रथम चरण से ही तैयार होनी आरम्भ हो गई थी। भारतेन्दु-काल के पुर्नार्थ की राजनीतिक परिस्थितियों तथा सामाजिक प्रवृत्तियों का उत्सेह करते हुए हम भिन्न भाए हैं कि वह युग भारत के नैतिक पतन का युग था। जब राजा अत्याचारी हो पर हो शक्तिशाली तथा जनता तंग हो पर हो असहाय और निष्पाय तब उसके पास इसके सिवाय और क्या बाग हो सकता है कि हाथ पर हाथ धर, अपने भाग्य की रोटी खे—विशेषतः जब उसने संगठित मित्रोह के रूप में पुर्नार्थ करके देखा लिया हो और भाग्य ने उसका साथ न दिया हो। ऐसी घोर निराशापूर्ण स्थिति में जनता का भाग्य यदि प्रतिमानकी शक्तियों में विश्वास करने लगना सामाजिक या धर्म यह भी स्वाभाविक था कि धर्म के नाम पर कड़िबाद का बोसबाना होता और कुरीतियों और अपराधराशियों को प्रत्यक्ष मिलता। उस युग की जनता एक घोर तो इस प्रतीक्षा में एक-एक करके बिन काट रही थी कि जब अंग्रेजों के पाप का बड़ा भर कर पूरे घोर प्रतिमानकी शक्तियाँ उन्हें उतकी करनी का फल दें, बूझी घोर वह अपने दैनिक जीवन के अनुभवों की कटुता कम करने के लिए जीवन की यथार्थता से पसापन की ओर प्रवृत्त हुई।

हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों की जनता की इन प्रवृत्तियों को स्पष्ट करना पड़ा। चामिका की पुट लिए सामाजिक उपन्यासों ने जनता की पहली प्रवृत्ति को ध्यान प्रदान किया और तिसरम ऐम्पारी और जासूसी के उपन्यासों ने दूसरी प्रवृत्ति को स्पष्ट किया। धीनिवासदास, वासकृष्ण भट्ट आदि के उपन्यासों में अन्धे घोर बुरे पात्रों में संघर्ष, बुरे पात्रों द्वारा अन्धे पात्रों पर अत्याचार और अन्त में अन्धे पात्रों की विजय और बुरे पात्रों को उनके कुहरों के लिए दण्ड आदि के बिना स जनता के इस विश्वास को बल मिला कि पाप का बड़ा भर कर एक न एक दिन प्रत्यक्ष पूरेगा और अंग्रेजों के अत्याचार का अन्त होगा। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में तिसली करामातों के बिना से प्रतिमानकी शक्तियों में जनता की निष्ठा बढ़ी। उनके ऐम्पारों के मन्त्र-मुग्ध कर देने वाले किया-कलाओं ने पाठकों को आत्मविस्मृत करके उन्हें जीवन की कटु यथार्थताओं से मुक्त होने का—बोड़े समय के लिए ही सही—अच्छा प्रदान दिया। इस दूसरी प्रवृत्ति को स्पष्ट करने वाले उपन्यासों की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती गई और प्रेमचन्द के हिन्दी-उपन्यास-क्षेत्र में प्रवेश करते तक लोगों की इस माँग की पूरा करने के लिए हिन्दी-उपन्यास की प्रवृत्ति सोकरदास की अपेक्षा सोकरदास की अधिक रही। सोकरदास की पूर्ण अपेक्षा तो उसने नहीं की। देवकीनन्दन खत्री और गोपाधराम गहमरी ने भी अपने उपन्यासों में सए घोर अन्ध पात्रों के भेद की नहीं मुलाया, धर्म और न्याय के मार्ग पर बसने वाले पात्रों की अन्त में विजय दिखाई और दुष्ट और अपराधी पात्रों को दण्ड दिलाया। पर उनका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन रहा। उनका समय ताता प्रचार की विस्मयोत्पादक घटनाओं का अमरकारपूर्ण बखान करके पात्रों के हृदय में कुतूहल

जामत करते हुए उन्हें गुप्त करने की चेष्टा करना था—घटनाओं के घटाटोप के पीछे जो एक रहस्यमयता छिपी रहती है, उसका धीरे धीरे उद्घाटन करके पाठकों के प्रीत्युक्त को निरंतर बढ़ाते रहना था ।

अनायास चरित्रचित्रण

इसमें सन्देह नहीं कि इन उपन्यासों का सबसे मोहरकण था न कि पात्रों का चरित्रचित्रण, तो भी इन उपन्यासों में चरित्रचित्रण की पूर्ण उपेक्षा हुई हो यह नहीं कहा जा सकता । उपन्यास-रचना के लिए जिसकी उठा कर चरित्रचित्रण की समस्या से भला कोई उपन्यासकार बच पाया है । अपने पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए इन उपन्यासकारों ने बाह्य कोई धायास न किया हो पर उनके पात्रों के नामों परित्याप्तक वर्णनों प्राकृति-वैद्यभूषण-चित्रणों बटना जहाँ कथोपकथनी, धम्मियों के दीपकों पात्रों के एक-दूसरे को सिद्धे पत्रों प्रादि में उनका चरित्र अनायास ही व्यक्त हो पड़ता है ।

सौंदर्य चरित्रचित्रण

सामाजिक आन्दोलन सभीसर्वी घटाव्वी के अन्तिम चरण में हुए दैवध्यापी सुधारवादी आन्दोलनों ने भारतीय जनता का पतन के घतत पतं से उबार । राजा राममोहन राय स्वामी श्यामसुन्दरचरित्वादी महादेव गोविन्द रामादे स्वामी विवेका नन्द प्रादि के प्रबल परिश्रम से प्राचीन भारतीय संस्कृति का कुछ धीरे निमल रूप लोगों के सामने प्राया भारत के धीरब्रम्य अतीत का प्रकाशन हुआ धीरे धामिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की ओर सबका ध्यान गया । निराशा का स्थान आत्मविश्वास ने लिया लोगों की आस्था भाव्यवाद से हट कर सामाजिक संगठन में केन्द्रित हो गई तथा व्यक्तिगत सुख-दुःख की भावना नि स्वार्थ सेवा में बदलने लगी । समाज पर से रूपमधुनक लोगों का आतंक उठा धम के नाम पर प्रचलित कुरीतियों धीरे धम-धरम रामों की पोस कुची धीरे धारों धोर बड़े धोर से सुधारों की नाथ व्यक्त हुई । जब तक सामाजिक चेतना पूर्ण रूप से राष्ट्रीय चेतना धीरे धमनित स्वतन्त्रता-संग्राम में परिणत नहीं हो गई, अपनी परिस्थितियों के प्रति जनता का सुधारवादी दृष्टिकोण बना रहा धीरे धमकी चेष्टा समाज-व्यवस्था को सब प्रकार से सुदृढ़ धीरे ध्यापन बनाने की रही ।

इसी बीच अपनी मोहरकण-शक्ति के कारण उपन्यास साहित्य की धम सभी विधाओं से धामे बड़ चुका था । उसके पाठकों धीरे धमसुक्तों की संख्या में प्रावातीत वृद्धि हो रही थी धीरे इसके साथ ही उनका उत्तरदायित्व भी बढ़ रहा था । उपन्यास से माथ की जाने लगी थी कि वह मोकरकण में ही न उलझ रह कर सो-रक्षण की ओर भी प्रवृत्त हो तथा निस्संकोपवादक अस्वामाजिक घटनाओं के वर्णन

का मोह त्याग कर जीवन और मृत्यु की घमास समस्याओं का निष्पत्ति करे वह सुन्दर ही नहीं सिद्ध भी हो, प्रिय ही नहीं, हितकर भी न हो। सोकराएँ न मिले वह भावश्यक का कि समाज-व्यवस्था में उसके द्वारा स्वीकृत आचार-व्यवहार में तथा उसके विधि-नियमों में उपन्यास की पूर्ण आस्था होती और वह संस्थावाद का प्रचार करता। इस मार्ग की पूर्ति में उपन्यास कोरी कल्पना की उड़ान भरना छोड़ जीवन और मृत्यु के आसों का चित्रण करने लगा उसके पास प्रतिमानवी शक्तियों से वंचित होकर सीमित सामर्थ्य वाले गुण-बोध-युक्त मनुष्य प्रतीत होने लगे, और उनका चरित्रचित्रण उद्देश्य—सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवासपूर्वक—होने लगा।

बहिरंग (बाह्यचरित्र) चित्रण—इस पहले कहें कि मानव चरित्र हिमनय (माईसर्व) के समान है। जिस प्रकार हिमनय का केवल ३ भाग बस के ऊपर दिखाई देता है और शेष जल-मग्न रहता है, उसी प्रकार मनुष्य के चरित्र का अत्यन्त ही उसकी व्यक्त किया प्रतिस्मियाओं में प्रतिबिम्बित हो पाता है। मानव के चरित्र का बहुत बड़ा भाग तो उसके अचेतन मन में दब्यक्त रहता है और उसके व्यक्त आचरण को प्रेरित किया करता है। सामाजिक उद्देश्य को लेकर बिजने वाले इन उपन्यासकारों की बहि हिमनय जैसी मानव चरित्र के बस के ऊपर वाले व्यक्त अंश में ही रही और अपने पात्रों की आकृति बेधमूपा उनके आस-पास की परिस्थिति उस परिस्थिति में व्यक्त उनके हाव भाव, किया-प्रतिस्मिया, कथोपकथन आदि के माध्यम से ही वे उनके चरित्र को चित्रित करते रहे। इनमें से कुछ-एक उपन्यासकारों ने मानव-चरित्र के दब्यक्त अंश का आवास पाकर उसे चित्रित करने की चेष्टा की थी तो उनके चित्रण मनोवैज्ञानिक समस्याओं से दूर जा पड़े। उनमें पात्रों के अन्तर्हृद के मयार्थ रूप की झाँकी न मिल सके, क्योंकि अधिकांशतः उनके प्रवास का आधार सादृष्टापूर्ण अनुमान ही होता था। प्रचलितता उनकी प्रकृति अपने पात्रों का बहिरंग (बाह्य चरित्र) चित्रण करने की ही थी। वे उन्हें 'वे' के रूप में ही चित्रित कर सके थे। अपने पात्रों के दब्यक्त में रूप की पर्यायता से वे उपन्यासकार लगभग अनभिज्ञ ही थे। अपने सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें पात्रों के 'वे' रूप की आवासप्रदा भी नहीं थी। उनके लिए उनका 'वे' रूप ही पर्याय था।

सामाजिक उद्देश्य को लेकर मिलने वाले हिन्दी उपन्यासकारों में प्रेमचन्द का शीर्ष स्थान है। अपने पात्रों के चरित्रचित्रण की प्रत्येक अवस्था में वह उनके निर्माण में निहित सामाजिक उद्देश्य के प्रति जागरूक रहते हैं। उन्हें उद्देश्यानुकूल रंग-रूप प्रदान करके और अच्छी तरह सिखा पढ़ा कर ही प्रेमचन्द उन्हें उपन्यास के रंगमंच पर लाते हैं। उन्हें रंगमंच पर छोड़कर स्वयं जैसे पड़ी जाते अगितु नहीं उठे रहते हैं और उनकी प्रत्येक कतिबाधि पर निरवधारण रहते हुए उनसे बड़ी करछे दे, जिससे उनकी सामाजिक मांगकाओं की पूर्ति हो। पाठकों से प्रेमचन्द उनका

सीपा सम्पर्क नहीं होने देते और न ही पाठकों को उनकी क्रिया प्रतिक्रिया का मन माना प्रथम समाने देते हैं प्रत्युत साध-साध अपनी ओर से टीका टिप्पणी करते हैं और इसी बहुते पाठकों पर अपना मत लायते पाते हैं। इस प्रकार, प्रेमचन्द अपने पात्रों और पाठकों दोनों को ही अनुशासन में रखने की चेष्टा करते हैं। मानो उनके पास कल के छोकरे हों और पाठक निरे वृक्ष हों।

असहकर प्रसाद के पास का नाटककार का विद्यालय अनुभव। प्रेमचन्द की तरह वह अपने पात्रों के साथ उपन्यास के रंगमंच पर प्रकट नहीं होते। पात्रों को स्वयं ही अपनी क्रिया प्रतिक्रिया, कथोपकथन आदि द्वारा पाठकों पर प्रकट होने देते हैं। अपने पात्रों पर उनका नियंत्रण न रहता हो यह बात नहीं पात्रों को वे भी अपनी इच्छानुसार बसाते हैं। उनके पात्रों के आचार-व्यवहार के पीछे भी पाठक उनके अज्ञात के अस्तित्व को महसूस करता है, पर उसे बेस नहीं नहीं पाता। यहाँ तक कि पाठक कई बार चाहता भी है कि उपन्यासकार प्रकट होकर पात्रों के चरित्र की गुत्थी को सुलझाए, पर प्रसाद को तो सामने आने की आदत नहीं। परें की छोट में सड़े-सड़े ही वह पाठक की सुन-सुन परखते रहते हैं और उसकी फ्लैशबैक पर मुस्कुराते रहते हैं यह उनकी नाटकीय प्रणाली की सीमा है जिसके प्रति उपन्यासों में भी उनका मोह बना रहा है। चरित्रचित्रण की बिस्लेषणात्मक रीति में उनकी रुचि नहीं। बिस्लेषणात्मक रीति को तो प्रेमचन्द ने भी अधिक नहीं अपनाया। वह भी मुख्यतः वर्णनात्मक रीति में उलझे रहे। पर उनके पात्रों के चरित्रचित्रण में कहीं भी बुलबुल नहीं था पाई क्योंकि उन्होंने अपने पात्रों को बुद्धचरित्र (पार्वटिन कैरेक्टर) प्रदान किया जिससे वे बहिर्मुख अधिक रहे। पर प्रसाद ने सामाजिक आदर्शवाद के चक्कर में न पड़ कर अपने पात्रों को उनकी परिस्थितियों के अनुकूल ही दुर्लभ रहने दिया और सबसे बड़ी गड़बड़ यह की कि उनके भीतर के तरल इन्द्रिय की ओर संकेत करके उसे पूरी तरह चिभित किया बिना ही छोड़ दिया। परिणामतः उनके पात्रों की कई क्रियाओं की अंतःप्रेरणाओं में एकसूत्रता नहीं था पाई और वे असम्बद्ध रह गई हैं।

पात्रों के चरित्र-विकास की दृष्टि से अव्यतीचरण वहाँ प्रेमचन्द से बहुत आगे सभी सामाजिक मूल्यों के आगे प्रथम-मूपक पिछा समाने वाले मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के पात्रों के निकट ठहरते हैं पर चरित्रचित्रण की दृष्टि से वह प्रेमचन्द के ही संशोधित संस्करण कहे जा सकते हैं। व्यक्ति के सामाजिक रूप में उसका नैसर्गिक आधारण चित्रण बना रहता है और परिस्थिति के अनुसंधान से आरोपित उसका आनुवंशिक आधारण (एडेप्टिव बिहेवियर) विद्य प्रकाश देने वाले को भरमाता रहता है इसका चित्रण वहाँ भी के उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

अपने औपन्यासिक पात्रों के चरित्रचित्रण में कृत्रिमता का बर्मा का दृष्टिकोण इतिहासकार का अधिक रहा है और उपन्यासकार का कम। प्रत्यक्ष प्रमाण की ही

उनकी चरित्रचित्रण-कला में अधिक मान मिला है। जयशंकर प्रसाद की तरह नाटकीय प्रशंसा में और उसमें भी मुख्यतः कथोपकथनों के माध्यम से उन्होंने अपने पात्रों का बहिरंग चित्रण किया है। भीतर के तरल मानस को उन्होंने अधिक नहीं देखा। इसलिए, उनका चरित्रचित्रण सतही जाड़े रहा गया हो, उसमें वह पुष्टता नहीं मिले पाई, जो प्रसाद के औपन्यासिक चरित्रचित्रण में मिलती है।

चरित्रचित्रण की दृष्टि से मधुपान सोहेय्य उपन्यासकारों के बहिरंग चित्रण और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के अंतरंग चित्रण की सीमा पर लड़े हैं। न तो वह सामाजिक आदर्शवाद की दृष्टि में पात्रों के स्वरूप रूप में ही उनमें रहे हैं और न ही व्यक्तिमानस की सह्राद्यों में डूब कर खो गए हैं। क्योंकि उनके कई पात्र एक साथ बर्ण-विविध और व्यक्ति-चरित्र दोनों ही रूपों में चित्रित हुए हैं, उनके पात्रों का बहिरंग और अंतरंग दोनों प्रकार का चित्रण हुआ है। उनका चरित्र चित्रण न तो प्रथम सोहेय्य चरित्रचित्रण वाले उपन्यासकारों की तरह सतही रहा है और न ही उसमें मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण की पुष्टता पा पाई है। उनकी चरित्रचित्रण-कला पाठकों से किसी प्रकार के आराध की अपेक्षा किए बिना पात्रों का बाह्यान्तर स्पष्टिक स्पष्ट कर देती है पर एक सीमा तक और वह सीमा है उनकी मार्क्सवादी मान्यताओं की। मधुपान की चरित्रचित्रण-कला में यदि मपनी बात मनवाने का आग्रह न होता तो उनका औपन्यासिक चरित्रचित्रण बेबोड़ होता।

मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण

जब तक मानव का दृष्टिकोण अपने आस-पास की परिस्थितियों के प्रति उदासीनता का नहीं संघर्ष का दृष्टिकोण रहा था। इसलिए उपन्यास भी व्यक्ति और समाज के संघर्ष का तथा समाज के भीतर वर्ग और वर्ग के संघर्ष का चित्रण करता रहा। इन उपन्यासों के पात्र जीवन-भर समाज के संघर्ष करते रहे तथा समाज के विधि-नियमों में उनका भाग में बंध किए रखा पर बाण भर के लिए भी उन्होंने अपने को समाज से अलग नहीं माना। समाज के भीतर खूँकर ही वे उसकी व्यवस्था में कुछ आई विडम्बितियों को सुधारने में संघर्षरत रहे। समाज के अत्याचार द्वारा वे जाड़े पिस गए हों और सामाजिक न्याय में उनका विश्वास भी हिस रहा हो, पर समाज से अलग होने की उसकी पूर्ण अपेक्षा करने की बात उन्हें कभी नहीं सूझी थी। पर युग ने करबट सी। समाज के भीतर बंध और बर्ण के संघर्ष से तथा व्यक्ति और व्यक्ति के संघर्ष से समाज-व्यवस्था खोलसी तो हो ही रही थी वैज्ञानिक उन्नति और औद्योगिक विकास ने उस पर कराही चोट की। उधर डार्विन मार्क्स तथा फ्रायड के सिद्धान्तों के प्रभाव से सभी पुरातन नैतिक और सामाजिक धर्म बरतने लगे समाज के विधि-नियमों ने प्रति अस्वीकारिता का मान खोर पकड़ने लगा और बीरे-बीरे व्यक्ति-स्वातंत्र्य का उदय हुआ। व्यक्ति की आस्था अपने परि

पार्श्व—समाज वर्ग तथा परिवार—स हटकर अपने में ही केन्द्रित होती गई। उसकी बहिर्मुखता बड़ी धीरे-धीरे अन्तर्मुख होना लगी। उसके जीवन में बाह्य संघर्ष का स्थान मानसिक संघर्ष ने ले लिया। अपने परिपक्व के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण के बदलते ही उपन्यास का विषय भी बदल कर व्यक्ति-मानस हो गया उसके पास भी धीरे-धीरे बुल-मुख व्यक्ति होने लगे और चरित्रचित्रण का आधार सामाजिक रहस्य न रह कर मनोविज्ञान हो गया।

फॉयब की खोज ने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति-चेतना का जो रूप उद्घाटित किया था उससे उपन्यासकार को नई दृष्टि मिली। एडसर और बुच के सिद्धान्तों ने तथा स्टेकेल और हेनशॉक ऐलिस की धारणाओं ने उसकी बड़ी सहायता की। पात्रों के मन में हो रही उपल-मुल्लस क चित्रण का प्रयत्न तो वह पहले भी करता था पर वह उनकी आकृति बेप-भूपा उनके विविध अनुभाव और व्यक्त क्रिया-प्रति क्रिया पर आधारित अनुमान के बल पर होता था। अपने पात्र के मन में हो रहे संघर्ष के यथार्थ रूप से वह अब तक अपरिचित ही रहा था। मनोबैज्ञानिक ढोंकों ने उसकी आँखें खोल दीं और उसे पता चला कि व्यक्ति का व्यक्त चरित्र ही सबकुछ नहीं बल्कि उसकी क्रिया प्रतिक्रिया हाव भाव और कबोपस्थान में उसका स्वस्वांश ही प्रतिबिम्बित हो पाता है। येप अनिकांश तो अभ्यस्त रहता है और उसने व्यक्त रूप को प्रेरित करता रहता है। अब उपन्यासकार समझ गया कि उस अभ्यस्तांश का यथार्थ रूप जाने बिना व्यक्ति को समझ सकना कठिन है। फलतः उपन्यासकार के लिए व्यक्ति और परिस्थिति के संघर्ष का कोई मुख्य न रहा और वह व्यक्ति के मानस में हो रहे चेतन और अचेतन संघर्ष का पकड़ने में प्रयत्न हुआ। फॉयब एडसर और बुच के सिद्धान्तों ने तथा स्टेकेल और हेनशॉक ऐलिस की धारणाओं ने उसे नई दृष्टि दी और वह बड़े धारम विद्वान के साथ पात्रों के मानस की खीर-काढ़ करने और उनके अचेतन की परत-पर-परत खोलने में जुट गया। उसके पात्रों के चरित्रचित्रण में कोरे आधुनतापूर्ण अनुमान का स्थान मनोबैज्ञानिक प्रत्याक्षियों ने लेना प्रारम्भ किया और वह एक मनोविश्लेषक की दसता के साथ मनोविश्लेषण स्वप्न-विरतपण सम्मोह-विश्लेषण प्रत्यक्षमोहन-विश्लेषण दण्ड-सहस्मृति-परीक्षाएँ धावि हाथ पात्रों के अचेतन में पड़ी मानसिक ग्रन्थियों और उनके कारणों को उपाड़ने लगा। अब उसका उपन्यास पात्र और परिस्थिति के संघर्ष का उपन्यास न रहा और न नायक और प्रतिनायक के संघर्ष का ही प्रत्युं अब वह नायक के चेतना प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कांसासनेस) और उसके अन्तर्निवासों (इन्टीरियर मोनोलॉग) का उपन्यास बन गया।

अन्तरंग (सम्बन्धित) चित्रण—हिन्दी उपन्यास में जैनेन्द्र जी एक पट्टेरी के रूप में आए। हिन्दी के न पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने पाठकों को संकीर्ण सामाजिक नैतिकता से निकालकर मूल नैतिकता के लिए गहरे धारम-चिन्तन की धीरे प्रवृत्त किया। अपने पात्रों के मानस की गहराइयों में जोता समाकर उन्होंने यह दिया कि

कोई व्यक्ति को दिखाई देता है वह यही नहीं है। अपने पात्रों के मांस की परत-परत कोलकर उसमें यहरे जैसे अन्ततः इन्हीं को उपाकृष्ट उन्हीं यह भी सिखा दिया कि वे जो करना चाहते हैं वह उनके किए होता नहीं और जिससे वे बचना चाहते हैं, वह उनसे अपने-आप हो जाता है। उनके अन्ततः में निरन्तर परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों में संघर्ष चलता रहता है जो उनके भाव-विचार और आचार को प्रभावित करते परिस्थिति से उनका मानसिक संतुलन नहीं बैठने देता। अपने पात्रों की मनो-वैज्ञानिक समस्याओं का यथार्थ रूप चित्रित करने के लिए उन्होंने अनेक मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का सहारा लिया। पर उनकी गूढ़ आत्मचिन्तन-अणामी और उसमें आवश्यक व्याख्या-सूत्रों का अभाव चरित्रोद्घाटन की गई-गई सीधियों के मोह में पड़कर उप-स्वास्कार के सहाय अधिकारों का उत्तरात्तर त्याग आवश्यकता से अधिक व्यंकता के समावेश द्वारा पाठकों को भ्रमासे खूना उपवेधारमकता से बचने के प्रयत्न में अति प्राय की रास को बीस नहीं हुस्की बीज देकर बसना आदि कई विविधताएँ मिसकर उनकी चरित्रचित्रण कला में एक ऐसा "जीनैम्पन" ला देती हैं जिससे पूरा परिचय पाए बिना पाठक उनके औपन्यासिक पात्रों से साधुस्य स्थापित नहीं कर पाता।

इनाचनर जोशी ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति-मांस की बीर-काढ़ बढ़ी निर्भीकता से की और अपने पात्रों की अन्ततः प्रवृत्तियों को उजाड़ने के लिए सबभय सभी मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का सहारा लिया। मनोवैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा उद्घाटित पात्रों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के यथार्थ रूप को पाठकों पर प्रकट करने के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक व्याख्या का भी अपने उपन्यासों में प्रचुर मात्रा में समावेश किया और पात्रों में वह दुस्सह्य नहीं आने दी जिसके कारण जीनैम्पन की के पात्रों से झन्झट होती है। पर स्पष्टीकरण की पुनः में उनके उपन्यासों में व्याख्यात्मक अंश इतना अधिक बढ़ गया है कि उनमें खप नहीं पाता और उनके मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण की साधन से साध्य बना देता है। कई बार तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि विविध मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की नींव पर ही उन्होंने अपने पात्रों का निर्माण किया है।

'खैर एक बीवनी' की रचना द्वारा अजय ने हिन्दी-उपन्यास में चरित्र चित्रण को एक नई विधा प्रदान की। तब तक उपन्यासकारों की समस्त अति चरित्र विकास की विविध अवस्थाओं में पात्रों के चरित्रोद्घाटन में लगी रही थी। विकासमान चरित्र (कैरेक्टर इन दी मेकिंग) को चित्रित करने की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। हिन्दी-उपन्यास में सर्वप्रथम विकासमान चरित्र के चित्रण द्वारा मनोवैज्ञानिक आधार पर व्यक्ति के जीवन में कार्य-कारण वरूपरा को पकड़ने का प्रयत्न को ही है। प्रतीत की रसियों के विस्फोट द्वारा वर्तमान की व्याख्या के 'खैर एक बीवनी' की मुख्य टेकनीक है। उनका दूसरा उपन्यास 'नयी कि' में चरित्र के अतिरिक्त विकास का उपन्यास नहीं विकसित चरित्र के उद्घाटन का

उपन्यास है। अनुभूति के विविध स्तरों पर वह चार सवेदनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

इस प्रकार, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का संतरेय परिचित्रण भी सामाजिक उद्देश्य वाले उपन्यासों के बहिरंग परिचित्रण की स्पष्टता के बिना प्रतिक्रिया के रूप में प्रेरित हुआ या व्यक्ति-मागस की गहराइयों में खोकर इतना सूक्ष्म हो गया कि उसे पकड़ने के लिए पाठकों को अत्यधिक प्रयास की अपेक्षा होने लगी।

औपन्यासिक परिचित्रण की मुख्य समस्या

उपन्यासकार को सैकड़ों से निकलते ही उपन्यास पाठकों का हो जाता है। पाठक उपन्यास को पढ़ता ही नहीं साथ-साथ अनुभव भी करता जाता है। वह यह जानने के लिए घबरा रहा है कि उसके किस पात्र के धीरे-धीरे अपने अनुभव उस तक पहुँचाये जा रहे हैं और उनसे उसका अपना मन कहीं तक झिझा है क्योंकि उस की अपनी बत अनुभूतियों से ये अनुभव कहीं तक भेस खाते हैं। उपन्यास के किसी पात्र की मनोव्यथा जब पाठक के हृदय को छू जाती है उसके मन को खेद जाती है, वह पाठक का पात्र से साधु रूप स्थापित हो जाता है और वह धारम-विभोर होकर बाह-बाह कर उठता है। जिस उपन्यास के किसी भी पात्र से पाठक पूर्णतया साधु रूप स्थापित नहीं कर पाता उस उपन्यास से उसे साहित्यानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती—उसमें पात्रों के बाह्यान्तर का चित्रण चाहे किताब ही यथार्थ हुआ हो। हिन्दी-उपन्यास के इतना धावे बढ़ जाने पर भी प्रेमचन्द उपन्यास-सम्राट् बने हुए हैं तो इसलिए नहीं कि उन्होंने सबसे अधिक उपन्यास लिखे। इसलिए भी नहीं कि उन के उपन्यास पाठकों में बहुत बड़े-बड़े होते हैं। पाठकों के हृदय-सिंहासन पर उपन्यास सम्राट् के रूप में प्रेमचन्द जब तक इसलिए विराजमान हैं कि उनके उपन्यासों में यदि कोई पाठकों को वे चाहे किसी भी वर्ग या विचारधारा के हों एकाधिक पात्र ऐसे मिल जाते हैं जिनसे वे साधु रूप स्थापित कर सकें और दूसरी बात यह कि उनसे साधु रूप स्थापित करने में पाठकों को कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। इसलिए, औपन्यासिक परिचित्रण के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं कि वह पात्रों के बाह्यान्तरिक रूप का यथार्थ चित्रण कर सके। अतः यह भी आवश्यक है कि वह पाठकों से विशेष प्रयास की अपेक्षा न करे। अन्यथा जो पाठक विशेष प्रयास न कर सकेंगे उन के लिए उपन्यास के पात्रों से साधु रूप स्थापित कर सकना कठिन हो जाएगा।

हिन्दी-साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के उदय से पहले का औपन्यासिक परिचित्रण पाठकों से किसी विशेष प्रयास की अपेक्षा नहीं करता था। वह तक के उपन्यासकारों की प्रवृत्ति हिमनय-रूपी मानव चरित्र है। उन के ऊपर जाने व्यक्ति-माग के चित्रण में ही रही थी। उसके जल-मग्न व्यक्त माग के चित्रण में न तो उन्हें रुचि थी और न उसकी उन्हें आवश्यकता थी। इसलिए, उन्होंने अपने पात्रों का

प्रभावगत्या बहिरंग (माॅन्ड्रेविटय) चित्रण ही किया उनके उठी रूप को उपाड़ा जो विविध परिस्थितियों में दूसरों पर व्यक्त होता रहता था। अपने पात्रों के आन्तरिक चित्रण की उनकी मनोवृत्ति के वर्णन की भावस्थिरता तो उन्हें पड़ी और उन्होंने उसका धन भी दिया पर उसका आधार मनोविज्ञान नहीं उनकी आकृति-वेषभूषा, क्रिया प्रतिक्रिया हाव-भाव कथोपकथन आदि के आधार पर समझा गया अनुमान ही होता था जिसमें प्रायः मायुक्तता की पुट रहती थी। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पात्रों के चरित्र को समझने और समझाने की उनकी प्रक्रिया प्रयोगशाला में घप नाई जाने वाली विवेचनों की प्रक्रिया न थी प्रत्युत उन्होंने उठी पद्धति का आश्रय लिया था जिसे दैनिक जीवन में हम एक-दूसरे को समझने और समझाने के लिए अपनाते हैं। इसलिये, उन उपन्यासकारों के पात्रों से सामान्य स्थापित करके साहित्यिक नन्द प्राप्त करने में पाठकों को कोई विशेष आयास नहीं करना होता था, क्योंकि उपवासकार की चरित्रचित्रण-प्रणाली उनकी अपनी और चिर-परिचित होती थी।

व्यक्ति-मानस की गूढ़ता पर हिन्दी-साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के उदय से स्थिति बलवत् गई। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की दृष्टि मानव चरित्र के व्यक्त रूप की अपेक्षा अव्यक्त रूप में लक्ष्य की। वे हिमनय-रूपी मानव चरित्र के जल मल अव्यक्तों के चित्रण में प्रवृत्त हुए, जो स्वयं दृष्टि से धोमल रहकर व्यक्त रूप को प्रेरित करता रहता है। पात्रों के व्यक्त रूप की समझने और समझाने के लिए वे उनकी अन्तःप्रेरणायों को पकड़ने की ओर प्रवृत्त हुए और उनके मानस की मनोवैज्ञानिक आधार पर नीर-पाक कर, उसकी परत-परत खोसकर उनके व्यक्त आधार के चेतन ही नहीं अचेतन स्तरों तक को भी पकड़ने की चेष्टा करने लगे। पर अचेतन मन को पकड़ पाना कोई सरल काम नहीं। जैसे तो चेतन मन की प्रवृत्तियों को समझ पाना भी बड़ा कठिन है पर अचेतन मन की प्रवृत्तियों को पकड़ पाना तो और भी कठिन है। अचेतन की व्याख्या करते हुए फ्रायड ने स्वयं एक बार कहा था कि अचेतन मन की भीतरी प्रकृति हमारे लिए जसी प्रकार अज्ञात रहती है अथवा बाह्य जगत् की पार्वर्यता और अचेतन सामग्री में उसकी छमक उठती ही अपूरी मिमरी है जितनी हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत् की जानकारी। इस लिए, हम अचेतन को समझ सकना आश्चर्यजनक लोगों के नहीं मनोविश्लेषकों के ही बल की बात है। यह अचेतन मन जब व्यक्ति की अचेतन कल्पनाओं और विचारों की भाषा में भी पूरी तरह नहीं समझा जा सकता तो इसे समझना कैसे जा सकता है और वह भी चर्चों की ससीम भाषा में जो चेतन मन की ही एक उपज है। इसलिये, कहना न होना कि व्यक्ति-मानस की अचेतन प्रवृत्तियाँ इतनी गूढ़ होती हैं कि उपन्यासकार यदि सपन मनोविश्लेषक हो और उपन्यास में उसने उन सभी प्रणामियों का प्रयोग किया हो जिनको एक मनोविश्लेषक अपनाता है तो भी शायद ही वह उन्हें उपाड़ सज्जा। वास्तव में यह उपन्यास के विषय-अचेतन मन—की गूढ़ता है जहाँ

उपन्यासकार को साधारण हो जाना पड़ता है। जेनेटिक, इसायस जोशी, अनेप प्रभृति उपन्यासकारों के साथ चेष्टा करने पर भी उनके पात्रों के चरित्रचित्रण में जो सुकृति होती रही है उसका एक कारण यह भी है।

आस्था-साधना : मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण की पहली सीमा उसके विषय अथवा मन की अतिशुद्धता और अकथनीयता है जो उसकी दूसरी सीमा यह है कि अथवा का चित्रण अथवा मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण में निहित होता है। उतना ही समझ पाना पाठकों के लिए कठिन हो जाता है। जोसेफ फीक ने जो यह कहा है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास साधारण अर्थ में पढ़ा नहीं जा सकता—सब उसके पुनर्पठन की आवश्यकता होती है, उसका कदाचित् यही अर्थ है कि केवल एक बार पढ़ने से मनोवैज्ञानिक उपन्यास समझ में नहीं आता। मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखक से ही नहीं पाठक से भी आस्था की मांग करता है। हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का रूप स्थिर करने वाले पहले मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्रकुमार ने भी यह मांग अपने प्रथम उपन्यास 'परम' में ही व्यक्त कर ली थी।

मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण की सबसे बड़ी कमजोरी उसके यह मानकर चलने में है कि उसके पाठक मनोविज्ञान के पूर्ण पण्डित हैं और वे विविध मनोवैज्ञानिक प्रणालियों से पूर्णतया परिचित हैं। इसलिये, वह निःसंकोच उन सभी प्रणालियों का प्रयोग करता है, जिन्हें एक मनोविश्लेषक अपनाता है—अधिक से अधिक वह यह करता है कि औपन्यासिक सुविधा के अनुसार उन्हें जोड़ा-बिच्छा कर लेता है। अपने पात्रों के मुक्त आसनों (फ्री एसोसिएशन), स्वतन्त्र स्वप्नों (मैनीफेस्ट ड्रीम), अन्तर्बिचारों (इंटीरियर मोनोलॉग) आदि के रूप में जो अथवा मन की अनेक दुर्लभ-दुर्लभ सुविधाएँ मापा में होती हैं वह अपने पात्रों की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों के अथवा कारणों को अभिव्यक्त तो कर देता है पर उन्हें समझ तो बड़ी संकेता जो अथवा मन की मापा को समझने में विचार्य है। अभी ऐसे कितने पाठक होते—विशेषकर हिन्दी-उपन्यास के—जो बिना किसी सहायता के अथवा मन की मापा को समझ सकते हैं। यह तो साधारण पाठकों की बात है, पर पाठक यदि अनुसंधान मनोविश्लेषक हो तो भी यह कदाचित् ही पात्रों के मुक्त आसनों, अन्तर्बिचारों अथवा प्रवाहों आदि को पुरा-पूरा समझ सकेगा। क्योंकि उनमें ही हुई अथवा सामग्री उपन्यासकार ने अपनी अथवा अनुसंधान और सुविधा के आधार पर सजाई होगी जो मनोविश्लेषक पाठक के लिए अथवा और अपर्याप्त भी हो सकती है। दूसरे, पाठक जो अब स्वतन्त्र सामग्री पर ही निर्भर रहने के लिए विचार्य होना पड़ता है क्योंकि अथवा अथवा पढ़ने पर पात्रों से पूछ-छाछ करने की सुविधा—जो मनोविश्लेषक का सहायक अधिकार माना जाता है—उपन्यास के पाठक को उपलब्ध नहीं होती। ये कठिनाइयाँ नए पाठक की हैं जो मनोविज्ञान का पण्डित है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि साधारण पाठक मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण को कितना समझ पाता होगा।

पात्रों के चेतना प्रवाह को समझे बिना पाठक समझे सायुज्य कैसे स्थापित कर सकेगा और किसी पात्र से सायुज्य स्थापित किये बिना उसे उपन्यास में साहित्यात्मक की प्राप्ति कैसे होगी। इसीलिए, मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों का अन्तरंग (सम्बन्धित) चित्रण अधिक मर्याद होने पर भी उनके प्रवासकों की संख्या आज बहुत कम है। मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण पाठकों से अत्यधिक आवास माँगता है और उसकी इस माँग को पूरा करने वाले पाठकों की संख्या अभी नगण्य है।

चरित्रचित्रण का भविष्य

ऊपर मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण की दुकृष्टता का और सोद्देश्य मर्याद बहिरंग (सम्बन्धित) चरित्रचित्रण की सरलता का जो उल्लेख किया गया है उससे लेखक का अभिप्राय यह नहीं कि उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक अन्तरंग चरित्रचित्रण छोड़कर सोद्देश्य बहिरंग चरित्रचित्रण की ओर मोटें। न ही ऐसा करने से चरित्रचित्रण की यह विकट समस्या सुलभ सकेगी। काँचक एकतर ओर युग की सोचों ने व्यक्ति मानस और व्यक्ति-चेतना का जो रूप उद्घाटित किया है, उससे प्रेमचन्द प्रभृति उपन्यासकारों का सोद्देश्य चरित्रचित्रण मर्याद से दूर हटा हुआ प्रतीत होने लगा है। मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण को पूर्णतया समझ सकने वाले पाठकों की संख्या बाहे अभी अधिक न हो पर मनोवैज्ञानिक विद्वानों के प्रचार के कारण आज इस प्रकार के निरास पाठकों की कमी नहीं दिखे सोद्देश्य चरित्रचित्रण में उसके मर्याद से दूर लगने के कारण रुचि नहीं रही पर जो मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण में रुचि रखते हुए भी उसे पूरी तरह समझ नहीं पाते। इसीलिए, मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण की समझ उपयोगिता और उसमें बढ़ती हुई पाठकों की रुचि के कारण उससे इपर-उपर होने का आज के उपन्यासकार के लिए प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ उसे यह अवश्य धोचना होगा कि मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण को पाठकों के लिए किस प्रकार सुबोध बनाया जाए। इस सम्बन्ध में उसे यह नहीं भूलना होगा कि जिस प्रकार मनोविश्लेषक द्वारा पात्र की मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों के अचेतन कारणों को उसके चेतन में से घाने से ही उस पात्र की वे कठिनाइयाँ दूर नहीं हो जाती प्रत्युत् मनोविश्लेषक के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह उन अचेतन प्रेरणाओं की उचित व्याख्या द्वारा उन्हें पात्र की समझाता भी जाए उसी प्रकार, मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण में इतना ही पर्याप्त नहीं कि उसमें पात्रों की अचेतन प्रेरणाएँ निहित हों प्रत्युत् पाठकों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उपन्यासकार उनको मनोवैज्ञानिक व्याख्या तथा उन पर उचित टीका टिप्पणी के अक्षर विकास कर उन्हें पाठकों के लिए बोधगम्य बनाए। उपन्यासकार को यह स्वीकार करना होगा कि जब तक उसके पाठक पात्रों के अचेतन तक पहुँचाने वाली सभी मनोवैज्ञानिक प्रणालियों से पूरी तरह परिचित नहीं हो जाते एवं उन प्रणालियों पर

उनका सहज अधिकार नहीं हो जाता तब तक अपने उपन्यासों में उचित ध्यात्म्या के समानेष्ट द्वारा उन्हें समझने का दायित्व उपन्यासकार पर ही होगा। वह अपने इस दायित्व से कतराएगा तो उसके पात्र पहेली से दीखने लगेंगे और उपन्यास गोरख बन्या।

इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्ति के चरित्र का अत्यल्पांश ही उसकी व्यक्त भिन्ना प्रक्रिया में प्रतिबिम्बित हो पाता है और उसका शेष बड़ा भाग जो उसके व्यक्त भावचरण को प्रेरित करता है अव्यक्त रहता है। उस अव्यक्त को छन-छाने उपाइने में ही चरित्रचित्रण की सार्थकता है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि मानव चरित्र नहीं नहीं जो व्यक्त है तो मानव के अव्यक्त चरित्र को भी उसका समूचा चरित्र नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार हिमनग का जल के ऊपर बाना व्यक्त भाव और जल-मग्न अव्यक्त भाग दोनों मिलकर ही पूरा हिमनग बनता है, उसी प्रकार मानव चरित्र के व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों में से कोई भी अपने-आप में पूर्ण नहीं दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। बचावित् इसीलिए, पात्रों के बहिरंग (पॉर्मिटेड) चित्रण में उसका रहने वाला उपन्यासकार अपने पात्रों का सतही चरित्रचित्रण ही कर पाता है और अंतरंग (सक्रीप्टेड) चित्रण की कुल में व्यक्ति मानव की घटल नहराइयों में जो जाने वाला उपन्यासकार अपने पात्रों को पहेली बना बैठता है। वास्तव में चरित्रचित्रण की सफलता बहिरंग तथा अंतरंग चित्रण के समन्वय में है। मजिद्व उसी उपन्यासकार का साथ देना जो अपने उपन्यास में चरित्रचित्रण की इन दोनों धर्मियों में संतुलन बैठा सकेगा।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची
और
पारिभाषिक शब्दावली

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची (BIBLIOGRAPHY)

ENGLISH

- Adler Alfred. On the Interpretation of Dreams *International J Indie Psychol* 2-No 1
- Adler Alfred. *Problems of Neurosis* Kegan Paul Trench London.
- Adler Alfred. A School Girl's Exaggerations of her own Importance *International J Indie Psychol* 3
- Adler Alfred. *Science of Living* Greenberg Pub Inc. New York 1929
- Adler Alfred. Significance of Early Recollections *International J Indie Psychol* No 3
- Adler Alfred. *Social Interest A Challenge to Mankind* trans. John Linton Faber & Faber London 1938
- Adler Alfred. *Understanding Human Nature* Greenberg Pub Inc., New York, 1927
- Adler Alfred. *What Life Should Mean to You* Little Brown Boston, 1931
- Alexander F. *The Medical Value of Psycho-analysis* Allen & Unwin London 1932.
- Allain. *Systeme des Beaux.*
- Allen Walter (ed) *Writers on Writing* Phoenix House London, 1948
- Allport G W. *Personality A Psychological Interpretation* Constable & Co., London reprint 1931
- Ansbacher H L. & R R Ansbacher. *The Individual Psychology of Alfred Adler* Basic Books, Inc New York 1950
- Archer William. *Playmaking A Manual of Craftsmanship* Chapman & Hall London.
- Aurobindo. *Lights on Yoga* Arya Publishing House Calcutta 1918
- Barret William E. *The Living Character The Writer's Hand Book* Writers Inc., Boston 1952.

- Beauvoir Simon De *The Second Sex* Parshley's Eng trans., Oxford, 1953.
- Blake W. H. A Preliminary Study of the Interpretation of Bodily Expression *Teachers College Contrib to Educ.*, 1933 No 574.
- Boas R. P. Edwin Smith. *Enjoyment of Literature* Harcourt, Brace & Co New York.
- Brightman E. H. (ed) *Proceedings of the Sixth International Congress of Philosophy* Longmans London, 1927
- Campbell Sir George *Memoirs of My Indian Career II*
- Carter H. D. Emotional Factors in Verbal Learning—IV Evidence from Reaction Time. *Journal of Educational Psychology* 1937 38
- Church Richard *The Growth of the Novel* Methuen & Co London, 1951
- Cousins, Norman (ed) *Writing for Love or Money* Longman, Green & Co Canada 1949
- Crosland, H. *The Psychological Methods of Word-Association & Reaction Time as Test of Deception* University of Oregon Publication Psychol. Series 1929 1 No 1
- Dalbies R. *Psycho-analytical Method and the Doctrine of Freud* trans T. F. Lindsey Longman, Green & Co London, 1941
- Dine S. S. Van. 'Twenty Rules for Writing Detective Stories' *The Writer's Hand Book*, Writer's Inc Boston 1952.
- Dodwell Henry *A Sketch of the History of India: 1805-1918* Longman, Green & Co London, 1925
- Dodwell, H. H. *The Cambridge History of India* Vol. VI 1932.
- Edel Leon *The Psychological Novel (1900-1950)* J.B. Lippincott Company New York 1956.
- Egri Lajos. 'Plot or Character' *The Writer's Book* Harper & Bros New York, 1950
- Fielding, Henry *Tom Jones*, Book II *The Modern Libby* New York.
- Fielding William J. *Self Mastery Through Psycho-analysis* Eton Reprint Edn., 1950*
- Ford Joseph Conrad *A Personal Remembrance* 1924
- Forster E. M. *Aspects of the Novel* Edward Arnold & Co London., pocket edn. 1919

- Fox Ralph *The Novel and the People* Foreign Languages Publishing House Moscow 1954
- Frankenberg, Mrs. M. *Common Senses in the Nursery* Penguin Book revised edn. 1946
- Freud Sigmund *Beyond the Pleasure Principle* International Psycho-analytical Press London 1922.
- Freud Sigmund. *Fragments of an Analysis of a Case of Hysteria Data Collected Papers* Vol III 1905
- Freud Sigmund. *Interpretation of Dreams* trans. Strachey Allen & Unwin, London 1955
- Freud Sigmund *Interpretation of Dreams* trans A. A. Brill *The Basic Writings of Sigmund Freud* The Modern Lib. New York 1938.
- Freud Sigmund *Introductory Lectures on Psycho-analysis* trans. Joan Riviere, Allen & Unwin London 1929
- Freud Sigmund. *New Introductory Lectures on Psycho-analysis* W W Norton and Comp Inc New York 1933
- Freud Sigmund *Psychopathology of Every Day Life—Childhood and Concealing Memories* trans. A. A. Brill E. Benn 1954
- Frink *Morbid Fears and Compulsions*
- Griffiths P *The British Impact on India* MacDonald London 1952
- Guedalla Phillips. *The Sunday Times* of 27th May 1928.
- Haines Helen E. *Living with Books* Columbia University Press New York, second edn. 1950.
- Hall and Lindzey *Theories of Personality* John Wiley & Sons, New York, 1957
- Hanswatt, H G "The Role of the Upper and the Lower Parts of the Face as a Basis for Judging Facial Expressions" *Journal of General Psychology* 1944 31 p.23-30
- Harding. *The Way of All Women A Psychological Interpretation* Longman Green & Co London 1947
- Havighurst R.J and Hilda Taba. *Adolescent Character and Personality* John Wiley & Sons New York 1949
- Hepner H. W *Psychology Applied to Life and Work* Prentice-Hall, New York 1950
- Hiriyanna H. *The Essentials of Indian Philosophy* George Allen and Unwin London second imp 1931

- Hoffman Frederick J. *Freudianism and Literary Mind* Louisiana State University Press New York, 1946
- Horney Karen. *Self Analysis* Routledge & Kegan Paul London 1942.
- Hudson, W H. *An Introduction to the Study of Literature* George G Harrap & Co London 1940
- Hull Helan (ed) *The Writer's Book* Harper & Bros. New York, 1950
- James, Henry *Portables Henry James* Villain Press New York, 1951
- James Henry *The Spoils of Poynton*
- Johnson, and Weigand. *Proc. Penna Acad. Sci* 1927
- Jung, C. J. *Modern Man in Search of a Soul* Routledge & Kegan Paul London 1940
- Kale M. R. *Higher Sanskrit Grammar* Appendix to Dhatu Kosha
- Kettle Arnold *An Introduction to the English Novel* Vol. 1 Union Library Hutchinson 1951
- Klein M. *The Psycho-analysis of Children* Hogarth Press 1932.
- Lahmann John. *Penguin New Writing* Penguin Books September 1942.
- Lamb Charles. *A Letter to Wordsworth* *Time and the Novel* 1952.
- Landis Paul. *Adolescence and Youth* McGraw Hill New York, 1952.
- Lawrence D H. *Lady Chatterley's Lover* Signet Book Sixth Print 1950
- Lawrence, D H. *Morality and the Novel* Posthumous Papers Phoenix London.
- Lawrence D H. *Studies in Classical American Literature* Heinemann New York 1930
- Liddell Robert. *A Treatise on the Novel*, Jonathan Cape London second imp., 1949
- Lubbock, Percy *The Craft of Fiction* Jonathan Cape London 1954
- Maciver R M. *Society* Macmillan and Co. London, 1930
- Madan Dr I. N. *Premchand An Interpretation*.
- Majumdar H C. *An Advanced History of India* Macmillan, London 1953.
- Marx, Karl. *Origins of Political Economy*

- McDougall William *An Outline of Psychology* Methuen & Co. London, 1943
- Medflow A. A. *Time and The Novel* P. Novill 1952
- Meredith Scott *Stuffing the Hollowman—Characterization Writing to Sell* Harper & Bros New York 1950
- Misra Vachaspathi. *Sankhyatatsukharmudi* Bombay Samvat 1900
- Mounier E. *The Character of Man* trans. G. Rowland Rockliff London 1950
- Muir Edwin *The Structure of the Novel* Hogarth Press, London 5th imp 1949
- Murphy G. *General Psychology* Harper & Bros. New York, 1935
- Murray H. A. *Explorations in Personality* Oxford University Press, New York 1938
- Nikhilananda. *Vedanta Sara of Sadananda Yogendra Advait Ashram* Almora, 1949
- Padmore, Frank. *Apparitions and Thought Transference.*
- Pain Barry *The Short Story* Harrap & Co London.
- Patrick, Q. *The Naughty Child of Fiction The Writer's Hand Book*, Writer's Inc. Boston 1932.
- Radhakrishnan, Dr B. *Indian Philosophy* George Allen & Unwin London 1948.
- Roback, Dr A. A. *The Psychology of Character* Routledge & Kegan Paul London third edn., 1952.
- Roback, Dr A. A. *Problems of Personality* Campbell & Bros, 1925
- Robinson M. L. *Writing for Young People* Thomas Nelson & Sons, New York 1950
- Ruch, F. L. *Psychology and Life* Scott, Foreman & Co New York, third edn.
- Ramel. *My Diary in India*
- Schilder P. *Psycho-analysis Man and Society* W W Norton & Co New York, 1951
- Schoen Max. *Human Nature in the Making* The Wordsworth Surrey 1947
- Sinha J. *Indian Psychology Perception* Kegan Paul Trench & Co. London, 1931
- Spender Stephen. 'The Novel and Narrative Poetry' *The Penguin New Writing* Penguin Books London, Sep. 1942.
- Roman. *General Introduction to Stevenson's Stories*

- Stagner Ross. *Psychology of Personality* McGraw Hill New York, 1948
- Thomson and Garrat. *Rise and Fulfilment of the British Rule in India* Macmillan & Co. London
- Tilak, B. G. *Kesari* of 12th June 1908
- Tracy Dr F. *How to use Hypnosis* Arco Pub Co. London, 1953.
- Tridon, Andre. *Psycho-analysis and Love* Perma Books edn., 1949
- Unwin. *Sex and Culture* Oxford University Press London, 1934.
- Vatsyayan S. H. *Hindi Literature Contemporary Indian Literature* Sahitya Akademi, New Delhi, 1957
- Wachner T. S. *Interpretation of Spontaneous Drawings and Paintings Genet Psychol Monoger*
- Webster. *American Standard Dictionary* Triangle Books, New York, 1948.
- Webster. *New International Dictionary of English Language*, second edn. 1945
- Wellek, R & Austin Warren. *The Theory of Literature* Jonathan Cape London, 1949
- Wolfert, Era. *What is a Novel and what is it Good for? The Writer's Book* Harper & Bros. New York.
- Zola E. *Nova Pocket Books* New York, 1951

सदर्भ-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

प्रवेम नदी के द्वीप प्रगति प्रकाशन दिस्सी, १९२१ ।

प्रवेम सेखर एक बीबनी—भाग १ २, सरस्वती प्रेस बनारस, तृतीय संस्करण, १९२१ ।

प्रतिबिम्ब योग प्रदीप, श्री प्रतिबिम्ब-संघमाला कसकता १९१६ ।

इंषा प्रस्ता की रानी केतकी की कहानी परिमल प्रकाशन प्रविष्ठान दिस्सी १९२२ ।

एमेस क ठिक समाजवाद कात्वनिक और बीतानिक, हिन्दी-संस्करण पीपुस मित्तिमि हाऊस, बम्बई, १९४६ ।

कास्य घबुन बीब सामान्य मनोविज्ञान राजराजेश्वरी पुस्तकाधम मया प्रथम संस्करण, १९२१ ।

कोठारी कोमल (सं०) प्रेमचन्द क पात्र प्रेरणा प्रकाशन जोमपुर, १९२४ ।

वहमरी गोपामराम ठन-ठन गोपाल कृष्ण महल इसाहाबाद द्वितीय संस्करण १९४६ ।

श्री देवकीनन्दन चन्द्रकान्ता, सहरी बुक डिपो बनारस २६वीं संस्करण १९२६ ।

श्री देवकीनन्दन चन्द्रकान्ता-सन्तति सहरी बुक डिपो, बनारस १६वीं संस्करण १९२१ ।

श्री डा० एम० पी० आलोचना इतिहास तथा विद्वान्त राजकमल प्रकाशन दिस्सी ।

श्रीनेत्र कुमार. चन्द्रापी हिन्दी-संघ-रत्नाकर बम्बई, तीसरा संस्करण १९२३ ।

श्रीनेत्र कुमार. जयचर्येन पूर्वोदय प्रकाशन दिस्सी प्रथम संस्करण । ;

श्रीनेत्र कुमार. त्याग-पत्र हिन्दी-संघ रत्नाकर, बम्बई, सातवां संस्करण १९२२ ।

श्रीनेत्र कुमार. परच हिन्दी-संघ-रत्नाकर, बम्बई, पाठवां संस्करण १९२६ ।

श्रीनेत्र कुमार. बिबल पूर्वोदय प्रकाशन दिस्सी प्रथम संस्करण १९२३ ।

श्रीनेत्र कुमार. व्यतीत पूर्वोदय प्रकाशन दिस्सी प्रथम संस्करण १९२३ ।

श्रीनेत्र कुमार. साहित्य का योग और प्रेस, पूर्वोदय प्रकाशन दिस्सी १९२३ ।

श्रीनेत्र कुमार. सुपदा पूर्वोदय प्रकाशन दिस्सी प्रथम संस्करण १९२२ ।

जैसेन्द्र कुमार मुनीता हिन्दी-प्रथम रत्नाकर, बम्बई, चौथा संस्करण १९४६।

जोशी इलाचन्द्र ब्रह्म का पंथी।

जोशी इलाचन्द्र जिल्सी सेक्टरस मुक्त विप्लो इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५२।

जोशी इलाचन्द्र निर्वासित माछी भण्डार, इलाहाबाद प्रथम संस्करण सं० २००३ वि०।

जोशी इलाचन्द्र पर्व की रानी भारती भण्डार इलाहाबाद द्वितीय संस्करण, सं० २००२ वि०।

जोशी इलाचन्द्र प्रेत घोर घाया।

जोशी इलाचन्द्र मुक्ति पथ।

जोशी इलाचन्द्र सज्जा भारती भण्डार, इलाहाबाद तृतीय संस्करण सं० २००७ वि०।

जोशी इलाचन्द्र संन्यासी भारती भण्डार, प्रयाग बहुयं संस्करण सं० २००६ वि०।

जोशी इलाचन्द्र सुबह के भूमे हिन्दीमयम इलाहाबाद १९५२।

तिलक बासवंतायर बीता रहस्य हिन्दी संस्करण।

निगुणायत डा० गोविन्दचरण तात्त्विक तत्त्विका के सिद्धान्त प्रथम भाग भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली १९५७।

मटनायर, डा० रामरत्न कलाकार प्रेमचन्द युनिवर्सल प्रेस इलाहाबाद।

मट्ट बालकृष्ण लौ भजान युक्त सुमान संग-ग्रन्थायार, सपनक, ११वीं संस्करण सं० २००६ वि०।

प्रसाद जयचंदर. साँस भारती भण्डार, इलाहाबाद सं० २००३ वि०।

प्रसाद जयचंदर. इरावती भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण।

प्रसाद जयचंदर. कंकाल भारती भण्डार, इलाहाबाद, ५वाँ संस्करण।

प्रसाद जयचंदर. कामायनी।

प्रसाद जयचंदर. काव्य घोर कला तथा प्राय निबन्ध, द्वितीय संस्करण, सं० २००१ वि०।

प्रसाद जयचंदर. तितली भारती भण्डार, इलाहाबाद ३वाँ संस्करण, सं० २००५ वि०।

प्रसाद जयचंदर. विद्यालय प्रथम संस्करण, १९२१।

प्रेमचन्द. कर्मभूमि सरस्वती प्रेस बनारस।

प्रेमचन्द. कायाकल्प, सरस्वती प्रेस बनारस।

प्रेमचन्द. कुछ विचार सरस्वती प्रेस बनारस चौथा संस्करण १९४६।

प्रेमचन्द. पौदान, सरस्वती प्रेस, बनारस।

- प्रेमचन्द तमन सरस्वती प्रेम बनारस ८वीं संस्करण १९४६ ।
- प्रेमचन्द निमसा, सरस्वती प्रेम बनारस ९वीं संस्करण १९४२ ।
- प्रेमचन्द प्रतिज्ञा, सरस्वती प्रेम बनारस ८वीं संस्करण १९४३ ।
- प्रेमचन्द प्रेमाभंग सरस्वती प्रेम, बनारस ।
- प्रेमचन्द रंगभूमि सरस्वती प्रेम बनारस ।
- प्रेमचन्द घरदान, सरस्वती प्रेम बनारस ।
- प्रेमचन्द सेवासदन, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद ।
- मदान डा० इन्द्रमाध प्रेमचन्द : एक विवेचन राजकमल प्रकाशन दिल्ली ।
- वर्मा भगवतीचरण धाकिरी बीच भारती मण्डार प्रयाग प्रथम संस्करण ।
- वर्मा भगवतीचरण विजयेन्द्रा, भारती मण्डार इलाहाबाद ८वीं संस्करण सं० २००४ वि० ।
- वर्मा भगवतीचरण डेढ़े-मेढ़े राते भारती मण्डार, प्रयाग द्वितीय संस्करण सं० २००१ वि० ।
- वर्मा भगवतीचरण तीन बर्य, भारती मण्डार, प्रयाग चतुर्थावृत्ति सं० २००१ वि० ।
- वर्मा भगवतीचरण पतन गया घाघाट, लखनऊ द्वितीयावृत्ति १९४२ ।
- वर्मा डा० रामकुमार, विचार-बर्धन साहित्य निष्ठान प्रयाग प्रथम संस्करण १९४८ ।
- वर्मा रामचन्द्र खलिप्त राज्य-सागर नामची प्रचारिणी समिति, काशी चतुर्थ संस्करण सं० २००२ वि० ।
- वर्मा बुन्दावनलाल कचनार, मयूर प्रकाशन आँसी प्रथमावृत्ति १९४८ ।
- वर्मा बुन्दावनलाल मङ्ग कुम्हार गया ग्रंथागार, लखनऊ ११वीं आवृत्ति १९४६ ।
- वर्मा बुन्दावनलाल आँसी की रानी मयूर प्रकाशन आँसी द्वितीयावृत्ति १९४८ ।
- वर्मा बुन्दावनलाल मृगयणी मयूर प्रकाशन आँसी प्रथम संस्करण १९४० ।
- वर्मा बुन्दावनलाल बिराटा की पवित्रमौ, गया ग्रंथागार, लखनऊ, तृतीयावृत्ति सं० २००१ वि० ।
- वर्मा, बुन्दावनलाल सोना मयूर प्रकाशन, आँसी ।
- बाबुपेयी गन्धकुमार आधुनिक साहित्य, भारती मण्डार, इलाहाबाद सं० २००७ वि० ।
- बाबुपेयी गन्धकुमार जयप्रकर प्रसाद भारती मण्डार इलाहाबाद सं० २००४ वि० ।
- बाबुपेयी गन्धकुमार प्रमचन्द्र साहित्यिक विवेचन हिन्दी भवन इलाहाबाद ।
- व्यास प्रमिष्ठाररा आचार्य बलराम व्यास पुस्तकालय काशी चतुर्थ संस्करण १९४६ ।
- मशपात शहा कामरेड विप्लव कार्यालय लखनऊ ।

- यशपाल बिष्णु बिष्णु कार्यालय ससनऊ, १५^{वाँ} संस्करण १९४६ ।
- यशपाल देशद्रोही बिष्णु कार्यालय ससनऊ, तीसरा संस्करण १९४६ ।
- यशपाल पार्टी कामरैड बिष्णु कार्यालय ससनऊ, दूसरा संस्करण १९४७ ।
- यशपाल मनुष्य के रूप बिष्णु कार्यालय ससनऊ ।
- यशपाल अभिनमन ग्रन्थ पञ्चाभी विभाग पटियासा, १९४७ ।
- सर्मा डा० बगतापप्रसाद हिन्दी की यश-क्षेत्री का विकास नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।
- सर्मा यशवन्त हिन्दी के उपन्यासकार भाएली भापा मदन दिल्ली १९४१ ।
- सर्मा डा० रामबिनास प्रेमचन्द और उनकी पुत्र मेहरचन्द मुखीयम, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९४२ ।
- शिवरानी प्रेमचन्द घर में, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद ।
- पुनम आचार्य रामचन्द्र हिन्दी-साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं० २००३ बि० ।
- मोनिबामदास परीक्षा गुह ।
- मीनास्त्व शिवनाथराय हिन्दी उपन्यास सरस्वती मन्दिर, बनारस सं० २००२ बि० ।
- चिन्हा घटिलता प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ।
- हरिदचन्द्र भर्तृहरि इमानन्द सरस्वती सार्वभौमिक प्रकाशन दिल्ली सं० २ ०६ बि० ।

पत्र-पत्रिकाएँ

- आनन्द, जून १९४१ ।
- भारती मास १९४१ ।
- आलोचना इतिहास विशेषांक, अक्तूबर, १९४२ ।
- कल्पना करवरी १९४१ ।
- कल्पना मार्च १९४१ ।
- कल्याण केन्द्र प्रका सं० १९४३ बि० ।
- कीर्तिनुर साहीर, २८ जुलाई, १९७७ ।
- मया समाज मई, १९४१ ।
- मये-मसे जनवरी-फरवरी १९४३ ।
- पारिजात जनवरी १९४७ ।
- प्रवीण इलाहाबाद सं० १ शीघ्र ।
- बीरमर्जुन २७ नवम्बर, १९४७ ।
- बीला दिग्गज १९४१ ।
- संनम प्रसाद-स्मृति-ग्रंथ फरवरी १९४१ ।

- समाज जुलाई, १९४७ ।
 सरस्वती मार्च १९४२ ।
 साप्ताहिक हिन्दुस्तान २० दिसम्बर १९४३ ।
 साप्ताहिक संसार, १ जुलाई, १९४६ ।
 साहित्य-सन्देश प्रायुक्तिक उपन्यास-श्रृंखला जुलाई-अगस्त, १९४६ ।
 इस दिसम्बर, १९३३ ।
 इस : प्रमत्त स्मृति-श्रृंखला मई, १९३७ ।
 हरिवंश चरित्रिका नवम्बर, १८७८ ई० ।

संस्कृत

- अमर
 अमरकृत काव्यसंग्रह, कलकत्ता १८७२ ।
 कठोपनिषद्
 अगन्नाथ
 रसचंदावर, प्रथम ध्यान ।
 महाभारत शान्ति पर्व ।
 मिश्र वाचस्पति
 सोप-सर्व-कौमुदी बम्बई, सं० १९६२ वि० ।
 वात्स्यायन
 कामसूत्र ।
 विश्वनाथ
 साहित्य-रस्य श्रीबालन्द विद्यासागर, कलकत्ता
 श्रीबालन्दविषयिता
 सरस्वती मासिक
 निरुपाधिनी ।
 सांख्य

मराठी

- छात्रकुल का०
 स्वभावोपनिषद्-कृता ।
 बंगला
 बंगला भाषा-प्रतिपादन ।

प्रवच की पारिभाषिक शब्दावली

अन्तर्य चरित्रचित्रण	subjective characterization
अनपेक्षितता का विवेक	motivation
अन्तर चिह्न	subjectively
अन्तर्ग्रह	mental conflict
अन्तर्निर्वास	interior monologue
अन्तर्मुख	introverted
अचेतन प्रतिनिधित्व	unconscious attitudes
अचेतन व्यवहार	automatism
अनुभाव	expressive features
अपसामान्य	abnormal
अपचेतन	subconscious
आत्मतत्परिक विवेक	subjective characterization
अहं	ego
अहंकारी	egotist
अन्तराधिक	intermittent
आत्मप्रेम	narcissism
आत्म-विवेक	self-analysis
अनुकूलित व्यक्तित्व	adaptive personality
अनुवंशिकता	heredity
आवेग का आवरण	emotional behaviour
अपेक्षा	impulse
उत्थानात्मक व्यवहार	sublimation
उत्थान	stimulus
अभिव्यक्ति	bisexuality
अपेक्षात्मकता	identification
किशोरवयस	adolescence
अपेक्षा	masochism
आदिमिक गुणात्मकता	personality traits
विषय विवेक	picture analysis
अन्तर्मुख	stream of consciousness

आप	impression
तनाव	tension
तीव्रता	intensity
पूर्विक काम-वासना	gratification sexual
आत्म-आत्म	identification
दमन	repression
दृष्टि	vision
नाटकीकरण का लक्षण	dramatization, dream mechanism
निद्रा-प्रवर्धन	hallucination
परिपक्वता	maturity
परिपक्व	environments
व्यक्ति	subject characters
प्रतिबिम्ब	echo
प्रतीक-प्रवर्धन का लक्षण	symbolization, dream mechanism
प्रतीक-प्रवर्धन	perception
प्रतीक-प्रवर्धन	regression
प्रतीक-प्रवर्धन	recollection
प्रवृत्ति	aptitude
प्रेरक, प्रेरक	motive
पूर्व-प्रवर्धन का लक्षण	case history method
वर्तमान-वर्तमान	objective characterization
वर्तमान	extroverted
व्यक्ति-व्यक्ति	analysis of resistance
प्रवृत्ति	delusion
मानस	psyche
मानसिक संतुलन	mental equilibrium
माया	illusion
मुक्त-आत्म	free association
मुक्त-प्रवर्धन	face reading
मुख-प्रवृत्ति विज्ञान	physiognomy
मुख-प्रवृत्ति	facial expressions
मृत्यु का अर्थ का अर्थ	death phobia
व्यक्ति-प्रवृत्ति	reality principle
प्रवृत्ति-प्रवृत्ति	rationalization
व्यक्ति-प्रवृत्ति	sex urge
व्यक्ति-प्रवृत्ति	environments
व्यक्ति-प्रवृत्ति	objective characterization
व्यक्ति-प्रवृत्ति	objectively
व्यक्ति-प्रवृत्ति	kinetic character

निष्ठासम्यक् चरित्र	character in the making
निष्ठोद्दी व्यक्तित्व	defiant personality
निनीत व्यक्तित्व	submissive personality
निवेक बुद्धि	conscience super-ego
विस्थापन स्वप्न-संघटन	displacement dream mechanism
ईद भाव	hostility
अव्यक्त व्यवहार	overt behaviour
अव्यक्तत्व	suggestiveness
अव्यक्त्य मनोवैज्ञानिक	interpretation, psychological
शब्द-संयोजन-परीक्षण	words association test
शैली प्रदर्शन	mannerism
संक्रमण-विरासोपलब्धि	analysis of transference
संक्षेप स्वप्न-संघटन	condensation, dream mechanism
संघर्ष	conflict
संवेदनशीलता	sensitivity
संवेदन	sensation
समलैंगिकता	homosexuality
सम्प्रेषण-विस्थापन	hypnotism
सम्प्रेषण-विरासोपलब्धि	hypno-analysis
संयोजन	associations
सामान्यीकरण	generalization
समर्पण	adjustment
सामान्य-स्वप्न	identification
सुप्त सिद्धान्त	pleasure principle
सुप्त कथोपकथन	recollected dialogues
स्वचालित व्यक्तित्व	self-directive personality
स्वप्न का अव्यक्त रूप	manifest form of dream
स्वप्न-विरासोपलब्धि	dream analysis
स्वप्न-संघटन	dream mechanism
स्वभाव	temperament
स्थिति	situation
स्थितिवादी	conservative
स्थितिवादी	situation portrayal
स्थिर भाव	static character
स्थिर-भाव	ice-berg

अनुक्रमणिका

प्रवचन २० २४ २७, ४२, १७७	४१ १८८ ४१६ २१० २२२ २१
प्रवचन (मोटिव) ६१, ६३ १४७	प्रतीत विद्वत्पण ४७२-७६
१७४ १७६-७७, १८४ २४२	प्रविकारी महावीर, २६४
१४१ २१६, २२४	प्रनुभाव २१ ७४ ८६ १५३ २१४
प्रवचन विमल (मोटिवेयन) ६३	२१९ ३३८
७३-७४ १७२-७७ २२६ ३१	कृषि २६४ ६७
२८१-८४	सुपुष्पावस्था के ४०६
प्रवचन (सम्वैदिक) विमल ७३ ८६	प्रनुभाव-विमल ६३ ७१-७७ १४७
१०७ ३२३ ३३६ ४० २१३,	१७०-७२, २२०-२२२ २६४ ६८,
२२० २३ ४२३	३१८ २० ३३३, ३३५ ६० ४०७
प्रवचन २४ १८० २७८	११ ४४८ ७२
प्रवचन (इंटरम कास्मिक) ६३ ७५	प्रपराध भावना ३८३
७६ १४७ १८६, १८३ २८८	प्रवचन २४
३३३, ३४३ २१८	प्रवचन (मन) १७६, १८५ ८६
प्रवचन विमल ७३-७७ १६०-६३	१६९ २३६ ३७
२८४ ६० ३१२ १४ ३६० ६३,	प्रवचनाराधना ३३६
४११ १३, ४२२ ६०	प्रवचन उपेक्षा २८
प्रवचन-विमल १८३ ८७	प्रवचन २७७ ३३३, ४०५ १०
प्रवचन २४० ३३६ २२१	प्रवचन (एगा) ८१ ३४१ ३६३, ४३८
प्रवचन (इंटीरिपरमोसोसोस) ६३	३६, ४२२ ४६३ ६८ ४१० ७१
७६-७७ ३२८ २६, ३३३, ३३८	४६४
३७६ ७६, ४२६ २७ २२१ २२३	प्रवचन, २० २१ २३ २४ २७ २९
प्रवचन (मन) ८१-८२ २४३ ४४	४४०
३१२ ३४० ३४३ ३६७, ३८७	प्रवचन २२२ २३ २८२ २८५,
३८६ ३८४ ४१२, ४१३, ४२६	२८५ २८६
४८२ ४८६ ४८२, ४८८ २२३,	प्रवचन २४ २७२ २३ ४१७
प्रवचन ३० ४१, २४ ६७ ७३, ८१	४२३ ४२६ ४६६
८३, ८८ ८६, १०७, ३३३ ३६०	प्रवचन ४४०

घाकृति विज्ञान १११ १२

घाकृति-वेद्यमुपा १६ १२१ १५२,
२१३ २५७ ३३५, ३४६,
३६८ ३८४

घाकृति-वेद्यमुपा-वर्णन ३३ ६८-७०
११५, १४० ४१ १४७ १६७
२१२ २१७-२२० ३११ १२
३२५ २६, ३४६ १५, ४०४ ४०७
४४५ ४८

घाक्यामिका ११ ३६ ११०

घात्मकया ८८ २१८

घात्मकया वीसी ३६१ ६३

घात्मनित्यन ३८७ ३६८ ५२१ ५२२

घात्मज्ञापन ४८० ८१ ४८३

घात्मनिवेदन ३० ३०३

घात्मबाध २ ६

घात्म-विस्तेपण ३३५ ३७० ७३
३६२ ४३७ ४६०

घात्म-विस्वास २३६, २६१ ४२६

घात्म-विस्मृति २६४

घात्म-सम्मान १८६ ३२८

घात्महृदा ८८ १८२ ३३ २११, २१६,
४३० ४५४ ४६०

घात्मा २० २४ २५, ७५ १०६ २०७
२८३ ८४ ३०० ३८८ ६७१

घात्मार्यसु ३६७

घात्मार्यमन्त्रि ३६७

घात्मार्यवाद, २ ८

घुम्बितसार २४

घास-साध्यता मनावैज्ञानिक उपस्थासों
की ३६०

घास-विनिर्माण २६

घास-मान ६३ १ ८ १०५ १०७

घास-कनक १०६, १०८

घासपोर्ट ८

घासगज घासगण १४७ १७७-१८३
२२३ २६५, २७४ ७५

घासगज निधनस काविस ६३ १०० १०२

घासगज २० १२४

घास-मन्त्राह का ६३ १११ ११२ ११३

घास-मन्त्राह ७५ ४२८ ४२९

घास-मन्त्राह घास-मन्त्राह ४२ ४४ १०५,
२०७ ३०४ ३०५

घास-मन्त्राह घास-मन्त्राह में ११६
३६१-६२

घास-मन्त्राह ३५४ ५५

घास-मन्त्राह ८

'घास' पक्षि के घन घास ५६ १२८ १५१

घास-मन्त्राह घास ११८

घास-मन्त्राह घास-मन्त्राह ६३ ८७
८८ ३३५ ४८६-६०

घास-मन्त्राह ४४०

घास-मन्त्राह घास

घास-मन्त्राह ११६ १८

घास-मन्त्राह ३०४, ३ १-७७

घास-मन्त्राह १८ १२१ १३६ १४४

घास-मन्त्राह १२, १२१ १२५,
१२६ ३५

घास-मन्त्राह ११ १४

घास-मन्त्राह ६१ ११८

घास-मन्त्राह १७ ३० ३७ ५५,
६१ ६३ ६६, ७२, ७७ ८४

घास-मन्त्राह ३७६ ३८० ४१५

घास-मन्त्राह १०६,

घास-मन्त्राह १६ १७ ८६

घास-मन्त्राह १७ ११५

उपन्यास और कहानी में चरित्रचित्रण
११ १७ ४१

उपन्यास और चरित्रचित्रण ७ १४
१८.

उपन्यास और जीवनी में चरित्रचित्रण
४१ ४५

उपन्यास और नाटक में चरित्रचित्रण
३३ ३७

उपन्यास और महाकाव्य में चरित्रचित्रण
२६ ३३

उपाध्याय डा० देवराज २४८

उपाध्याय डा० नमबतसरण ५०६

उपनयसैविकता (वाई सेक्सपुएलिटी)
५०६

एकता काम की ३४

सदय की ५६

एकतुत्रता संतःप्रेरणाओं में १७६

प्रतिक्रियाओं में २८३

प्रेरकों में, २८२

एकार्मीकरण १६० २४७ २७७ ३७७
३८८

एरी साजोंह, २३, ३४

एम्बॉट १६

एम्बर, एम्बेड ४४ ३३८ ४१०, ४१२
४०८, ५२१ ५२६

एनी बैबेन् १०६

एलिस ह्वसॉक ३३८ ५२१

एमेन ४३

ऐंगेस्त फोड्रिक ३२४ ३३०

ऐवमबीन १६७

मोवभारिक परिपय, १६४ ६३

धीपम्यासिक चरित्रचित्रण का भविष्य,
५१३, ५२६ २७

कथन स्वयत् १८

आवेपय, २६६

कथा, आधिकारिक प्रासंगिक २७, ३१४

कथानक १० ३४ ३५, ५१ ५८ ८६
१३३ १६३, १६३ २०४, २२६
२३४ २४८ २३२, २५८
३६० ४४२

कथानक और चरित्रचित्रण १२

कथोपकथन १८ ३४ ३६ ४१, ६३ ८७
११० ११३ १६ १२१ १२५,
१३१ १३४ ३५, १३६, १४२,
१४७ १६३ ११४ २२१ २२५,
२३४ ४१ २६१ ६२, २७६, २८१,
२८७ २६२ ६७ ३१४ १८ ३३१
३२ ३३३, ५०२ ५०५, ५१७ १६,
५२१ ५२४

कर्मगिरी २१ २४ २६ ४२

कविता-गीत १२३ १४७ ३००-३०१

कहानी ११ ३७ ४१ २४८

कानन डायन १३६

नार्यकारण-नरमरा ४४ ३४१ ४१६,
४१६, ४३७ ४६२, ४८०

काव्यय मनुज बीदे, १६ २३

क्रियाशक्तस्था, १८७-१६०

कुटा यौग ३३६

कोठारी कोयल १६०

कोटार्क मेरियम, ६५

क्रिया प्रवित्रिया-चित्रण, ३६ ४० ४२

४६ ६ ६१ ६७-६८ ७० ७४
८६, ११७ १३०-३१ १४७ १५३
१६६ १७२ ७४, १७८ २००,

२१४ १६ २२३ २४ २२७ २२९
३० २६१ ६२ २७२-७४ २७६,
२८१ ३३८ ३६ ४०७ ४४२,
४१८ ४१९ ४२१ ४२४

जलाशय, काँठ ६८

जानी का० एस पी ३३
जानी कार्तिक प्रसाद ११८
जानी वैद्यकीनम्बन ६, १० १७ १२१
१२४ १२६ २५, १३६, १३८ ४१६

जबामर सिंह ११७
जहमपी गोपालराम ११८ १२१ १२४
१३६ ४४ ४१६
गांधी महारत्ना १०६, ४२७
गुरुदत्त उपन्यासकार, १२६
गुरुदत्त पं० १०७
गोखले गोपालकृष्ण ६७
गोस्वामी किछोरी लाल १२४
गोस्वामी राधाचरण ११७
गोड कृष्णदेव प्रसाद १३६
गीतपात्र, ४६ ५७-५९

घटना ३४ ५१ १२४, १३३ १४१
१६३ २७६ २८१ २९० ३०४
१६६, ४०० ४१७
घटनाओं द्वारा अरिचरित्रण ३३ ८६
८७ १२१ १३२ ३३ १४१ ४२
१६३ ६६ २३२ ३४ २९०-६२
३२८ ३१

घटना और व्यक्ति ३२६ ३०

जगुरदेव मास्की १५१
जगुपेदी पं० जगन्नीवास ३४, १२८

जरिज मानव १८-२७
अभ्यन्त ०३
परिभाषा २५ २७
व्यक्ति जरिज ३३ ६६ ३२२
३३१ ३२ ३३३, ३३७, ३४२
४३ ४३६ ४४५ ४४७ ४४२
४६०

जरिचरित्रण २१-२६
जनापास १५ ११६ ४४ ४१३
४१७
उपन्यास धीर कहानी, ३७-४१
उपन्यास धीर बीवनी ४१ ४५
उपन्यास धीर नाटक ३३ ३७
उपन्यास धीर महाकाव्य २६ ३३
नाटकीय प्रणाली ८६, १६६ २३१
मनोवैज्ञानिक ३३३ ५१० ५१३,
५२० २३ ५२६
विशेष प्रणालियाँ ३५, ३० ४१
६३ ३६-८६, १११
सोद्बुध १४५ ३३२, ५१३ ५१७-
२०
हिन्दी उपन्यास में विकासक्रम, ५१३
५१५ २३

जरिचरित्रण की मुख्य समस्या ५१३
५२३ २६
जरिचरित्रण का स्वरूप १८ २६,
चारका ११८
जित २२
जित-विशेषण ३३३, ४२४
जैष्ठ (मन) ७८ १७६, १६२ २४३-
४४, २५१ ३१२, ३३६ ४० ३८६,
४०१ ४१२ १३, ४१५, ४२६,
४६६ ५२४

बेतना प्रवाह (स्ट्रीम ऑफ कान्वासनेस)

११ २४२, ३३८ ३७६ ३२१
५२५

जगन्नाथ पंडितराज २६

भानुसम ४१०

बायस जेम्स ३०

बायसी १११

बासुची उपन्यास १३६ ४४

बीच २१ २७

बीचन-वर्षान १२४ २०६, २२५, २७६
२८१ ३४१, ३६६, ३६७ ४३४
४६४ ६५, ४६६, ४७५, ४८१
४८७

बीचनी श्रीर उपन्यास ४१ ४५.

बीचरामा २६

बुग सी बी ३३८ ५२१ ५२६

जेम्स हेनरी २८ ३७ ८६

जैनेन्द्र ११ ५३ ५४ ६६ ६७ ७५-७६,
७६, ८२, ८४ ३३५, ३३६,
३४१ ३४२-६८ ४०७ ५२१
२२ ५२५

‘जैनप्रपन’ ३६० ६८ ५२२

जोन्स हेनरी चार्ल्स, ३४

जोशी इलाचन्द्र ३८ ६७ ७२ ७५
८१ ८३ ८४ ८६ ८८ २०३
२०५, २२८ ३३५, ३४० ३६६
४३५, ५२२, ५२४

जामेडिया २१ २४ ३८६ ५२४

टिप्पणी साधनिक २७८ ८१

टीका-टिप्पणी ग्रन्थ पार्श्व द्वारा, १२१
१३५ १४३ १४७ २००-०२,
२६७-३००

टीका टिप्पणी उपन्यासकार द्वारा १४७

१५६ १७२-७४ २२५ २७ २७६-८१
टेकनिक ‘मदी के द्वीप’ ४७५-८६ ४८६
५०५

‘थेसर एक बीचनी’ ४६०-७५,
४८६ ५०५

ठाकुर देवेन्द्रनाथ १०४ १ ६

ठाकुरप्रसाद सिंह २३२

ठाकुर, रबीन्द्रनाथ १ ४

थर्नर साह १००

थायरी द्वारा चरितचित्र ६३ ८८ ८६,
१४७ २४० ४२

थॉमस १५१ ३३७ ५२०

थिफिन चार्ल्स २८

तथागत भगवान २०७

तनाव (टेगान) ७८ १४४ २७१-७२,
३६६

तन्मात्रा २१ २४

तमोमुख २१ २३ २७ ३१

तोषे ताल्या ३१० ३१५

विमल बासवनाथ, २१, २४ १०१

त्रिगुणाथ डा० गोविन्द ६, ७१

विमोमोफिकन साधायटी ६३ १०४
१०८ १०६.

वैकटे, ६४

दंडी ११ ११०

दत्त, घासबाबु, १ ४

दत्त, रामचन्द्र, ११८

ब्रह्मागम्य सरस्वती स्वामी १०४०६

५१७

ब्रामोदर राव ११०

घाम्पस्य जीवन् १८४ ८७ ११४ २०२

दार्शनिकता २५१ ३४० ३६५, ४४८

दास ज्ञानेश्वरमोहन ११

देशकाल परिस्थिति-विमर्श ६१, ३०७-

१० ३१४

देवमुक्त गोपालराव हरि, १ ५

देवमुक्त रामचन्द्र ३१०

द्विवेदी छान्तिप्रिय ३६५

महापिण्ड-वर्णन ६३ ६६ १३० २१२

१४ २५६, ३२५, ४०३-४५

माटक ७ ३३ ३७ ५५, ११३ २०३

४०२

माटकीकरण (कुमेटाहण्डेन) स्वप्नसुषुप्त

८०-८१ ४२१ २२, ४६२, ४६६-६७

माटकीय प्रणामी परिचयिण ६३

८६-८६, १६३-२०२ २१३ १४

२२३-२४ २२६ २२८ २३१

२४७ २७६ २६२, ३१४

नामकरण द्वारा परिचयिण पात्रों का

६३ ६५ ६६ १२१ १२६ ३,

१३६, १६० ६३ २०६ २११ २२५

३८ ३३५, ३४४ ४६

नायक-आयिका भेदोपमेद ५५ ५७

नायकाल स्वामी २३

नारी शोषित १३६ ५८

नारीजी दादाभाई ६७ १००

निराधार प्रत्यक्षकरण (हस्तुधीनेशन)

६३ ७६, ८२ ३३५, ३८० ३८२

३८७ ३६३ ४२२

निराध प्रमी २५० ५२

निवृत्तिमार्ग २१० २४६ ५०

नैतिकता मूल ३३८ ३४३ ३८७

सामाजिक ४१३ १४

पंड्या मोहनभास १०६

परिचयात्मक विवेचन ज्ञान्यासकारों का,

१४७ ३३५, ५१७ ५१८ २३

धर्म्य, ४३६ ४२

इलाचन्द्र बोधी ३६६ ४०२

गोपालराव गहमरी, १३६

३८

जयसंकर प्रसाद २०३ २०६

जीनेन्द्र ३४२ ४३

देवकी मन्दन खत्री १२६

२६

मनवरीकरण वर्मा २४८ ५५

प्रेमचन्द १५५ ६०

यसपाल ३२१ २३

मुन्हावनभास वर्मा ३०४ ३०७

परिस्थिति २७ २६, १५४ १७३ ३२३

३२४ ४०० ५१८

पनात्मक धर्म ६३, ८६ १२१ १४३,

१४७ २४२ ४३, ३०१ ३०३ ३३५,

४८०-८६

पात्र ४१ ६१ ३६४

चमन-नरिणि ४६, ५३ ५४ १५६

६० २०८ २०६, ४००

कुलमुल २०४ ०५, ४०१

नियतिवादी ३६० ६२

पमायनवादी ४५३ ४५४ ४५५

माधना-परीरी ३४३

वर्ष-प्रतिनिधि (टाइप) ३३ ३२२,

३३१ ३२, ३४३

विद्युत्तन्वीरा (किनेटिक) ४६ ५६	४४६ ४६ ४०२ ४ ४४२ ४५
६१	प्रभुसिमाय २१ २४६ ५
सिद्धान्त-सरीरी २४६ २५२	प्रसाद जयधर ३० ३६ ६६ ६७ ८७
स्विच (स्टैटिक) ४६, ५६ ६१	८६, १४७ १५१ १५४ २०१
पार्श्व के भेदोपभेद ४६, ५४ ६१	४७ ४०२ ५१६ २०
पार्श्व के सात्त्विक रूप ४६ ६१	प्रस्तावना
पाप-पुण्य १५१ ५२, १६ २४६ ५०	अनायास चरित्रविमल १२१ २५,
२५३ २६६	सोदृश्य चरित्रविमल १४६ ५४
पारसगीत ३ ५.	मनोवैज्ञानिक चरित्रविमल
पामिष ३०४	३३७-४१
पुरुष परम २० २१	प्रार्थना समाज ६१ १०४ १०७
पूर्ववृत्तात्मक प्रस्तावी (केस हिस्ट्री	प्रेमचन्द ११ १४ २८ ३६ ४१ ५३
मैकड) ६३ ७६ ८५-८६ ३३५,	५४ ५८ ६६ ६७ ७२ ७५ ७७
३४० ४२२ २४	८७ १२८ १३१ १३६ १४७
पेट्रिक ब्यू १८	१५०-११ १५४ १५५ २०२, २०४
प्रकृति २०-२३ ७४	२०५, २०६, २११ २१६ २२५
प्रतिष्ठा (पेटिट्यूक) ७६, ४०६ ४७६,	२२८ २४८ ३०५, ३३० ३३८
४८५	३६, ३७७ ४०० ४०२ ४०५,
प्रतीकात्मक प्रणाली ३३५, ४६६ ५०१	५१६ ५१८ १६ ५२३
प्रतीकीकरण (सिम्बोलाइजेशन)	प्रेमचन्द बहीनारायण चौधरी १०६
स्वप्नसंघटन ४६२ ४६७-६६	प्रेमाख्यात्मक भूमी १११ ११२
प्रत्यावर्तन (रिफ्लेक्शन) ८३ ३८१	प्रेरक (मोटिव) ७८ ८४ २२६, २८१
प्रत्यक्षलोकन (रिकॉमिन्डेशन) प्रणाली	३३६
४६१ ६६, ४७७-८०	
प्रत्यक्षलोकन-विश्लेषण ६३ ७६, ८४	प्रत्यास ३३ ४५
८५, ३३५, ३३८ ३४१ ४६६	फोर्टर ई एम., १० १४ ३१
७५ ५२१	फिल्मीरी यन्त्राणम ११३
प्रथम भेट की छाया ४७ ६३ ६६	फिस्टर, ४८६
६७ ७ १६५, २१४ २२३ २४६	फीसिंग हैनरी ६ ३० ३१
२७३ २६३ ३०१ ३३३ ४०४	फोयड सिमल ७८ ७६ ८३ ८४
४४२ ४४६ ४७ ४५१ ४७६-८०	१५१ ३६७-४ ३८० ३८६,
प्रथम परिचय पार्श्व का ६३ ६६ ६८	४१६, ४३२ ३३, ४७८ ४६१
१२१ १३० ३२ ३३६ ४० १४७	६२ ४६६ ५२० २१ ५२४ ५७६
१६३ ६८ २११ १५, २५८ ६३ ३३५,	फॉक, जोसेफ ५२५

मक्रिग ११८

मन्त्री पदुमलाम मन्नासारा १२६ ३८८

मननी सुरेन्द्रनाथ १००

महिरम (मॉन्टेविडो) अरिजन्निम

१४७, १५२ ३४ २०६ ०७ ३२३

३१३ ५१८ २ ३२४ ५२६ २७

मालुमट्ट ११ ११०

माधकटा (रेजिस्ट्रार) विमलेपण ६३

७६-८० ३३५ ३३६ ३७३-७६

४३३ ३४

मुद्रितत्व १६ २४ २६ २७

मैकर मर्नेस्ट ए ११ १४ ३७

मौस सुमाप ४२७

मन्मथन सहाम ३३६

माह्य समाज ६३ १०४ १०५, १०७

मन्मथरसकी मैम १०६ १०८

मैक ४११

मटनागर, डा० रामरत्न १६०

मट्ट पं० बामरुण्य ६३ १ ६, ११३

११६ १७ १५० ३१६

मय प्रकारण (कोबिया) ३८४ ४६७-६८

माय्यबाह ४३ १४६, २१७

भारती डा० ममवीर, ११

भारतेन्दु-मुय ६३ ६५ ११८ ५१५,

राजनीतिक परिस्थिति ६७ १०२

सामाजिक धारा, १०२ १०६

साहित्यिक परम्परा १०६ ११८

मुबारबाही ग्राम्भोगम १०३ १०६

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ६५, १०६, ११३

भम (हम्बुजम) ३७६

भू-मैयिमा १७७ २१४, २१६ २२०

२६४ ६५, ३४६ ४०७

मदाम डा० इन्द्रनाथ ३४ १३५ १३६

१६० १७३ १७८, १८१ १८३

३२२

मनस्तार (मन) २० २२ २४ २६

२७ ३७ ६८, ७७, ७८, ८७

१२४ १३१ १७५ १८७, ३७२,

३७४ ३७७, ४४३ ४४६

मनोविमलेपक ७६-७६, ८८ ३३८

३६७-३७० ३७३ ३७६, ३८३

४०१ ४०२, ४१६, ४३४ ३५४६०,

५२४ ३२५

मनोविमलेपण ३४ ६३ ७६-८० ८७

१६४, २२७-२८ ३३५, ३३८, ३४०

३६६-७६ ३८० ३८६ ३८९ ६४

४१५, ४१६ ४२२, ४३१ ६५,

४६ ८० ४६२, ५२१

मनोविज्ञान २८ ३३६

मनोवैज्ञानिक सपस्या ७० १८४, ४२७

५१३ ५२० २३ ५२६

मनोवैज्ञानिक केस २५० ५२ ३४०,

४०० ४०१ ४०८, ४१२ ४३१

४३५

मनोवैज्ञानिक व्याख्या ३६६-६८ ४१५

१६, ४३४ ३५, ५२६

महत्तत्व २० २१ २३, २७

महाकाव्य धीर सपस्या, २६ ३३

महामुत्त २० २१ २४

माधवे डा० प्रभाकर, ११ २०३ ३८८

मार्गविह ३१७ १८ ३२०

मानसिक ग्रन्थि ४०१ ४१६-१७, ४१६,

४३३

मानसिक मेट ४८२-८६

मानसिक सतुलन ७८ १७७ ३४०,

३४३ ३६२ ३३ ४२३ २४

४६१, ४६६, ५२२

मार्क्स कात १५१ ३२३ ३३७ ४२७
५२०

मार्क्सवाद ३२२ ३२४, ३२६

मिस्र जॉन २०४

मिश्र कृपानाथ ३३६.

मिश्र पं० प्रतापनारायण ११७

मुक्त धासन (की एसोसिएशन) प्रणामी
६३ ७८-७९, ३३५, ३३६, ३६६

३७३ ३७४-७६ ४३२ ३३ ५२५

मुद्रा मध्यमन (केसरी रिजिस्टर) ४०८ ४०९.

मुख-रिमित (केसरी एक्स्प्रेसन) ७९
३५८ ६०, ४०७ ४०८.

मुद्राएँ, १७१ ४०७ ४०९ ४५२

भावेमज ४११

मुख २२०-२१ २६५, २६६, ४४६
४५१

धारीरिक ७२, २२० २६४ ४१०
४४८ ४५२

मुमुक्षावस्था की ४१०

मुत्सुमय (डेव फोविया) ३६६, ३८४
८५, ३८७

मुख २८५, ३३७

नैतिक ३८७ ४३८

सामाजिक, ७५, २३३ ३३८ ३८७
४०४

मेरेडिथ, स्काट २७

मैकनि माड ६६

मैकड्युमरा विमियम २५, ३८६

मधार्पता (रिएमिटी) विद्यालय कायड
का ४१३ १५

मध्यमात १४, १४७ १५२, १५४ ३२१
३२ ५२०

मुक्तिरक्षण (रेसासाइनेशन) २४३

योग २३

यौन प्रवृत्ति (सेक्स धर्ज) ७६ ८१
३६४ ६५, ३६७ ४१४ ४१७

४४१ ४५६

रक्षित हाराखुन्त्र ११८.

रजोगुण २१ २३ २७ ३१

रामाहृष्टदास बाबू १०६, ११७.

रामाहृष्टानु, डा० एस ९०

राधिकारमणप्रसाद सिंह, राजा, ३०

रानाडे ब्रिटिश महादेव योविन्द १०६
१०७ ५१७

रामहृष्ट परमहंस १०४ १०८.

रामहृष्ट निघन, द३ १०४, १०७
१०८

रामदास, समर्थ भुक्त ३१५

राममोहन राम राजा १०४ ५१७

रिपन, मार्क १००

रूपचिन्तन ६६-७० २१४ २१७ १८
४४५ ४६

रेसाचिन ४२४

रोबक डा० ए ए., ९६

रोबिन्सन धार एस २८

राजपतधम मामा १०७

मार्सेल डी एस., १०

मार्सेल धीर धर्म ३०६ ५१०

मिग छरीर २४

भूख सिन्सेयर, १२

मेनिन ४२७

मेन्डिज १६

मेसिंग ५२

मोटो २८ ४३७

म्युचॉक पर्वी १०

बक्रोक्ति ८

बर्मा सामाजिक, ३३ २४ १०२ १०३
१०६, १४७ १५१ १५३, १५६
६० २०० २०४ २०८ २३१
३२२, ३२०

बर्णनात्मक क्षैती चरित्रचित्रण १६८
७४ २१२ २७ २३१ ३२ २३४
२७६ २६२ ३६१ ३१६

बर्मा समकालीनचरित्र ६६ १४७ १५२,
१५४ २४८ ३०३ ३३८ ३१६

बर्मा राजकीयचरित्र, ३६६

बर्मा डा० रामकुमार ३४

बर्मा बाबू रामकृष्ण ११७

बर्मा रामचन्द्र २४ २३७

बर्मा, बुन्वावनलाल ३४ १४० १५१
१५४ ३०४ ३२० ३१६ २०

बाह्यमयतन १२३

बाजपेयी गणकुमार, २०३, २०४ २०६,
३८८, ३६६

बाताचरण-चित्रण ३४ ३६, ४६, ५८
५६, ११४ १५१ १६६, १७७
२२८ २४० २६६

बात्स्यायन ऋषि ६

बात्स्यायन स ही १४, ३१ ३६८
४३६ ५००

बान बाहन एत एत १८

बापूजी डा० लक्ष्मीलाल १०७

बिबटोरिया महाशय ६६ ६६

बिबेकबुद्धि (काशी) ७६, ८०-८१
३६४ ३८१ ३६७ ४१३ १४
४४१ ४६६ ५०६

बिबेकानन्द स्वामी १०४ १०८ ३१७

बिबेकपण्डित प्रसादी ८५, १७४ ६३,
२२७-३१ २३३, २४०, २४२, ३१६

बिबेकनाथ साधव ८ २६ ३४ ३५
३७

बिस्वायन (डिप्लोमेट) स्वप्न सप्तक
४२० २१ ४६२, ४६३ ६६

बुल्क, बर्मीगिया ६०

बेर्गेड, ४१०

बेद्यमूपा-चित्रण २७ ३५, ३६ ६७
१४ २६५, २७२, २६३

बेस्यानुति १६५ १६६, २११ २१६
२४४ २५४, ३२८, ४२३

बेम्स्ट, १३ १३ ३१

बोल्फर्ट हरा १३ १४

ब्यंम्य चरित्र ३६ ११५,

ब्यंम्य चित्र २३६, २६३ ४२४

ब्यक्ति चेतना ३३७ ३२१ ५२६

ब्यक्ति मनोविज्ञान ८४ ४६३-६४

ब्यक्ति भाषण ३३७ ३२१ ३२६ २७

ब्यक्तिवाद २०४ २०६

ब्यक्ति घोर परिस्थिति ३२३-२४

ब्यक्ति घोर समाज १४७ १४६ ५२,
३२२

ब्यक्तित्व २० २३ २४ २८ ४० ६८

८५, १३२ १६०, २१४ २६६,

३४५, ३४६ ४०० ४०३ ४०५,

४१६ ४१७ १८ ४२४ ४३६ ३७

४४४ ४७६ ४० ४८६

ग्रन्थमालिका ४३७

बिबोही ४३७

बिनीत ४३७.

स्वभावित ४३७

ग्यास, ग्रन्थिकावत ६३ १०६, ११३,
११५

गंकरापाय स्वामी, ५२, १०५

शब्द-सहस्रमूर्ति-परीक्षण (पर्व एषो
धिएलन टेस्ट) ६३ ७६ ८६
३६८ ३४० ४२५ २६ ५२१

संस्कृत-साहित्य ११८
सर्वा नमिनविमोचन १०६
सर्वा यज्ञवत्, १३६ १३७.
सर्वा डा० रामविभाष १५७
सर्वा मेवत्, २६
सिक्ताय २०६
सिक्तायविहृ पावा १०३
सिक्तायी सप्तपति ३१५
सुप्त माचार्य रामचन्द्र ११७ १२४,
१२७ १३३ ३७
श्रीनिवासवाच ६३ १०६, ११३ १४
१३०, ५१६
श्रीवास्तव सिक्तायवाच ३६ ३२
१३७ २०३ २३१

संस्कृत-विकल्प ३६ ३७ ४३
संक्रमण (ट्रांस्फॉर्म) विमोचन ७८
३६६
संपन्न (कंडीमेडन) स्वप्न संपन्न ४६२-६५.
संपर्क ३३८ ४८१
संवेदन ८० ३६३ ६५, ३६६,
४५५ ६०
मानसिक ७५ १७४ १८४
२८४-८७ ३१३ ३२८, ३४३
कर्म ३२१ २२ ३३७ ४३६
सामाजिक १४७ १५० ५२ ३३७-
३८ ३६२, ४५४
संवाद ८७ ११०, ११६ २१५, २३६,
५०२ ५०५
सविद्या ३४१ ४७८-७९, ४८१, ४८७-
९०, ४९५ ५२३

संस्कार २७ २६, १३१ १८६-८७
२५१ २५७ ३८८ ४३६ ४५६
५७
संस्कृत-साहित्य ११०
संस्थापय १३० २०६ २०६, २३१
संयाम्ब मोवेन्द्र २७
सप्रे, माधवराय २१
सम्प्रीह विमोचन (हिन्दा ऐनेमिचि)
६३ ७६ ८२-८४ ३३५, ३३८
३४० ४२८ ३१ ४३२, ५२१
सहस्रमूर्ति डा० २७
सांकेतिक टीसी ३८ १४७ २२२ २३,
३५२ ५३
सामुद्र्य ३८८ ३६४ ५२२
साहित्यान्व ३६८ ५२३ २४
सिधिया, ६७
सिन्हा सधिमता, ८२, ३८२
मुख्य सिद्धांत-कायड का ४१३ १२
सुवर्ण, ११०
सूदम सधिर, २४
सिक्ता ४६, १८८ ४६८ ६६, ४७३,
४६५
सेन केचवचन्द्र १०४ १०६
सेन चवीचरण ११८
सैयद सधिमता सधिर, १०३
सिद्धार्थकन ६३ ७०-७१ ७३ १४७
१६६-७० २१५ १३ २३६ ७२
३०८ ३०६, ३२३ २४
स्मृति-विमोचन ८४ १४७ १३१
३४१ ३७३ ४३२ ३३ ४४२
४४५ ४६१ ६५, ४६६ ६७ ४७३
४७७ ४८७ ५२२
स्टीफन सधिमता ३०४
स्टेफेन ३३८, ५२१

स्वप्न-विस्लेषण ६३ ७६ ७८ ८०-८१,
 २४३ ४६, ३३३, ३३८ ३४०
 ३६६ ३७६ ८२ ४१८ २२ ४६०
 ६६, ५२१

स्वप्न-संघटन (श्रीम श्रीकेनिबम) ८०
 ८१, ४२० २२, ४६२-६६

हंसराज महात्मा १०७

हरिदत्तग्र विद्यालंकार, १०६ १०७

हॉकिंग प्रो० ब्रय्यु ई २१

हार्डी टामस ३०

हिमनग (बाइसवर्य) ७३ ११३ १७४,
 २२७, ५२३ २४ ५२७

हॉस्टिंग्स लॉर्ड, ६८

होस ४६१

ह्यूम ए प्रो १००

हार्टन एडिथ १२ १३

INDEX*

(Subject Author)

- Abbot 10
- action consistency of 29 176
- adaptive performance 265
- Adler Alfred 84 407 410 428-
20 453 461-65 470 491
- Akanbara 22.
- Allain, H.
- Allen, Walter 165, 302.
- Alexander F 244
- Allport G W 8 70 85 108
171 179 265, 268 311 356
407 422
- altruism, 365
- Amaru S.
- analysis:
 objective 460
 subjective 460
- Ansbacher H. L. 84 461 478
401
- antagonism 180
- ataktaraxa functions of
 H 24.
- appellation 25.
- Archer William 26.
- arithmetic mental, 410.
- art, function of 507
 substitutive gratification 306.
- artist neurotic 306
- associations, 491
- attitudes, 79 470
- Auroblindo 24.
- automatism 432.
- Baker Earnest A. 11
- Balzac H de 15
- Barret William E., 41
- Besant Mrs. Annie 100
- biography 41 44
- bisexuality 506
- Blake W H 411
- Boas, R P 74
- behaviour 15 71
 affective 178.
 delinquent 187
 emotional 147 177 83.
 expressive 205.
 overt 175
- Beauvoir S. de 384
- Browning Robert 108.
- Campbell Sir George 100
- caricature 59
- Carter H D 425
- case-history method 63, 78 85
86 335 340 422.
- chance encounter 269 70
- character 23 26 29 40 71 74
-7

- adaptive 268.
 conservative 252.
 flat, 80
 individual, 208
 kinetic, 49 50 61
 positive 181 519
 static 49 59-61
 types, 447
 character actor 265
 characterization, 27 28 34 173
 255
 direct method 35 131
 dramatic method, 63, 86-89
 131
 indirect method 35 131
 objective 63 65-72, 307 323
 526 27
 subjective 63 73 86 307
 323 339 526 27
 Chevalley M. Abel 11
 childhood 461
 Chisol, Sir Valentine 108.
 Church Richard 11 37
 Clages L., 265
 Colvin, Sir Auckland 08.
 Compton Miss Burnet 53.
 conation 402
 conflict, 305 412 463
 internal 63 75 76
 Conrad Joseph 370
 conscience 78 81 264 281 37
 387 397 441 458 496 506
 conscious 412
 control 363
 consciousness 432.
 sleeping, 421
 waking, 421
 Crawford Mariam 3.
 crimes 42.
 criticism self 437
 Crosland H. 80
 Dalblez R. 81 82 421 431-33
 458 401 491 495 497
 Devananda Saraswati Swami
 106
 death phobia 385 387
 delinquency 167
 depression, 171 264
 desexualization 458
 destiny 481 82.
 Dine E S. Van 18
 Dodwell, Henry 95 97 100 103.
 dialogue, intermittent 502 504
 05
 recollected, 502 505
 dreams, 243.
 analysis 53 78 80-81 419-
 22.
 manifest form 491, 525
 dream mechanism 60 419-22.
 condensation 80-81 420 21
 492 95
 displacement 88 81, 183 492,
 495 96
 dramatization 80-81 421 22,
 492 496 97
 secondary elaboration, 80-81
 421 492.
 symbolisation 80 81 492,
 497 97
 dream thoughts 492.
 Dujardin E., 77
 Edel L., 77 280 300 301 420-
 27
 ego 78 30., 387 401 491
 diminution of 381

Egri Lajos 25 34
 Ellis Havelock 421
 emotion, 177 78 264 387
 civilizing of 204.
 passing 171
 sexual 458

emotional response 177
 environments, 15.
 evolution 20 24.
 expressive features 71
 expressive movements 170 204

face reading 408
 facial expression 72, 204 358
 407

fatality 43
 father image 180
 features expressive 71
 physical 311

feelings, 170.
 fiction coming form of 38
 definition of 30
 form in, 10

Fielding Henry 9 30
 Fielding William J 87 180 243
 44 467

first meeting, 70
 Flaubert Gustave 302.
 Ford 276.

Forster E. M. 10 20 33 42 41
 40-47 51 60 160

Fox Ralph 323 330

Frank, Joseph 300

Frankenberg Mrs S 428

free association 63 78 79 244
 335 339 366 73 525

Froude Sigmund 78 84 366 380
 387 407 413 410 21 461

401 02 40, 0~

frigidity 180.
 Frink, 401
 frustration 183
 fulfillment, 441 484, 487 501
 509 10

Garrat 90-98
 gestures 51 72 170
 unconscious 203.

Gokhale G K. 97

Griffiths, P 90-99 101 100.

gratification 495
 Guedalla Phillips D
 guilt feeling of 384

habits, 432.

hard focus, 446

Haines H. E 20 74, 170 220
 281

hallucination 382 87 422.
 analysis of 63 76 82, 335.

hallucinatory dreams 381

Hanawalt N G, 411

Hardy Thomas 30

Havighurst R J 437 38

Hebbel 401

Hepner H. W 189-90

Hiriyanna H., 21 23

history and novel 43-44.

Hocking, W E. 2.

Hoffman, Frederick J., 77 366,
 389 391 415 507

Horney Dr Karen 78-79 83
 3-4

hostile view of life 471

Hudson W H., 28 33 39 40
 43 45 52 63 169 276 335

Hume Sir A. O., 98

- adaptive 268
- conservative 252.
- fant 60
- individual, 208.
- kinetic 49 59 61
- positive 191 519.
- static 49 59-61
- types 447
- character actor 265
- characterization, 27 28 34 173
255
- direct method 35 131
- dramatic method, 63, 86-89
131
- indirect method 55 131
- objective 63, 85-72, 307 323
526 27
- subjective 63 73 86 397
323 339 526 27
- Chevalley M. Abel 11.
- childhood 461
- Chirai Sir Valentine 108
- Church Richard, 11 37
- Clages L. 205
- Colvin Sir Auckland 08
- Compton, Miss Burnet 53.
- conation 463
- conflict 305 412 453.
internal 63 75-76
- Conrad, Joseph 276
- conscience 76 81 364 381 82
387 397 441 459 496 506
- conscious 412.
control 205
- consciousness 432.
sleeping 421
waking, 421
- Crawford Mariam 3.
- crimes 43
- criticism self 437
- Croeland H 86
- Dalblez R. 81 82, 421 431-33
458 461 491 495 497
- Dayananda Saraswati Swami
106
- death phobia, 385 387
- delinquency 187
- depression, 171 264.
- desexualization 458
- destiny 481-82.
- Dine S S Van 18
- Dodwell, Henry 95 97 100 103.
- dialogue, intermittent 502, 504
95
recollected 502 505.
- dreams, 243.
analysis 63, 78 89 81 419-
22.
manifest form 491, 525
- dream mechanism 80 419-22.
- condensation, 80-81 420 21
492 95
- displacement 80-81, 183 492
495 96
- dramatization 80-81 421 22,
492, 496-97
- secondary elaboration, 80-81
421 492.
- symbolisation 80 81 492,
497 98
- dream thoughts 402.
- Dujardin E., 77
- Edel L. 77 280 300 304, 420-
27
- ego 78 305 387 461 401
diminution of 384

index

Egri Lajos 25 34
 Ellis Havelock 421
 emotion, 177 78 264 387
 civilizing of 204.
 passing, 171
 sexual 458

emotional response 177
 environments, 15
 evolution 20 24
 expressive features 71
 expressive movements, 170 264

face reading 408
 facial expression 72, 264 358
 407

fatality 43
 father image 186
 features expressive 71
 physical 311

feelings 170
 fiction coming form of 38
 definition of 30
 form in 10

Fielding Henry O 30
 Fielding William J 87 180 243
 44 48

first meeting, "O
 Flaubert Gustave 392.
 Ford 270

Forster E. M., 10 20 33 42 44
 40-47 51 60 160

Fox, Ralph 323 330
 Frank Joseph 300
 Frankenberg Mrs S 4, 8
 free association 63 78-79 244
 335 339 366 73 525

Freud Sigmund 78 81 366 380
 387 407 413 419 21 461
 401-02, 49, 97

frigidity 186
 Frink, 491
 frustration 183
 fulfilment 441 484 487 501
 509 10

Garrat 96-98
 gestures 51 72 170
 unconscious 265.
 Gokhale G K. 97
 Griffiths P 90-99 101 100

gratification 495
 Guedalla Phillips O
 guilt feeling of 384

habits, 432
 hard focus, 446
 Haines H. E. 20 74 170 229
 281

hallucination 382 87 422.
 analysis of 63 76 82, 335
 hallucinatory dreams 381

Hanawalt N G 411
 Hardy Thomas 30
 Havighurst R J 437 38.

Hobbel 401
 Hepner H. W 160-60
 Hiriyanna H. 21 23

history and novel, 43-44.
 Hocking, W E 25
 Hoffman, Frederick J, 77 306,
 380 391 415 507

Horney Dr Karen 78-79 83
 374
 hostile view of life 471

Hudson W H., 29 35 38 40
 43 44 52 63 100 270 333
 Hume Sir A O 93

xxx

- hypno-analysis 63 76 82 84
 335 340 428-31
 hypnotic suggestions, 428
 hypnotism 428-31

 iceberg, 73 153 174 227
 id, 78
 identification, 190 247 277 304
 illusion, 270 379
 imagination 464
 impotence psycho, 180-80
 impressionism 354 55
 incest 458.
 incest, barrier 180 458
 individual 330
 individuality 18, 23
 Individual Psychology 463.
 instinct ego 413.
 self preservation, 394 413
 intellect 20
 intention-effect relation 73.
 inter course sexual 509
 interior monologue 31 68 76-
 77 323-29 335 338 378-79
 394, 426 521 525
 internal conflict 63 75-76
 interpretation, 79
 psychological, 326-88 434-35

 James, Henry 7 14, 17 28 32
 37 163
 Johnson 410
 Jung, C G 8

 Kale M R 8
 Kettle Arnold 30
 Klein M 430

 Landis, Paul, 188
 Lawrence D H, 506-10
 Laming D 52.
 Liddell Robert 45 53
 life, incorrect view of 412.
 intermittent 45
 modes of 410
 psycho 402
 style of 461 463 467
 love 189
 incestuous 458
 Lubbock Percy 10
 Lytton I, Lord 07

 Maciver R M. 176 220
 Madan Dr I N., 173.
 Majumdar Dr B C 90 101
 103 106 107
 marital, disharmony 180.
 Marx Karl, 323
 Marxism 330
 mavericks, 438
 McDougall, William, 82 385
 422, 462.
 memory 432 463
 chance 462.
 conscious, 464.
 Mendlow A. A. 276-77
 Meredith Scott 27
 middle class upper 438
 Mile de Chantopia 392.
 mind 20 25
 Misra Vachaspati 22.
 monologue interior 63 76 77
 mood passing, 171
 motivation 63 73-74 175-177
 motives 74 175 281 462.
 consistency of 20 176.
 explanatory 176

- internal 73, 174
 latent 184.
 mother-sister class 186
 Mule Edwin 59
 Munro 99
 Murphy G 71 168
 Murray, H. A. 73 74 174 178
 183
 Naoroji Dadabhai 97
 narrative poetry 31
 neurotic 463.
 neurotic disposition, 461
 Nīkhilānanda Swami 22.
 novel 7 507
 detective, 18
 existence of 7
 Freudian 508
 novel and morality 507
 novelist function of 20 42.

 organism 170
 orthodoxy 103

 Padmore Frank, 92 382.
 Pain Berry 39
 parent image 186.
 Parliament of Religions, 108
 passion 15 43, 507
 Patrick, Q 18
 perception 22 170 470.
 persons 70
 personality 8 28 40, 70-71, 103
 244
 abnormal 417 18.
 adaptive 437
 defiant 437
 self-directive 437 430
 submissive 437
 personality traits 163
 phobia death 385.
 physiognomy 311
 pleasure principle 413 15.
 plot 13.
 pocket theatre 35.
 Prakṛti unconscious, 20
 pregnancy 384.
 psycho-analysis 63 76-80 187
 244 303
 Parusa 23.

 quotations, 487 88.

 Radhakrishnan Dr S 20
 Ranade Mahadev Govind 107
 rationalization 243.
 reality principle 413 415
 rebirth, 24
 recollections, 442, 462.
 analysis of 63 76 84 85 469
 early 403
 reformation, 173
 regression 83 381
 remembrances 478 491
 repression 458 461
 resistance analysis of 63 78 80
 366-67 433 34.
 Roback Dr A. A., 26
 Robinson M. L., 28.
 Ruch F. L. 73 78, 86 170 174
 177 180 183 227 244 264
 306 374 393 411
 Russel W. H. 99

 Saraswati, Madhava 382.
 Schilder P 78.
 Scindia 97
 Schoen Max 26, 40

- self, 26 40
 self portrait 421.
 seneca, 20
 sensory organs 380
 sensory vividness, 385
 sex, 188, 467-68 494.
 sex urge 76 81 282, 364-85
 387 397 441 447
 sexuality genital 458
 short story 39-40
 Silberer 497
 Sinha, J 23 82 381 82.
 Situation, 34 73 188
 abnormal, 271
 external, 73 177
 internal 73
 Roman 38
 soul 24-25
 Spender Stephen, 15 30-31
 Spirit, 20
 Stagner Ross 71 85 86 169
 170 244 264, 205 268 273
 355 385 425
 Stendhal, 16
 Stephen, Lealie 304
 Sterne L., 270
 Stevenson, R. L. 38
 stimulus 82, 381-82.
 stream of consciousness 31 242,
 338 376 390 521
 sublimation, 381 440
 suicide 183
 upper-ego 385.
 Symonds, John Addington 305

 Taba Hilda 437 38
 telepathy 418.
 temperament, 311
 tension 205 271
 emotional 266
 inner 214
 Thompson 00-08
 Tilak, B G 102
 Tracy Dr F, 83 429
 transference analysis of 78 368
 trauma 401
 Tridon, Andre 251 362 365
 397

 unconscious 186 243 244, 380
 412 492.

 values social, 437
 Vatsyayan S H. 390 508
 vision 460 462.
 Vivekananda Swami 108
 vocal expression 264

 Wachner T S 424.
 Webster 18 10 31
 Weigand 410
 Welles R., 255 344
 Wharton, Edith 12.
 wives, adjusted 385
 frigid 186.
 maladjusted 385
 unadjusted 385
 Wolfert, Era 13
 word association test 63 76 88
 340 425 25.
 Wordsworth 279

 Zola, Emile, 321

